CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

आर्यिका आदिमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री [illegible] शास्त्री [illegible]

[illegible]

१- आर्यिका माताजी ने अनुवाद कर दिया है। यह तो धर्म पंडित प्रणीत देती तो उत्तम होता।

२- संस्कृत छाया जोड़ने के द्वारा सभी प्राकृत शिक्षा सहज ही बन जाता।

३- प्रत्येक जैन वाङ्मय के प्रकाशन में मुख्य पारिभाषिक शब्दों के लक्षण अनिवार्य हैं।

४- पूज्य आचार्यों का नाम (शब्द) निक्षेप ही अधिकार परिभाषा है। तथापि उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त और गुण संक्रमण शब्दों को स्पष्ट (परिभाषित) करने के [illegible] अनेक शब्द रहे हैं।

५- गुणस्थान की गाथादि का भाव उनका उन्हें टिप्पण में देना समुचित होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला पुष्प २६

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

"सिद्धांतज्ञानदीपिका" हिन्दी टीका समन्वित

5213

टीकाकर्त्री :—

१०५ आर्यिका आदिमतीजी

परमपूज्य आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज संघस्था

प्रकाशक :—

दशमप्रतिमाधारी ब्र. लाडमल जैन

आचार्य शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

वाचना प्रमुख :
परमपूज्य आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज
श्री १०८ वर्धमानसागरजी महाराज

卐

सम्पादन :
ब्र० पं० रतनचन्द जैन मुख्तार

卐

सर्वाधिकार सुरक्षित : श्री आचार्य शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला
शान्तिवीरनगर, श्री महावीरजी (राजस्थान)

卐

प्रकाशन :
दीपावलि, वीर नि० सं० २५०७
नवम्बर, १९८०

प्रथमावृत्ति : १००० प्रति

卐

द्रव्यप्रदाता : ३०० प्रति
श्री चांदमल सरावगी चेरिटेबल ट्रस्ट गौहाटी

卐

प्राप्तिस्थान :
चाँदमल सरावगी एण्ड कम्पनी
महावीर मार्केट, फैन्सी बाजार,
गौहाटी (आसाम)

卐

मुद्रक :
नेमीचन्द बाकलीवाल
बाकलीवाल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"प्रकाशकीय"

तीर्थङ्कर वर्धमान-महावीरकी दिव्यध्वनिको महर्षि गौतम गणधरने द्वादशांगरूपमें निबद्ध किया। गौतमगणधरके पश्चात् धरसेनाचार्य तक वह द्वादशांगवाणी मौखिकरूपमें सुरक्षित थी, किन्तु धरसेनाचार्यसे पूर्व भद्रबाहु श्रुतकेवली तक तो द्वादशांगरूपमें तथा उसके पश्चात् क्रमशः अङ्गरूप वाणी का ह्रास होता गया एवं धरसेनाचार्यके समय वह अङ्गज्ञान एकदेशरूपसे ही था। आगे श्रुतका सम्पूर्ण विच्छेद ही न हो जावे इसी भयसे धरसेनाचार्यने पुष्पदंत-भूतबली आचार्य युगलको पढ़ाकर अपने पास सुरक्षित श्रुतांश उन्हें दे दिया जो आज भी उपलब्ध है, क्योंकि पुष्पदंत-भूतबली आचार्यने षट्खंडागमके रूपमें उसे लिपिबद्ध कर दिया।

वर्तमानमें उपलब्ध समस्त आर्षग्रन्थ प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग-रूप चतुरनुयोगमें विभाजित है। प्रायः चतुरनुयोगसम्बन्धी ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवाद सहित अनेकोंबार अनेकों संस्थाओंसे प्रकाशन हो भी गया है और हो भी रहा है। प० पू० आचार्य श्री शांतिसागरजी और आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजकी पुण्य स्मृतिमें स्थापित शांतिवीर दिगम्बर जैन संस्थान; शांतिवीरनगर, श्री महावीरजी ने भी इस ओर ध्यान दिया और प्रायः प्राचीन आचार्य प्रणीत ग्रन्थों का मूल एवं हिन्दी टीका सहित प्रकाशन कराया, कुछ ग्रन्थोंका मात्र हिन्दी अनुवाद ही प्रकाशित कराया है। संस्थानसे ग्रन्थ प्रकाशनका कार्य चल ही रहा था कि इसी बीच स्व० आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजके पुण्य स्मारकरूपमें आज से १२ वर्ष पूर्व आचार्य श्री शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमालाकी स्थापना संस्थानके अंतर्गत ही कर दी गई। इसकी प्रेरणा आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के शिष्य पू० १०८ मुनि भव्यसागरजी महाराजने दी और अपना अपूर्व सहयोग भी प्रदान किया। संस्थानमें अन्य और गतिविधियां प्रारम्भ हो जानेपर कार्यभार अधिक हो जानेसे ग्रन्थ प्रकाशन ग्रन्थमालासे ही होने लगे। शांतिवीर दिगम्बर जैन संस्थान और आचार्य शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थमालासे चारों अनुयोगसम्बन्धी जिन प्रमुख ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है वे इसप्रकार हैं—

प्रथमानुयोग—महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, शांतिनाथपुराण, पार्श्वनाथचरित्र, सम्यक्त्व कौमुदी, सुशीला उपन्यास, सप्तव्यसन कथा आदि।

करणानुयोग—त्रिलोकसार, गोम्मटसार कर्मकाण्ड (प्रस्तुत ग्रन्थ)। इसके अतिरिक्त सिद्धांतसार दीपक और लब्धिसार क्षपणासार प्रेस में तथा गोम्मटसार जीवकांड प्रकाश्य है।

चरणानुयोग—समन्तभद्राचार्य विरचित रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी पं० खूबचन्दजी शास्त्री कृत संस्कृतटीका (रत्नत्रयचन्द्रिका) का प्रथम भाग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यानुयोग—आचार्य कुन्दकुन्ददेव विरचित समयसार गाथाओंका हिन्दी अनुवाद। पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और अष्टपाहुड़ आदि का संस्कृत टीका सहित हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। द्रव्यानुयोग प्रवेशिका लघु पुस्तिका तथा आलाप पद्धतिका भी विस्तृत टीका सहित प्रकाशन किया है। समयसार कलशों पर लिखी गई शुभचन्द्राचार्य कृत टीकाके दो संस्करण प्रकाशित किये गये हैं।

इसप्रकार चारों अनुयोगसम्बन्धी ग्रन्थोंका प्रकाशन करके स्वाध्याय प्रेमीजनोंको आर्षसाहित्य के रूप ग्रन्थ उपलब्ध करवाकर हमें बड़ी प्रसन्नता है। चूंकि यह मैं पहले ही लिख आया हूं कि ग्रन्थ मालाकी स्थापनासे पूर्व ग्रन्थोंका प्रकाशन संस्थानसे ही होता था। ग्रन्थमालासे अब तक छोटे-बड़े सभी २८ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

ग्रन्थमालाके २६वें पुष्पके रूपमें करणानुयोग सम्बन्धी प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन करते हुए हम गौरवका अनुभव करते हैं। आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति विरचित गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थका आधुनिक हिन्दी अनुवाद का यह संस्करण आ० क० श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराज की संघस्था आर्यिका १०५ आदिमती माताजी ने तैयार किया। 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामा हिन्दी टीका की मूलकर्त्ता माताजी आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजकी ही शिष्या हैं। अत्यन्त अल्प अवस्थामें वैधव्य प्राप्त हो जानेपर आपने आत्मकल्याणका मार्ग चुना और १८ वर्ष पूर्व आर्यिका दीक्षा धारण की थी। ७ वर्ष पूर्व प्रस्तुत ग्रन्थकी टीका लिखना प्रारम्भ किया था जो लगभग ४ वर्षमें पूर्ण हुई। टीका के पूर्ण होनेपर पं० रतनचन्दजी मुख्तार सा० ने प० पू० आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज के सानिध्यमें इसका वाचन कर टीका को परिष्कृत किया है। प्रेसकॉपी का कार्य संघस्थ मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराजने डेढ़ वर्षके अहर्निश परिश्रमसे तैयार की है। इसप्रकार माताजी द्वारा लिखित टीका का प्रकाशन आ० क० श्री श्रुतसागरजी महाराजके संरक्षकत्वमें मुनि श्री वर्धमानसागरजी के सहयोगसे पं० रतनचन्द्रजी मुख्तारके सम्पादकत्वमें ग्रन्थमालासे हो रहा है। आशा है जैनदर्शनके विद्यार्थियों और स्वाध्यायीजनोंको इससे अत्यन्त लाभ मिलेगा।

ग्रन्थके सम्बन्धमें 'अन्तर्ध्वनि' शीर्षकके रूपमें पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागरने आद्य-वक्तव्य लिखा है। यद्यपि आद्यवक्तव्य संक्षिप्त अवश्य है तथापि ग्रन्थसम्बन्धी महत्ताको प्रदर्शित करने में पूर्णतया सक्षम है। सम्पादकीय एवं प्रस्तावना स्वयं सम्पादक महोदयने लिखी है। हम उक्त दोनों विद्वानोंके अत्यन्त आभारी हैं। दोनों ही विद्वान् जैन जगतके ख्यातिप्राप्त विद्वान् हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन यद्यपि ग्रन्थमालासे हुआ, किन्तु १००० प्रतिमें से ३०० प्रतिके लिये जयपुर में जब स्व० श्री रायसाहब चांदमलजी सरावगीके बड़े सुपुत्र श्रीमान् गणपतरायजी सरावगी से मैंने कहा तो उन्होंने शीघ्र ही अपने पूज्यपिताजी की पुण्य स्मृति में स्थापित "श्री चांदमल सरावगी चेरिटेबल ट्रस्ट" से आर्थिक सहयोग प्रदान करने की सहर्ष स्वीकारता प्रदान कर दी। गणपतरायजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने पिताजी की तरह ही समाज सेवा एवं धर्म सेवामें आगे हैं और साहित्य प्रकाशनादि धार्मिक कार्यों में अत्यन्त उदारता के साथ सहयोग प्रदान करते रहते हैं। आपके द्वारा प्राप्त अत्यन्त उदार आर्थिक सहयोगसे इस विशालतम सिद्धान्त ग्रन्थका प्रकाशन कर ग्रन्थमाला ने लागत मात्रसे भी अत्यन्त अल्प मूल्य रखकर तत्त्व जिज्ञासुओं को तत्त्व ज्ञानके लिये जो लाभ पहुंचाया है वह सब आपकी परम उदारताका ही प्रतिफल है। हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। जिनवाणीके प्रचार-प्रसारकी अत्युत्कट भावनासे आपके द्वारा प्रदत्त यह विशिष्ट सहयोग अनुकरणीय एवं स्तुत्य है।

ग्रन्थके मुद्रणका कार्य अत्यन्त सुन्दरतासे बाकलीवाल प्रिन्टर्स मदनगंज–किशनगढ़ वालोंने यथाशीघ्र किया जिसके लिये वे धन्यवादार्ह हैं। ग्रन्थमें संदृष्टियोंकी बहुलता होनेपर भी बड़े धैर्य एवं परिश्रमसे ग्रन्थ मुद्रित करनेमें प्रेसके मालिक श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल और उनके सुपुत्र गुलाबचन्द भूपेन्द्रकुमार बन्धु युगलने एवं प्रेस परिवारने जो तत्परता से काम किया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

ब्र० लाडमल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

आत्मोपलब्धि हेतु पंचमहाव्रतरूप उत्कृष्ट चारित्रके पालयिता भोगाकांक्षादि प्रिय प्रतीत होनेवाली सांसारिक प्रवृत्तियों से विरत हो आत्मासाधनामें संलग्न परम-तपस्वीरत्न, योगीन्द्रशिरोमणि, परमनिस्पृह-व्यक्तित्व, प्रशांतमूर्ति, धर्मदिवाकर, वात्सल्य-मूर्ति विश्ववंद्य, परम्परागत तृतीयपट्टाधीश, आध्यातिमकसंत प. पू. प्रातःस्मरणीयआचार्य श्रेष्ठ १०८ श्री धर्मसागरजी महाराजके पुनीत कर कमलोंमें सविनय सर्मपित ।

—आर्यिका आदिमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोम्मटसार कर्मकाण्ड—

प० पू०, प्रातः स्मरणीय, प्रशान्तमूर्ति, परम्परागत आचार्य
१०८ श्री धर्मसागरजी महाराज

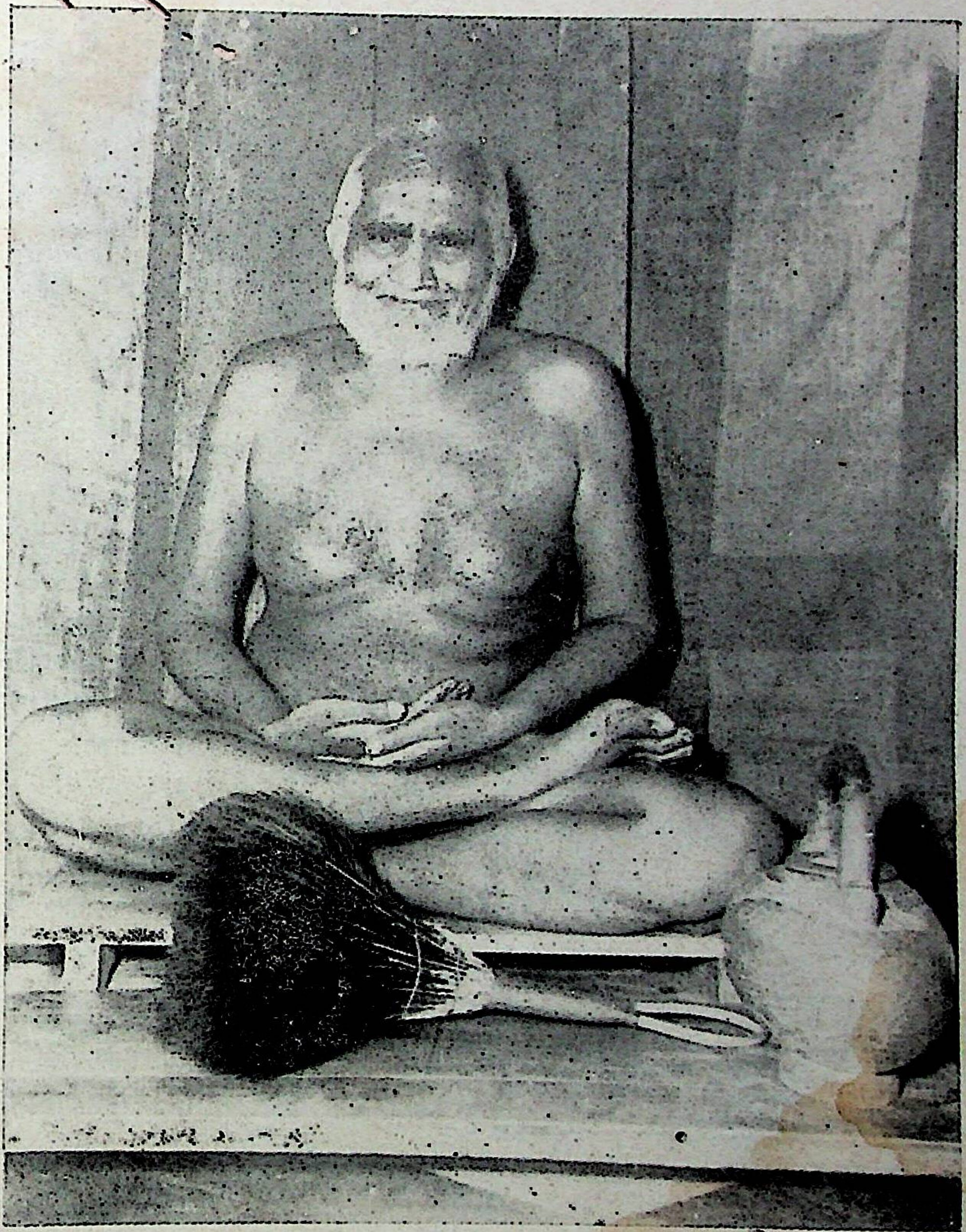

जन्म	मुनिदीक्षा	आचार्यपद
...शु. १५ वि. सं. १९७०	का. शु. १४, वि. सं. २००८	...वि. सं० २०२५
...र	फुलेरा	...रियाणे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभाशीर्वाद

[परम पूज्य प्रातःस्मरणीय प्रशांतमूर्ति १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज]

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आर्यिका आदिमतीजीने गोम्मटसारकर्मकांड की नवीन हिन्दीटीका लिखी है, हमारा उन्हें शुभाशीर्वाद। 'आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती' विरचित यह ग्रन्थ करणानुयोग-सम्बन्धी कर्मसिद्धान्तके सारको प्रकटित करनेवाली अनुपमकृति है। इसके अध्ययन, मनन व चिंतनसे प्रत्येक प्राणी संसारपरिभ्रमणके कारणोंको ज्ञातकर उनसे अपनी आत्माको परिमुक्त करनेमें प्रयत्नशील होगा ऐसा हमारा विश्वास है। प्राचीन आचार्यों के द्वारा प्रणीत ग्रन्थोंकी इसप्रकार नवीन टीका लिखकर जिनवाणीका प्रसार-प्रचार तो श्रेष्ठकार्य है। [illegible] उन्हें हमारा आशीर्वाद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"मंगलाशीर्वचन"

(परम पूज्य प्रात:स्मरणीय १०८ आचार्य श्री श्रुतसागरजी महाराज)

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार 'कर्मकाण्ड' कर्मसिद्धांतका साररूपसे प्रतिपादन करनेवाला सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उस ग्रन्थकी नवीन हिन्दी टीका को आचार्यश्री शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला श्री शांतिवीरनगरसे प्रकाशित किया जा रहा है यह हर्षका विषय है। इस मंगलमय प्रसंगपर प्रस्तुत टीकाको लिखनेकी प्रेरणा देनेवाले, टीका लिखनेवाले, टीका का संशोधन-सम्पादन करनेवाले, प्रेसकॉपी तैयार करनेवाले एवं प्रकाशन सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था करनेवाले; इन सभीके प्रति हमारा यही आशीर्वाद है कि आर्षग्रन्थोंके प्र... में निरंतर इसीप्रकार प्रयत्नशील रहें जिससे आर्षवाणी चिरकाल तक तत्त्वजिज्ञासु... उपलब्ध होती रहे। जिनवाणी म... यही सेवा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

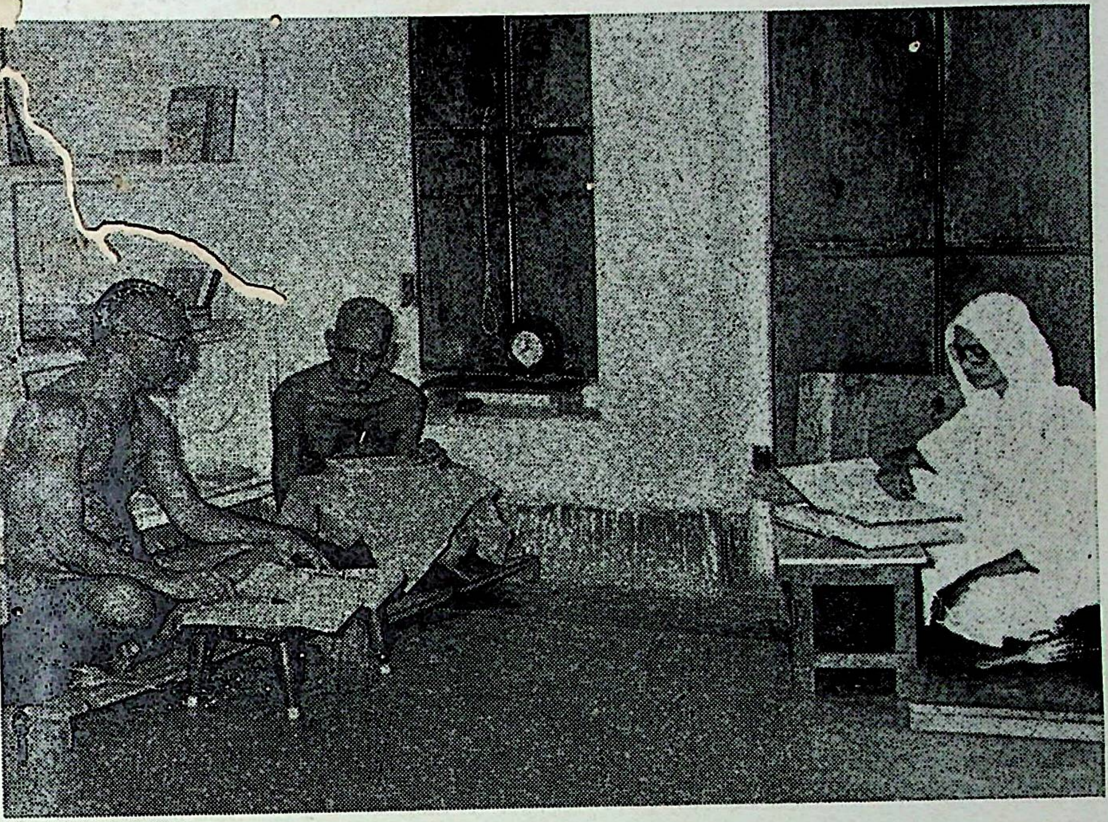

अजमेर नगर में गोम्मटसार ग्रन्थ की नवीन टीका का वाचन करते हुए श्रुतनिधि आ. क. श्री श्रुतसागरजी महाराज, मुनि श्री वर्धमानसागरजी एवं आर्यिका श्री आदिमतीजी

द है।

...नन्दपुर कालू में ग्रन्थ की नवीन टीका वाचन करके
...० श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार आ० क० श्री के सानिध्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आशीर्वचन"

(पूज्य आर्यिकारत्न १०५ ज्ञानमती माताजी)

मेरी अत्यन्त हार्दिक इच्छा थी कि गोम्मटसार कर्मकाण्डका संस्कृत टीकाके आधारसे शुद्ध हिन्दी भाषामें अनुवाद हो, जिसमें मराठी भाषामें अनुवादित कर्मकांड के अनुसार 'बंध-अबंध-बंधव्युच्छित्त्यादि' सम्बन्धी संदृष्टियां भी संलग्न हों जिससे कि कर्मसिद्धांतका यह ग्रन्थ सर्वसाधारणके भी स्वाध्याय योग्य सरलतम ग्रन्थ बन जावे। अतः सन् १९७३ के चातुर्मासमें संघस्थ अपनी प्रियशिष्या आर्यिका आदिमतीको इस कार्यके लिये प्रेरणा दी तथा उन्हें अनुवाद करनेकी शैली भी समझा दी। साथ ही मैंने यह भी कहा कि इससे तुम्हारा स्वाध्याय भी परिमार्जित होगा और लेखन कार्यमें एकाग्रता होनेसे शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहेगा, क्योंकि धर्मध्यानमें मन एकाग्र करनेसे अशुभकर्म स्वतः शिथिल हो जानेसे कोई भी व्याधि शरीरपर अपना प्रभाव अधिक नहीं डाल सकती। अनुवाद से बढ़कर अधिक एकाग्रता अन्य किसी कार्यमें नहीं हो सकती यह स्वयं मेरा भी अनुभव है।

मेरे पास रहते हुए उनका यह अनुवादकार्य लगभग आधा हो चुका था, पुनः पूज्य आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजके संघमें रहते हुए उन्होंने यह कार्य निर्विघ्न संपन्न किया है तथा पूज्य महाराज श्री के आशीर्वादसे उसका प्रकाशन भी हो रहा है, यह सुनकर मुझे अतीव प्रसन्नता है। अपने द्वारा लगाये गए पौधमें फलोंको लगते देखकर भला किसे प्रसन्नता नहीं होगी?

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ सभी करणानुयोगके स्वाध्याय प्रेमियोंके लिए सरल और सुबोध होगा। आर्यिका आदिमती आगे भी इसीप्रकार ग्रन्थोंके अनुवादकार्यमें अपने समयका सदुपयोग करे तथा अपने ज्ञानको परिमार्जित करते हुए समाजको कुछ न कुछ देती रहें यही मेरा उनके लिए शुभाशीर्वाद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर्ध्वनि

गिरिनगर (गिरनारक्षेत्र) की गुफामें रहनेवाले धरसेनाचार्यके मनमें कालदोषसे हीयमान श्रुत-परम्पराको देख यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि वर्तमान श्रुतको लिपिबद्ध नहीं किया तो इसकी परम्परा विच्छिन्न हो जावेगी। फलतः उन्होंने महिमा नगरीके यतिसम्मेलनमें उपस्थित साधुओंके पास इस आशयका पत्र भेजा कि "मेरी आयु उत्तरोत्तर क्षीण हो रही है अतः किन्हीं दो बुद्धिमान साधुओं को मेरे पास भेजिये, जिन्हें मैं अपने आपमें स्थित सत्कर्मप्राभृतग्रन्थका उपदेश कर सकूं; अन्यथा मेरे पश्चात् वह विद्या लुप्त हो जावेगी। महिमानगरीके यतिसम्मेलनमें उपस्थित मुनियोंने धरसेनाचार्यके पत्रपर बड़ा गौरव किया और दो बुद्धिमान् साधुओंको गिरिनगरकी ओर भेजा। वे दो साधु पुष्पदन्त और भूतबलि नामसे जाने जाते हैं।

गिरिनगर पहुंचनेपर धरसेनने दोनों साधुओंको बुद्धि परीक्षाकर उन्हें सत्कर्मप्राभृतका अध्ययन कराया तथा अध्ययनके पश्चात् उन्होंने ग्रन्थरचना की। पुष्पदन्त और भूतबली आचार्यकी ये रचनाएं जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध बंधसामित्तविचय, वेयणाखंड, वग्गणाखंड और महाबन्ध नामसे प्रसिद्ध हुईं। उपर्युक्त छहों खण्ड मिलकर षट्खण्डागम कहलाते हैं। वीरसेनस्वामिने इनपर धवलानामकी टोका लिखी। नेमिचन्द्राचार्यने इन छह खण्डोंकी अच्छीतरह साधना की थी। कर्मकाण्डमें उन्होंने स्वयं लिखा है—

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

अर्थात् जिसप्रकार चक्रवर्ती अपने चक्ररत्नसे भरतक्षेत्रके छहखण्डोंको निर्विघ्नरूपसे साधता है—अपने आधीन करता है उसीप्रकार मैंने अपने बुद्धिरूपी चक्ररत्नसे छहखण्डोंसहित परमागमको साधा है—अपने आधीन किया है।

नेमिचन्द्राचार्य देशीयगणके प्रसिद्ध आचार्य थे। गुरुके रूपमें इन्होंने आचार्य वीरनन्दी, अभय-नन्दी, इन्द्रनन्दी तथा कनकनन्दिका बड़ी श्रद्धाके साथ उल्लेख किया है। कुछ उदाहरण देखिये—

जस्स य पायपसायेणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥क. का. ४३६॥

अर्थात् जिनके चरणप्रसादसे वीरनन्दी और इन्द्रनंदीका वत्स अनंतसंसाररूपी सागरसे उत्तीर्ण हो गया, उन अभयनन्दीगुरुको मैं नमस्कार करता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णमिऊण अभयणंदि सुदसायर पारगिंदणंदिगुरुं ।
वर वोरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ।।७८५।।कर्मकाण्ड।।

अर्थात् अभयनन्दिको, श्रुतसागरके पारगामी इन्द्रनन्दि गुरुको और वीरनन्दीको नमस्कार कर प्रकृतियोंके प्रत्यय–कारणोंको कहूंगा ।

वर इंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयल सिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ।।३९६।।कर्मकाण्ड।।

अर्थात् उत्कृष्ट इन्द्रनन्दी गुरुके पास समस्त सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दीगुरुने सत्त्वस्थान का कथन किया है ।

इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण ।
रइयो तिलोयसारो खमंतु बहुगुणायरिया ।।१०१८।।त्रिलोकसार।।

अर्थात् अभयनन्दीके वत्स नेमिचन्द्र मुनिने यह त्रिलोकसार ग्रन्थ रचा है, बहुतगुणोंके धारक आचार्य क्षमा करें ।

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदि सिस्सेण ।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ।।६५२।।क्षपणासार।।

अर्थात् वीरनंदी और इन्द्रनन्दीके वत्स एवं अभयनन्दीके शिष्य अल्पज्ञानीके नेमिचन्द्रने दर्शन-लब्धि और चारित्रलब्धिका कथन किया है ।

श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवला, जयधवला तथा महाधवला टीकाएं प्रमेयबहुल टीकाएं हैं । प्रत्येक प्रमेयका वर्णन उनमें विस्तृत रीतिसे किया गया है । धीरे-धीरे इन टीकाओंमें प्रवेश पाना अल्प-मेधावी मानवोंको जब कठिन दिखने लगा तब नेमिचन्द्राचार्यने गंगवंशीय राजा राचमल्लके प्रधानमंत्री एवं सेनापति चामुण्डरायके आग्रहसे गोम्मटसार की रचना की । अपनी वीरताके कारण चामुण्डराय 'वीरमार्तण्ड' उपाधिसे विभूषित थे । श्रवणबेलगोलाके विन्ध्यगिरि पर्वतपर जगत्प्रसिद्ध बाहुबली स्वामीकी ५७ फुट ऊंची प्रतिमा की प्रतिष्ठा इन्हीं चामुण्डरायने शकसम्वत् ६०० और विक्रमसम्वत् १०३५ में करवायी थी । चामुण्डरायका घरू नाम गोम्मट था । इसलिये उनके द्वारा प्रतिष्ठापित प्रतिमा गोम्मटस्वामि नामसे प्रसिद्ध हो गई । नेमिचन्द्राचार्यके द्वारा विरचित गोम्मटसार भी उन्हीं चामुण्डरायके नामसे प्रचलित हुआ है जिसका अर्थ होता है गोम्मटके लिये (चामुण्डरायके लिये) लिखा हुआ धवलादिग्रन्थोंका सार । इस संदर्भकी एक कथा प्रसिद्धिमें है कि—"एकबार नेमिचन्द्राचार्य षट्-खण्डागमग्रन्थोंका स्वाध्याय कर रहे थे उसी समय चामुण्डराय उनके दर्शनके लिये आये । चामुण्डराय के आनेपर नेमिचन्द्राचार्यने स्वाध्याय बन्द कर दिया । चामुण्डरायने पूछा कि स्वाध्याय क्यों बन्द कर दिया गया । नेमिचन्द्राचार्यने कहा कि आगमग्रन्थोंके स्वाध्यायका अधिकार गृहस्थोंको नहीं है तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनका ज्ञान हम गृहस्थोंको कैसे हो सकता है ? चामुण्डरायके इस प्रश्नके उत्तर स्वरूप नेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसारकी रचना की । उक्त कथाका सार मैं तो यह समझा हूं कि षट्खण्डागमकी गूढ़ चर्चाएं सामान्य मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकता इसलिये उन गूढ़ चर्चाओंका सरलीकरण करनेके लिये नेमिचन्द्राचार्यने प्रयास किया और प्रयासका नाम गोम्मटसार प्रचलित हुआ ।

गोम्मटसार दो भागोंमें विभक्त है—जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड । जीवकाण्डमें महाकर्मप्राभृत के सिद्धान्तसम्बन्धी जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड और वर्गणाखण्डका वर्णन किया गया है और कर्मकाण्डमें महाबन्धका । कर्मकाण्डमें महाबन्धके अतिरिक्त षट्खण्डागमके प्रकृतिसमुत्कीर्तन तथा जीवट्ठाणचूलिका आदिसे भी कितना ही विषय लिया गया है । जीवकाण्डमें बीसप्ररूपणाओंके माध्यमसे संसारी जीवोंका वर्णन किया गया है और कर्मकाण्डमें कर्मोंकी बन्ध, उदय व सत्त्व आदि अवस्थाओंका वर्णन प्रस्तुत किया गया है । जीवकाण्डमें धवलाकी विभिन्न गाथाएं संकलित हैं और उनका संकलन इस सुन्दरतासे किया गया है कि वे ग्रन्थका अङ्ग बन गई हैं ।

ग्यारहवीं शताब्दिके विद्वान् आचार्यनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीने उक्त जीवकाण्ड और कर्मकांड के अतिरिक्त लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार ये तीन ग्रन्थ भी बनाये हैं । प्रसन्नताकी बात है कि उक्त पांचों ही ग्रन्थ हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशित हो चुके हैं और तत्त्वजिज्ञासुजनोंके स्वाध्यायमें आ रहे हैं । त्रिलोकसारका नवीन संस्करण पूज्य श्री १०५ विशुद्धमति माताजीके द्वारा संपादित और अनूदित होकर अनेक संदृष्टियोंके साथ शांतिवीर नगरसे प्रकाशित हुआ है । जीवकाण्ड व कर्मकाण्डके नवीनसंस्करण सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी के द्वारा सम्पादित तथा अनूदित होकर केशववर्णीकृत टीकाके साथ भारतीयज्ञानपीठसे प्रकाशित हुए हैं । लब्धिसार-क्षपणासार रायचन्द्रग्रन्थमालासे तथा जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्तासे प्रकाशित हो चुका है ।

कर्मकाण्डका प्रस्तुतसंस्करण करणानुयोगके विशिष्ट ज्ञाता श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार सहारनपुरके सम्पादकत्वमें अनेक संदृष्टियोंके साथ प्रकाशित हो रहा है । सम्पादकने इस टीकामें धवला, जयधवला तथा महाबन्ध आदिसे विषयोंका मिलानकर विषयको स्पष्ट किया है । ग्रन्थकी टीका आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज संघस्थ १०५ आर्यिका श्री आदिमती माताजीने लिखी है ।

कर्मकाण्डमें प्रतिपादित विषयोंसे यह सुनिश्चित कहा जा सकता है कि यह कर्मसाहित्यका संक्षेपसे साङ्गोपाङ्ग वर्णन करनेवाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । जबतक कर्मप्रकृतियोंके आस्रव-बन्ध तथा उनके कारणोंका परिज्ञान नहीं होता तबतक उनकी निवृत्तिका उपाय नहीं किया जा सकता है ।

कर्मकाण्ड पाठ्यग्रन्थ है । पहले यह शास्त्री कक्षामें सम्पूर्ण था, किन्तु अब विषयोंकी बहुलता और पं० टोडरमलजी द्वारा विरचित टीकाकी अनुपलब्धिके कारण पठन-पाठनमें दुरूहताका अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने लगा इसलिये मात्र बन्धोदयसत्त्वाधिकार अर्थात् ३५७ गाथा तक रक्खा गया है। पठन-पाठन छूट जानेसे शेष भागसे प्रायः विद्वद्वर्ग और आधुनिक छात्र अपरिचित रह जाते हैं।

श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार पूर्वभवके संस्कारी जीव हैं किसी पाठशाला या विद्यालयमें क्रमशः अध्ययन न होनेपर भी इन्होंने मात्र स्वाध्यायके द्वारा सिद्धान्तग्रन्थोंमें अच्छा प्रवेश प्राप्त किया है। धवल, जयधवल तथा महाबन्ध ग्रन्थोंके संपादन और प्रकाशनमें सम्पादक विद्वानोंने आपकी सम्मतियों एवं सुझावोंको आदरपूर्वक स्वीकार किया है। आपने कर्मकाण्डके इस संस्करणका धवलादिग्रन्थोंके आलोडनके पश्चात् सम्पादन किया है। प्रस्तुत संस्करणमें प्रत्येक विषयको संदृष्टियोंके द्वारा स्पष्ट किया है अतः स्वाध्याय प्रेमियों तथा छात्रोंके लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज आपकी अध्ययनशीलता, प्रतिभा और ग्रन्थसंपादन-शक्तिसे सुपरिचित हैं इसीलिये १०५ आर्यिका आदिमतीजी द्वारा लिखित टीका का सम्पादन आपसे करवाकर कर्मकाण्डके इस सुपरिष्कृत संस्करणके प्रकाशनकी योजना की है। आचार्य कल्प श्री श्रुत-सागरजी महाराज भी यथानाम तथा गुण हैं। करणानुयोगमें आपका अच्छा प्रवेश है। प्रत्येक विषय को आपने भलीभांति जमाकर रक्खा है। कर्मकाण्डके प्रस्तुतसंस्करणका प्रकाशन आपकी ही प्रेरणाका सुफल है। ज्ञात हुआ है कि मुख्तार साहब श्री रतनचन्द्रजी जीवकाण्डका भी ऐसा संस्करण टीका व सम्पादन स्वयं करके तैयार कर रहे हैं। वृद्धावस्थामें उनकी इस श्रुताराधनाको देखकर हृदयमें बड़ी प्रसन्नता होती है। लब्धिसार-क्षपणासारका संशोधित-परिष्कृत नवीन टीका सहित सम्पादन स्वयं मुख्तार साहब कर चुके हैं जो कि इसी आचार्य शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला शांतिवीरनगरसे शीघ्र प्रकाश्य है। आशा है विद्वान् सम्पादककी इन रचनाओंको विद्वज्जगत्में पूर्ण सम्मान प्राप्त होगा।

आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजका मुझपर अनुग्रह है कि वे शांतिवीरनगरसे प्रकाशित होनेवाले साहित्यपर कुछ पंक्तियां लिखनेका मुझे अवसर देते हैं इस अनुग्रहके लिये मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

सागर
२-६-१९८०

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"पुरोवाक्"

बारह-अंगग्गिज्झा वियलिय-मल-मूढ़-दंसणुत्तिलया ।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं ॥

अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान-महावीरकी दिव्यध्वनिसे निसृत, गौतमगणधर द्वारा द्वादशांग-रूपसे ग्रथित तथा परम्परागत अर्वाचीन व आरातीय आचार्योंके द्वारा लिपिबद्ध जिनवाणीको प्रथम-करण-चरण व द्रव्यानुयोगरूप अनुयोगचतुष्टयमें विभाजित किया गया है। अनुयोगचतुष्टयमें करणानु-योगसम्बन्धी कषायपाहुड़, षट्खंडागम, महाबंधादि विशिष्टग्रन्थोंका वीरप्रभुकी वाणीसे साक्षात् संबंध रहा है। भगवान् महावीरकी वाणीसे साक्षात् सम्बद्ध भगवद् गुणधराचार्य एवं पूज्यपाद भूतबली-पुष्पदंताचार्य प्रणीत इन ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन करते हुए सिद्धान्तचक्रवर्तित्वको प्राप्त श्री नेमि-चन्द्राचार्यने साररूपमें गोम्मटसारादि ग्रन्थोंका प्राकृतभाषामें गाथा छंदोबद्ध सृजन किया है। आचार्य-देवकी कर्मसिद्धान्त व कर्मक्षपणसम्बन्धी अनुपम रचनाएं संस्कृत टीकाओं एवं पं० प्रवर टोडरमलजी कृत ढुंढारीभाषासहित लगभग ६० वर्ष पूर्व कलकत्तासे प्रकाशित हुई थीं। इसीके आधारसे प्रायः समाजके अध्येताजन स्वाध्याय-मनन व चिंतन करते रहें हैं, किन्तु इन ग्रन्थोंके शुद्ध आधुनिक हिन्दी टीकासमन्वित संस्करणोंके प्रकाशनकी आवश्यकता बराबर बनी हुई थी। इस दिशामें रायचन्द्रग्रन्थ-मालासे गोम्मटसारकर्मकाण्ड-जीवकाण्डादि ग्रंथोंका शुद्ध हिन्दी अनुवाद २-३ संस्करणोंमें प्रकाशित हुआ है, परन्तु वह उद्देश्यकी सम्पूर्ति आंशिकरूपमें ही करता है, क्योंकि उन संस्करणोंमें नेमिचन्द्राचार्य के उक्तग्रन्थोंकी संस्कृतटीकाकी अक्षरशः अनुवादित टीका न होकर साररूप कथन पाया जाता है। उसीं संक्षिप्त हिन्दीटीकाके आधारपर विद्वद्जगत्में पठन-पाठन चलता रहा। विशेष जिज्ञासुओंको मात्र उक्तग्रन्थोंकी पं० टोडरमलजीकृत टीका ही उपलब्ध थीं। पूज्य आर्यिका ज्ञानमतिमाताजीका भी लक्ष्य इस ओर गया उन्होंने समाजकी चिरअभिलषित आवश्यकताकी सम्पूर्ति हेतु अपनी मनोभावना निकटस्थ लोगोंमें व्यक्त की, किन्तु वह भावना मात्र व्यक्त होकर ही रह गई।

सन् १९७२ में परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराजके शिष्य मुनियुगल (पूज्य १०८ श्री सम्भवसागरजी व वर्धमानसागरजी महाराज) ५ आर्यिकाओं (ज्ञानमतीजी, मैं, श्रेष्ठमतीजी, रत्नमतीजी व यशोमतीजी) का तथा क्षुल्लिका संयममतीजीका चातुर्मास नजफगढ़ (दिल्ली) में हुआ था। चातुर्मासप्रवासमें पुनः एकदिन माताजीने अपने उपर्युक्त विचारोंको इसप्रकार रखा कि "आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा विरचित गोम्मटसार-त्रिलोकसारादि ग्रन्थोंका आधुनिक हिन्दीमें अनुवाद होकर उनका प्रकाशन हो जावे तो नवीनपीढ़िको इन ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें सहायता मिलेगी और उनकी करणानुयोगी ग्रन्थोंके प्रति रुचि भी जागृत होगी। गणितप्रधान इन ग्रन्थोंके स्वाध्यायका जो अभावसा होता जा रहा है उसमें प्रवृत्ति बढ़ेगी।" इन्हीं दिनों संघमें जैनभूगोल सम्बन्धी त्रिलोक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पण्णत्ति-त्रिलोकसारादि ग्रन्थोंका स्वाध्याय भी चल रहा था अतः सर्वप्रथम त्रिलोकसारकी पं० प्रवर टोडरमलजी कृत ढुंढारीभाषाका शुद्ध हिन्दी अनुवाद करनेका विचार हुआ, किन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवाचार्यकी संस्कृतटीकाके आधारसे आर्यिका विशुद्धमतीजीके द्वारा हिन्दीटीका होकर परम पूज्य आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजके आशीर्वादसे उसका प्रकाशन आचार्य श्री शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला, श्री शांतिवीर नगरसे हो चुका है तब त्रिलोकसारग्रन्थका कार्य करनेके विचारोंको स्थगित किया गया।

इस चर्चाके कुछ दिन पश्चात् माताजीकी प्रेरणा मिली कि "आदिमतीजी त्रिलोकसारका कार्य तो हो चुका। अब तुम्हें गोम्मटसारकर्मकाण्डका कार्य प्रारम्भ करना है।" इस प्रेरणात्मक आदेशके साथ ही मार्गदर्शन भी मिला कि संस्कृतटीका एवं मूलमें दी गई संदृष्टियोंसहित आवश्यकता पड़नेपर पं० टोडरमलजी कृत टीका का आधार लेते हुए गोम्मटसारकर्मकाण्डकी ही मराठी टीकासे संदृष्टियोंको यथास्थान समायोजित करके शुद्ध हिन्दीमें नवीन अनुवाद करना है।

इस महत्कार्यको करनेमें माताजी स्वयं सक्षम थीं, क्योंकि वे न्याय, व्याकरण, साहित्य, अध्यात्म एवं सिद्धान्तविषयोंकी मर्मज्ञा हैं। उन्होंने कष्टसहस्री कहे जानेवाले अष्टसहस्री जैसे न्यायग्रन्थ, कातन्त्र व जैनेन्द्रप्रक्रिया सदृश व्याकरणग्रन्थ, अध्यात्मसम्बन्धी नियमसार तथा करणानुयोगी आस्रवत्रिभंगी व भावत्रिभंगी आदि ग्रन्थोंका अनुवाद किया है और न्यायकुमुदचन्द्रादि अनेकग्रन्थोंका अनुवाद कार्य प्रारम्भ है। स्वतंत्ररूपसे भी न्यायसार, त्रिलोकभास्करादि विविध विषयोंके प्रतिपादक विभिन्न ग्रन्थों का सृजन भी किया है। स्तुति रचना भी आपका प्रियविषय रहा है अतः समाधिशतक, इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रहादि ग्रन्थोंका पद्यानुवाद एवं स्वतन्त्ररूपेण अनेक स्तवन भी प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी वक्तृत्वकलाका भी समाजमें महत्वपूर्ण स्थान है। चुम्बकीयआकर्षणयुक्त आपकी मृदुवाणी कल्याणेच्छु भव्यप्राणीको सहज ही प्रेरित करती है। फलस्वरूप अनेकों भव्यप्राणियोंने आपसे प्रेरणा प्राप्तकर आचार्य श्री शिवसागरजी एवं आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराजसे मुनि-आर्यिकादि दीक्षाएं ग्रहणकर आत्मसाधनाका मार्ग प्रशस्त किया है। माताजीने अपने निकटस्थ लोगोंको जैनदर्शनका सर्वाङ्गीण अध्ययन स्वयं कराया। फलस्वरूप आर्यिका जिनमतीजी भी विदुषी आर्यिका हैं, उन्होंने भी आपकी ही प्रेरणा प्राप्तकर 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' का अनुवाद किया है। इन्हीं आर्यिकाद्वय (ज्ञानमतीजी एवं जिनमतीजी) के सानिध्यमें मुझे जैनदर्शनके विभिन्न विषयोंका अध्ययन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है।

वास्तवमें परमविदुषी ज्ञानमती माताजीके मुझपर अनन्त उपकार हैं, क्योंकि अल्पावस्थामें ही वैधव्य जीवन प्राप्त हो जानेपर आत्मसाधनाके मार्गपर अग्रसर होनेके लिये हस्तावलंबन स्वरूप जिन मातृवत्सला, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, हितमित मृदु उपदेष्ट्री आर्यिकाकी खोज थी, उसकी सम्पूर्ति माताजी के मिलनेपर ही हो गई। माताजीके सर्वप्रथम दर्शन करके ऐसा लगा कि चिरकालसे वियुक्त जननी ही मिल गई हो। आप बालब्रह्मचारिणी हैं। आपकी ही असीम प्रेरणाओंसे प्रेरित होकर सन् १९६२ में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीकर (राज०) में परम पूज्य प्रातःस्मरणीय चारित्रशिरोमणि वात्सल्यहृदय गुरुवर्य आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजसे स्त्रियोचित उत्कृष्टसंयमरूप आर्यिका दीक्षा ग्रहण करनेका सुमंगलावसर प्राप्त हुआ।

जैसे कि मैंने पहले ही लिखा है कि इस महत्कार्यके करनेमें माताजी स्वयं सक्षम थीं तथापि उनके जीवनकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने निकटस्थ रहनेवाले लोगोंकी भी सर्वांगीण उन्नतिकी कामना की है। यही कारण था कि ज्ञानाराधनामें कभी भी उन्होंने किसी को पीछे नहीं रखा। इसी उदारताके परिणामस्वरूप माताजीने मुझे प्रेरणा दी। मुझे भी उनकी इस महदनुकम्पा एवं आदेशात्मक आशीर्वादको पाकर प्रसन्नता हुई तथा स्वयं माताजीसे इस महत्तमकार्यका मंगलाचरण-पूर्वक शुभारम्भ करवाकर अनुवाद लिखना प्रारंभ किया। उनके निर्देशनमें ही यह कार्य लगभग आधा हो चुका था, तत्पश्चात् कारण पाकर सन् १९७५ में माताजीका सानिध्य छूट गया और अनेकों कारणों से अनुवादकार्य भी बन्द हो गया। सन् १९७६ में जब परम पूज्य आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजका ससंघ चातुर्मास बड़ौत (उ० प्र०) में था तब एक दिन आर्यिका श्रुतमतीजी (जो ज्ञानमती माताजीसे प्रेरणा पाकर सन् १९७४ में आचार्य श्री धर्मसागरजीसे आर्यिका दीक्षा ग्रहणकर चुकी थीं) ने विशेष आग्रह पूर्वक कहा कि "माताजी! अम्मा (ज्ञानमतीजी) ने नजफगढ़में आपको जो जिनवाणी सेवाका कार्य सौंपा था वह अधूरा ही रहेगा क्या ?" श्रुतमतीजी के इस वाक्यको सुनकर अन्तस्करणमें प्रेरणा ही मिली हो और कार्य प्रारम्भ हुआ। सन् १९७७ के मदनगंज-किशनगढ़ चातुर्मासमें इस महत्कार्यकी सम्पूर्ति हुई, क्योंकि जिस कार्यकी प्रेरणा परमोकारिणी माताजीसे मिली हो और फिर जिसका मंगलाचरण स्वयं उन्होंने किया हो वह कार्य अधूरा कैसे रह सकता था।

मदनगंज-किशनगढ़के चातुर्मासके पश्चात् परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज का ससंघ बिहार अजमेरकी ओर हुआ, आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज भी साथ ही थे। अजमेर पहुंचनेपर मैंने व श्रुतमतीजीने अभीक्ष्णस्वाध्यायनिरत, वात्सल्यमूर्ति, करणानुयोगमर्मज्ञ, श्रुतनिधि परम पूज्य आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजसे गोम्मटसारकर्मकाण्डकी लिखी गई नवीनटीकाका अवलोकन करने हेतु विनम्र प्रार्थना की। पूज्य महाराजश्री ने प्रार्थनाको स्वीकार किया और महती कृपा करके टीकाको देखना प्रारम्भ किया। टीका वाचनके लिये जब मैंने पूज्य मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराजसे भी निवेदन किया तो वे सहर्ष इस कार्यमें संलग्न हो गये। इसप्रकार आचार्य कल्प श्रीके समक्ष जब लगभग १५० गाथाओंका वाचन हो चुका तो पूज्य महाराजश्रीने हार्दिक भावना व्यक्तकी कि इस टीकाको पं० रतनचन्दजी मुख्तार सा० देखेंगे तो और भी सुन्दर होगा, क्योंकि वर्तमानमें वे करणानुयोगके विशिष्ट विद्वान् हैं। इसी भावनाभिव्यक्तिके साथ महाराजश्री ने यथाशीघ्र पंडितजीके पास पत्र द्वारा समाचार दिलवाया, उनकी सहर्ष स्वीकृति आ जानेपर उनके पास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व १५० गाथाएं भेज दी गईं तथा आगेका कार्य महाराज श्रीके सानिध्यमें यथावत् चलता रहा। लगभग ३०० गाथा पर्यंत कार्य हुआ होगा कि आचार्य कल्प श्रीका एवं अजितसागरादि ६ मुनिराजका ससंघ चातुर्मास आनन्दपुरकालू (राज०) में होना निश्चित हुआ। सन् १९७८ के इस चातुर्मासमें मुख्तार सा० स्वयं आचार्य कल्प श्रीके सानिध्यमें आये और यहां टीका का आद्यंत वाचन परम पूज्य महाराजश्री के सानिध्यमें मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराजके सहयोगसे चला। पंडितजीने यथास्थान संशोधन-परिवर्धनके लिये अपने अनुपम सुझाव देकर धवल, जयधवलादि महान् ग्रन्थोंका आधार लेकर टीकाको परिष्कृत किया है। साथ ही इस नवीन टीकाका "सिद्धान्तज्ञानदीपिका" यह नाम भी सुझाया अतः आपके सुझावानुसार टीकाका उक्त नाम ही रखा गया है।

टीकाके आद्यंत वाचन हो जानेपर परिष्कृत एवं संशोधित टीकाकी प्रेसकॉपी बनानेका भार स्वरुच्या मुनिश्री वर्धमानसागरजी ने अपने ऊपर लिया तथा लगभग ७-८ माहके अहर्निश कठोर परिश्रमसे प्रेसकॉपी तैयार की एवं मुद्रणकार्यमें भी यथासमय अपने विचार व्यक्त करते हुए ग्रन्थको साङ्गोपाङ्ग आद्यंत सुन्दर बनानेमें पूर्ण सहयोग किया है। मैं पूज्य मुनिश्रीके इस कार्य करनेकी लगनको देखते हुए मंगलकामना करती हूँ कि आप अहर्निश जिनवाणी माताकी सेवामें संलग्न रहें। दीक्षोपरांत आपने अनेक शारीरिक कष्ट सहे हैं तथा प्रस्तुत ग्रन्थप्रकाशनके समय भी शारीरिक कष्टोंकी चिंता न करते हुए कठोर परिश्रम किया है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूं।

इस महान् कार्यके पूर्ण होनेमें परम पूज्य आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज तथा मूलप्रेरणास्रोत पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमतीमाताजीकी महदनुकम्पा एवं मंगलआशीर्वाद ही मुख्यकारण रहा है, क्योंकि इस महान् कार्यको पूर्ण करनेमें मैं सक्षम नहीं थी। यदि उक्त उभय त्यागीजनोंका आशीर्वाद मेरा सम्बल नहीं होता तो मुझसे इस कार्यकी सम्पूर्ति होना अत्यन्त कठिन था। इस महायज्ञमें मुख्तार सा० श्री रतनचन्दजीके कठिन परिश्रमको भी नहीं भुलाया जा सकता है। ७६ वर्षीय इस वृद्धावस्थामें उनकी कार्य करनेकी अपूर्वनिष्ठा एवं लगन अनुकरणीय है। परम पूज्य उभय महाराजश्री एवं माताजीके प्रति अपनी कृतज्ञताभिव्यक्ति पुरस्सर उनके चरणोंमें अपनी विनय प्रकट करती हुई उनके चिरकाल तक इसी शुभाशीर्वादके बने रहने की सदैव कामना करती हूं। साथ मुख्तार सा० के प्रति भी वीरप्रभुसे मंगलकामना करती हूँ कि वे चिरायु हों तथा इसीप्रकार जिनवाणीकी सेवा करते रहें। ग्रन्थ प्रकाशनसम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था आचार्य कल्प श्रीके संघस्थ ब्र० लाडमलजीने को है, जिनवाणीके प्रचार-प्रसारमें इस वृद्धावस्थामें आपमें जो लगन है वह युवा जैसी लगती है। उनके प्रति भी मेरा शुभाशीर्वाद है कि वे दीर्घायु होकर सतत जिनवाणी सेवा एवं उसके प्रचार-प्रसारमें निरत रहें। विज्ञेषु किमधिकम्।

आर्यिका आदिमती

प० पू० आ० कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी संघस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सम्पादकीय"

घटना आजसे लगभग ४५ वर्ष पूर्वकी है जब सन् १९३५ तदनुसार विक्रमसम्वत् १९९१ में विद्वद्जगत्के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० श्री माणिकचन्दजी कौन्देय "न्यायाचार्य" दसलक्षणपर्वके पावन अवसरपर सहारनपुरमें शास्त्रप्रवचनके लिये आमंत्रित करनेपर पधारे थे। प्रवचन करते हुए उन्होंने तत्त्वार्थसूत्रकी व्याख्या करते हुए उपशमसम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया, किन्तु ज्ञानका अल्पक्षयोपक्षम होनेके कारण उनके द्वारा आगमानुसार प्रतिपादित उपशमसम्यग्दर्शनका स्वरूप मैं नहीं समझ सका परन्तु इतना अवश्य समझ गया था कि सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिसे ही मेरा आत्महित हो सकता है। शास्त्र-प्रवचन समाप्त होनेके पश्चात् अपनी जिज्ञासाको शांत करनेके लिये मैंने पंडितजीसे पूछा कि प्रथमोपशम-सम्यक्त्वकी प्राप्तिका उपाय और उसका स्वरूप किस ग्रन्थमें है। पंडितजीने मेरे प्रश्नका साहजिक उत्तर देते हुए कहा कि "लब्धिसार-क्षपणासार" ग्रन्थमें इसकी विस्तृत प्ररूपणा आचार्य श्रीनेमिचन्द्रसिद्धांत-चक्रवर्तिने की है। बस ! क्या था "मानो अंधेको दो आंखें ही मिल गई हों" के अनुसार मैंने अनुभव किया कि जैसे किसी निधिकी ही उपलब्धि हो गई हो। मैंने निर्णय किया कि उक्त ग्रन्थराजका स्वाध्याय करूंगा।

उन दिनों सहारनपुर नगरके जैनमन्दिरोंमें मुद्रितशास्त्रोंके स्वाध्यायपर प्रतिबन्ध था मात्र हस्तलिखित शास्त्रोंको पढ़नेकी आज्ञा थी और वह शुद्धवस्त्र पहनकर ही पढ़े जा सकते थे। यही कारण था सहारनपुर जैसे धर्मप्राण नगरमें मुद्रितग्रन्थ उपलब्ध ही नहीं थे। अपने निर्णयके अनुसार मैंने स्व० लाला जम्बूप्रसादजी रईसके निजी शास्त्रभण्डारसे हस्तलिखित 'लब्धिसार-क्षपणासार' की प्रति प्राप्तकर स्व० लाला भगवानदासजी द्वारा निर्मापित जिनमन्दिरमें बैठकर प्रातःकालीन शुभ बेलामें स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी, संस्कृत व प्राकृतभाषासे अनभिज्ञ तथा कर्मप्रकृतियोंके नाम तक भी न जाननेवाले मात्र उर्दू व अंग्रेजी भाषासे भिज्ञ मेरे द्वारा 'लब्धिसार-क्षपणासार" जैसे महान् ग्रन्थका स्वाध्याय करनेका साहस करना ऐसे लगा जैसे कोई पांवसे लंगड़ा व्यक्ति किसी दुरुह एवं ऊंचे पहाड़पर चढ़ना चाह रहा हो। अपने आपको इसके लिये अयोग्य जानते हुए भी अन्तःकरणकी प्रबलतम प्रेरणा मिलते रहनेसे निराशाने कभी भी मुझपर अपना साम्राज्य नहीं किया। आशाका दीप सतत मनको दृढ़से दृढ़तम होनेमें प्रकाश प्रदान करता रहा, फलस्वरूप स्वाध्याय प्रारम्भ रहा, क्योंकि आत्महितकी भावना प्रबल थी।

प्रथम दिन मैंने पं० प्रवर टोडरमलजी द्वारा लिखित उक्त ग्रन्थसम्बन्धी पीठिकाके प्रथम पृष्ठ को पढ़ा किन्तु एक घण्टेके परिश्रमके बाद कुछ भी समझमें नहीं आया अतः उस दिन स्वाध्याय बन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर दिया, क्योंकि वकालतसम्बन्धी कार्य करनेका समय हो गया था। प्रथम दिनके समान ही दूसरे दिन भी पीठिकाके उसी पृष्ठका स्वाध्याय किया किन्तु पूर्वकी अपेक्षा कोई प्रगति नहीं हुई अर्थात् दूसरे दिन भी कुछ समझमें नहीं आया, किन्तु निरन्तर प्रयास करते रहनेसे धीरे-धीरे पीठिकासम्बन्धी विषय स्पष्ट होने लगा और "करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान" उक्ति जीवनमें प्रत्यक्ष अनुभवमें आने लगी।

लब्धिसार-क्षपणासार ग्रन्थमें गणितका भी बहुत कुछ विषय है और विद्यार्थी जीवनमें गणित मेरा मुख्य एवं प्रिय विषय रहा है अतः धीरे-धीरे जैन-दर्शनसम्बन्धी करणानुयोगके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया फलस्वरूप जीवनमें करणानुयोगसम्बन्धी ,वर्तमानमें उपलब्ध प्रायः सभी प्रमुखग्रन्थोंके स्वाध्यायका अवसर प्राप्त हुआ है। इसीप्रकार एकबार श्रीमान् पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री धवल ग्रन्थराजका सहारनपुर शास्त्रभण्डारकी हस्तलिखित प्रतिसे मिलान करनेके लिये यहां पधारे थे और उसी बीच वे दिनमें एक घण्टेके लिये सिद्धांतग्रन्थ श्री धवलका अर्थ भी करते थे। चूंकि अब स्वाध्याय के प्रति विशेषरुचि हो ही गई थी अतः उनका प्रवचन सुननेके लिए दो मील दूर कचहरीसे एक घण्टेके लिये मन्दिरजीमें आ जाता था। पंडितजी उन दिनों धवलग्रन्थका सम्पादन कार्य भी कर रहे थे इसीलिये वे सहारनपुर आये थे। जब धवलग्रन्थकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो गईं तब उक्त सिद्धान्त-शास्त्रीजीको दसलक्षणपर्वमें प्रवचनार्थ सहारनपुर समाजने आमन्त्रित किया, वे पधारे तथा उन्हींकी प्रेरणा पाकर उक्त दोनों पुस्तकें अपने निजीशास्त्रभण्डारके लिये मैंने मंगा लीं, किन्तु इसदृष्टिसे कि ये ग्रन्थराज अपनी समझमें नहीं आवेंगे वे शास्त्रभण्डारकी अलमारीमें ही विराजमान रहे।

एक दिन मैंने व मेरे लघुभ्राता नेमिचन्दजी वकीलने विचार किया कि इन ग्रन्थोंको पढ़-कर देखना तो चाहिये कि इनमें क्या विषय प्रतिपादित किया गया है ? और इसी जिज्ञासु वृत्तिके परिणामस्वरूप भ्रातृद्वयने धवल प्रथम व द्वितीयपुस्तकका स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया, किन्तु क्षयोप-शमकी मंदतासे बहुत कम समझमें आया। इसपर भी दोनों भाई हतोत्साही नहीं हुए तथा धवलग्रन्थके आगामी प्रकाशितभाग भी मंगाते रहे और स्वाध्याय किया परन्तु स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जो स्थल समझमें नहीं आते थे उनमेंसे कुछ विषय शंकारूपसे श्री पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री व श्री पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीके पास भेजते रहे। उक्त विद्वद्वय उनका समाधान भेजनेकी कृपा भी करते थे। जिससमय धवलग्रन्थकी पांचवी पुस्तक प्रकाशित हुई और उसे मंगाकर स्वाध्याय किया तो मानो ऐसा लगा जैसे ज्ञानकपाट खुल ही गये हों। इस पुस्तकके स्वाध्यायसे मात्र इसके ही विषयका हार्द समझमें आया हो ऐसी बात नहीं है, अपितु उससे पूर्वपुस्तकोंका भी प्रतिपाद्यविषय स्पष्ट हो गया। इसप्रकार भ्रातृयुगलको निरन्तर परिश्रमपूर्ण वृत्तिके फलस्वरूप विषय तो स्पष्ट होने ही लगा किन्तु साथ ही लिपिकारोंके प्रमादवश होनेवाली तथा विषयकी दुरूहताके कारण विषयस्पष्ट न होनेसे मुद्रित अनुवादमें जो अशुद्धियां रहने लगी वे भी समझमें आने लगीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त तथ्य आत्मप्रशंसाके लिए नहीं लिखा गया है, इसके लिखनेमें यही अभिप्राय रहा है कि जिनवाणीका स्वाध्याय करते समय विषयस्पष्ट न होने पर निराश न होकर निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। कहा भी है—"TRY AGAIN TRY UNTIL YOU SUCCEED." जबतक तुम सफल नहीं होते तबतक बार-बार प्रयत्न करना चाहिए। इससम्बन्धमें एक कथा भी प्रचलित है कि—

एकबार एकराजा युद्धमें पराजित होकर युद्धभूमिसे भागकर एक मकानमें छिपकर बैठ गया। जिस कमरेमें वह बैठा था वहां उसने देखा कि एक मकड़ी धागेके सहारे कमरेकी छत तक पहुंचना चाहती है, किन्तु कुछ दूर चढ़नेके बाद वह पुनः पृथ्वीपर गिर जाती है। एकबार-दोबार-तीनबार ही नहीं, किन्तु ९९बार वह अपने उद्देश्यमें असफल रही फिर भी प्रयत्न जारी रहा और अन्तिम प्रयासमें वह सफल होकर छततक पहुँच गई। यह देख राजाने अपने मनमें सोचाकि "एक छोटेसे जन्तुने ९९बार असफल होनेपर भी प्रयत्न नहीं छोड़ा (While I am hiding here, like a frightend deer, doing nothing for my poor people) और जबकि मैं एक डरपोक हरिणके समान यहां छिपा बैठा हूं, प्रजाके लिए कुछ नहीं कर रहा हूं"। वह उठा और अपनी सेनाको पुनः संगठित करके युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की। कहनेका तात्पर्य यह है कि ज्ञानके क्षयोपशमकी कमीके कारण मनुष्यको महान ग्रंथोंके स्वाध्यायसे विमुख नहीं होना चाहिए, अपितु प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि स्वाध्यायसे ज्ञानावरणकर्मकी अनुभागशक्ति क्षीण होती है, जिससे ज्ञानका क्षयोपशम वृद्धिगत होता है।

यहीदृष्टि प० पू० आ० क० श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराजकी भी रही है। यद्यपि आपका जन्म श्वेताम्बरधर्मानुयायी ओसवाल कुलमें हुआ है तथापि आपकी प्रवृत्ति दिगम्बरधर्मकी ओर ही रही है। फलस्वरूप आपने गृहस्थाश्रममें ही रहकर ज्ञानाराधना की तथा साथ ही आत्मसाधनाका कठोर अभ्यास भी किया। ४९ वर्षकी यौवनावस्थामें प० पू० प्रातःस्मरणीय चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराजके सर्वप्रथम मुनिशिष्य एवं पट्टाचार्य प० पू० चारित्रचूड़ामणि १०८ आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजसे टोडारायसिंह (राजस्थान) में क्षुल्लक दीक्षा धारण की एवं ३ वर्ष पश्चात् उन्हीं आचार्य श्री से जयपुर खानियांमें मुनिदीक्षा धारण की। आप अपने नामके अनुरूप ही सतत श्रुताराधनामें संलग्न हैं यह जानकर सन् १९५९ में भाद्रपद मासमें श्रीमान् सेठ बद्रीप्रसादजी सरावगी पटनावालोंके साथ प० पू० आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजके ससंघ दर्शनार्थ अजमेर गया। वहां पू० श्री श्रुतसागरजी महाराजके चरणसानिध्यमें बैठकर आपकी ज्ञानाराधनाकी लगनको देखकर अतीव हर्ष हुआ। उन दिनों आप धवलग्रन्थका स्वाध्याय कर रहे थे। यद्यपि आप स्कूलीयगणित विशेष नहीं जानते तथापि महाजनी गणितके आधारसे ही आपने त्रिलोकसार ग्रन्थान्तर्गत दुरुह गणितको भी सरलतासे हल कर दिया है।

सन् १९६३ से तो मैं सतत आपके सानिध्यमें पहुंचता रहा हूँ। सन् १९६९ में जब प्रतापगढ़ (राज०) के चातुर्माससमें आचार्यसंघके दर्शनार्थ गया तब मैंने आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघस्थ आर्यिका १०५ ज्ञानमतीजी एवं इन्हींकी प्रेरणासे आचार्य श्री शिवसागरजीसे दीक्षित १०५ आर्यिका जिनमतीजी एवं आदिमतीजीके भी दर्शन किये। आर्यिकात्रयके दर्शन करके भी अतीव हर्ष हुआ, क्योंकि इनकी करणानुयोग में भी अतीवरुचि थी तथा उन दिनों त्रिलोकसार व लोकविभागका स्वाध्याय कर रही थीं, मैं भी उसमें प्रतिदिन भाग लेने लगा। सम्प्रति आर्यिकात्रय पृथक्-पृथक् विहार कर रही हैं। श्री ज्ञानमतीमाताजी तो अन्य दो आर्यिकाओंके साथ प्रायः हस्तिनापुरक्षेत्रके आसपास विहार कर रही हैं. श्री जिनमतीमाताजी आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराजके संघमें हैं तथा श्री आदिमतीजी आ० क० श्री श्रुतसागरजी महाराजके संघमें हैं। सन् १९७३ में नजफगढ़ (दिल्ली) चातुर्मासके ज्ञानमतीमाताजीसे प्रेरणा पाकर आदिमतीमाताजीने गोम्मटसारकर्मकाण्डकी टीका पं० प्रवर टोडरमलजी कृत ढुंढारीभाषा टीका एवं मराठी टीका से संदृष्टियोंको यथास्थान लगाकर लिखी है। उसका वाचन स्वयं आ० क० श्रीके सानिध्यमें मुनि श्री वर्धमानसागरजी के सहयोगसे प्रारम्भ हुआ और लगभग ३०० गाथाओंका वाचन होजानेपर महाराजश्रीने वह टीका मुझे देते हुए कहा कि इस टीकाका सम्पादनभार आपको लेना है तथा धवलादि सिद्धान्तग्रन्थोंके अनुसार इसका संशोधन-संवर्धन करना है। यद्यपि वृद्धावस्थामें मुझसे यह कार्य सम्पन्न होना कठिन लगता था तथापि पू०आ०क०श्रीके आशीर्वाद एवं पू० वर्धमानसागरजीके परम सहयोगसे ही इस दुरुहतम कार्यको सम्पूर्ण कर सका हूं। इस महायज्ञके प्रमुख होता आ० क० श्री ही हैं तथा उनका मंगलमय आशीर्वाद ही मेरा सम्बल रहा।

आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजीके संघमें श्री १०८ वर्धमानसागरजी हैं। आपने आचार्यश्री धर्मसागरजीसे मुनि दीक्षा ली थी। आप युवामुनि हैं एवं लौकिक शिक्षा ग्रहण की है अतः अंग्रेजी व गणितका भी ज्ञान है। आपकी लेखनी अतीव सुन्दर है। प्रस्तुत टीकाकी वाचनामें आप प्रमुख रहें हैं। आप ज्ञान पिपासु हैं एवं निरन्तर स्वाध्यायरत रहते हैं। वात्सल्य एवं सेवा भावना आपमें कूट-कूट कर भरी है। प्रेसकॉपी आपने ही कठोर परिश्रमसे तैयार की है एवं ग्रन्थमुद्रणमें आद्यंत अपना अवर्णनीय सहयोग प्रदान किया है। मैं उभय मुनिराजका अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि जिनने आशीर्वाद एवं सहयोगसे यह महान् कार्य पूर्ण हो सका है।

यद्यपि इस ग्रन्थका सम्पादन मैंने किया अवश्य है, किन्तु मूलमें इस ग्रन्थकी टीकाकर्त्री आर्यिका आदिमतीजी ही हैं उनके परिश्रमके फलस्वरूप ही गोम्मटसारकर्मकाण्डकी नवीन टीका प्रकाशित हो सकी है अतः इसका पूर्ण श्रेय तो माताजीको ही है।

ग्रन्थ प्रकाशनकी समस्त व्यवस्था आ० क० श्रीके संघस्थ ब्र० लाडमलजी ने की है। आप वयोवृद्ध हैं, स्वास्थ्य भी प्रायः प्रतिकूल रहता है तथापि युवकों जैसा उत्साह रखते हैं। आप स्वयं विशेष ज्ञानी तो नहीं हैं फिर भी जिनवाणीके प्रसारके प्रति आपके मनमें लगन है इसीलिए पूर्वाचार्योंके द्वारा रचित ग्रन्थोंका शुद्ध हिन्दीमें अनुवाद अथवा टीका ग्रंथोंका प्रकाशन कराने में आप विशेष रुचि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखते हैं। साधुओंकी वैयावृत्तिमें आप अहर्निश तत्पर रहते हैं, आप स्वयं बालब्रह्मचारी हैं। आपके सद्प्रयत्नसे ही इस विशाल ग्रन्थका इतने अल्पकालमें ही प्रकाशन सम्भव हो सका है।

बाकलीवाल प्रिन्टर्स मदनगंज-किशनगढ़के मालिक श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल एवं उनके सुपुत्र श्री गुलाबचन्द एवं भूपेन्द्रकुमारका भी मैं आभारी हूं कि जिन्होंने यथाशीघ्र इसग्रन्थका मुद्रण बड़ी कुशलता एवं तत्परता से किया है। यद्यपि प्रस्तुतग्रन्थमें संदृष्टियां बहुत अधिक होनेसे इसग्रन्थका मुद्रणकार्य कठिनसा प्रतीत होता था तथापि बड़े धैर्यसे आपने परिश्रमपूर्वक मुद्रण सम्पन्न किया अतः धन्यवादार्ह हैं। विज्ञेषु किमधिकम्।

अक्षयतृतीया
वि० सं० २०३७

रतनचन्द जैन मुख्तार
सहारनपुर (उ०प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टीकाकर्त्री के दीक्षागुरु

प० पू० प्रातःस्मरणीय, चारित्रशिरोमणि, परमतपस्वीरत्न

१०८ आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज

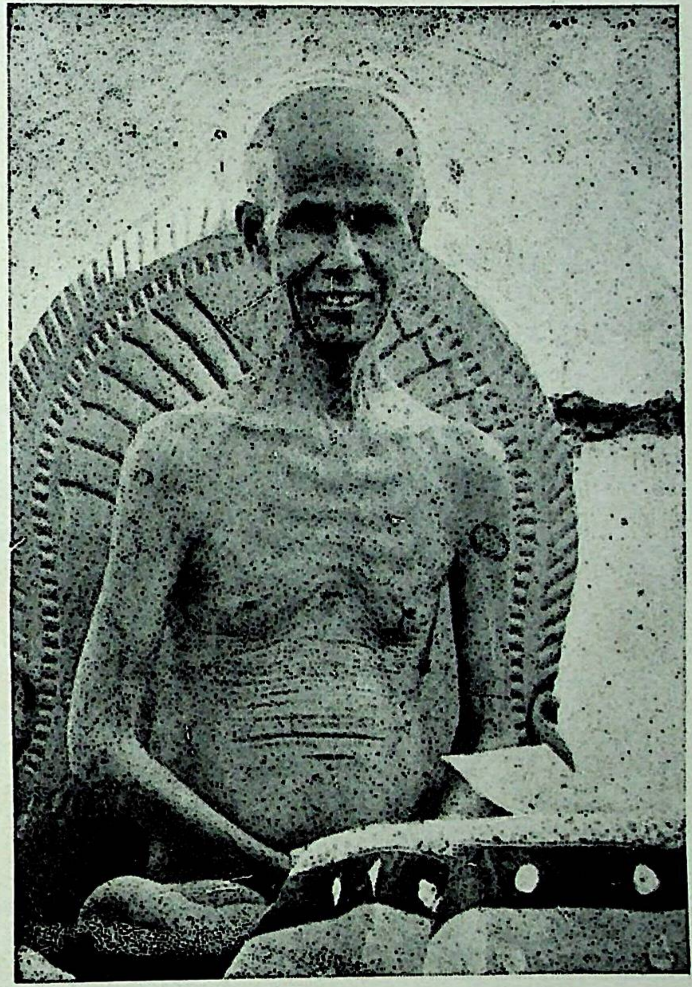

मुनिदीक्षा
आषाढ़ शुक्ला ११
वि. सं. २००६
नागौर

आचार्यपद
वि० सं० २०१४
खानियाँ (जयपुर)

सल्लेखना
फा. कृ. अमावस्या
वि. सं. २०२५
श्री शांतिवीरनगर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5213

"प्रस्तावना"

यह संसार अनादिप्रवाहरूपसे चला आरहा है। प्रत्येक ६ माह ८ समयमें ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं और ६०८ जीव ही नित्यनिगोदसे निकलकर व्यवहारराशिमें प्रवेश करते हैं जिससे व्यवहार राशिमें जीवोंकी संख्या बराबर उतनी ही बनी रहती है[1]। इसप्रकार मोक्षमें सिद्ध जीव भी अनादिकालसे हैं और संसारी जीव भी अनादिसे हैं। कभी भी ऐसा नहीं था कि संसारी जीव तो हों और मुक्तजीव न हों, क्योंकि सभीपदार्थ प्रतिपक्षसहित उपलब्ध होते हैं, "सव्वपयत्था सपडिवक्खा" ऐसा सिद्धान्तवाक्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यने कहा है। यदि कभी भी मुक्तजीवका अभाव माना जावेगा तो मुक्तजीवोंके प्रतिपक्षभूत संसारीजीवोंके भी अभावका प्रसंग आ जावेगा। यदि कहा जावे कि भव्य जीव निरन्तर मोक्षको प्राप्त होते जा रहे हैं इसलिए उनकी संख्या कम होती जा रही है, इसप्रकार मोक्ष जाते-जाते सब जीव मोक्ष चले जावेंगे। सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सिद्धराशि और सम्पूर्ण अतीतकालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदशरीरमें होते हैं। कहा भी है—

> एयणिगोद सरीरे जीवाद्दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा।
> सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीद-कालेण ॥गो०जी०का०१९६॥

दूसरी बात यह है कि सर्वभव्यजीवोंके मुक्त हो जानेपर भव्यसिद्धिक जीवोंका अभाव होनेसे उनके प्रतिपक्षी अभव्यजीवोंके अभावका भी प्रसंग प्राप्त होगा तथा भव्य-अभव्य दोनोंप्रकारके जीवोंका अभाव होनेसे संसारीजीवोंका अभाव हो जाता है। संसारीजीवोंका अभाव होनेपर मुक्तजीवोंके अभावका प्रसंग आ जावेगा, क्योंकि सभी पदार्थ प्रतिपक्षसहित होते हैं[2]। संसारी व मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंका अभाव होनेसे जीवद्रव्यका अभाव हो जावेगा तथा जीवद्रव्यका अभाव होनेपर उसके प्रतिपक्षी अजीवद्रव्यके अभावका प्रसंग आजावेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जीव व अजीव अनादि-अनन्त हैं, उनका कभी भी अभाव हो नहीं सकता। जीव अजीवादि द्रव्योंकी जितनी संख्या है उसमें न तो एककम हो सकती और न एक बढ़ सकती है, क्योंकि ये छहों द्रव्य नित्य व अवस्थित हैं[3]। विज्ञान (Science) का भी सिद्धान्त है कि "Nothing is Created Nothing is Destroyed."

इसप्रकार अनादिकालसे मुक्तजीवोंके सिद्ध हो जानेपर मोक्षमार्ग भी अनादिकालसे चला आ रहा है विदेहक्षेत्रमें तो मोक्षमार्ग कभी बन्द होता ही नहीं। जितने भी जीव मुक्त अर्थात् सिद्ध हुए हैं

---

१. ज. ध. पु. ३. पृ. २०० । २. ध. पु. १४ पृ. २३५ । ३. नित्यावस्थितान्यरूपाणि (त. सू. ५/४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे सब संसारी थे मोक्षमार्गपर चलकर कर्मबन्धनको काटकर मुक्त हुए हैं। मुक्त शब्द ही पूर्वबंधका द्योतक है[१]।

इसप्रकार मोक्षमार्ग प्रवाहरूपसे अनादि सिद्ध हो जानेपर अपौरुषेय सिद्ध हो जाता है। तीर्थंकरादि इसके व्याख्याता हैं कर्त्ता नहीं[२]। इसीप्रकार अनादिकालसे प्रवाहरूपसे चले आए सिद्धान्त वाचकपदोंको अनादि सिद्धान्तपद कहते हैं, जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि। अपौरुषेय होनेसे सिद्धान्त अनादि है[३]। आगम, सिद्धान्त और प्रवचन ये शब्द एकार्थवाची हैं[४]। अतः द्वादशांग श्रुत भी अनादि सिद्ध है। सभी तीर्थंकरोंका केवलज्ञान एकरूप है अतः उसका कार्य दिव्यध्वनि भी एकरूप है, क्योंकि कारणकी विशेषतासे ही कार्यमें विशेषता आती है, ऐसा श्री अमृतचन्द्राचार्यने कहा है[५]। वह दिव्यध्वनि संक्षिप्त शब्दरचनाओंसे रहित व अनन्त अर्थोंके ज्ञानमें हेतुभूत अनेक चिन्होंसे संयुक्त बीजपद कहलाता है। १८ भाषा व सात सौ कु (लघु) भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीजपदोंका प्ररूपक अर्थकर्ता है तथा बीजपदोंमें लीन अर्थके प्ररूपक द्वादशअंगोंके कर्ता गणधर भट्टारक हैं। अर्थात् बीजपदोंका व्याख्याता ग्रन्थकर्ता कहलाता है। राग-द्वेष-मोहसे युक्त जीव यथोक्त अर्थका प्ररूपक नहीं हो सकता, क्योंकि उसके सत्यवचनके नियमका अभाव है।

यद्यपि द्वादशांगश्रुत प्रवाहरूपसे अनादि और अपौरुषेय है तथापि वर्तमान पंचमकालमें जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्रमें अन्तिमतीर्थंकर भगवान् महावीरका युग प्रवर्तन हो रहा है इस अपेक्षासे भगवान् महावीर अर्थकर्ता और गौतमगणधर ग्रन्थकर्ता हैं।

इस द्वादशांगमें अन्तिम दृष्टिवाद अंग है और इसके पांच भेद हैं—१. परिकर्म २. सूत्र ३. प्रथमानुयोग ४. पूर्वगत ५. चूलिका। इनमें से पूर्वगत १४ प्रकारका है। उनमें से द्वितीय आग्रायणीपूर्वके सूत्रोंसे ही प्रायः षट्खंडागमके सूत्रोंकी रचना हुई है, किन्तु सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका दृष्टिवादनामक बारहवें अंगके दूसरे भेद 'सूत्र' से निकली है और गति-आगति चूलिका व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पांचवें अंगसे निकली है।

भगवान् महावीर के निर्वाणके पश्चात् ६२ वर्षमें तीन केवली, १०० वर्षमें पांच श्रुतकेवली, १८३ वर्षमें ग्यारह दसपूर्वी, २२०वर्षमें पांच ग्यारहअंगधारी और ११८ वर्षमें चार एकांगधारी आचार्य हुए हैं। उसके बाद सभी अंग और पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परासे श्री धरसेनाचार्यको प्राप्त हुआ। धरसेनाचार्यसे पुष्पदन्त व भूतबली आचार्यने प्राप्तकर उन सूत्रोंको लिपिबद्ध करके छहखंडोंमें विभाजित किया। इसीलिए इस ग्रन्थका नाम षट्खण्डागम रखा गया।

---

१. "मुक्तश्चेत प्राक् भवेद्बन्धो नो बन्धो मोचनं कथम्। अबंधे मोचनं नैव मुञ्चेरर्थो निरर्थकः॥
वृ. द्र. स. गा. ५७ की टीका

२. ध. पु. १ पृ. ३४९। ३. ध. पु. १ पृ. ७६। ४. ध. पु. १ पृ. २१। ५. "कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यंभावित्वात्" (प्र.सा.गा.२५५ टीका) ६. ध.पु. ९ पृ. १२७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिवाद नामक बारहवेंअंगके चतुर्थभेद पूर्वगतमें उत्पादपूर्व, आग्रायणीपूर्व आदि १४ भेदोंमें से पांचवे ज्ञानप्रवादपूर्वके १२ अर्थाधिकार हैं। प्रत्येक अधिकारके बीस-बीस प्राभृत हैं। इस ज्ञान-प्रवादनामक ५वें पूर्वके दसवें वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तृतीय पेज्जदोषप्राभृतसे कषायपाहुड़की रचना की गई है। पेज्जदोषप्राभृतके १६ हजार मध्यमपद हैं, जिनके अक्षरोंका प्रमाण दो कोड़ाकोड़ी-इकसठ-लाख-सत्तावनहजार-दो सौ बानवें करोड़, बासठलाख, आठहजार होता है। इतने विस्तृत ग्रन्थको श्री भगवद् गुणधराचार्यने केवल २३३ गाथाओंमें निबद्धकर कषायपाहुड़ग्रन्थको रचना की जो कि आचार्य परम्परासे श्री आर्यमंक्षु और श्री नागहस्ति आचार्योंको प्राप्त हुआ। उनसे सीखकर श्री यतिवृषभाचार्यने वृत्ति (चूर्णि) सूत्र रचे।

यद्यपि षट्खंडागम और कषायपाहुड़ इन दोनों ग्रन्थोंपर अनेक टीकाएं रची गईं, किन्तु आचार्य श्री वीरसेनस्वामि द्वारा तर्कपूर्ण विस्तृत धवल व जयधवल टीकाएं क्रमशः षट्खंडागम व कषायपाहुड़ पर लिखे जानेके पश्चात् अन्यटीकाओंका पठन-पाठन लुप्त हो गया और धवल-जयधवल टीकाओंका पठन-पाठन प्रचलित हो गया। अतिसंक्षिप्त और अर्थपूर्ण छहहजारश्लोकप्रमाण चूर्णिसूत्रका रहस्य वीरसेनाचार्यने साठहजारश्लोकप्रमाण जयधवल टीकामें खोला है।

षट्खंडागम व कषायपाहुड़ तथा इन दोनोंकी धवल व जयधवल टीकाके साररूपमें श्री नेमि-चन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती आचार्यने श्री चामुण्डराय अपरनाम गोम्मटके लिये गोम्मटसारग्रन्थकी रचना की। चामुण्डराय गंगनरेश राचमल्लके प्रधानमन्त्री और सेनापति थे। इन्होंने ही श्रवणबेलगोलाके विन्ध्य-गिरी पर्वतपर श्री बाहुबलीकी उत्तुंगमूर्तिका निर्माण कराकर प्रतिष्ठाविधि करवायी थी। साथ ही चन्द्रगिरिपर चामुण्डरायके द्वारा ही निर्मापित जिनालयमें एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणिकी श्रीनेमिनाथ भगवान्‌को प्रतिमा स्थापित हुई थी। इन्हीं चामुण्डरायको वीरमार्तण्ड की उपाधि भी प्राप्त थी। नेमि-चन्द्राचार्यने चामुण्डरायके द्वितीय गोम्मटरायनामके समर्थनमें निम्न दो गाथाएं कही हैं—

अज्जज्जसेन गुणगण समूह संधारि अजियसेन गुरु।
भुवणगुरु जस्स गुरु सो राओ गोम्मटो जयउ ।।७३३।। गो.जी.का.।।

जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं ।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो राओ गोम्मटो जयऊ ।।९६९।।गो.क.का.।।

धवलादिका साररूप यह ग्रन्थ गोम्मटरायके लिए तैयार किया गया था इसलिये इस ग्रन्थ का नाम गोम्मटसार प्रचलित हुआ और उन्होंने ही बाहुबलीस्वामिकी मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी अतः वह मूर्ति गोम्मटेश्वर कही जाती है।

नेमिचन्द्राचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्यद्वारा विरचित षट्खंडागम सूत्रोंके पारगामी थे ऐसा स्वयं उन्होंने प्रगट किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।
तह मइ चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥गो.क.॥

अर्थात् जिसप्रकार चक्रवर्तिने भरतक्षेत्रके छहखंण्डोंको अपने चक्ररत्नसे निर्विघ्नपूर्वक साधे हैं, उसीप्रकार मैंने भी बुद्धिरूपी चक्रसे जीवस्थान[1], क्षुद्रबन्ध[2], बन्धस्वामि[3], वेदनाखंड[4], वर्गणाखंड[5] और महाबन्ध[6]के भेदरूप सिद्धान्तग्रन्थके इन छहखण्डोंको भलीभांति साधा है।

नेमिचन्द्राचार्य द्वारा गुरु स्मरण—

णमिऊण अभयणंदिं सुयसायरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वर वीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥गो.क.॥

अर्थात् मैं नेमिचन्द्राचार्य अभयनन्दि नामक मुनीश्वरको, शास्त्रसमुद्रके पारगामी इन्द्रनन्दि नामक गुरुको तथा उत्कृष्ट वीरनन्दि नामक गुरुको नमस्कार करके कर्मप्रकृतियोंके प्रत्यय कहूंगा। उक्त गाथामें आचार्यने अपने तीन गुरुओंका नामस्मरण किया है।

गोम्मटसारका रचना स्थान—

चन्द्रगिरिपर गोम्मटराय (चामुण्डराय) द्वारा निर्मापित जिनालयमें स्थापित एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणिकी श्री नेमिनाथ भगवान्‌की प्रतिमाके सम्मुख उसी जिनालयमें गोम्मटसार ग्रन्थकी रचना हुई थी इसीलिये गोम्मटसारके आद्यमंगलमें नेमिनाथ भगवान्‌का स्मरण निम्न गाथामें किया गया है—

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं ।
गुणरयणभूषणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥ गो.जी.

रचनाकाल—

श्री चामुण्डरायने स्वयं अपना चामुण्डपुराण लिखा है जिसमें अपने कार्योंका विवरण दिया हैं, किन्तु मूर्तिनिर्माण तथा गोम्मटसारके विषयमें कुछ उल्लेख नहीं किया। यह पुराण शकसम्वत् ९०० तदनुसार वि० सं० १०३१ में लिखा गया है। चामुण्डरायपुराणमें मूर्ति निर्माण व गोम्मटसारके उल्लेख न होनेसे यह प्रतीत होता है कि ये कार्य वि० सं० १०३१ के पश्चात् हुए हैं। बाहुबलीचरितमें गोम्मटेशकी प्रतिष्ठाका समय वि० सं० १०३७-३८ बतलाया गया है। उस समय गंगदेशमें राचमल्लका राज्यकाल था। त्रिलोकसारकी टीका लिखते हुए श्री माधवचन्द्राचार्य त्रैविद्यदेवने जो कि नेमिचन्द्र-सिद्धान्तचक्रवर्तीके समकालीन थे, त्रिलोकसारके मंगलाचरणमें आये हुए 'बलगोविन्द' शब्दका अर्थ

१. ध. पु. १ से ६। २. ध. पु. ७। ३. ध. पु. ८। ४. ध. पु. ९ से १२ ५. ध. पु. १३-१४। ६. महाबन्ध भाग १ से ७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंगराज राचमल्लके मंत्री चामुण्डरायने किया है। इससे प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ राचमल्लके राज्य-कालमें लिखा गया है। श्री राचमल्लका राज्यकाल वि० सं० १०४१ तक रहा है अतः गोम्मटसारका रचनाकाल वि० सं० १०३७–१०४१ के बीच रहा प्रतीत होता है।

नेमिचन्द्राचार्यकी रचनाएं—

बाहुबलीचरित्रमें श्री नेमिचन्द्राचार्यद्वारा रचित तीन ग्रन्थोंका उल्लेख निम्न श्लोकमें किया गया है—

सिद्धान्तामृतसागरं स्वमतिमन्थक्ष्मामृदालोड्य मध्ये।
लभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणाग्रेसरः ॥
श्रीमद् गोम्मट-लब्धिसारविलसत् त्रैलोक्यसारामर-
क्ष्माज श्रीसुरधेनुचिन्तितमणीन् श्री नेमिचन्द्रो मुनिः ॥६३॥

श्लोक कथित तीन ग्रन्थ १. गोम्मटसार २. लब्धिसार ३. त्रिलोकसार हैं। गोम्मटसारको जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड इन दो भागोंमें विभाजित कर देनेसे तथा लब्धिसारके साथ क्षपणासार भी होनेसे गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसारकर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार ये पांच ग्रन्थ होते हैं। इनमेंसे लब्धिसार-क्षपणासारमें कषायापाहुड़के ११-१२-१३-१४ और १५वें अधिकार का सार है एवं त्रिलोकसारमें यतिवृषभाचार्यकृत तिलोयपण्णत्तिका सार है।

कर्मकाण्डकी प्रस्तुत टीकाकी विशेषता—

गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्डपर ब्र० श्री केशववर्णीने कन्नड़भाषामें कर्नाटकवृत्ति लिखी जिसके आधारसे ही वर्तमानमें उपलब्ध संस्कृतटीका की रचना की गई है तथा इसी संस्कृतटीकाके अनुसार पंडितप्रवर श्री टोडरमलजीने ढुंढारीभाषामें अनुवाद किया था जो लगभग ६०-६२ वर्ष पूर्व कलकत्तासे शास्त्राकारमें प्रकाशित हुआ था, किन्तु वर्तमानमें अनुपलब्ध है। पंडितजीके समय तक धवल, जयधवल व महाबन्ध ग्रन्थ उपलब्ध नहीं थे। यह सौभाग्यकी बात है कि अब धवलादि महान्-ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशन हो चुका है।

कर्मकाण्डकी संस्कृतटीका एवं ढुंढारीभाषाके अनुवादमें कुछस्थल ऐसे हैं जो धवल-जयधवलके अनुकूल नहीं हैं तथा ऐसी भी कुछ गाथाएं हैं जिनपर संस्कृत व हिन्दी टीकाकारोंने विशेष स्पष्टीकरण नहीं किया है, किन्तु भारतीयज्ञानपीठ से प्रकाशित प्राकृत पंचसंग्रहकी प्राकृतवृत्तिमें विशेष स्पष्टीकरण पाया जाता है। अतः उन गाथाओंका विशेषार्थ पंचसंग्रहकी प्राकृतवृत्तिके अनुसार लिखा गया है। कई स्थलोंपर अभी तक मुद्रितप्रतियोंमें आगत गाथा क्रममें प्रकरणको ठीक प्रकारेण यथास्थान स्पष्ट करनें के लिये परिवर्तन (आगे-पीछे) किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्रित कर्मकाण्डमें मूल गद्यभाग छोड़ दिया गया है। जैसे गाथा २२ में आठ मूलप्रकृतियोंकी उत्तरभेदरूप प्रकृतियोंकी संख्या बतलाई गई है और गाथा २३-२४-२५ में पांचों निद्राओंका कार्य बतलाया है, किन्तु ये प्रकृतियां किस मूलकर्मकी हैं यह ज्ञात नहीं होता। अतः यह प्रतीत होता है कि गाथा २२-२३ के मध्यमें ऐसा मूल पाठ था जिसमें ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्मकी उत्तरप्रकृतियों का नामोल्लेख हो। इसीप्रकार गाथा २५ के पश्चात् वेदनीयकर्मसम्बन्धी उत्तरप्रकृतियों तथा मोहनीय-कर्मके भेद व दर्शनीयमाहनोयकी उत्तरप्रकृतियोंके नामोंका कथन नहीं है। तथैव गाथा २७, २८ व ३२ के पश्चात् नामकर्मकी कुछ उत्तरप्रकृतियोंके नाम नहीं हैं एवं गोत्रकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके नाम भी नहीं हैं जो गाथा ३३ के पश्चात् होने चाहिये थे। यह सर्वकथन मूलगद्यभागमें था जिसको मुद्रित प्रतियोंमें छोड़ दिया गया। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी गाथाएं भी थीं जिनपर कर्नाटकवृत्ति या संस्कृतटीका नहीं लिखी गई। संभव हो वे गाथाएं कर्नाटकवृत्तिकारके सामने भी न रही हों। वे गाथाएं भी मुद्रित-प्रतियोंमें नहीं हैं। 'अनेकान्त' वर्ष ८ कीरण ८-९ सन् १९४७ में एक लेखके द्वारा गद्यभाग व गाथाओं की सूचना तथा उनका प्रकाशन भी हुआ था जिनको साभार ग्रहणकर प्रस्तुत टीकामें यथास्थान जोड़ दिया गया है। जो गाथाएं जोड़ी गई हैं उनसे गाथाक्रममें कोई परिवर्तन न हो इस दृष्टिसे उन्हें क ख आदि नम्बरोंसे सम्मिलित किया गया है। जैसे ३६० क इत्यादि ९ गाथाएं यथास्थान जोड़ी गई हैं जो कि ३६० से ३९० के बीच में ही हैं।

विषय परिचय—

गोम्मटसार कर्मकाण्डमें ९ अधिकार हैं—१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन २. बंधोदयसत्वाधिकार ३. सत्त्वस्थानभंगाधिकार ४. त्रिचूलिकाधिकार ५. स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ६. प्रत्ययाधिकार ७. भाव-चूलिकाधिकार ८. त्रिकरणचूलिकाधिकार ९. कर्मस्थितिरचनाधिकार।

प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारमें ८६ गाथा हैं जिनमें मंगलाचरण पुरस्सर कर्मोंकी आठ मूल तथा उनकी उत्तरप्रकृतियोंके नाम व कुछ प्रकृतिविशेषके कार्य, घाति-अघातीकर्म संज्ञा, छहोंसंहननवाले जीवों के उत्पत्तिस्थान, महिला (द्रव्यस्त्री) के संहनन, कषायोंका कार्य व संस्कारकाल, पुद्गलविपाकी-भव-विपाकी-क्षेत्रविपाकी-जीवविपाकी प्रकृतियां, चारनिक्षेपोंके द्वारा कर्मोंका कथन तथा प्रत्येक कर्मोंके नो कर्मोंका समुल्लेख किया गया है।

बन्धोदयसत्त्वाधिकार में ८७ से ३५७ तक २७० गाथाएं हैं। इनमें बन्ध-उदय और सत्त्व, बन्ध-उदय व सत्त्वव्युच्छित्ति तथा अबन्ध-अनुदय व असत्त्व जिन्हें बन्ध त्रिभंगी, उदय त्रिभंगी व सत्त्व त्रिभंगी भी कहते हैं का गुणस्थान व मार्गणाकी अपेक्षा विस्तृत वर्णन किया गया है। बंधप्रकरणमें प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबन्धका विशद कथन है। प्रकरणवश आबाधाकालका, कर्मनिषेकोंके क्रमका तथा उनके स्वरूपका, अनुभागके लता दारु आदि स्थानोंका, प्रदेशबन्धके कारणभूत योगस्थानों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का व उनके स्वामि तथा उनमें अल्पबहुत्वका कथन, उदीरणा व उद्वेलनादिका भी विवेचन इसी अधिकारमें पाया जाता है। साथ ही सिद्धोंके अनन्तवेंभाग और अभव्यराशिसे अनन्तगुणित समयप्रबद्धका ज्ञानावरणादिकर्मोंकी मूल-उत्तरप्रकृतियोंमें किस विधि व किस अनुपातमें विभाजन होता इसकी विस्तृत चर्चा भी इसी अधिकारमें पायी जाती है।

सत्त्वस्थानभङ्गाधिकारमें ३५८ से ३९७ तक ४० गाथाएं हैं। इस अधिकारमें सत्त्वकी अपेक्षा प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान व भेदोंके भंगोंका विस्तृत कथन करते हुए आचार्यदेवने किस गुणस्थानमें कितने सत्त्वस्थान कितने प्रकारोंसे हो सकते हैं इसका विशद वर्णन किया है। साथ ही कनकनन्दि आचार्यद्वारा कथित सत्त्वस्थानका कथन इस अधिकारमें पाया जाता है।

त्रिचूलिका नामक तृतीयाधिकारमें ३९८ से ४५० तक ४३ गाथाएं हैं। ३९८ से ४०७ तक १० गाथांओंमें प्रथम नवप्रश्नचूलिकामें उदयव्युच्छित्तिके पहले बन्धव्युच्छित्तिको होनेवाली प्रकृतियां, उदयव्युच्छित्तिके पश्चात् बन्धव्युच्छित्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियां, उदयव्युच्छित्तिके साथ बन्धव्युच्छित्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियां, स्वोदयबन्धी प्रकृतियां, परोदयबन्धी प्रकृतियां, स्व-परोदयबन्धी प्रकृतियां और सान्तर-निरन्तरबन्धी प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं इन नवप्रश्नोंके उत्तरका कथन पाया जाता है। पंचभागाहार नामक द्वितीय चूलिकामें गाथा ४०८ से ४३५ तक १५ गाथाओंमें उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम इन पांच भागहारोंका निरुपण है तथा संक्रमणसंबंधी कथन भी पाया जाता है। दशकरणनामक तृतीय चूलिका में ४३६ से ४५० तक १५ गाथाएं हैं। इसमें बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उदीरणा, सत्ता, उदय, उपशम, निधत्ति और निकाचना इन दशकरणोंका कथन करते हुए यह भी बताया है कि कौनसा करण किस गुणस्थानतक होता है ?

स्थानसमुत्कीर्तनाधिकारमें ४५१ से ७८४ तक ३३४ गाथाएं हैं। इस अधिकारमें गुणस्थानसम्बन्धी प्रकृतिसंख्या सहित बन्ध-उदय व सत्त्व का कथन है अर्थात् यह बताया गया है कि एक जीव के एक समय में कितनी प्रकृतियोका बन्ध-उदय और सत्त्व सम्भव है। उपयोग, योग, संयम और लेश्या व सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंका कथन है। मोहनीयके सत्त्वस्थानोंका कथन भी इसी अधिकारमें है। साथ ही नामकर्मके ४१ जीवपदोंका कथन करते हुए बंध-उदय-सत्त्वके त्रिसंयोगीभंग भी कहे गये हैं।

प्रत्ययाधिकार में ७८५ से ८१० तक २५ गाथाएं हैं। इसमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा मूल व उत्तर प्रत्ययोंका तथा कर्मबन्धके कारणभूत आत्मपरिणामों अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंके विशेष प्रत्ययोंका कथन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावचूलिका नामक सप्तमअधिकारमें ८११ से ८९५ तक ८५ गाथाओं द्वारा भावोंका, उनके उतरभेदोंका तथा गुणस्थानोंको अपेक्षा स्थानभंग व पदभंगका, ३६३ मिथ्यामत एवं एकांत नियतिवाद आदि मिथ्यामतोंका कथन है।

त्रिकरणचूलिका नामक आठवें अधिकार में ८९६ से ९१२ तक १७ गाथाओंमें अधःकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण का स्वरूप व कालादिका कथन है।

कर्मस्थितिरचनाधिकार में ९१३ से ९६४ तक ५२ गाथाओंमें कर्मस्थितिरचना अङ्कसन्दृष्टि, अर्थसन्दृष्टि, त्रिकोणयंत्ररचना तथा स्थितिबन्धके भेद व अध्यवसाय स्थानोंका कथन है। इसके पश्चात् आठ गाथाओंमें ग्रन्थकर्ताकी प्रशस्ति है।

भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित पंचसंग्रहमें प्राकृत व संस्कृतके पंचसंग्रहोंका संकलन है इनके रचयिताओंके नाम व समय अज्ञात होनेके कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि गोम्मटसार व पंचसंग्रहमें कौन प्राचीन है? इस पंचसंग्रहके संपादक व अनुवादक श्री पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री साढूमल (झांसी) हैं। प्राकृत पंचसंग्रहकी और गोम्मटसारकी अनेकों गाथाएं परस्पर सदृश हैं।

जैन सिद्धान्तमें ही पौद्गलिककर्मबन्ध व आत्मपरिणामोंके परस्पर सम्बन्धका कथन है। इतनी बात अवश्य है कि जैसा कर्मोदय होगा वैसा ही आत्मपरिणाम होगा उसमें हीनाधिकता नहीं हो सकती, किन्तु आत्माके एक ही परिणाम (स्थितिबंध अध्यवसाय) से मतिज्ञानावरणके अन्तिम निषेककी स्थिति ३० कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाणको होती है तो प्रथम निषेककी स्थिति एकसमय अधिक तीनहजारवर्ष प्रमाण होती है। उसी आत्मपरिणामसे श्रुतज्ञानावरणादिके अन्तिमनिषेककी स्थिति पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे हीन ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण हो सकती है[1]। इसीप्रकार आत्माके एक ही परिणामसे मतिज्ञानावरणके अन्तिमस्पर्धकमें जो अनुभागबन्ध होता है उसका अनन्तवांभागरूप अनुभाग प्रथमस्पर्धकमें होता है। जिस परिणामसे मतिज्ञानावरणका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है उसी आत्मपरिणामसे मतिज्ञानावरणके साथ बन्धनेवाले श्रुतज्ञानावरणादिका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणाहीन तक हो सकता है[2]। आत्मपरिणाम-कषायरूपपरिणामके अनुरूप ही स्थितिबन्ध व अनुभागबन्ध होता है, ऐसा नियम नहीं है, किन्तु कर्मअनुभागोदयके अनुरूप ही आत्माके परिणाम होते हैं; ऐसा नियम है, क्योंकि 'विपाकोऽनुभवः' इसप्रकार सूत्रवचन हैं। जो कर्मोदयके अनुरूप आत्मपरिणाम नहीं मानते उनको ईश्वरकर्तृत्व मानना पड़ा, क्योंकि कोई भी जीव स्वतंत्ररूप से नरकमें नहीं जाता नरकायु आदि कर्मोदय ही उसको नरकमें ले जाते हैं। कहा भी है—"नरकायुके बन्धबिना मिथ्यादर्शन-अविरति-कषायमात्रोंको नरकमें उत्पन्न करानेकी सामर्थ्य नहीं है[3]।"

---

१. महाबन्ध पु ३ पृ. १। २. म. बं. पु. ५ पृ. १। ३. ध. पु. १ सूत्र २५ की टीका पृ. २०५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक मनुष्य कर्म और कर्मफलका चिन्तन करता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति यह देखना व जानना चाहता है कि वह जो कुछ करता या विचारता है उसका क्या फल होता है। इसीलिए वह यह भी निर्णय करता है कि किस फलकी प्राप्तिके लिए उसके कैसे विचार व कार्य होने चाहिए। अतः सभ्यताका समस्त ऐतिहासिक, सामाजिक व धार्मिक चिन्तन कर्म और कर्मफलको अपना विषय बनाता है। इसी बातका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थमें किया गया है।

रतनचन्द जैन मुख्तार
सहारनपुर (उ. प्र.)

अक्षयतृतीया
वि० सं० २०३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"शुद्धि-पत्र"

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
५	१८	होंति	होंति
६	८	(देवत्वरूप)	(देवत्वरूप)[२]
६	२२	×	२ ज. ध पु. १ पृ ६७
८	२१	दर्शनीयोऽसि	दर्शनीयोऽसि
८	२४	तुम उत्पन्न हुए हो	तू उत्पन्न हुआ है
९	९	सातावेदनीय दुःखरूप	सातावेदनीय और दु खरूप
१०	११	घादीविं	घादीवि
१०	१२	पडिदं	पडिदं
१६	२०	गयि-जायि	गदि-जादि
१६	२१	विहायगयि	विहायगदि
१६	२२	पज्जत्तायज्जत्त	पज्जत्तापज्जत्त
१६	२३	गयिणामं	गदिणामं
१६	२४	देवगयिणामं चेदि । जायिणामं	देवगदिणामं चेदि । जादिणामं
१६	२५	चउरिंदिय जायिणामं पंचिंदियजायिणामं	चउरिंदिय जादिणाम पचिंदिय जादिणामं
२३	१३	सम्यक्त्वप्रकृति है ।	सम्यक्त्वप्रकृति है ।※
२३	२९	×	※ज. ध. पु ५ पृ. १३०
२५	१२	उपर्युक्त	जिसके उदयसे उपर्युक्त
४६	१४	जातिकर्म कानो कर्म	जातिकर्मका नोकर्म
४८	७	हैं,	×
५७	९	वज्रनाराच-अर्धनाराच	वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच
६२	२	गुण. / अबन्ध / बन्ध	गुण / बन्ध / अबन्ध
६२	१०	नहीं होता है	होता है
६२	२४	गुणस्थान / अबन्ध / बन्ध	गुणस्थान / बन्ध / अबन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
६६	१	१६	१३
७५	६	शून्यरूप प्रकृतियां हैं	शून्यरूप प्रकृतियों को है
७५	७	शून्यरूप प्रकृति यथाक्रमसे	शून्यरूप प्रकृतिका यथाक्रमसे
७५	९	एवं १२० प्रकृति जानना	एवं १२० जानना
७६	११	+अप्रमत्ताकी+	+ अप्रमत्ताकी शून्य +
७६	२१	अब पचेन्द्रियमें	अब इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा पंचेन्द्रियमें
७७	८	वनस्पतिकायजीवोंमें	वनस्पतिकायमें
७७	१६	होनेका कारण तथा	होनेका कारण कहते हैं तथा
७७	२४	कायजीवोंमें	कायके जीवोंमें
८३	७	३४ (२४+१८-५	३७ (२४+१८-५
८३	१५	"इति कायमार्गणा"	"इति योगमार्गणा"
८८	५	प्रकृति ७९	प्रकृति ६५
९२	९	प्रकृतियां	×
९६	७	५२	२२
९९	१२	मिथ्यात्व	मिथ्यात्वसे
१०२	३	सत्तोतालघुवाणं	सत्तोतालधुवाणं
१०२	५	तंजस और	तैजस, कार्मण और
१०३	११	समम्मा	समम्मो
१०३	१५	अध्रुबन्ध	अध्रुवबन्ध
१०४	४	हुहोण	दुहीण
१०७	१६	बीच जो	बीचमें जो
११०	शरीराङ्गोपाङ्ग (औदारिक)	१/७ सागर	२/७ सागर
११२	१४	को $\frac{2}{3}$, $\frac{3}{3}$	को २/७, ३/७
११३	४	उत्कृष्टस्थिति	×
११६	१२	क चारबार	को चारबार
१२०	६	शलाकाएक	शलाका एक
१२६	१२	(५वें कोष्ठकमें देखो) अजघन्य ४	अजघन्य २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२७	११	बहुकषायीजीवही	बहुकषायीजीव ही
१२९	८	९०,२५,९२,५९२ $\frac{६४}{१०८}$	९,२५,९२,५९२ $\frac{६४}{१०८}$
१३०	१५	अपवर्तनाघात	अवलम्बनकरण[1]
१३०	२८	×	१. परभवसम्बन्धी आयुकी उपरिमस्थितिमें स्थित-द्रव्यका अपकर्षणद्वारा (आबाधासे बाहर) नीचे पतन करना अवलम्बनकरण है (ध पु. १० पृ.३३०-३१)
१३२	२२	भाग देनेपर	भाग मध्य द्रव्यको देनेपर
१३७	८-९	सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी	×
१३८	८	ऐशानकल्पकादेव	ऐशानकल्पका देव
१४५	२४	तीनभावरूप	चारभावरूप
१५०	१९	अयोग्य	योग्य
१५९	२०	इसप्रकार	इसप्रकार है
१६४	४	स्त्याग्रृद्धि	स्त्यानगृद्धि
१६६	३	३६००	३६०००
१७८	२६	पु. पृ.	पु. ६ पृ.
१८०	७	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्दृष्टिदेव व नारकी
१८०	२५	समतुरस्रसंस्थान	समचतुरस्रसंस्थान
१८४	२४	है वह होता	होता है वह
१९६	टिप्पण १.	पु. २	पु. १०
२०१	२	असंख्यातगुणा, उससे	असंख्यातगुणा, उससे असंज्ञीपंचेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे
२०७	६	(२×८=१६)	(२×४=८)
२१४	९	बढ़ते हैं	बढ़ता है
२१५	१	जघन्यस्पर्धकके	जघन्ययोगस्थानके
२१८	१८	जाता अब	जाता है। अब
२२२	१९	बन्धमें स्थिति कारण	स्थितिबन्धमें कारण
२२५	२८ अन्तिम	भागित	भाजित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२२६	४	अनुभागबन्धव्यवसाय	अनुभागबन्धाध्यवसाय
२३७	अन्तिम	एकसमयके बाद	पश्चात् एक समयके लिये
२४४	१०	यहां आठप्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति होती है	×
२४४	१०	८-४-६	४-६
२४७	१	अपुण्णा	अपुण्णो
२४७	२	आराल दु	ओराल दु
२५१	गाथा	॥२७५॥	॥२९५॥
२५२	२	प्रकृति ४ हैं। असंयत	प्रकृति ४ हैं। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति १, उदयप्रकृति ९१, अनुदयप्रकृति ८। असंयत
२५९	१	संढ्णा	संढूणा
२६६	१३	में होता	में नहीं होता
२८४	१३	सम्यग्मिथ्यात्व	तीर्थङ्कर
३०४	३	वोछिदी	वोच्छिदी
३०४	४	वोछेदो	वोच्छेदो
३०७	२३	१ (सम्यग्मिथ्यात्व)	१ (मिथ्यात्व)
३०७	२५-२६	देवगत्यानुपूर्वी व	+देवगत्यानुपूर्वी-सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
३१५	२४	है।	है। असञ्ज्ञीके द्रव्यमन भी नहीं होता, किन्तु केवलीके द्रव्यमन है अतः वे असंज्ञी नहीं हैं।
३२१	टिप्पण १	बन्धव्युच्छित्ति	उदयव्युच्छित्ति
३२४	१७	धवल	जयधवल
३३५	१६	सत्ता।	सत्ता
३३५	१७	तथा	×
३३५	१८	हो उस	हो। उस हो
३३५	१९	जानना।	जानना, किन्तु जिसके देवायुका बन्ध हो गया हो उसके १३९ का सत्त्व जानना।
३३९	१८	में तिर्यंचायुकी	में नरक व तिर्यंचायुकी
३४०	११	देवायु)	×
३४०	अपूर्वकरण	क्षायिक............सत्त्व है	×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३४५	उपशांतकषाय	(क्षायिक " " ")	(आयुबन्धबिना क्षायिक " " ")
३४६	टिप्पण १	असंयत संयतावस्थाको	संयत असंयतावस्थाको
३४७	१३	पूर्वपर्यायमें	पूर्वपर्यायमें उद्वेलन होकर
३५३	१९	१३८ प्रकृति	देवायु बन्धसहित १३९ व आयुबन्धरहित १३८ प्रकृति
३५३	१९	२ व १० प्रकृतियोंका	२ व ९ या १० प्रकृतियोंका
३५४	उपशांतकषाय	१०-१३८	९ या १०-१३९ या १३८
३५७	५	सत्त्व १३८	सत्त्व १३९ व १३८
३६५	१०	ही सम्भव नहीं है ।	ही सम्भव है, किन्तु नरकगतिमें बद्धायुष्कसम्बन्धी भङ्ग सम्भव नहीं है ।
३६६	१३	तेरिच्छदेवाऊ	तेरिच्छ देववाऊ
३७५	८	मणुवायु	मणुवाउ
४१७	१५	केइं	केइ
४१९	१५	विसड	वीसड
४२१	४	वोंच्छं	वोच्छं
४२१	४	सुण	सुणह
४२२	३	उभयो ॥३९९॥	उभयो ॥३९९॥[1]
४२२	२२	लक्षण—	लक्षण[2]—
४२२	२७	×	१. प्रा. पं. सं. पृ. ७४-७९ गा. ६५-७७ तक नवप्रश्न ।
४२२	२९	×	बंधो भूत्वा क्षणं यासाम् समाप्तो निवर्तते । बधाऽपूर्ते क्षणेनैता: सान्तरा विनिवेदिता ॥९९॥ अन्तर्मुहूर्तमात्रत्वाज्जघन्यस्यापि कर्मणाम् । सर्वेषां बंधकालस्य बन्धः सामायिकोऽस्तिवो नो ॥१००॥ (अमितगति कृत सं. पं. संग्र. अ. ३)
४२३	२३	उदयव्युच्छित्तिसे	उदयव्युच्छित्तिसे पूर्व
४२५	४	बन्धी प्रकृति	उदयी प्रकृति
४२९	१	पांचवेंखानेमें ×	(१-५)
४२९	५	तिर्यंचगत्यानुपूर्वी	×
४२९	५	खाना नं. ५ में—×	आनुपूर्वी १, २, ४
४२९	६	मनुष्यगत्यानुपूर्वी	×
४२९	६	खाना नं० ५ में—×	आनुपूर्वी १, २, ४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४३०	११	खाना नं. ५ में-१,२ व ४	१ व ४
४३२	११	अधापवत्तो	अधापवत्तो
४३६	२६	बन्धे अधापमत्तो विज्झाव अबन्ध	बंधे अधापवत्तो विज्झादं अबंध
४३८	१६	और निर्माण इन	निर्माण और पांच अन्तराय इन
४४२	२२	गुणस्थान (क्षपक अपूर्वकरण)	×
४४४	१७	होता है, क्योंकि	होता है और प्रमत्तगुणस्थानमें विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि
४४५	४	जुगुच्छे अधापवत्तो गुणा	जुगुच्छे अधापवत्तो गुणो
४५४	१४	सबंधा	संबधो
४५६	२४	१. ज.ध.पु ८२	१. ज ध.पु. ८ पृ. २
४६३	१२	एवं	अन्य
४६७	२	बंधगा	बंधगो
४७२	१	भागत्ति	भागोत्ति
४९०	१८	प्रमत्त और	देशसंयतमें ८-७-६ व ५ प्रकृतिरूप है। प्रमत्त और
५०६	५	युगलोंसे बने	युगलोंको परस्पर गुणा करनेसे बने
५१०	१०	माहस्स	मोहस्स
५१९	५	नहीं है।	नहीं है। इसीकारण पांचप्रकृतिरूप सत्त्वस्थान नहीं कहा गया है।
५२४	३	णुस्सासा	णुस्सासो
५३०	५	उत्पन्न हुआ	×
५३०	५	मिश्रगुणस्थानर्ती	मिश्रगुणस्थानवर्ती
५६३	५	११२५	११,२५
५६३	१७	तीसाइ	तीसाइ[1]
५६३	२८	×	प्रा.प सं.पृ. १९८
५८६	६	॥५५९॥	॥५९९॥
६४४	४	चउबधा	चउबंधो
७१३	२४	औदारिककाय-	×
७१७	७	सभी (५७)	स्त्री व नपुंसकवेदबिना ५५
७१७	८	योगबिना शेष (५७-२) ५५	योग तथा दो प्रतिपक्षीवेद बिनाशेष (५७-४)[1]५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ०	पं	अशुद्ध	शुद्ध
७१७	१४	मिक्छत्ता	मिच्छत्ता
७१७	२८	×	१. ध.पु. ८ पृ. २६१,२६३,२४४
७१८	४	असंजम्मि	असंजमम्मि
७१८	२०	किण्हदि	किण्हादि
७१९	२०	मिस्से	मिस्स
७३७	२०	अच्चसणाएवि	अच्चासणाएवि
७३९	२०	पडिणीगा	पडिणीगो
७४९	३	भावा	भावो
७४९	१७	युक्त, दोनों	युक्त, क्षयसे युक्त दोनों
७५१	१९	क्षीणकषाय, वीतरागछद्मस्थ	क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ,
७५२	१९	भाव है।	भाव है।ॐ
७५२	२६	×	ॐध.पु. १४ पृ. १८-१९
७५८	७	और इसप्रकार	और भव्यत्व, इसप्रकार
७६१	३	एक-एक संख्यारूप	एक-एक कम संख्यारूप
७७२	१८	अट्ठठाणेण	अट्ठट्ठाणेण
७७३	११	संचारिदेखेवा	संचारिदे खेवा
८२७	२	काण्डकको जघन्य	काण्डकके चरमखण्डकी जघन्य
८३१	६	अनन्तगुणे	अनन्तगुणे विशुद्ध
८३६	६	असंख्यातवेंभाग	संख्यातवेंभाग
८३७	८	वोलाविय	वोलाविय
८७२	१९	कर्नटिक	कर्नाटक

❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"संकेतसूचि"

अ.	अध्याय
गो.क.	गोम्मटसारकर्मकाण्ड
क.प्र.	कर्मप्रकृति (भारतीयज्ञानपीठ)
ज.ध.	जयधवल (दि. जैन संघ चौरासीमथुरा)
ध.	धवल
नं.	नम्बर
पृ.	पृष्ठ
पु.	पुस्तक
प्रा.पं.सं.	प्राकृतपंचसंग्रह (भारतीयज्ञानपीठ)
म बन्ध	महाबन्ध (भारतीयज्ञानपीठ)
रा.वा.	तत्त्वार्थराजवार्तिक (भारतीयज्ञानपीठ)
स.सि.	सर्वार्थसिद्धि (भारतीयज्ञानपीठ)
त्रि.सा.	त्रिलोकसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"विषयानुक्रम"

"प्रथमाधिकार (प्रकृतिसमुत्कीर्तनाधिकार)"

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
१	१	मंगलाचरण
२	२	प्रकृतिका अर्थ, कर्म व आत्माका अनादिसम्बन्ध इतरेतराश्रयदोषका निराकरण व जीव कथंचित् मूर्तिक है।
३	४	देह उदयसे सहित होनेके कारण जीव सर्वांगसे कर्मोंको ग्रहण करता है।
४	४	सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्वरूप समयप्रबद्ध प्रतिसमय बंधता है
५	४–५	प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध उदय आकर निर्जीर्ण हो जाता है और डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य सत्तामें रहता है।
६	५	द्रव्यकर्म व भावकर्म
७	५	द्रव्यकर्मके भेद-प्रभेद संख्या
८–१४	६–९	आठकर्मोंके नाम तथा उनमें घातिया व अघातिया भेद तथा आठों कर्मोंका कार्य
१५	९	जीवके प्रधानगुण दर्शन, ज्ञान व सम्यक्त्व हैं
१६–२०	९–११	आठोंकर्मोंके पाठक्रमकी सिद्धि
२१	११–१३	दृष्टान्त द्वारा कर्मोंके स्वभावका कथन
२२	१३	ज्ञानावरणादि आठकर्मोंके उत्तरभेदोंकी संख्या
सूत्र	१३	ज्ञानावरण व दर्शनावरणकर्मोंके उत्तरभेदोंके नाम
२३–२५	१३–१४	स्त्यानगृद्धि आदि पांच निद्राओंका कार्य
सूत्र	१४	वेदनीय व मोहनीयकर्मोंके उत्तरभेदोंके नाम
२६	१४–१५	प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे मिथ्यात्वकर्मके तीन भेद हो जाते हैं, उसमें मिथ्यात्वके द्रव्यसे असख्यातगुणाहीन सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य उससे असंख्यातगुणाहीन सम्यक्त्वका द्रव्य है।
सूत्र	१६–१७	चारित्रमोहनीय, आयु और नामकर्मोंके उत्तर भेदोंके नाम तथा १६ कषायोंमें हीनाधिकद्रव्यका कथन
२७	१८	पांच शरीर-बन्धन नामकर्मके १५ भंग
सूत्र	१९	शरीरसंघात, संस्थान व अंगोपांगनामकर्मके भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
२८	१९	आठ अंगोंका नाम तथा उपांगोंका निर्देश
सूत्र	१९	छहसंहननोंके नाम
२९-३१	२०	किस-किस संहननवाला जीव मरकर कहां-कहां उत्पन्न हो सकता है
३२	२०	कर्मभूमि महिलाओंके तीन हीनसंहनन
सूत्र	२१	वर्णचतुष्क, आनुपूर्वी, अगुरुलघुषट्कके भेदोंका तथा १० सप्रतिपक्षी-प्रकृतियोंके नाम ।
३३	२१	आतप व उद्योत नामकर्मका लक्षण
सूत्र	२२	गोत्र व अन्तरायकर्मसम्बन्धी उत्तरभेदोंके नाम
	२२-३०	उत्तरप्रकृतियोंका निरुक्ति लक्षण
	२२	अभव्यके मनःपर्यय व केवलज्ञानावरणकी सिद्धि
	२८	स्थिरनामकर्म तथा सप्तधातुके नाम व उनके बननेका क्रम और काल एवं वात-पित्तादि सप्तधातुके नाम व परिणमन
३४	३०	पांचबन्धन व पांच संघातका शरीरनामकर्ममें व वर्णादिबीसका वर्णादिचारमें अन्तर्भाव
३५-३८	३०-३१	बन्ध उदय व सत्वरूप प्रकृतियोंकी संख्या
३९-४०	३१-३२	सर्वघाति व देशघाति प्रकृतियोंके नाम
४१-४४	३३-३४	पुण्य व पाप प्रकृतियोंके नाम व संख्या
४५	३४-३५	अनन्तानुबन्धीकषाय सम्यग्दर्शनको घातती है तथा अन्य तीनकषाय यथाक्रम चारित्रको घातती है ।
४६	३५	कषायोंका वासनाकाल
४७-५१	३५-३७	पुद्गलविपाकी व भवविपाकी प्रकृतियोंके नाम
५२-८६	३७-४८	नामादि चारनिक्षेपोंका कथन
६९-८५	४३-४७	मूल व उत्तरप्रकृतिके उदयके नोकर्म

‘द्वितीय अधिकार (बन्धोदयसत्त्वाधिकार)’

८७	४९	मंगलाचरण
८८	४९	स्तव, स्तुति, धर्मकथा (वस्तु) का लक्षण
८९	५०	प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे बंध चारप्रकारका, इनमें से भी प्रत्येकके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्यरूप चार-चार भेद
९०	५०	उत्कृष्ट आदिके भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवरूप चार भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
९१	५१	जिन कर्मोंका मिथ्यात्वादिगुणस्थानवर्ती जीवोंके उत्कृष्टस्थिति अनुभाग व प्रदेशबन्ध होता है उन कर्मोंका अनुत्कृष्ट व अजघन्यस्थिति आदि बन्ध सादि इत्यादि चारप्रकारका होता है।
		प्रकृतिबन्ध—
९२–९३	५१–५२	तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका विशेषनियम
९४–१०२	५३–५८	गुणस्थानोंमें बन्धव्युच्छित्ति
१०३–१०४	५८–६०	गुणस्थानोंमें बन्ध व अबन्धप्रकृतियोंकी संख्या
१०५–१०७	६०–६४	नरकगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां
१०८–१०९	६४–६६	तिर्यञ्चगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां
११०	६६–६८	मनुष्यगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां
१११–११२	६९–७३	देवगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां
११३	७४–७६	इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति
११४–११५ का पूर्वार्ध	७६–७८	कायमार्गणासम्बन्धी बन्ध, अबन्ध व बन्धव्युच्छित्ति
११५ के उत्तरार्ध से ११९ के पूर्वार्ध तक	७८–८३	योगमार्गणामें बन्ध-अबन्ध व बन्धव्युच्छिन्न प्रकृतियां
११९ के उत्तरार्ध से १२१ तक	८३–१००	शेष मार्गणाओंमें बन्ध-अबन्ध व बन्धव्युच्छिन्न प्रकृतियां
१२२–१२६	१००–१०३	सादि अनादि ध्रुव व अध्रुव बन्ध
१२५	१०२	सप्रतिपक्ष व अप्रतिपक्ष प्रकृतियां
		॥ इति प्रकृतिबन्धप्रकरण ॥
		स्थितिबन्ध—
१२७	१०३	आठकर्मोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध
१२८–१३४	१०४–१०५	उत्तरप्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध
१३५–१३८	१०६–१०७	उत्कृष्टस्थितिबन्धके स्वामी
१३९	१०८	मूलप्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध
१४०–१४३	१०८–१०९	उत्तरप्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
१४४-१४५	११२-११४	एकेन्द्रिय व विकलत्रय जीवोंका स्थितिबन्ध
१४६-१४७	११४-११७	आबाधाकाल व आबाधाकाण्डक
१४८	११७-१२२	चौदह जीवसमासोंमें उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिके भेद
१४९	१२२-१२३	सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रियादि जीवोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिका शलाका द्वारा कथन
१५०	१२३-१२५	संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थिति
१५१	१२५	जघन्यस्थितिबन्धके स्वामी
१५२-१५३	१२५-१२७	जघन्यस्थितिमें सादि इत्यादि चारभेद
१५४	१२७	तीन (मनुष्य-तिर्यंच व देव) आयुके अतिरिक्त शेष शुभ व अशुभकर्मोंका स्थितिबन्ध अशुभ है।
१५५	१२७-१२८	आबाधाका लक्षण
१५६-१५७ ९१४से९१६	१२८-१२९ ८३४-८३५	मूल व उत्तर प्रकृतियोंकी आबाधा
१५८व ९१७	१२९-८३५ ८३६	आयुकर्मकी आबाधा
१५९-९१८	१३०-८३६	उदीरणाकी अपेक्षा आबाधाकाल। परभवसंबन्धी आयुकी उदीरणा नहीं होती
१६०से१६२ ९१९से९४०	१३१-१३४ ८३६-८५२	निषेकरचना व चय प्राप्त करनेकी विधि आदिका कथन

॥ इति स्थितिबन्धप्रकरण ॥

अनुभागबन्धप्रकरण—

१६३	१३४	शुभ-अशुभप्रकृतियोंके अनुभागबन्धके कारण विशुद्ध व संक्लेशपरिणाम
१६४-१६९	१३५-१३८	उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी
१७०-१७७	१३८-१४१	जघन्यअनुभागबन्धके स्वामी
	१४१	परिवर्तमान व अपरिवर्तमान मध्यमपरिणाम
१७८-१७९	१४१-१४३	अनुभागबन्धसम्बन्धी ध्रुव, अध्रुव, सादि, अनादि
१८०	१४३-१४४	अनुभागका लक्षण तथा घातियाकर्मोंका अनुभाग लता आदिरूप
१८१	१४४	दर्शनमोहनीयसम्बन्धी देशघाति तथा लता आदि विभाजन
१८२	१४५	देशघाति व सर्वघाति प्रकृतियां
१८३-१८४	१४५-१४६	अघातियाकर्मोंका अनुभाग, पुण्य व पापरूप प्रकृतियां

॥ इति अनुभागप्रकरण ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
		प्रदेशबन्ध–
१८५	१४७	एकक्षेत्रावगाह स्थित कर्मवर्गणाओंको आत्मा अपने सर्वप्रदेशोंसे बांधता है
१८६	१४७	एकक्षेत्रका लक्षण
१८७	१४८	पुद्गलद्रव्यका अनंतवांभाग कर्मरूप होने योग्य है शेष अनंतबहुभाग अयोग्य है
१८८	१४८	भूतकालमें सर्वजीवोंके द्वारा बांधागया पुद्गलद्रव्यसादि है।
१८९	१४९–१५०	एकक्षेत्रसंबंधी तथा अनेकक्षेत्रसम्बन्धी सादि योग्य व अयोग्यपुद्गल द्रव्यका प्रमाण
१९०	१५०	जीव सादि, अनादि व उभयरूप कर्मपुद्गलको ग्रहण करता है
१९१	१५१	समयप्रबद्धका स्वरूप
१९२–१९५	१५१–१५५	कर्मप्रदेशोंका आठकर्मोंमें बटवारा
१९६	१५५	उत्तरप्रकृतियोंमें बटवारेका क्रम
१९७–२०४	१५६–१७०	सर्वघाति तथा देशघातिमें बटवारा
	१६९	मिथ्यात्व व बारहकषायका द्रव्य सर्वघातिरूप ही है
२०५	१७१–१७२	नोकषायोंका बन्ध कितने कालतक होता है, तत्सम्बन्धी अल्पबहुत्व
२०६	१७२–१७४	नामकर्मसम्बन्धी पिण्ड व अपिण्ड प्रकृतियों तथा अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंमें विपरीतक्रमसे द्रव्य देनेका कथन
२०७–२०९	१७४–१७७	उत्कृष्टादि प्रदेशबन्धके सादि इत्यादि भेद
२१०–२१७	१७७–१८३	उत्कृष्ट व जघन्यप्रदेशबन्धके स्वामी
२१८–२२२	१८४–१८६	योगका स्वरूप, उपपादयोग, परिणामयोग, एकान्तानुवृद्धियोग
२२३–२२७	१८७–१९०	योगस्थानोंकी संख्या तथा अवयव, उनका स्वरूप व संख्या
२२८	१९०	प्रथमवर्गणा, चय, वर्गणा (निषेक) सम्बन्धी अङ्कसन्दृष्टि
२२९	१९१	प्रत्येक स्पर्धकको प्रथमवर्गणादिके एकवर्गमें अविभागप्रतिच्छेद तथा योग-स्थानोंमें वृद्धि आदि विशेषकथन है
२३०–२३१	१९६–१९८	अंगुलके असंख्यातवेंभागमात्र जघन्यस्पर्धकोंके बढ़नेपर द्वितीययोगस्थान होता है इतनी वृद्धिसे चरमस्पर्धकके आगे अपूर्वस्पर्धक नहीं होता, किन्तु श्रेणिके असंख्यातवेंभागप्रमाणस्थान चढ़नेपर अपूर्वस्पर्धक होता है।
२३२–२४०	१९८–२०३	चौदह जीवसमासोंमें उपपाद एकांतानुवृद्धि परिणामयोगके जघन्य व उत्कृष्ट इसप्रकार ८४ स्थानोंमें अल्पब त्वका कथन
२४१	२०३	१४ जीवसमाससम्बन्धी ८४ स्थानोंमें पूर्व-पूर्वके स्थानसे उत्तरवर्तीस्थान पल्यके असंख्यातवेंभाग गुणा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
२४२	२०३	उपपादयोगस्थान व एकान्तानुवृद्धियोगस्थान व परिणामयोगस्थानका काल
२४३	२०३–२०५	परिणामयोगस्थानोंका कालकी अपेक्षा अल्पबहुत्व व यवमध्य
२४४–२४६	२०५–२०९	त्रस परिणामयोगस्थानोंमें जीवोंका परिणाम, जीव यवमध्य
२४७–२४९	२०९–२१३	द्रव्य (त्रस जीवों) का योग अध्वान, नानागुणहानि, गुणहानिका प्रमाण
२५०	२१३–२१४	योगवृद्धिसे समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण
२५१–२५६	२१४–२१६	जघन्ययोगस्थानसे उत्कृष्टयोगस्थानतक वृद्धिका क्रम, योगस्थानोंका प्रमाण
२५७	२१६	प्रकृति आदि बन्धके कारण
२५८–२५९	२१७–२२५	योगस्थान, प्रकृतिभेद, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान
२६०	२२५	अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान, कर्मप्रदेशोंका अल्पबहुत्व
		॥ इतिप्रदेशबन्ध प्रकरण ॥
		उदयप्रकरण—
२६१–२६२	२३३	आहारक, तीर्थंकर, मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृति व आनुपूर्वी उदयसम्बन्धी नियम
२६३–२७२	२३४–२४१	उदयव्युच्छित्ति
२७३–२७५	२४१–२४३	केवलीभगवानके साता व असाता उदय व इन्द्रियजनित सुख दुःख नहीं है
२७६–२७७	२४३	गुणस्थानोंमें उदय व अनुदयप्रकृतियां
२७८–२८०	२४३–२४४	उदय और उदीरणामें तीनगुणस्थानोंमें विशेषता
२८१–२८३	२४४–२४५	गुणस्थानोंमें उदीरणा-अनुदीरणारूप प्रकृति
२८४–२८९	२४६–२४७	मार्गणाओंमें उदयसम्बन्धी विशेषता
२९०–२९२	२४७–२४९	प्रथमनरकमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
२९३	२४९–२५०	दूसरेसे सातवें नरकतक कर्मोदय व उदयव्युच्छित्ति
२९४–२९७	२५०–२५४	तिर्यंचगतिमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
२९८–३०१	२५४–२६०	मनुष्यगतिमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०२–३०३	२६०–२६२	भोगभूमिजमनुष्य व तिर्यंचमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०४–३०५	२६२–२६५	देवगतिमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०६–३०८	२६५–२६९	इन्द्रियमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०९–३१० पूर्वार्ध	२६९–२७३	कायमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३१० उत्त. से ३१९	२७३–२८५	योगमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
३२०-३२१	२८६-२९०	वेदमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२२	२९१-२९४	कषायमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२३ से ३२५ पू.	२९४-२९८	ज्ञानमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
	२९८-३००	संयममार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
	३०१-३०३	दर्शनमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२५ उत्त. से ३२६	३०४-३०६	लेश्यामार्गणामें कृष्ण-नील-कपोतलेश्यामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२७	३०६-३०९	शुभलेश्याओंमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२८-३२९	३१०-३१५	भव्य-अभव्य व उपशम-क्षयोपशम तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें उदय व उदय-व्युच्छित्ति
३३० व ३३१ पू.	३१५-३१८	संज्ञीमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३३१ उत्त. व ३३२	३१९-३२१	आहारमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
		।। इति उदयप्रकरण ।।
		सत्त्वप्रकरण—
३३३	३२२	मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थंकर व आहारकद्विकका सत्त्व युगपत् नहीं होता।
३३४	३२२-३२३	किसी भी आयुका बंध होनेपर सम्यक्त्व हो सकता है, किन्तु देवायुके बिना अन्य तीन आयुका बन्ध होनेपर अणुव्रत या महाव्रत नहीं हो सकते
३३५-३३६	३२३-३२४	नरक-तिर्यंच व देवायुका सत्त्व होनेपर क्रमशः अणुव्रत, महाव्रत, क्षपक-श्रेणी नहीं होती तथा क्षायिकसम्यक्त्वकी विधि
३३७	३२४	अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानोंमें क्षय होनेवाली प्रकृतियां
	३२५-३२७	उपशमश्रेणी विधान
	३२७-३२९	क्षपकश्रेणी विधान
३३८-३४१	३३०-३३१	क्षपकश्रेणीमें क्षययोग्य प्रकृतियां
३४२	३३१-३३४	गुणस्थानोंमें सत्त्व-असत्त्वरूप प्रकृतियां क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा
३४३	३३४-३३५	उपशमश्रेणीको अपेक्षा कर्मप्रकृतियां उपशमानेका क्रम तथा सत्त्व-असत्त्व-प्रकृतियां
३४४-३४८	३३५-३४३	चारों गतियोंमें गुणस्थानकी अपेक्षा सत्त्व-असत्त्वप्रकृतियां
३४९	३४३-३४६	इन्द्रियमार्गणा व कायमार्गणामें गुणस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
	३४६	उद्वेलनका लक्षण
३५०–३५१	३४६–३४९	उद्वेलनप्रकृतियोंके नाम व स्वामी, उद्वेलनाकी अपेक्षा विकलत्रय व एकेन्द्रियोंमें सत्व व असत्व प्रकृतियां
३५२–३५३	३४९–३५२	योगमार्गणामें सत्व-असत्वका कथन
३५४	३५२–३५५	वेदमार्गणासे भव्यमार्गणातक सत्व-असत्वका कथन
३५५	३५५–३५८	अभव्यमार्गणासे आहारमार्गणातक सत्व-असत्वका कथन
३५६	३५८–३५९	अनाहारमार्गणामें सत्व-असत्वप्रकृतियां
३५७	३५९	अन्तिममङ्गलाचरण

॥ इति बंधोदयसत्वाधिकार ॥

सत्वभंगाधिकार (तृतीयअधिकार)

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
३५८	३६०	मंगलाचरण तथा गुणस्थानोंमें सत्वभङ्ग कहनेकी प्रतिज्ञा
३५९	३६०–३६१	आयुबन्ध व अबन्धकी अपेक्षा सत्वस्थान व भंगोंका कथन करनेकी प्रतिज्ञा
३६०	३६१	आयुबन्धकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें असत्व प्रकृतियोंकी संख्या
३६० क	३६१–३६२	सयोगकेवलीके ६३ असत्वरूप प्रकृतियोंके नाम तथा गुणस्थानोंमें सत्व-प्रकृतियोंकी संख्या
३६१	३६१–३६४	गुणस्थानोंमें असत्वप्रकृतियोंके नाम
३६२–३६३	३६४	गुणस्थानोंमें सत्वस्थान संख्या
३६३ क	३६५	मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थंकरके सत्वसहित आयुबन्ध व अबन्धका कथन
३६४	३६५–३६६	सत्वस्थानोंमें भङ्गोंकी संख्या
३६४ क-ख	३६६	आयुकर्मके आयुबन्धकी अपेक्षा भङ्ग
३६५–३७१	३६७–३८३	मिथ्यात्वगुणस्थानमें सत्वस्थानोंका व भङ्गोंका विवरण
३७२-३७५ख	३८३–३९०	सासादन व मिश्रगुणस्थानमें सत्वस्थान व भंग
३७६–३८१	३९०–४०५	असंयतगुणस्थानमें सत्वस्थान व भंग
	३९३	तीन कल्याणकवाले तीर्थंकर
३८२	४०५–४०७	पांचवें-छठे-सातवें गुणस्थानोंमें सत्वस्थान व भङ्ग
३८३–३८४ व ३९१	४०७–४१२ व ४१७–४१८	अपूर्वकरणगुणस्थान (उपशामक) में सत्वस्थान व भङ्ग
३८५	४१२	अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय व उपशांतमोहमें अपूर्वकरणउपशामकके समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
३८५	४१२-४१३	क्षपकअपूर्वकरणमें सत्वस्थान व भङ्ग
३८६-३८८ व३९१-९२	४१३-४१६ ४१७-४१८	क्षपकअनिवृत्तिकरणमें सत्वस्थान व भङ्ग
३८९	४१६	क्षपकसूक्ष्मसांपराय और क्षीणमोहगुणस्थानमें सत्वस्थान व भङ्ग
३९०-३९०क	४१६-४१७	सयोगी व अयोगीगुणस्थानोंमें सत्वस्थान व भंग
३९१	४१७-४१८	उपशमश्रेणीमें ४ अनन्तानुबन्धीका सत्व नहीं है व क्षपकश्रेणी पहले ८ कषायका क्षय
३९२	४१८	दूसरेमत अनुसार अनिवृत्तिकरणक्षपकमें मायारहित चारस्थान
३९३-३९४	४१८-१९	दूसरे मतोंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें स्थानों व भंगोंका कथन
३९५	४२०	सत्वस्थानोंको पढ़ने-सुनने अथवा भावना करनेका फलनिर्वाण सुख
३९७-३९७	४२०	श्री कनकनन्दि आचार्यद्वारा सत्वस्थानोंका कथन किया गया व सिद्धान्त-चक्रवर्तीका लक्षण

॥ इति सत्वाधिकार ॥

त्रिचूलिकाधिकार (चतुर्थाधिकार)

३९८	४२१	मंगलाचरण, नवप्रश्नचूलिका, पंचभागाहारचूलिका, दशकरणचूलिका
३९९-४०७	४२२-४३१	नवप्रश्नोंके नाम, तत्सम्बन्धी प्रकृतियोंके, सान्तर व निरन्तरका लक्षण, व्युच्छित्तिका लक्षण
४००-४०१	४२३-४२४	बन्धव्युच्छित्ति व उदयव्युच्छित्ति इन दोनोंका पूर्वापर व युगपत् विचार
४०२-४०३	४२५-४२५	स्वोदय व परोदय तथा स्वोदयपरोदयबन्ध
४०४-४०७	४२५-४३१	सान्तर व निरन्तर तथा सान्तरनिरन्तरबन्ध

॥ इति नवप्रश्नचूलिका ॥

"पंचभागाहारचूलिका"

४०८	४३२	मंगलाचरण
४०९-४१०	४३२-४३४	पंचभागाहारोंके नाम-लक्षण व कार्य, बन्ध होनेपर संक्रमण होता है
४११से४१३ ४१५से४२८	४३४-४५०	किन प्रकृतियोंका कहांपर कौनसा संक्रमण होता है और कौनसा संक्रमण नहीं होता
४१४	४३५	तिर्यंच एकादशप्रकृतियोंके नाम
४२९	४५०	स्थिति व अनुभागबंध सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्यंत है, वहींतक संक्रमण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
४३०–४३५	४५०–४५३	पंचभागाहार व उत्कर्षण-अपकर्षणभागाहारसम्बन्धी अल्पबहुत्व
		॥ इतिपंचभागाहारचूलिका ॥
		अथ दसकरणचूलिका—
४३६	४५४	मंगलाचरण
४३७–४४०	४५४–४६२	दसकरणोंके नाम व लक्षण
४४१–४५०	४६२–४६५	कर्मप्रकृति व गुणस्थानोंमें दसकरणोंका कथन
४४४	४६३	बंधके समय ही उत्कर्षण व संक्रमण होता है
४५०	४६५	उपशामनाकरण, निधत्तिकरण, निकाचितकरण ये तीनों अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानके प्रथमसमयमें व्युच्छिन्न हो जाते हैं
		॥ इति दसकरणचूलिका ॥
		अथ स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ५
४५१	४६६	मंगलाचरणपूर्वक प्रकृतियोंके बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानोंको कहनेकी प्रतिज्ञा
४५२	४६७	गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतिबन्धस्थान तथा उपशांतमोह आदि तीन गुणस्थानोंमें सातावेदनीयका बन्ध
४५३	४६७–४६८	मूलप्रकृतियोंमें भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्यबन्ध
४५४–४५६	४६८–४६९	मूलप्रकृतियोंके उदय व उदीरणास्थान
४५७	४६९	मूलप्रकृतियोंके सत्त्वस्थान
४५८	४७०	ज्ञानावरणादिमें प्रत्येककर्ममें बन्धस्थानोंका कथन
४५९–४६०	४७०–४७१	दर्शनावरणके बन्धस्थान भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित व अवक्तव्यबन्ध
४६१	४७१	दर्शनावरणके उदयस्थान
४६२	४७२	दर्शनावरणके सत्त्वस्थान
४६३–४६५	४७२–४७३	मोहनीयकर्मके १० बन्धस्थानोंका गुणस्थानमें कथन, उनमें ध्रुवबंधीप्रकृति
४६६–६७	४७३–४७५	मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें भंगोंका कथन
४६८	४७५	मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें भुजाकार, अल्पतर व अवस्थितबंधोंकी संख्या
४६९–४७०	४७६–४७८	भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित व अवक्तव्यबन्धोंका लक्षण और उनकी संख्याओंका विवरण
४७१–४७२	४७८–४८१	मोहनीयकर्मके भुजाकारबन्धोंके भंगोंका कथन
४७३	४८२–४८३	मोहनीयकर्मके अल्पतरबन्धोंके भङ्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
४७४	४८३	मोहनीयकर्मके अवक्तव्य व अवस्थितबन्धोंके भङ्ग
४७५–४८९	४८४–४९७	मोहनीयकर्मके उदयस्थान व उनके भंगों तथा प्रकृतियोंकी संख्या
४७८	४८८	अनन्तानुबंधीके विसंयोजकके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवलीतक अनुदय
४९० से ५०७	४९७–५१३	मोहनीयकर्मके उदयस्थानों व उनकी प्रकृतियोंका गुणस्थानोंमें उपयोग, योग, संयम, देशसंयम लेश्या और सम्यक्त्वकी अपेक्षा कथन
५०३	५११	किस गुणस्थानमें कौन-कौनसी लेश्या होती है ?
५०८–५१५	५१४–५१९	मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थान
५१६–५१८	५१९–५२१	मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थान
५१९–२०	५२१	नामकर्मसम्बन्धो स्थानोंके आधारभूत ४१ जीवपदोंका कथन
५२१	५२२	गुणस्थानोंमें नामकर्मके बंधस्थानोंका कथन
५२२–२३	५२२–२३	नामकर्मके बन्धस्थानमें कर्मपदका कथन
५२४	५२३	आतप और उद्योतप्रकृति किस जीवपदके साथ बंधती है ?
५२५	५२३	तीर्थंकर प्रकृतिका कौन जीव किसगति सहित बन्ध करते हैं ?
५२६–५२९	५२३–५२४	नामकर्मकी ध्रुवप्रकृतियां
५३०–३१	५२५–२६	बंधस्थानोंके भेद
५३२–५३७	५२७–५२९	बन्धस्थानोंके भङ्ग
५३८–५४३	५२९–५३१	किसगतिका जीव मरकर कहां उत्पन्न होता है और क्या-क्या प्राप्त कर सकता है ?
५४४–५५१	५३१–५५२	चौदहमार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थानोंका कथन
५५२–५३	५५२–५५४	नामकर्मके बन्धस्थानोंमें पुनरुक्तभङ्ग
५५४–५५व ६३–५८२	५५४व ५५८–५७४	बन्धस्थानोंमें भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यस्थानोंकी संख्या आदि, भुजाकारादिके लक्षण।
५५६–५५९	५५४–५५६	किसगुणस्थानसे गिरकर या चढ़कर किस-किस गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है ?
५६०–६१	५५६–५७	किस-किस गुणस्थानवाले मरणको प्राप्त नहीं होते ?
५६२	५५७	कृतकृत्यवेदककालके चारभागोंमें मरणको व्यवस्था
५८३–५९८	५७५–५८६	नामकर्मक उदयस्थान
५८६–८७	५७६	केवलीसमुद्घातमें छहों पर्याप्तियां
५९१	५७७	तीर्थंकरप्रकृतिका उदय केवलीके ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
५५८–६०८	५८६–५९८	नामकर्मके उदयस्थानोंके भङ्ग
६०९–६२६	५९८–६०७	नामकर्म सत्त्वस्थान
६११	५९९–६००	मनुष्यगत्यानुपूर्वीका क्षय अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमय या चरमसमयमें
६१२–६१७	६०१–६०३	उद्वेलनाप्रकृति, स्वामी व क्रम
६१५	६०२	वेदकयोग्यकाल, उपशमसम्यक्त्वयोग्यकाल
६१८–६१९	६०३–६०४	प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व. देशसयम, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना, सकलसंयम व उपशमश्रेणि कितनीबार
६२७–६२९	६०८–६०९	मूलप्रकृतिसम्बन्धी बन्धोदयसत्त्व भङ्ग
६३०–६३४	६१०–६१२	उत्तरप्रकृतियोंमें बन्धोदयसत्त्व भङ्ग
६३५–६३८	६१२–१३	गोत्रकर्मके त्रिसंयोगी भंग
६३९–६४९	६१४–६२०	आयुकर्मके त्रिसंयोगीभङ्ग
६५०–६५२	६२१	वेदनीय-आयु-गोत्र इन तीनों गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या
६५३–६९१	६२१–६४८	मोहनीयकर्मके भंग गुणस्थानोंमें
६९२–७३९	६४८–६६८	नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वसम्बन्धी त्रिसंयोगी भंग गुणस्थान व मार्गणाओंमें
७४०–७८४	६६९–७०८	नामकर्मके बन्ध आदिमें एकको आधार और दो को आधेय मानकर कथन

बन्धप्रत्ययाधिकार ६

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
७८५	७०९	मंगलाचरण
७८६–७९०	७०९–७१२	प्रत्ययके भेद, गुणस्थानोंमें प्रत्यय
अन्यग्रन्थकी क्षे. ७ गाथा	७१३–७१५	प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति व अनुदयका कथन
प्रा.पं.सं.की क्षे. १७ गाथा	७१५–७१९	मार्गणाओंमें प्रत्यय
७९१	७२०	प्रत्ययोंके स्थान, स्थानोंके प्रकार, कूटप्रकार, कूटोच्चारण व भंग
७९२	७२०–२१	गुणस्थानोंमें प्रत्ययस्थान
७९३	७२१–७२३	प्रत्ययस्थानोंके प्रकार
७९४–७९८	७२३–७३६	बंधप्रत्ययोंमें कूटप्रकार, कूटोच्चारण व भंगसंख्या
७९९	७३६–३७	एकसंयोगी, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंगसंख्या निकालनेका करणसूत्र गणित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
८००–८१०	७३७–७४६	ज्ञानावरणादि कर्मोंमें अनुभागबन्धके विशेष प्रत्यय
	७४६	महाबन्धग्रन्थानुसार प्रत्ययोंका कथन
	७४७–४८	रत्नत्रय बंधका भी और मोक्षका भी कारण है
		॥ इति बंधप्रत्ययाधिकार ॥
		भावचूलिकाधिकार ७
८११	७४८	मंगलाचरणसहित भावप्ररूपणा कहनेकी प्रतिज्ञा
८१२–८१९	७४८–७५५	औपशमिकादि पांचभावोंका कथन
८१९ टीका	७५३	जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व औदयिक है
,,	७५४	सिद्ध उपचारसे जीव हैं
,,	७५४–७५५	आत्मा मूर्त या अमूर्त
८२०–८७५	७५५–८०९	गुणस्थान व मार्गणामें प्रत्येकभंग व संयोगीभंग
८७६	८०९	एकान्तमतोंका कथन, क्रियावादी आदिके भेद
८७७–७८	८१०	क्रियावादियोंके भेदोंकी उत्पत्ति
८७९	८११	एकान्तकालवादका लक्षण
८८०	८११	ईश्वरकृतवाद एकान्त
८८१	८११	आत्मवादएकान्त
८८२	८११–१२	नियतिवादएकान्त
८८३	८१२	स्वभाववादएकान्त
८८४–८५	८१२	अक्रियावादियोंके भंग
८८६–८७	८१३	अज्ञानवादके भंग
८८८–८९	८१४	वैनयिकवादियोंके भंग
८९०	८१४–८१५	पुरुषार्थवाद एकान्त
८९१	८१५	दैववाद एकान्त
८९२	८१५	संयोगवाद एकान्त
८९३	८१५	लोकवाद
८९४	८१५–८१६	जितने वचनके मार्ग हैं उतने नय हैं
८९५	८१६–८१७	परसमयका वचन 'सर्वथा' है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा नं०	पृष्ठ नं०	विषय
		त्रिकरणचूलिकाधिकार ८
८९६	८१७	मंगलाचरण
८९७	८१७–१८	तीनकरणोंके नाम
८९८–९०८	८२३–८२९	अधःकरण व अनुकृष्टिरचना
९०९–९१०	८२९–८३२	अपूर्वकरण, स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक, गुणश्रेणी
९११–९१३	८३२–८३३	अनिवृत्तिकरण
		कर्मस्थितिरचनाधिकार ९
९१३	८३४	मंगलाचरण
९१४–९१६ १५६–१५७	८३४–८३५ १२८–१२९	आबाधाकाल सातकर्मोंका
९१७, १५८	८३५–३६ व १२९	आयुकर्मकी आबाधा
९१८,१५९	१३०,८३६	उदीरणाका आबाधाकाल
९१९–९४० १६०–१६२	८३६–८५२ १३१–१३४	निषेकरचना
९४१	८५३	आबाधाकाल समाप्त होनेपर क्रमसे-निषेक निर्जीर्ण होते हैं
९४२	८५३	एकसमयप्रबद्धप्रमाण बंधता है और उतना निर्जीर्ण होते हैं
९४३	८५४	सत्तारूप द्रव्य कुछकम डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध
९४४	८५४	त्रिकोणयन्त्र जोड़नेकी विधि
९४५–९४६	८५५–५६	स्थितिके भेदोंका कथन निरन्तर बन्धस्थान व करणपरिणामोंमें सान्तर बन्धस्थान
९४७–९६२	८५६–८६९	स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान
९६३–९६४	८६९–८७०	स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंमें अनुभागाध्यवसायस्थान
९६५–९७२	८७१–७२	प्रशस्ति

॥ इति गोम्मटसारकर्मकाण्डः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

"सिद्धान्तज्ञानदीपिका" हिन्दी टीका

❖

अथ प्रकृतिसमुत्कीर्तनाधिकार

"मंगलाचरणम्"

पणमिय सिरसा णेमिं गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं पयडिसमुक्कित्तणं[1] वोच्छं ॥१॥

अर्थ—जो सम्यक्त्व आदि गुणरूपी रत्नों के स्थान हैं, गुणरत्नों सें विभूषित हैं, मोक्षरूपी महालक्ष्मी को देने वाले हैं ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकर देव को मस्तक झुकाकर प्रणाम कर मैं प्रकृति समुत्कीर्तन नामक ग्रन्थ को कहूँगा ।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादि मूल भेद तथा उनके उत्तर भेदों से सहित समुत्कीर्तन अर्थात् स्वरूप वर्णन है जिसमें उसे प्रकृति समुत्कीर्तन ग्रन्थ कहते हैं । सो क्या करके मैं ऐसे ग्रन्थ को कहूँगा ? श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को शिर नवाकर नमस्कार करके कहूँगा । कैसे हैं वे नेमिनाथ भगवान ? गुणरूपी रत्न के आभूषण से जो विभूषित हैं, पुनः कैसे हैं ? जो महान् वि-विशिष्ट ई-लक्ष्मी, उसको राति-देते हैं वे महावीर हैं, पुनः कैसे हैं ? आत्मस्वरूप की उपलब्धि रूप जो सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व वही हुआ रत्न, उसके जो स्थान स्वरूप हैं । इन गुणों से विशिष्ट इष्ट देवता नमस्कार पूर्वक प्रकृति समुत्कीर्तन ग्रन्थ को कहने की आचार्य ने प्रतिज्ञा की है ।

---

१. पयडिसमुक्कित्तणं—पयडिसरुवणिरुवणं (ध. पु. ६ पृ ५ सू. ३ की टीका)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—यहां पर ग्रन्थकर्त्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य ने नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके अपने उत्तर भेद सहित ज्ञानावरणादि मूल कर्म प्रकृति का वर्णन करने वाले 'प्रकृति समुत्कीर्तन' ग्रन्थ को कहने की प्रतिज्ञा की है।

प्रकृति शब्द का क्या अर्थ है, इसके उत्तर स्वरूप आचार्य गाथा सूत्र कहते हैं—

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

अर्थ—प्रकृति, शील और स्वभाव ये एकार्थवाची हैं। जिस प्रकार स्वर्ण-पाषाण में किट्टकालिमा का अनादि सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव-शरीर (कार्मण) का अनादि काल से सम्बन्ध है। इन दोनों का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है।

विशेषार्थ—प्रकृति का अर्थ शील या स्वभाव है[१], और जो अपने में हो वह स्वभाव है। जीव का स्वभाव रागादि रूप परिणमने का और कर्म का स्वभाव तद्रूप परिणमाने का है[२]। इनमें जीव का अस्तित्व अहं प्रत्यय से होता है तथा कर्म का अस्तित्व जीव में ज्ञान की वृद्धि और हानि से सिद्ध होता है क्योंकि आवरण कर्म के बिना तरतमता नहीं हो सकती है[३]।

शंका—यदि कर्मोदय होने पर रागादि होते हैं और रागादि होने पर कर्मबंध होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है, क्योंकि रागादि बिना कर्मबंध नहीं होता और कर्म का बंध व उदय बिना रागादिक के नहीं होता।

समाधान—जीव और कर्मों का अनादि काल से बन्ध चला आ रहा है, दूसरे, पूर्वबद्ध कर्मोदय से रागादि होते हैं और रागादि से अन्य नवीन कर्मबन्ध होता है। यदि वही कर्मबन्ध होता जो रागादि को कारण है तो इतरेतराश्रय दोष संभव होता, किन्तु ऐसा है नहीं।

---

१. सर्वार्थसिद्धि ८/३।   २. रागादि परिणामनमात्मनः स्वभावः रागाद्युत्पादकत्वं तु कर्मणः। कर्मकाण्ड संस्कृतटीका गाथा २।   ३. जयधवल पु. १ पृ. ५६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंका—जीव अमूर्तिक है और कर्म मूर्तिक हैं। मूर्तिक-अमूर्तिक का बन्ध असंभव है, यदि मूर्तिक-अमूर्तिक का बन्ध होने लगें तो आकाश आदि के भी कर्मबन्ध का प्रसङ्ग प्राप्त होगा।

समाधान—"जीव अमूर्तिक ही है" ऐसा एकान्त नहीं है, कर्मबन्ध रूप पर्याय की अपेक्षा व उससे संयुक्त होने के कारण कथंचित् मूर्तिक है और शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा कथंचित् अमूर्तिक है। कहा भी है—

"बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं।
तम्हा अमुत्ति भावो णेयंतो होई जीवस्स ॥ इति ॥"

अर्थ—यद्यपि आत्मा बन्ध की अपेक्षा एक है, तथापि लक्षण की अपेक्षा वह भिन्न है अतः जीव का अमूर्तिक भाव अनेकान्त रूप है। वह एक अपेक्षा से तो है और एक अपेक्षा से नहीं है[1]।

अमृतचन्द्राचार्य ने भी कहा है—

"अमूर्तः स्वरूपेण जीवः पररूपावेशान्मूर्तोऽपि"[2] जीव स्वरूप से अमूर्त है तथापि पर आवेश से मूर्तिक है। पुनश्च कहा है—

"अनादिबन्धनबद्धत्वतो मूर्तानां जीवावयवानां मूर्तेण शरीरेण सम्बन्धं प्रति विरोधासिद्धेः"[3] जीव के प्रदेश अनादि कालीन बन्धन से बद्ध होने के कारण मूर्त हैं। अतः मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होने में विरोध नहीं आता।

"अणादिबंधणबद्धस्स जीवस्स संसारावत्थाए अमुत्तत्ताभावादो"[4] अनादि कालीन बन्धन से बद्ध रहने के कारण जीव का संसार अवस्था में अमूर्त होना संभव नहीं है।

अब संसारी जीव कर्म-नोकर्म के साथ किस प्रकार संबंध करता है इसी को कहते हैं—

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. २ सू. ७ की टीका। २. पंचास्तिकाय गाथा ९७ की टीका।

३. ध. पु. १ पृ. २९२ ४. ध. पु. १५ पृ. ३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥३॥

अर्थ––यह जीव औदारिक आदि शरीर नामकर्म के उदय से योग सहित होकर प्रतिसमय कर्म-नोकर्म वर्गणा को सर्वांग से ग्रहण करता है, जैसे तपाया हुआ लोहे का गोला सर्वांग से जल को ग्रहण करता है ।

यह जीव प्रतिसमय कर्म-नोकर्म रूप होने वाले कितने पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करता है इसी बात को कहते हैं––

सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं ॥४॥

अर्थ––यह जीव सिद्ध जीवों के अनंतवें भाग तथा अभव्यसिद्धों से अनंतगुणी वर्गणाओं वाले समयप्रबद्ध को प्रतिसमय बांधता है, तथा योगों की विशेषता से हीनाधिक रूप कर्म परमाणुओं को बांधता है ।

विशेषार्थ––जैसे अधिक शक्ति वाला चुम्बक अधिक लोह कणों को ग्रहण करता है और हीन शक्ति वाला चुम्बक अल्प लोह कणों को ग्रहण करता है । उसी प्रकार आत्मा भी योग शक्ति की हीनाधिकता से अल्प या अधिक कर्मपरमाणुओं को ग्रहण करता है ।

कर्म परमाणुओं के बन्ध का प्रमाण कहकर अब उनके उदय व सत्त्व का प्रमाण कहते हैं––

जीरदि समयपबद्धं पओगदो णेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥५॥

अर्थ––प्रतिसमय एक समय प्रबद्ध की निर्जरा होती है, किन्तु प्रयोग से अनेक समय प्रबद्धों की भी निर्जरा हो जाती है तथापि कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण द्रव्य सत्ता में रहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—प्रतिसमय नाना निषेकों का समूह रूप परमाणुओं का एक समय-प्रबद्ध फल देकर निर्जीर्ण हो जाता है अर्थात् उदयरूप होकर निर्जरा को प्राप्त होता है, किन्तु तपस्यारूप विशिष्ट अतिशय से तथा आत्मा को सम्यक्त्वादि प्रवृत्ति के प्रयोग रूप हेतुओं से निर्जरा के ११ स्थान गुणस्थानाधिकार में कहे हैं; उनकी विवक्षा से एक समय में अनेक समय प्रवद्धों की भी निर्जरा हो जाती है, फिर भी डेढ़ गुणहानि से गुणित समय प्रबद्ध सत्ता में रहता है।

शंका—प्रति समय में एक समय प्रबद्ध का बन्ध कहा और एक समय प्रबद्ध की निर्जरा कही तो सत्त्व डेढ़ गुणहानि से गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण कैसे कहा ?

समाधान—इस शंका के समाधान के लिये इसी ग्रन्थ की गाथा ९४२-९४३-९४४ देखना चाहिये।

सामान्य से कर्म के भेद प्रभेदों को दो गाथाओं से कहते हैं—

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥६॥

अर्थ—सामान्य से कर्म एक प्रकार का है, द्रव्य-भाव की अपेक्षा से दो प्रकार हैं। पुद्गलपिंड को द्रव्यकर्म कहते हैं तथा उसमें जो फल देने की शक्ति है उसे भावकर्म कहते हैं।

तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताणं पुण घादित्ति अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥७॥

अर्थ—सामान्य से कर्म आठ प्रकार भी है अथवा एक सौ अड़तालीस या असंख्यात लोक प्रमाण भी उसके भेद हैं। तथा उन आठ कर्मों में घातिया और अघातिया रूप दो भेद हैं।

आठ कर्मों के नाम बताते हुए उनमें घातिया व अघातिया रूप कर्मों का विभाग करते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठ पयडीओ[१] ॥८॥

अर्थ--ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ये कर्म की आठ मूल प्रकृतियां (स्वभाव) है।

आवरणमोहविग्घं घादी जीवगुणघादणत्तादो ।
आउगणामं गोदं वेयणियं तह अघादित्ति ॥९॥

अर्थ--ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार तो घातिया कर्म हैं क्योंकि ये जीव के (देवत्वरूप) गुणों को घातते हैं तथा आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ये चार अघातिया हैं ये जीव के (देवत्व प्रगट होने रूप) गुणों को नहीं घातते अतः इनको अघातिया कहा है।

अब जीव के उन गुणों को कहते हैं जिनको कि ये कर्म घातते हैं—

केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदियादी खओवसमिए य घादी दु ॥१०॥

अर्थ--केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व तथा 'च' कार से क्षायिक चारित्र, द्वितीय 'च' कार से क्षायिक दानादि ५ लब्धिरूप क्षायिक भाव एवं मति, श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञानादिक रूप क्षायोपशमिक भाव, इन गुणों को ज्ञानावरणादि कर्म घातते हैं इसलिये उन्हें घातिया कहते हैं।

अब अघातिया कर्मों में सर्व प्रथम आयुकर्म का कार्य कहते हैं—

कम्मकयमोहवड्ढियसंसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि ।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥११॥

१. प्रा. पं. सं. प्रकृति समुत्कीर्तनाधिकार गाथा २. परं तत्र गाथोत्तरार्धे "आउगणामा गोदं तहंतरायं च मूलाओ" इतिपाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ---कर्म के उदय से उत्पन्न हुए मोह से अनादि चतुर्गति रूप संसार की वृद्धि होती है। गति में जीव का अवस्थान कराने वाला आयु कर्म है जैसे काष्ठ का खोड़ा मनुष्य को रोक कर रखता है।

विशेषार्थ---"देहट्ठिदि अण्णहाणुववत्तीदो" अर्थात् देह की स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती इस अन्यथानुपपत्ती से आयुकर्म का अस्तित्व जानना चाहिये।[1]

नाम कर्म के कार्य कहते हैं—

गदि आदि जीवभेदं देहादी पोग्गलाण भेदं च।
गदियंतरपरिणमनं करेदि णामं अणेयविहं ॥१२॥

अर्थ---गति आदि के भेद से नामकर्म अनेक प्रकार का है वह नारकी आदि जीव की पर्याय के भेदों को एवं औदारिक शरीरादि पुद्गल के भेदों को और एक गति से दूसरी गति में जाने रूप जीव के परिणमन को अनेक प्रकार करता है इस प्रकार नामकर्म अनेक कार्यों को करता है।

विशेषार्थ---नामकर्म जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकी रूप है। जीव में जिसका फल हो वह जीवविपाकी, पुद्गल में जिसका फल हो वह पुद्गल विपाकी एवं विग्रहगति में जिसका फल हो वह क्षेत्रविपाकी है। इस प्रकार नामकर्म चित्रकार के समान अनेक प्रकार से जीवविपाकी आदि प्रकृतियों रूप परिणमन करता है। उक्तं च—"नानामिनोति इति नाम"[2] जो नाना प्रकार से बनाता है वह नामकर्म है।

अब गोत्र कर्म का कार्य कहते हैं—

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ॥१३॥

अर्थ---संतान क्रम से चले आये जीवके आचरण को गोत्र कहते हैं। उच्च व नीच आचरण से उच्च व नीच गोत्र होता है।

---

१. ध. पु. ९ सूत्र ९ की टीका। २. ध. पु. १३ पृ. २६२ सूत्र १०० की टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—"उच्चं-नीचं गमयतीति गोत्रम्"[१] अर्थात् जो उच्च और नीच का आचरण कराता है उसे गोत्र कहते हैं। तथैव—'गमयत्युच्च-नीचकुलमिति गोत्रम्'[२] अर्थात् जो उच्च और नीच कुल का ज्ञान कराता है अथवा उच्च या नीच कुल को प्राप्त कराता है उसे गोत्र कहते हैं। "न च निष्फलं गोत्रम्, दीक्षायोग्यसाध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृतसंबंधानां आर्यप्रत्ययाभिधान-व्यवहारनिबन्धनानां पुरुषाणां सन्तानः उच्चैर्गोत्रं तत्रोत्पत्तिहेतुकर्माप्युच्चैर्गोत्रम्।.........तद्विपरीतम् नीचैर्गोत्रम्[३]।" अर्थात् गोत्र कर्म निष्फल है, यह बात नहीं है क्योंकि जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है, साधु आचार वालों के साथ जिन्होंनें सम्बन्ध स्थापित किया है तथा जो 'आर्य' इस प्रकार के ज्ञान और वचन व्यवहार के निमित्त हैं उन पुरुषों की परम्परा को उच्चगोत्र कहा जाता है तथा उनमें उत्पत्ति का कारणभूत कर्म भी उच्चगोत्र है।.........उससे विपरीत कर्म नीच गोत्र है।

कुल परम्परा के आचरण के विषय में एक कहावत भी है—

एक सियाल का बच्चा बचपन से ही सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चों के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुये वे सभी बच्चे किसी जंगल में गये। वहां उन्होंने हाथियों का समूह देखा, देखकर जो सिंहनी के बच्चे थे वे हाथी के सामने हुए, किन्तु वह सियाल जिसमें अपने कुल का डरपोक पने का संस्कार था हाथी को देखकर भागने लगा। तब वे सिंह के बच्चे भी अपना बड़ा भाई जानकर उसका अनुकरण करते हुये अपनी माता के पास लौट आये और उस सियाल की शिकायत की कि इसने हमको शिकार से रोका तब सिंहनी ने उस सियाल के बच्चे से एक श्लोक कहा जो इस प्रकार है—

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते॥

अर्थ—हे पुत्र तू शूरवीर है, विद्यावान है, देखने में सुन्दर है, किन्तु जिस कुलमें तुम उत्पन्न हुये हो उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते हैं। अतः तू यहां से भाग जा नहीं तो तेरी जान नहीं बचेगी।

---

१. ध. पु. १३ पृ. ३८७ सूत्र १३४ की टीका। २. ध पु. ६ पृ. १३ सूत्र ११ की टीका।
३. ध. पु. १३ पृ. ३८९ सूत्र १३५ की टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—रजोवीर्य का संस्कार अवश्य आ जाता है, चाहे वह कैसे भी विद्यादिगुणों से सहित क्यों न हो उसपर्याय में संस्कार नहीं मिटता, क्योंकि जैसे रज-वीर्य से शरीर-मस्तिष्क व मन का निर्माण होता है वैसे ही जीव के विचार होते हैं। खानपान व बाह्यवातावरण का भी प्रभाव विचारों पर पड़ता है।

अब वेदनीयकर्म के कार्य कहते हैं—

अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहसरूवयं सादं।
दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥१४॥

अर्थ—इन्द्रियों द्वारा अपने रूपादि विषयों का अनुभव करना वेदनीय है। उसमें सुखरूप से अनुभव कराना सातावेदनीय, दुःखरूप से अनुभव कराना असातावेदनीय का कार्य है। अतः सुख-दुःख का जो अनुभव करावे वह वेदनीयकर्म है।

विशेषार्थ—'वेद्यत इति वेदनीयम्'[१] अर्थात् जो वेदन-अनुभवन किया जावे वह वेदनीय है। दुःखका प्रतिकार करने की कारणभूतसामग्री को मिलाने वाला और दुःख के उत्पादक द्रव्यकर्म की शक्तिका विनाश करनेवाला सातावेदनीयकर्म है। सुखस्वभाववाले जीव को दुःख उत्पन्न करनेवाला और दुःख के प्रशमन करने में कारणभूतसामग्री का अपसादक असातावेदनीयकर्म[२] है।

आवरण का क्रम बताने के लिए पहले जीव के प्रधानगुणों को कहते हैं—

अत्थं देक्खिय जाणदि पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं।
इदि दंसणं च णाणं सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥१५॥

अर्थ—संसारीजीव पदार्थ को देखकर जानता है पश्चात् वह अस्ति-नास्ति-रूप सप्तभंगी से निश्चयकर श्रद्धान करता है। इसप्रकार दर्शन-ज्ञान एवं सम्यक्त्व, ये जीव के गुण हैं।

अब ज्ञानावरणादि कर्मों के अनुक्रम का कारण कहते हैं—

अब्भरहिदादु पुव्वं णाणं तत्तो हि दंसणं होदि।
सम्मत्तमदो विरियं जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥१६॥

१. ध. पु. ६ पृ. १० सूत्र ७ की टीका। २. ध. पु. १३ पृ. ३५७ सूत्र ८८ की टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आत्मा के सर्वगुणों में ज्ञानगुण पूज्य एवं प्रधान है इसलिए सर्वप्रथम ज्ञान को रखा है। इसके पश्चात् दर्शन कहा और उसके बाद सम्यक्त्व। वीर्य-शक्तिरूप है, वह जीव-अजीव दोनों में पाया जाता है। अतः उसे सबसे अन्त में कहा है।

विशेषार्थ—व्याकरण का नियम है कि जिसमें अल्पाक्षर हों उसे पहले रखना। इसी कारण अल्पाक्षर वाला एवं पूज्य-प्रधान होने से ज्ञान को पहले कहा है पश्चात् अनुक्रम से दर्शन व सम्यक्त्व को कहकर अन्त में वीर्य को रखा, क्योंकि जीव में ज्ञानादिक शक्ति तथा पुद्गल में शरीरादिरूप शक्ति है। इसप्रकार ज्ञानादि का आवरण अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं मोहनीय और अन्तराय का अनुक्रम जानना।

यद्यपि अन्तरायकर्म घातिया है तथापि उसे अघातिया के अन्त में क्यों कहा ? इसका समाधान अगली गाथा द्वारा करते हैं—

घादीदि अघादिं वा णिस्सेसं घादणे असक्कादो।
णामतियणिमित्तादो विग्घं पडिदं अघादिचरिमह्मि ॥१७॥

अर्थ—अन्तरायकर्म यद्यपि घातिया है, तथापि अघातियाकर्मों के समान जीव के गुणों को पूर्णरूप से घातने में समर्थ नहीं है। नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्त से ही अन्तरायकर्म अपना कार्य करता है; इसीकारण उसे अघातियाकर्मों के अन्त में कहा है।

अथानन्तर अन्य कर्मों का क्रम कहते हैं—

आउबलेण अवट्ठिदि भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु।
भवमस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥१८॥

अर्थ—आयुकर्म के निमित्त से भव में स्थिति होती है। इसलिए नामकर्म से पूर्व आयुकर्म को कहा है और भव के आश्रय से ही नीचपना अथवा उच्चपना होता है इसलिए नामकर्म को गोत्रकर्म के पहले कहा है।

अघातिया होते हुये भी वेदनीयकर्म को घातिया के बीच में क्यों कहा ? इस शंका के समाधान स्वरूप गाथा कहते हैं—

घादिंव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्हि पढिदं तु ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—वेदनीयकर्म मोहनीयकर्म के बल से ही घातियाकर्मों के समान जीवों के (अव्याबाध) गुणों को घातता है, इसलिए घातिया के मध्य में मोहनीय के पहले इसको कहा है।

विशेषार्थ—घातियारूप मोहनीयकर्म के रति-अरतिरूप उत्तरभेदों के उदय से ही वेदनीयकर्म जीवगुणों (अव्याबाधगुण) को घातता है। सुख-दुःख-स्वरूप साता-असाता के कारणभूत इन्द्रियविषयों को एकत्रित कर उनका अनुभव कराता है, इसलिए घातियाकर्मों के बीच में मोहनीय के पहले वेदनीय को रखा गया है।

वस्तु का स्वभाव अच्छा या बुरा नहीं है, जब तक राग-द्वेष रहते हैं तभी तक यह जीव किसी को इष्ट और किसी को अनिष्ट समझता है, क्योंकि एक वस्तु किसी को अच्छी नहीं लगती तो, वही वस्तु किसी को अच्छी लगती है। जैसे—कटु रसवाला नीम का पत्ता मनुष्य को अप्रिय लगता है, किन्तु वही ऊंट को प्रिय लगता है इससे सिद्ध होता है कि वस्तु अप्रिय या प्रिय नहीं है। यदि वस्तु ही वैसी हो तो दोनों को एकसमान लगनो चाहिये। इसकारण यह सिद्ध हुआ कि मोहनीयकर्मरूप राग-द्वेष के निमित्त से एवम् वेदनीय का उदय होने पर ही इन्द्रियों से उत्पन्न सुख तथा दुःख का अनुभव होता है। मोहनीय के बिना वेदनीयकर्म राजा के बिना निर्बल सैन्य की तरह कुछ नहीं कर सकता। अर्थात् इन्द्रियजनित सुख-दुःख का वेदन नहीं करा सकता, किन्तु अव्याबाधगुण का तो घात करता ही है।

इसप्रकार कर्मों का जो पाठक्रम सिद्ध हुआ उसका उपसंहार करते हैं—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥२०॥

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इसप्रकार जो पाठ का क्रम है वह पहले पाठक्रम के समान ही सिद्ध हुआ।

अब दृष्टान्त द्वारा कर्मों के स्वभाव को कहते हैं—

पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा[1] ॥२१॥

---

१. प्रा. पं. सं. प्रकृ. समु. गाथा ३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—देवता के मुख पर ढके वस्त्र के समान ज्ञानावरण, द्वारपाल के समान दर्शनावरण, शहद लपेटी तलवार के समान वेदनीय, मदिरा के समान मोहनीय, हलि (खोड़ा) के समान आयु, चित्रकार के समान नाम, कुम्भकार के समान गोत्र और भण्डारी के समान अन्तरायकर्म है। जिसप्रकार इनके भाव होते हैं उसीप्रकार ज्ञानावरणादि कर्मों के भी जानना।

विशेषार्थ—'ज्ञानं आवृणोति' अर्थात् ज्ञान को ढके उसे ज्ञानावरणीयकर्म कहते हैं। इसका स्वभाव यह है कि जैसे देवता के मुख पर ढका वस्त्र देवता के ज्ञान को नहीं होने देता, उसीप्रकार ज्ञानावरणकर्म ज्ञान को आच्छादित करता है अर्थात् वस्तु का ज्ञान नहीं होने देता। जो दर्शन का आवरण करे अर्थात् वस्तु को नहीं देखने दे वह दर्शनावरण, इसका स्वभाव द्वारपाल के समान है। जैसे—द्वारपाल राजा को देखने से रोक देता है वैसे ही यह कर्म राजारूप वस्तु–निज आत्मा का दर्शन नहीं होने देता, इसीलिये अन्तर्मुखचित्प्रकाश को दर्शन कहा है। जो इन्द्रियजनित सुख–दुःख का वेदन अर्थात् अनुभव करावे अथवा अव्याबाधगुण का घात करे वह वेदनीयकर्म है। इसका स्वभाव शहद लपेटी तलवार की धार के समान है, जिसको चखने से कुछ सुख का अनुभव तो होता है, किन्तु जीभ के कट जाने पर दुःख होता है उसीप्रकार साता और असाता सुख–दुःख उत्पन्न कराते हैं। जो मोहित करे–अचेत बनावे अर्थात् असावधान करे वह मोहनीयकर्म है। जैसे—शराब पीने पर मनुष्य पागल हो जाता है, उसीप्रकार 'मोह' आत्मा को मोहित कर देता है।

जो 'एति' अर्थात् पर्याय धारण का निमित्त हो वह आयुकर्म है। इसका स्वभाव सांकल या काष्ठ यंत्र के समान है। जैसे—सांकल या काष्ठयंत्र पुरुष को अपने स्थान में ही स्थित रखता है दूसरे स्थानपर नहीं जाने देता उसीप्रकार आयुकर्म जीव को नर-नारकादि पर्यायों में रोके रखता है। जो 'नाना मिनोति' अर्थात् अनेक-प्रकार के कार्य बनावे वह नामकर्म है। यह चित्रकार के समान है, जैसे चित्रकार अनेक-प्रकार के चित्राम बनाता है उसीप्रकार यह नामकर्म जीव को नारकादि अनेक रूप धारण कराता है। जो 'गमयति' अर्थात् जीव के उच्च-नीचपने का ज्ञान करावे अथवा प्राप्त करावे वह गोत्रकर्म है। जैसे—कुम्भकार मिट्टी के छोटे-बड़े बर्तन बनाता है वैसे ही गोत्रकर्म भी जीव की उच्च-नीचअवस्था का ज्ञान कराता है। जो 'अन्तरं एति' अर्थात् दाता और पात्र में अन्तर या व्यवधान करावे वह अन्तरायकर्म है, इसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव भण्डारी के समान है। जैसे—भण्डारी दूसरे को दान देने में विघ्न डालता है—नहीं देने देता उसीप्रकार अन्तरायकर्म दान-लाभादि में विघ्न करता है। इसप्रकार इन आठ मूल कर्मों का शब्दार्थ से स्वरूप कहा है।

आठ मूलकर्मों की उत्तरप्रकृतियों को कहते हैं—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति ॥२२॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के क्रमसे पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवै अथवा एक सौ तीन, दो और पांच उत्तरभेद होते हैं।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र—

णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं आउगं णामं गोदं अंतरायं चेइ। तत्थ णाणावरणीयं पंचविहं आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जव णाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेइ। दंसणावरणीयं णवविहं थीणगिद्धि णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा य पयला य चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेइ।

सूत्रार्थ—(कर्म की आठ मूल प्रकृतियां हैं) ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय। इनमें भी ज्ञानावरणीय पांचप्रकार का है—अभिनिबोधक-श्रुत-अवधि व मनःपर्ययज्ञानावरण तथा केवलज्ञानावरण। दर्शनावरण नवप्रकार है—स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा व प्रचला तथा चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

अब दर्शनावरणीय के उत्तरभेदों में से निद्राओं का कार्य बताते हैं—

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य।
णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घादिदुं सक्को ॥२३॥

अर्थ—स्त्यानगृद्धिनिद्रा के उदय से उठाया जाने पर भी सोता रहता है उस नींद में ही अनेक कार्य करता है तथा कुछ बोलता भी है, परन्तु सावधानी नहीं रहती। निद्रानिद्राकर्म के उदय से अनेकप्रकार से सावधान किया हुआ भी आंखें नहीं खोल सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अंगाइं ।
णिद्दुदये गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेई ॥२४॥

अर्थ—प्रचलाप्रचलाकर्म के उदय से मुख से लार बहती है और हाथ आदि अङ्ग चलते हैं, किन्तु सावधान नहीं रहता तथा निद्राकर्म के उदय से गमन करता हुआ खड़ा हो जाता है, बैठ जाता है, गिर पड़ता है इत्यादि क्रियायें करता है ।

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि ।
ईसं ईसं जाणदि मुहं मुहं सोवदे मंदं ॥२५॥

अर्थ—प्रचलाकर्म के उदय से यह जीव आंखों को कुछ-कुछ उघाड़कर सोता है और सोता हुआ भी थोड़ा-थोड़ा जानता है, बार-बार मन्दशयन करता है ।

विशेषार्थ—यह निद्रा श्वाननिद्रा के समान है तथा अन्य सभी निद्राओं की अपेक्षा अल्पघातक है । इसप्रकार दर्शनावरणीयकर्म के कुछ भेदों का कार्य कहा ।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र—

वेदणीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ । मोहणियं दुविहं दंसण-मोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेइ । दंसणमोहणीयं बंधादो एयविहं मिच्छत्तं, उदयं संतं पडुच्चतिविहं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तं चेइ ।

सूत्रार्थ—वेदनीयकर्म दोप्रकार का है—सातावेदनीय, असातावेदनीय । मोहनीयकर्म दोप्रकार का है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय । दर्शनमोहनीय बंध की अपेक्षा एकप्रकार का है—मिथ्यात्वरूप; उदय व सत्त्व की अपेक्षा तीनप्रकार का है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति ।

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभाव जंतेण ।
मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥२६॥

अर्थ—चक्की से दले हुये कोदों के समान प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामरूप यन्त्र से मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य, द्रव्यप्रमाण में क्रमसे असंख्यातगुणा–असंख्यातगुणाहीन होकर तीनप्रकार का हो जाता है ।

विशेषार्थ—जैसे कोदों-धान्य विशेष को दलने (पीसने) पर तन्दुल, कण और भूसी, इसप्रकार तीनरूप हो जाते हैं, उसीप्रकार मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमोपशमसम्यक्त्वरूपीयंत्र के द्वारा मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप परिणमन करता है[1]। इनमें सबसे अधिक मिथ्यात्व का द्रव्य है उससे असंख्यातगुणाहीन सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य है और उससे भी असंख्यातगुणाहीन सम्यक्त्व का द्रव्य है।

आयुकर्म बिना सातकर्मों के परमाणुओं का प्रमाण कुछकम डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है इसमें सात का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने मोहनीय के परमाणु हैं, इनमें अनन्त का भाग देने पर एकभागप्रमाण तो सर्वघाति तथा अवशेष देशघातिप्रकृति के परमाणु हैं। तथा उस एक मिथ्यात्व और सोलह-कषाय में बटवारा करने के लिए १७ का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने मिथ्यात्व-प्रकृति के परमाणु हैं। यहां पर प्रथमोपशमसम्यक्त्व का अन्तर्मुहूर्त काल है, उसके प्रथमसमय से लेकर चरमसमयपर्यन्त प्रतिसमय मिथ्यात्व के परमाणुओं में गुण-संक्रमणभागहार का भाग देकर जो लब्ध आवे उसको ग्रहणकर उसके तीन पुञ्ज करें। यहां मिथ्यात्व के जितने परमाणु हैं उनसे असंख्यातगुणेहीन सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणु हैं। इनसे असंख्यातगुणेहीन सम्यक्त्वप्रकृति के परमाणु हैं। इसप्रकार एक मिथ्यात्व के परमाणु तीन पुञ्जरूप हुये।

उदाहरण—जैसे—समयप्रबद्ध की संख्या ६३०० है। गुणहानि की संख्या ८ है। और डेढ़गुणहानि का प्रमाण १२ है। ६३००×१२=७५,६०० यह सातकर्मों का परमाणुरूप सत्त्वद्रव्य है।

सातकर्मों के परमाणु ७५,६०० है तो मोहनीयकर्म के १०,८०० परमाणु होंगे। अब मोहनीयकर्म के परमाणुओं का बटवारा चारित्रमोहनीय की पच्चीस व दर्शन-मोहनीय की एक इसप्रकार इन २६ कर्मों में किसप्रकार होगा उसीको बताते हैं—

२६ प्रकृतियों में से सोलह कषाय व मिथ्यात्व ये १७ सर्वघातिप्रकृति और शेष ९ प्रकृतियां देशघाति हैं।

---

१. "जंतएण दलिज्जमाणकोद्दवेसु कोद्दव्व-तदुलद्धतंदुलाणं व दंसणमोहणीयस्स अपुव्वादिकरणेहि दलियस्स तिविहत्तुवलंभा।" अर्थात् जांते से दले गए कोदों में कोदों, तंदुल और अर्ध तंदुल, इन तीनविभागों के समान अपूर्वकरणादि परिणामों के द्वारा दले गए दर्शनमोहनीय के त्रिविधता पाई जाती है (धवल पु. ६ पृ. ३८ व ३९) इस सम्बन्ध में ध. पु. १३ पृ. ३५८ भी देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहनीय के परमाणुओं में अनन्त का भाग देकर जो लब्ध आवे वह द्रव्य सर्वघाति का और शेषद्रव्य देशघाति का समझना। अर्थात् मोहनीयकर्म के परमाणुओं की संख्या १०,८०० मानी है एवं अनंत की संख्या ८ कल्पित की है। इस अनन्त (८) की संख्या का १०,८०० में भाग देनें पर १३५० प्राप्त हुआ यह द्रव्य १७ सर्वघाति-प्रकृतियों का है। अतः इस द्रव्य को १७ से भाग देने पर १३५०÷१७=७९$\frac{७}{१७}$ अर्थात् ८० के लगभग लब्ध आया यह प्रत्येक सर्वघाति का द्रव्य समझना। इतना ही द्रव्य मिथ्यात्वकर्म का भी है। १०,८०० में से १३५० (सर्वघातिद्रव्य) घटाने पर ९४५० प्रमाण द्रव्य देशघाति का है।

७९$\frac{७}{१७}$ (लगभग ८०) के असंख्यातवेंभाग सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के परमाणु समझना तथा सम्यग्मिथ्यात्व के असंख्यातवेंभागप्रमाणपरमाणु सम्यक्त्वप्रकृति के समझना, शेष असंख्यातबहुभागरूपपरमाणु मिथ्यात्वप्रकृति के हैं।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र—

चारित्तमोहणियं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेदणीयं चेइ। कसायवेदणीयं सोलसविहं खवणं पडुच्च अणंताणुबंधि-कोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाण-पच्चक्खाणा-वरण-कोह-माण-माया-लोहं, कोह-संजलण, माण-संजलण, माया-संजलण, लोह संजलण चेइ। पक्कमदव्वं पडुच्च अणंताणुबंधि लोह-माया-कोह-माणं, संजलण लोह-माया-कोह-माणं पच्चक्खाण-लोह-माया-कोह-माणं, अपच्चक्खाणं लोह-माया-कोह-माणं चेइ। णोक-सायवेदणीयं णवविहं पुरिसित्थिणउंसयवेदं रदि-अरदि-हस्स-सोग-भय-दुगंछा चेदि। आउगं चउविहं णिरयायुगं, तिरिक्ख-माणुस्स-देवाउगं चेदि। णामं बादालीसं पिंडापिंड पयडिभेयेणा गयि-जायि-सरीर-बंधण-संघाद-संठाण-अंगोवंग-संघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-आणुपुव्वी-अगुरुगलहुगुवघाद-परघाद – उस्सास-आदाव-उज्जोद-विहायगयि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तायज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुब्भग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्जाणादेज्ज जसाजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि। तत्थ गयिणामं चउविहं णिरयतिरिक्ख-मणुवदेवगयिणामं चेदि। जायिणामं पंचविहं एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय जायिणामं पंचिंदिय जायिणामं चेदि। सरीरणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय सरीरणामं चेइ। सरीरबंधणणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय सरीरबंधणणामं चेइ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्रार्थ—चारित्रमोहनीयकर्म दोप्रकार का है—कषायवेदनीय, नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीय १६ प्रकार का है। क्षपणा की अपेक्षा उनका क्रम इसप्रकार है—अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ इन चार की विसंयोजना युगपत् चतुर्थगुणस्थान से सप्तमगुणस्थान तक हो जाती है। नवमगुणस्थानके प्रथमभागमें अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध-मान-माया और लोभ तथा प्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ इन आठों का युगपत् क्षय होता है। उसके पश्चात् अन्तमें क्रमशः सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान एवं सञ्ज्वलनमाया का क्षय होता है। दशवेंगुणस्थान में सञ्ज्वलनलोभ का क्षय होता है। द्रव्य के बटवारे की अपेक्षा सबसे अधिकद्रव्य अनन्तानुबन्धीलोभ को मिलता है, अनंतानुबन्धीलोभ से हीनद्रव्य अनन्तानुबन्धीमाया को। इसीप्रकार क्रमशः अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान, सञ्ज्वलनलोभ, सञ्ज्वलनमाया, सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान, प्रत्याख्यानावरणलोभ, प्रत्याख्यानावरणमाया, प्रत्याख्यानावरणमान, अप्रत्याख्यानावरणलोभ, अप्रत्याख्यानावरणमाया, अप्रत्याख्यानावरणक्रोध और अप्रत्याख्यानावरणमान को हीन-हीनद्रव्य मिलता है। नोकषायवेदनीय नवप्रकार का है—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा। आयुकर्म चारप्रकार का है—नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु। नामकर्म पिण्ड और अपिण्डप्रकृतियों के भेद से ४२ प्रकार का है—गति, जाति, शरीर, बन्धन, सङ्घात, संस्थान, अङ्गोपाङ्ग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्करनामकर्म। उनमें से गतिनामकर्म चारप्रकार का है—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति। जातिनामकर्म पांचप्रकार का है—एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पञ्चेन्द्रियजाति। शरीरनामकर्म पांचप्रकार का है—औदारिकशरीर, वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर। शरीरबन्धननामकर्म पांचप्रकार है—औदारिकशरीरबन्धननामकर्म, वैक्रियकशरीरबन्धननामकर्म, आहारकशरीरबन्धननामकर्म, तैजसशरीरबन्धननामकर्म और कार्मणशरीरबन्धननामकर्म।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब इन पांचशरीरबन्धननामकर्म के भङ्ग कहते हैं—

तेजा कम्मेहिं तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं ।
कयसंजोगे चदुचदुचदुदुग एक्कं च पयडीओ ॥२७॥

अर्थ—औदारिक, वैक्रियक और आहारक इन तीनोंका तैजस तथा कार्मण के साथ संयोगबन्ध होनेपर चार-चार भङ्ग होते हैं। तैजस का तैजस व कार्मण के साथ संयोगबन्ध होनेपर दोभङ्ग और कार्मण का कार्मण के साथ संयोगबन्ध होनेपर एकभङ्ग होता है।

विशेषार्थ—औदारिक-औदारिकशरीरबंधन, औदारिक-तैजसशरीरबन्धन, औदारिक-कार्मणबन्धन, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरबन्धन। औदारिक की अपेक्षा ये चार भङ्ग हैं।

वैक्रियक-वैक्रियकशरीरबन्धन, वैक्रियक-तैजसशरीरबन्धन, वैक्रियक-कार्मणशरीरबन्धन, वैक्रियक-तैजस-कार्मणशरीरबन्धन। वैक्रियक की अपेक्षा ये चार भङ्ग हैं।

आहारक-आहारकशरीरबन्धन, आहारक-तैजसशरीरबन्धन, आहारक-कार्मणशरीरबन्धन, आहारक-तैजस-कार्मणशरीरबन्धन। इसप्रकार आहारक की अपेक्षा भी चार भङ्ग हैं।

तैजस-तैजसशरीरबन्धन, तैजस-कार्मणशरीरबन्धन ये दो भङ्ग तैजस की अपेक्षा से हैं। तथा कार्मण-कार्मणके संयोगसे शरीरबन्धन का एकभङ्ग है। इसप्रकार सर्व १५ भङ्ग शरीरबन्धननामकर्म के होते हैं। ये भङ्ग शरीरबन्धननामकर्मके संयोगबन्धकी अपेक्षा कहे हैं।

औदारिक-औदारिक, वैक्रियक-वैक्रियक, आहारक-आहारक, तैजस-तैजस, कार्मण-कार्मणबन्ध में औदारिकआदि शरीरबन्ध के पांचभेद गर्भित हो जाते हैं। जैसे औदारिक से औदारिक का संयोगबन्ध कहा, वे दोनों सदृश हैं अतः जो शरीरबन्धनप्रकृति के भेदों में औदारिकशरीरबन्धन कहा है उसमें गर्भित हुआ। इसीप्रकार अन्य चारों का भी समावेश जानना चाहिए। अतएव १५ में से पांच कम करने से दश शेष रहे; नामकर्म की ९३ प्रकृतियों में ये दशप्रकृति मिलानेपर नामकर्म की १०३ प्रकृति होती हैं।[1]

1. इस सम्बन्ध में ध. पु. १४ पृ. ४१ से ४४ तक सूत्र ४४ से ६० तक देखना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र—

सरीरं संघादणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय सरीर-संघादणामं चेदि। सरीरसंठाणणामकम्मं छव्विहं समचउरसंठाणणामं णग्गोदपरिमंडल-सादिय-कुज्ज-वामण-हुण्डसरीरसंठाणं चेदि। सरीर-अंगोवंग णामं तिविहं-ओरालिय, वेगुव्विय, आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि।

सूत्रार्थ—शरीरसंघातनामकर्म पांचप्रकार का है—औदारिकशरीरसंघातनामकर्म, वैक्रियकशरीरसंघातनामकर्म, आहारकशरीरसंघातनामकर्म, तैजसशरीरसंघातनामकर्म और कार्मणशरीरसंघातनामकर्म। शरीरसंस्थाननामकर्म छहप्रकार का है—समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननामकर्म, कुब्जकसंस्थाननामकर्म, स्वातिसंस्थाननामकर्म, वामनसंस्थाननामकर्म और हुण्डकसंस्थाननामकर्म। शरीरअङ्गोपाङ्गनामकर्म तीनप्रकार का है--औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्म, वैक्रियकशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्म और आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्म।

अब शरीरके अङ्गोपाङ्गोंका नाम निर्देश करते हैं—

णलया बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य।
अट्ठेव दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं ॥२८॥

अर्थ--दो पैर, दो हाथ, नितम्ब-कमर के पीछे का भाग, पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ तो शरीर में अङ्ग हैं, अन्य नेत्र-कान आदि सर्व उपाङ्ग कहलाते हैं।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र—

संहडण-णामं छव्विहं वज्जरिसहणारायसंहडणणामं वज्जणाराय-णाराय-अद्धणारायखीलिय-असंपत्त सेवट्टि-सरीरसंहडणणामं चेइ।

सूत्रार्थ--संहनननामकर्म छहप्रकार का है—वज्रर्षभनाराचसंहनननामकर्म, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलित-असंप्राप्तासृपाटिका शरीरसंहनननामकर्म।

नोट--वज्रर्षभनाराचसंहनन को पृथक् कहने का प्रयोजन यह है कि इस संहननवाले जीव ही मोक्ष जासकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब छहसंहननवाले जीव किस-किस संहननसे कौन-कौनसी गतिमें उत्पन्न होते हैं यह ४ गाथाओं में कहते हैं—

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्प जुगलोत्ति।
तत्तो दुजुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति ॥२९॥

अर्थ—सृपाटिकासंहनन से सहित जीव स्वर्ग में उत्पन्न हो तो सौधर्मयुगल से चौथे लान्तव-कापिष्ठ स्वर्गयुगलपर्यन्त अर्थात् आठवें स्वर्गतक उत्पन्न होते हैं। कीलक-संहननवाले इनसे ऊपर दोयुगल तक अर्थात् बारहवेंस्वर्ग तक तथा अर्धनाराचसंहननवाले जीव इनसे आगें दोयुगल अर्थात् १६ वें स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं।

णवगेविज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा।
तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो ॥३०॥

अर्थ—नाराच, वज्रनाराच और वज्रर्षभनाराचसंहननवाले मनुष्य नव-ग्रैवेयकपर्यंत तथा वज्रनाराच, वज्रर्षभनाराचवाले मनुष्य नवअनुदिशविमानों तक एवं वज्रर्षभनाराचसंहननवाले मनुष्य पञ्चअनुत्तरविमानों तक उत्पन्न होते हैं।

सण्णी छस्संहडणो वज्जदि मेघं तदो परं चापि।
सेवट्टादीरहिदो पण पणचदुरेगसंहडणो ॥३१॥

अर्थ—छहसंहननवाले सैनीजीव यदि नरक में उत्पन्न हों तो मेघानामक तीसरेनरकपर्यंत जाते हैं। सृपाटिकाबिना शेष कीलित आदि पांचसंहननवाले अरिष्टा-नामक पञ्चम पृथ्वीपर्यंत जाते हैं। अर्धनाराचादिक चारसंहननवाले माघवीनामक छठी-पृथ्वीपर्यंत और वज्रर्षभनाराचसंहननवाले माघवीनामक सप्तमपृथ्वीपर्यन्त जाते हैं।

अंतिमतियसंहडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं।
आदिमतिगसंहडणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३२॥

अर्थ—कर्मभूमिमें महिलाओं के अन्तिम तीनसंहनन होते हैं। आदि के तीन उत्तमसंहनन नहीं होते ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

विशेषार्थ—कर्मभूमिज द्रव्यस्त्रियों के अर्धनाराच-कीलित और सृपाटिका इन तीनसंहननों का ही उदय रहता है। वज्रर्षभनाराचसंहनन के अभाव में द्रव्य-स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र—

वण्णणामं पंचविहं किण्ण-णील-रुहिर-पीद-सुक्किलवण्णणामं चेइ। गंधणामं दुविहं सुगंध-दुग्गंधणामं चेदि। रसणामं पंचविहं तिट्ठ-कडु-कसायंविलमहुररसणामं चेइ। फासणामं अट्ठविहं कक्कड-मउगगुरुलहुग-रुक्ख-सणिद्ध-सीदुसुणफासणामं चेदि। आणुपुव्विणामं चउविहं णिरय-तिरक्खगयि-पाओग्गाणुपुव्वीणामं, माणुस-देवगयि पाओग्गाणुपुव्वीणामं चेइ। अगुरुलघुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदव-उज्जोदणामं चेदि। विहायगदिणामकम्मं दुविहं पसत्थविहायगदिणामं-अप्पसत्थविहायगदिणामं चेदि। तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि। थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीर-अथिर-असुह-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्तिणामं चेदि।

सूत्रार्थ—वर्णनामकर्म के पांचभेद हैं—कृष्ण, नील, रुधिर (लाल), पीला और शुक्ल (श्वेत)। गन्धनामकर्म दोप्रकार का है—सुगन्ध व दुर्गन्ध। रसनामकर्म के पांचभेद हैं—तिक्त, कटुक, कषायला, अम्ल और मधुररस। स्पर्शनामकर्म के आठभेद हैं—कठोर, मृदु, गुरु, लघु, रुक्ष, स्निग्ध, शीत और उष्ण। आनुपूर्वीनामकर्म चारप्रकार का है—नरकगत्यानुपूर्वी-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी-मनुष्यगत्यानुपूर्वी-देवगत्यानुपूर्वी। अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत। विहायोगतिनामकर्म दोप्रकार का है—प्रशस्तविहायोगति व अप्रशस्तविहायोगति। त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर। तथा स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग-दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति।

अब आतप व उद्योतप्रकृति का लक्षण कहते हैं—

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा।
आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥३३॥

अर्थ—आग के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं, अतः उसके उष्णस्पर्शनामकर्म का उदय है। जिसकी केवल प्रभा अर्थात् किरणों में उष्णपना हो उसको आतप कहते हैं। (आतपनामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब में तथा सूर्यकान्तमणि में उत्पन्न हुये बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिक तिर्यञ्चजीवों में समझना चाहिये) तथा जिसकी प्रभा भी उष्णता रहित हो उसके उद्योतनामकर्म का उदय जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताड़पत्रीय मूल गों. क. से उद्धृत सूत्र—

गोदकम्मं दुविहं उच्च-णीचगोदं चेइ। अंतरायं पंचविहं दाण-लाभ-भोगोप-भोगवीरिय-अंतरायं चेइ।

सूत्रार्थ—गोत्रकर्म के दोभेद हैं—उच्चगोत्र-नीचगोत्र। अन्तरायकर्म के पांचभेद हैं—दानान्तराय-लाभान्तराय-भोगान्तराय-उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

विशेषार्थ—आत्मप्रदेशों में एकक्षेत्रावगाहरूप से स्थित कर्म के योग्य कार्मर्ण-वर्गणाओं का दूध-पानी के समान संश्लेषसम्बन्ध होने को बन्ध कहते हैं। जैसे—पात्र विशेष में रखा हुआ अनेकप्रकार का रस, बीज, पुष्प-फलादि मदिरापने को प्राप्त हो जाते हैं उसीप्रकार कार्मणवर्गणा भी योग-कषाय के निमित्त से कर्मभाव को प्राप्त हो जाती हैं।

एक ही आत्मा के परिणाम से ग्रहण की हुई नानापुद्गलकर्मवर्गणाएं ज्ञानावरणादि अनेक कर्म के भेदरूपसे परिणत हो जाती है, जैसे एकबार में खाया हुआ अन्न रस, रुधिरादि अनेकरूप से परिणत होता है।

अब उत्तरप्रकृतियों की निरुक्ति कहते हैं—

जो मतिज्ञानपर आवरण करे वह **मतिज्ञानावरण** है। जो श्रुतज्ञान को आवरित करे वह **श्रुतज्ञानावरण** है। अवधिज्ञान को जो ढंके उसे **अवधिज्ञानावरण** कहते हैं, जिसके द्वारा मनःपर्ययज्ञानका आवरण किया जावे उसे **मनःपर्ययज्ञानावरण** कहते हैं तथा केवलज्ञान को जो आवरित करे वह **केवलज्ञानावरण** है।

शंका—अभव्य के मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान की शक्ति है या नहीं, यदि है तो वह अभव्य नहीं रहा तथा यदि शक्ति नहीं है तो दोनों ज्ञानों का आवरण कहना निरर्थक है।

समाधान—द्रव्यार्थिकनय से उसके दोनों ज्ञानकी शक्ति पाई जाती है[1], किन्तु पर्यायार्थिकनय से शक्ति की व्यक्ति नहीं होती इसलिए आपके द्वारा दिये हुए दोष सम्भव नहीं है। जैसे—अंधपाषाण में स्वर्ण शक्तिरूप से है, परन्तु उसकी व्यक्ति नहीं है उसीप्रकार जानना।

---

१. धवल पु. ६ पृ. ७ व ८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो आवरण करे अथवा जिसकेद्वारा आवरण किया जाय वह आवरणकर्म है, सो चक्षुदर्शनावरण-अचक्षुदर्शनावरण-अवधिदर्शनावरण-केवलदर्शनावरण इन चार-प्रकार के दर्शनों को आवरण करनेवाले चार दर्शनावरण कर्म हैं तथा पांच निद्रा, इन निद्रा का लक्षण पहले स्वयं नेमिचन्द्राचार्य कह आये हैं।

वेदनीय के साता-असातारूप दोभेद हैं—इनका लक्षण भी पूर्व में कह चुके हैं।

मोहनीयकर्म के दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शन-मोहनीय के तीन भेद हैं—सम्यक्त्व-मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, किन्तु बन्ध की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप एक ही भेद है तथा उदय व सत्त्व की अपेक्षा तीनभेद हैं।

जिसके उदयसे जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से पराङ्मुख, तत्त्वार्थश्रद्धान में निरुत्सुक, आत्मिकहिताहित के विचारसे रहित मिथ्यादृष्टि होता है उसे मिथ्यात्व कहते हैं। जो आत्मा के श्रद्धान को नहीं रोकती, किन्तु सम्यक्त्व की निर्मलता व स्थिरता का घात करती है, वह सम्यक्त्व प्रकृति है। कोदों धान्य को प्रक्षालन करने से जिसप्रकार उसकी तीव्र मादकशक्ति कुछ कम होकर मन्द रह जाती है, उसीप्रकार जिसद्रव्य में मिथ्यात्व की तीव्र अनुभागशक्ति कुछ क्षीण हो जाय और कुछ मन्द रह जाय उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। प्रक्षालित मादककोदों के खाने से जिसप्रकार कुछ मदवान होता है और कुछ चतुर भी रहता है उसीप्रकार 'सम्यग्मिथ्यात्व' प्रकृति के उदय से आत्मा के सम्यक्-मिथ्यात्वरूप मिश्रपरिणाम होते हैं। अर्थात् सर्वज्ञकथित तत्त्वों और असर्वज्ञकथित अतत्त्वों का युगपत् श्रद्धान होता है।

आचरणकरना अथवा जिसके द्वारा आचरण किया जाय अथवा आचरण मात्र को चारित्र कहते हैं। इस चारित्र को जो मोहे या जिसके द्वारा यह चारित्र मोहा जावे वह चारित्रमोहनीय कर्म है। चारित्रमोहनीयकर्म कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय के भेद से दोप्रकार का है।

जो आत्मा के चारित्रगुण का घात करे उसे कषाय कहते हैं[1]। तथा ईषत् (किंचित्) कषाय को नोकषाय कहते हैं। कषायवेदनीय के सोलह भेद हैं—

---

१. "सुख दुःख बहुशस्य कर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः। सुख दुःख रूपी नानाप्रकार के धान्य को उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी क्षेत्र का जो कर्षण करती है अर्थात् फल उत्पन्न करने योग्य करती है, वह कषाय है।" (धवल पु. १ पृ. १४१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभ।

अनन्तसंसार का कारण होनें से मिथ्यात्व अनन्त है, उसमिथ्यात्व की जो चिरसङ्गिनी (अनुबन्धिनी), वह अनन्तानुबन्धी है। जो 'अ'-ईषत् प्रत्याख्यान-संयम अर्थात् देशसंयम या विरताविरती को अल्पमात्र भी न होने दे उसे अप्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभ कहते हैं। प्रत्याख्यानकषाय सकल-संयम को नहीं होने देती। जो संयम के साथ 'सं'—एकीभूत होकर 'ज्वलति' अर्थात् प्रकाशमान हो उसे सञ्ज्वलन कहते हैं। (यह कषाय यथाख्यातसंयम का घात करती है) इसप्रकार ये १६ प्रकार कषायवेदनीय के हैं।

नोकषाय—'नो' अर्थात् ईषत् (किंचित्) कषाय का वेदन करावे उसे नोकषाय कहते हैं। इसके नव भेद हैं—

जिसके उदय से हंसी आवे, वह हास्य है। जिसके उदय से क्षेत्रादि में प्रीति हो उसे रति[1] कहते हैं। जिसके उदय होने पर देशादि में अप्रीति हो वह अरति[2] कहलातो है। जिसका उदय इष्टवियोगज क्लेश उत्पन्न करे वह शोक[3] है। जिसके उदय से भय उत्पन्न होता है उसे भय कहते हैं। जिसके उदय से अपने दोषों को तो ढंके तथा अन्य के दोषों को प्रकट करे उसे जुगुप्सा[4] कहते हैं। अथवा ग्लानि करना जुगुप्सा है।

जिसके उदय से स्त्रीसंबंधी भावों को प्राप्त हो उसे स्त्रीवेद कहते हैं। जिसके उदय से पुरुषसम्बंधी भावों को प्राप्त हो वह पुरुषवेद है। जिसके उदय से नपुंसक-सम्बन्धी भावों को प्राप्त हो उसे नपुंसकवेद कहते हैं।

नर-नारकादिभव को जो प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे वह आयुकर्म है। इसके चारभेद हैं—जो नरक को प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे वह नरकायु है। जो तिर्यंचयोनि को प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे उसे तिर्यंचायु कहते हैं।

१. रमने को रति कहते हैं, अथवा जिसके द्वारा जीव विषयोंमें आसक्त होकर रमता है वह 'रति' है।
२. जिन कर्मस्कन्धों से द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव में जीव को अरुचि उत्पन्न होती है वह 'अरति' है।
३. सोच करने को शोक कहते हैं। अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उसे शोक कहते हैं।
४. ग्लानि होने को जुगुप्सा कहते हैं। जिन कर्मों के उदय से ग्लानि होती है उनकी 'जुगुप्सा' संज्ञा है।
(ध. पु. ६ पृ. ४७-४८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो मनुष्ययोनि को प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे उसे मनुष्यायु कहते हैं। जो देवयोनि को प्राप्त करावे और उसमें रोके रखे वह देवायु है।

नामकर्म के पिण्ड-अपिण्डप्रकृतिरूप ४२ भेद हैं। जिसके उदय से आत्मा पर्याय से पर्यायान्तर को प्राप्त हो उसे गति[1] कहते हैं। जिसके उदय से उस-उस गति-रूप क्रिया हो वह गतिनामकर्म है। गति के चारभेद हैं—नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देवगति। जिसके उदय से आत्मा नरकपर्याय को प्राप्त हो तथा नरकरूप उसके भाव व क्रिया हों उसे नरकगति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा तिर्यञ्चपर्याय को प्राप्त हो एवं तिर्यञ्चरूप उसके भाव व क्रिया हों, वह तिर्यञ्चगति कहलाती है। जिसके उदय से आत्मा मनुष्यपर्याय को प्राप्त हो तथा मनुष्यरूप उसके भाव व क्रिया हों उसे मनुष्यगति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा देवपर्याय को प्राप्त हो तथा देवगतिरूप उसके भाव व क्रिया हो वह देवगति है।

उपर्युक्त गतियों में अव्यभिचारीसादृश्यभावरूप से जीव इकट्ठे किये जावें उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

जातिनामकर्म के पांचभेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति।

जिसके उदय से आत्मा एकेन्द्रियशरीर को धारण करे उसे एकेन्द्रियजाति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा द्वीन्द्रियशरीर को धारण करे उसे द्वीन्द्रियजाति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा तीनइन्द्रिय के शरीर को धारण करे उसे त्रीन्द्रिय-जाति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा चारइन्द्रियरूप शरीर को प्राप्त करे वह चतुरिन्द्रियजाति है। जिसके उदय से आत्मा पञ्चेन्द्रियशरीर को प्राप्त करे वह पञ्चेन्द्रियजाति है।

जिसके उदय से शरीर की रचना हो उसे शरीरनामकर्म कहते हैं। इसके पांचभेद हैं—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीर। जिसके उदय से औदारिकशरीर बने उसे औदारिकशरीर कहते हैं। जिसके उदय से वैक्रियकशरीर बने वह वैक्रियकशरीर है। जिसके उदय होने पर आहारकशरीर बनता है, वह

---

१. "भवाद्भवसंक्रान्तिर्वागतिः।" एक भव से दूसरे भव में जाने को गति कहते हैं (धवल पु. १ पृ. १३५)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारकशरीर है। जिसके उदय से तैजसशरीर बने उसे तैजसशरीर कहते हैं। जिसके उदय से कार्मणशरीर बनता है वह कार्मणशरीर है।

शरीरनामकर्म के उदय से जो आहारवर्गणारूपपुद्गलस्कन्ध ग्रहण किये उनके प्रदेशों का परस्पर संश्लेशसम्बन्ध जिसके उदय में हो उसे बन्धननामकर्म कहते हैं। इसके औदारिकादि के भेद से पांचभेद हैं। तथा औदारिक-औदारिकादि संयोगी-भंग १५ हैं।

जिसके उदय से औदारिकादिशरीर छिद्ररहित परस्पर प्रदेशों का एकक्षेत्राव-गाहरूप एकत्व प्राप्त हो उसे संङ्घातनामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से औदारिकादिशरीरों का आकार बने उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं। इसके छहभेद हैं—समचतुरस्र-न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक-वामन और हुण्डकसंस्थान।

जिसके उदय से अङ्गोपाङ्ग का भेद हो वह अङ्गोपाङ्गनामकर्म है। इसके तीन भेद हैं—औदारिक-वैक्रियक और आहारकअङ्गोपाङ्ग।

जिसके उदय से हड्डियों के बन्धन विशेष होते हैं उसे संहनननामकर्म कहते हैं। इसके छहभेद हैं—वज्रर्षभनाराच-वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलित और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन।

संहनन नाम हड्डियों के समूह का है। जिससे बांधा जावे उसे ऋषभ कहते हैं। और जो वज्र के समान अभेद्य अर्थात् जिसका भेदन न किया जाय उसे वज्र कहते हैं। नाराच नाम कीले का है। जैसे—किवाड के कब्जों के बीच लोहे का कीला होता है। अतः जिस शरीरमें वज्र की हड्डियां हों, वज्र का ऋषभ, वज्र का नाराच हो उसे वज्रर्षभनाराचशरीरसंहनन कहते हैं।

जिसमें वज्र के बन्ध न हों सामान्य बन्धन से बांधा जावे, किन्तु कीला व हड्डियां वज्र की हों; ऐसा शरीर जिसके उदय से हो उसे वज्रनाराचशरीरसंहनन कहते हैं। जिसकर्म के उदय से वज्र विशेष से रहित साधारण नाराच से कीलित हड्डियों की संधि हो उसे नाराचशरीरसंहनन कहते हैं। जिसकर्म के उदय से अस्थि-सन्धि अर्धकीलित हो उसे अर्धनाराचशरीरसंहनन कहते हैं। जिसके उदय से वज्र की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हड्डियां न हों, किन्तु वे परस्पर में नोक व गड्ढे के द्वारा फंसी हुई हों उसे कीलितसंहनन कहते हैं। जिसके उदय से सरीसर्प की हड्डियों के समान नसों से बन्धी हुई पृथक्-पृथक् हड्डियाँ हों उसे असंप्राप्तासृपाटिकासंहनननामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से शरीर का वर्ण होता है उसे वर्णनामकर्म कहते हैं। इसके पांचभेद हैं—कृष्ण-नील-रक्त-हरित और शुक्ल।

जिसके उदय से शरीर में गन्ध होती है उसे गन्धनामकर्म कहते हैं। इसके दोभेद हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

जिसके उदय से शरीर में रस होता है उसे रसनामकर्म कहते हैं। इसके पांचभेद हैं—तिक्त, कटु, कषायला, अम्ल और मधुर।

जिसके उदय से शरीर में स्पर्श हो उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। इसके आठ-भेद हैं—कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध और रुक्ष। जिसके उदय से विग्रहगति में पूर्वशरीर का आकार रहे उसे आनुपूर्वी कहते हैं। इसके चारभेद हैं—नरकगत्यानु-पूर्वी-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी। नरकगति को प्राप्त होने-वाले पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीव के विग्रहगति में पूर्वशरीर का आकार जिसके उदय से हो वह नरकगत्यानुपूर्वी है इसीप्रकार अन्यतीनों में भी जानना।

जिसके उदय से शरीर लोहे के पिंडवत् नीचे न गिरे और आक की रुई के समान हलका होने से ऊपर भी न जाय उसे अगुरुलघुनामकर्म कहते हैं।

'उपेत्य घातः उपघातः' अपने घात का नाम उपघात है। जिसके उदय से अपने अङ्गों से अपना ही घात हो उसे उपघातनामकर्म कहते हैं। जैसे—बड़ेसींग, लम्बेस्तन, मोटापेट इत्यादि।

जिसके उदय से अन्य का घात करनें योग्य अङ्ग हों उसे परघातनामकर्म कहते हैं। जैसे—तीक्ष्णसींग, नख, सर्पादि की डाढ़ में विष इत्यादि।

जिसके उदय से श्वासोच्छ्‌वास हो उसे उच्छ्‌वासनामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से आतपरूप शरीर हो उसे आतपनामकर्म कहते हैं। इसप्रकृति का उदय सूर्य के बिम्ब में उत्पन्न होने वाले बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवों के होता है। अथवा सूर्यकान्तमणि में भी होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके उदय से उद्योतरूप शरीर हो उसे उद्योतनामकर्म कहते हैं। इसका उदय चन्द्रमा के बिम्ब में तथा जुगुनूआदि तिर्यंचों में पाया जाता है।

जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगतिनामकर्म कहते हैं। इसके दोभेद हैं—प्रशस्त और अप्रशस्तविहायोगति।

जिसके उदय से द्वीन्द्रियादि जीवों में जन्म हो उसे त्रसनामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से अन्य को रोके एवं अन्य से रुके ऐसा शरीर प्राप्त हो वह बादरनामकर्म है। जिसके उदय से आहारादि पर्याप्ति पूर्ण हों वह पर्याप्तनामकर्म है। इसके छहभेद हैं—आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा-मनपर्याप्ति। शरीरनामकर्म के उदय से उत्पन्न शरीर सो जिसके उदय से एकशरीर का स्वामी एक ही हो उसे प्रत्येकशरीरनामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से रसादि धातु-उपधातु अपने-अपनेरूप से स्थिर हों उसे स्थिरनामकर्म कहते हैं। कहा भी है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मासान्मेदः प्रवर्तते।
मेदोऽस्थि ततो मज्जं मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजा[1] ॥१॥
वातः पित्तं तथा श्लेष्मा सिरा स्नायुश्च चर्म च।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ॥२॥

श्लोकार्थ—रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे हड्डि, हड्डिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र की उत्पत्ति होतो है। तथा शुक्रसे संतानोत्पत्ति होती है। ये सप्तधातु क्रमसे एक दूसरे रूप परिणमती हैं। इनके बनने में ३० दिन लगते हैं अतः प्रत्येकधातु को बनने में ४ दिन और २ दिन के सातवेंभाग प्रमाण काल लगता है; तथापि इन सप्तधातुओं का अभाव नहीं होता अपने रूप से बनी रहती हैं अतः यह स्थिरनामकर्म है।

तथा वात-पित्त-श्लेष्म (कफ)-सिरा-स्नायु-चर्म और उदराग्नि ये सात उपधातु हैं। ये भी शरीर में परस्पर में परिणमन करती हुई स्थिर रहती हैं।

जिसके उदय से मस्तकादि प्रशस्त (सुन्दर) अवयव होते हैं उसे शुभनामकर्म कहते हैं। अथवा नाभि से ऊपर के अवयव शुभ होते हैं। जिसके उदय से अन्य को

१. ध. पु. ६ पृ. ६३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने से प्रीति हो वह **सुभगनामकर्म** है। अथवा जो सौभाग्य को उत्पन्न करे[1]। जिसके उदय से मनोज्ञ स्वर हो उसे **सुस्वरनामकर्म** कहते हैं। जिसके उदयसे प्रभा-कांति-सहित शरीर हो वह **आदेयनामकर्म** है। अथवा जिसके उदयसे बहुजन मान्यता प्राप्त हो वह भी आदेयनामकर्म है। जिसके उदय से अपना पुण्यरूप पवित्रगुण जगत में प्रसिद्ध हो उसे **यशस्कीर्तिनामकर्म** कहते हैं। जिसके उदय से शरीरमें अङ्गोपाङ्गआदि की रचना हो वह **निर्माणनामकर्म** है। इसके दोभेद हैं—स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण। जातिनामकर्म के उदय की अपेक्षा से नेत्रादिक जिसस्थान पर चाहिए उसीस्थान पर हों वह **स्थाननिर्माण** है। तथा काल-जातिका आश्रय करके यथाप्रमाण हों वह **प्रमाण-निर्माण** है। अर्हंतपद का कारण **तीर्थंकरनामकर्म** है।

जिसके उदय से एकेन्द्रिय में उत्पत्ति हो वह **स्थावरनामकर्म** है। सूक्ष्मशरीर बनानेवाला **सूक्ष्मनामकर्म** है। छहपर्याप्ति की पूर्णता के अभाव का कारण **अपर्याप्त-नामकर्म** है। एक शरीरके अनन्तजीव स्वामी हों अर्थात् एकशरीर को भोगने वाले अनन्तजीव जिसकर्म के निमित्त से हों वह **साधारणनामकर्म** है। इसका उदय निगोद-जीवों में रहता है। जिसके उदय से धातु-उपधातु अपने रूप से स्थिर न रहें अर्थात् एकधातु दूसरी धातुरूप से परिणमन करती रहे उसे **अस्थिरनामकर्म** कहते हैं। जिसके उदय से अमनोज्ञ-असुन्दरअवयव हों उसे **अशुभनामकर्म** कहते हैं। अथवा नाभि से नीचलेअवयव अशुभ होते हैं यह अशुभनामकर्म का कार्य है।

जिसके उदय से रूपादिगुणों से सहित होते हुए भी अन्यजन प्रीति न करें उसे **दुर्भगनामकर्म** कहते हैं। अथवा जिसके उदय से दुर्भाग्य हो वह **दुर्भगनामकर्म** है। जिसके उदय से अमनोज्ञस्वर हो उसे **दुःस्वरनामकर्म** कहते हैं। प्रभारहित शरीर का कारण **अनादेयनामकर्म** है। अथवा जिसके उदय से बहुजन मान्यता प्राप्त न हो वह अनादेयनामकर्म है। अयश का कारण **अयशस्कीर्तिनामकर्म** है।

जिसके उदय से साधुआचरण वाले कुल में जन्म हो उसे **उच्चगोत्र** कहते हैं। इससे विपरीत **नीचगोत्र** है।

जिसके उदय से दान देने की इच्छा होते हुए भी न दे सके उसे **दानान्तराय-कर्म** कहते हैं। जिसके उदय से लाभ को चाहते हुए भी लाभ न हो वह **लाभान्तराय-**

---

१. ध०पु० ६ पृ० ६५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म है। भोगनें की इच्छा होते हुए भी जिसके उदय से न भोग सके उसे भोगान्तराय-कर्म कहते हैं। उपभोग की इच्छा होते हुए भी जिसके उदय से उपभोग न कर सके वह उपभोगान्तरायकर्म है। वीर्य में विघ्नकरनेवाला वीर्यान्तरायकर्म है।

आगे नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों में अभेदविवक्षा से जो प्रकृति गर्भित की हैं उनको कहते हैं—

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥

अर्थ—पांचशरीरों के साथ अविनाभाव रखने वाले पांचबन्धन और पांच-सङ्घात का शरीरों में ही अन्तर्भाव हो जाता है इसकारण इन दशप्रकृतियों का बन्ध व उदय नहीं है तथा वर्णादि बीसप्रकृति का वर्णचतुष्क में अन्तर्भाव हो जाता है।

विशेषार्थ—नामकर्म के भेदों में जो औदारिकादि पांचशरीर हैं, उनमें अपनें-अपने बन्धन और सङ्घात अन्तर्भूत हो जाते हैं, क्योंकि इनका शरीरों के साथ परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। अतः इन दशप्रकृतियों का शरीरों के साथ बन्ध-उदय ही होता है। इसीप्रकार वर्णादि की २० प्रकृतियां भी वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शरूप चतुष्क में गर्भित हो जाने से सोलहप्रकृतियाँ बन्ध-उदय में भिन्न-भिन्न नहीं हैं, किन्तु सत्त्व में इनको पृथक् गिना जाता है। अतः बन्ध और उदय वर्णादि चारप्रकृतियों का कहा जाता है।

अब बन्ध-उदय और सत्त्वरूप प्रकृतियों को चारगाथाओं से कहते हैं—

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंध पयडीओ[1] ॥३५॥

अर्थ—पांच-नव-दो-छब्बीस-चार-सडसठ-दो और पांच ये क्रम से बन्ध प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—पांचज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-दोवेदनीय-छब्बीसमोहनीय, क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति का बन्ध नहीं होता, उदय व सत्त्व ही होता है। तथा चार-आयु, सड़सठनामकर्म की, क्योंकि पांचबन्धन और पांचसङ्घात का पांचोंशरीरों में

१. प्रा. पं. सं. प्रकृ. समु. अ., गाथा ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर्भाव होता है तथा वर्णादि की १६ प्रकृतियों का वर्णचतुष्क में अन्तर्भाव होने से इन छब्बीस प्रकृतियों को बन्ध में पृथक् नहीं गिना है। गोत्र की दो और अन्तराय की पांच इसप्रकार १२० प्रकृतियां बन्धयोग्य कही गई हैं।

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ उदय पयडीओ ॥३६॥

अर्थ—पांचज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-दोवेदनीय-अट्ठाईसमोहनीय-चारआयु सड़सठनामकर्म-दोगोत्र और पांचअन्तराय की ये सर्व मिलकर १२२ प्रकृतियां उदययोग्य हैं।

अब बन्ध तथा उदययोग्य प्रकृतियों का भेद तथा अभेदविवक्षा से कथन करते हैं—

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति वीससयं।
भेदे सव्वे उदये बावीससयं अभेदम्हि ॥३७॥

अर्थ—भेदों की विवक्षा से मिश्र तथा सम्यक्त्वप्रकृति के बिना एकसौछियालीसप्रकृतियां हैं। तथा अभेदविवक्षा से १२० प्रकृतियां बंध योग्य हैं। उदय में भेदविवक्षा से सर्व १४८ प्रकृतियां हैं, किन्तु अभेदविवक्षा से १२२ प्रकृतियां उदययोग्य हैं।

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
दोण्णिय पंच य भणिया एदाओ सत्तपयडीओ ॥३८॥

अर्थ—पांचज्ञानावरण, नवदर्शनावरण, दोवेदनीय, अट्ठाईसमोहनीय, चारआयु, तिरानवेनामकर्म, दोगोत्र और पांचअन्तराय ये १४८ प्रकृतियां सत्त्वयोग्य।

आगे घातियाकर्म में सर्वघाति-देशघातिरूप जो दोभेद हैं, उनमें सर्वप्रथम सर्वघातिरूप कर्मप्रकृतियों को कहते हैं—

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधम्हि ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—केवलज्ञानावरण, दर्शनावरण की छह, बारहकषाय एवं मिथ्यात्व ये २० प्रकृति बन्ध की अपेक्षा सर्वघाती हैं, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति अबन्ध की अपेक्षा सर्वघाति है।

विशेषार्थ—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि ५ निद्रा तथा अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभ ये १२ कषाय और मिथ्यात्व ये २० बन्धयोग्य प्रकृति सर्वघाती हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति किंचित् सर्वघाति तो है, किन्तु बन्धयोग्य नहीं है, उदय और सत्त्व में जात्यंतररूप से सर्वघाति है अतः उदय और सत्त्व की अपेक्षा २१ प्रकृति सर्वघाति हैं।

अथानन्तर देशघातिप्रकृतियों को कहते हैं—

णाणावरण चउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं।
णव णो कसाय विग्घं छब्बीसा देसघादीओ ॥४०॥

अर्थ—ज्ञानावरणकी चार, दर्शनावरणकी तीन, सम्यक्त्वप्रकृति, सञ्ज्वलनकी चार, नव नोकषाय एवं ५ अन्तराय की ये २६ प्रकृतियां देशघाति हैं।

विशेषार्थ—मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ये चारज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु-अवधि ये तीनदर्शनावरण, सम्यक्त्व तथा सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीवेद, पुंवेद-नपुंसकवेद ये १४ मोहनीय, दान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य ये पांच अन्तराय की इसप्रकार सर्वमिलकर २६ प्रकृतियां देशघाति हैं।

शंका—इन २६ प्रकृतियों को देशघाति क्यों कहा ?

समाधान—ये २६ प्रकृतियां जीवगुणों का पूर्णरूप से घात नहीं करती अतः ये देशघाति हैं। जैसे—१२ वें गुणस्थानतक मतिज्ञानावरणादिकर्म का उदय होते हुए भी मतिज्ञानादि अपने कार्य करते रहते हैं इसलिये इन प्रकृतियों को देशघाति कहा है। तथा क्षायोपशमिकभावों में भी इनके देशघातीस्पर्धकों का उदय रहता है।

घातियाकर्मों के सर्वघाति-देशघाति भेदों को कहकर आगे अघातियाकर्मों के प्रशस्त-अप्रशस्तरूप दोभेदों में से सर्वप्रथम प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियों को दो गाथाओं से कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।
देहा बंधणसंघादंगोवंगाइं वण्णचओ ॥४१॥
समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं ।
तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था ॥४२॥ जुम्मं ॥

अर्थ—सातावेदनीय, तीनआयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पांचशरीर, पांचबन्धन, पांचसङ्घात, तीनअङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, उपघातबिना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसआदि बारह ये अडसठप्रकृतियां भेदविवक्षा से हैं तथा अभेदविवक्षा से पुण्यप्रकृतियां ४२ ही हैं।

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथामें कथित पुण्यप्रकृतियों में जो तीनआयु कही है वे तिर्यंच, मनुष्य और देवायु जानना । वर्णचतुष्क में—वर्ण-गंध-रस और स्पर्श हैं, किन्तु यहां शुभरूप वर्णादि चतुष्क को ही ग्रहण करना । इनके भेद करनेपर वर्ण ५, गन्ध २, रस ५ और स्पर्श ८ इसप्रकार २० भेद होते हैं सो यहकथन भेदविवक्षा से है, किन्तु अभेदविवक्षा में शुभरूप वर्णादि चार ही ग्रहण के योग्य हैं । उपघात के बिना अगुरुलघुषट्क अर्थात् अगुरुलघु-परघात-उच्छ्वास-आतप और उद्योत ये ५ प्रकृतियां जानना । त्रस आदि १२ प्रकृतियां इसप्रकार हैं—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर । भेदविवक्षासे तो ६८ प्रकृतियां कहीं और अभेदविवक्षा से ४२ प्रकृतियां कही सो इसका अभिप्राय यह है कि पांचबन्धन और ५ सङ्घात, पांचशरीरों के अविनाभावी हैं अतः उनको पृथक् नहीं गिननेसे १० प्रकृति तो ये एवं वर्णादिकी २० में से सामान्यसे वर्णचतुष्क कहनेपर १६ प्रकृतियां वे कम हो गईं । इसप्रकार इन २६ प्रकृतियों को कम कर देनेपर अभेदविवक्षा में ४२ ही प्रकृतियां रहती हैं एवं भेदविवक्षासे इन २६ का भी कथन होने से ६८ प्रकृतियां हो जाती हैं । यहां पृथक्-पृथक्रूपसे नाम गिनाकर पुण्य (प्रशस्त) प्रकृतियों का कथन किया गया है । इसीबात को एक संक्षिप्तसूत्र द्वारा तत्त्वार्थसूत्रमें उमास्वामी आचार्य ने कहा है "सातावेदनीय, शुभआयु, नामकर्मकी शुभप्रकृतियां तथा शुभगोत्र (उच्चगोत्र) ये पुण्यरूप हैं[1] ।"

---

१. "सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं" तत्त्वार्थ सूत्र. ८/२५ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब दोगाथाओं से अप्रशस्तप्रकृतियों को कहते हैं—

घादी णीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी-
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥४३॥
उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥जुम्मं॥

अर्थ—घातियाकर्मकी ४७ प्रकृति तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, जाति ४, संस्थान ५, संहनन ५, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि १० ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियां हैं। भेदविवक्षा से बन्धरूप ९८ प्रकृतियां एवं उदयरूप १०० प्रकृतियां हैं। अभेदविवक्षा से वर्णादि की १६ प्रकृति घटानेपर बन्धरूप ८२ और उदयरूप ८४ प्रकृतियां हैं ऐसा जानना।

विशेषार्थ—यहां अप्रशस्तप्रकृतियों में घातियाकर्मों की प्रकृतियां कही गई सो घातियाकर्म तो अप्रशस्तरूप ही हैं। उनकी ४७ प्रकृतियां—ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, मोहनीय २८ और अन्तराय की ५ हैं। तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, समचतुरस्रसंस्थानबिना न्यग्रोधमण्डलादि ५ संस्थान, वज्रर्षभनाराचबिना वज्रनाराचादिक ५ संहनन, अशुभवर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशस्कीर्ति इसप्रकार वर्णादि की १६ कम करने उदयापेक्षा ८४ प्रकृतियां तथा घातियाकर्म की ४७ में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति कम कर देने से बन्धापेक्षा ८२ प्रकृतियां अप्रशस्तरूप कहीं हैं। भेदविवक्षा से वर्णादि की १६ मिलने पर बन्धापेक्षा ९८ एवं उदयापेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति मिलने से १०० प्रकृतियां पापरूप (अप्रशस्त) कही हैं।

अब अनन्तानुबन्धीआदिकषायों का कार्य बताते हैं—

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं।
जहखादं घादंति य गुणणामा होंति सेसावि ॥४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—पहली अनन्तानुबन्धीकषाय सम्यक्त्व को घातती है, दूसरी अप्रत्याख्यान-कषाय देशचारित्र को, तीसरी प्रत्याख्यानकषाय सकलचारित्र को और चौथी सञ्ज्वलन-कषाय यथाख्यातचारित्र को घातती है। अतः इनके गुणों के अनुसार ही इनके नाम भी हैं।

विशेषार्थ—अनन्तसंसार का कारण होने से मिथ्यात्व अनन्त है, उसके साथ जो सम्बन्ध करे वह अनन्तानुबन्धी है। अप्रत्याख्यान ईषत् संयम-देशसंयम को घातती है। प्रत्याख्यान सकलसंयम नहीं होने देती तथा सञ्ज्वलन-'सम'-एकरूप होकर जो संयम के साथ प्रकट रहे वह सञ्ज्वलनकषाय है। इसीप्रकार शेष नव नोकषाय और ज्ञानावरणादि भी सार्थक नामवाले हैं।

अब कषायोंका वासनाकाल कहते हैं—

अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंतभवं।
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण ॥४६॥

अर्थ—सञ्ज्वलन का वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है, प्रत्याख्यानकषाय का एकपक्ष, अप्रत्याख्यान का छहमहिना तथा अनन्तानुबन्धी का संख्यात-असंख्यात और अनन्तभव हैं।

विशेषार्थ—उदय का अभाव होते हुए भी कषाय का संस्कार जितने काल तक रहे उसका नाम वासनाकाल है। जैसे—किसी पुरुष को क्रोध का उदय हुआ उससमय वह किसी कार्य में लग गया तो उसका वह क्रोध मिट गया। अब उसके क्रोध का उदय तो नहीं है, किन्तु वासना (संस्कार) विद्यमान है, क्योंकि उसने जिस-पर क्रोध किया उसके प्रति मनमें उसके क्षमाभाव नहीं हैं। इसीप्रकार सभी कषायों का वासनाकाल जानना।

पुद्गलविपाकी प्रकृतियों को कहते हैं—

देहादी फासंता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च।
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं पोग्गल विवाई ॥४७॥

अर्थ—शरीरनामकर्मसे स्पर्शनामकर्मपर्यंत ५० प्रकृतियां और निर्माण, आतप, स्थिर, शुभ तथा प्रत्येक, इनके युगल, अगुरुलघुआदि तीन ये ६२ प्रकृतियां पुद्गल-विपाकी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—शरीर ५, बन्धन ५, संङ्घात ५, संस्थान ६, अङ्गोपाङ्ग ३, संहनन ६, वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, स्पर्श ८ ये ५० तथा निर्माण-आतप-उद्योत-स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, अगुरुलघु, उपघात और परघात ये सर्व ६२ प्रकृतियां पुद्गलविपाकी हैं, क्योंकि पुद्गल (शरीर) में ही इनका फल पड़ता है, जैसे शरीरनामकर्म के उदय से पुद्गल शरीररूप परिणमन करता है।

आगे भवविपाकी-क्षेत्रविपाकी एवं जीवविपाकीप्रकृतियों को कहते हैं—

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ ।
अट्ठत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ॥४८॥

अर्थ—चारों आयु भवविपाकी तथा चारों आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं। इनका उदय विग्रहगति में ही होता है। जीवविपाकी प्रकृतियां ७८ हैं, क्योंकि जो जीव की नरकादि पर्याय को उत्पन्न कराने में कारण हैं वे जीवविपाकी कहलाती हैं।

अब जीवविपाकीप्रकृतियों के नाम कहते हैं—

वेदणियगोदघादीणेकावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीवविवाई ॥४९॥

अर्थ—वेदनीय की दो, गोत्र की दो, घातियाकर्म की ४७, नामकर्म की २७ ये सर्व ७८ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं।

विशेषार्थ—वेदनीयकर्म पुद्गलविपाकी भी है, क्योंकि वह बाह्यसामग्री मिलाता है। "जीव-पोग्गल विवाइत्तं सादावेदणीयस्स पावेदि त्ति चे ण, इट्ठात्तादो" यदि कहा जावे कि सातावेदनीयकर्म को जीवविपाकी और पुद्गलविपाकीपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह तो इष्ट है।[1]

जीवविपाकी प्रकृतियों में कही गई नामकर्म की २७ प्रकृतियों को कहते हैं—

तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।
जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥५०॥

---

१. ध. पु. ६ पृ. ३६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—तीर्थङ्कर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, त्रस-स्थावर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, सुभग-दुर्भग, चारगति, पांचजाति ये नामकर्म की २७ प्रकृतियां हैं।

उन २७ प्रकृतियों को दूसरीप्रकार से कहते हैं—

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च।
सुभगादिचउज्जुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥५१॥

अर्थ—चारगति, पांचजाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-सुस्वर-आदेय और यशस्कीर्ति के युगल तथा तीर्थङ्कर ये नामकर्म की २७ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं।

आगे ३४ गाथाओं से चारनिक्षेपों का कथन मध्यमरुचि शिष्यों को लक्ष्य करके कहते हैं—

णामं ठवणा दवियं भावोत्ति चउव्विहं हवे कम्मं।
पयडी पावं कम्मं मलंति सण्णा हु णाममलं ॥५२॥

अर्थ—सामान्यकर्म नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव के भेद से चारप्रकार का है। प्रकृति-पाप-कर्म औरमल ये नाममल कहे गए हैं। इनको नामनिक्षेपरूप कर्म जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो किसी एक निश्चय या निर्णय में क्षेपण करे अर्थात् अनिर्णीत वस्तु का उसके नामादिक द्वारा निर्णय करावे उसे निक्षेप कहते हैं[1]। अन्य निमित्तों की अपेक्षा रहित किसी की 'कर्म' ऐसी संज्ञा करने को नामकर्म कहते हैं। नामनिक्षेप के जाति-द्रव्य-गुण और क्रिया, ये चार निमित्त कहे हैं। गौ, मनुष्य आदि जाति-निमित्तक हैं। दण्डी, छत्री, मौली आदि संयोगद्रव्यनिमित्तक हैं अथवा काना, कुबड़ा इत्यादि समवायद्रव्यनिमित्तक हैं। कृष्ण, रुधिर आदि गुणनिमित्तक तथा गायक, नर्तक आदि क्रियानिमित्तक हैं[2]।

स्थापनारूप कर्म को कहते हैं—

सरिसासरिसे दव्वे मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं।
तं एदंति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणा कम्मं ॥५३॥

---

१ ध. पु. १ पृ. १०। २. ध. पु. १ पृ. १७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सदृश अथवा विसदृश वस्तु में अपनी बुद्धिसे स्थापनाद्वारा जीवके समस्त प्रदेशोंमें स्थित जो सामान्यकर्म है 'वह यह है' ऐसी प्रतिष्ठा करना स्थापनाकर्म है ।

विशेषार्थ—स्थापनानिक्षेप दोप्रकार का है, सद्भावस्थापना और असद्भाव-स्थापना । इन दोनों में, जिसवस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार को धारण करनेवाली वस्तु में सद्भावस्थापना समझना चाहिए तथा जिसवस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकारसे रहित वस्तुमें असद्भावस्थापना जानना चाहिए[1] ।

आगे द्रव्यनिक्षेपरूप कर्मका स्वरूप कहते हैं—

दव्वे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति तप्पढमं ।
कम्मागमपरिजाणुगजीवो उवजोग परिहीणो ॥५४॥

अर्थ—द्रव्यनिक्षेपकर्म के आगमद्रव्यकर्म और नोआगमद्रव्यकर्म की अपेक्षा दोभेद हैं । जो कर्मरूपशास्त्र को जाननेवाला तो है, किन्तु वर्तमानमें उसशास्त्र में उपयोग नहीं रखता वह जीव आगमद्रव्यकर्मनिक्षेप है ।

अथानन्तर नोआगमद्रव्यनिक्षेप द्वारा कर्म को कहते हैं—

जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं विदियं ।
तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयंति दो सुगमा ॥५५॥

अर्थ—नोआगमद्रव्यकर्म के तीन भेद हैं—ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यति-रिक्त । इनमें भी ज्ञायकशरीर के तीन भेद हैं—भूत, भावी और वर्तमान । इनमें दो तो सुगम हैं ।

विशेषार्थ—कर्मस्वरूप को जाननेवाले जीवका शरीर ज्ञायकशरीरनोआगम-द्रव्यकर्म है । इसके तीनभेद हैं—भूत-वर्तमान और भावि । जिसशरीर सहित जीव कर्मस्वरूप का वर्तमान में ज्ञाता है, वह वर्तमानशरीर है । यह पहले जिस शरीर को छोड़कर आया है वह भूतशरीर और आगे जो शरीर धारण करेगा वह भाविशरीर है ।

राजपर्याय का आधार होने से अनागत और अतीत जीव में भी जिसप्रकार राजारूप व्यवहार की उपलब्धि होती है उसीप्रकार कर्मपर्याय से परिणत जीव का आधार होने से अतीत और अनागतशरीर में भी कर्मरूप व्यवहार हो सकता है[2] ।

---

१. ध. पु. १ पृ. २० । २ इसका विशेष कथन ध. पु. १ पृ. २२ से २६ तक देखें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर ज्ञायकभूतशरीर के भेद कहते हैं—

भूदं तु चुदं चइदं चदंति तेधा चुदं सपाकेण ।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि ॥५६॥

अर्थ—ज्ञायकभूतशरीर के तीनभेद हैं—च्युत, च्यावित और त्यक्त । इनमें अन्य कारण के बिना स्वयं आयु पूर्ण होने से जो शरीर छूटता है उसे च्युत कहते हैं, यह कदलीघात तथा संन्यास से रहित है ।

कदलीघात का लक्षण—

विसवेयणरत्तक्खय भयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं ।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ[1] ॥५७॥

अर्थ—विष खानेसे, रक्त के क्षय हो जाने से, भय से, शस्त्रघात से, संक्लेश से, श्वास के रुक जाने से, आहार के न मिलने आदि से आयु का क्षय हो जाता है, उसे कदलीघात (अकालमरण) कहते हैं ।

विशेषार्थ—गाथा में कथित कारणों के अतिरिक्त अन्य भी ऐसे अनेककारण है जिनके निमित्त से अकालमरण होता है । जैसे—"हिम, अग्नि, पानी, बहुत ऊंचे पर्वत अथवा वृक्षों पर चढ़ने और गिरने के समय होनेवाले अङ्गभङ्ग से तथा रसविद्या के लिए योगधारण और अनीति के नानाप्रसंगों से आयुक्षय होती है अर्थात् कदलीघातमरण होता है[2] ।

अब च्यावित-त्यक्त तथा भूतज्ञायकशरीर का लक्षण कहते हैं—

कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि ।
घादेण व अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥५८॥

अर्थ—जिस ज्ञायक का भूतशरीर अकालमरण से नष्ट हो गया है, किन्तु संन्यास से रहित हो उसे च्यावित कहते हैं । जो कदलीघात के बिना संन्यासपूर्वक छूटा है उसे त्यक्त कहते हैं ।

---

१. ध. पु. १ पृ. २३, भावपाहुड़ गाथा २५ ।

२. हिमजलणसलिलगुरुयर पव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्ज जोय धारण अणयपसगेहि विविहेहिं ॥२६॥ भावप्राभृत॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब त्यक्तशरीर के भेद कहते हैं--

भत्तपइण्णाइंगिणिपाउग्गविधीहिं चत्तमिदि तिविहं।
भत्तपइण्णा तिविहा जहण्णमज्झिमवरा य तहा ॥५९॥

अर्थ--त्यक्तशरीर के तीनभेद हैं—भक्तप्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोग्य इनमें भक्तप्रतिज्ञा के भी तीनभेद हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।

अथानन्तर जघन्यादि भेदोंका काल कहते हैं--

भत्तपइण्णाइविहि जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि।
वारसवरिसा जेट्ठा तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥६०॥

अर्थ--भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजनत्याग की प्रतिज्ञा करके जो संन्यासमरण होता है उसके काल का प्रमाण जघन्य से अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट १२ वर्ष प्रमाण है तथा अन्तर्मुहूर्त से एक-एक समय बढ़ते हुए बारहवर्षपर्यन्त जितने भेद हैं वे सब मध्यमकाल के भेद जानना।

इंगिनि और प्रायोपगमन (प्रायोग्यविधि) का लक्षण--

अप्पोवयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणीमरणं।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि ॥६१॥

अर्थ--संन्यासमरण के समय अपने शरीर का उपचार (सेवा) स्वयं करे, अन्य से नहीं करावे। इसप्रकार की विधिपूर्वक जो मरण करता है वह इंगिनिमरण है। तथा अपने शरीर की सेवा दूसरों से न करावे और स्वयं भी न करे, इसप्रकार की विधिपूर्वक शरीर का जो छोड़ना वह प्रायोपगमनमरण कहलाता है।

आगे नोआगमद्रव्य का दूसरा जो भावी भेद है, उसको कहते हैं—

भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो।
जाणुगसरीर[1] भवियं एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥६२॥

---

१. 'जाणुगसरीरि' इति प्रातिभाति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--जो जीव कर्मस्वरूपआगमका ज्ञाता भविष्यमें होगा, वह जीव ज्ञायकभावीशरीरी[1] है। इसप्रकार भावीज्ञायकशरीरीका लक्षण सर्वज्ञ ने कहा है।

आगे नोआगमद्रव्यकर्मके तीसरे 'तद्व्यतिरिक्त' भेदको कहते हैं—

तव्वदिरित्तं दुविहं कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं।
कम्मसरूवेणागय कम्मं दव्वं हवे णियमा ॥६३॥

अर्थ—तद्व्यतिरिक्त के दोभेद हैं—कर्मतद्व्यतिरिक्त और नोकर्मतद्व्यतिरिक्त। ज्ञानावरणादि मूल तथा मतिज्ञानावरणादि उत्तरप्रकृतिरूप परिणत हुए पुद्गलद्रव्य को कर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यकर्म कहते हैं।

अथानन्तर नोकर्मतद्व्यतिरिक्तका लक्षण एवं भावनिक्षेपरूपकर्मके भेदोंका कथन करते हैं—

कम्मद्दव्वादण्णं दव्वं णोकम्मदव्वमिदि होदि।
भावे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति हवे ॥६४॥

अर्थ--कर्मस्वरूपपरिणत द्रव्यसे भिन्न बाह्यकारणरूप जो द्रव्य है वह नोकर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकर्म है। भावनिक्षेपकर्मके दोभेद हैं—आगमभावकर्म-नोआगम भावकर्म।

आगमभावनिक्षेपकर्म का स्वरूप--

कम्मागमपरिजाणगजीवो कम्मागमम्हि उवजुत्तो।
भावागमकम्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा ॥६५॥

अर्थ—जो जीव कर्मस्वरूपके प्रतिपादक आगम (शास्त्र) का जाननेवाला है तथा वर्तमानकालमें उसीशास्त्रके चिन्तनरूप उपयोगसे सहित है उस जीवको आगमभावकर्म जानना चाहिए।

---

१. जीव तो शरीर नहीं हो सकता, शरीरी हो सकता है। अतः यहां शरीरी शब्द लिखा है। गाथा में 'जाणुगसरीरि भवियं' के स्थान पर 'जाणुगसरीर भवियं' लीपिकार से लिखा गया है और वही परम्परा चली आई। एक मात्रा के छूट जाने से ही अर्थ विपर्यास की परम्परा चली आ रही है ऐसा प्रतिभासित होता है, क्योंकि भावीशरीर का वर्णन तो स्वयं आचार्य गाथा ५५ में कर चुके हैं यहां तो भाविजीव (शरीरी) का कथन प्रकरण प्राप्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे नोआगमभावनिक्षेप को कहते हैं—

णो आगमभावो पुण कम्मफलं भुंजमाणगो जीवो ।
इदि सामण्णं कम्मं चउव्विहं होदि णियमेण ॥६६॥

अर्थ—कर्मफलको भोगनेवाला जीव नोआगमभावकर्म है । इसप्रकार निक्षेपों-की अपेक्षा सामान्यकर्म चारप्रकार का नियम से जानना चाहिए ।

कर्मके निक्षेपकी अपेक्षा भेद

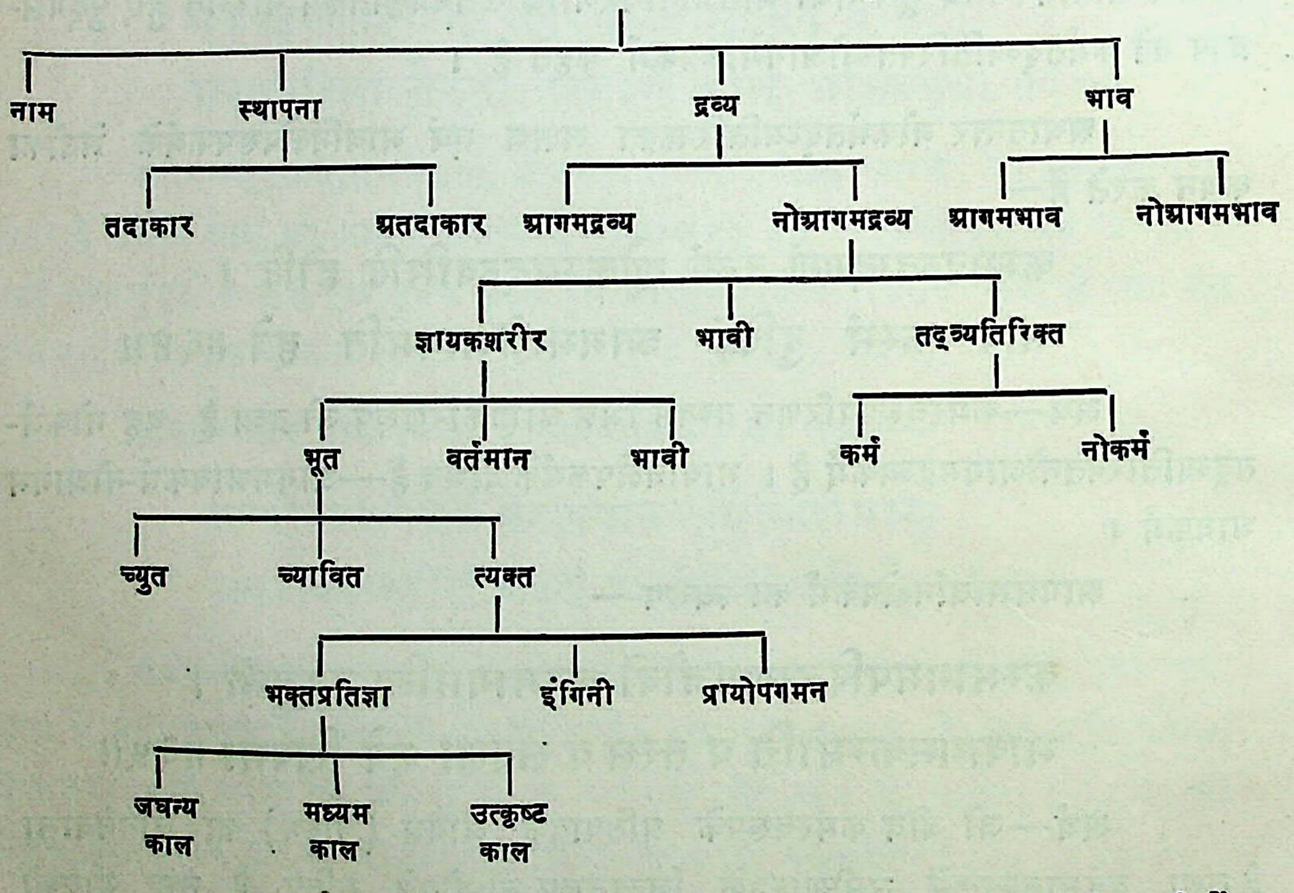

अब मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियों में नामादि चारनिक्षेपके भेदोंको कहते हैं—

मूलुत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु ।
सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो ॥६७॥

अर्थ—कर्मकी मूलप्रकृति आठ और उत्तरप्रकृति एकसौ अड़तालीस हैं । इन दोनों के नामादि चारनिक्षेप हैं उनका स्वरूप सामान्यकर्मकी तरह है, किन्तु विशेषता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह है कि जिस प्रकृतिका जो नाम है उसी के अनुसार नाम, स्थापना, द्रव्य और भावनिक्षेप होते हैं।

उपर्युक्त कथन में कुछ विशेषता है सो कहते हैं—

मूलुत्तरपयडीणं णामादि चउव्विहं हवे सुगमं।
वज्जित्ता णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च ॥६८॥

अर्थ—मूल तथा उत्तरप्रकृतियों के नामादि चारनिक्षेपों को जानना सुगम है, किन्तु नोकर्मतद्व्यतिरिक्त तथा नोआगमभावकर्म का स्वरूप समझना कठिन है।

विशेषार्थ—पहले द्रव्यनिक्षेप के दोभेद आगम-नोआगमरूप किये। नोआगम के भी ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तरूप तीनभेद हैं। तद्व्यतिरिक्त के दो भेद, कर्म और नोकर्मरूप जानना। 'नोकर्मद्रव्यकर्म' इस शब्द से नोकर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्य समझना चाहिए। जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव जिसप्रकृति के उदय-स्वरूप फल में कारणभूत हों वह द्रव्य-क्षेत्र आदि उन-उनप्रकृति के नोकर्मद्रव्यकर्म समझना।

अब सर्वप्रथम मूलप्रकृतियों के नोकर्म कहते हैं—

पडपडिहारसिमज्जा आहारं देह उच्चणीचंगं।
भंडारी मूलाणं णो कम्मं दवियकम्मं तु ॥६९॥

अर्थ—ज्ञानावरणकर्मका नोकर्मद्रव्य वस्त्र है तथा शेष सातकर्मों के क्रम से प्रतिहार, तलवार, मद्य, आहार, शरीर, ऊंच-नीचशरीर और भण्डारी ये आठप्रकार जानने।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणका नोकर्मद्रव्य वस्तु के चारों ओर लगा हुआ वस्त्र है जो वस्तु के ज्ञान को नहीं होने देता। दर्शनावरणकर्म का नोकर्मद्रव्य द्वार पर नियुक्त द्वारपाल है, जो राजा के समान निजात्मरूप आत्मा का अवलोकन नहीं होने देता। अर्थात् अन्तरमुखचितप्रकाश को नहीं होने देता। वेदनीयकर्मका नोकर्म शहदलपेटी तलवार है जो वेदनीय कर्मोदय के लिए सुख-दुःख का कारण है। मोहनीयका नोकर्म मद्य है जो मोहनीय के उदय के लिए जीव के सम्यग्दर्शनादि गुणों को घातता है। आयु का नोकर्म चारप्रकार का आहार है, जो शरीर के बल का कारण होने से शरीर में स्थिति का कारण है। नामकर्म का नोकर्म औदारिकादि शरीर है। गोत्रकर्म का नोकर्मद्रव्य ऊंच-नीचशरीर है जो गोत्रकर्म के उदय के लिए ऊंच-नीचकुल को प्रकट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। अन्तरायकर्मका नोकर्मद्रव्य भण्डारी है जो अन्तराय कर्मोदय के लिए भोग-उपभोगरूप वस्तु में विघ्न करता है।

आगे उत्तरप्रकृतियों में सर्वप्रथम ज्ञानावरण के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं—

पडविसयपहुदि दव्वं मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं।
मदिसुदबोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥७०॥

अर्थ—वस्तुस्वरूप को ढंकनेवाले वस्त्रादि पदार्थ मतिज्ञानावरण के नोकर्म हैं। इन्द्रियविषयादि श्रुतज्ञानावरण के नोकर्म हैं जो श्रुतज्ञान को नहीं होने देते।

ओहिमणपज्जवाणं पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं।
जं बज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि ॥७१॥

अर्थ—अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानका घात करनेवाले संक्लेशपरिणामों को उत्पन्न करनेवाली बाह्यवस्तु अवधि-मनःपर्ययज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य है। केवलज्ञानावरणका नोकर्मद्रव्य नहीं है।

विशेषार्थ—केवलज्ञान क्षायिक है उसको रोकनेवाली संक्लेशकारक कोई वस्तु नहीं है। अवधि और मनःपर्ययज्ञानावरण क्षायोपशमिकज्ञान हैं अतः इनके नोकर्म हैं।

दर्शनावरणकी उत्तरप्रकृतियोंके नोकर्म बताते हैं—

पंचण्हं णिद्दाणं माहिसदहिपहुदि होदि णोकम्मं।
वाघादकरपडादी चक्खुअचक्खूण णोकम्मं ॥७२॥

अर्थ—पांच निद्रारूप दर्शनावरण के नोकर्मद्रव्य भैंसका दही आदि वस्तुएं हैं। चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण के नोकर्मद्रव्य वस्त्रादि वस्तुएं हैं।

अवधि-केवलदर्शनावरण एवं वेदनीय के उत्तरभेदों का नोकर्मद्रव्य कहते हैं—

ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाण भंगो य।
सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि ॥७३॥

अर्थ—अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण का नोकर्मद्रव्य अवधिज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण के समान जानना तथा सातावेदनीय का नोकर्मद्रव्य इष्टपानादि तथा असातावेदनीय का नोकर्मद्रव्यकर्म अनिष्टपानादि हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म कहते हैं—

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्मं।
उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण ॥७४॥

अर्थ—सम्यक्त्वप्रकृति के नोकर्मद्रव्य जिनआयतन हैं। तथा मिथ्यात्व के नोकर्मद्रव्य छहअनायतन हैं। आयतन व अनायतन, ये दोनों मिश्रितरूप से सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के नोकर्मद्रव्य हैं।

विशेषार्थ—जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, जिनागम, शास्त्रज्ञ, सुतप और सुतपस्वी ये छहआयतन तथा कुदेव, कुदेवमंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्रज्ञ, कुतप और कुतपस्वी ये छहअनायतन हैं।

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी हु होदि सेसाणं।
सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुदी हवे णियमा ॥७५॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धी के नोकर्म छहअनायतन हैं। शेषकषायों के नोकर्मद्रव्य, देशचारित्र-सकलचारित्र तथा यथाख्यातचारित्र के घातक काव्य-नाटक-कोकशास्त्रादि अथवा पापी लोगों की सङ्गति है।

थीपुंसंढसरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।
वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥७६॥

अर्थ—स्त्रीवेदका नोकर्म स्त्रीका शरीर, पुरुषवेदका नोकर्म पुरुषका शरीर और नपुंसकवेदका नोकर्म नपुंसकका शरीर है। हास्यका नोकर्म विदूषकादि (हंसी मजाक करनेवाले जोकर) रतिका नोकर्म गुणवानपुत्र है, क्योंकि गुणीपुत्र पर अधिक प्रीति होती है।

इट्ठाणिट्ठविजोग-जोगं अरदि स्समुदसुपुत्तादी।
सोगस्स य सिंहादी णिंदिद दव्वंचभयजुगले ॥७७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अरतिका नोकर्म इष्टवियोग-अनिष्टसंयोग है। शोकका नोकर्म सुपुत्रादिका मरण, भयका नोकर्म सिंहादि भयंकर वस्तुएं तथा जुगुप्साका नोकर्म निंदित वस्तु है।

अथानन्तर आयुकर्म एवं गतिनामकर्म के नोकर्म कहते हैं—

णिरयायुस्स अणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठ मण्णादी।
गदिणोकम्मं दव्वं चउग्गदीणं हवे कम्मं ॥७८॥

अर्थ—नरकायु का नोकर्म अनिष्टआहार है। शेष तीनआयु का नोकर्म इन्द्रियों को प्रिय लगनेवाले अन्नपानादि हैं और सामान्य से चारों गतियों का नोकर्म चारगतिरूप क्षेत्र अर्थात् 'योनिस्थान' है।

अब नामकर्म के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं—

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा।
जाईए णोकम्मं दव्विंदियपोग्गलं होदि ॥७९॥

अर्थ—नरकादि चारगतियों का नोकर्म नियम से नरकादि गतियों का अपना-अपना क्षेत्र (योनी स्थान) है। तथा जातिकर्म कानो कर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गलकी रचना है।

एइंदियमादीणं सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं।
देहस्स य णोकम्मं देहुदयजदेहखंधाणि ॥८०॥

अर्थ—एकेन्द्रियादि पांचजाति के नोकर्मद्रव्य अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रियां हैं तथा शरीरनामकर्म के नोकर्म शरीरनामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए अपने-अपने शरीर की स्कन्धरूपपुद्गलवर्गणाएं जानना चाहिए।

ओरालियवेगुव्वियआहारयतेजकम्मणोकम्मं।
ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा ॥८१॥

अर्थ—औदारिक-वैक्रियक-आहारक-तैजसशरीरनामकर्म के नोकर्म अपने-अपने उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणाएं हैं। कार्मणशरीर का नोकर्मद्रव्य विस्रसोपचय (कर्म-रूप होने योग्य वर्गणा) हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंधणपहुदिसमण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं।
णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥८२॥

अर्थ——शरीरबंधननामकर्म से लेकर जितनी पुद्गलविपाकी प्रकृतियां हैं, उनका तथा शेष जीवविपाकी प्रकृतियों का नोकर्मद्रव्य शरीर ही है। क्षेत्रविपाकीरूप जो चारआनुपूर्वी हैं, उनका नोकर्म अपना-अपना विग्रहगतिरूप क्षेत्र ही है।

थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं।
असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ॥८३॥

अर्थ——स्थिरप्रकृति का नोकर्मद्रव्य अपने-अपने स्थान पर स्थित रहनेवाला रस-रुधिरादि है और अस्थिरप्रकृति का नोकर्म अपने-अपने स्थान से चलायमान अर्थात् परिणमनरूप रस-रुधिरादिक है। शुभप्रकृति का नोकर्म शरीर के सुन्दर अर्थात् नाभि से ऊपर के अवयव हैं। तथा अशुभप्रकृति का नोकर्म शरीर के अशुभ अर्थात् नाभि से नीचे के अवयव हैं। स्वरनामकर्म का नोकर्म सुस्वर-दुःस्वररूप से परिणमित भाषा-वर्गणारूप पुद्गलस्कन्ध है।

गोत्र तथा अन्तरायकर्म के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं—

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं।
दाणादिचउक्काणं विग्घगणगपुरिसपहुदी हु ॥८४॥

अर्थ——उच्चगोत्र का नोकर्मद्रव्य परम्परागत (साधु आचरण) कुल में उत्पन्न हुआ शरीर है। तथा इससे विपरीत नीचगोत्र का नोकर्म है। दानादि चारअन्तरायों का नोकर्म दानादि में विघ्न करनेवाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि जानना चाहिए।

विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं।
इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु ॥८५॥

अर्थ——वीर्यान्तराय का नोकर्म रुक्षआहार आदि बलनाशक पदार्थ हैं। इस प्रकार उत्तरप्रकृतियों के नोकर्मद्रव्य का कथन किया।

अब आगे नोआगमभावकर्म को कहते हैं—

णोआगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो।
पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो ॥८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जिसकर्म का जो फल है उसको भोगते हुए जीव को ही उस-उसकर्म का नोआगमभावकर्म जानना चाहिए। पुद्गलविपाकीप्रकृतियों का नोआगमभावकर्म नहीं है।

विशेषार्थ—पुद्गलविपाकीप्रकृतियों का उदय होने पर शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियों के सहयोग बिना सुखादिक की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसीकारण पुद्गलविपाकीप्रकृतियों के नोआगमभावकर्म नहीं कहे। इसप्रकार सामान्यकर्म के भेद, [मूल और उत्तरप्रकृतिरूप हैं] उनमें नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव ये चारनिक्षेप कहकर उनके यथार्थस्वरूप का वर्णन किया।

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की "सिद्धान्तज्ञान-दीपिका" नामा हिन्दी टीका में 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' नामक प्रथम अधिकार पूर्ण हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ "बन्धोदयसत्त्व" अधिकार

—❖—

आचार्यदेव मंगलाचरणपूर्वक बंध-उदय-सत्त्वअधिकारका कथन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं ॥८७॥

अर्थ—जिनका पराक्रम दूसरों की सहायता से रहित है और जो महावीर हैं ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणा में बन्ध-उदय तथा सत्त्वका कथन करनेवाले स्तवरूप ग्रन्थ को कहूँगा ।

स्तवका लक्षण कहते हैं—

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।
वण्णणसत्थं थयथुइधम्मकहा होइ णियमेण ॥८८॥

अर्थ—जिसमें सकलअङ्ग का वर्णन विस्तार से या संक्षेप से किया गया है उसशास्त्र को स्तव कहते हैं । तथा एकअङ्ग का वर्णन विस्तार अथवा संक्षेप से जिसशास्त्र में किया गया है उसशास्त्र को स्तुति कहते हैं । एकअङ्ग के अधिकार का वर्णन विस्तार या संक्षेप से जिसमें किया गया है उसे धर्मकथा (वस्तु) कहते हैं ऐसा नियम से जानना ।

विशेषार्थ—जैसे चतुर्विंशतितीर्थंकर की वन्दना को स्तवं कहते हैं उसीप्रकार संक्षेप या विस्तार से सकलअङ्ग के अर्थ का प्रतिपादकशास्त्र यहां 'स्तव' नाम से कहा गया है । तथैव जब एक तीर्थंकर की वन्दना की जाती है तो उसे स्तुति कहते हैं, वैसे ही यहां एकअङ्गके अर्थ का संक्षेप या विस्तार से कथन करनेवाला शास्त्र स्तुति कहलाता है एवं एक अङ्ग में २० वस्तु-अधिकार होते हैं इसलिए एकअङ्ग के अधिकार का संक्षेप या विस्तार से कथन करनेवाला शास्त्र धर्मकथा कहलाता है, क्योंकि प्रत्येक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु में धर्म का ही कथन है अतः यहां वस्तु को धर्मकथा कहा गया है। वस्तु और धर्म-कथा यहां पर्यायवाची ही प्रतीत होते हैं।

कर्म की बन्ध-उदय और सत्त्वरूप तीनअवस्थाओं में सर्वप्रथम बन्धअवस्था का वर्णन करते हुए बन्ध के भेद कहते हैं—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगंति पुधं ॥८९॥

अर्थ—प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेश के भेद से बन्ध चारप्रकार का है। इनमें भी प्रत्येक के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-जघन्य और अजघन्यरूप चारभेद हैं।

विशेषार्थ—पौद्गलिक मूल व उत्तरकर्मप्रकृतियों का जीव के साथ संश्लेष-सम्बन्ध होना प्रकृतिबन्ध कहलाता है। जिन कर्मप्रकृतियों का जीव के साथ संश्लेष-सम्बन्ध हुआ है उनका जीव के साथ जितने कालपर्यंन्त सम्बन्ध रहता है, उसकाल को स्थितिबन्ध कहते हैं। कर्मों की फलदेने की शक्ति अनुभागबन्ध है। तथा कर्मरूप हुई पौद्गलिककार्मणवर्गणाओं के प्रमाण को प्रदेशबन्ध कहते हैं। सबसे अधिक बन्ध को उत्कृष्टबन्ध कहते हैं। उत्कृष्ट से हीनबन्ध अनुत्कृष्टबन्ध कहलाता है। जघन्य से अधिकबन्ध को अजघन्यबन्ध एवं सबसे अल्पबन्ध को जघन्यबन्ध कहते हैं।

अब उत्कृष्टादि के भेदों को कहते हैं—

सादि अणादी धुव अद्धुवो व बंधो दु जेट्ठमादीसु।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं ॥९०॥

अर्थ—सादि-अनादि-ध्रुव और अध्रुव के भेद से उत्कृष्टादि भी चारप्रकार के हैं। सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध नानाजीवों की अथवा एकजीव की अपेक्षा ओघ और आदेश में यथासम्भव जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जिसका बन्ध छूटकर पुनः बन्ध हो वह सादिबन्ध है। अनादिकाल से जिसके संततीरूप बन्धका अभाव नहीं हुआ हो उसे अनादिबन्ध कहते हैं। जिसबन्ध का अभाव नहीं होगा वह ध्रुवबन्ध है। तथा जिसबन्ध का अभाव हो जावेगा वह अध्रुवबन्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा ।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णेवि एमेव ॥९१॥

अर्थ—मिथ्यात्व आदि गुणस्थानवर्ती जीवों के जिनकर्मों का उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग एवं प्रदेशबन्ध होता है उन्हीं कर्मों का अनुत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-बन्ध सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव के भेद से चारप्रकार का होता है तथा अजघन्य में भी ये चारभेद हैं ।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाला जीव दशवेंगुणस्थानमें गया वहां उच्चगोत्र का उत्कृष्टअनुभागबन्ध हुआ पश्चात् उपशान्तकषायगुणस्थान में गया । बाद में वही जीव वापस दशवेंगुणस्थान में आया तब उसने उच्चगोत्रका अनुत्कृष्टबन्ध किया वहां इस अनुत्कृष्टबन्ध को सादि बन्ध कहते हैं, क्योंकि पहले इस बन्ध का अभाव हुआ था, परन्तु पुनः होने लगा । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान से अधस्तनगुणस्थानवर्ती जीवों के इस प्रकृति का बन्ध अनादि है, अभव्य जीवों के ध्रुवबन्ध है तथा उपशमश्रेणीवालों के अनुत्कृष्टबन्ध के बिना जो उत्कृष्टबन्ध होता है वह अध्रुवबन्ध है ।

अजघन्य में भी ये चारप्रकार के बन्ध निम्नप्रकार हैं—

सप्तमनरक में गया नारकीजीव मिथ्यात्व के चरमसमय से पूर्व नीचगोत्र का जो बन्ध करता है वह अनादिबन्ध है । तथा वही जीव जब प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख हुआ तब उसने मिथ्यात्व के चरमसमय में नीचगोत्र का जघन्यअनुभागबन्ध किया, पश्चात् सम्यग्दृष्टि होकर पुनः मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हुआ तब नीचगोत्र का अजघन्य अनुभाग बन्ध किया । इसप्रकार नीचगोत्र का जो अजघन्यअनुभागबन्ध है वही सादिबन्ध है तथा अभव्यजीव के नीचगोत्र का अजघन्यअनुभागबन्ध ही ध्रुवबन्ध है । अजघन्य को छोड़कर जघन्य को प्राप्त हुआ वहां वह बन्ध अध्रुव है । इसप्रकार अजघन्य नीचगोत्रके अनुभागबन्धमें सादि-अनादि-ध्रुव और अध्रुवरूप चारभेद हैं, अन्यत्र भी जहां जैसे संभव हो वहां वैसा अन्य बन्धों में भी सादि-अनादि-ध्रुव और अध्रुवरूप चारप्रकार जानना । प्रकृतिबन्ध में उत्कृष्टादि चारभेद नहीं है, शेष स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबन्ध में उत्कृष्टादि भेद हैं ।

अथानन्तर गुणस्थानों में प्रकृतिबन्ध का नियम कहते हैं—

सम्मेव तित्थबन्धो आहारदुगं पमादरहिदेसु ।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधोदु ॥९२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वअवस्था में ही होता है। मिश्रगुण-स्थानबिना मिथ्यात्वगुणस्थानसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यंत आयु का बन्ध होता है।

विशेषार्थ—तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध चतुर्थगुणस्थान से अपूर्वकरण के छठे-भागपर्यन्त सम्यग्दृष्टि के ही होता है। आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्गका बन्ध अप्रमत्त से लेकर अपूर्वकरण के छठेभाग तक होता है। तथा आयुकर्म का बन्ध मिश्र-गुणस्थान और निवृत्तिअपर्याप्तअवस्था को प्राप्त मिश्रकाययोग के बिना मिथ्यात्व-गुणस्थान से अप्रमत्तपर्यन्त होता है। अवशेष प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति पर्यन्त जानना।

आगे तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का विशेष नियम कहते हैं—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥९३॥

अर्थ—प्रथमोपशम अथवा द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में तथा क्षायोपशमिक या क्षायिकसम्यक्त्व में असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य ही तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं।

विशेषार्थ—यहां पर प्रथमोपशमसम्यक्त्व को पृथक् करने का कारण यह है कि "इसका काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस सम्यक्त्व में सोलहकारणभावना नहीं भा सकते अतः इस सम्यक्त्व में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता ऐसा किसी का अभिप्राय हो, यही विचार करके पृथक् कहा" इसप्रकार किन्हीं आचार्यों ने कहा है।

"मनुष्य ही तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध करते हैं" ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि अन्यगतिवाले जीव तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध प्रारम्भ नहीं कर सकते, क्योंकि उनके विशिष्टसामग्री का अभाव है। तथा तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध तिर्यञ्चगति के बिना शेष तीनगतियों में होता है। इसके बन्ध का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तअधिकआठ-वर्षकमदोकोटिपूर्व और तेतीससागर प्रमाण है। इसके बन्ध का प्रारम्भ केवलीद्वय के पादमूल में ही होता है ऐसा नियम है, क्योंकि अन्यत्र उसप्रकार की परिणामविशुद्धि नहीं हो सकती, जिससे तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ हो सके।

यहां पर चतुर्थगुणस्थान से सप्तमगुणस्थान पर्यंत ही तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध बताया है तथा ९२ वीं गाथा में चतुर्थगुणस्थान से अपूर्वकरणगुणस्थान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छठेभागपर्यन्त तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध कहा है इसमें यह अभिप्राय है कि तीर्थङ्कर-प्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ तो चतुर्थगुणस्थान से सप्तमगुणस्थान पर्यन्त ही होता है, किन्तु आगें आठवेंगुणस्थान के छठेभागपर्यंत बन्ध होता रहता है।

अब गुणस्थानों में बन्धव्युच्छित्ति कहते हैं—

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को ॥६४॥

अर्थ—प्रथमगुणस्थान में सोलहप्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। तथा सासादन से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यंत क्रम से २५, शून्य, १०, ४-६-१ एवं अपूर्वकरण के प्रथमभाग में दो, छठेभाग में तीस और सप्तमभाग में चार, नवमगुणस्थान में पांच, दशमगुणस्थान में १६ एवं सयोगकेवली के एकप्रकृति की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—उत्पादानुच्छेद और अनुत्पादानुच्छेद ये दो बंधव्युच्छित्ति के नय हैं। उत्पादानुच्छेद को द्रव्यार्थिकनय भी कहते हैं। इस नय की अपेक्षा से तो जहां अस्तित्व है वहीं विनाश है, तथा जहां अस्तित्व ही नहीं वहां बुद्धि में कैसे आसकता है और जब बुद्धि में नहीं आवेगा तो वचन अगोचर होने से अभाव हुआ, एवं अभाव होनें से व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है तथा उसको जाननेवाला कोई सत्यप्रमाण भी नहीं है।

प्रमाण सत्‌रूप वस्तु को ही जानता है असत्‌रूप वस्तु में इसका व्यापार ही नहीं होता। यदि असत्‌रूप में प्रमाण का व्यापार माना जावेगा तो गधे के सींग में भी प्रमाण के विषय की प्रवृत्ति मानी जावेगी, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि गधे के सींग की अनुपलब्धि है। अतः जहां पर अस्तित्व है वहीं पर नास्तित्व है।

अनुत्पादानुच्छेद पर्यायार्थिक नय का विषय है। इस नय के अभिप्रायानुसार जहां सत्त्व नहीं वहां अभाव है। भाव की उपलब्धि होने पर अभाव का विरोध है, क्योंकि सद्भाव के निषेध बिना अभाव हो नहीं सकता तथा ऐसा भी नहीं है कि कर्मों का नाश नहीं है, क्योंकि घातिया व अघातियाकर्म सर्वत्र नहीं पाए जाते। अर्थात् जो सद्भावरूप है उसका अभाव नहीं है, इसीकारण सद्भाव और अभाव का परस्पर में विरोध है। अतः जहां नास्तित्व है वहीं नास्तित्व कहना योग्य है। स्याद्वाद में दोनों नय अविरोधी हैं अतः यहां व्युच्छित्ति के कथन में द्रव्यार्थिकनयरूप उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा ही कथन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पाद अर्थात् विद्यमान का अनुच्छेद-अविनाशरूप जो है वह उत्पादानुच्छेद-नय है। इसप्रकार द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अपने-अपने गुणस्थान के चरमसमय में बंधव्युच्छित्ति होती है। पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से तो उस अंतिमसमय के अनन्तर-समय में उन प्रकृतियों के बन्ध का नाश होता है।

जैसे दो पुरुष एक नगर में रहते थे उसमें से एकपुरुष दूसरे स्थान पर गया, वहां किसी ने पूछा कि तुम कहां बिछुड़े थे तब उसने कहा कि हम अमुक नगर में बिछुड़े थे। इसप्रकार जहां उनका संयोग था वहीं बिछुड़ना कहा; उसीप्रकार व्युच्छित्ति का स्वरूप जानना सो यह तो द्रव्यार्थिकनय का अभिप्राय है तथा उसीपुरुष को पूछने पर ऐसा भी कहा गया कि हम अमुकनगर को छोड़कर अमुकनगर आये और वहां से पृथक् हुए तो जैसे जहां संयोग का अभाव हुआ बिछुड़ना वहीं हुआ उसीप्रकार अबन्ध में बन्ध का अभाव जानना, यह पर्यायार्थिकनय का अभिप्राय है।

अब प्रथमगुणस्थानसम्बन्धी व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं—

मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादावं ।
सुहुमतियं वियलिंदिय णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥९५॥

अर्थ—मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन १६ प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्त में होती है।

द्वितीयगुणस्थान में बन्ध से व्युच्छिन्नप्रकृतियों को कहते हैं—

विदियगुणे अणथीणतिदुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं ।
दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ ॥९६॥

अर्थ—द्वितीयगुणस्थान के अन्त में अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक और वामनसंस्थान, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच और कीलितसंहनन, अप्रशस्त-विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योत ये २५ प्रकृतियां व्युच्छिन्न होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—ये २५ प्रकृतियां अनन्तानुबन्धी के उदयबिना मिथ्यादृष्टि के भी बन्धती हैं तथा मिथ्यात्व के उदय से रहित सासादन में केवल अनन्तानुबन्धी से भी बंधती हैं। इसप्रकार इनका कारण मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी दोनों ही जानने।

आगे चतुर्थ-पंचमगुणस्थानमें बंधव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं—

अयदे बिदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ।
देसे तदियकसाया णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ॥९७॥

अर्थ—चतुर्थगुणस्थान में द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण की चारकषाय, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी-मनुष्यायु इन १० प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है। तथा देशसंयतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण की चारकषाय बन्ध से व्युच्छिन्न होती हैं।

अथानन्तर प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च।
अपमत्ते देवाऊणिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥९८॥

अर्थ—छट्ठे गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक इन छह प्रकृतियों को बन्धव्युच्छित्ति होती है। तथा अप्रमत्तगुणस्थान में एक देवायु के बन्धनिष्ठापन की व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को कहते हैं—

मरणूणम्हि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य।
छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥९९॥
तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णागुरुचउक्कतसणवयं।
चरमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य बंधवोच्छिण्णा ॥१००॥

अर्थ—निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरणगुणस्थानके मरणरहित प्रथमभागमें श्रेणी चढ़ते समय निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों की, छठे भाग में तीर्थंङ्कर, निर्माण, प्रशस्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विहायोगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मण-आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय इन तीसप्रकृतियों की तथा सप्तमभाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन चार की बंधव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—आठवें गुणस्थान के सातभागों में से द्वितीय-षष्ठम और सप्तम इन तीनों भागों में ही उपर्युक्त ३६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है शेषभागों में व्युच्छित्ति नहीं है। एक ही समय में स्थित नाना जीवों के भिन्न-भिन्न परिणाम सम्भव हैं अतः इसको निवृत्तिगुणस्थान कहा है।

अब अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्नप्रकृतियां कहते हैं—

पुरिसं चदुसंजलणं कमेण अणियट्टिपंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसणचउजसउच्चं च सुहुमंते ॥१०१॥

अर्थ—पुरुषवेद, सञ्ज्वलन की चारकषाय इन पांचप्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के पांचभागों में क्रम से होती है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के अन्त में ज्ञानावरण की पांच, अन्तराय की पांच, दर्शनावरण की चार, यशस्कीर्ति एवं उच्चगोत्र इन १६ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—यहां पर जो 'अन्ते' शब्द है वह अन्तदीपक है अर्थात् सभी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति गुणस्थानके अन्त में समझना, किन्तु सातवें-आठवें और नवमें गुणस्थान में यथासम्भव जान लेना चाहिए।

अब उपशांतमोह-क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति कहते हैं—

उवसंतखीणमोहे जोगिम्हि य समयियट्ठिदी सादं।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥१०२॥

उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थान में एकसमय की स्थितिवाला सातावेदनीय बंधता है तथा सयोगकेवलो के अन्त में सातावेदनीय की ही बन्धव्युच्छित्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानों में बन्धव्युच्छित्ति की सन्दृष्टि :—

गुणस्थान	व्युच्छिन्न प्रकृतियों की संख्या	व्युच्छिन्न प्रकृतियों के नाम
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रियजाति स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु।
सासादन	२५	अनन्तानुबन्धी कषाय ४, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक और वामनसंस्थान, वज्रनाराच-अर्धनाराच-कीलितसंहनन, अप्रशस्त-विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योत।
मिश्र	शून्य	
असंयत	१०	अप्रत्याख्यानकी चारकषाय, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु।
देशसंयत	४	प्रत्याख्यानावरण की चारकषाय।
प्रमत्त	६	अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक।
अप्रमत्त	१	देवायु [यहां स्वस्थानअप्रमत्त में देवायु की बन्धनिष्ठापनाव्युच्छित्ति जानना। सातिशयअप्रमत्त में देवायु की व्युच्छित्ति नहीं होती, क्योंकि सातिशयअप्रमत्त में देवायु का बन्ध ही नहीं होता है।]
अपूर्वकरण (प्रथमभाग)	२	निद्रा और प्रचला। इसभाग में उपशमश्रेणि चढ़तेसमय मरण नहीं होता।
षष्ठमभाग	३०	तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस, कार्मण, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, वर्णादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय।
सप्तमभाग	४	हास्य, रति, भय और जुगुप्सा।
अनिवृत्तिकरण		
प्रथमभाग	१	पुरुषवेद
द्वितीयभाग	१	सञ्ज्वलनक्रोध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीयभाग	१	सञ्ज्वलनमान
चतुर्थभाग	१	सञ्ज्वलनमाया
पंचमभाग	१	सञ्ज्वलनलोभ
सूक्ष्मसाम्पराय	१६	ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, यशस्कीर्ति और उच्चगोत्र ।
उपशान्तमोह	शून्य	
क्षीणमोह	शून्य	
सयोगी	१	सातावेदनीय ।
		इसप्रकार सर्व १२० प्रकृतियां बन्धयोग्य कही गई हैं इनकी बन्धव्युच्छित्ति उपर्युक्त क्रम से जानना चाहिए ।

नोट—उपर्युक्त समस्त कथन नानाजीवों की अपेक्षा से है ।

अब बन्ध-अबन्धरूप प्रकृतियों को दोगाथाओं से कहते हैं—

सत्तरसेकग्गसयं चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी ।
बंधा णवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेकोघे ॥१०३॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें क्रमसे ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५६-५८-२२-१७-१-१ और १ प्रकृति के बन्ध का यह क्रम सयोगीगुणस्थानपर्यंत कहा है ।

विशेषार्थ—अभेदविवक्षा से १२० प्रकृतियां बन्धयोग्य कही गई हैं । उनमें से मिथ्यात्वगुणस्थान में ११७ प्रकृति का बन्ध है, क्योंकि यहां तीर्थङ्कर एवं आहारकद्विक, इन तीनप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता । अतः तीन तो ये तथा मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली १६ इसप्रकार १६+३=१९ प्रकृतियों का बन्ध न होने से सासादनगुणस्थान में बन्धयोग्य १०१ प्रकृति हैं । इस गुणस्थान में बन्ध से व्युच्छिन्न-प्रकृतियां तथा देवायु-मनुष्यायुका बन्ध मिश्रगुणस्थान में नहीं होता अतः दो, इसप्रकार २५+२=२७ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे मिश्रगुणस्थान में ७४ प्रकृति का ही बन्ध है ।

असंयतगुणस्थान में, पूर्वोक्त ७४ में तीर्थङ्कर-देवायु और मनुष्यायु मिलाने से ७७ प्रकृति का बन्ध है । चतुर्थगुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली १० प्रकृतियों को कम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने से देशसंयतगुणस्थान में ६७ प्रकृतियां बन्धयोग्य हैं। पञ्चमगुणस्थानमें चार-प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है उनको ६७ में से घटाने पर प्रमत्तसंयत में ६३ का बन्ध है। यहां पर व्युच्छिन्नरूप ६ प्रकृतियों को कम करके आहारकद्विक मिलाने पर अप्रमत्त-गुणस्थान में ५९ का बन्ध है। यहां एक देवायु की व्युच्छित्ति है अतः इसको घटाने से अपूर्वकरण में ५८ का बन्ध है। इसगुणस्थान के सातभागों में से प्रथम-षष्ठम और सप्तम भाग में ३६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है, इनको घटाने से अनिवृत्तिकरणमें २२ प्रकृति का बन्ध है। इसगुणस्थान के पांचभागों में पांचप्रकृति को व्युच्छित्ति है इसलिए उनको कम करने पर सूक्ष्मसाम्पराय में १७ प्रकृति का बन्ध है। यहां पर व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की है उनको घटाने पर एक सातावेदनीयप्रकृति रही इसका बन्ध उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थान में समझना चाहिए।

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च।
इगिदुगसट्ठी विरहिय सय तियउणवीससहिय वीससयं॥१०४॥

अर्थ—मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में क्रम से ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९-११९ और १२० ये क्रमसे अबन्धरूप प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति एवं आहारकद्विक इन तीन-प्रकृति का अबन्ध है। ये तीन तथा १६ व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां मिलाने से सासादन-गुणस्थान में अबन्धरूप १९ प्रकृतियां हैं। इन १९ में व्युच्छिन्नरूप २५ प्रकृति तथा देवायु-मनुष्यायु के मिलाने पर मिश्रगुणस्थान में ४६ का अबन्ध है। इनमें से तीर्थङ्कर, देवायु और मनुष्यायु को कम करने पर असंयत में ४३ प्रकृतिका अबन्ध है। इनमें चतुर्थगुणस्थान की बन्ध से व्युच्छिन्न होनेवाली १० प्रकृतियां मिलानें से देशसंयत गुणस्थान में अबन्धरूप ५३ प्रकृतियां हैं, इनमें व्युच्छित्ति को प्राप्त चारप्रकृति मिलाने पर प्रमत्तसंयत में ५७ प्रकृति का अबन्ध है। इन ५७ प्रकृतियों में छठे गुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली ६ प्रकृतियों को मिलाने पर तथा आहारकद्विक को घटाने पर अप्रमत्तमें ६१ का अबन्ध है। इनमें एक देवायु को मिलाने से ६२ प्रकृतियां अपूर्व-करणगुणस्थान में अबन्धरूप हैं। इसीगुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त ३६ प्रकृतियों को ६२ में मिलाने से अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ९८ का अबन्ध है। यहां व्युच्छिन्न होनेवाली ५ प्रकृति तथा पूर्वोक्त ९८ प्रकृतियां मिलकर १०३ प्रकृति सूक्ष्मसाम्पराय-गुणस्थान में अबन्धरूप हैं। बन्ध से व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियों को १०३ में मिलाने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपरितन उपशान्तमोह-क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थानों में ११९-११९ प्रकृतियों का अबन्ध पाया जाता है। इनमें एक सातावेदनीयप्रकृति मिलाने से अयोगकेवली-गुणस्थान में अबन्धरूप १२० प्रकृतियां जानना।

गुणस्थानों में अबन्ध-बन्ध और बन्ध से व्युच्छिन्नप्रकृतियों की सन्दृष्टि :—

गुणस्थान	अबन्ध रूप प्रकृतियां	बन्ध रूप प्रकृतियां	बन्ध से व्युच्छिन्न प्रकृतियां	विशेष
मिथ्यात्व	३	११७	१६	३ [आहारकद्विक, तीर्थङ्कर]
सासादन	१९	१०१	२५	
मिश्र	४६	७४	०	४६ [१९+२५=४४+२(मनुष्यायु,देवायु)]
असंयत	४३	७७	१०	४३ (४६–३ तीर्थङ्कर,देवायु,मनुष्यायु)
देशसंयत	५३	६७	४	
प्रमत्तविरत	५७	६३	६	
अप्रमत्तविरत	६१	५९	१	६१ [६३–२ (आहारकद्विक)]
अपूर्वकरण	६२	५८	३६	
अनिवृत्तिकरण	९८	२२	५	
सूक्ष्मसाम्पराय	१०३	१७	१६	
उपशान्तमोह	११९	१	०	
क्षीणमोह	११९	१	०	
सयोगी	११९	१	१	
अयोगी	१२०	०	०	

मार्गणाओं के अन्तर्गत गतिमार्गणा में सर्वप्रथम नरकगतिसम्बन्धी अबन्ध, बन्ध और बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को तीनगाथाओं से कहते हैं—

ओघे वा आदेसे णारयमिच्छम्हि चारि वोच्छिण्णा।
उवरिम वारस सुरचउ सुराउ आहारयमबन्धा ॥१०५॥
घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥१०६॥
मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बन्धो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥१०७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ——मार्गणाओं में व्युच्छित्ति आदि गुणस्थान के समान ही हैं, किन्तु विशेषता यह है कि नरकगतिसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में चारप्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति होती है। शेष एकेन्द्रियादि १२, सुरचतुष्क, देवायु, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग इन १९ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है ।।१०५।।

धर्मानामक प्रथमपृथ्वी में पर्याप्त-अपर्याप्तअवस्था में तीर्थङ्कर-प्रकृति का बन्ध करता है। वंशा-मेघानामक द्वितीय-तृतीयनरक में पर्याप्तजीव ही तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करता है, अपर्याप्त नहीं। माघवीनामक षष्ठमपृथ्वीपर्यंत ही मनुष्यआयु का बन्ध होता है, अन्तिम माघवीपृथ्वी की मिथ्यात्वअवस्था में ही तिर्यञ्चायु का बन्ध होता है ।।१०६।।

सप्तमनरक के मिश्र और असंयतगुणस्थान में ही उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक का बन्ध है, किन्तु मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानवर्ती इनका बन्ध नहीं करते हैं। पर्याप्तमिथ्यादृष्टि के इन तीनों का अबन्ध है ।।१०७।।

विशेषार्थ——मार्गणाओं में गुणस्थानवत् बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति का कथन जानना, किन्तु विशेषता यह है कि नरकगतिसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व-हुण्डकसंस्थान-नपुंसकवेद और सृपाटिकासंहनन, इन चार की व्युच्छित्ति होती है। शेष एकेन्द्रियादि १२, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवायु और आहारकद्विक का बन्ध नहीं है।

धर्मादि तीन नरकपृथ्वियों की पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य १०१ प्रकृति हैं। गुणस्थान आदि के चार। मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व-हुण्डकसंस्थान-नपुंसकवेद और सृपाटिकासंहनन की बन्धव्युच्छित्ति, बन्धप्रकृति १०० तथा अबन्ध एक तीर्थङ्करप्रकृति का। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६ और अबन्धप्रकृति ५। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्य आयु बिना ७० और अबन्धप्रकृति ३१। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त १०, बन्ध मनुष्यायु-तीर्थङ्कर सहित ७२ एवं अबन्ध २९ प्रकृति का है।

प्रथम द्वितीय-तृतीयनरकमें बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियोंकी संदृष्टि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[पर्याप्तावस्था में बन्ध योग्य १०१ प्रकृति । गुणस्थान चार ।]

गुणस्थान	अबन्ध	बन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१	१००	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ [मिथ्यात्व,हुण्डकसंस्थान, नपुंसक-वेद, सृपाटिकासंहनन]
सासादन	५	९६	२५	२५ [गुणस्थानोक्त]
मिश्र	३१	७०	०	३१ [२५+५+१ (मनुष्यायु) या इस गुणस्थान में आयु का बन्ध नहीं होता ।]
असंयत	२९	७१	१०	२९ [३१–२ (तीर्थंकर-मनुष्यायु) इन दो प्रकृतियों का बन्ध इसगुणस्थान में नहीं होता है । १० (गुणस्थानोक्त)]

द्वितीय-तृतीयनरक में जातेसमय सम्यक्त्व छूट जाता है तथा एकअन्तर्मुहूर्त तकतीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध रुक जाता है। अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध पुनः होने लगता है ।

अञ्जानादि तीन नरकोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिबिना बन्धयोग्य १०० प्रकृति हैं । सर्वकथन घर्मादि के समान ही जानना । यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति १०० तथा अबन्ध शून्य । सासादन में व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६ एवं अबन्धप्रकृति चार । मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्यायु के बिना ७०, अबन्धप्रकृति ३० । असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्ध मनुष्यायु सहित ७१ का और अबन्ध २९ प्रकृतिका ।

अञ्जनादि चतुर्थ-पंचम-षष्ठम नरक में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप कर्म-प्रकृतियों की संदृष्टि—

यहां पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति १०० । गुणस्थान चार ।

गुणस्थान	अबन्ध	बन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१००	०	४	४ (पूर्वोक्त मिथ्यात्वादि)
सासादन	९६	४	२५	२५ (पूर्वोक्त)
मिश्र	७०	३०	०	३० [२५+४+१ (मनुष्यायु)]
असंयत	७१	२९	१०	२९ [३०–१ (मनुष्यायु)]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माघवीनामक सप्तमनरकमें मनुष्यायुबिना बन्धयोग्य ९९ प्रकृतियां हैं और गुणस्थान चार हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त चारप्रकृतियां और तिर्यञ्चायु इन पांच की व्युच्छित्ति, उच्चगोत्र-मनुष्यद्विकबिना ९६ का बन्ध तथा उच्चगोत्रादि तीन का अबन्ध। सासादनमें तिर्यञ्चायु बिना २४ की व्युच्छित्ति, बन्ध ९१ प्रकृतिका और अबन्धरूप ८ प्रकृतियां। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, उच्चगोत्र और मनुष्यद्विकसहित बन्ध ७० प्रकृतिका, अबन्धरूप २९ प्रकृति। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति मनुष्यायुबिना ९, बन्धरूप ७० प्रकृति, अबन्धरूप २९ प्रकृति।

सप्तममाघवी नामक पृथ्वीसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियोंकी संदृष्टि—

पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्यप्रकृति ९९। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९६	३	५	३ (उच्चगोत्र-मनुष्यद्विक) ५ (पूर्वोक्तमिथ्यात्वादि ४+१ तिर्यञ्चायु)
सासादन	९१	८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५−१ तिर्यंचायु)
मिश्र	७०	२९	०	२९ (२४+५−३ [उच्चगोत्र-मनुष्यद्विक])
असंयत	७०	२९	९	९ [गुणस्थानोक्त १०−१ (मनुष्यायु)]

प्रथमनरक सम्बन्धी अपर्याप्तकाल में मिश्रकाययोगी के समान मनुष्य एवं तिर्यञ्चायु के बिना बन्धयोग्य ९९ प्रकृति हैं, क्योंकि वैक्रियक मिश्रकाययोग में आयु-बन्ध नहीं है। यहां गुणस्थानमिथ्यात्व और असंयत ये दो ही हैं, क्योंकि नारकी के अपर्याप्तावस्था में सासादनगुणस्थान नहीं होता है। यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्वादि चार तथा सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली २४ प्रकृतियां, ये मिलकर २८ प्रकृति व्युच्छिन्न होती हैं, बन्ध तीर्थङ्कर बिना ९८ प्रकृति का, अबन्ध एक-प्रकृति का है। असंयतगुणस्थान में मनुष्यायु बिना गुणस्थानोक्त ९ प्रकृति की व्युच्छित्ति, बन्ध तीर्थङ्कर सहित ७१ एवं अबन्ध २८ प्रकृति का जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमनरकसम्बन्धी अपर्याप्तावस्थामें बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिकी संदृष्टि—

प्रथमनरक की अपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य ९९ प्रकृति। गुणस्थान दो।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९८	१	२८	१ (तीर्थङ्कर) २८ (४ मिथ्यात्व एवं २४ सासादन-गुणस्थान की)
असंयत	७१	२८	९	२८ (२९–१ तीर्थङ्कर) ९ (पूर्वोक्त)

वंशा को आदि लेकर पांचपृथ्वियोंकी अपर्याप्तावस्थामें ९८ प्रकृति बन्धयोग्य हैं तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही पाया जाता है। अन्तिम माघवीनामक पृथ्वीमें भी अपर्याप्तावस्थामें बंधयोग्य ९५ प्रकृति एवं एक मिथ्यात्वगुणस्थान ही है।

आगे तिर्यञ्चगति सम्बन्धी बन्धव्युच्छित्ति, बन्ध-अबन्ध का कथन करते हैं—

तिरिये ओघो तित्थाहारूणो अविरिदे छिदी चउरो।
उवरिम छण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा ॥१०८॥

अर्थ—तिर्यञ्चगति में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति गुणस्थानवत् ही जानना, किन्तु विशेषता यह है कि यहां तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता है इसलिए बन्धयोग्य प्रकृति ११७ हैं। तथा असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानरूप चारकषायकी ही व्युच्छित्ति है, शेष वज्रर्षभनाराचादि छहप्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें ही हो जाती है, क्योंकि तिर्यञ्चगति के मिश्र और असंयतगुणस्थान में तिर्यञ्च और मनुष्यगतिसम्बन्धी प्रकृतियों का बन्ध नहीं है।

सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि ॥१०९॥

अर्थ—सामान्य, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्त, योनिमति और लब्ध्यपर्याप्तके भेदसे तिर्यञ्च पांचप्रकार के हैं। प्रथम चारप्रकार के तिर्यञ्चों में तो पूर्वगाथा में कहे अनुसार बन्धव्युच्छित्यादि जानना, किन्तु लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्च में देवायु-नरकायु और वैक्रियकषट्क [देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग] इन आठ का बन्ध नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—सामान्यादि चारप्रकार के तिर्यञ्चों के मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में बन्धयोग्य ११७ प्रकृति हैं तथा गुणस्थान आदिके पांच हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की, बन्धप्रकृति ११७, अबन्ध नहीं है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २५ तथा असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन ३१ प्रकृतियों की होती है। यहां बन्धप्रकृति १०१ और अबन्धरूप प्रकृति १६ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति का अभाव है, बन्ध देवायु बिना पूर्वोक्त ६९ प्रकृति तथा अबन्ध ४८ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, बन्ध देवायु सहित ७० और अबन्ध ४७ का। देशसंयत में व्युच्छित्ति प्रत्याख्यानकषाय-चार, बन्ध ६६ और अबन्ध ५१ प्रकृति का जानना।

लब्ध्यपर्याप्त बिना शेष चारप्रकार के तिर्यञ्चसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्ति की संदृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति ११७। गुणस्थान आदि के ५।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	११७	०	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१६	३१	३१ (२५+६[वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, मनुष्यायु])
मिश्र	६९	४८	०	४७ (३१+१६+१ देवायु)
असंयत	७०	४७	४	४७ (४८–१ देवायु) ४ (अप्रत्याख्यानकषाय)
देशविरत	६६	५१	४	४ (प्रत्याख्यानकषाय)

सामान्यादि चारों प्रकारके तिर्यञ्चोंकी निर्वृ त्त्यपर्याप्तावस्था में बन्ध-योग्य प्रकृति १११ हैं, क्योंकि इनके निर्वृ त्तिअपर्याप्तावस्था में चारआयु और नरकद्विक का बन्ध नहीं होता अतः पूर्वोक्त ११७ में से ये छह कम करने पर १११ प्रकृति बन्ध-योग्य रहीं। गुणस्थान तीन हैं।

यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में गुणस्थानोक्त व्युच्छिन्न १६ प्रकृति में से नरकायु और नरकद्विक बिना १३ प्रकृति व्युच्छित्तिरूप हैं। बन्धयोग्य प्रकृति १०७ हैं, क्योंकि मिथ्यात्व व सासादनगुणस्थानवर्ती अपर्याप्त के देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग का बन्ध नहीं होता, अबन्धरूप प्रकृति ४ हैं। सासादनगुणस्थान में पूर्वोक्त ३१ में से तिर्यञ्च-मनुष्यायु बिना २९ की व्युच्छित्ति, मिथ्यात्वगुणस्थान की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियां कम करने पर बन्धयोग्य प्रकृति ९४ और अबन्ध १७ प्रकृति का है। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान की ४ कषाय, पूर्वोक्त व्युच्छिन्नप्रकृति कम करके और सुरचतुष्क के मिलाने से ६९ प्रकृति का बन्ध, अबन्धप्रकृति ४२।

लब्ध्यपर्याप्त बिना शेष चारप्रकारके तिर्यञ्च सम्बन्धी निवृत्यपर्याप्तअवस्थाकी संदृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति १११। गुणस्थान तीन।

गुणस्थान	बन्ध प्रकृति	अबन्ध प्रकृति	बन्ध व्युच्छित्ति प्रकृति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	४	१३	४ (सुरचतुष्क) १३(१६–३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१७	२९	२९ (३१–२ तिर्यंच, मनुष्यायु)
असंयत	६९	४२	४	४२ (४६–४ सुरचतुष्क का बंध होने से। किन्तु योनिमति तिर्यंच के यह गुणस्थान नहीं होता) ४ (अप्रत्याख्यान कषाय)

लब्ध्यपर्याप्त तिर्यञ्चोंके नरकायु-नरकद्विक-देवायु-देवद्विक और वैक्रियकद्विक इन ८ प्रकृति बिना (११७—८) १०९ प्रकृति का बन्ध होता है। यहां एक मिथ्यात्व-गुणस्थान ही है।

अथानन्तर मनुष्यगतिसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को कहते हैं—

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव।
सामण्णपुण्णमणुसिणिणरे अपुण्णे अपुण्णेव ॥११०॥

अर्थ—मनुष्यगतिसम्बन्धी सर्वकथन तिर्यञ्चगतिवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि यहां तीर्थङ्कर और आहारकद्विक का बन्ध होने लगता है, अत: यहां पर बन्धयोग्य १२० प्रकृति हैं। सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यिनी में बन्ध-अबन्धादि की रचना तिर्यञ्चगति के समान है और लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्य की रचना लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चवत् ही है।

विशेषार्थ—मनुष्यगतिसम्बन्धी असंयतगुणस्थानमें यद्यपि व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान कषायरूप चारप्रकृति की है और शेष वज्रर्षभनाराचादि छहप्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में ही हो जाती है, तथापि इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर और आहारकद्विक का बन्ध मनुष्यों में पाया जाता है। सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनी की भी रचना इसीप्रकार जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धयोग्य प्रकृति १२० एवं गुणस्थान १४ हैं। पूर्व-पूर्व गुणस्थानों की व्युच्छिन्न-प्रकृतियों को बन्ध में से घटाने पर विशेषकथन पूर्वक अबन्धयोग्य प्रकृतियों में मिलाने पर गुणस्थानों में बन्ध और अबन्ध होता है।

यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की, बन्ध तीर्थङ्कर और आहारकद्विकबिना ११७ प्रकृति का, अबन्धप्रकृति ३। सासादनगुणस्थान में तिर्यञ्च-वत् व्युच्छित्ति ३१ की, बन्धप्रकृति १०१ और अबन्धप्रकृति १९ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, बन्ध देवायुबिना ६९, अबन्धरूप प्रकृति ५१। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानरूप चारकषाय की व्युच्छित्ति, बन्ध देवायु और तीर्थङ्कर के मिलने से ७१ प्रकृति का, अबन्धप्रकृति ४९। देशविरतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति प्रत्याख्यान की चारकषाय, बन्धप्रकृति ६७ और अबन्धप्रकृति ५३। इसके आगे प्रमत्त-गुणस्थानसे अयोगीपर्यन्त व्युच्छित्ति-बन्ध और अबन्धरूप कथन गुणस्थानरचनावत् जानना।

सामान्यमनुष्य-पर्याप्तमनुष्य-मनुष्यनीसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी संदृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति १२०। गुणस्थान १४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	३	१६	३(तीर्थङ्कर-आहारकद्विक)१६(गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१९	३१	३१ (२५+६ वज्रर्षभनाराचादि पूर्वोक्त)
मिश्र	६९	५१	०	५१ (३१+१९+१ देवायु)
असंयत	७१	४९	४	४९(५१-२तीर्थङ्कर,देवायु)४(अप्रत्याख्यानकषाय)
देशसंयत	६७	५३	४	४ (प्रत्याख्यानकषाय)
प्रमत्तसंयत	६३	५७	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	६१	१	६१ (६३–२ आहारकद्विक) १ (देवायु)
अपूर्वकरण	५८	६२	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	९८	५	५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	१०३	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	११९	०	१ (सातावेदनीय)
क्षीणमोह	१	११९	०	१ (सातावेदनीय)
सयोगी	१	११९	१	१ (व्युच्छित्तिरूप सातावेदनीय)
अयोगी	०	१२०	०	

सामान्य-पर्याप्तमनुष्य तथा मनुष्यनी के निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य ११२ प्रकृति हैं। ये तीनों मिश्रकाययोगी निर्वृत्त्यपर्याप्तक हैं, अतः यहां चारआयु, नरकद्विक, आहारकद्विक इन आठप्रकृति का बन्ध नहीं हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगी ये पांच हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में, गुणस्थानोक्त १६ में से नरकद्विक व नरकायुबिना १३ प्रकृति व्युच्छिन्न होती हैं देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग व तीर्थंङ्कर बिना बन्धयोग्यप्रकृति १०७, अबन्धप्रकृति ५। सासादनगुणस्थान में पूर्वोक्त ३१ में से मनुष्य-तिर्यंचायु बिना २९ प्रकृति व्युच्छिन्न होती हैं, बन्धप्रकृति ९४, अबन्ध १८ प्रकृतियों का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानरूप चार-चारकषाय (८ प्रकृति) की होती है, सुरचतुष्क और तीर्थंङ्करसहित बन्ध ७० का, अबन्धप्रकृति ४२। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति प्रमत्तसम्बन्धी ६, (अप्रमत्तसम्बन्धी देवायु भी यहां बन्ध में नहीं है) अपूर्वकरण की आहारकद्विक बिना ३४, अनिवृत्तिकरण की ५ और सूक्ष्मसाम्परायसम्बन्धी १६, इन सर्व (६+३४+५+१६) ६१ प्रकृतियों की होती है, बन्धप्रकृति ६२ तथा अबन्धप्रकृति ५० हैं। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति एकसातावेदनीय, बन्धप्रकृति एकसातावेदनीय, अबन्धप्रकृति १११। यहां इतनी विशेषता है कि मनुष्यनी के चतुर्थ व षष्ठमगुणस्थान नहीं होता अत: इसके सासादनगुणस्थाम में ९८ प्रकृति की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

सामान्य-पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनी इन तीनों की निवृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति की संदृष्टि—

४ आयु-नरकद्विक-आहारकद्विक इन आठ बिना (१२०-८) ११२ प्रकृति बन्धयोग्य। गुणस्थान पांच हैं।

गुणस्थान	बन्ध प्रकृति	अबन्ध प्रकृति	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (सुरचतुष्क, तीर्थंङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१८	२९	२९ (पर्याप्तिवत् ३१-२, मनुष्य, तिर्यञ्चायु), किन्तु मनुष्यनी के व्युच्छित्ति ९८ प्रकृति की।
असंयत	७०	४२	८	४२ (२९+१८-५, तीर्थंङ्कर-सुरचतुष्क) ८ (प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान की चार-चारकषाय) नोट—यह गुणस्थान मनुष्यिनि के नहीं होता है।
प्रमत्त	६२	५०	६१	६१ (प्रमत्त की ६+अपूर्वकरण की आहारकद्विक-बिना ३४+अनिवृत्तिकरण की५+सूक्ष्म सां.की १६) यह गुणस्थान भी मनुष्यनी के नहीं होता।
सयोगी	१	१११	१	१ (सातावेदनीय)

लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्य का सर्वकथन लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्च के समान हो है। यहां देवायु-नरकायु और वैक्रियकषट्क के बिना बन्धयोग्य प्रकृति १०९ हैं और गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे देवगति में कथन करते हैं—

णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी।
सोलस चेव अबन्धा भवणतिए णत्थि तित्थयरं ॥१११॥

अर्थ—देवगति का सर्वकथन नरकगतिवत् जानना, किन्तु यहां विशेषता यह है कि मिथ्यात्वगुणस्थान में ईशानस्वर्गपर्यन्त सातप्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति होती है शेष ९ प्रकृतियों का यहां बन्ध नहीं है। अतः ९ तो ये एवं सुरचतुष्क, देवायु, आहारकशरीर और आहारकअङ्गोपाङ्ग ये सात ऐसे सर्व १६ प्रकृतियां बन्धयोग्य न होने से १०४ प्रकृति का ही यहां बन्ध है। भवनत्रिकदेवों के तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता है।

विशेषार्थ—देवगतिसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकद्विक और नरकायु ये ९ प्रकृतियां बन्धयोग्य नहीं हैं। अतः ९ तो ये तथा देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवायु, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग ये सात मिलकर १६ प्रकृति देवगति में बन्धयोग्य नहीं है अतः सामान्य से १०४ का ही बन्ध है।

सर्वभवनत्रिक में तथा "कप्पित्थीसु ण तित्थं" गाथा ११२ के इन वचनों के अनुसार कल्पवासीदेवाङ्गनाओं में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता। अतः यहां बन्धयोग्य १०३ प्रकृति हैं तथा गुणस्थान चार होते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति, मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप की बन्धप्रकृति १०३, अबन्ध शून्य। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त २५, बंध ९६ और अबन्ध ७ प्रकृति का है। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्यायुबिना ७०, अबन्धप्रकृति ३३। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १० की, बन्धप्रकृति मनुष्यायुसहित ७१, अबन्धप्रकृति ३२ हैं।

सर्वभवनत्रिक में तथा कल्पावासिनीदेवाङ्गनाओं की पर्याप्तावस्था की संदृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति १०३। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०३	०	७	७ (मिथ्यात्व. हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप)
सासादन	९६	७	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७०	३३	०	३३ (२५+७+१ मनुष्यायु)
असंयत	७१	३२	१०	३२ (३३–१ मनुष्यायु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौधर्म-ईशानस्वर्ग में बन्धयोग्य प्रकृति १०४ हैं। गुणस्थान चार। यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति ७, बन्ध तीर्थङ्करबिना १०३, अबन्धप्रकृति १। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६ तथा अबन्धप्रकृति ८। मिश्र-गुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्यायुबिना ७०, अबन्ध ३४। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १०, बन्धमनुष्यायु-तीर्थङ्करसहित ७२, अबन्धप्रकृति ३२।

सौधर्म-ईशानस्वर्ग में बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्ति की संदृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति १०४। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०३	१	७	१ (तीर्थङ्कर) ७ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९६	८	२५	
मिश्र	७०	३४	०	३४ (२५+८+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	३२	१०	३२ (३४–२ तीर्थङ्कर व मनुष्यायु)

कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचउ॥११२॥

अर्थ—कल्पवासिनी देवाङ्गनाओं में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता है। तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी-तिर्यञ्चायु और उद्योत, इन चारप्रकृतियों का बन्ध ग्यारहवें-बारहवें (सतार-सहस्रार) स्वर्गपर्यन्त होता है। इन चारप्रकृतियों को "शतार-चतुष्क" भी कहते हैं, क्योंकि शतारयुगल तक ही इनका बन्ध होता है।

विशेषार्थ—कल्पवासिनीदेवाङ्गनाओं में बन्ध-अबन्धादि का कथन भवनत्रिकवत् जानना इसका समस्त वर्णन भवनत्रिक के साथ पूर्वगाथा में कर आये हैं।

सनत्कुमारादि दशस्वर्गों में नरकगति के समान ही रचना है। यहां बन्ध-योग्य प्रकृति १०१ तथा गुणस्थान चार हैं। ईशानस्वर्गपर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थान में जिन सातप्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है उनमें से यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद तथा सृपाटिकासंहनन की ही व्युच्छित्ति होती है, बन्धयोग्य प्रकृति तीर्थङ्कर बिना १००, अबन्ध तीर्थङ्करप्रकृतिका। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६, अबन्धप्रकृति ५। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्धप्रकृति ७०, मनुष्यायु के बिना अबन्ध ३१। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १०, बन्धप्रकृति मनुष्यायु-तीर्थङ्कर सहित ७२, अबन्ध २९ प्रकृति का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सनत्कुमार से सहस्रारस्वर्गपर्यन्त बन्धादि की सन्दृष्टि—

यहां पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्यप्रकृति १०१। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१००	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ [मिथ्यात्व,हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद और सृपाटिकासंहनन]
सासादन	९६	५	२५	
मिश्र	७०	३१	०	३१ (२५+५+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	२९	१०	२९ (३१–२ तीर्थङ्कर-मनुष्यायु)

शतारचतुष्क का बन्ध शतार-सहस्रारस्वर्गयुगल तक ही होता है, अतः आनतादि चारस्वर्गों में तथा नवग्रैवेयक में बन्धयोग्य प्रकृति (१०१–४) ९७ हैं। गुणस्थान चार हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थङ्करबिना बन्धप्रकृति ९६, अबन्धप्रकृति १ और बन्धव्युच्छित्ति ४। सासादनगुणस्थान में शतारचतुष्क के बिना व्युच्छित्ति २१, बन्ध ९२ का तथा अबन्धप्रकृति ५ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुबिना बन्धप्रकृति ७०, अबन्धप्रकृति २७। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्ध तीर्थङ्कर-मनुष्यायुसहित ७२ का और अबन्धरूप प्रकृति २५ हैं।

आनतादि चारस्वर्गों तथा नवग्रैवेयक सम्बन्धी सन्दृष्टि—

यहां पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति ९७। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९६	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९२	५	२१	२१ (२५–४ शतारचतुष्क)
मिश्र	७०	२७	०	२७ (२१+५+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	२५	१०	२५ (२७–२ तीर्थङ्कर-मनुष्यायु)

अनुत्तरविमानवासी अहमिन्द्रदेव सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं। इनमें बन्धयोग्य प्रकृति ७२ तथा गुणस्थान एक असंयत ही होता है।

सर्वभवनत्रिक में और कल्पवासीदेवाङ्गनाओं के बन्धयोग्य १०३ प्रकृति हैं, किन्तु इनकी निवृत्यपर्याप्तावस्था में तिर्यञ्च-मनुष्यायु का बन्ध न होने से बन्धयोग्य प्रकृति १०१ है। गुणस्थान दो हैं, क्योंकि असंयत मरणकर यहां उत्पन्न नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति ७ की, बन्धप्रकृति १०१, अबन्ध का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २४, बन्ध ९४ प्रकृति का और अबन्धरूप प्रकृति ७ हैं।

सर्व भवनत्रिक और कल्पवासीदेवाङ्गनाओं की निवृत्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति १०१। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	०	७	७ (मिथ्यात्व-हुण्डकसंस्थानादि पूर्वोक्त)
सासादन	९४	७	२४	२४ (२५–१ तिर्यञ्चायु)

सौधर्म-ईशानस्वर्गसम्बन्धी निवृत्त्यपर्याप्तकअवस्था में तीर्थङ्करसहित बन्धयोग्य प्रकृति १०२ हैं। गुणस्थानमिथ्यात्व-सासादन-असंयत ये तीन हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ७, बन्धरूप प्रकृति तीर्थङ्करबिना १०१ और अबन्ध १ का, सासादनगुणस्थान में तिर्यञ्चायु बिना व्युच्छित्ति २४ प्रकृति की, बंधप्रकृति ९४, और अबन्धरूप प्रकृति ८ हैं। असंयतगुणस्थान में मनुष्यायुबिना ९ प्रकृति व्युच्छित्तिरूप हैं, बन्धप्रकृति ७१, अबन्धप्रकृति ३१।

सौधर्म-ईशानस्वर्गसम्बन्धी निवृत्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्यप्रकृति १०२ तथा गुणस्थान तीन हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	१	७	१ (तीर्थङ्कर) ७ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९४	८	२४	२४ (पूर्वोक्त)
असंयत	७१	३१	९	३१ (२४+८–१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)

सनत्कुमार से सहस्रारपर्यंत १० स्वर्गों की निवृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति ९९। गुणस्थान तीन। यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्वादि चार प्रकृतियों की है, बन्ध तीर्थङ्करबिना ९८ प्रकृति का और अबन्धरूप प्रकृति १। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २४, बन्धप्रकृति ९४ एवं अबन्धप्रकृति ५। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ९ प्रकृति की, बन्धप्रकृति तीर्थङ्करसहित ७१ और अबन्धप्रकृति २८ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सनत्कुमारादि १० स्वर्गोंमें बन्ध आदिकी सन्दृष्टि—

यहां निवृत्त्यपर्याप्तावस्थामें बन्धयोग्य ९९। गुणस्थान तीन।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९८	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन)
सासादन	९४	५	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७१	२८	९	२८ (२४+५–१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)

आनतादि चारस्वर्गोंमें तथा नवग्रैवेयकमें तिर्यञ्चद्विक-उद्योतरहित बन्धयोग्य ९६ प्रकृति। गुणस्थान तीन हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति ९५, अबन्धप्रकृति १। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शतारचतुष्कबिना २१ प्रकृतिकी, बन्ध ९१ प्रकृतिका, अबन्ध ५ प्रकृतिका है असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति ९, बन्धरूपप्रकृति ७१ तथा अबन्ध २५ प्रकृतिका जानना।

आनत-प्राणत-आरण-अच्युतस्वर्ग तथा नवग्रैवेयकसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

यहां निवृत्त्यपर्याप्तावस्थामें बन्धयोग्य प्रकृति ९६। गुणस्थान ३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९५	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९१	५	२१	२१ (गुणस्थानोक्त २५–४ तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योतरूप शतारचतुष्क)
असंयत	७१	२५	९	२५ (२१+५–१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)

अनुदिश और अनुत्तरवासी सभीदेव असंयत होते हैं। इनके निर्वृत्त्यपर्याप्त-अवस्थामें ७१ प्रकृति बन्धयोग्य जानना तथा गुणस्थान एक असंयत है।

॥ इति गति मार्गणा ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अथ इन्द्रियमार्गणा"

आगे इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तिका कथन करते हैं—

पुणिणदरं विगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे।
पज्जत्तिं णवि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥११३॥

अर्थ—एकेन्द्रिय तथा विकलत्रयमें लब्ध्यपर्याप्तकवत् बन्धयोग्यप्रकृति १०९ हैं। यहां गुणस्थान मिथ्यात्व-सासादन ये दो ही हैं। एकेन्द्रिय तथा विकलत्रयमें उत्पन्न हुआ जीव सासादनगुणस्थानमें पर्याप्तिको पूर्ण नहीं कर सकता अतः यहां तिर्यञ्च व मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं करता, इसलिए इन दोनोंकी बन्धव्युच्छित्ति प्रथमगुणस्थानमें होती है।

विशेषार्थ—इन्द्रियमार्गणामें एकेन्द्रिय तथा विकलत्रयमें लब्ध्यपर्याप्तकके समान तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु-नरकायु और वैक्रियकषटक् इन ११ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं है अतः बन्धयोग्य प्रकृति १०९ हैं। गुणस्थान दो हैं। प्रथमगुणस्थानमें सामान्यसे जिन १६ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है उनमेंसे नरकद्विक और नरकायु ये तीन कम करके मनुष्य-तिर्यञ्चायु मिलानेसे यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें १५ प्रकृतियां व्युच्छिन्न होती है तथा सासादनगुणस्थानका काल अल्प और निवृत्यपर्याप्तका काल अधिक होनेसे सासादनगुणस्थानमें शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती अतः मनुष्य व तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध १०९ प्रकृतिका एवं अबन्धप्रकृति शून्य है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति पूर्वोक्त २९ प्रकृतिकी, बन्धरूपप्रकृति ९४ और अबन्धप्रकृति १५ हैं।

उपर्युक्त कथनकी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्य प्रकृति १०९। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०९	०	१५	१५ (गुणस्थानोक्त १६–३ नरकद्विक, नरकायु+२ मनुष्य, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९४	१५	२९	२९ (तिर्यञ्चगतिमें कथित ३१–२ तिर्यञ्च, मनुष्यायु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"पंचेन्दियेसु ओघं" गाथा ११४ के इन वचनोंके अनुसार पञ्चेन्द्रियजीव-सम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिका कथन गुणस्थानके समान जानना चाहिए, इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। यहां बन्धयोग्य १२० प्रकृति तथा गुणस्थान १४ जानना। संक्षेपसे कथन इसप्रकार है—

मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति क्रमसे १६-२५-०-१०-४-६-१-३६ तथा ५-१६-०-०-१-शून्यरूप प्रकृतियों हैं। बन्ध मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१-१ और शून्यरूप प्रकृति यथाक्रमसे जानना चाहिए तथा मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें अबन्धरूप प्रकृति यथाक्रमसे ३-१९-४६-४३-५३ और ५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९-११९ एवं १२० प्रकृति जानना। इसकी सन्दृष्टि गुणस्थानोक्त सन्दृष्टिके समान ही जानना।

पञ्चेन्द्रिय निर्वृ त्त्यपर्याप्तकमें बन्धयोग्य प्रकृति ११२ हैं। गुणस्थानपांच। तीर्थङ्कर और सुरचतुष्कका बन्ध असंयतगुणस्थानमें ही है। अतः निर्वृ त्त्यपर्याप्तक-मनुष्यके समान समस्त कथन है, किन्तु विशेषता यह है कि औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, वज्रर्षभनाराचसंहनन इन पांच प्रकृतिकी व्युच्छित्ति मनुष्यगतिमें तो द्वितीयगुणस्थानमें कही थी, किन्तु यहां चतुर्थगुणस्थानमें ही इनकी व्युच्छित्ति होती है। सामान्यसे बन्धयोग्य १२० प्रकृतियोंमें से ४ आयु, आहारकद्विक और नरकद्विक इन आठप्रकृतियोंको कम करनेसे बन्धयोग्य ११२ प्रकृतियां कही गई हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगी ये पांच हैं।

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १३ की, बन्धप्रकृति १०७ तथा अबन्ध-रूप प्रकृति ५ हैं। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २४ की, बन्ध ९४ प्रकृतिका, अबन्ध १८ प्रंकृतिका है। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति १३, बन्धप्रकृति ७५ तथा अबन्ध ३७ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ६१ की, बन्ध ६२ का तथा अबन्धरूप प्रकृति ५०। सयोगीकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, बन्धप्रकृति १ तथा अबंधप्रकृति १११ हैं। निर्वृ त्त्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसम्बन्धी यह कथन चारोंगतिकी अपेक्षासे जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्य प्रकृति ११२। गुणस्थान ५।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (देवचतुष्क, तीर्थंङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६–३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	१३	३७ (२४+१८–५ देवचतुष्क व तीर्थंङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु+४ प्रत्याख्यान-कषाय)
प्रमत्त	६२	५०	६१	६१ (प्रमत्त की ६+अप्रमत्त की+अपूर्वकरण की ३४ +अनिवृत्तिकरण की ५+सूक्ष्मसाम्पराय की १६=६१, क्योंकि देवायु व आहारकद्विक का बन्ध नहीं है)
सयोगी	१	१११	१	१=सातावेदनीय

पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकमें बन्धयोग्य प्रकृति १०९ है, क्योंकि तीर्थंङ्कर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियकषट्क इन ११ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। गुणस्थान एक मिथ्यात्व है।

।। इति इन्द्रियमार्गणा ।।

"अथ कायमार्गणा"

अब पञ्चेन्द्रियमें तथा कायमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियसम्बन्धी पृथ्वीकायादि पञ्चस्थावरकायमें बन्ध आदिका कथन करते हैं—

पंचेन्दियेसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्हि ।।११४।।

अर्थ—पञ्चेन्द्रियसम्बन्धी व्युच्छित्तिआदिका कथन गुणस्थानवत् जानना उसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। (इसका कथन इन्द्रियमार्गणामें कर आए हैं वहांसे जानना)

कायमार्गणामें पृथ्वीकायसे वनस्पतिकायपर्यन्त एकेन्द्रियके समान व्युच्छित्ति-आदि जानना। विशेष यह है कि तेजकाय-वायुकाय में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी-मनुष्यायु और उच्चगोत्र इन चारका बन्ध नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—कायमार्गणामें पृथ्वीकायसे वनस्पतिपर्यन्त तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियकषट्क इन ११ प्रकृतिबिना बन्धयोग्य १०९ प्रकृति हैं। इनमेंसे पृथ्वीकाय-जलकाय और वनस्पतिकायमें उत्पन्न हुए जीवोंके सासादनगुणस्थानके रहते हुए शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती अतः तिर्यञ्च और मनुष्यायुका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है। इसकारण मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १५ प्रकृति की, बन्धरूप प्रकृति १०९ और अबन्ध शून्य है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २९ प्रकृतिकी, बन्ध ९४ प्रकृतिका तथा अबन्धप्रकृति १५ हैं।

पृथ्वीकाय-जलकाय और वनस्पतिकायजीवोंमें बन्ध, अबन्धादिके कथनकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति १०९। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०९	०	१५	१५ (गुणस्थानोक्त १६—३ नरकद्विक, नरकायु+२ मनुष्य, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९४	१५	२९	२९(तिर्यञ्चगति कथित ३१—२ तिर्यञ्च, मनुष्यायु)

तेजकाय और वायुकायमें मनुष्यद्विक, मनुष्यायु व उच्चगोत्रबिना बन्धयोग्य प्रकृति १०५ हैं। गुणस्थान एकमिथ्यात्व ही है।

तेजकाय-वायुकायमें एक ही गुणस्थान होनेका कारण तथा त्रसकायमें बन्धादिका कथन करते हैं—

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।

अर्थ—लब्ध्यपर्याप्तक, साधारणशरीरसहित, सर्वसूक्ष्म तथा तेजकाय-वायुकायजीवोंमें सासादनगुणस्थान नहीं होता है। तथा इसीगाथाके उत्तरार्धमें कहे हुए "**ओघं तस**" इन वचनोंके अनुसार त्रसकायकी रचना गुणस्थानके समान समझना चाहिए।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक, साधारणशरीरवाले, सर्वसूक्ष्म तथा तेजकाय-वायुकायजीवोंमें सासादनगुणस्थान नहीं होता तथा सासादनवाले नरकमें उत्पन्न नहीं होते। अतः नारकियोंकी अपर्याप्तदशामें नरकगतिमें सासादनगुणस्थान नहीं है।

त्रसकायिकोंमें बन्धयोग्य प्रकृति १२०, गुणस्थान १४ हैं। इनका संक्षिप्तकथन इसप्रकार है—मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें क्रमसे व्युच्छिन्नप्रकृतियां १६-२५-शून्य-१०-४-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६-१-३६-५-१६-शून्य-शून्य-१ और शून्यरूप हैं। बन्धप्रकृति ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१-१ और शून्य यथाक्रम मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें जानना। अबन्धप्रकृति भी गुणस्थानक्रमसे ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९-११९ और १२० जानना। विशेष कथनके लिए गुणस्थानोक्तसन्दृष्टि देखना चाहिए।

त्रसनिर्वृत्तिअपर्याप्तकसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिका कथन पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकके समान समझना। बन्धयोग्य प्रकृति ११२ तथा गुणस्थान १-२-४-६ और १३ वां है।

॥ इति कायमार्गणा ॥

"अथ योगमार्गणा"

ओघं तस मणवयणे ओराले मणुवगइभंगो ॥११५॥

अर्थ—त्रसकायमें गुणस्थानवत् कथन जानना। (इसका सर्वकथन पूर्वमें कायमार्गणामें कर दिया है।)

योगमार्गणाके मनोयोग और वचनयोगमें सर्वरचना गुणस्थानवत् तथा औदारिककाययोगमें बन्ध-अबन्धादिका कथन मनुष्यगतिके समान जानना।

विशेषार्थ—मनोयोग-वचनयोगमें बन्धयोग्य प्रकृति १२० हैं तथा गुणस्थान मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त १३ हैं। इनकी संक्षिप्तरचना इसप्रकार है—मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां क्रमसे १६-२५-शून्य-१०-४-६-एक-३६-५-१६-शून्य-शून्य और एक हैं। बन्धप्रकृति ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१ और १ यथाक्रमसे मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त जानना। यहां गुणस्थानोंमें क्रमसे ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९ और ११९ प्रकृतियां हैं। इनकी विशेषसन्दृष्टि समझनेके लिए गुणस्थानोक्त सन्दृष्टि देखना चाहिए। यहां इतनी ही विशेषता है कि मनोयोग-वचयोगमें गुणस्थान १३ ही हैं तथा इनमें पर्याप्तअवस्था ही होती है।

औदारिककाययोगीके बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन मनुष्यगतिके समान है। बन्धयोग्य प्रकृति १२० तथा गुणस्थान १३ हैं। संक्षिप्त कथन इसप्रकार है—यहां मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६-३१-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शून्य-५-४-६-एक-३६-५-१६-शून्य-शून्य और एक है। बन्ध ११७-१०१-६९-७१-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१ और १ प्रकृतिरूप यथाक्रम गुणस्थानोंमें जानना। अबन्ध क्रमसे ३-१९-५१-४९-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९ और ११९ प्रकृतिका है। विशेषकथनके लिए मनुष्यगतिसम्बन्धी सन्दृष्टि देखना चाहिए।

अब औदारिकमिश्रकाययोगसम्बन्धी कथन करते हैं—

ओराले वा मिस्से ण सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।
मिच्छदुगे देवचओ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि॥११६॥
पण्णारसमुनतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो।
उवरिमपणसट्ठीवि य एक्कं सादं सजोगिम्हि॥११७॥

अर्थ—औदारिककाययोगीके समान ही औदारिकमिश्रकाययोगीकी भी बन्ध-अबन्ध आदिकी रचना जानना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि देवायु, नरकायु, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी इन छहप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है यहां भी मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें देवचतुष्क और तीर्थङ्कर इन पांचप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, किन्तु असंयतगुणस्थानमें इनका बन्ध होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगके मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें क्रमसे १५ और २९ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है। असंयतगुणस्थानमें पूर्वोक्तचार तथा ६५ इसप्रकार व्युच्छित्ति होती है। सयोगकेवलीगुणस्थानमें एक सातावेदनीयकी व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें गुणस्थान १-२-४-१३ ये चार हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकायु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीको कमकरके तिर्यञ्च व मनुष्यायु मिलानेसे १५ की व्युच्छित्ति होती है, बन्धप्रकृति १०९ व अबन्धप्रकृति ५ हैं। सासादनमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति २९, बन्धप्रकृति ९४ एवं अबन्धप्रकृति २०। असंयत-गुणस्थानमें व्युच्छित्ति वज्रर्षभनाराचादिक ६ प्रकृतिबिना अप्रत्याख्यानकषाय चार, क्योंकि वज्रर्षभनाराचादि छहप्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है। तथा देशसंयतसम्बन्धी प्रत्याख्यानकी चारकषाय, प्रमत्तकी ६, अप्रमत्तसम्बन्धी देवायु बन्ध-योग्य ही नहीं है अतः उसे भी यहां नहीं गिनी है।

अपूर्वकरणकी आहारकद्विकबिना ३४, अनिवृत्तिकरणको ५, सूक्ष्मसाम्परायकी १६ ये सर्व मिलकर ६५ और अप्रत्याख्यानकषायकी चार ये ६९ प्रकृतियां असंयत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानमें ही व्युच्छिन्न होती हैं। बन्ध देवचतुष्क व तीर्थङ्करसहित ७० प्रकृतिका एवं अबन्ध ४४ प्रकृतिका है। सयोगोगुणस्थानमें व्युच्छित्ति एक सातावेदनीयकी, बन्ध भी एक सातावेदनीयका तथा अबन्धरूप प्रकृति ११३ हैं।

असंयतगुणस्थानसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त व्युच्छिन्न होनेवाली ६९ प्रकृतियां और असंयतगुणस्थानमें अबन्धरूप ४४ प्रकृति, इन दोनोंको मिलाकर सयोग-केवलीमें ११३ प्रकृतिका अबन्ध है।

नोट—सातावेदनीयकी व्युच्छित्ति औदारिकमिश्रकाययोगीके नहीं होती, किन्तु औदारिककाययोगीके होती है।

औदारिकमिश्रकाययोगमें बन्ध-अबन्ध आदिकी सन्दृष्टि निम्नप्रकार है—

बन्धयोग्य प्रकृति ११४। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०९	५	१५	५ (तीर्थङ्कर, देवचतुष्क) १५ (गुणस्थानोक्त १६-नरकद्विक व नरकायु+२ मनुष्य, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९४	२०	२९	२९ (तिर्यञ्चगतिमें कथित ३१–२ तिर्यञ्च-मनुष्यायु)
असंयत	७०	४४	६९	४४ (२९+२०–५ तीर्थङ्कर व देवचतुष्क) ६९ (७०–१ सातावेदनीय)
सयोगी	१	११३	१	१ (सातावेदनीय) इसकी व्युच्छित्ति औदारिक-काययोगमें होती है औदारिकमिश्रमें नहीं।

देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि।
छट्ठगुणंवाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥११८॥

अर्थ—वैक्रियककाययोगमें बन्धप्रकृति देवगतिके समान ही है। वैक्रियकमिश्र-काययोगमें मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता है। आहारककाययोगमें छठे-गुणस्थानके समान रचना है, किन्तु आहारकमिश्रकाययोगमें देवायुका बन्ध नहीं होता है।

विशेषार्थ—वैक्रियककाययोगमें बन्ध प्रकृतियां देवगतिके समान १०४ ही हैं। सूक्ष्मत्रय (सूक्ष्म-साधारण-अपर्याप्त), विकलत्रय नरकद्विक, नरकायु, सुरचतुष्क, देवायु और आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता है। गुणस्थान आदिके चार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें सूक्ष्मत्रय आदि नौप्रकृतिबिना व्युच्छित्ति ७ की होती है। बन्धप्रकृति १०३ हैं तथा अबन्धरूप प्रकृति एक तीर्थङ्कर है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २५ की, बन्धप्रकृति ९६ तथा अबन्धप्रकृति ८ हैं। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुबिना बन्ध ७० और अबन्ध ३४ प्रकृतिका है। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १० की, बन्ध तीर्थङ्कर व मनुष्यायु सहित ७२ प्रकृतिका और अबन्ध ३२ प्रकृतिका (तीर्थङ्कर-मनुष्यबिना) है।

वैक्रियककाययोगमें बन्धयोग्यप्रकृति १०४। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०३	१	७	१ (तीर्थङ्कर) ७ (गुणस्थानोक्त १६–९ सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९६	८	२५	८ (७+१) २५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७०	३४	०	३४ (२५+८+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	३२	१०	१० (गुणस्थानोक्त) ३२(३४–२ तीर्थङ्कर,मनुष्यायु)

वैक्रियकमिश्रकाययोगीके बन्धयोग्यप्रकृति पूर्वोक्त १०४ में से मनुष्य व तिर्यञ्चायुबिना १०२ हैं। गुणस्थान १-२ और ४ ये तीन हैं। इसका सर्वकथन सौधर्म-ईशानस्वर्गके अपर्याप्तदेवोंके समान है।

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ७, बन्धरूपप्रकृति १०१ तथा अबन्ध एक तीर्थङ्करप्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्चायुबिना व्युच्छित्ति २४ प्रकृतिकी, बन्ध ९४ प्रकृतिका तथा अबन्ध ८ प्रकृतिका जानना। असंयतगुणस्थानमें मनुष्यायुबिना व्युच्छित्ति ९ की, बन्धरूप प्रकृति तीर्थङ्करसहित ७१ और अबन्ध तीर्थङ्कररहित ३१ प्रकृतिका है।

वैक्रियकमिश्रकाययोग सम्बन्धी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति १०२। गुणस्थान ३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	१	७	७ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप) १ (तीर्थङ्कर)
सासादन	९४	८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७१	३१	९	३१ (तिर्यञ्चगतिमें कथित ३२–१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारककाययोगसम्बन्धी सर्वकथन प्रमत्तगुणस्थानवत् जानना चाहिए। बन्ध-व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धयोग्यप्रकृति ६३ तथा अबन्ध ५७ प्रकृतिका है।

आहारकमिश्रकाययोगीके व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धयोग्य ६२ प्रकृति, क्योंकि यहां देवायुका बन्ध नहीं है तथा अबन्धरूप प्रकृति ५८ हैं।

आगे कार्मणकाययोगमें बन्ध-अबन्धादिका कथन करते हैं—

कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे।

अर्थ—कार्मणकाययोगकी सर्वरचना औदारिकमिश्रकाययोगके समान है, किन्तु विग्रहगतिमें आयुका बन्ध न होनेसे मनुष्य व तिर्यञ्चायुके बन्धका अभाव है। असंयत-गुणस्थानमें ७४ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें विग्रहगतिमें आयुका बन्ध नहीं है अतः तिर्यञ्च व मनुष्यायुबिना बन्धयोग्य ११२ प्रकृति हैं। गुणस्थान चार हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १३, बन्धप्रकृति १०७ और अबन्ध तीर्थङ्कर व देवचतुष्कका। सासादन-गुणस्थानमें व्युच्छित्ति तिर्यञ्चायुबिना २४ की। बन्धप्रकृति ९४ तथा अबन्ध प्रकृतियां १८ हैं। असंयतगुणस्थानमें असंयतगुणस्थानकी मनुष्यायुबिना व्युच्छिन्नप्रकृति ९, देश-संयतकी ४, प्रमत्तकी ६, अप्रमत्तसम्बन्धी देवायुको यहां नहीं गिना, आहारकद्विकबिना अपूर्वकरणकी ३४ तथा अनिवृत्तिकरणकी ५ एवं सूक्ष्मसाम्परायकी १६ इसप्रकार ७४ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। बन्धयोग्यप्रकृति सुरचतुष्क व तीर्थङ्करसहित ७५ हैं एवं अबन्ध ३७ प्रकृतिका है। सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, बन्धप्रकृति १ तथा अबन्ध १११ प्रकृतिका है।

नोट—सातावेदनीयकी बन्धव्युच्छित्ति कार्मणकाययोगमें नहीं होती है किन्तु औदारिककाययोगमें होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्मणकाययोगसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिके कथनकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्य प्रकृति ११२। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (तीर्थङ्कर, देवचतुष्क) १३ (गुणस्थानोक्त १६–नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	७४	३४ (२४+१८–५ तीर्थङ्कर व देवचतुष्क) ७४ [असंयतसम्बन्धी गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु=९ देशसंयतकी ४, प्रमत्तकी ६, अपूर्वकरणकी ३४ (आहारकद्विकबिना) अनिवृत्तिकरणकी ५ और सूक्ष्मसाम्परायकी १६]
सयोगी	१	१११	१	१ (सातावेदनीय)। इसकी बन्धव्युच्छित्ति कार्मण-काययोगमें नहीं होती है, किन्तु औदारिककाय-योगमें होती है।

"इति कायमार्गणा"

अथानन्तर वेदमार्गणासे आहारमार्गणापर्यन्त १० मार्गणाओंमें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिका कथन करते हैं—

वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघं तु ॥११६॥

अर्थ—वेदमार्गणासे आहारमार्गणापर्यन्त सामान्यकथन गुणस्थानवत् ही जानना। अर्थात् स्वकीय-स्वकीय गुणस्थानके समान इन १० मार्गणाओंका कथन है।

विशेषार्थ—सर्वप्रथम वेदमार्गणाके स्त्रीवेदमें बन्धयोग्यप्रकृति १२० हैं। गुणस्थान ९ हैं। इनमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप १६ प्रकृति, बन्धप्रकृति ११७ और ३ प्रकृतिका अबन्ध है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप २५ प्रकृति, बन्ध १०१ प्रकृतिका एवं अबन्धप्रकृत्ति १९ हैं। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्धरूप प्रकृति ७४, अबन्ध ४६ प्रकृतिका है। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १०, बन्ध ७७ प्रकृतिका एवं अबन्ध ४३ प्रकृतिका है। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, बन्ध ६७ प्रकृतिका एवं अबन्ध ५३ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३ एवं अबन्धप्रकृति ५७ हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध ५९ प्रकृति का, अबन्ध ६१ प्रकृतिका जानना। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति ३६, बन्धप्रकृति ५८ तथा अबन्धप्रकृति ६२ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें व्युच्छित्ति एक पुरुषवेदकी, बन्ध सवेदभागके द्विचरमसमय तक २२ प्रकृतिका तथा अबन्धरूप प्रकृति ९८ हैं। अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी सवेदभागमें चरमसमयमें बन्ध २१ प्रकृतिका एवं अबन्ध ९९ प्रकृतिका है।

निर्वृ त्यपर्याप्तस्त्रीवेदीके बन्धयोग्यप्रकृति चारआयु, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और वैक्रियकषट्कबिना १०७ हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन। मिथ्यात्वगुण-स्थानमें व्युच्छित्ति नरकद्विक एवं नरकायुबिना १३ प्रकृतिकी, बन्धप्रकृति १०७, अबन्ध-रूप प्रकृति शून्य। सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्चायुबिना व्युच्छित्ति २४ प्रकृतिकी, बन्ध ९४ प्रकृतिका एवं अबन्ध १३ प्रकृतिका है। सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति १०७। गुणस्थान २ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	०	१३	१३ (गुणस्थानोक्त १६—३ नरकद्विक, नरकायु
सासादन	९४	१३	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५— १ तिर्यञ्चायु)

नपुंसकवेदीके बन्धयोग्यप्रकृति १२०, गुणस्थान ९ हैं। सर्व रचना स्त्रीवेदके समान ही जानना।

नपुंसकवेदीकी निर्वृ त्यपर्याप्तावस्थामें बन्धयोग्य १०८ प्रकृति हैं। गुणस्थान १-२-४ होते हैं। पूर्वोक्त स्त्रीवेदीकी निवृत्यपर्याप्तावस्थामें जो १०७ प्रकृतिका बन्ध है उसमें नारकअसंयतकी अपेक्षा एक तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेसे १०८ प्रकृतिका बन्ध है तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बन्ध लब्ध्यपर्याप्तके ही होता है, किन्तु यहां निर्वृ त्य-पर्याप्तका कथन है। इनके मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १३, तीर्थङ्करबिना बन्धप्रकृति १०७, अबन्ध एक तीर्थङ्करप्रकृतिका। सासादनमें तिर्यञ्चायुबिना व्युच्छित्ति-रूपप्रकृति २४, बन्धप्रकृति ९४ तथा अबन्धरूपप्रकृति १४। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति मनुष्यायुबिना ९, बन्ध तीर्थङ्करसहित ७१ प्रकृतिका और अबन्ध ३७ प्रकृतिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नपुंसकवेदीनिर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थासम्बन्धी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति १०८। गुणस्थान तीन।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छत्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	१	१३	१ (तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६–३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१४	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७१	३७	९	३७ (२४+१४–१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)

पुरुषवेदीके बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान आदिके ९। यहां अपूर्वकरण-गुणस्थानपर्यन्त सर्वकथन गुणस्थानवत् ही है। तद्यथा—मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरण-गुणस्थानपर्यन्त बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियां यथाक्रमसे १६-२५-शून्य-१०-४-६-१-३६ तथा क्षपकअनिवृत्तिकरणसम्बन्धो प्रथमभागके चरमसमयमें १ पुरुषवेदकी व्युच्छित्ति हुई। बन्ध यथाक्रमसे ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८ तथा अनिवृत्ति-करणके प्रथमभागके चरमसमयपर्यन्त २२ प्रकृतिका। अबन्ध गुणस्थानक्रमसे ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२ तथा अनिवृत्तिकरणके प्रथमभागके चरमसमयपर्यन्त ९८ प्रकृतिका है। इसकी सन्दृष्टि १०३-१०४ गाथा सम्बन्धी सन्दृष्टिके अनुसार जानना।

पुरुषवेदीनिर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें नरकगतिबिना शेष तीन गतिवाले जीवोंके बन्धयोग्य ११२ प्रकृति हैं, क्योंकि चारआयु, नरकद्विक और आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। गुणस्थान तोन। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १३, बन्धयोग्यप्रकृति सुरचतुष्क व तोर्थङ्करके बिना १०७ प्रकृतिका, अबन्धप्रकृत्ति ५ हैं। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २४, बन्ध ९४ प्रकृतिका तथा अबन्ध १८ प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ९, सुरचतुष्क व तीर्थङ्करसहित बन्ध ७५ प्रकृतिका तथा अबन्ध ३७ प्रकृतिका। यहां तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका उदय स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदीके नहीं होता, केवल पुरुषवेदीके ही होता है, किन्तु इनका बन्ध तीनों ही वेदवालोंके होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वृत्यपर्याप्तकपुरुषवेदीकी बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति ११२। गुणस्थान ३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (तीर्थङ्कर, सुरचतुष्क) १३ (गुणस्थानोक्त १६–३ नरकद्विक व नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	९	३७ (२४+१८–५ तीर्थङ्कर, देवचतुष्क) ९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)

॥ इति वेद मार्गणा ॥

"अथ कषायमार्गणा"

कषायमार्गणामें क्रोधादिचार कषायवालोंके बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान क्रोधमें क्षपकअनिवृत्तिकरणके दूसरेभागपर्यन्त, मानमें तीसरेभागपर्यन्त, मायामें चतुर्थभागपर्यन्त, बादरलोभमें पञ्चमभागपर्यन्त पाए जाते हैं। तथा सूक्ष्मलोभमें एक सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान ही है।

॥ इति कषाय मार्गणा ॥

"अथ ज्ञानमार्गणा"

ज्ञानमार्गणासम्बन्धी कुमति-कुश्रुत और कुअवधि इन तीनों ज्ञानोंमें बन्धयोग्यप्रकृति ११७, क्योंकि तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। गुणस्थान दो। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप १६ प्रकृति, बन्धरूप प्रकृति ११७ तथा अबन्धप्रकृति शून्य। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २५ प्रकृतिकी, बन्ध १०१ प्रकृतिका तथा अबन्धरूप प्रकृति १६ है।

शंका—मिथ्यादृष्टिजीवोंके भले ही कुमति-कुश्रुत दोनों ही अज्ञान होंवे, क्योंकि वहां मिथ्यात्वकर्मका उदय पाया जाता है, किन्तु सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदय नहीं पाया जाता है इसलिए सासादनगुणस्थानमें कुमति, कुश्रुतरूप अज्ञान कैसे संभव हो सकते हैं ?

समाधान—विपरीताभिनिवेशको मिथ्यात्व कहते हैं और वह विपरीताभिनिवेश मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके निमित्तसे उत्पन्न होता है। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीका उदय होनेसे वहां कुमति-कुश्रुत ये दो अज्ञान पाए जाते हैं[1]।

असञ्ज्ञीजीवोंमें भी कुश्रुतज्ञान होता है, क्योंकि मनके बिना वनस्पतिकायिकजीवोंके हितमें प्रवृत्ति और अहितसे निवृत्ति देखी जाती है[2]।

कुमति-कुश्रुत-कुअवधिज्ञानसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्य ११७ प्रकृति। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	०	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१६	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें बन्धयोग्यप्रकृति ७९ है, क्योंकि मिथ्यात्वसम्बन्धी १६ तथा सासादनकी २५ इसप्रकार ४१ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति हो जानेसे इनका यहां अभाव है। गुणस्थान असंयतसे क्षीणकषायपर्यन्त ९ हैं। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १०, बन्धप्रकृति ७७ और अबन्धप्रकृति २ हैं। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धरूप प्रकृति ६७, अबन्धरूप प्रकृति १२। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिति ६ प्रकृतिकी, बन्ध ६३ प्रकृतिका तथा अबन्ध १६ प्रकृतिका है। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९, अबन्धप्रकृति २०। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप ३६ प्रकृति, बन्धरूप ५८ प्रकृति और अबन्धरूप २१ प्रकृति हैं। अनिवृत्तिकरणगुस्थानमें व्युच्छित्ति ५ प्रकृतिकी, बन्ध २२ प्रकृतिका तथा अबन्ध ५७ प्रकृतिका है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७ और अबन्धप्रकृति ६२ हैं। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्यकी, बन्ध १ प्रकृतिका और अबन्ध ७८ प्रकृतिका है। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य, बन्धरूपप्रकृति एक तथा अबन्धरूप प्रकृति ७८ हैं।

१. ध. पु. १, सूत्र ११६ की टीका। २. ध. पु. १ सूत्र ११६ की टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन:पर्ययज्ञानमें बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान प्रमत्तसे क्षीणमोहपर्यन्त ७ हैं। यहां व्युच्छित्ति और बन्धका कथन तो गुणस्थानवत् जानना, किन्तु अबन्ध क्रमसे २-६-७-४३-४८-६४ और ६४ प्रकृतिका है।

मन:पर्ययज्ञानसम्बन्धी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति ७९। गुणस्थान ७ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
प्रमत्त	६३	२	६	२ (आहारकद्विक) ६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	६	१	६ (६+२–२ आहारकद्विक) १ (देवायु)
अपूर्वकरण	५८	७	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	४३	५	४३ (३६+७) ५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	४८	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	६४	०	
क्षीणमोह	१	६४	०	

केवलज्ञानमें बन्धयोग्य १ सातावेदनीयप्रकृति है। गुणस्थान दो हैं। सयोगीके व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धरूप प्रकृति १, अबन्धका अभाव है। अयोगीके व्युच्छित्ति व बन्धका अभाव है, किन्तु अबन्धरूप प्रकृति एक है।

॥ इति ज्ञानमार्गणा ॥

"अथ संयममार्गणा"

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयमके भेदसे संयममार्गणा ७ प्रकारकी है।

यहां सामायिक व छेदोपस्थापनासंयममें बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान प्रमत्तआदि चार हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्ध आहारकद्विकबिना ६३ तथा अबन्ध २ प्रकृतिका है। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ बन्धप्रकृति ५९ और अबन्धप्रकृति ६ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३६, बन्धरूप प्रकृति ५८ तथा अबन्धप्रकृति ७ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति २२ अबन्धप्रकृति ४३ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
प्रमत्त	६३	२	६	२ (आहारकद्विक) ६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	६	१	१ (देवायु) ६ (६+२–२ आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	७	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	४३	५	५ (गुणस्थानोक्त)

परिहारविशुद्धिसंयममें बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान दो हैं। यहां (परिहार-विशुद्धि संयममें) आहारकद्विकका बन्ध विरुद्ध नहीं, किन्तु उदय अवश्य विरुद्ध है। अर्थात् परिहारविशुद्धिके साथ आहारकद्विकका उदय नहीं है। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३, अबन्धप्रकृति २ हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९ और अबन्धप्रकृति ६ हैं।

परिहारविशुद्धिसंयममें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
प्रमत्त	६३	२	६	६ (गुणस्थानोक्त) २ (आहारकद्विक)
अप्रमत्त	५९	६	१	१ (देवायु) ६ (६+२–२ आहारकद्विक)

सूक्ष्मसाम्परायसंयमसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिका कथन सूक्ष्मसाम्पराय-गुणस्थानके समान जानना।

यथाख्यातसंयममें बन्धयोग्यप्रकृति १ सातावेदनीय ही है। यहां उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी ये चार गुणस्थान पाए जाते हैं। व्युच्छित्ति और बन्ध-रूपप्रकृति गुणस्थानवत् जानना, किन्तु अयोगीगुणस्थानमें तो अबन्धप्रकृति १ है शेष तीनगुणस्थानोंमें अबन्ध नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथाख्यातसंयममें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति १। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
उपशान्तमोह	१	०	०	१ प्रकृति यहां सर्वत्र 'सातावेदनीय' ही जानना।
क्षीणमोह	१	०	०	
सयोगी	१	०	१	
अयोगी	०	१	०	

संयमासंयममें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन देशसंयतगुणस्थानके समान जानना चाहिए।

असंयममें आहारकद्विकबिना बन्धयोग्यप्रकृति ११८ हैं। गुणस्थान आदिके चार हैं। यहां चारों ही गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति एवं बन्धरूप प्रकृतियां गुणस्थानके कथनवत् जानना, किन्तु अबन्धरूप प्रकृति क्रमसे १-१७-४४ और ४१ जानना। मिश्रगुणस्थानमें तीर्थङ्कर, देवायु और मनुष्यायुका अबन्ध है।

असंयममें बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति ११८। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छत्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	१	१६	१ (तीर्थङ्कर) १६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१७	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७४	४४	०	४४ (२५+१७+२ मनुष्यायु व देवायु)
असंयत	७७	४१	१०	४१ (४४–३ तीर्थङ्कर, मनुष्यायु, देवायु)

॥ इति संयममार्गणा ॥

"अथ दर्शनमार्गणा"

दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शनमें बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणमोहपर्यन्त १२ हैं। इनमें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिका कथन गुणस्थानवत् जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिदर्शनसम्बन्धी व्युच्छित्ति आदिका कथन अवधिज्ञानवत् है। बन्धयोग्य-प्रकृति ७९ तथा असंयतसे क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थान ९ हैं। केवलदर्शनसम्बन्धी सर्व-कथन केवलज्ञानवत् जानना। बन्धयोग्यप्रकृति १ सातावेदनीय तथा गुणस्थान दो हैं।

॥ इति दर्शनामार्गणा ॥

"अथ लेश्यामार्गणा"

लेश्यामार्गणामें कृष्ण-नील और कपोत, इन तीनलेश्याओंमें बन्धयोग्य ११८ प्रकृति है, क्योंकि यहां आहारकद्विकका बन्ध नहीं हैं। गुणस्थान आदिके चार। यहां मिथ्यात्वादि चारोंगुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति और बन्धगुणस्थानवत् जानना। तीर्थङ्कर-प्रकृतिका बन्ध इन लेश्याओंमें चतुर्थगुणस्थानमें हो सकता है। कृष्ण-नील-कपोतलेश्या में बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति ११८। गुणस्थान चार हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	१	१६	१ (तीर्थङ्कर) १६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१७	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७४	४४	०	
असंयत	७७	४१	१०	१० (गुणस्थानोक्त)

अथानन्तर सम्यक्त्वमार्गणामें तथा तीन शुभलेश्याओंमें और आहारमार्गणामें कुछ विशेषता है सो दो गाथाओंद्वारा कहते हैं—

णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।
मिच्छस्संतिम णवयं बारं णहि तेउपम्मेसु ॥१२०॥
सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमबारसं च ण व अत्थि।
कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य ॥१२१॥ जुम्मं ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमार्गणामें दोनों ही उपशमसम्यक्त्वी (प्रथमोपशम-द्वितीयो-पशम) जीवोंके मनुष्यायु और देवायुका बन्ध नहीं है। लेश्यामार्गणामें तेजोलेश्यावालेके मिथ्यात्वगुणस्थानकी बन्धसे व्युच्छिन्न अन्तिम ९ प्रकृति तथा पद्मलेश्यावालेके मिथ्यात्व-गुणस्थानकी अन्तिम १२ प्रकृतियोंका बन्ध नियमसे नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुक्ललेश्यावालोंके शतारचतुष्क और मिथ्यात्वगुणस्थानकी अन्तिम १२ इन १६ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता । आहारमार्गणासम्बन्धी अनाहारकअवस्थामें कार्मण-काययोगीके समान व्युच्छित्ति-बन्ध-अबन्धका कथन जानना ।

विशेषार्थ—तेजोलेश्यामें बन्धयोग्यप्रकृति १११ हैं । गुणस्थान आदिके सात हैं । मिथ्यात्वगुणस्थानमें जिन १६ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है उनमेंसे अंतिम ९ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है अतः यहां आदिकी सात प्रकृतियोंका बन्ध होनेसे उनकी ही व्युच्छित्ति होती है, बन्धप्रकृति १०८ तथा अबन्ध तीनप्रकृतिका है । सासादनसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त व्युच्छित्ति और बन्ध तो गुणस्थानवत् जानना, किन्तु अबन्धप्रकृति यथाक्रमसे सासादनादि गुणस्थानोंमें १०-३७-३४-४४-४८ और ५२ प्रकृतियां जानना । विस्तृत कथन इसप्रकार है—मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ७, बन्धप्रकृति १०८ और अबन्धप्रकृति ३ हैं । सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति १०१, अबन्धप्रकृति १० हैं । मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्धप्रकृति ७४, अबन्धप्रकृति ३७ । असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्धप्रकृति ७७ तथा अबन्धप्रकृति ३४ । देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति ६७ तथा अबन्धप्रकृति ४४ हैं । प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३, अबन्धप्रकृति ४८ । अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९ तथा अबन्धप्रकृति ५२ हैं ।

तेज (पीत) लेश्यासम्बन्धी बन्ध व व्युच्छित्तिआदिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति १११ । गुणस्थान ७ हैं ।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०८	३	७	३ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक) ७ (गुणस्थानोक्त १६ में से मिथ्यात्वसे आतप पर्यन्त)
सासादन	१०१	१०	२५	
मिश्र	७४	३७	०	३७ (२५+१०+२ मनुष्य, देवायु)
असंयत	७७	३४	१०	३४ (३७–३ तीर्थङ्कर, मनुष्य और देवायु)
देशसंयत	६७	४४	४	४ (गुणस्थानोक्त)
प्रमत्त	६३	४८	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	५२	१	५२ (४८+६–२ आहारकद्विक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्मलेश्यामें बन्धयोग्यप्रकृति १०८ हैं। गुणस्थान आदिके सात हैं। मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियोंमें से अंतिम १२ प्रकृतियां बन्धयोग्य नहीं है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, बन्धप्रकृति १०५, अबन्धप्रकृति ३। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २५ प्रकृतिकी, बन्ध १०१ प्रकृतिका तथा अबन्ध ७ प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति शून्य, बन्धरूपप्रकृति ७४ और अबन्धप्रकृति ३४ हैं। असंयत-गुणस्थानमें व्युच्छित्ति १० प्रकृतिकी, बन्ध ७७ प्रकृतिका, अबन्ध ३१ प्रकृतिका। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, बन्धप्रकृति ६७ और अबन्धप्रकृति ४१ हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३ तथा अबन्धप्रकृति ४५ हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९ तथा अबन्धप्रकृति ४९ है।

पद्मलेश्यामें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति १०८। गुणस्थान ७।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०५	३	४	३ (तीर्थङ्कर,आहारकद्विक) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन)
सासादन	१०१	७	२५	
मिश्र	७४	३४	०	३४ (२५+७+२ मनुष्यायु व देवायु)
असंयत	७७	३१	१०	३१ (३४–३ तीर्थङ्कर, देव व मनुष्यायु)
देशसंयत	६७	४१	४	४ (गुणस्थानोक्त)
प्रमत्त	६३	४५	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	४९	१	४९ (४५+६–२. आहारकद्विक)

शुक्ललेश्यामें बन्धयोग्यप्रकृति १०४। गुणस्थान मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त १३। शुक्ललेश्यामें शतारचतुष्कका बन्ध नहीं होता है। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, बन्धप्रकृति १०१, अबन्ध प्रकृति ३। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति-रूप प्रकृति २१ (तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योतरूप शतार-चतुष्कबिना), बन्धप्रकृति ९७, अबन्धप्रकृति ७। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्यकी, बन्ध ७४ प्रकृतिका, अबन्ध ३० प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्धरूप प्रकृति ७७, अबन्धरूप प्रकृति २७। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, बन्ध ६७ प्रकृतिका और अबन्ध ३७ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३, अबन्धप्रकृति ४१ हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९, अबन्धप्रकृति ४५। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ३६ प्रकृतिकी, बन्ध ५८ प्रकृतिका, अबन्ध ४६ प्रकृतिका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति २२ तथा अबन्धप्रकृति ८२ हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७ और अबन्धप्रकृति ८७ है। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति १, अबन्धप्रकृति १०३। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति १, अबन्धप्रकृति १०३। सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छित्ति-रूप प्रकृति १, बन्धरूप प्रकृति १ तथा अबन्धरूप प्रकृति १०३ हैं।

शुक्ललेश्यामें बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिके कथनकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति १०४। गुणस्थान आदिके १३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	३	४	३ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक) ४(मिथ्यात्व, हुण्डक-संस्थान, नपुंसकवेद और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन)
सासादन	९७	७	२१	२१ (गुणस्थानोक्त २५–४ शतारचतुष्क)
मिश्र	७४	३०	०	३० (२१+७+२, मनुष्य व देवायु)
असंयत	७७	२७	१०	२७ (३०–३ मनुष्य, देवायु, तीर्थङ्कर)
देशसंयत	६७	३७	४	४ (गुणस्थानोक्त प्रत्याख्यानावरण की चारकषाय)
प्रमत्त	६३	४१	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	४५	१	१ (देवायु) ४५ (४१+६–२, आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	४६	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	८२	५	५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	८७	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	१०३	०	१ (सातावेदनीय)
क्षीणमोह	१	१०३	०	१ (सातावेदनीय)
सयोगी	१	१०३	१	१ (सातावेदनीय)

भव्यमार्गणामें बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान १४। यहां बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिका सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना।

अभव्यके बन्धयोग्यप्रकृति ११७ हैं, क्योंकि इसके आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

॥ इति लेश्या व भव्यमार्गणा ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अथ सम्यक्त्वमार्गणा"

इस मार्गणाके ६ भेद हैं—उपशम (प्रथमोपशम-द्वितीयोपशम) सम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें बन्धयोग्यप्रकृति ७७ हैं, क्योंकि मिथ्यात्व व सासादन-गुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली (१६+२५) ४१ प्रकृति तथा देव व मनुष्यायुका यहां बन्ध नहीं होता है। **"णवरिय सव्वुव सम्मे णरसुर आऊण णत्थि णियमेण"** (गाथा १२० के) इसवचनके अनुसार इन (मनुष्य, देवायु) की व्युच्छित्ति पहले हुई थी। सम्यग्दृष्टिके तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें देवायुका तथा नरक व देवगतिमें मनुष्यायुका बन्ध होता था, किन्तु प्रथमोपशम और द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिके इन दोनों आयुका भी बन्ध नहीं होता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त चारगुणस्थान जानना।

यहां असंयतगुणस्थानमें मनुष्यायुबिना व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ९, आहारकद्विक-बिना बन्धरूप प्रकृति ७५ तथा अबन्धरूप प्रकृति २ हैं। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, बन्ध ६६ प्रकृतिका एवं अबन्ध ११ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६२, अबन्धप्रकृति १५। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति शून्य, आहारकद्विकसहित बन्ध प्रकृति ५८ एवं अबन्धप्रकृति १९ हैं।

'उपशमसम्यग्दृष्टिके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं होता' ऐसा कोई आचार्य मानते हैं, किन्तु यहांपर यह विवक्षा नहीं है। उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारकद्विकका उदय विरुद्ध है, बन्ध विरुद्ध नहीं है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति ७७। गुणस्थान असंयतादि चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७५	२	९	२ (आहारकद्विक) ९(गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)
देशसंयत	६६	११	४	
प्रमत्त	६२	१५	६	
अप्रमत्त	५८	१९	०	१९ (१५+६–२, आहारकद्विक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें भी बन्धयोग्यप्रकृति ७७ हैं। गुणस्थानअसंयतादि आठ हैं। [1]असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ९, बन्धप्रकृति ७५, अबन्धप्रकृति २। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति ६६ और अबन्धप्रकृति ११। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६२ और अबन्धप्रकृति १५। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, आहारकद्विकसहित बन्धप्रकृति ५८, अबन्धप्रकृति १९। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्न प्रकृति ३६, बन्धप्रकृति ५८ और अबन्धप्रकृति १९ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति ५२, अबन्धप्रकृति ५५। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७ तथा अबन्धरूप प्रकृति ६० हैं। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति १ एवं अबन्धप्रकृति ७६ हैं। प्रथम व द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें आयुका बन्ध नहीं होता है।

शंका—प्रथमोपशम और द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें आयुका बन्ध नहीं कहा है तो फिर "श्रेणीपर आरोहण करते हुए अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें मरण नहीं होता" यह कथन व्यर्थ है।

समाधान—जिसने पूर्वमें देवायुका बन्ध कर लिया है ऐसे सातिशयअप्रमत्तजीवके श्रेणीआरोहण सम्भव है। यहां प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें तथा जिसका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ऐसे अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें मरण नहीं होता, अन्यत्र उपशमश्रेणीमें मरण है। देवायुके बन्धका अभाव उपशमश्रेणीमें सर्वत्र ही है।

द्वितीयोपशमके कथनसम्बन्धी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

बन्धयोग्यप्रकृति ७७। गुणस्थान ८।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७५	२	९	९ (गुणस्थानोक्त १०–१ मनुष्यायु)
देशसंयत	६६	११	४	४ (प्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभ)
प्रमत्त	६२	१५	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५८	१९	०	१९ (१५+६–२, आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	१९	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	५५	५	५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	६०	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	७६	०	

१. उपशमश्रेणीमें चढ़ते हुए भी असंयतगुणस्थानमें द्वितीयोपशमसम्यक्त्व कहा है, मात्र श्रेणीसे उतरनेकी अपेक्षा ही होता हो ऐसी बात नहीं है देखो—
ध. पु. १ सूत्र २७ की टीका। मूलाचार अ. १२ गाथा २०५ की टीका। कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ४८४ की टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षयोपशमसम्यक्त्वमें बन्धयोग्यप्रकृति ७९ हैं, क्योंकि मिथ्यात्व व सासादन-गुणस्थानमें (१६+२५) ४१ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति हो जाती है। गुणस्थान असंयतादि चार ही हैं, क्योंकि उपशमश्रेणीमें उपशम और क्षायिकसम्यक्त्व एवं क्षपकश्रेणीमें क्षायिकसम्यक्त्व होता है। असंयतादि चारों गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति और बन्धका कथन तो गुणस्थानवत् है, किन्तु अबन्ध २-१२-१६ और २० प्रकृतिका यथाक्रम चारों गुण-स्थानोंमें जानना।

क्षयोपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति ७९। गुणस्थान ४।

गणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७७	२	१०	२ (आहारकद्विक)
देशसंयत	६७	१२	४	
प्रमत्त	६३	१६	६	
अप्रमत्त	५९	२०	१	२० (१६+६–२ आहारकद्विक)

क्षायिकसम्यक्त्वमें बन्धयोग्यप्रकृति ७९ हैं। गुणस्थान असंयतसे अयोगीपर्यन्त हैं तथा सिद्ध भी जानना। असंयतमें व्युच्छिन्नप्रकृति १०, बन्धप्रकृति ७७ और अबन्धप्रकृति २ (आहारकद्विक)। देशसंयतमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, बन्ध ६७ प्रकृतिका, अबन्ध १२ प्रकृतिका। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धरूप प्रकृति ६३, अबन्धरूप प्रकृति १६ हैं। अप्रमत्तमें व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, बन्ध आहारक-द्विकसहित ५९ प्रकृतिका, अबन्ध २० प्रकृतिका। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ३६ प्रकृतिकी, बन्ध ५८ प्रकृतिका एवं अबन्ध २१ प्रकृतिका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति २२, अबन्धप्रकृति ५७। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७, अबन्ध ६२ प्रकृतिका है। उपशान्तकषायमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध १ प्रकृतिका और अबन्ध ७८ प्रकृतिका। क्षीणकषायगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्धप्रकृति १, अबन्ध ७८ प्रकृतिका है। सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति १, बन्धप्रकृति १, अबन्धप्रकृति ७८ हैं। अयोगीगुणस्थानमें बन्ध व व्युच्छित्तिका अभाव है, किन्तु अबन्ध ७९ प्रकृतिका जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षायिकसम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति ७९ । गुणस्थान ११ ।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७७	२	१०	२ (आहारकद्विक)
देशसंयत	६७	१२	४	
प्रमत्त	६३	१६	६	
अप्रमत्त	५९	२०	१	२० (१६+६–२ आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	२१	३६	
अनिवृत्तिकरण	२२	५७	५	
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	६२	१६	
उपशान्तमोह	१	७८	०	
क्षीणमोह	१	७८	०	
सयोगी	१	७८	१	
अयोगी	०	७९	०	

मिथ्यात्वमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६, बन्धप्रकृति ११७ तथा अबन्धप्रकृति ३ हैं। सासादनमें व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति १०१ और अबन्धप्रकृति १९ हैं। सम्यग्मिथ्यात्वमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति ७४ एवं अबन्ध प्रकृति ४६ जानना।

॥ इति सम्यक्त्वमार्गणा ॥

"अथ सञ्ज्ञीमार्गणा"

सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणकषाय-पर्यन्त १२। यहां बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना।

असञ्ज्ञीके बन्धयोग्यप्रकृति ११७ और गुणस्थान २ हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १९ प्रकृतिकी, बन्ध ११७ एवं अबन्ध शून्य है। सासादनगुणस्थानमें असञ्ज्ञीजीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्रकाययोगी ही होते हैं अतः यहां चारों आयुका बन्ध नहीं होता है। सासादनगुण-स्थानमें व्युच्छित्ति विकलेन्द्रियवत् २९ प्रकृतिकी, बन्ध ९८ प्रकृतिका एवं अबन्ध १९ प्रकृतिका जानना।

असञ्ज्ञीसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि—

बन्धयोग्यप्रकृति ११७ और गुणस्थान २ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छत्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	०	१९	१९ (गुणस्थानोक्त १६+३, मनुष्य,देव,तिर्यञ्चायु)
सासादन	९८	१९	२९	२९ (गुणस्थानोक्त २५+६ वज्रर्षभनाराचादि—२ मनुष्य व तिर्यञ्चायु)

॥ इति सञ्ज्ञीमार्गणा ॥

"अथ आहारमार्गणा"

आहारमार्गणामें आहारकजीवके बन्धयोग्यप्रकृति १२० हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व सयोगीपर्यन्त १३ हैं। यहां बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानोक्त ही जानना।

अनाहारकके चारआयु, आहारकद्विक और नरकद्विकके बिना बन्धयोग्यप्रकृति कार्मणकाययोगके समान ११२ हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, सयोगी और अयोगी ये पांच हैं। यहां मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छित्ति, बन्ध और अबन्धका कथन कार्मणकाययोगके समान ही है, किन्तु अयोगीके बन्ध और व्युच्छित्तिका तो अभाव है, अबन्ध ११२ प्रकृतिका जानना। इसप्रकार वेद-मार्गणासे आहारमार्गणापर्यन्त व्युच्छित्ति, बन्ध व अबन्धका कथन किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अनाहारकसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि"

बन्धयोग्यप्रकृति ११२ गुणस्थान ५।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (देवचतुष्क, तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६–३ नरकद्विक व नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५–१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	७४	३७ (२४+१८–५ देवचतुष्क, तीर्थङ्कर) ७४ (मनुष्यायुबिना असंयतकी ९+देशसंयतकी ४+ प्रमत्तकी ६+अपूर्वकरणकी आहारकद्विकबिना ३४+अनिवृत्तिकरणकी ५+सूक्ष्मसाम्परायकी १६) ये सर्व ७४ प्रकृतियां असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्न होती हैं।
सयोगी	१	१११	१	१ (सातावेदनीय) नोट–आहारक अवस्थामें साता-वेदनीयकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती।
अयोगी	०	११२	०	

इसप्रकार चतुर्दशमार्गणाओंमें बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तिका कथन पूर्ण हुआ।

आगे मूलप्रकृतियोंके सादि-अनादि इत्यादिरूप बन्धके भेदोंको विशेषरूपसे कहते हैं—

सादि अणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तदियो सादियसेसो अणादिधुवसेसगो आऊ ॥१२२॥

अर्थ—छहकर्मोंका प्रकृतिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव एवं अध्रुवरूप से चारों-प्रकारका होता है, किन्तु वेदनीयकर्मका बन्ध सादिबिना तीनप्रकारका होता है। आयुकर्मका अनादि तथा ध्रुवबन्धके बिना दोप्रकारका अर्थात् सादि और अध्रुवबन्ध ही होता है।

विशेषार्थ—वेदनीयका सादिबन्ध नहीं होनेसे तीनप्रकारका बन्ध होता है, क्योंकि उपशमश्रेणीमें आरोहण व अवरोहण करते हुए सातावेदनीयकी अपेक्षा निरन्तर वेदनीयकर्मका बन्ध है अतः सादिपना नहीं है, मात्र अनादि ध्रुव और अध्रुव-बन्ध ही है। एकपर्यायमें आयुकी त्रिभागी आठ ही होती है। इसलिए अपनी आयुकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम, द्वितीय अथवा अष्टमत्रिभागीमें आयुकर्मका बन्ध होता है। यदि अष्टमत्रिभागीमें भी आयुका बन्ध नहीं हो तो भुज्यमानआयुके अन्तमें आयुकर्मका बन्ध होता है, अतः वह सादिबन्ध है तथा अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ही बंधता है इसकारण अध्रुव है।

नोट—आयुबन्धके एकअन्तर्मुहूर्त पश्चात् मरण होता है, क्योंकि जघन्य-आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त है।

अब इन बन्धोंका लक्षण कहते हैं—

सादी अबंधबंधे सेढिअणारूढगे अणादी हु।
अभव्वसिद्धम्हि धुवो भवसिद्धे अद्धुवो बंधो ॥१२३॥

अर्थ—जिसकर्मके बन्धका अभाव होकर वही कर्म पुनः बंधे उसे सादिबन्ध कहते हैं। जो श्रेणीपर नहीं चढ़ा अर्थात् जिसके बन्धका अभाव नहीं हुआ उसके अनादिबन्ध है। जिस बन्धका कभी अभाव नहीं होगा वह ध्रुवबन्ध है, यह ध्रुवबन्ध अभव्योंके होता है। जिस बन्धका अन्त आ जावे वह अध्रुव बन्ध है, यह बन्ध भव्योंके होता है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणकी ५ प्रकृतियोंका बन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्तके जीवको था पीछे वही जीव जब उपशान्तकषायगुणस्थानको प्राप्त हुआ उससमय उसके ज्ञानावरणके बन्धका अभाव हुआ। वही जीव पुनः उतरते हुए नीचे सूक्ष्म-साम्परायमें आया उससमय उसके जो ज्ञानावरणका बन्ध हुआ वही सादिबन्ध है। जीव जबतक श्रेणीको प्राप्त नहीं होता तबतक उसके अनादिबन्ध जानना। जैसे—ज्ञानावरणकी बन्धव्युच्छित्ति सूक्ष्मसाम्परायके अन्तसमयमें होती है उसके अनन्तर जीव उपशान्त-कषाय गुणस्थानमें पहुंचा, इसके पहले सूक्ष्मसाम्परायके अन्ततक ज्ञानावरणका अनादि-बन्ध है।

अभव्यजीवोंके ध्रुवबन्ध होता है, क्योंकि निष्प्रतिपक्ष-निरन्तरबन्धी कर्म-प्रकृतियोंका बन्ध अभव्यजीवोंके अनादि-अनन्त पाया जाता है। भव्यजीवोंके अध्रुव-बन्ध है, क्योंकि भव्यजीवोंके बन्धका अन्त पाया जाता है। जैसे ज्ञानावरणपञ्चक (मति-श्रुतादि) की बन्धव्युच्छित्ति दशवेंगुणस्थानमें होती है। इसप्रकार सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवका लक्षण कहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उत्तरप्रकृतियोंमें इन चारबन्धोंकी विशेषता कहते हैं—

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ।
सत्तेत्तालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा ॥१२४॥

अर्थ—मोहनीयके बिना तीनघातियाकर्मोंकी १९ प्रकृतियां, मिथ्यात्व, सोलह-कषाय, भय, जुगुप्सा तैजस और अगुरुलघुयुगल तथा निर्माण, वर्णादिचार ये ४७ प्रकृतियां ध्रुवबन्धी कहलाती हैं। इनका सादि इत्यादि चारों प्रकारका बन्ध होता है तथा शेषका दोप्रकारका बन्ध होता है।

विशेषार्थ—जबतक बन्धकी व्युच्छित्ति नहीं होती तबतक इन ध्रुवप्रकृतियोंका प्रतिसमय बन्ध होता है इसलिए इनको ध्रुवबन्धी कहते हैं तथा इनसे शेष वेदनीयकी दो, मोहनीयकी सात, आयुकी चार, गतिचार, जातिपांच, औदारिकशरीर, औदारिक-अङ्गोपाङ्ग, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, छहसंस्थान, छहसंहनन, चारआनुपूर्वी, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति-युगल, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, सुभग, दुर्भग, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर तथा गोत्रकर्मकी दो ये ७३ प्रकृति अध्रुवबन्धी हैं। इन प्रकृतियोंके सादि और अध्रुवबन्ध ही होते हैं।

अथानन्तर इनप्रकृतियोंके अप्रतिपक्ष और सप्रतिपक्षभेद कहते हैं—

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्वआऊणि।
अपडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी ॥१२५॥

अर्थ—७३ अध्रुवबन्धीप्रकृतियोंमेंसे तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, परघातादि चार और चारआयु ये ग्यारह प्रकृतियां अप्रतिपक्षी कहलाती हैं तथा शेष ६२ प्रकृति सप्रति-पक्षी हैं।

विशेषार्थ—४७ ध्रुवबन्धीप्रकृतियोंके बिना शेष ७३ प्रकृतियोंमेंसे तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और चारआयु ये ग्यारहप्रकृतियां अप्रतिपक्षी हैं, क्योंकि इनका कोई प्रतिपक्षी नहीं है। इन प्रकृतियोंका जिसकालमें बन्ध होता है उसकालमें बंधती हैं और जिसकालमें बन्ध नहीं होता है उसकालमें नहीं बंधती है। जैसे—तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध जिसकालमें होता है उसीकालमें बंधती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवशेष ६२ प्रकृतियां सप्रतिपक्षी है, क्योंकि इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियां हैं। एकसमयमें एकका ही बन्ध होगा जैसे—सातावेदनीय, असातावेदनीय ये दोनों परस्परमें प्रतिपक्षी हैं। इनमेंसे एकसमयमें एकका ही बन्ध होगा, दोनोंका एकसाथ बन्ध नहीं होगा।

आत्माके संक्लेश व विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं, उन संक्लेश व विशुद्ध-परिणामोंके द्वारा साता-असातावेदनीयकर्म तथा पुरुष स्त्री-नपुंसकवेद आदिके बन्धमें परिवर्तन होता रहता है। इसकारण कभी किसी प्रकृतिका तो कभी किसी प्रकृतिका बन्ध होता रहता है।

आगे इन अध्रुवप्रकृतियोंके सादि और अध्रुवबन्ध ही क्यों कहा? इसके उत्तरस्वरूप गाथा कहते हैं—

अवरो भिण्णमुहुत्तो तित्थाहाराण सव्वआऊणं।
समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा ॥१२६॥

अर्थ—तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और चारआयु इन सातप्रकृतियोंका निरन्तर बन्धनेका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, शेष ६६ प्रकृतियोंका निरन्तरबन्धनेका काल जघन्यसे एकसमय है। इसके पश्चात् इनका बन्ध रुक जाता है। अतः इन ७३ प्रकृतियोंमें सादि और अध्रुबन्ध सिद्ध हुआ। इसप्रकारसे प्रकृतिबन्धका स्वरूप समझना।

॥ इति प्रकृतिबन्ध ॥

"अथ स्थितिबन्ध"

अब मूलप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं—

तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ॥१२७॥

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीयकर्मका उत्कृष्टस्थिति-बन्ध तीसकोड़ाकोड़ीसागर, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध बीसकोड़ाकोड़ी-सागर प्रमाण है। मोहनीयकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध सत्तरकोड़ाकोड़ीसागर है तथा आयुकर्मका केवल ३३ सागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर छह गाथाओंसे उत्तरप्रकृतियोंका स्थितिबन्ध कहते हैं—

दुक्खतिघादीणोघं सादिच्छीमणुदुगे तदद्धं तु।
सत्तरि दंसणमोहे चारित्तमोहे य चत्तालं ॥१२८॥
संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च ॥१२९॥
अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुति चउक्के ॥१३०॥
इगिपंचेंदियथावरणिमिणासग्गमणअथिरछक्काणं।
वीसं कोडाकोडीसागर णामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥
हस्सरदिउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे ॥१३२॥
सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोगे ॥१३३॥कुलयं॥

अर्थ—असातावेदनीय तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनकी १९ इसप्रकार सर्वबीसप्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध मूलप्रकृतियोंके समान ३० कोड़ाकोडीसागर है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उत्कृष्टस्थितिबन्ध १५ कोड़ाकोडीसागर है। मिथ्यात्वका सत्तरकोड़ाकोड़ी एवं चारित्र मोहनीयरूप सोलहकषायका उत्कृष्टस्थितिबन्ध ४० कोड़ाकोड़ीसागर है। अन्तिम हुण्डकसंस्थान तथा सृपाटिकासंहननका मूलप्रकृतिके समान २० कोड़ाकोड़ीसागर, वामनसंस्थान और कीलकसंहननका १८ कोड़ाकोड़ीसागर, कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहननका सोलह, स्वातिसंस्थान व नाराचसंहननका १४, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहननका १२, तथा समचतुरस्रसंस्थान व वज्रर्षभनाराचसंहननका १० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्तका उत्कृष्टस्थितिबन्ध १८ कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है। अरति, शोक, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तैजस,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्मण और औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त व प्रत्येक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्तविहायोगति तथा अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति इसप्रकार इन सर्व ४१ प्रकृतियोंका २० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुषवेद तथा स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्ति, प्रशस्तविहायोगति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध १० कोड़ाकोड़ीसागर है। आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्करप्रकृतिका अन्तःकोड़ाकोड़ीसागर (एक कोड़से अधिक एवं कोड़ाकोड़ीसे कम) प्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। देवायु और नरकायुका मूलप्रकृतिके समान ३३ सागरप्रमाण तथा मनुष्य व तिर्यञ्चायुका तीनपल्यप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। यह उत्कृष्टस्थितिबन्ध सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तके ही हो सकता है ।।१३३।।

विशेषार्थ—शुभाशुभकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध यथायोग्य उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामवाले चारोंगतिके जीवोंको ही होता है। उत्कृष्ट संक्लेशवालेजीवको अप्रशस्तप्रकृतियोंका बन्ध होगा, साताआदिका बन्ध नहीं होगा। इन प्रकृतियोंमें तीर्थङ्कर और आहारकद्विक ये तीन संसारका कारण नहीं है।

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ।।१३४।।

अर्थ—तिर्यञ्च, मनुष्य व देवायुबिना अन्य ११७ प्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामोंसे होता है[1] और जघन्यस्थितिबन्ध यथायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है। तीनआयुरूप प्रकृतियोंका भी यथायोग्य विशुद्धपरिणामोंसे उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है तथा जघन्यस्थितिबन्ध यथायोग्य संक्लेशपरिणामोंसे होता है।

विशेषार्थ—उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामोंके अतिरिक्त बन्धककी गति आदि भी स्थितिबंधमें कारण हैं। जैसे देव उत्कृष्ट संक्लेशद्वारा एकेन्द्रियजातिका बन्ध करता है, किन्तु तिर्यञ्चआयुका जघन्यस्थितिबन्ध नहीं करता है।

---

१. महाबंध पु० २ पृ. २५६–२५७ "तप्पाओग्गउक्कसए संकिलिट्ठे वट्टमाणस्स"।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उत्कृष्टस्थितिबन्धके स्वामी बताते हैं—

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिदो ।
आहारं तित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूण ॥१३५॥

अर्थ—आहारकद्विक-तीर्थङ्कर और देवायुबिना शेष ११६ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट-स्थतिबन्ध मिथ्यादृष्टिजीव ही करता है। यहां 'अर्थापत्ति न्याय' से यह अर्थ निकलता है कि आहारकादि चारप्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध सम्यग्दृष्टिजीव ही करता है।

आहारकद्विकादि चारप्रकृतियोंके बन्धस्वामियोंमें विशेषता कहते हैं—

देवाउगं पमत्तो आहारयमप्पमत्तविरदो दु ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेदि ॥१३६॥

अर्थ—देवायुकी उत्कृष्टस्थितिको प्रमत्तगुणस्थानवालाजीव, आहारकद्विककी उत्कृष्टस्थितिको अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थितिको चतुर्थगुणस्थानवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिमनुष्य ही बांधता है।

विशेषार्थ—देवायुकी उत्कृष्टस्थितिको अप्रमत्तगुणस्थानमें जानेके सम्मुख हुआ प्रमत्तगुणस्थानवालाजीव बांधता है। यद्यपि अप्रमत्तगुणस्थानमें भी देवायुका बन्ध होता है, तथापि सातिशयअप्रमत्तमें तीव्रविशुद्धपरिणाम पाए जाते हैं अतः यहां देवायुका बन्ध न होकर निरतिशयअप्रमत्तमें ही होता है, किन्तु उत्कृष्टस्थितिबन्ध नहीं होता है। आहारकद्विककी उत्कृष्टस्थितिको प्रमत्तगुणस्थानके सन्मुख हुआ अप्रमत्त-गुणस्थानवर्ती संक्लेशपरिणामीजीव बांधता है। तीर्थङ्करप्रकृतिकी उत्कृष्टस्थितिको दूसरे या तीसरे नरकमें जानेके सम्मुख हुआ क्षयोपशमसम्यग्दृष्टि असंयतमनुष्य ही बांधता है। अतः तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करनेवाले नरकगतिके अभिमुख असंयत-सम्यग्दृष्टिजीवके तीव्रसंक्लेश पाया जाता है। मिथ्यात्वमें जानेवाले सम्यग्दृष्टिमनुष्यके अन्तिमसमयमें उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है।

अथानन्तर ११६ प्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिजीव ही करता है इसका कथन दो गाथाओंसे करते हैं—

णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियल सुहुमतियं ।
सुरणिरिया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥१३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवा पुण एइंदियआदावं थावरं च सेसाणं।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥१३८॥जुम्मं॥

अर्थ—देवायुबिना शेष तीनआयु, वैक्रियकषट्क, विकलत्रय और सूक्ष्मादि तीन इन सभीका उत्कृष्टस्थितिबन्ध मनुष्य और तिर्यञ्चजीव ही करते हैं। औदारिकद्विक, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत व असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननकी उत्कृष्टस्थिति मिथ्यादृष्टिदेव और नारकीजीव ही बांधते हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर इन तीनप्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिदेव करते हैं, शेष ९२ प्रकृतियोंको उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामवाले तथा ईषत् मध्यमसंक्लेशपरिणामवाले चारों गतियोंके जीव बांधते हैं।

विशेषार्थ—यहां उत्कृष्ट और ईषत्मध्यमसंक्लेशपरिणामका स्वरूप इसप्रकार जानना :—

स्थितिबन्धके कारण तीव्रमंदादिकरूप स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंमें उत्कृष्ट-स्थितिबन्धके लिए कारण ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम हैं। इनके पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण खण्ड करके अंतिमखण्डमें तीव्रकषायरूप जो परिणाम हैं उनको उत्कृष्टसंक्लेश कहते हैं तथा प्रथमखण्डमें जितने परिणाम हैं वे अल्पकषायरूप हैं इनको ईषत्संक्लेश कहते हैं एवं दोनोंखण्डोंके बीच जो खण्ड हैं उनमें जो परिणाम यथासम्भव पाए जाते हैं उनको मध्यमसंक्लेशपरिणाम कहते हैं। इसीप्रकार उत्कृष्टसे एक-एकसमय घटते हुए जघन्यस्थितिपर्यन्त जितने स्थितिके भेद हैं उन सभीमें जानना।

इन सर्वप्रकृतियोंमें अपनी-अपनीस्थितिके भेदोंका जो प्रमाण है उसे ऊर्ध्वगच्छ कहते हैं। तिर्यक्गच्छ पल्योपमके असंख्यातवेंभागप्रमाण और गुणहानिआयाम भी पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण होता है। यहां अनुकृष्टिरचनाका विधान अधःकरणवत् जानना चाहिए।

अनुकृष्टिरचना—अङ्कसन्दृष्टिमें २२२ परिणाम उत्कृष्टस्थितिबन्धके कारण हैं। इनकी अनुकृष्टिरचना ५४-५५-५६-५७=२२२। इनमेंसे ५७ परिणाम तो उत्कृष्ट-स्थितिबन्धके ही कारण हैं, किन्तु ५४ परिणाम (स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान) ऐसे हैं जो उत्कृष्टस्थितिबन्धको भी कारण हैं और उससे पल्यके असंख्यातवेंभाग हीनतककी स्थितियोंके बन्धकारण भी हैं तथा ५५ व ५६ परिणाम उत्कृष्टस्थितिबन्ध को भी कारण हैं और उससे हीन स्थितिबन्धको भी कारण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे मूलप्रकृतिके जघन्यस्थितिबन्धको कहते हैं—

बारस य वेयणीये णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥१३९॥

अर्थ—वेदनीयकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध बारहमुहूर्तका है, नाम व गोत्रकर्मका आठमुहूर्त है अवशेष पांचकर्मोंका जघन्यस्थितिबन्ध एक-एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

अथानन्तर उत्तरप्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध कहते हैं—

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेकदलमासं ।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदि ॥१४०॥

अर्थ—लोभ तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धनेवाली १७ प्रकृतियोंका जघन्यस्थिति बन्ध मूलप्रकृतियोंके समान है । इनमें यशस्कीर्ति और उच्चगोत्रका तो आठ-आठमुहुर्त है । सातावेदनीयका १२ मुहुर्त तथा शेष ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय और सञ्ज्वलनलोभका एक-एक अन्तमुहूर्त है । क्रोधका दोमास, मानका एकमाह, मायाका १५ दिन और पुरुषवेदका आठवर्षप्रमाण जघन्यस्थितिबन्ध होता है ।

तित्थाहाराणंतोकोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो ।
खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा ॥१४१॥

अर्थ— तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका जघन्यस्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है । अन्तःकोडाकोडीके अनेकभेद होते हैं इसलिए जघन्यका भी इतना ही प्रमाण है । यह जघन्यस्थितिबन्ध क्षपकश्रेणीवालोंके अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके समय आठवें-गुणस्थानके छठेभागमें नियमसे होता है ।

भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वासदससहस्साणि ।
सुरणिरयआउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ॥१४२॥

अर्थ—मनुष्य और तिर्यञ्चायुका जघन्यस्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त अर्थात् क्षुद्रभव या उच्छ्वासके १८ वें भागप्रमाण है तथा देवायु और नरकायुका दशहजारवर्षप्रमाण है ।

सेसाणं पज्जत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य ।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसगउक्कस्सपडिभागे ॥१४३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—उपर्युक्त गाथाओंमें कथित २९ प्रकृतियोंके बिना शेष ९१ प्रकृतियोंमें से वैक्रियकषट्क और मिथ्यात्व इन सातके बिना ८४ प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध यथायोग्य विशुद्धताका धारक बादरएकेन्द्रियपर्याप्तजीव करता है। अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थितिका प्रतिभाग करके त्रैराशिकविधानसे जो-जो प्रमाण हो वह-वह जघन्य-स्थितिका प्रमाण जानना।

"मूल-उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिसम्बन्धी सन्दृष्टि"

प्रकृतियां		स्थितिबन्ध	
मूलप्रकृति	उत्तरप्रकृति	उत्कृष्ट	जघन्य
ज्ञानावरणीय	मतिज्ञानावरणादि पांच (५)	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरणीय	निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला व स्त्यानगृद्धि	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३/७ सागर*
	निद्रा व प्रचला	,, ,, ,,	३/७ सागर*
	चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवलदर्शन	,, ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय	साता	१५ ,, ,,	१२ मुहूर्त
	असाता	३० ,, ,,	३/७ सागर*
मोहनीय			
(अ) दर्शनमोहनीय	मिथ्यात्व	७० ,, ,,	७/७ सागर*
(आ) चारित्र ,,	अनन्तानुबन्धीक्रोधादि चार	४० ,, ,,	४/७ सागर*
(१) कषायवेदनीय	अप्रत्याख्यानक्रोधादि चार	,, ,, ,,	४/७ सागर*
	प्रत्याख्यानक्रोधादि चार	,, ,, ,,	,, ,,
	सञ्ज्वलन क्रोध	,, ,, ,,	२ मास
	सञ्ज्वलन मान	,, ,, ,,	१ मास
	,, माया	,, ,, ,,	१ पक्ष
	,, लोभ	,, ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त
(२) नोकषाय-दनीय	स्त्रीवेद	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	पुरुषवेद	१० ,, ,,	८ वर्ष
	नपुंसकवेद	२० ,, ,,	२/७ सागर*
	हास्य	१० ,, ,,	,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	रति	१० कोड़ाकोड़ीसागरोपम	२/७ सागर ❋
	अरति	२० ,, ,,	,, ,,
	शोक	,, ,, ,,	,, ,,
	भय	,, ,, ,,	,, ,,
	जुगुप्सा	,, ,, ,,	,, ,,
आयु	नरकायु	३३ सागरोपम	१० सहस्रवर्ष
	तिर्यञ्चायु	३ पल्योपम	क्षुद्रभव
	मनुष्यायु	३ ,,	,,
	देवायु	३३ सागरोपम	१० सहस्रवर्ष
नाम (पिण्डकृतियां)			
(१) गति	नरक	२० कोड़ाकोड़ीसागरोपम	२०००/७सागर❋
	तिर्यञ्च	,, ,, ,,	२/७ सागर❋
	मनुष्य	१५ ,, ,,	२/७ सागर❋
	देव	१० ,, ,,	२०००/७सागर❋
(२) जाति	एकेन्द्रिय	२० ,, ,,	२/७ सागर ❋
	द्वीन्द्रिय	१८ ,, ,,	,, ,,
	त्रीन्द्रिय	,, ,, ,,	,, ,,
	चतुरिन्द्रिय	,, ,, ,,	,, ,,
	पञ्चेन्द्रिय	२० ,, ,,	,, ,,
(३) शरीर ५	औदारिक	,, ,, ,,	२/७ सागर ❋
(४) शरीरबन्धन ५	वैक्रियक	,, ,, ,,	२०००/७सागर❋
(५) शरीरसंघात ५	आहारक	अन्तः कोड़ाकोड़ी	अन्तःकोड़ाकोड़ी
	तैजस	२० ,, ,,	२/७ सागर ❋
	कार्मण	,, ,, ,,	,,
(६) शरीरसंस्थान	समचतुरस्र	१० कोड़ाकोड़ीसागरोपम	,,
	न्यग्रोधपरिमण्डल	१२ ,, ,,	,,
	स्वाति	१४ ,, ,,	,,
	कुब्जक	१६ ,, ,,	,,
	वामन	१८ ,, ,,	,,
	हुण्डक	२० ,, ,,	,,
(७) शरीर-अङ्गोपाङ्ग	औदारिक	२० ,, ,,	१/७ सागर ❋
	वैक्रियक	,, ,, ,,	२०००/७सागर❋
	आहारक	अन्तः कोड़ाकोड़ी	अन्तकोड़ाकोड़ी
(८) शरीरसंहनन	वज्रर्षभनाराच	१० ,, ,,	२/७ सागर ❋
	वज्रनाराच	१२ ,, ,,	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	नाराच	१४ कोड़ाकोड़ीसागरोपम	२/७ सागर※
	अर्धनाराच	१६ ,, ,,	,,
	कीलक	१८ ,, ,,	,,
	सृपाटिका	२० ,, ,,	,,
(९) वर्ण	कृष्णादि ५	२० ,, ,,	,,
(१०) गन्ध	सुरभि और दुरभि	,, ,, ,,	,,
(११) रस	तिक्तादि ५	,, ,, ,,	,,
(१२) स्पर्श	कर्कशादि ८	,, ,, ,,	,,
(१३) आनुपूर्वी	नरकगति आनुपूर्वी	२० ,, ,,	२०००/७सागर※
	तिर्यंचगति ,,	,, ,, ,,	२/७ सागर※
	मनुष्य ,, ,,	१५ कोड़ाकोड़ीसागरोपम	,,
	देव ,, ,,	१० ,, ,,	२०००/७सागर※
(१४)विहायोगति	प्रशस्त	,, ,, ,,	२/७ सागर※
	अप्रशस्त	२० ,, ,,	,,
(अपिण्डप्रकृतियां)	अगुरुलघु	,, ,, ,,	,,
	उपघात	,, ,, ,,	,,
	परघात	,, ,, ,,	,,
	उच्छ्वास	,, ,, ,,	,,
	आतप	,, ,, ,,	,,
	उद्योत	,, ,, ,,	,,
	त्रस	,, ,, ,,	,,
	स्थावर	,, ,, ,,	,,
	बादर	,, ,, ,,	,,
	सूक्ष्म	१८ ,, ,,	,,
	पर्याप्त	२० ,, ,,	२/७ सागर※
	अपर्याप्त	१८ ,, ,,	,,
	प्रत्येकशरीर	२० ,, ,,	,,
	साधारणशरीर	१८ ,, ,,	,,
	स्थिर	१० ,, ,,	,,
	अस्थिर	२० ,, ,,	,,
	शुभ	१० ,, ,,	,,
	अशुभ	२० ,, ,,	,,
	सुभग	१० ,, ,,	,,
	दुर्भग	२० ,, ,,	,,
	सुस्वर	१० ,, ,,	,,
	दुःस्वर	२० ,, ,,	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	आदेय	१० कोड़ाकोड़ीसागरोपम	२/७ सागर*
	अनादेय	२० ,, ,,	,,
	यशःकीर्ति	१० ,, ,,	८ मुहूर्त
	अयशस्कीर्ति	२० ,, ,,	२/७ सागर*
	निर्माण	,, ,, ,,	,,
	तीर्थङ्कर	अन्तःकोड़ाकोड़ी	अन्तःकोड़ाकोड़ी
गोत्र	उच्च	१० कोड़ाकोड़ीसागर	८ मुहूर्त
	नीच	२० ,, ,,	२/७ सागर*
अन्तराय	दान-लाभादि ५	३० ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त

नोट—१. यह सन्दृष्टि ध. पु. ६ व महाबन्ध पु. २ के अनुसार है।

२. उपर्युक्त सन्दृष्टिमें (*) इस चिह्नसे चिह्नित ३/७, ७/७, ४/७, २/७, १/७ रूप संख्या पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे हीन ग्रहणकरना चाहिए, किन्तु २०००/७ रूप संख्या पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिए।

३. सन्दृष्टिमें २/७, ३/७, ४/७, ७/७, १/७ व २०००/७ को २/७, ३/७ आदिरूपमें दिया गया है उसे यथायोग्य समझना।

शंका—स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वरादि प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे कम सागरोपमके दो बटे सात (२/७) भागमात्र घटित नहीं होता है, क्योंकि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंका २० कोड़ाकोड़ी-सागरोपमप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध नहीं होता।

समाधान—यद्यपि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंकी उत्कृष्टस्थिति २० कोड़ाकोड़ी-सागरोपमप्रमाण नहीं है, तथापि मूलप्रकृतिकी उत्कृष्टस्थितिके अनुसार ह्रासको प्राप्त होती हुई इन प्रकृतियोंका पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे कम सागरोपमके दो बटे सात (२/७) भागमात्र जघन्यस्थितिबन्धमें कोई विरोध नहीं है।[1]

अब जघन्यस्थितिकी विधि और प्रमाण दिखाते हैं—

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ॥१४४॥[2]

---

१. ध. पु. ६ पृ. १९०–१९१। २. ध. पु. ६ पृ. १९४-१९५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिको एकेन्द्रियजीव एकसागर, द्वीन्द्रियजीव २५ सागर, त्रीन्द्रिय ५० सागर, चतुरिन्द्रिय १०० सागर, असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियजीव एकहजारसागर तथा सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्तजीव ही ७० कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण उत्कृष्टस्थिति बांधता है। मिथ्यात्वकी जघन्यस्थिति एकेन्द्रियजीव अपनी उत्कृष्ट-स्थितिसे पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण कम बांधता है तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थितिसे पल्यके संख्यातवेंभागप्रमाण कम बांधता है।

अथानन्तर सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थितिकी अपेक्षा त्रैराशिक विधिसे एकेन्द्रियजीवके उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण कहते हैं—

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं।
इदि संपाते सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदि ॥१४५॥

अर्थ—मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्टस्थिति सञ्ज्ञीपर्याप्तजीव ७० कोड़ाकोड़ी-सागरप्रमाण बांधता है, किन्तु एकेन्द्रियजीव मिथ्यात्वकी एकसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थिति बांधता है तो ३० कोड़ाकोड़ीसागरादि उत्कृष्टस्थितिवाले कर्मोंका एकेन्द्रियजीवके कितनी स्थितिप्रमाण बन्ध होगा? इसप्रकार त्रैराशिकविधि करनेसे एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियजीवोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिका प्रमाण निकल आता है।

विशेषार्थ—७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिवाला मिथ्यात्वकर्म एकेन्द्रियजीवके एकसागरप्रमाण बंधता है तो ४० व ३० और २० कोड़ाकोड़ीसागर-प्रमाण उत्कृष्टस्थितिमें कितनी बांधेगा? यहां प्रमाणराशि ७० कोड़ाकोड़ीसागर, फलराशि एककोड़ाकोड़ीसागर और इच्छाराशि विवक्षितकर्मकी ३०-४० अथवा २० कोड़ाकोड़ीसागरादि प्रमाण जितनी उत्कृष्टस्थिति है सो जानना। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आया उसका विवक्षितकर्मकी उत्कृष्टस्थितिमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने-उतने प्रमाण उत्कृष्टस्थिति एकेन्द्रियजीवके बंधती है। इसप्रकार त्रैराशिकविधिसे ४० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण बंधने वाली १६ कषायोंकी जो स्थिति है उसमें एकेन्द्रियके उत्कृष्टस्थिति एकसागरके $\frac{४}{७}$ भागप्रमाण बंधती है। इसी त्रैराशिक क्रमसे ३० कोड़ाकोड़ीसागरकी उत्कृष्टस्थितिवाले असातावेदनीयकी तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातियाकर्मोंकी १९ प्रकृतियोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

एकेन्द्रियजीवके उत्कृष्टस्थिति एकसागरके $\frac{३}{७}$ भाग प्रमाण बंधती है तथा २० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाणवाले कर्मकी $\frac{२}{७}$ सागरप्रमाण बंधती है।

द्वीन्द्रियजीवके ७० कोड़ाकोड़ीसागरकी उत्कृष्टस्थितिमें से मिथ्यात्वकर्मका २५ सागरप्रमाण बन्ध होता है तो ३० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिवाला जो कर्म है उसका दोइन्द्रिय जीवके कितने सागरका स्थितिबन्ध होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर ७५ सागरका सांतवां भाग ($\frac{७५}{७}$) लब्ध आया। ४० कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थितिवाले कर्मका १०० सागरके सांतवांभाग ($\frac{१००}{७}$) प्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है। इसीप्रकार सभीकर्मोंकी स्थिति एकेन्द्रियसे २५ गुणी द्वीन्द्रियजीवके बन्धती है।

इसप्रकार त्रैराशिकविधि से उत्कृष्टस्थिति निकालकर इसमेंसे एकेन्द्रियके पल्यका असंख्यातवां और विकलेन्द्रियके संख्यातवांभाग कम करदेनेपर जघन्यस्थिति ज्ञात करलेना चाहिए।

पुनः आबाधाकी कुछ विशेषता दिखाते हैं—

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं ॥१४६॥

अर्थ—सञ्ज्ञीजीव, असञ्ज्ञीचतुष्क और एकेन्द्रियजीवके प्रकृतियोंकी जघन्यआबाधा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है एवं उत्कृष्टआबाधा सञ्ज्ञीजीवोंमें अपनी जघन्यआबाधासे संख्यातगुणी, असञ्ज्ञीचतुष्कमें अपनी जघन्यआबाधासे आवलीके संख्यातवेंभाग अधिक, तथा एकेन्द्रियमें अपनी जघन्यआबाधासे आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक समझना।

विशेषार्थ—सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियजीवोंकी जघन्यआबाधा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और जघन्यस्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण है। कर्मबन्ध होनेके पश्चात् कर्म जबतक उदय अथवा उदीरणारूप नहीं होता तबतकके कालको उदय-आबाधा व उदीरणाआबाधाकाल कहते हैं। बन्धके समय उदयआबाधाकाल पड़ता है, किन्तु उदीरणाआबाधाकाल एकआवलीप्रमाण है। इसको बन्धावली या अचलावली भी कहते हैं। एकेन्द्रियकी स्थितिसे द्वीन्द्रियादिकी स्थिति संख्यातगुणी है। सञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियजीवकी आबाधासे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियजीवोंको आबाधा संख्यातगुणी कम-कम क्रमसे है, किन्तु सर्वअसञ्ज्ञीजीवोंकी

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आबाधाका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तके भेद बहुत हैं। एकेन्द्रियकी जघन्यआबाधासे द्वीन्द्रियादिकी जघन्यआबाधा क्रमसे २५-५०-१०० और १००० गुणी है तथा उत्कृष्टआबाधाके प्रमाणसे सञ्ज्ञीजीवोंकी तो संख्यातगुणी है। असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय व विकलत्रयजीवोंकी अपनी-अपनी जघन्यआबाधासे यद्यपि आवलीके संख्यातवांभाग-प्रमाण अधिक उत्कृष्टआबाधा है तथापि यह उत्कृष्टआबाधा असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियसे एकेन्द्रियपर्यन्त क्रमसे संख्यातगुणी-संख्यातगुणीहीन जानना तथा एकेन्द्रियजीवमें अपनी जघन्यआबाधासे आवलीका असंख्यातवांभागप्रमाण अधिक उत्कृष्टआबाधा समझना चाहिए।

यहां एकेन्द्रियजीवके उत्कृष्टआबाधाके प्रमाणमेंसे जघन्यआबाधाका प्रमाण घटानेसे जो प्रमाण बचे उसमें एक और मिलानेसे जो प्रमाण होता है उतने आबाधाके भेद एकेन्द्रियजीवके हैं। इसीप्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञी और सञ्ज्ञीके अपनी-अपनी उत्कृष्टआबाधाके प्रमाणमेंसे अपनी-अपनी जघन्यआबाधाका प्रमाण घटाकर उसमें एक मिलानेसे आबाधाके भेदोंका प्रमाण निकलता है।

'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा' आदिको अन्तमेंसे घटाकर उसमें वृद्धिका भाग देकर एक और मिलानेपर स्थानोंका प्रमाण होता है। यहां आदि तो जघन्यआबाधा है और अन्त उत्कृष्टआबाधा है। अतः उत्कृष्टआबाधामेंसे जघन्य-आबाधाको घटाकर वृद्धिके प्रमाण एकका भाग देनेपर जो संख्या प्राप्त हो उसमें एक मिलानेपर आबाधाके भेदरूप स्थानोंका प्रमाण होता है। यहां जघन्यसे एक-एकसमय बढ़ाते-बढ़ाते उत्कृष्ट भेद होता है अतः वृद्धिका प्रमाण एक हुआ।

जघन्यस्थितिबन्धको सिद्ध करनेके लिए गणितसूत्र कहते हैं—

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूणजेट्ठमवरठिदी॥१४७॥

अर्थ—एकेन्द्रियादिजीवोंकी उत्कृष्टस्थितिको उत्कृष्टआबाधासे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे आबाधाकाण्डक कहते हैं। अपने-अपने आबाधाकाण्डकके प्रमाणसे अपने-अपने आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसमेंसे एक घटाकर जितना प्रमाण आवे उतना अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थितिमेंसे घटानेपर जो लब्ध आया वह अपनी-अपनी जघन्यस्थिति समझना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—जैसे एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधाका प्रमाण आवलीके असख्यातवेंभागसे अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इसका भाग मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति १ सागरमें देनेपर जितना प्रमाण प्राप्त हो वह आबाधाकाण्डकका प्रमाण समझना चाहिए। इस आबाधाकाण्डकको एकेन्द्रियकी आबाधाके भेदोंके प्रमाण अर्थात् आवलीके असंख्यातवेंभागसे गुणा करने पर जो लब्ध आवे उसमेंसे एक घटाकर जो प्रमाण आया उसको मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एकसागरमेंसे घटानेपर जो लब्ध शेष रहा वह एकेन्द्रियजीवकी मिथ्यात्वसम्बन्धी जघन्यस्थिति है। एकसागरप्रमाणउत्कृष्ट-स्थितिमेंसे इस जघन्यस्थितिको घटानेपर जो शेष रहा उसमें एकका भाग देनेपर उतना ही रहता है। इसमें एक अधिक करनेपर एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वसम्बन्धी स्थितिभेदों का प्रमाण निकलता है। जघन्यसे एक-एकसमय बढ़ते हुए उत्कृष्टपर्यन्त एकेन्द्रियके मिथ्यात्वसम्बन्धी स्थितिभेद जानना।

तथैव द्वीन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधाका प्रमाण यद्यपि एकआवलिक चारबार संख्यातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने अधिक पचीसअन्तर्मुहूर्त ही हैं, तथापि एकेन्द्रियजीवसम्बन्धी अबाधाके अन्तर्मुहूर्त समान ही २५ अन्तर्मुहूर्त जानना। अर्थात् एकेन्द्रियजीवसम्बन्धी आबाधासे २५ गुणी द्वीन्द्रियकी आबाधा है तथा २५ गुणा ही कर्मोंका स्थितिबन्ध है। इसप्रकार एकेन्द्रियकी अपेक्षा २५ अन्तर्मुहूर्त है ऐसा ही आगे भी समझना चाहिए। इस आबाधाकालका भाग द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट-स्थिति २५ सागरमें देनेसे आबाधाकाण्डकका प्रमाण होता है। इस आबाधाकाण्डकसे द्वीन्द्रियसम्बन्धी जो आबाधाकाण्डकके भेद हैं उनके साथ गुणा करनेपर जो संख्या प्राप्त हो उसमेंसे एककम करने पर जो शेष रहे उसको उत्कृष्ट २५ सागरप्रमाणस्थितिमेंसे घटानेपर जो अवशिष्ट रहे उतने प्रमाण द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वसम्बन्धी जघन्यस्थितिका बन्ध समझना। इस जघन्यको उत्कृष्टमेंसे घटा देनेसे शेषमें एक अधिक करनेपर द्वीन्द्रियसम्बन्धी मिथ्यात्वकी स्थितियोंके भेदोंका प्रमाण होता है। इसीप्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियका भी जानना तथा एकेन्द्रियसे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्यन्त जीवोंके ज्ञानावरणादि अन्यकर्मोंकी आबाधाके भेदादि जानना चाहिए।

अङ्कसन्दृष्टिद्वारा कथन करते हैं—

उत्कृष्टस्थिति ६४ समय है और ६३ से लेकर ४६ समयतक मध्यमस्थितिका प्रमाण है। जघन्यस्थितिका प्रमाण ४५ समय है, उत्कृष्टआबाधाका प्रमाण १६ समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस आबाधाका भाग उत्कृष्टस्थितिमें देनेसे ४ आये यह आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। ६४÷१६=४ आबाधाकाण्डक।

६४–६३–६२–६१	इन	चार	स्थितिभेदोंकी	१६	समयकी	आबाधा
६०–५९–५८–५७	,,	,,	,,	१५	,,	,,
५६–५५–५४–५३	,,	,,	,,	१४	,,	,,
५२–५१–५०–४९	,,	,,	,,	१३	,,	,,
४८–४७–४६–४५	,,	,,	,,	१२	,,	,,

१६–१५–१४–१३–१२ ये ५ आबाधाके भेद हुए।

आबाधाकाण्डक ४ का आबाधाके भेद ५ से गुणा करनेपर (५×४)=२० ये स्थितिके भेद ६४ से ४५ पर्यन्त हुए। यहां उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण ६४ है और ४५ जघन्यस्थितिका प्रमाण है। स्थितिका प्रमाण अथवा आबाधाकाण्डकका प्रमाण यहां कहा। इसप्रकार एकेन्द्रियादि जीवोंके सर्वप्रकृतियोंका स्थितिबन्ध, आबाधा, आबाधाकाण्डक, आबाधाके भेद व स्थितिभेद जानने।

एकेन्द्रियादिजीवोंकी स्थितिका इसप्रकार वर्णन किया, इनमें जघन्यसे उत्कृष्टपर्यन्त जितने भेद हों उनका स्थापनकर उनमें बादर व सूक्ष्म तो एकेन्द्रियके और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा असञ्ज्ञी व सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके पर्याप्त-अपर्याप्तके भेदसे १४ जीवसमास होते हैं।

जीवोंके उपर्युक्त १४ भेदोंकी जघन्य-उत्कृष्टस्थितिको पृथक्-पृथक् कहते हैं—

बासूप-बासूअ-वरट्ठिदीओ सूबाअ-सूबाप-जहण्णकालो।
बीबीवरो बीबिजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ॥१४८॥

अर्थ—बादरपर्याप्त व अपर्याप्त, सूक्ष्मपर्याप्त-अपर्याप्त इन चारप्रकारके जीवोंके कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति तथा सूक्ष्म व बादरअपर्याप्त और सूक्ष्म व बादरपर्याप्तजीवोंकी जघन्यस्थिति, इसप्रकार एकेन्द्रियजीवकी कर्मस्थितिके आठभेद हुए। द्वीन्द्रियके पर्याप्त-अपर्याप्त तथा इन दोनोंके जघन्य-उत्कृष्ट, इसप्रकार स्थितिके चारभेद द्वीन्द्रियसम्बन्धी जानना। तथैव त्रीन्द्रियसे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्यन्त स्थितिके चार-चार भेद हैं। ये सर्व ८+४+४+४+४+४=२८, स्थितिके भेद १४ प्रकारके जीवोंकी अपेक्षासे होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादिके १४ भेदोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिभेदोंकी अपेक्षा २८ प्रकार निम्नलिखित जानना।

१. बादरपर्याप्त एकेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२. सूक्ष्म ,, ,, ,,
३. बादरअपर्याप्त ,, ,,
४. सूक्ष्म ,, ,, ,,
५. सूक्ष्म ,, ,, जघन्यस्थिति
६. बादर ,, ,, ,,
७. सूक्ष्मपर्याप्त ,, ,,
८. बादर ,, ,, ,,
९. पर्याप्त द्वीन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१०. अपर्याप्त ,, ,,
११. ,, ,, जघन्यस्थिति
१२. पर्याप्त ,, ,,
१३. पर्याप्तत्रीन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१४. अपर्याप्त ,, ,,
१५. अपर्याप्त त्रीन्द्रियकी जघन्यस्थिति
१६. पर्याप्त ,, ,,
१७. पर्याप्तचतुरिन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१८. अपर्याप्त ,, ,,
१९. ,, ,, जघन्यस्थिति
२०. पर्याप्त ,, ,,
२१. पर्याप्त असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२२. अपर्याप्त ,, ,, ,,
२३. ,, ,, ,, जघन्यस्थिति
२४. पर्याप्त ,, ,, ,,
२५. ,, सञ्ज्ञी ,, उत्कृष्टस्थिति
२६. अपर्याप्त ,, ,, ,,
२७. ,, ,, ,, जघन्यस्थिति
२८. पर्याप्त ,, ,, ,,

उपर्युक्त २८ भेदोंमेंसे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियसम्बन्धी चारभेदोंका कथन आगे पृथक्‌रूपसे करेंगे। अवशिष्ट २४ भेदोंकी स्थितिका आयाम जाननेके लिए अन्तराल-सम्बन्धी भेदोंको त्रैराशिकद्वारा कहते हैं। तद्यथा—

स्थितिबन्धमें जो कालका प्रमाण है उसे आयाम कहते हैं, आयामका अर्थ लम्बाई है। यहां एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एकसागरप्रमाण है और जघन्यस्थिति पल्यके असंख्यातवेंभागको एकसागरमेंसे घटानेपर जो काल शेष रहा उतनेप्रमाण है।

'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा' इस करणसूत्रके अनुसार आदि (जघन्यस्थिति) को अन्त अर्थात् उत्कृष्टस्थितिमेंसे घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसमें (एक-एकस्थितिके भेदोंमें एक-एकसमय बढ़ता है इसलिए) वृद्धिके प्रमाण एकका भाग देनेपर उतना ही प्राप्त हुआ उसमें एक अधिक करनेसे एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेद पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण होते हैं। इस गाथाके अनन्तरवर्ती गाथार्थमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकेन्द्रियजीवकी स्थितिके अन्तरालमें अङ्कोंकी सन्दृष्टिकी अपेक्षा १-२-४-१४-२८-९८-१९६ इसप्रकार शलाका कहेंगे उन सर्वशलाकाओंको जोड़नेपर ३४३ शलाका होती है। जैसे साझेके व्यापारमें हिस्से होते हैं उसीप्रकार शलाका भी जानना। एकेन्द्रियजीवके पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्थितिके विकल्प कहे उनमें ३४३ का भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने एकशलाकामें स्थितिके विकल्प जानना। इनको अपनी-अपनी शलाकाके प्रमाणसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी स्थितिके भेदोंका प्रमाण निकलता है। इसीको त्रैराशिकद्वारा कहते हैं—

३४३ शलाकामें एकेन्द्रियजीवसम्बन्धी मिथ्यात्वके सर्वभेद पल्यके असंख्यातवें-भागप्रमाण पाए जाते हैं तो १९६ शलाकाओंमें कितने भेद होगें? यहां प्रमाणराशि ३४३ शलाका, फलराशि एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण (पल्यके असख्यातवेंभागमात्र), इच्छाराशि १९६ है। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करनेपर तथा प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतने बादरपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिसे सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद जानने। यह स्थितिभेदोंका प्रमाण, बादरपर्याप्तके उत्कृष्टस्थितिबन्धके अन्तरालमें जितने स्थितिके भेद हैं, उनके समान हैं। इस अन्तरालकी १९६ शलाका जानना चाहिए तथा इस अन्तरालमें स्थितिभेदों का जितना प्रमाण कहा उसमेंसे एक घटानेपर जो कालप्रमाण प्राप्त हो उसे एकसागर (बादरपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थिति) में से घटानेपर सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है।

प्रमाणराशि ३४३ शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिभेदोंका प्रमाण (पल्यका असख्यातवां भाग), इच्छाराशि २८ शलाका हैं। फलराशिको इच्छा-राशिसे गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आया वह सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिसे बादरअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। इस अन्तरालमें २८ शलाकाएं जाननी चाहिए। ये जितने भेद हैं उतने समय सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिमेंसे घटानेपर बादरअपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है।

प्रमाणराशि ३४३ शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सर्व-भेद (पल्य का असंख्यातवांभाग) और इच्छाराशिरूप शलाका चार, इनमें फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने बादर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिसे सूक्ष्मअपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद जानने। इस अन्तरालकी चार शलाकाएं हैं ये जितने भेद हुए उतने समय बादर-अपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थिति बन्धमेंसे घटानेपर सूक्ष्मअपर्याप्तका उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है।

प्रमाणराशि ३४३, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सर्वभेदोंका प्रमाण (पल्यका असंख्यातवांभाग), इच्छाराशि शलाकाएक। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह सूक्ष्मअपर्याप्तकी उत्कृष्ट-स्थितिसे लेकर सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद हैं। इस अन्तरालकी एकशलाका है। ये जितने भेद हुए उतनेसमय सूक्ष्मअपर्याप्तकको उत्कृष्टस्थितिमें से घटानेपर सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है।

प्रमाणराशि शलाका ३४३, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदों-का प्रमाण (पल्यका असंख्यातवांभाग), इच्छाराशिशलाका २, यहां फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने सूक्ष्म-अपर्याप्तके जघन्यस्थितिसे बादरअपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद जानने। इस अन्तरालकी दो शलाका होती हैं। ये जितने भेद हुए उतनेसमय सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिमेंसे घटानेपर बादरअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति होती है।

प्रमाणराशि और फलराशि पूर्वोक्त और इच्छाराशि १४। यहां फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने बादर-अपर्याप्तकी जघन्यस्थितिसे सूक्ष्मपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद हैं। इस अन्तरालकी १४ शलाका जाननी। ये जितने भेद हुए उतनेसमय बादरअपर्याप्तकी जघन्यस्थितिमेंसे घटानेपर सूक्ष्मपर्याप्तकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है।

प्रमाण और फलराशि पूर्वोक्त तथा इच्छाराशि ९८। यहां फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने सूक्ष्मपर्याप्तके जघन्यस्थितिसे बादरपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद जानने तथा इसके मध्यकी ९८ शलाका जाननी। ये जितने भेद हुए उतने समय सूक्ष्मपर्याप्तककी जघन्य-स्थितिमें से घटानेपर बादरपर्याप्तकी जघन्यस्थिति होती है। यह जघन्यस्थितिबन्ध जो एकेन्द्रियजीवके कहा था वही जानना। इसप्रकार १४ जीवसमासोंमें एकेन्द्रियमें सूक्ष्म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बादरके पर्याप्त-अपर्याप्तकी अपेक्षा चारजीवसमास हैं इनके जघन्यस्थितिबन्ध और उत्कृष्टस्थितिबन्धके भेदसे आठस्थान हुए इसप्रकार आठस्थानोंमें स्थितिबन्धका प्रमाण कहा। इन आठोंके मध्यवर्ती ७ अन्तरालोंमें स्थितिभेदोंके प्रमाणको जाननेके लिए सात त्रैराशिकका कथन किया।

आबाधाकालका प्रमाण भी इसीप्रकार त्रैराशिकद्वारा निकाल लेना चाहिए। इसीको दिखलाते हैं——

एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधा आवलीके असंख्यातवेंभागअधिक संख्यातआवलीमात्र अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और जघन्यआबाधा केवल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। यहां उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटानेपर एक-एकआबाधामें एक-एकसमय बढ़ता है। अतः एकका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक मिलानेपर एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी आबाधाके सर्वभेदोंका प्रमाण होता है। जिसप्रकार स्थितिबन्धके कथनमें आठस्थान कहे और सातअन्तरालोंमें भेदोंका प्रमाण जाननेके लिए सातत्रैराशिक किए हैं उसी-प्रकार आबाधाके कथनमें भी आठस्थान और सातअन्तरालमें भेदोंका प्रमाण जानने के लिए सातत्रैराशिक करना चाहिए।

यहां प्रमाणराशि तो पूर्वोक्तप्रकार सातों त्रैराशिकमें ३४३ शलाकाप्रमाण जानना और फलराशि एकेन्द्रियके सर्वस्थितिभेदोंका प्रमाण कहा था, किन्तु यहां जघन्यसे लेकर उत्कृष्टपर्यन्त एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी अबाधाके भेदोंका प्रमाण हो उतना अर्थात् आवलीका असंख्यातवांभाग फलराशिका प्रमाण जानना और इच्छाराशि १९६-२८-४-१-२-१४-९८ शलाका प्रमाण अनुक्रमसे जानना। यहां सर्वत्र फलको इच्छासे गुणाकरके प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह अन्तरालमें आबाधाके भेदोंका प्रमाण जानना।

प्रथमत्रैराशिकमें भेदोंका जितना प्रमाण आया उसमेंसे एक घटानेसे जो शेष रहा उतनासमय बादरपर्याप्तकसम्बन्धी उत्कृष्टस्थितिकी उत्कृष्टआबाधामेंसे घटानेपर सूक्ष्मपर्याप्तको उत्कृष्टस्थितिबन्धसम्बन्धी आबाधाकालका प्रमाण होता है।

द्वितीय त्रैराशिकमें भेदोंका जितना प्रमाण आया उतने समय घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिको आबाधाका प्रमाण होता है। इसीप्रकार तृतीयादिक त्रैराशिकमें जितने भेद हों उतने-उतने समय घटानेपर जो स्थितिबन्धका प्रमाण कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

उस-उस बन्धकी आबाधाका प्रमाण जानना। इसप्रकार एकेन्द्रियजीवके स्थितिबन्धका और आबाधाके भेदोंका व कालका प्रमाण कहा। इसीप्रकार द्वीन्द्रियसे असञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियपर्यंन्त आबाधाकालको जान लेना चाहिए।

अब स्थितिशलाकाओंको जाननेके लिये गाथासूत्र कहते हैं—

मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ॥१४६॥

अर्थ—सञ्ज्ञीजीवसम्बन्धी स्थितिके ४ भेदोंको छोड़कर शेष जीवोंकी स्थितिके २४ भेदोंकी जो संख्यास्वरूप शलाकाएं हैं वे मध्यभागमें सबसे स्तोक हैं। मध्यभागसे नीचेकी शलाका संख्यातगुणी तथा इससे भी संख्यातगुणी शलाका मध्यभागसे ऊपरके भागमें है, जिनकी अंकसन्दृष्टि ४-१-२ रूप है। इन तीनोंको जोड़ देनेपर जो लब्ध आवे उससे संख्यातगुणी अधस्तनवर्ती दूसरेभाग और उससे संख्यातगुणी उपरितन-द्वितीयभागमें है। जैसे—

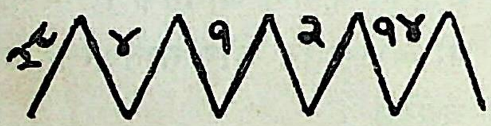

विशेषार्थ—अनेकोंमें विभाजन करनेके लिए परस्परमें अनुपातकी कल्पनाकी गई है उसीका नाम यहां शलाका है। 'मध्य' अर्थात् बादर पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिसे बादरपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त एकेन्द्रियसम्बन्धी सर्वस्थितिके जो भेद हैं उनमें सूक्ष्मअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिसे लेकर एक-एकसमय घटता सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्य-स्थितिपर्यन्त जितने स्थितिके भेद पाए जाते हैं वे, आगे जिनका वर्णन किया जावेगा उनसे स्तोक है अतः उनकी एकशलाका जाननी △१△। त्रिकूटरचनाका अभिप्राय यह है कि जहां △ ऐसी सन्दृष्टि हो वहां स्थितिका कथन जानना। तथा 'हेट्ठा' अर्थात् इसके नीचे सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिसे एक-एकसमय घटता बादरअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त जितने स्थितिके भेद हैं उनकी अधस्तनशलाकाएं जाननी वे शलाकाएं संख्यातगुणी हैं, जिसकी अंकसन्दृष्टि २ है और ऊपर सूक्ष्मअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिके अनन्तर उत्कृष्टस्थितिबन्धसे लेकर एक-एक बढ़ती हुई बादरअपर्याप्तकके उत्कृष्ट-स्थितिबन्धपर्यन्त स्थितिके जितने भेद हैं वे उनकी उपरितनशलाका जाननी ये संख्यात-गुणी हैं तथा उनकी अङ्कसन्दृष्टि ४ हैं। इसप्रकार संख्यातगुणा अनुक्रम कहा। संख्यात का प्रमाण तो यथायोग्य है, किन्तु यहां समझनेके लिए संख्यातकी सन्दृष्टि २ का अङ्क

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानना। एकके दुगने दो अतः नीचे दोशलाका और २ के दूने चार इसलिये ऊपरकी चारशलाका जाननी △४△१△२। 'सर्वयुतिः' अर्थात् पहले जो शलाका कही थीं उनको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे 'हेट्ठा' अर्थात् नीचे बादरअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिसे लेकर एक-एकसमय घटता सूक्ष्मपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेदोंकी अधस्तन-शलाका संख्यातगुणी जाननी, इसकी अङ्कसन्दृष्टि १४ जानना और ऊपर बादरअपर्याप्तक-की उत्कृष्टस्थितिसे लेकर एक-एकसमय बढ़ते हुए सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेदोंकी उपरितनशलाका संख्यातगुणी जाननी इसकी अङ्कसन्दृष्टि २८ है। पहलीशलाका ४+१+२ को जोड़ देनेपर ७ हुआ, इसको संख्यातकी सहनानी २ से गुणा करनेपर नीचे तो १४ शलाका हुईं और इसको संख्यातकी सहनानी २ से पुनः गुणा करे तो उपरितनशलाका २८ होती हैं। △२८△४△१△२△१४।

'चकार' से फिर भी 'सर्वयुतिः' अर्थात् पहलीशलाकाओंको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे 'हेट्ठा' अर्थात् सूक्ष्मपर्याप्तकी जघन्यस्थितिसे लेकर एक-एकसमय कम बादरपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेदोंकी अधस्तनशलाका संख्यातगुणी हैं, इनकी सहनानी ९८ है और ऊपर सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिसे लेकर एक-एक समय बढ़ते हुए बादरपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेदोंकी उपरितनशलाका संख्यातगुणी है इसकी सहनानी १९६ है। पहलेकी शलाका २८+४+१+२+१४ इनको जोड़ने पर ४९ होते हैं इनको संख्यातकी सहनानी २ से गुणा करनेपर ४९×२=९८ ये अधस्तनशलाका हैं। इनको संख्यातकी सहनानी २ से गुणा करनेपर १९६ उपरितनशलाकाका प्रमाण है। △१९६△२८△४△२△१△१४△९८△ इसीप्रकार मध्यवर्ती तीनभेदोंके समान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियोंके भी जानना उनकी सहनानी ४-१-२ रूप है।

आगे सञ्ज्ञीजीवोंकी स्थितिके चारभेदोंमें कुछ विशेषता दिखाते हैं—

सण्णिस्स हु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं।
ठिदिआयामोवि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा ॥१५०॥

अर्थ—सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके चारभेदोंमें नीचेसे लेकर अर्थात् सञ्ज्ञीपर्याप्तके जघन्यस्थितिबन्धसे ऊपर-ऊपर चतुर्थभेदपर्यन्त स्थितिके स्थान (भेदोंका प्रमाण) संख्यातगुणा क्रमसे जानना और स्थितिआयाम (समयोंका प्रमाण) भी संख्यातगुणा है तथा आबाधाकालका प्रमाण स्थितिस्थानोंके समान ही समझना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—जिसप्रकार स्थितिस्थान और स्थितिआयामका प्रमाण बहुभाग और एकभागके हिसाबसे निकाला जाता है उसीप्रकारसे आबाधाका प्रमाण भी निकालना चाहिए।

सञ्ज्ञीजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है अर्थात् दोबार संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे, उतने प्रमाण है तथा जघन्य-स्थिति मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा अन्त:कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है अर्थात् एकबार संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे, उतनेप्रमाण है। उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटाकर एक-एकभेदोंमें से एक-एकसमयकी वृद्धि होती है। अतः एकका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर सञ्ज्ञीके मिथ्यात्वकी स्थितिके सर्वभेदोंका प्रमाण होता है। इसमें संख्यातका भाग देकर लब्धमेंसे एकभाग पृथक्कर शेष बहुभागमात्र सञ्ज्ञीपर्याप्तक के उत्कृष्टस्थितिबन्धसे सञ्ज्ञीअपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्त स्थितिभेदोंका प्रमाण है। इनमेंसे एककम करनेपर जो प्रमाण रहा उतनेसमय सञ्ज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थिति ७० कोड़ाकोड़ीसागरमेंसे घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे वह सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी उत्कृष्ट-स्थिति जाननी तथा जो एकभाग रहा था उसमें संख्यातका भाग देकर एकभागको पृथक् रख शेष बहुभाग सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी उत्कृष्टसे सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी ही जघन्य-स्थितिपर्यन्त स्थितिभेदोंका प्रमाण है। इसप्रमाणको सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति मेंसे घटानेपर सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है तथा जो एकभाग शेष था उतनेप्रमाण सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी जघन्यसे सञ्ज्ञीपर्याप्तककी जघन्यस्थिति-पर्यन्त स्थितिभेदोंका प्रमाण है। इस प्रमाणको सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिमेंसे घटानेपर सञ्ज्ञीपर्याप्तककी जघन्यस्थिति होती है, यह प्रमाण अन्त:कोड़ाकोड़ीसागर-प्रमाण जानना इसप्रकार स्थितिका कथन किया।

अब आबाधाका कथन करते हैं—

आबाधाका कथन अपने-अपने स्थितिस्थानके समान जानना। सञ्ज्ञीजीव-सम्बन्धी मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधा ७ हजारवर्षप्रमाण अर्थात् आवलीको तीनबार संख्यातसे गुणा करे इतनी आवलीप्रमाण है और जघन्यआबाधा एकसमय कम एकमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) प्रमाण अर्थात् दोबार संख्यातसे गुणित आवलीप्रमाण है। उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटानेपर आबाधाके विकल्प प्राप्त होते हैं। एक-एकभेदमें एक-एकसमय बढ़ता है अतः एकका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर आबाधाके सर्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेदोंका प्रमाण होता है। इसप्रकार स्थितिके भेदोंमें संख्यातका भागदेकर बहुभाग और बहुभागसे एकभागपर्यन्त भेद कहे उसीप्रकार आबाधाके भेदोंको संख्यातका भाग देकर बहुभाग और बहुभागसे एकभागपर्यन्त तीनों अन्तरालोंमें भेदोंका प्रमाण जानना तथा जिसप्रकार स्थितिके भेदोंमेंसे समय-समय घटानेसे स्थितिका प्रमाण कहा उसीप्रकार यहां आबाधाके भेदोंमेंसे समय-समय घटाकर स्थितिसम्बन्धी आबाधाओंका प्रमाण जानना। इसप्रकार सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके विषयमें विशेषकथन किया गया।

अथानन्तर जघन्यस्थितिबन्धके स्वामी बताते हैं—

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरापुव्वो।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा ॥१५१॥

अर्थ—पांचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण, पांचअन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीयका जघन्यस्थितिबन्ध क्षपकश्रेणीमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीवके होता है। पुरुषवेद एवं सञ्ज्वलनकषायचतुष्कका जघन्यस्थितिबन्ध क्षपकअनिवृत्तिकरण-गुणस्थानवर्तीजीवके होता है। तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका जघन्यस्थितिबन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवके होता है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्गका जघन्यस्थितिबन्ध असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय-जीवके होता है। आयुकर्मकी प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध सञ्ज्ञी अथवा असञ्ज्ञी-जीवके होता है।

आगे जघन्यादिरूप स्थितिके भेदोंमें जो सादि इत्यादिक भेद हैं उनको मूल प्रकृतियोंमें कहते हैं—

अजहण्णट्ठिदिबंधो चउव्विहो सत्तमूलपयडीणं।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥१५२॥

अर्थ—आयुकर्मके बिना सात मूलकर्मोंका अजघन्यस्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेदसे चार प्रकारका है तथा आयुकर्मके बिना शेष सात मूलकर्मोंका उत्कृष्ट, अनुकृष्ट और जघन्यस्थितिबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो-प्रकारका ही है। आयुकर्मका चारों ही प्रकारका स्थितिबन्ध सादि, अध्रुवके भेदसे दो प्रकारका ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—आयुकर्मके अतिरिक्त शेष सात कर्मोंका जघन्यस्थितिबन्ध क्षपक-श्रेणिमें होता है और उपशमश्रेणिमें अजघन्यस्थितिबन्ध होता है, किन्तु उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें कषायोदयका अभाव होनेसे स्थितिबन्ध नहीं होता। वहांसे गिरने पर पुनः अजघन्यस्थितिबन्ध होने लगता है। इसप्रकार अजघन्यस्थितिबन्ध सादि है तथैव वेदनीयकर्मका अजघन्यस्थितिबन्ध सादि है।

व्यवहारराशिस्थ जीवोंमें बन्धरूप मूलप्रकृतिके स्थितिबन्धकी अपेक्षा सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेदोंकी सन्दृष्टि—

ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २
अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २
जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २
अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४

नोट—संदृष्टिमें २ का अङ्क सादि-अध्रुव तथा ४ का अङ्क सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव को सूचित करता है।

अब उत्तरप्रकृतियोंमें विशेषता कहते हैं—

संजलणसुहुमचोद्दस-घादीणं चदुविधो दु अजहण्णो।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधावि दुधा ॥१५३॥

अर्थ—सञ्ज्वलनचतुष्क तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली ज्ञानावरणादि घातियाकर्मोंकी १४, इन १८ प्रकृतियोंका अजघन्यस्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव अध्रुवके भेदसे चारप्रकारका है और जघन्यादि तीनभेदोंके सादि व अध्रुवरूप दो ही भेद हैं शेष १०२ प्रकृतियोंके जघन्यादि चारभेदोंके भी सादि और अध्रुवरूप दो भेद हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धरूप उत्तरप्रकृतियोंके स्थितिबन्धकी अपेक्षा सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेदोंकी सन्दृष्टि---

प्रकृति	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
उत्तरप्रकृति १८	२	२	२	४
उत्तरप्रकृति १०२	२	२	२	२

नोट---सन्दृष्टिमें २ का अङ्क सादि-अध्रुव और ४ का अङ्क सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेदोंको सूचित करता है ।

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणंपि होंति असुहाओ ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥१५४॥

अर्थ---मनुष्य-तिर्यञ्च और देवायुके बिना शेष सर्व शुभ व अशुभप्रकृतियोंकी स्थिति अशुभरूप ही है । अतः इनप्रकृतियोंको बहुकषायीजीवही उत्कृष्टस्थितिके साथ बांधता है एवं अल्पकषायीविशुद्धजीवके अल्पस्थितिके साथ इनप्रकृतियोंका बन्ध होता है ।

विशेषार्थ---तीनआयुके बिना शेष १४५ प्रकृतियोंके स्थितिबन्धमें वृद्धि-हानि संक्लेशपरिणामोंकी वृद्धि-हानि पर निर्भर है । संक्लेश, पाप अथवा अशुभरूप है अतः स्थितिबन्ध भी अशुभरूप है ।

आगे आबाधाका लक्षण कहते हैं---

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ॥१५५॥

अर्थ---कार्मणशरीर नामकर्मके उदयसे योगद्वारा आत्मामें कर्मस्वरूपसे परिणमता हुआ पुद्गलद्रव्य जबतक उदयरूप अथवा उदीरणारूप नहीं हो तावत्पर्यन्त कालको आबाधा (उदयआबाधा या उदीरणआबाधा) कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—उदीरणाआबाधा बन्धावली या अचलावली अर्थात् एकावलीप्रमाण होती है। उदयआबाधा एक कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिबन्धकी १०० वर्ष प्रमाण होती है। बन्धके समय इस उदयआबाधाकालमें निषेकरचना नहीं होती, किन्तु अचलावलीकालके पश्चात् स्थितिअपकर्षण द्वारा इस उदयआबाधाकालमें भी निषेकरचना हो जाती है। इसीलिए उदीरणाकी आबाधा एकआवलीमात्र है।

अब उस आबाधाको मूल प्रकृतियोंमें कहते हैं—

उदयं पडिसत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥१५६॥

अर्थ—एककोड़ाकोड़ीसागरप्रमाणस्थितिकी आबाधा सौवर्षप्रमाण जानना और शेष स्थितियोंकी आबाधा इसीके अनुसार प्रतिभाग अर्थात् त्रैराशिकविधिसे जो-जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी जानना। यह क्रम आयुकर्मके बिना सातकर्मोंकी आबाधाके लिए उदयकी अपेक्षासे है।

विशेषार्थ—एककोड़ाकोड़ीसागर स्थितिकी १०० वर्ष उदयआबाधा है तो ७० कोड़ाकोड़ीसागरस्थितिकी कितनी आबाधा होगी? इसप्रकार त्रैराशिकविधि करनेपर यहां प्रमाणराशि एककोड़ाकोड़ीसागर, फलराशि १०० वर्ष, इच्छाराशि ७० कोड़ाकोड़ीसागर है। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका प्रमाण ७००० वर्ष आया यह मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट उदयआबाधा जानना।

इसीप्रकार अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण इच्छाराशि करने पर अपनी-अपनी उदयआबाधाकालका प्रमाण निकल जाता है। जिन कर्मोंकी ४० कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थिति है उनका ४००० वर्ष प्रमाण आबाधाकाल है तथा जिनकी ३० कोड़ाकोड़ी-सागरस्थिति है उनकी ३००० वर्षकी आबाधा है इसीप्रकार अन्य प्रकृतियोंका भी आबाधाकाल जानना। तथा "सण्णि असण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमबाहा" इससूत्रसे पहले जो द्वीन्द्रियादिकी स्थितिसम्बन्धी आबाधा कही वही जाननी।

आगे अन्तःकोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी उदयआबाधा कहते हैं—

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥१५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अन्तःकोड़ाकोड़ीसागर स्थितिकी उदयआबाधा अन्तर्मुहूर्त है तथा सर्वजघन्यस्थितियोंकी उदयआबाधासे संख्यातगुणी हीन है।

विशेषार्थ—एककोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है, उसके १०,८०,००० मुहूर्त होते हैं। इतने मुहूर्तप्रमाण आबाधा एककोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिकी है तो एकमुहूर्त आबाधा कितनी स्थितिकी होगी?

यहां प्रमाणराशि १०,८०,००० मुहूर्त, फलराशि १ कोड़ाकोड़ीसागर और इच्छाराशि १ मुहूर्त है। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर ९०,२५,९२,५९२ ६४/१०८ सागरप्रमाण स्थितिमें १ मुहूर्तकी आबाधा होती है। इसीप्रकार एकसागरकी स्थितिआबाधा संख्यातउच्छ्वास मात्र होती है।

अथानन्तर आयुकर्मकी आबाधा कहते हैं—

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेयअद्धवोत्ति हवे।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥१५८॥

अर्थ—आयुकर्मकी आबाधा कोटिपूर्वके तीसरे भागसे असंक्षेपाद्धाप्रमाणपर्यन्त है। आयुकर्मकी आबाधामें प्रतिभाग (त्रैराशिक) का नियम नहीं है।

विशेषार्थ—आयुकर्मकी उत्कृष्टआबाधा कोटिपूर्ववर्षके तीसरेभागप्रमाण तथा जघन्यआबाधा 'असंक्षेपाद्धा' प्रमाण है। यह काल भी आवलीके संख्यातवें[1] भाग-प्रमाण है। अतः आयुकर्मकी आबाधा इसीप्रकार है, अन्यकर्मोंकी स्थितिके समान नहीं है।

शंका—असंख्यातवर्षकी जिनकी आयु है उसके त्रिभागप्रमाण आबाधा क्यों नहीं कहीं?

समाधान—असंख्यातवर्ष की आयुवाले ऐसे देव-नारकी और भोगभूमिजकी तो ६ माह आयु शेष रहनेपर आयुका बन्ध होता है तथा कर्मभूमिजमनुष्य-तिर्यञ्चके अपनी सम्पूर्ण आयुके अन्तिम त्रिभागमें आयु बंधती है। कर्मभूमिजकी उत्कृष्टआयु कोटिपूर्ववर्ष अर्थात् संख्यातवर्षप्रमाण है अतः उसीका त्रिभाग उत्कृष्टआबाधाकाल

---

१. आयुकर्मकी जघन्यआबाधासे संख्यातगुणा क्षुद्रभव कहा है। इससे स्पष्ट है कि असंक्षेपाद्धा आवलीका असंख्यातवांभाग न होकर संख्यातवांभाग है। (धवल पु० ११ पृ० २६९, २७३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा। त्रिभागके आठ अपकर्षकालोंमें आयुका बन्ध हो सकता है, कदाचित् आठों-अपकर्षोंमें आयुका बन्ध नहीं हुआ तो अन्तमुहूर्तप्रमाण आयुके अवशेष रहनेपर उत्तर-भवकी आयुको अन्तर्मुहूर्तकालके समयप्रबद्धमें बांधकर निष्ठापन करते हैं तथा असंक्षेपाद्धाकालपर्यन्त विश्राम करते हैं उसके पश्चात् मरण होता है।

आगे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा कहते हैं—

आवलियं आबाहा उदिरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥१५६॥

अर्थ—उदीरणाकी अपेक्षा सातकर्मोंकी आबाधा एकआवलीमात्र है और परभवसम्बन्धी बध्यमानआयुकी उदीरणा नियमसे नहीं होती।

विशेषार्थ—जो कर्म बंधता है वह एकआवली (अचलावली) प्रमाण कालतक उदय अथवा उदीरणारूप नहीं होता, आबाधाकालके व्यतीत होनेपर ही उदयरूप होता है। जो कर्म उदीरणारूप होता है वह बन्धके पश्चात् एकआवलीप्रमाण कालके व्यतीत होनेपर उदीरणारूप होता है अतः उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा एकआवलीप्रमाण है। कर्मभूमिज मनुष्य व तिर्यञ्चोंके भुज्यमानआयुकी उदीरणा होती है। बध्यमान अर्थात् आगामीभव सम्बन्धी आयुकी उदीरणा नियमसे नहीं होती, उसका तो अपवर्तनघात होता है।

कर्म आवलीप्रमाण कालपर्यन्त तो जैसे बधे हैं, वैसेही रहते हैं। उदय, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदीरणारूप नहीं होते इसलिए इस आवलीको अचलावली कहते हैं, उस आवलिको छोड़कर पश्चात् उदयरूप प्रकृतियोंके उदयावलीसे उपरितन स्थितियोंके कर्मपरमाणुओंके समुदायमेंसे कितनेही कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण करके उदयावलीमें लाता है जो आवलिकालमें उदय होकर खिर जाते हैं यही उदीरणा है और जो उपरितनस्थितिमें दिये हैं वे ऊपरकी स्थितिके अनुसार खिरते हैं तथा अन्तिम आवलीप्रमाण अतिस्थापनावलीको छोड़कर जो कर्मपरमाणु हैं वे नानागुणहानि-रूप सभी निषेकोंमें खिरते हैं।

उदयावलीको प्राप्त उदीरणाद्रव्य किसप्रकार खिरता है उसे कहते हैं—

अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेय भागहारेण मज्झिमधणमवहरदे पचयं तं दो गुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं तत्तो विसेसहीणकमं................।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चयको दोगुणहानि प्रमाणसे गुणा करनेपर आदिनिषेकमें दिये जानेवाले द्रव्यका प्रमाण प्राप्त होता है। द्वितीयादिक समयसम्बन्धी निक्षिप्तद्रव्य एक-एक चयप्रमाण कम है, इन सभीका विशेषस्वरूप गाथा १६२ के विशेषार्थसे जानना चाहिए।

उदयरूप प्रकृतिके अपकर्षणका चित्र

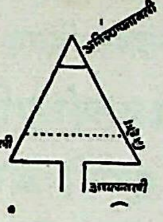

अथानन्तर निषेकका लक्षण कहते हैं—

आबाहूणियकम्मट्ठिदि णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥१६०॥

अर्थ—अपनी-अपनी कर्मस्थितिमेंसे आबाधाकालको घटानेसे जो काल शेष रहे उसकालके समयोंका प्रमाण आयुबिना सातकर्मोंके निषेक हैं। आयुकर्मके निषेक अपनी स्थितिप्रमाण होते हैं ऐसा नियमसे जानना।

विशेषार्थ—आयुबिना सातकर्मोंकी निषेकरचना आबाधाके बिना कर्मस्थिति प्रमाण जानना। प्रतिसमय जो कर्मपरमाणुओंका समूह है वह एक निषेक है। इसप्रकार विवक्षितकर्मकी जितनी स्थिति बंधी है उसमें से आबाधाकालको घटानेपर जो काल शेष रहे उसके समयोंका जो प्रमाण हो वही निषेकोंका प्रमाण जानना। इसप्रकार सातकर्मोंकी निषेकरचना जानना तथा आयुकर्मको जितनी स्थिति हो वही निषेकोंका प्रमाण जानना। यहां आबाधा नहीं घटाना, क्योंकि आयुकर्मकी आबाधा तो पूर्वभवमें हो पूर्ण होगई पीछे जो पर्याय धारण की वहां आयुकर्मकी स्थितिके जितनेसमय हैं उन सर्वसमयोंमें पहलेसमयसे अन्तसमय पर्यन्त प्रतिसमय एक-एक निषेक क्रमसे खिरते हैं अतः आयुकर्मकी जितनी स्थिति हो उतने समयोंका जो प्रमाण वही आयुकर्मके निषेकोंका प्रमाण जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब निषेकोंका क्रम कहते हैं—

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु ।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥१६१॥

अर्थ—आबाधाकालको छोड़कर जो अनन्तर समय है वह प्रथमगुणहानिका प्रथमनिषेक है उसमें बहुत द्रव्य दिया जाता है और दूसरे निषेकसे दूसरीगुणहानिके प्रथमनिषेकपर्यन्त चयरूप हीनक्रमसे द्रव्य दिया जाता है ।

बिदिये बिदयणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणि अद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ॥१६२॥

अर्थ—द्वितीयगुणहानिके दूसरेनिषेकमें प्रथमगुणहानिके चयसे आधा चयरूप हानि होती है । इसीप्रकार प्रत्येकगुणहानिमें आधा-आधा चय प्रमाण घटता द्रव्य जानना ।

विशेषार्थ—गाथोक्त बातको अङ्कसन्दृष्टिद्वारा स्पष्ट करते हैं कि विवक्षित कर्मके परमाणु ६३००, आबाधाको छोड़कर स्थितिका प्रमाण ४८ समय, एक गुणहानि-आयाम ८ समय, सर्वस्थितिमें नानागुणहानि ६, दोगुणहानि १६ और अन्योन्याभ्यस्त-राशि ६४ है । इनमेंसे प्रथमगुणहानिमें ३२०० परमाणु तथा द्वितीयादिक गुणहानियों में आधे-आधे परमाणु हैं । जैसे—३२००, १६००, ८००, ४००, २०० और १०० । एककम अन्योन्याभ्यस्तराशि (६४—१=६३) का सर्वद्रव्य (६३००) में भाग देनेपर अन्तिमगुणहानिके (६३००÷६३=१००) परमाणु प्राप्त होते हैं, इससे दूने-दूने परमाणु (द्रव्य) आदिकी गुणहानिपर्यन्त जानना तथा प्रथमगुणहानिके सर्वद्रव्य ३२०० में प्रथमगुणहानिके गच्छ ८ का भाग देनेपर ३२००÷८=४०० आए यह मध्यधन है इसमें एककम गच्छके आधेप्रमाण ३½ को निषेकभागहार १६ में से घटानेपर (१६—३½) १२½ शेष रहे, इसका भाग देनेपर (४००÷१२½)=३२ आए यह चयका प्रमाण है । इसको दोगुणहानि (१६) से गुणाकरनेसे ३२×१६=५१२ हुए सो यह प्रथमनिषेकका द्रव्य जानना । इससे एक-एकचय घटानेपर द्वितीयादि निषेक-सम्बन्धी द्रव्य होता है । ५१२-४८०-४४८-४१६-३८४-३५२-३२०-२८८ । २८८ में से एकचय (३२) कम करनेपर (२८८—३२) २५६ होते हैं सो यह प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकसे आधा प्रमाण हुआ, इसको द्वितीयगुणहानिका प्रथमनिषेक जानना । यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हानिरूप चयका प्रमाण पहलेसे आधे (१६) को तृतीयगुणहानिके प्रथमनिषेकपर्यन्त घटाना। २५६-२४०-२२४-२०८-१९२-१७६-१६० और १४४। १४४ मेंसे एकचय (१६) घटानेपर १२८ आया सो यह द्वितीयगुणहानिके प्रथमनिषेकसे आधा हुआ और यह तृतीयगुणहानिका प्रथमनिषेक है। यहां चयका प्रमाण आधा (८) जानना। इसप्रकार अन्तिमगुणहानिपर्यन्त सर्वधनका, निषेकोंमें द्रव्यका तथा चयका आधा-आधा प्रमाण जानना। इस अनुक्रमसे सर्वद्रव्य ६३०० परमाणुओंकी निषेक रचना होती है। इसप्रकार इस दृष्टान्तसे यथायोग्य सर्व कर्मनिषेकोंमें कथन जानना।

बन्धके समय यह समयप्रबद्धकी निषेकरचनाका दृष्टान्त है। पश्चात् उत्कर्षण, अपकर्षण और संक्रमणके द्वारा उन निषेकपरमाणुओंकी संख्यामें हीनाधिकता हो जाती है। बन्धके समय जितने परमाणुओंका एक निषेक बना था उतने ही परमाणु खिरें ऐसा कोई नियम नहीं है।

चय निकालनेकी विधि--

निषेकहारमें एकअधिक गुणहानिआयामका प्रमाण जोड़कर आधा करनेसे जो लब्ध आवे उसको गुणहानिआयामसे गुणा करे। इसप्रकार गुणा करने से जो गुणनफल होता है उसका भाग विवक्षितगुणहानिके द्रव्यमें देनेसे विवक्षितगुणहानिके चयका प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे—

निषेकहार (१६) में एक अधिक गुणहानिआयाम (९) जोड़नेसे २५ हुए, २५ के आधे १२½ को गुणहानिआयाम ८ से गुणा करनेसे १०० होते हैं, इस १०० का भाग विवक्षित प्रथमगुणहानिके द्रव्य ३२०० में देनेसे प्रथमगुणहानिसम्बन्धी चयका प्रमाण प्राप्त होता है। इसीप्रकार द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी चयका प्रमाण १६, तृतीयका ८, चतुर्थका ४, पञ्चमका २ और अन्तिम गुणहानिका १ चय जानना।

चयका निषेकहारमें गुणा करनेसे प्रथमनिषेकके परमाणुंकी संख्या प्राप्त होती है। अर्थात् चय ३२ × १६ निषेक=५१२, यह संख्या प्रथमनिषेकद्रव्यकी है। दूसरेसमयमें ४८०, तीसरेसमयमें ४४८, चतुर्थसमयमें ४१६, पांचवेंसमयमें ३८४, छठेसमयमें ३५२, सातवें समयमें ३२०, आठवेंसमयमें २८८ ये सर्व मिलकर ३२०० हुए एकसमयके परमाणुसमूहको निषेक कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषेकरचनासम्बन्धी सन्दृष्टि—

समय	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
अष्टम	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठ	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
पञ्चम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
सर्व ८ समय	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

॥ इति स्थितिबन्धप्रकरण सम्पूर्ण ॥

॥ अथ अनुभागबन्धप्रकरण ॥

अब अनुभागबन्धको २२ गाथाओंसे कहते हैं—

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१६३॥

अर्थ—साातावेदनीयादि शुभप्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्ध-परिणामोंसे होता है और असातावेदनीयादि अशुभ (पाप) प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संक्लेशपरिणामोंसे होता है तथा इनसे विपरीत परिणामोंसे जघन्यअनुभाग-बन्ध होता है अर्थात् शुभप्रकृतियोंका संक्लेशपरिणामोंसे और अशुभप्रकृतियोंका विशुद्धपरिणामोसे जघन्यअनुभागबन्ध होता है । इसप्रकार सभीप्रकृतियोंका अनुभाग-बन्ध जानना । मन्दकषायरूप तो विशुद्धपरिणाम तथा तीव्रकषायरूप संक्लेशपरिणाम होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे उत्कृष्टअनुभागबन्धके स्वामी कहते हैं—

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ।
वासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कड संकिलिट्ठस्स ॥१६४॥

अर्थ—पूर्वकथित ४२ पुण्यप्रकृतियोंका तीव्रअनुभागबन्ध विशुद्धतारूप उत्कृष्ट-परिणामवाले जीवके होता है और असातादि ८२ अशुभप्रकृतियोंका उत्कृष्टअनुभाग-बन्ध तीव्रसंक्लेशपरिणामवाले मिथ्यादृष्टिजीवके होता है।

यहां वर्णादिचारप्रकृतियोंको प्रशस्तप्रकृतियोंमें भी लिया गया है और अप्रशस्त में भो गिना गया है। इसकारण बन्धयोग्य प्रकृतियां १२० की बजाय १२०+४=१२४ हो जाती हैं।

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्मादिट्ठिस्स सेसाओ ॥१६५॥

अर्थ—उक्त ४२ प्रकृतियोंमेंसे आतप, उद्योत, मनुष्यायु व तिर्यञ्चायुका तीव्रअनुभागबन्ध विशुद्धमिथ्यादृष्टिके होता है तथा अवशेष ३८ प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध विशुद्धसम्यग्दृष्टिके होता है।

मणुओरालदुवज्जं विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसबत्तीसा ॥१६६॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टिके जिन ३८ प्रकृतियोंका तीव्र (उत्कृष्ट) अनुभागबन्ध कहा था उनमेंसे मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभ-नाराचसंहननका तीव्र अनुभागसहित बन्ध अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेके लिए विशुद्धपरिणामी असंयतसम्यग्दृष्टिदेव-नारकीजीव जब तीनकरण करता है तब उनमेंसे अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयमें करता है तथा देवायुको तीव्रअनुभागसहित अप्रमत्त-गुणस्थानवर्तीजीव बांधता है। अवशेष ३२ प्रकृतियोंको तीव्रअनुभागसहित क्षपकश्रेणी-वालाजीव बांधता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उन ३२ प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

उवघादहीणतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे ।
संमेलिदे हवंति हु खवगस्सऽवसेसबत्तीसा ॥१६७॥

अर्थ—अपूर्वकरणके ६ठे भागमें ३० प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है उसमेंसे एक उपघातप्रकृतिबिना शेष २९ और उच्चगोत्र, यशस्कीर्ति तथा सातावेदनीय ये सर्व (२९+३) ३२ प्रकृतियां क्षपकश्रेणीवालेके पूर्वमें कहीं सो जानना ।

मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिये ।
एइंदियआदावं थावरणामं च सुरमिच्छे ॥१६८॥

अर्थ—८२ अप्रशस्त और आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु इन ८६ प्रकृतियोंका तीव्रअनुभागसहित बन्ध मिथ्यादृष्टिजीवके होता है, उनमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियोंमेंसे सूक्ष्मादि अन्तिम ९ प्रकृतियोंका तीव्रअनुभागबन्ध संक्लेशपरिणामवाले मिथ्यादृष्टिमनुष्य व तिर्यञ्च करते हैं और मन्दकषायवालेमनुष्य व तिर्यञ्च मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायुके तीव्रअनुभागको बांधते हैं । आयुके अन्तिम छह महीनेमें मिथ्यादृष्टिदेव संक्लेशपरिणामोंसे एकेन्द्रिय और स्थावरप्रकृतिका तीव्रअनुभागबन्ध करता है एवं विशुद्धपरिणामोंसे आतपप्रकृतिका तीव्रअनुभागबन्ध करता है ।

नोट—महाबन्ध पु. ४ पृ. १८९ पर आतपके उत्कृष्टअनुभागबन्धके स्वामी मनुष्य, तिर्यञ्च और देव इन तीनोंको कहा है ।

उज्जोवो तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ॥१६९॥

अर्थ—तमस्तमनामक सप्तमनरकमें उपशमसम्यक्त्वके सम्मुख हुआ विशुद्धमिथ्यादृष्टि जीव उद्योतप्रकृतिको तीव्रअनुभागसहित बांधता है, क्योंकि अतिविशुद्धतामें उद्योतप्रकृतिका बन्ध नहीं होता है । असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीको तीव्रअनुभागसहित तीव्रसंक्लेशपरिणामवाले मिथ्यादृष्टिदेव, नारकी बांधते हैं तथा अवशिष्ट ६८ प्रकृतियोंको तीव्रअनुभागसहित चारोंगतिके संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिजीव बांधते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—गाथा १६४ से १६९ तक उत्कृष्टअनुभागबन्धके स्वामी बताए हैं उसका विशेष कथन इसप्रकार है—

पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पांच नोकषाय, हुण्डकसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र और पांच अन्तराय इन प्रकृतियों के उत्कृष्टअनुभागबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय, सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टि, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्टसक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका जीव है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च-गोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी क्षपकसूक्ष्मसाम्परायसंयत और अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान है, किन्तु विशेषता इतनी है कि यह तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाले जीवके कहना चाहिए। नरकायु, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य या सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीव है। तिर्यञ्च व मनुष्यायु के सम्बन्धमें भी यही कथन है, किन्तु विशेषता इतनी है कि यहां तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला जीव कहना चाहिए। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर अप्रमत्त-संयत जीव है। नरकगति व नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सञ्ज्ञी सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार-जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य या पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीव है। मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सम्यग्दृष्टि साकार, जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी जीव मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक-अङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, आहारकअङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्ण-चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुस्वर, सुभग और अनादेय, निर्माण व तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी अन्यतर क्षपकअपूर्वकरण जो परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंका अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला है वह जीव है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि, साकार–जागृत, नियमसे उत्कृष्टसंक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सौधर्म और ऐशानकल्पकादेव है। आतपप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सञ्ज्ञी, साकार, जागृत तत्प्रायोग्य-विशुद्धपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका जीव है। उद्योतप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि, सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार–जागृत, सर्वविशुद्ध, तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सप्तमपृथ्वीका नारकी जीव है।[1]

अब जघन्यअनुभागबन्धके स्वामी कहते हैं—

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं।
तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेद ठाणम्हि ॥१७०॥

अर्थ—अशुभवर्णादि चार, उपघात, ज्ञानावरणादि ५, अन्तराय ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, सञ्ज्वलनकी ४ कषाय इन ३० प्रकृतियोंकी जहां-जहां बन्धव्युच्छित्ति होती है, वहां क्षपकश्रेणीवालेके जघन्यअनुभाग-बन्ध होता है।

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोधादी।
देसे तदिय कसाया संजमगुणपच्छिदे सोलं ॥१७१॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धीकी चार कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन और मिथ्यात्व ये आठ प्रकृति मिथ्यात्वगुणस्थानमें, अप्रत्याख्यानकी चार कषाय असंयतमें, प्रत्याख्यानकी चार कषाय देशसंयतमें। इस प्रकार इन गुणस्थानोंमें ये १६ प्रकृतियां संयमगुणको

१. महाबन्ध पु. ४ पृ. १८८–१८९ पेरा नं० ४०९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धारण करनेके सम्मुख हुआ है अर्थात् तदन्तरसमयमें संयमको प्राप्त करेगा ऐसा विशुद्ध परिणामी जघन्यअनुभागसहित बांधता है।

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धे य अरदिसोगाणं ।
णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वछक्काओ ॥१७२॥

अर्थ—आहारकशरीर व आहारकअङ्गोपाङ्ग इन दो शुभप्रकृतियोंको प्रमत्तगुणस्थानके सम्मुख हुआ सक्लेशपरिणामवाला अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव जघन्य-अनुभागसहित बांधता है। अरति और शोकको तत्प्रायोग्यविशुद्ध प्रमत्तगुणस्थानवर्ती-जीव जघन्यअनुभागसहित बांधता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरन्द्रिय, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियकद्विका जघन्यअनुभागसहित बन्ध मनुष्य व तिर्यञ्च करता है।

नोट——देवायु व नरकायुका बन्ध मनुष्य व तिर्यञ्च करता है तथा तिर्यञ्च व मनुष्यायुका बन्ध लब्ध्यपर्याप्तक करता है।

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं ।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ॥१७३॥

अर्थ—उद्योत और औदारिकद्विक जघन्यअनुभागसहित संक्लिष्टदेव और नारकीके बंधती है। इनमेंसे उद्योत प्रकृतिका बन्ध अतिविशुद्धपरिणामीदेवोंके नहीं होता अत: संक्लेशपरिणामीके ही जघन्यअनुभागसहित बंधती है इसीकारण उद्योत-प्रकृति प्रशस्त है। सप्तमनरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख विशुद्धनारकीके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रप्रकृति जघन्यअनुभागसहित बंधती है। स्थावर व एकेन्द्रियका जघन्यअनुभागबन्ध नरकबिना शेष तीनगतिवाले तीव्रविशुद्ध व संक्लेश-रहित मध्यमपरिणामीजीव करते हैं।

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्हि ।
चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये ॥१७४॥

अर्थ——आतपप्रकृति जघन्यअनुभागसहित भवनत्रिक और सौधर्मयुगलवाले संक्लेशपरिणामीदेवोंके बंधती है। तीर्थङ्करप्रकृति द्वितीय या तृतीयनरक जानेके सम्मुख तथा मिथ्यात्वके सम्मुख असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यके जघन्यअनुभागसहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंधती है तथा १५ प्रकृतियां चारोंगतिके संक्लेशीजीवोंके एवं दो प्रकृतियां चारोंगतिके विशुद्धपरिणामीजीवोंके जघन्यअनुभागसहित बधती हैं।

अब उन १५ और २ प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये ॥१७५॥

अर्थ—परघात, उछ्वास, तैजस, कार्मण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभरूप वर्णचतुष्क, निर्माण, पञ्चेन्द्रिय, अगुरुलघु ये १५ प्रशस्त प्रकृतियां चारोंगति सम्बन्धी संक्लिष्ट जीवोंके तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदरूप दो अप्रशस्तप्रकृतियां चारोंगतिके विशुद्धपरिणामी जीव जघन्यअनुभागसहित बांधते हैं।

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियत्तमज्झिमो य जदि।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छादिट्ठी दु तेवीसं ॥१७६॥

अर्थ—आगे गाथासूत्रमें वक्ष्यमाण जो ३१ प्रकृतियां हैं उनमेंसे प्रथम आठ प्रकृतियोंको अपरिवर्तमान मध्यमपरिणामी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टिजीव जघन्य-अनुभागसहित बांधता है और शेष २३ प्रकृतियोंको परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टिजीव ही जघन्यअनुभागसहित बांधता है।

अथानन्तर उन ३१ प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ॥१७७॥

अर्थ—स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, सातावेदनीय व असातावेदनीय ये आठ प्रकृति परिवर्तमान[1] मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि-जीवके तथा उच्चगोत्र, ६ संस्थान, ६ संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति व देवगत्यानुपूर्वी, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय ये २३ प्रकृतियां परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टिजीवके जघन्यअनुभागसहित बंधती हैं। इसप्रकार जघन्यअनुभागसहित बंधनेवाली ये ३१ प्रकृतियां हैं।[2]

१. महाबन्ध पु० ४ पृ० ११२ पर भी परिवर्तमान है, जो उचित है।
२. गाथा १७० से १७७ सम्बन्धी विशेष कथन महाबन्ध पु० ४ पृ० २१२-२१५ पर देखना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—परिवर्तमानमध्यमपरिणाम और अपरिवर्तमानमध्यमपरिणामका लक्षण कहते हैं—

अणुसमयं केवलं वट्टमाणा हीयमाणा च जे संकिलेस्सविसोहिपरिणामा ते अपरियत्तमाणा णाम। जेत्थ पुण ठाविदूण परिणामंतरं गंतूणं एगहोदि आगमणं संभवदि ते परियत्तमाण णाम। तत्थ उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णा तिविहा परिणामा ण तत्थ सव्व विसुद्धपरिणामेहिं य जहण्णो अणुभागो होदि। अप्पसत्थपयडीण अणुभागदो अणंतगुणपसत्थपयडी अणुभागस्स अणंतगुणवड्ढिप्पसंगादो ण सव्वसंकिलेट्ठपरिणामेहिं य तिव्वसंकिलेस्सेण असुहाणं पयडीणं अणुभागवड्ढिप्पसंगादो तम्हा जहण्णुक्कस्सपरिणाम-णिराकट्ठुं परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहित्ति उत्तं।

अर्थात् जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धिसे प्रतिसमय बढ़ते ही जावें या घटते ही जावें पुनः पूर्वावस्थाको प्राप्त न हों उन्हें अपरिवर्तमानपरिणाम कहते हैं तथा जो परिणाम एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको प्राप्त होकर पुनः पूर्वावस्थाको प्राप्त हो सकें वे परिवर्तमानपरिणाम हैं।

उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेदसे परिणाम तीन प्रकारके हैं। यहां सर्वोत्कृष्ट विशुद्धपरिणामों से जघन्यअनुभागबन्ध नहीं होता, क्योंकि अप्रशस्त-प्रकृतियोंके अनुभागसे अनन्तगुणा अनुभाग प्रशस्तप्रकृतियोंका है। यहां अनन्तगुणीवृद्धिका प्रसङ्ग है। (सर्वोत्कृष्टविशुद्धपरिणामोंसे शुभप्रकृतियोंका उत्कृष्टअनुभागबन्ध होता है, किन्तु यहां जघन्यअनुभागबन्धका कथन है अतः सर्वोत्कृष्टविशुद्धपरिणामोंका ग्रहण नहीं करना तथा सर्वोत्कृष्टपरिणामोंसे भी जघन्यअनुभागबन्ध नहीं होता, क्योंकि तीव्रसंक्लेशसे अशुभप्रकृतियोंकाअनुभाग वृद्धिरूप होता है। यहां जघन्यअनुभागका कथन होनेसे सर्वोत्कृष्टसंक्लेशपरिणामोंका भी ग्रहण नहीं करना।) इसप्रकार जघन्य अथवा उत्कृष्ट परिणामोंका निराकरण करनेके लिए परिवर्तमान मध्यमपरिणामोंसे पूर्वोक्तप्रकृतियोंका जघन्यअनुभागबन्ध होता है।

आगे मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्टादि अनुभागके सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव भेदोंको कहते हैं—

घादीणं अजहण्णोऽणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं।
अजहण्णमणुक्कस्सो, गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥१७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—घातियाकर्मोंका अजघन्यअनुभागबन्ध वेदनीय व नामकर्मका अनुत्कृष्ट-अनुभागबन्ध और गोत्रकर्मका अजघन्य व अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी सादि, अनादि, ध्रुव एवं अध्रुवरूप है तथा घातियाकर्मोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट व जघन्यअनुभाग, वेदनीय व नामकर्मका उत्कृष्ट, अजघन्य व जघन्यअनुभाग, गोत्रकर्मका उत्कृष्ट, जघन्यअनुभाग एवं आयुकर्मका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य व जघन्यअनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार है।

मूलप्रकृतियोंमें अनुभागबन्धसम्बन्धी सन्दृष्टि—

अनुभाग बन्ध के भेद	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	२	२	४	२	२	४	४	२
अजघन्य	४	४	२	४	२	२	४	४
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२

ध्रुवप्रकृतियोंमें प्रशस्त, अप्रशस्त एवं अध्रुवप्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट व उत्कृष्टअनुभागसम्बन्धी सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवभेदोंका कथन करते हैं—

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण धुवियाणं ।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ॥१७६॥

अर्थ—प्रशस्तध्रुवप्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट तथा अप्रशस्तध्रुवप्रकृतियोंका अजघन्यअनुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकारका है। प्रशस्तध्रुवप्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य एव अप्रशस्तध्रुवप्रकृतियोंका जघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट तथा अध्रुवप्रकृतियोंका जघन्यादि चारों प्रकारका अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकारका है।

विशेषार्थ—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण ये चार प्रकृतियां प्रशस्तध्रुव-बन्धी हैं। ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा और उपघात ये ३९ अप्रशस्तध्रुवबन्धी प्रकृतियां हैं तथा शेष ७३ प्रकृतियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्रुवबन्धी हैं। सामान्यरूप वर्णादि ४ तो ध्रुवबन्धी हैं, किन्तु प्रशस्त व अप्रशस्तरूप वर्णादि ४ ध्रुवबन्धी नहीं हैं।

यहां वर्णचतुष्ककी शुभ-अशुभरूप दोनोंही स्थानोंपर गणना होनेसे १२०+४ =१२४-५१ (ध्रुवबन्धी)=७३ प्रकृतियां अध्रुवबन्धी जानना। वैसे तो बन्धयोग्य-प्रकृति १२० ही हैं।

उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी अनुभागबन्धकी सन्दृष्टि—

अनुभागबन्ध के भेद	प्रशस्तध्रुव-प्रकृति ४	अप्रशस्तध्रुव-प्रकृति ३९	अध्रुवप्रकृति ७३
उत्कृष्ट	२	२	२
अनुत्कृष्ट	४	२	२
अजघन्य	२	४	२
जघन्य	२	२	२

नोट—यहां २ का अङ्क सादि व अध्रुव एवं ४ का अङ्क सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव को सूचित करता है।

अथानन्तर अनुभागबन्धका लक्षण घातियाकर्मोंमें कहते हैं—

सत्ती य लदादारूअट्ठीसेलोवमाहु घादीणं।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥१८०॥

अर्थ—घातियाकर्मोंकी शक्ति (स्पर्धक) लता, काष्ठ, हड्डी और पाषाणके समान है तथा दारूभागके अनन्तवेंभागपर्यन्त शक्तिरूपस्पर्धक देशघाति हैं। शेष बहुभागसे शैलभागपर्यन्त स्पर्धक सर्वघाति हैं।

विशेषार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप घातियाकर्मोंकी शक्ति (स्पर्धक) लता, दारु, अस्थि, शैलकी उपमाके समान चार प्रकारकी है। जिस प्रकार लता आदिमें क्रमसे अधिक-अधिक कठोरता पाई जाती है, उसीप्रकार इन कर्म-स्पर्धक अर्थात् कर्मवर्गणाके समूहोंमें अपने फल देनेकी शक्तिरूप अनुभाग क्रमसे अधिक-अधिक पाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लताभागसे दारुभागके अनन्तवेंभागपर्यन्त स्पर्धक देशघाति हैं, इनके उदय होनेपर भी आत्माके गुण एकदेशरूपसे प्रगट रहते हैं तथा दारुभागके अनन्तभागोंमेंसे एकभागबिना शेष बहुभागसे शैलभागपर्यन्त जो स्पर्धक हैं वे सर्वघाति हैं, क्योंकि इनके उदय रहनेपर आत्मगुणोंका एक अंश भी प्रगट नहीं होता अथवा पूर्णगुण प्रकट नहीं होते। जैसे—जहां अवधिज्ञानका अंश भी प्रकट न हो वहां अवधिज्ञानावरणके सर्वघाति-स्पर्धकोंका उदय जानना चाहिए तथा जहांपर अवधिज्ञान और अवधिज्ञानावरण भी पाया जाता है वहां अवधिज्ञानावरणके देशघातिस्पर्धकोंका उदय जानना। इसीप्रकार अन्य प्रकृतियोंमें भी कथन समझना चाहिए।

अब मिथ्यात्वप्रकृतिमें विशेषता बताते हैं—

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारू अणंतिमे मिस्सं।
सेसा अणंतभागा अट्ठिसिलाफड्डया मिच्छे ॥१८१॥

अर्थ—दर्शनमोहनीयकर्मके लताभागसे दारुभागके अनन्तभागोंमेंसे एकभाग-पर्यन्त देशघातिके सभी स्पर्धक सम्यक्त्वप्रकृतिरूप हैं तथा दारुभागके एकभागबिना शेष बहुभागके अनन्तखण्ड करके उनमेंसे अधस्तन एकखण्डप्रमाण भिन्नजातिके सर्वघाति स्पर्धक मिश्रप्रकृतिरूप जानना और शेष दारुभागके बहुभागमें एकभागबिना बहुभागसे अस्थिभाग-शैलभाग पर्यन्त जो स्पर्धक हैं वे सर्वघातिमिथ्यात्वरूप जानने।

विशेषार्थ—माना कि दर्शनमोहनीयकर्मकी अनुभागशक्तिके स्पर्धक १२० हैं और अनन्तकी संख्या ४ मानो, लताभागकी शक्तिके स्पर्धक ८, दारुभागके स्पर्धक १६ अस्थिभागके स्पर्धक ३२ तथा शैलभागके स्पर्धक ६४ हैं। अर्थात् ८+१६+३२+६४=१२० ये दर्शनमोहनीयकर्मकी अनुभागशक्तिके स्पर्धक हैं। इनमेंसे मिथ्यात्वप्रकृतिको कितना भाग मिलेगा? मिश्रको कितना मिलेगा? सम्यक्त्वप्रकृतिको कितना भाग मिलेगा? लताभागके ८+दारुभागका अनन्तवांभाग अर्थात् १६÷४=४ इसप्रकार ८+४=१२ भाग सम्यक्त्वप्रकृतिको मिलेंगे। मिश्रप्रकृतिको दारुभागके १६−४=१२ भाग जो शेष था उसका अनन्तवांभाग अर्थात् १२÷४=३ भाग। मिथ्यात्वप्रकृतिको दारुभागमेंसे ९ भाग बचे तथा अस्थिभागकी अनुभागशक्तिके स्पर्धक ३२ व शैलभागके स्पर्धक ६४ मिलाकर (९+३२+६४=१०५) स्पर्धक मिलेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।
चदुविहभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८२॥

अर्थ––आवरणोंमें देशघातिकी ७ प्रकृतियां, अन्तरायकी पाँच, सञ्ज्वलनकी चार और एक पुरुषवेद ये १७ प्रकृतियां शैलादि चारोंप्रकारके भावरूप परिणमन करती हैं और शेष सर्वप्रकृतियां लताबिना शेष तीनप्रकारसे परिणत होती हैं ।

विशेषार्थ––१७ प्रकृतियां शैल, अस्थि, दारु और लता इन चारभावरूप परिणत होती हैं, जहां शैलभाग नहीं होता वहां अस्थि, दारु, लतारूप परिणत होती हैं तथा जहां अस्थिभाग भी नहीं है वहां दारु और लतारूप हो प्रवर्तित होती हैं एवं जहां दारुभाग भी नहीं है वहां केवल लतारूप ही परिणत होती है तथा इन १७ प्रकृतियोंके बिना अवशेष प्रकृतियोंमें से सम्यक्त्व और मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व) प्रकृतिबिना घातियाकर्मकी समस्तप्रकृतियोंके तीनप्रकारके भाव जानना । केवलज्ञानावरण व केवलदर्शनावरण, ५ निद्रा और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभरूप १२ कषायके सर्वघातिस्पर्धक ही हैं, देशघाति नहीं हैं । अतः इनके स्पर्धक शैल, अस्थि और दारुके अनन्तबहुभागरूप हैं तथा शैलके बिना २ प्रकार एवं अस्थिके बिना १ प्रकार भी पाए जाते हैं इसलिए तीनोंप्रकारके भावरूप हैं । पुरुषवेदके बिना ८ नोकषाय शैल, अस्थि, दारु और लतारूप चारों प्रकारके अनुभागसे सहित हैं । इनमेंसे शैल, अस्थि, दारु व लता तथा अस्थि, दारु व लतारूप अथवा दारु व लतारूपसे तीनप्रकार परिणत होती हैं केवल लतारूपसे कदाचित् भी परिणत नहीं होती हैं ।

अथानन्तर अघातियाप्रकृतियोंमें अनुभागका कथन करते हैं––

अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेदव्वा ॥१८३॥

अर्थ––शेष अघातियाकर्मकी प्रकृतियां घातियाकर्मोंके समान प्रतिभागयुक्त हैं इनके स्पर्धक भी तीनभावरूप ही परिणत होते हैं । इन अघातियाकर्मोंकी प्रकृतियां पुण्य व पापरूप होती हैं । शेष घातिया कर्मोंकी प्रकृतियां पापरूप ही होती हैं ।

आगे प्रशस्त व अप्रशस्त अघातियाकर्मोंके स्पर्धक (शक्ति) को अन्य नामोंसे कहते हैं––

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुडखण्डसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा ।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ॥१८४॥

अर्थ—अघातियाकर्मोंकी प्रशस्तप्रकृतियोंमें शक्ति (स्पर्धक) के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृतके समान हैं । इनमें क्रमसे अधिक-अधिकमिठास है तथा अप्रशस्तप्रकृतियोंके निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहलके समान अनुभाग है ।

विशेषार्थ—अघातियाकर्मोंकी प्रशस्तप्रकृतियोंके प्रतिभाग अर्थात् शक्तिके भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा, (मिश्री) और अमृतके समान है । जैसे गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत एक दूसरेसे अधिक-अधिक सुखके कारण यानि मिष्ट हैं उसीप्रकार गुड़भाग, खाण्डभाग, शर्कराभाग और अमृतभागरूप प्रशस्तप्रकृतिके स्पर्धक अधिक-अधिक सांसारिकसुखके कारण हैं तथा अप्रशस्तप्रकृतियोंके प्रतिभाग निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहलके समान है । जिसप्रकार निम्ब, काञ्जीर, विष और हलाहल एक दूसरेकी अपेक्षा अधिक-अधिक कटु हैं उसीप्रकार निम्बभाग, काञ्जीरभाग, विषभाग व हलाहल भागरूप अप्रशस्तप्रकृतियोंके स्पर्धक दु:खके कारण हैं ।

यहां प्रशस्तप्रकृतियां ४२ और अप्रशस्तप्रकृतियां ३७ हैं । वर्णादिचार-प्रकृतियां प्रशस्त और अप्रशस्त दोनोंरूप से गिनी गई हैं । प्रशस्तप्रकृति गुड़, खण्ड, शर्करा व अमृत या गुड़, खण्ड, शर्करा अथवा गुड़ व खण्ड, इन तीनभावरूप तथा अप्रशस्तप्रकृतियां निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहल या निम्ब, काञ्जीर, विष अथवा निम्ब, काञ्जीर, इन तीनभावरूप परिणत होती हैं ।

"इति अनुभागबन्ध प्रकरण"

—❖—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ प्रदेशबन्धप्रकरण

अथान्तर प्रदेशबन्धको ३३ गाथाओं द्वारा कहते हैं—

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं ॥१८५॥

अर्थ—एकक्षेत्रमें अवगाढ़रूपसे स्थित और कर्मरूप परिणमनके योग्य अनादि अथवा सादि या उभयरूप जो पुद्गलद्रव्य है उसे यह जीव सर्वप्रदेशोंसे अपने-अपने निमित्तसे बांधता है ।

विशेषार्थ—कर्मरूपपुद्गलोंका आत्मप्रदेशोंके साथ संश्लेषसम्बन्ध होना प्रदेश-बन्ध कहलाता है । यहां सूक्ष्मनिगोदियाजीवकी घनाङ्गुलके असंख्यातवेंभाग जघन्यरूप अवगाहनाको एकजघन्य क्षेत्र जानना चाहिए ।

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु ।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवी ॥१८६॥

अर्थ—एकशरीरसे रुके हुए स्थान (आकाश) को एकक्षेत्र कहते हैं और शेष सर्वलोकके क्षेत्रको अनेकक्षेत्र कहते हैं । यहां एकशरीर शब्दसे प्रायः जघन्यशरीर लेना, क्योंकि शरीरवाले जीव अनन्त हैं ।

विशेषार्थ—यद्यपि शरीरकी अवगाहना जघन्यअवगाहनासे उत्कृष्टपर्यन्त अथवा समुद्घातकी अपेक्षा लोकपर्यन्त है । यहां जघन्य अवगाहनाका आदि भेद तो घनाङ्गुलको पल्यके असंख्यातवेंभागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण है और अन्तिम भेद लोकप्रमाण है । अन्तिममें से आदिको घटानेपर और उसमें एक मिलनेसे समस्तअवगाहनाके भेद हो जाते हैं तथा बहुत जीव घनाङ्गुलके असंख्यातवें-भागप्रमाण शरीरकी अवगाहनाको धारण करनेवाले हैं अतः मुख्यतासे एकक्षेत्रका प्रमाण घनाङ्गुलके असंख्यातवेंभागमात्र कहा है इतने प्रमाण क्षेत्रके बहुत प्रदेश हैं अतः प्रदेशोंकी अपेक्षा ये भी अनेकक्षेत्र हैं, तथापि विवक्षासे यहां इस क्षेत्रको एकक्षेत्र कहा है । इस क्षेत्रको छोड़कर अवशेष लोकाकाशका सर्वक्षेत्र अनेकक्षेत्र है । इन-इन क्षेत्रमें रहनेवाले रूपीपुद्गलद्रव्यका प्रमाण इसप्रकार जानना—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि समस्तलोकमें सर्वपुद्गलद्रव्य पाया जाता है, तो एकक्षेत्रमें कितना पुद्गलद्रव्य पाया जावेगा इसप्रकार त्रैराशिक करना। यहां प्रमाणराशि समस्तलोक, फलराशि पुद्गलद्रव्यका प्रमाण, इच्छाराशि एकक्षेत्रका प्रमाण है। यहां फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतना एकक्षेत्र-सम्बन्धी पुद्गलद्रव्य समझना तथा इच्छाराशिका प्रमाण अनेकक्षेत्र मानकर पूर्ववत् त्रैराशिकविधिसे जो लब्ध आवे उतना अनेकक्षेत्रसम्बन्धी पुद्गलद्रव्य जानना।

एयाणेयक्खेत्तट्ठियरूविअणंतिमं हवे जोग्गं।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ ॥१८७॥

अर्थ—एक तथा अनेकक्षेत्रोंमें ठहरे हुए पुद्गलद्रव्यके अनन्तवेंभाग पुद्गल-परमाणुओंका समूह कर्मरूप होने योग्य है और शेष अनन्तबहुभागप्रमाण कर्मरूप होनेके अयोग्य है। एकक्षेत्रयोग्य, एकक्षेत्रअयोग्य, अनेकक्षेत्रयोग्य और अनेकक्षेत्रअयोग्य इसप्रकार ४ भेद हुए। इन सभीके सादि-अनादि भेद होनेसे ८ भेद हुए।

विशेषार्थ—एकक्षेत्रसम्बन्धी पुद्गलद्रव्यके प्रमाणमें अनन्तका भाग देनेपर एकभागप्रमाण तो कर्मरूप परिणमनेयोग्य पुद्गलद्रव्यका प्रमाण है और शेष बहुभागप्रमाण कर्मरूप होनेके अयोग्य पुद्गलद्रव्य है। अनेकक्षेत्रसम्बन्धी पुद्गलप्रमाणको अनन्तका भाग देनेपर जो लब्ध आया उसमेंसे एकभागप्रमाण कर्मरूप होनेयोग्य पुद्गलोंका प्रमाण है अवशेष बहुभाग कर्मरूप होनेके अयोग्य पुद्गलोंका प्रमाण है। इनमें अतीत-कालमें जीवके द्वारा ग्रहण किया हो वह सादिद्रव्य तथा अनादिकालसे जीवनें जिसको कभी भी ग्रहण नहीं किया ऐसे पुद्गलद्रव्यको अनादिद्रव्य कहते हैं।

अब सादि-अनादिका प्रमाण कहते हैं—

जेट्ठे समयपबद्धे अतीदकाले हदेण सव्वेण।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८८॥

अर्थ—उत्कृष्टसमयप्रबद्धके प्रमाणको अतीतकालीन समयोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसे सर्वजीवराशिके प्रमाणसे गुणा करे जो प्रमाण प्राप्त होवे वह सर्व सादिद्रव्यका प्रमाण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—एकसमयमें उत्कृष्टसमयप्रबद्धप्रमाण पुद्गलद्रव्यको ग्रहण करे तो संख्यातावलीसे सिद्धराशिका गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने अतीतकाल[1]के समयोंमें कितने पुद्गलद्रव्यको ग्रहण करेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करना ।

प्रमाणराशि एकसमय, फलराशि उत्कृष्टसमयप्रबद्ध, इच्छाराशि अतीतकालके समयोंका प्रमाण जो कि सिद्धराशिसे असंख्यातगुणा है । फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना एकजीवका सादिपुद्गलद्रव्य है । इसको सर्वजीवराशिके प्रमाणसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना सर्वजीवोंका सादिपुद्गलद्रव्य जानना । इस प्रमाणको सर्वपुद्गलराशिके प्रमाणमेंसे घटानेपर जो शेष रहे वह अनादिपुद्गलद्रव्यका प्रमाण है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वजीवोंके द्वारा भी अतीतकालमें सर्वपुद्गलद्रव्य नहीं भोगा गया ।

शंका—द्वादशानुप्रेक्षादि ग्रन्थोंमें जो कहा गया है कि एकजीवने सर्वपुद्गलद्रव्यको अनन्तबार भोगकर छोड़ दिया वह कैसे संभव है ?

समाधान—उन गाथाओंमें 'असर्व' अर्थात् यहां 'कुछ' के लिए 'सर्व' शब्दका प्रयोग हुआ है । जैसे अङ्गारे पर पांव रखा जानेसे पांवका एकभाग जलता है, तथापि यही कहा जाता है कि पांव जल गया । इसप्रकार एकभागमें भी सर्वका प्रयोग होता है[2] ।

आगे पूर्वोक्तभेदोंमें सादिद्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८९॥

अर्थ—अपने-अपने एक तथा अनेक क्षेत्रमें रहनेवाले पुद्गलद्रव्यके अनन्तवेंभाग योग्य सादिद्रव्य है और शेष अनन्तबहुभाग अयोग्य सादिद्रव्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा ।

विशेषार्थ—सर्वलोकके प्रदेशोंमें सर्वजीवसम्बन्धी सादिद्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण पाया जाता है तो एकजीवकी अवगाहनारूप घनाङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण एक-

---

१. "तीदो संखेज्जावलि हद सिद्धाणं पमाणं तु" ॥५७७॥ गो. जी.। अर्थात् सिद्धराशिको सख्यातआवलियोंसे गुणा करनेपर अतीतकालका प्रमाण प्राप्त होता है । २. ध. पु. ४ पृ. ३२६ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्रमें कितनाद्रव्य पाया जावेगा अथवा एकक्षेत्रके प्रमाणसे हीन लोकप्रमाण अनेकक्षेत्रमें कितना द्रव्य होगा ? इसप्रकार दो. त्रैराशिक करना। यहां प्रमाणराशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छाराशि एकक्षेत्र। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने प्रमाण एकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्यका प्रमाण है।

प्रमाणराशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्यका प्रमाण इच्छाराशि अनेकक्षेत्र। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्धराशि आयी उतने प्रमाण अनेकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्यका प्रमाण जानना। एकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एकभागप्रमाण एकक्षेत्रसम्बन्धी कर्मरूप होने योग्य सादिद्रव्य है तथा अवशेष भागप्रमाण एकक्षेत्रसम्बन्धी अयोग्यसादिद्रव्य जानना। इसीप्रकार अनेकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्यको अनन्तका भाग देना उनमें एकभागप्रमाण अनेकक्षेत्रस्थित योग्यसादिद्रव्य तथा शेषभागप्रमाण अनेकक्षेत्र अयोग्यसादिद्रव्य जानना।

अथानन्तर अनादिद्रव्यका प्रमाण कहते हैं--

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे होदि णियमेण।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ॥१६०॥

अर्थ--एकक्षेत्रमें स्थित योग्य व अयोग्यद्रव्य तथा अनेकक्षेत्रमें स्थित योग्य व अयोग्यद्रव्यका जो परिमाण है उसमेंसे अपने-अपने सादिद्रव्यका प्रमाण घटानेसे जो शेष रहे वह क्रमसे एकक्षेत्रस्थित योग्य अनादिद्रव्य, अनेकक्षेत्र स्थित अयोग्य अनादिद्रव्य, अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादिद्रव्य और अनेकक्षेत्र स्थित अयोग्य अनादिद्रव्यका परिमाण जानना।

विशेषार्थ--गाथा कथित चारभेदोंमें से योग्य सादिद्रव्य, योग्य अनादि व योग्य उभयद्रव्यसे एकसमयमें समयप्रबद्धप्रमाण मूलप्रकृति व उत्तरप्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप प्रदेशबन्ध प्रतिसमय होता है।

यह जीव योग व मिथ्यात्वके निमित्तसे प्रतिसमय कर्मरूप परिणमनेयोग्य समयप्रबद्धप्रमाण परमाणुओंको ग्रहण करके कर्मरूप परिणमाता है। उनमें किसीसमय तो पहले ग्रहण किए सादिद्रव्यपरमाणुओंको ही ग्रहण करता है तथा किसी समय अभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक नहीं ग्रहण किए गए अनादिद्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है एवं कभी-कभी दोनोंरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है।

अब समयप्रबद्धका प्रमाण कहते हैं—

सयलसरूवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं।
सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं ॥१९१॥

अर्थ—वह समयप्रबद्ध पांचप्रकाररस, पांचप्रकारवर्ण, दोप्रकार गन्ध तथा स्पर्शके ८ भेदोंमेंसे चार[1] गुणोंसे सहित परिणमता हुआ सिद्धराशिके अनन्तवेंभाग अथवा अभव्यराशिसे अनन्तगुणा कर्मरूप पुद्गलद्रव्य जानना अर्थात् इतने परमाणुओंके समूहरूप वर्गणाको ग्रहणकर प्रतिसमय कर्मरूप करता है।

अब एकसमयमें ग्रहण किया हुआ समयप्रबद्ध आठमूलप्रकृतिरूप परिणमता है उसमें एक-एकप्रकृतिका बटवारा जिस क्रमसे होता है उस क्रमको बताते हैं—

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो।
घादितियेवि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये ॥१९२॥

अर्थ—सभी मूलप्रकृतियोंमें आयुकर्मका भाग स्तोक है, नाम व गोत्रकर्मका भाग आपसमें समान है तो भी आयुकर्मके भागसे अधिक है। अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन तीन घातिया कर्मोंका भाग आपसमें समान है तो भी नाम व गोत्र-कर्मसे अधिक है इससे अधिक मोहनीयकर्मका है तथा मोहनीयकर्मसे भी अधिक वेदनीय-कर्मका है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें चारोंआयुका बन्ध होता है। सासादन-गुणस्थानमें नरकायुके बिना तीन आयुका बन्ध है। असंयतगुणस्थानमें नरक व तिर्यञ्च-बिना दो आयुका बन्ध है। देशसयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें एक देवायुका ही बन्ध होता है इसके आगे आयुबन्ध नहीं है। आगे अनिवृत्तिकरणपर्यन्त आयुके बिना सातकर्मका ही बन्ध है। इसके ऊपर सूक्ष्मसाम्परायमें आयु और मोहनीयकर्मबिना छहकर्मका बन्ध है। आगे तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीयकर्मका ही बन्ध है वह भी

---

१. स्निग्ध और रूक्षमेंसे कोई एक, शीत और उष्णमें से कोई एक, कर्कश और मृदुमें से कोई एक, तथा गुरु-लघुमें से कोई एक, इसप्रकार चारस्पर्श होते हैं। (धवल पु. १४ पृ. ५५८ व ५५९ सूत्र ७७८ व ७८३ की टीका।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयरूप ही है । जहाँ जितने कर्मोंका बन्ध हो वहां समयप्रबद्धमें उतने ही कर्मका बटवारा जानना[1] ।

आगे वेदनीयकर्मका अधिक भाग होनेमें कारण बताते हैं—

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स ।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१९३॥

अर्थ—वेदनीयकर्म संसारी जीवोंको सुख-दुःखका कारण है अतः इसकी निर्जरा अधिक होती है । इसीकारण अन्य मूलकर्मोंसे अधिकभागरूपद्रव्य वेदनीयकर्म-को मिलता है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

आगे अन्यकर्मोंमें द्रव्यके हीनाधिक विभागका कारण कहते हैं—

सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु ।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥१९४॥

अर्थ—वेदनीयकर्मके बिना सर्वमूलप्रकृतियोंके द्रव्यका स्थितिके अनुसार विभाग होता है जिनकी स्थिति अधिक है उनको अधिक तथा जिनकी स्थिति कम है उनको कम हिस्सा मिलता है । समानस्थितिवाले कर्ममें समानरूपसे द्रव्यका बटवारा होता है तथा इसके विभाग करनेमें प्रतिभागहार नियमसे आवलीके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण समझना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहां अधिक कितना है ? ऐसा प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागहार आवलीका असंख्यातवांभाग नियमसे जानना । इसकी सन्दृष्टि ९ का अङ्क है, इसप्रकार प्रतिभागहारका भाग देनेपर जो एकभागका प्रमाण हो उसे एकभाग जानना । इस एकभागके प्रमाणबिना शेष सर्वभागोंका प्रमाण बहुभाग जानना तथा जिस कर्मका जितनाद्रव्य कहा उतनेप्रमाण उस कर्मके परमाणुओंका प्रमाण है ।

---

१. ज्ञानावरणीयके योग्य जो द्रव्य हैं वे ही मिथ्यात्वादि प्रत्ययोंके कारण पांचज्ञानावरणीयरूपसे परिणमन करते हैं, अन्यरूपसे वे परिणमन नहीं करते, क्योंकि वे अन्यके अयोग्य होते हैं । इसीप्रकार सर्वकर्मोंके विषयमें कहना चाहिए ।

शंका—यदि ऐसा है तो कार्मणवर्गणाऐं आठ हैं ऐसा कथन क्यों नहीं किया है ? समाधान—अन्तरका अभाव होनेसे उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता । आठ ही वर्गणाएं पृथक्-पृथक् नहीं हैं, किन्तु मिश्रित होकर रहती हैं । "आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहिओ" इसीसे जाना जाता है कि आठों ही वर्गणाऐं मिश्रित होकर रहती हैं । (धवल पु० १४ पृ० ५५३-५५४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब विभागका क्रम कहते हैं—

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ।।१९५।।

अर्थ—बहुभागके समानभाग करके आठ प्रकृतियोंको देना और शेष एकभागमें पहले कहे हुए क्रमसे आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देते जाना । उसमें भी जो बहुत द्रव्यवाला हो उसको बहुत देना इसप्रकार अन्तपर्यन्त प्रतिभाग करते जाना ।

विशेषार्थ—एकसमयमें कार्मणसम्बन्धी समयप्रबद्धप्रमाण परमाणु ग्रहण किए उन परमाणुओंका जो प्रमाण हो वह कार्मण समयप्रबद्धद्रव्य है । इसमें आवलीके असंख्यातवें-भागका भाग देनेपर जो प्रमाण आया उसमें से एकभागको पृथक् रखना तथा बहुभागके आठभाग करना । उनमें से एक-एक समानभाग आठ स्थानोंमें पृथक्-पृथक् स्थापित करना तथा जो एकभाग पृथक् रखा था उसमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देना और एकभाग पृथक् रखकर शेष बहुभागको जिसका बहुतद्रव्य कहा है ऐसे वेदनीय-कर्मको देना तथा पूर्वोक्त आठ भागोंमें से एक समान भागके प्रमाणमें इस प्रमाणको मिलानेपर जो प्रमाण हुआ उतने परमाणु समयप्रबद्धमें वेदनीयकर्मरूप परिणत होते हैं तथा जो एकभाग रहा था उसमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देने पर एकभाग पृथक् रखकर बहुभाग मोहनीयकर्मको देना और उन आठ समानभागोंमें से एक समान-भागके प्रमाणमें इस प्रमाणको मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु मोहनीयकर्मरूप परिणत होते हैं तथा जो एकभाग शेष रहा उसमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देकर लब्धराशिमें से एकभाग पृथक् रखना और शेष बहुभागके तीन समानभाग करके एक-एकभाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मको देना तथा जो आठसमान भाग किए थे उनके एक-एक भागमें इस एक-एक भागको मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रमसे ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तरायरूप होकर परिणमते हैं । इन तीनोंकर्मोंका द्रव्य परस्पर समान जानना तथा जो एकभाग पृथक् रखा था उसमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देनेसे जो लब्ध आया उसमें से एकभाग पृथक् रखकर शेष बहुभागके दो समानभाग करके एकभाग नामकर्मको और एक गोत्रकर्मको देना तथा पूर्वोक्त आठभागोंमें से एक-एक भागमें इस एकभागको मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु अनुक्रमसे नाम और गोत्रकर्मरूप परिणत होते हैं, इन दोनों-कर्मोंका द्रव्य परस्पर समान जानना तथा जो एकभाग शेष रहा था उसे आयुकर्मको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देना और उन आठ भागोंमें से जो एकभागप्रमाण द्रव्य था उसमें इस एकभागको मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने परमाणु आयुकर्मरूप परिणत होते हैं। इसप्रकार **"आउग भागो थोवो"** इत्यादि जो वचन गाथामें कहा था वह सिद्ध हो गया। इसप्रकार एकसमयमें समयप्रबद्धप्रमाण पुद्गलद्रव्य आठकर्मरूप परिणमन करता है।

माना कि एकसमयप्रबद्धकी संख्या ८१०० है और आवलीके असंख्यातवेंभागकी संख्या ९ कल्पनाकी अर्थात् ८१००÷९=९०० इस संख्याको पृथक् रखकर शेष जो ७२०० बचे। इनके आठोंकर्मोंमें समानभाग करके प्रत्येकको ९०० प्राप्त होंगे। जो ९०० पृथक् रखे थे उनमें ९ का भाग देनेपर १०० प्राप्त हुए, इसको पृथक् रखकर बहुभाग ८०० रहा इसको वेदनीयकर्मको देना अर्थात् वेदनीयकर्मको ९००+८००=१७०० परमाणु मिलेंगे। जो १०० पृथक् रखे थे उसमें पुन: ९ का भाग देनेसे $\frac{१००}{९}$ भागाकार आया इसको पृथक् रखकर १०० में से घटाने पर $\frac{१००}{१}-\frac{१००}{९}=\frac{८००}{९}$ यह बहुभाग रहा सो इसको मोहनीयकर्मके द्रव्यमें मिलाया $\frac{८००}{९}+\frac{९००}{१}=९८८\frac{८}{९}$ प्राप्त हुआ इतना द्रव्य मोहनीयकर्मको मिला।

पृथक् रखी हुई भागाकारकी संख्या $\frac{१००}{९}$ को ९ से भाग देनेपर भागाकार $\frac{१००}{८१}$ आवेगा। इसको पृथक्रख $\frac{१००}{९}$ में से घटाने पर $\frac{१००}{९}-\frac{१००}{८१}=\frac{८००}{८१}$ प्राप्त हुआ। इसके तीनसमानभाग करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मको एक-एकभाग बांटना इसप्रकार प्रत्येकको $\frac{८००}{२४३}$ प्रमाणद्रव्य मिलेगा तथा सर्वप्रथम प्रत्येककर्मको जो समानद्रव्य ९०० मिला था उसमें $\frac{८००}{२४३}$ मिलानेपर प्रत्येकको $९००\frac{८००}{२४३}=९०३\frac{७१}{२४३}$ द्रव्य मिला। पृथक् रखे हुए $\frac{१००}{८१}$ को ९ से भाग देनेपर भागाकार $\frac{१००}{८१}$ में से घटाने पर बहुभागरूपद्रव्य $\left(\frac{१००}{८१}-\frac{१००}{७२९}\right)\frac{८००}{७२९}$ प्राप्त हुआ सो इतना द्रव्य नाम व गोत्रकर्मके हिस्सेमें आया इसमें २ का भाग देनेसे $\frac{८००}{७२९}\div २=\frac{८००}{१४५८}$ प्रमाण द्रव्य नामकर्मको और इतना ही द्रव्य गोत्रकर्मको भी मिला तथा पूर्वमें जो नाम और गोत्रके हिस्सेमें आया द्रव्य ९०० है उसमें इसको मिलानेपर $९००\frac{८००}{१४५८}$ प्रमाण द्रव्य नामकर्मको तथा इतना ही द्रव्य गोत्रकर्मको भी मिलेगा। पृथक् रखे एकभागरूप $\frac{१००}{७२९}$ प्रमाण द्रव्यको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वमें प्रत्येक कर्मके हिस्सेमें आए द्रव्यमें आयुकर्मका जो ९०० प्रमाण द्रव्य है उसमें मिलानेसे ९००$\frac{१००}{७२९}$ प्रमाणद्रव्य आयुकर्मका जानना।

"कर्मपरमाणुओंके बंटवारेकी सन्दृष्टि"

वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	अन्तराय	नाम	गोत्र	आयु	कुल जोड़
९००	९००	९००	९००	९००	९००	९००	९००	७२००
८००	$\frac{८००}{९}$	$\frac{८००}{२४३}$	$\frac{८००}{३४३}$	$\frac{८००}{२४३}$	$\frac{८००}{१४५८}$	$\frac{८००}{१४५८}$	$\frac{१००}{७२९}$	९००
१७००	९८८$\frac{८}{९}$	९०३$\frac{७१}{२४३}$	९०३$\frac{७१}{२४३}$	९०३$\frac{७१}{२४३}$	९००$\frac{८००}{१४५८}$	९००$\frac{८००}{१४५८}$	९००$\frac{१००}{७२९}$	८१००

विशेष—ज्ञानावरणीयके योग्य जो द्रव्य है वही ५ ज्ञानवरणीयरूपसे परिणमन करता है, क्योंकि वह अन्यके अयोग्य है। इसीप्रकार सर्वकर्मोंके विषयमें जानना चाहिए, अन्यथा ज्ञानावरणीयका जो द्रव्य है उसे ग्रहणकर मिथ्यात्वादि कारणसे ज्ञानावरणीयरूपसे परिणमाकर जीव परिणमन करते हैं यह सूत्र नहीं बन सकता[1]।

आठोंप्रकारकी कार्मणवर्गणाओंमें अन्तरका अभाव है अतः यह नहीं कहा गया कि कार्मणवर्गणाएं आठ हैं। ये आठों ही वर्गणाएं पृथक्-पृथक् नहीं रहती, अपितु मिश्रित होकर रहती हैं, अन्यथा "आयुकर्मका भाग स्तोक है, नामकर्म और गोत्रकर्मका भाग उससे अधिक है" इत्यादि प्रकारसे उपदेश सम्भव नहीं हो सकता था[2]।

अब उत्तरप्रकृतियोंमें बटवारेका क्रम कहते हैं—

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा।
अहियकमा पुण णामाविग्घा य ण भंजणं सेसे ॥१९६॥

अर्थ—उत्तरप्रकृतियोंमें मोहनीय, ज्ञानावरण और दर्शनावरणके भेदोंमें क्रमसे हीन-हीनद्रव्य है तथा नाम व अन्तरायकर्मके भेदोंमें क्रमसे अधिक-अधिकद्रव्य है।

१. वर्गणाखण्ड, बन्धानुयोगद्वार चूलिका, सूत्र ७५९। २. ध. पु. १४ पृ. ५५३-५४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदनीय, गोत्र और आयुकर्मके भेदोंमें बटवारा नहीं होता, क्योंकि इनकी एककालमें एकही प्रकृति बंधती है अत: इनको मूलप्रकृतिके समान ही द्रव्य मिलता है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणमें मतिज्ञानावरणके द्रव्यसे श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य स्तोक है, इससे अवधिज्ञानावरणका द्रव्यहीन है यही क्रम शेष कर्मोंके भेदोंमें भी जानना, किन्तु नाम और अन्तरायकर्मके भेदोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य है, जैसे—अन्तराय-कर्ममें दानान्तरायके द्रव्यसे लाभान्तरायका द्रव्य अधिक है, इससे भोगान्तरायका द्रव्य अधिक है। इसप्रकार अधिकक्रम जानना। वेदनीय, गोत्र और आयुकर्ममें बटवारा नहीं है। जैसे—वेदनीयकर्ममें साताका बन्ध होगा या असाताका, दोनोंका एकसमयमें युगपत् बन्ध नहीं होगा। इसीप्रकार गोत्र व आयुकर्ममें भी जानना। इन तीनोंकर्मोंकी जिस उत्तरप्रकृतिका जिससमय बन्ध होगा उस समय जो मूलप्रकृतिका द्रव्यप्रमाण है वही उत्तरप्रकृतिका भी जानना।

अथानन्तर घातियाकर्मोंमें सर्वघाति तथा देशघातिका बटवारा कहते हैं—

सव्वावरणं दव्वं अणंत भागो दु मूलपयडीणं।
सेसा अणंतभागा देसावरणं हवे दव्वं ॥१९७॥

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय, इन तीन मूलप्रकृतियोंका जो अपना द्रव्य है उसमें अनन्तका भाग देनेसे एकभाग तो सर्वघातिका द्रव्य होता है तथा शेष अनन्त बहुभागप्रमाणद्रव्य देशघातिका है।

विशेषार्थ—सर्वघातियाद्रव्यका सर्वघाति और देशघातिरूप बटवारा आगे कहेंगे। देशघातिरूप मतिज्ञानावरणादिके द्रव्यका जो प्रमाण है उसमें सर्वघातिसम्बन्धी परमाणुओंके प्रमाणके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण कहते हैं।

शंका—देशघातिप्रकृतियोंमें सर्वघातिस्पर्धक कैसे हो सकते हैं?

समाधान—पहले अनुभागबन्धमें मतिज्ञानावरणादिका अनुभाग शैल, अस्थि, दारु और लतारूपसे चार प्रकारका कहा था। इनमें दारुभागका तो अनन्तवांभाग और सम्पूर्ण लताभाग तो देशघाति है। इसप्रकार देशघातिरूप अनुभागको धारण करनेवाले परमाणु देशघातिद्रव्य हैं। शैलभाग, अस्थिभाग तथा दारुका बहुभाग सर्वघातिरूप है इस अनुभागको धारण करनेवाले परमाणु सर्वघातिद्रव्य हैं ऐसा जानना।

अब सर्वघाति द्रव्यका प्रमाण निकालनेके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु।
सव्वावरणधणट्ठं पडिभागो होदि घादीणं ॥१९८॥

अर्थ—देशघातिरूप ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंकी अन्योन्याभ्यस्तराशि अनन्तसंख्याप्रमाण है। यही राशि सर्वघातिप्रकृतियोंका द्रव्यप्रमाण निकालनेके लिए घातिया कर्मोंकी प्रतिभागरूप जानना।

विशेषार्थ—चारज्ञानावरण, तीनदर्शनावरण, पांचअन्तराय, चारसञ्ज्वलनकषाय और नोकषायके परमाणुओंकी नानागुणहानिशलाका अनन्त है तथा जितनी नानागुणहानि है उतने प्रमाण २ के अङ्क लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है यह भी अनन्तसंख्यामात्र है। अङ्क सन्दृष्टि—

द्रव्यकी संख्या ३१००, स्थितिस्थान ४०, एक-एकगुणहानिका प्रमाण ८, इससे दूना (१६) दो गुणहानिका प्रमाण, नानागुणहानि ५ है। अतः नानागुणहानिप्रमाण २ के अङ्क लिखकर २×२×२×२×२ परस्परगुणा करनेपर लब्ध ३२ आया सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना। इसकी रचना जैसे ६३०० द्रव्य और स्थान ४८ का दृष्टान्त पूर्व गाथा १६२ में कहा था और आगे भी गाथा ९२३ में कहेंगे वैसे ही जानना। अर्थसन्दृष्टिमें अनुभागकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाणका कथन है।

उन पूर्वोक्त प्रकृतियोंके परमाणुओंका प्रमाण वही द्रव्य जानना। तीनबार अनन्तको परस्परगुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना अनुभागसम्बन्धी द्रव्यका परिमाण जानना। दोबार अनन्तको परस्परगुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतनी गुणहानि जाननी, इससे दोगुणी दोगुणहानि जानना, नानागुणहानि अनन्त है। नानागुणहानिप्रमाण २ के अङ्क लिखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतनी अन्योन्याभ्यस्तराशि है। यहां जो अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण है वही सर्वघातिद्रव्यका प्रमाण निकालनेके लिए प्रतिभाग है। इसीको स्पष्टकरते हैं—

मतिज्ञानावरणादि चारका द्रव्य केवलज्ञानके हिस्सेबिना अपने देशघातिके द्रव्यप्रमाण है। यह द्रव्यका प्रमाण कुछ अधिक समयप्रबद्धके आठवेंभागप्रमाण है। इसमें से एककम करके अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग देनेसे शैलभागकी अन्तिम गुणहानि में द्रव्यका प्रमाण होता है। पश्चात् नीचे एक-एकगुणहानिप्रति दूना-दूनाद्रव्य होकर दारुभागकी प्रथमगुणहानि पर्यन्त जाता है। दारुभागके अनन्तभागोंमें एकभाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(देशघाति) बिना शेष बहुभागसम्बन्धी प्रथमगुणहानिमें शैलभागकी चरमगुणहानिके द्रव्यको यथायोग्य आधे अनन्त (अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधाभाग) से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना द्रव्य है। इसप्रकार शैलभागकी चरमगुणहानिसे दारु बहुभागकी प्रथमगुणहानि पर्यन्त जितनी गुणहानि हुईं उसे गच्छ जानना। गच्छप्रमाण दो के अङ्कोंको गुणा करके प्राप्त लब्धमें से १ कम करनेपर जो प्रमाण हो वह सर्वघाति-सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण (अनन्त) होता है, उसका आधा यहां गुणकाररूप जानना। इस सर्वगुणहानिके द्रव्यको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतनेपरमाणु सर्वघाति-सम्बन्धी जानने इसीलिए सर्वघातिद्रव्यके लिए अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रतिभाग कहा।

सन्दृष्टि इसप्रकार है—

शैलभागकी चरमगुणहानि-का द्रव्य	शैलभागकी अन्य गुणहानि-का द्रव्य	अस्थिभागकी चरमगुणहानि-का द्रव्य	अस्थिभागकी अन्य गुणहानि-का द्रव्य	दारुभागकी चरमगुणहानि-का द्रव्य	दारुके सर्वघाती-भागकी प्रथम गुणहानिका द्रव्य
९	१८	३६	७२	१४४	२८८
१०	२०	४०	८०	१६०	३२०
११	२२	४४	८८	१७६	३५२
१२	२४	४८	९६	१९२	३८४
१३	२६	५२	१०४	२०८	४१६
१४	२८	५६	११२	२२४	४४८
१५	३०	६०	१२०	२४०	४८०
१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२

इसप्रकार गुणहानि गुणहानिप्रति दुगुना द्रव्य होता गया है। नानागुणहानि ६ अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२×२=६४ का आधा ३२, शैलभागकी चरम-गुणहानिके द्रव्य १०० को ३२ से गुणा करनेपर ३२०० दारुरूप सर्वघातिभागकी प्रथम-गुणहानिका द्रव्य।

अब देशघातिद्रव्यको कहते हैं—

दारुभागके बहुभागकी प्रथमगुणहानिके द्रव्यसे नीचे दारुभागके अनन्तभागोंमें एकभागकी अन्तिमगुणहानिका द्रव्य दूना है तथा नीचे गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना द्रव्य होकर लताभागकी प्रथमगुणहानिपर्यन्त जाता है। सवंगुणहानिका जो प्रमाण है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उतनी बार दोके अङ्क लिखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से एककम करने पर जो प्रमाण रहे वह अन्योन्याभ्यस्तराशि है। उसके आधेप्रमाणसे शैलभागकी अन्तिमगुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना लताभागकी प्रथमगुणहानिका द्रव्य जानना। इन गुणहानियोंको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु देशघातीसम्बन्धी जानने।

यहां अङ्कसन्दृष्टिमें सर्वद्रव्य ३१०० में अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ में से एककम करके (३२−१=३१) लब्धराशिका भाग देनेपर (३१००÷३१) १०० आए यह शैलभागकी अन्तिमगुणहानिका द्रव्य जानना, पश्चात् गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना होकर २००-४००-८००, एककम नानागुणहानि ४, इतनीबार दोके अङ्क लिखकर (२×२×२×२) परस्पर गुणा करनेपर १६ हुए। यह अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ का आधाप्रमाण है। इससे शैलभागको अन्तिमगुणहानिके द्रव्य १०० को गुणा करनेपर (१००×१६) १६०० हुए, यह लताभागकी प्रथमगुणहानिका द्रव्य जानना। इसीप्रकार दर्शनावरणादि के द्रव्योंमें भी सर्वघाति-देशघातिरूप द्रव्यका प्रमाण जानना।

इस गाथासूत्रमें कर्मप्रकृतियोंके प्रदेशोंका प्रमाण ज्ञातकरनेका विधान बताया गया है जिससे यह ज्ञातहो सके कि किस कर्मप्रकृतिके प्रदेश अल्प हैं और किस कर्मप्रकृतिके अधिक हैं, इसीग्रन्थकी संस्कृतटीकामें इसका कथन किया गया है, किन्तु प्रदेशबन्धकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन महाबन्ध पु. ७ में भी किया है उसीके अनुसार यहां लिखते हैं। तद्यथा——

अल्पबहुत्व दोप्रकारका है——१. स्वस्थानअल्पबहुत्व २. परस्थानअल्पबहुत्व। स्वस्थानअल्पबहुत्व इसप्रकार——केवलज्ञानावरणीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे मनःपर्ययज्ञानावरणीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे अवधिज्ञानावरणीय उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे श्रुतज्ञानावरणीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

प्रचलाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे निद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रचलाप्रचलाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे निद्रा-निद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे स्त्यानगृद्धिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अवधि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है, उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है और उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

असातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे सातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

अप्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अप्रत्याख्यानावरणक्रोधका प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरणमायाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरणलोभका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रत्याख्यानावरणक्रोधका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रत्याख्यानावरणमायाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं, उससे प्रत्याख्यानावरणलोभका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अनन्तानुबन्धीमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अनन्तानुबन्धीक्रोधका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अनन्तानुबन्धीमायाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अनन्तानुबन्धीलोभका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मिथ्यात्वका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे जुगुप्साका उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है, उससे भयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे हास्य-शोकका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे रति-अरतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे क्रोधसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यातगुणा है, उससे मानसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे पुरुषवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मायासञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे लोभसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यातगुणा है।

चारआयुओंका उत्कृष्टप्रदेशाग्र परस्परमें समान है।

परस्थान अल्पबहुत्वका कथन इसप्रकार है—

अप्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे अप्रत्यख्यानावरणक्रोधका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अप्रत्याख्यानावरणमायाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अप्रत्याख्यानावरणलोभका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसीप्रकार प्रत्याख्यानावरण और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उत्कृष्टप्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आगे मिथ्यात्वका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे केवलज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रचलाका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे निद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे निद्रानिद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे स्त्यानगृद्धिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे आहारकशरीरका उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है, उससे वैक्रियकशरीरका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे तैजसशरीरका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे नरकगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यातगुणा है, उससे देवगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अयशस्कीर्तिका उत्कृष्ट-प्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे जुगुप्साका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यातगुणा है, उससे भयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे हास्य-शोकका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे रति-अरतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे स्त्रीवेद-नपुंसक-वेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे दानान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यात-गुणा है, उससे लाभान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे भोगान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे परिभोगान्तराय (उपभोगान्तराय) का उत्कृष्ट-प्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे क्रोधसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे आभिनि-बोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मानसञ्ज्वलनका उत्कृष्ट-प्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे पुरुषवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मायासञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे नीचगोत्रका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे लोभसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे असातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे यशस्कीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है और उससे सातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब सर्वघाति-देशघातिद्रव्यका विशेष विभाग दिखाते हैं—

सव्वावरणं दव्वं विभंजणिज्जं तु उभयपयडीसु ।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे ।।१९९।।

अर्थ—घातियाकर्मोंके अपने-अपने द्रव्यको अनन्तका भाग देनेपर एकभाग-प्रमाण सर्वघातिद्रव्य है और बहुभागप्रमाण देशघातिद्रव्य है इनमें सर्वघातिद्रव्य तो सर्वघाति और देशघातिप्रकृतियोंको देना तथा देशघातिद्रव्य देशघातिप्रकृतिमें ही देना, केवलज्ञानावरणादि सर्वघातिप्रकृतियोंमें नहीं देना ।

अब उत्तरप्रकृतियोंमें विभाग कहते हैं—

बहुभागे समभागोबंधाणं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ।।२००।।

अर्थ—जिनका एकसमयमें बन्ध हो ऐसी उत्तरप्रकृतियोंके अपने-अपने पिण्डरूप द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देकर बहुभागके समानभाग करके अपनी-अपनी उत्तरप्रकृतियोंमें समानद्रव्य देना और एकभागमें से मोहनीय-ज्ञानावरण व दर्शनावरणकी प्रकृतियोंको क्रमसे घटता-घटता और नामकर्म तथा अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंको क्रमसे अधिक-अधिकद्रव्य देना इसप्रकार क्रम कहा । इनमें भी जिसका बहुत द्रव्य कहा उसको पृथक् रखे हुए एकभागका बहुभाग देना ।

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु ।
उत्तकमेण य देयं विवरीदं णामविग्घाणं ।।२०१।।

अर्थ—ज्ञानावरण-दर्शनावरण और मोहनीयरूप घातियाकर्मोंका क्रमशः आदिसे अन्तप्रकृतिपर्यन्त अपना-अपना सर्वघातिद्रव्य घटता-घटता देना एवं नाम और अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंमें द्रव्य बढ़ता-बढ़ता अथवा अन्तिमसे आदिप्रकृति पर्यन्त घटता-घटता देना ।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणीयकर्मका सर्वद्रव्य जो पहले कहा था उसमें यथायोग्य अनन्तका भाग देना, इसमें एकभागप्रमाण सर्वघातिद्रव्य है । इस सर्वघातिद्रव्यका विभाग इसप्रकार करना है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवलिके असंख्यातवेंभागका भाग देकर एकभागके बिना शेष बहुभागके समानरूपसे पांचभाग करना और प्रत्येक प्रकृतिको देना। जो एकभाग शेष रहा उसमें प्रतिभाग (आवलिके असंख्यातवेंभाग) का भागदेकर जो लब्ध आवे उसमें से बहुभाग मतिज्ञानावरणको देना तथा जो एकभाग शेष रहा उसमें उसी प्रतिभागका भागदेकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको एवं जो एकभाग शेष रहा उसमें उसी प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अवधिज्ञानावरणको देना तथा जो अवशेष एकभाग बचा उसमें उसी प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग मनःपर्ययज्ञानावरणको देना एवं जो एकभाग शेष रहा वह केवलज्ञानावरणका द्रव्य जानना। इसप्रकार पहले जो समानभाग कहे थे उनमें बादमें जो-जो प्रमाण बतलाए हैं उन्हें क्रमसे मिलानेपर मतिज्ञानावरणादिका सर्वघाति-द्रव्य होता है एवं ज्ञानावरणसम्बन्धीद्रव्यके अनन्तभागोंमें से एकभागबिना शेष बहुभाग देशघाति द्रव्य है, इसमें पूर्वोक्त क्रमसे उसी (आवलिके असंख्यातवेंभाग मात्र) प्रतिभाग-का भाग देकर एकभागबिना बहुभागके चार समान भाग करके एक-एक भाग मति-ज्ञानावरणादि चारप्रकृतियोंको देना तथा शेष रहे एकभागमें प्रतिभागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसमें से बहुभाग मतिज्ञानावरणको देना तथा जो शेष एकभाग रहा उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको देना एवं शेष बचे एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अवधिज्ञानावरणको देना और जो एकभाग शेष रहा वह मनःपर्ययज्ञानावरणको देना। इसप्रकार इन प्रत्येकभागोंको पूर्वमें जो समानरूपसे चार भाग किए थे उनमें क्रमसे मिलानेपर मतिज्ञानावरणादिके देशघातिद्रव्यका प्रमाण होता है तथा अपना-अपना देशघाति और सर्वघातिद्रव्य मिलानेपर ज्ञानावरणकी उत्तर-प्रकृतियोंके सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है।

यहां इतना अवश्य जानना कि प्रकृतियोंके द्रव्यसम्बन्धी विभागमें सभी स्थानों-पर जहां प्रतिभागका भाग देना कहा है वहां आवलिके असंख्यातवेंभागका भाग जानना।

तथैव दर्शनावरणीयकर्मके पूर्वोक्त सर्वद्रव्यके प्रमाणमें अनन्तका भाग देना, उसमें जो एकभागप्रमाण सर्वघाति द्रव्य है उसमें प्रतिभागका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसमें से एकभागके बिना बहुभागके ९ विभाग करके एक-एक समानभाग दर्शनावरणकी ९ उत्तरप्रकृतियोंको देकर जो एकभाग शेष रहा था उसमें प्रतिभाग-का भाग देकर बहुभाग स्त्यानगृद्धिप्रकृतिको देना तथा शेष रहे एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर एकभागबिना बहुभाग निद्रानिद्राको देना। इसी क्रमानुसार ज्ञानावरणके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरभेदोंके समान प्रतिभागका भाग दे-देकर बहुभाग-बहुभागप्रमाणद्रव्य क्रमसे प्रचला-प्रचला, निद्रा और प्रचलाको तथा चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शनावरणको हीनक्रमसे देना। अन्तमें जो शेष एकभाग बचे वह केवलदर्शनावरणका द्रव्य जानना। इस प्राप्त-द्रव्यको पूर्वमें जो समानरूपसे भाग किए थे उस द्रव्यमें यथाक्रम मिलानेसे स्त्यागृद्धि-आदि कर्मोंके सर्वघातिद्रव्यका प्रमाण होता है तथा दर्शनावरणसम्बन्धीद्रव्यके अनन्त-भागोंमें से एकभागबिना शेष बहुभागप्रमाण देशघातिद्रव्य है उसमें प्रतिभागका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमें से एकभागबिना बहुभागके समानरूप तीनभाग करके एक-एकभाग चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शनावरणको देना तथा जो एकभाग शेष रहा था उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग चक्षुदर्शनावरणको एवं शेष रहे एकभागमें पुनश्च प्रतिभागका भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग अचक्षुदर्शनावरणको देना तथा जो एकभाग शेष रहा वह अवधिदर्शनावरणका द्रव्य जानना। पहले जो समानरूपसे तीनभाग किए थे उनमें प्रतिभागविधिसे प्राप्त द्रव्यको मिलानेसे क्रमशः चक्षुदर्शना-वरणादिका देशघातिरूपद्रव्य होता है एवं चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनावरणसम्बन्धी सर्वघाति और देशघातिद्रव्यको परस्परमें जोड़ देनेसे चक्षुदर्शनावरणादि तीन प्रकृतियोंका सर्व-द्रव्यका प्रमाण होता है। शेष ५ निद्रा और केवलदर्शनावरण प्रकृतियोंका सर्वद्रव्य सर्वघातिरूप ही है।

अन्तरायकर्मसम्बन्धी सर्वद्रव्यके प्रमाणमें प्रतिभागका भाग देनेपर प्राप्त हुई राशिमें से एकभागबिना बहुभागके पांचसमानभाग करके एक-एकभाग अन्तरायकर्मकी पांचों प्रकृतियोंको देना। शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग वीर्यान्तरायको और शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर एकभागबिना बहुभाग उपभोगान्तरायको देना। इसीप्रकार जो एक-एकभाग शेष रहे उसमें प्रति-भागका भाग देकर बहुभाग भोगान्तराय और लाभान्तरायको देना एवं अन्तमें जो एकभाग शेष रहा वह दानान्तरायका द्रव्य जानना। पूर्वमें जो पांचों प्रकृतिसम्बन्धी समानभाग किए उनमें प्रतिभागविधिसे प्राप्त प्रत्येकप्रकृतिके द्रव्यको मिलानेपर तद्-तद् प्रकृतिसम्बन्धी द्रव्यका प्रमाण होता है। इसप्रकार अन्तरायकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंका क्रम जानना।

अब उपर्युक्त कथनको अङ्कसन्दृष्टिद्वारा स्पष्ट करते हैं—

मानाकि ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी सर्वद्रव्य ४५००० है और अनन्तकी संख्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५ है। यहां सर्वद्रव्य ४५००० में अनन्तकी संख्या ५ का भाग देनेसे (४५०००÷५) ९००० प्रमाणद्रव्य सर्वघातिका जानना। अब सर्वद्रव्य ४५००० में से सर्वघातिसम्बन्धीद्रव्य ९००० को घटा देनेपर (४५०००−९०००) ३६००० प्रमाण जो द्रव्य आया सो देशघातिका द्रव्य है। ज्ञानावरणके सर्वघातिद्रव्य ९००० को प्रतिभाग (आवलीके असंख्यातवेंभागके प्रमाण ३) से भाग देनेपर ९०००÷३=३००० प्राप्त हुआ इसको ९००० में से कम करनेपर ९०००−३०००=६००० प्रमाण बहुभागरूप द्रव्यको ज्ञानावरणकी पांचोंप्रकृतियोंको समानरूपसे बांट देनेपर ६०००÷५=१२०० प्रमाणद्रव्य प्रत्येकप्रकृतिको मिलेगा तथा शेषभागप्रमाण द्रव्य (३०००) को प्रतिभाग (३) से भाग देनेसे $\frac{३०००}{३}$ लब्ध आया इसमें से एकभाग कमकरके $\frac{३०००}{१} - \frac{३०००}{३} = २०००$ प्रमाण बहुभागद्रव्य मतिज्ञानावरण सम्बन्धी जानना। इसीप्रकार पूर्वोक्तप्रतिभागविधिसे अन्य चार प्रकृतियोंके द्रव्यका प्रमाण भी प्राप्त करना चाहिए। वह मात्र अङ्कोंमें इसप्रकार है—

$\frac{३०००}{३} \div ३ = \frac{३०००}{९}$, $\frac{३०००}{३} - \frac{३०००}{९} = \frac{२०००}{३}$ यह द्रव्य श्रुतज्ञानावरणको देना। $\frac{३०००}{९} \div ३ = \frac{३०००}{२७}$, $\frac{३०००}{९} - \frac{३०००}{२७} = \frac{२०००}{९}$ प्रमाणद्रव्य अवधिज्ञानावरणका तथा $\frac{३०००}{२७} \div ३ = \frac{३०००}{८१}$, $\frac{३०००}{२७} - \frac{३०००}{८१} = \frac{२०००}{२७}$ प्रमाण द्रव्य मनःपर्ययज्ञानावरणका जानना एवं शेष एकभाग $\frac{३०००}{८१}$ अर्थात् $\frac{१०००}{२७}$ प्रमाणद्रव्य केवलज्ञानावरणका जानना। इसप्रकार ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी सर्वघातिद्रव्य ९००० का उसकी उत्तरप्रकृतियोंमें विभाग किया।

ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी सर्वघातिद्रव्यके उत्तरप्रकृतियोंमें विभागकी सन्दृष्टि—

मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मनःपर्यय-ज्ञानावरण	केवलज्ञानावरण	कुल योग
१२००+ २०००	१२००+ $\frac{२०००}{३}$	१२००+ $\frac{२०००}{९}$	१२००+ $\frac{२०००}{२७}$	१२००+ $\frac{१०००}{२७}$	=६०००+ =३०००
३२००	$१८६६\frac{२}{३}$	$१४२२\frac{२}{९}$	$१२७४\frac{२}{२७}$	$१२३७\frac{१}{२७}$	=९०००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब देशघातिद्रव्य ३६००० का विभाग मति-श्रुत-अवधि और मनःपर्यय-ज्ञानावरणरूप प्रकृतियोंमें करते हैं—

देशघातिद्रव्य ३६०० में प्रतिभागके प्रमाण ३ (आवलीका असंख्यातवांभाग) का भाग देनेपर ३६०००÷३=१२००० आया। इसको ३६००० में से घटानेपर (३६०००−१२०००) २४००० प्रमाण बहुभागद्रव्य है इसके समानभाग करके मति-ज्ञानावरणादिको देना अर्थात् २४०००÷४=६००० प्रमाणद्रव्य चारों प्रकृतियोंको समानरूपसे दिया जावेगा। शेष एकभागरूप जो १२००० प्रमाणद्रव्य है उसमें प्रतिभाग का भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग मतिज्ञानावरणको देना अर्थात् १२०००÷३=४०००, १२०००−४०००=८००० प्रमाणद्रव्य मतिज्ञानावरणको मिला। पुनश्च शेष जो ४००० प्रमाण एकभाग है उसमें प्रतिभाग (३) का भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको देना तद्यथा—$४०००÷३=\frac{४०००}{३}, \frac{४०००}{१}-\frac{४०००}{३}=\frac{८०००}{३}$ यह द्रव्य श्रुतज्ञानावरणका जानना। इसीप्रकार आगे भी शेष बचे एकभागमें प्रतिभाग-का भागदेकर एकभागबिना बहुभागद्रव्य अवधिज्ञानावरणको और अन्तमें जो मनःपर्यय-ज्ञानावरण है उसे शेष बचा एकभागप्रमाण द्रव्य मिलेगा। प्रतिभागविधि इसप्रकार है—

$\frac{४०००}{३}÷३=\frac{४०००}{९}, \frac{४०००}{३}-\frac{४०००}{९}=\frac{८०००}{९}$ प्रमाणद्रव्य अवधिज्ञानावरणको मिलेगा शेष $\frac{४०००}{९}$ प्रमाण जो एकभाग है वह मनःपर्ययज्ञानावरणका द्रव्य जानना।

देशघातिद्रव्यके विभागकी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मनःपर्ययज्ञानावरण	कुल योग
६०००+	६०००+	६०००+	६०००+	=२४०००+
८०००	$\frac{८०००}{३}$	$\frac{८०००}{९}$	$\frac{४०००}{९}$	=१२०००
१४०००	$८६६६\frac{२}{३}$	$६८८८\frac{८}{९}$	$६४४४\frac{४}{९}$	=३६०००

इसप्रकार ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी कल्पित ४५००० प्रमाण द्रव्यका सर्वघाति और देशघातिरूपसे विभाजन मतिज्ञानावरणादि ५ प्रकृतियोंमें हुआ। सर्वघाति व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशघातिरूप विभाजित द्रव्यकी मतिज्ञानावरणादि सम्बन्धी युगपत् सन्दृष्टि निम्नप्रकार है सो जानना।

सर्वघाति-देशघातिरूप विभाजनकी सन्दृष्टि—

प्रकृति	मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधि-ज्ञानावरण	मनःपर्यय-ज्ञानावरण	केवल-ज्ञानावरण	कुल योग
सर्वघातिद्रव्य	२२००+	१८६६ २/३+	१४२२ २/९+	१२७४ २/२७+	१२३७ १/२७+	=९०००+
देशघातिद्रव्य	१४०००	८६६६ २/३	६८८८ ८/९	६४४४ ४/९	×	=३६०००
कुल जोड़	१७२००	१०५३३ १/३	८३११ १/९	७७१८ १४/२७	१२३७ १/२७	=४५०००

इसीप्रकार दर्शनावरणकी ९ प्रकृतियोंमें भी सर्वघाति और देशघातिरूप विभाजन होगा उसका क्रम इसप्रकार है—

स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। इनमेंसे ५ निद्रा और केवलदर्शनावरण सर्वघाति व शेषप्रकृति देशघाति हैं।

अन्तरायकर्मकी ५ प्रकृति देशघाति हैं। इनमें अधिकक्रमसे कर्मपरमाणुका विभाजन होगा। अधिकपरमाणु अन्तिम वीर्यान्तिरायप्रकृतिको, उससे कम उपभोगान्तरायको, उससे कम भोगान्तरायको, इससे कम लाभान्तरायको एवं सबसे कमद्रव्य दानान्तरायप्रकृतिको मिलेगा।

अथानन्तर मोहनीयकर्ममें विशेषता दिखाते हैं—

मोहे मिच्छत्तादीसत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥२०२॥

अर्थ—मोहनीयकर्मको मिथ्यात्वादि १७ प्रकृतियोंमें हीनक्रमसे द्रव्य दिया जाता है। सञ्ज्वलनकषायके समान ५ नोकषायका बटवारा जानना।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्ममें मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीलोभ-माया-क्रोध और मान तथा सञ्ज्वलनलोभ-माया-क्रोध व मान, प्रत्याख्यानलोभ-माया-क्रोध व मान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रत्याख्यानावरणलोभ माया-क्रोध व मान इन १७ प्रकृतियोंमें हीन क्रमसे द्रव्य देना एव पांच नोकषायका द्रव्य सञ्ज्वलनके समान है । ९ नोकषायमें से एकसमयमें युगपत् पांचप्रकृतिका बन्ध होता है अतः यहां पांच ही नोकषाय कहीं । तीनवेदोंमें से एकहो वेदका, रति-अरतिमें से एकका हास्य शोकमें से एकका तथा भय-जुगुप्साका इसप्रकार युगपत् पांच नोकषाय बन्धती हैं ।

अथानन्तर इनके विभागका क्रम दिखाते हैं—

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।
इगि भागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥२०३॥

अर्थ—नोकषाय और सञ्ज्वलनको बहुभागरूप द्रव्य मिला था इसद्रव्यमें से आधा और उसमें एकभाग सहित बहुभागका आधा सञ्ज्वलनका द्रव्य है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मके सम्पूर्णद्रव्यका प्रमाण पहले बताया जा चुका है उसमें अनन्तका भाग देनेपर एकभाग तो सर्वघाति है और बहुभाग देशघाति है । देशघातिद्रव्यमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देना तथा जो लब्ध आया उसमें से एक-भाग पृथक् रखकर बहुभागका आधाभाग नोकषायका है और शेष एकभाग सहित बहुभागका आधा सञ्ज्वलनकषायका देशघातिद्रव्य होता है । इसप्रकार यह तीनप्रकार-का द्रव्य हुआ, इनमें सर्वघातिद्रव्यका विभाग करते हैं—

सर्वघातिद्रव्यमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देना उसमें से एकभागको पृथक् रखकर शेष बहुभागके १७ भाग करके एक-एकभाग एक-एक प्रकृतिको देना तथा जो एकभाग रहा उसमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देकर बहुभाग मिथ्यात्व-को देना, शेषएकभागमें उसी प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धीलोभको देना तथा शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी मायाको देना । इसी क्रमसे जो एक-एकभाग शेष रहता जाय उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग-बहुभाग अनन्तानुबन्धीक्रोधको, अनन्तानुबन्धीमानको, सञ्ज्वलनलोभको, सञ्ज्वलन-मायाको, सञ्ज्वलनक्रोधको, सञ्ज्वलनमानको, प्रत्याख्यानलोभको, प्रत्याख्यानमायाको, प्रत्याख्यानक्रोधको, प्रत्याख्यानमानको तथा अप्रत्याख्यानलोभ-माया और क्रोधको देना शेष एकभाग रहा उसे अप्रत्याख्यानमानको देना । पहले जो १७ भाग किए थे उनमें इन दिये हुए भागोंको मिलानेपर अपनी-अपनी प्रकृतिके सर्वघातिद्रव्यका प्रमाण होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सञ्ज्वलनके देशघातिद्रव्यका जो प्रमाण कहा उसमें प्रतिभागका भाग देकर एकभागको पृथक् रख शेष बहुभागके चार समानभाग करके एक-एकभाग चारों सञ्ज्वलनकषायोंको तथा जो शेष एकभाग रहा उसमें प्रतिभागका भाग देकर लब्ध-राशिमें से बहुभाग सञ्ज्वलनलोभको देना और शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग सञ्ज्वलनमायाको देना शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग सञ्ज्व-लनक्रोधको देना एवं जो एकभाग शेष रहा वह सञ्ज्वलनमानको देना। इसप्रकार प्रत्येक प्रकृतिको जो भाग दिए गए हैं उनको पूर्वमें समानरूपसे विभाजित भागोंमें क्रमसे मिलानेपर तद्-तद् प्रकृतिसम्बन्धी देशघातिद्रव्य होता है। इसप्रकार सञ्ज्वलनकी चारकषायका देशघाति और सर्वघातिद्रव्य मिलानेपर सर्वद्रव्य होता है।

मिथ्यात्व और बारहकषायका द्रव्य सर्वघातिरूप ही है और नोकषायका द्रव्य देशघातिरूप ही है अतः अब इन ९ नोकषायोंके द्रव्यका विभाग कहते हैं—

सर्वप्रथम जो नोकषायसम्बन्धीद्रव्य कहा था उसमें प्रतिभागका भाग देकर एकभागबिना बहुभागके पांचभाग करके एक-एकभाग पांचों प्रकृतियोंको देना तथा जो एकभाग शेष बचा था उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग तीनों वेदोंमें से जिसका बन्ध हो उसको देना, शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग रति-अरतिमें से जिसका बन्ध हो उसको देना तथा शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग हास्य-शोकमें से जिसका बन्ध हो उसको देना, शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग भयको देना एवं शेष एकभाग जुगुप्साको देना। पूर्वमें जो समानरूपसे पांचभाग किये थे उनमें उपर्युक्त प्रतिभागविधिसे प्राप्त द्रव्य तत्-तत् प्रकृतिके द्रव्यमें मिलानेपर अपना-अपना द्रव्य होता है।

शंका—अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलन इसप्रकारसे क्रम है, किन्तु द्रव्यके विभाजनमें इसक्रमको न रखकर अनन्तानुबन्धी-सञ्ज्वलन-प्रत्या-ख्यान-अप्रत्याख्यान ऐसा क्रम क्यों रखा गया है?

समाधान—धर्मकी जड़ जो सम्यग्दर्शन, उसको अनन्तानुबन्धी घातती है। जिसप्रकार वृक्षकी जड़ काटनेमें अधिक शक्तिकी आवश्यकता होती है उसीप्रकार धर्मकी जड़का घात करनेवाली अनन्तानुबन्धीको अधिकद्रव्य दिया गया। चारित्रमें सर्वोत्कृष्ट चारित्र 'यथाख्यात' चारित्र है अतः उस उत्कृष्टचारित्रकी घातक सञ्ज्वलनकषायमें अन्यकषायोंकी अपेक्षा अधिकशक्ति होनी चाहिए। जिसप्रकार सामान्यमनुष्यकी अपेक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रधान (President) को मारनेके लिए अधिक योजना बनानी पड़ती है उसीप्रकार यहां 'यथाख्यात' संयमकी घातक सञ्ज्वलनकषायके हिस्सेमें प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्याकषाय-की अपेक्षा अधिकद्रव्य दिया गया। प्रत्याख्यानकषाय महाव्रतोंको घातती है और अप्रत्याख्यानकषाय अणुव्रतोंका घात करती है। हीनपुरुषकी अपेक्षा महान् पुरुषका घात करनेवालेमें तीव्रकषाय होती है इसीकारण प्रत्याख्यानकषायको अप्रत्याख्यानकी अपेक्षा अधिकद्रव्य दिया गया है। यही कारण है कि विभाजनमें अनन्तानुबन्धी-सञ्ज्वलन-प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान, इसप्रकार कषायोंका क्रम रखा गया है[1]।

अब नोकषायरूप प्रकृतियोंमें विशेषता कहते हैं—

तणोकसायभागो, सबंधपणणोकसाय पयडीसु।
हीणकमो होदि तहा, देसे देसावरणादव्वं ॥२०४॥

अर्थ—नोकषायके हिस्सेमें आया हुआ द्रव्य युगपत् बन्धने वाली ५ नोकषाय-रूप प्रकृतिको क्रमसे हीन-हीन देना और इसीप्रकार ज्ञानावरणादिकी देशघातिप्रकृतियोंमें देशघातिद्रव्य देना।

विशेषार्थ—जो नोकषाय सम्बन्धीद्रव्य है वह युगपत् बन्धने वाली ५ नोकषाय-को हीनक्रमसे देना चाहिए। पुरुषवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्साका बन्ध मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त होता है अथवा पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका बन्ध मिथ्यात्वसे प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त होता है। स्त्रीवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्सा का अथवा स्त्रीवेद, अरति, शोक, और जुगुप्साका बन्ध मिथ्यात्व और सासादनमें होता है। नपुंसकवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्साका अथवा नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांचका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें युगपत् होता है। नोकषाय सम्बन्धीद्रव्यका जिसप्रकार पहले विभाग कहा था उसी प्रकार बंधनेवाली इन पांच-प्रकृतियोंमें क्रमसे हीन-हीन द्रव्य देना।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें एक पुरुषवेदका ही बन्ध है अतः सवेदभागपर्यन्त नोकषायसम्बन्धी सभीद्रव्य पुरुषवेदको ही देना। देशघातिरूप सञ्ज्वलनकषायके देशघातिद्रव्यको जितनी प्रकृतियां बंधे उनमें हीनक्रमसे देना। इसप्रकार मिथ्यात्वगुण-स्थानसे अनिवृत्तिकरणके दूसरे (क्रोध) भागपर्यन्त चारों कषायोंमें विभाग करना, तीसरे भागमें जहां क्रोधका बन्ध नहीं है वहां तीन प्रकृतियोंमें तथा चतुर्थभागमें जहां

१. कषायपाहुड़ पु. ९ पृ. ९१, ३२० व ३२२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानका भी बन्ध नहीं है वहां दो प्रकृतियोंमें और पञ्चमभागमें जहां मायाका भी बन्ध नहीं है वहां सञ्ज्वलनका देशघातिरूप सर्वद्रव्य एक लोभप्रकृतिको ही देना। इसप्रकार पूर्वोक्त क्रमसे हीन-हीन द्रव्य जानना।

अब नोकषायका बन्ध निरन्तर कितने कालपर्यन्त होता है यह कहते हैं—

पुंबंधऽद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्हि हस्स जुगले य।
अरदिदुगे संखगुणा णपुंसकऽद्धा विसेसहिया ॥२०५॥

अर्थ—(मिथ्यात्वगुणस्थानमें) पुरुषवेदके निरन्तर बन्धनेका काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदका उससे संख्यातगुणा, हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा, अरति व शोकका उससे संख्यातगुणा और नपुंसकवेदका काल उससे भी कुछ अधिक जानना। (यह सर्वकाल पृथक्-पृथक्रूपसे भी अन्तर्मुहूर्त ही है।)

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टिजीवके पुरुषवेदका निरन्तर बंधनेका काल (बीचमें किसी अन्यवेदका बन्ध न हो) अन्तर्मुहूर्त है अर्थात् वह संख्यातगुणा संख्यातआवली-प्रमाण है और इसकी सहनानी दोगुणा अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदके निरन्तर बन्धनेका काल उससे भी संख्यातगुणा है उसकी सहनानी ४ गुणा अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा है और उसकी सहनानी १६ गुणा अन्तर्मुहूर्त है, अरति व शोकके बंधनेका काल सख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ३२ गुणा अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेदके निरन्तर बन्धनेका काल उससे भी कुछ अधिक है इसकी सहनानी ४२ गुणा अन्तर्मुहूर्त है। इसप्रकार तीनों वेदोंका काल मिलानेपर उसकी सहनानीकी अपेक्षा ४८ अन्तर्मुहूर्त तथा हास्य-शोक और रति-अरतिका काल मिलानेपर भी ४८ अन्तर्मुहूर्त होते हैं। यहा मिले हुए कालको प्रमाणराशि मानकर और पिण्डरूपद्रव्यको फलराशि तथा अपने-अपने कालको इच्छाराशि मानकर त्रैराशिकद्वारा लब्धराशिमें अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण प्राप्त होता है।

यहां सत्तामें स्थित तीनोंवेदसम्बन्धीद्रव्यमें मिले हुए कालकी सहनानीरूप ४८ अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको पुरुषवेदके कालकी सहनानी दो अन्तमुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना पुरुषवेदसम्बन्धी द्रव्य जानना, यह द्रव्य सबसे स्तोक है तथा स्त्रीवेदके कालकी सहनानी ४ अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना स्त्रीवेदका द्रव्य है, यह द्रव्य पुरुषवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नपुंसकवेदसम्बन्धी कालकी सहनानी ४२ अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उतना नपुंसकवेदसम्बन्धीद्रव्य है, यह द्रव्य स्त्रीवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। रति व अरतिसम्बन्धीद्रव्यको सन्दृष्टिकी अपेक्षा ४८ अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको सन्दृष्टिकी अपेक्षा रतिके काल १६ अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह रतिनोकषायसम्बन्धीद्रव्य जानना, यह स्तोक है तथा अरतिके काल ३२ अन्तमुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अरतिनोकषायसम्बन्धीद्रव्य जानना, यह रतिके द्रव्यसे संख्यातगुणा है तथा हास्य और शोक सम्बन्धी जो द्रव्य है उसको सहनानीकी अपेक्षा ४८ अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसको हास्यके कालकी सन्दृष्टि १६ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह हास्यसम्बन्धीद्रव्य है यह शोकके द्रव्यसे संख्यातगुणा कम है। शोकके काल ३२ अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह शोकका द्रव्य है यह द्रव्य हास्यके द्रव्यसे संख्यातगुणा है।

इसप्रकार युगपत् बन्धको प्राप्त होनेवाली पांच नोकषायोंमें पूर्वोक्त क्रमसे घटता-घटताद्रव्य कहा, तथापि पिण्डरूपमें परस्पर नानाकालमें एकत्रित होनेकी अपेक्षा द्रव्यका विभाजन अपने-अपने बन्ध कालमें इसप्रकारसे होता है, यहां तीनों वेदोंका एक पिण्ड, रति-अरतिका एकपिण्ड तथा हास्य-शोकका एकपिण्ड जानना। इसप्रकार पूर्वोक्तपिण्डका द्रव्य बन्धता है।

अन्तरायकर्मकी पांचप्रकृतियोंमें तथा नामकर्मके बन्धस्थानोंमें जो क्रम है उसे कहते हैं—

पणविग्घे विवरीदं, संबंधपिंडदरणामठाणेवि।
पिंडं दव्वं च पुणो, संबंधसगपिंडपयडीसु ॥२०६॥

अर्थ—अन्तरायकर्मकी पांचों प्रकृतियोंमें विपरीतक्रम है तथा नामकर्मके स्थानोंमें जो एकही कालमें बन्धको प्राप्त होनेवाली गति आदि पिण्डप्रकृति और अगुरुलघुआदि अपिण्डरूप प्रकृतियां हैं इनमें भी विपरीत ही क्रम है। इसप्रकार प्रदेश या परमाणुके बन्धका विधान विपरीतक्रमसे कहा।

विशेषार्थ—युगपत् जिसका बन्ध हो ऐसे नामकर्मकी २३ प्रकृतियोंके बन्धका स्थान है उसमें पायी जानेवाली प्रकृतियोंके नाम इसप्रकार हैं—

तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर, हुण्डकसंस्थान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त व साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण इन २३ प्रकृतियोंका युगपत् बन्ध होता है। अब इनका विभाग दिखाते हैं—

पहले मूलप्रकृतियोंके विभाजनमें नामकर्मसम्बन्धी जो द्रव्य कहा था उसमें आवलीके असंख्यातवेंभागका भाग देकर उसमें से एकभागको पृथक् रखकर बहुभागके २१ भाग करना तथा एक-एकभाग एक-एकप्रकृतिको देना। २३ प्रकृतियोंका जो बन्ध था उनमें औदारिक-तैजस-कार्मण इन प्रकृतियोंका शरीरनामक पिण्डप्रकृतिमें अन्तर्भाव होनेसे पिण्डप्रकृतिरूप एकही प्रकारका बन्ध है अतः यहां २१ ही भाग किए हैं तथा जो एकभाग रहा उसमें आवलीके असंख्यातवेंभाग (प्रतिभाग) का भाग देकर बहुभाग अन्तमें कही हुई निर्माणप्रकृतिको देना तथा अवशेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अयशस्कीर्तिको देना, शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर प्राप्त द्रव्यका बहुभाग अनादेयको देना। इसीप्रकार जो एक-एकभाग शेष रहता जावे उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग-बहुभाग क्रमसे दुर्भग, अशुभ, अस्थिर, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, स्थावर, उपघात, अगुरुलघु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण, हुण्डकसंस्थान, शरीरपिण्डप्रकृति और एकेन्द्रियजातिको देना एवं अन्तमें जो एकभाग शेष रहा वह तिर्यञ्चगतिको देना तथा पहले जो समानरूप २१ भाग किए थे उस एक-एकभागमें प्रतिभागविधिसे प्राप्त तत्-तत् प्रकृतिका द्रव्य मिलानेपर तत्-तत् प्रकृतिका द्रव्य होता है। जिसप्रकार २३ प्रकृतिक बन्धस्थानका कथन किया उसीप्रकार जहां २५ प्रकृतिका युगपत् बन्ध हो वहां इसीप्रकार २५ प्रकृतिमें विभाजन करना चाहिए तथैव २६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिके बन्धमें भी विभाजन जानना। जहां एक यशस्कीर्तिका ही बन्ध है वहां नामकर्मसम्बन्धी सम्पूर्णद्रव्य उस एकप्रकृतिको ही देना। इन स्थानोंमें जिनका युगपत् बन्ध हो उन पिण्डप्रकृतियोंके भेदोंका विभाजन एक पिण्डप्रकृतिके द्रव्यमें विपरीत अर्थात् अधिक-अधिक क्रम ही जानना। जिसप्रकार २३ प्रकृतिकस्थानमें एक शरीरनामा पिण्डप्रकृतिके तीनभेद पाए जाते हैं तो वहां शरीरप्रकृतिके हिस्सेमें जो द्रव्य आया उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभागके तीनभाग करके एक-एक समानभाग तीनोंको देना शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग कार्मणको देना तथा अवशिष्ट एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर लब्धद्रव्यका बहुभाग तैजसको देना एवं शेष एकभाग औदारिकशरीरका द्रव्य जानना। इसप्रकार प्रतिभाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिसे प्राप्त अपने-अपने द्रव्यको पूर्वमें जो समानरूपसे तीनभाग किए थे उनमें मिलाने से तत्-तत् प्रकृतिका द्रव्य होता है। इसीप्रकार अन्यत्र भी जानना तथा जहां पिण्ड-प्रकृतिमें एकही प्रकृतिका बन्ध हो वहां पिण्ड प्रकृतिका सर्वद्रव्य एक प्रकृतिको देना और ४१ जीवपदोंमें नामकर्मके स्थानोंका जैसे बन्ध होता है उस कथनको आगे स्थान-समुत्कीर्तनअधिकारमें कहेंगे वहांसे जानना। इसप्रकार प्रदेशबन्धके कथनमें द्रव्यका विभाजन कहा वह एक-एक समयमें जो एकसमयप्रबद्ध बन्धता है वहां समयप्रबद्ध-प्रमाण परमाणुओंमें जिस-जिस प्रकृतिका जितना-जितनाद्रव्य कहा उतने-उतने परमाणु उस-उस प्रकृतिरूप होकर परिणत होते हैं ऐसा भावार्थ जानना। कोई बहुभाग और समभागादिके विषयको न समझे उसके लिए अङ्क सन्दृष्टिमें दृष्टान्त कहते हैं—

सर्वद्रव्यकाप्रमाण ४०९६ है, इसका विभाजन चारस्थानोंपर करना। प्रतिभागका प्रमाण ८ है अतः ४०९६÷८=५१२ प्रमाण लब्ध हुआ। इस एकभागबिना शेष बहुभाग ४०९६−५१२=३५८४ को चारका भाग देनेपर ३५८४÷४=८९६ लब्ध आया सो, यह चारभागोंमें प्रत्येकका प्रमाण जानना। शेष एकभाग (५१२) में प्रतिभाग ८ का भाग देनेपर ५१२÷८=६४ लब्ध आया इसको पृथक् रखकर शेष बहुभाग ५१२−६४= ४४८ प्रमाणद्रव्य अधिकद्रव्यवालेको देना। शेष एकभागको प्रतिभागसे भाग देनेपर (६४÷८)=८ लब्ध आया सो इसको पृथक् रखकर अवशिष्ट बहुभाग ६४−८=५६ को, उससे (पूर्वोक्त अधिकद्रव्यवालेसे) हीनद्रव्यवालेको देना। शेष एकभाग (८) को प्रतिभाग (८) से भाग देनेपर ८÷८=१ लब्ध आया सो इसकेबिना बहुभागप्रमाण-द्रव्य ८−१=७ उससे भी हीनद्रव्यवालेको देना तथा जो शेष एकभाग है वह उससे भी हीनद्रव्यवालेको देना। इनको पूर्वमें किए ८९६ प्रमाण समानभागरूप स्वकीय-स्वकीयद्रव्यमें मिलानेपर क्रमशः १३४४, ९५२, ९०३, ८९७ हुआ। इसप्रकार सर्व ४०९६ प्रमाण समयप्रबद्धद्रव्यका चारभागों विभाजन जानना। इसीप्रकार पूर्वोक्त सभी प्रकृतियोंका विभाजन होगा।

अब उत्कृष्टादि प्रदेशबन्धके सादि इत्यादि भेद मूलप्रकृतियोंमें कहते हैं—

छण्हंपि अणुक्कस्सो, पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु।
सेसतिये दुवियप्पो, मोहाऊणं च दुवियप्पो ॥२०७॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि ६ कर्मोंका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेदसे चारप्रकारका है तथा शेष उत्कृष्टादि तीनप्रकारके प्रदेशबन्धमें सादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अध्रुवरूप दो भेद हैं। मोहनीय व आयुकर्मका उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-अजघन्य-जघन्य-प्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवके भेदसे दोप्रकारका है।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें मोहनीय और आयुकेबिना ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र और अन्तरायकर्मका बन्ध होता है। समयप्रबद्धका कुलद्रव्य इन छहों कर्मोंको मिलनेसे ज्ञानावरणादि छहोंकर्मोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सूक्ष्म-साम्परायगुणस्थानमें होता है। जिन्होंने सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानको प्राप्त नहीं किया उनके इन ज्ञानावरणादि छहकर्मोंका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध अनादि है। जो उपशमश्रेणीसे गिर गए हैं उनके इन ६ कर्मोंका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि है तथा भव्यके अध्रुव एवं अभव्यके ध्रुवबन्ध होता है।

मोहनीयकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवके होता है जो पुनः पुनः प्राप्त हो सकता है। अतः मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवरूप होता है। इन सातों कर्मोंका जघन्यप्रदेशबन्ध सूक्ष्म-एकेन्द्रियअपर्याप्तकके प्रथमसमयमें होता है। सो वह पुनः पुनः प्राप्त होता रहता है इसलिए इन सातों कर्मोंका जघन्य व अजघन्यप्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवरूप होता है। आयुकर्मका प्रदेशबन्ध निरन्तर नहीं होता अतः आयुका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यप्रदेशबन्ध सादि एवं अध्रुवरूप ही होता है[1]।

मूलप्रकृतिसम्बन्धी चतुर्विधप्रदेशबन्धमें सादि इत्यादि चारप्रकारके बन्ध सम्बन्धी सन्दृष्टि—

प्रदेश बन्धके प्रकार	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अन्तराय
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	४	४	४	२	२	४	४	४
अजघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२

१. महाबन्ध पु० ६ पृ० १३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—उपर्युक्त सन्दृष्टिमें जहां २ का अङ्क लिखा है उसका अभिप्राय सादि और अध्रुव एवं जहां ४ का अङ्क लिखा है वह सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है ऐसा जानना।

अब उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी कथन करते हैं—

तीसण्हमणुक्कस्सो, उत्तरपयडीसु चदुविहो बंधो।
सेसतिये दुवियप्पो, सेसचउक्केवि दुवियप्पो ॥२०८॥

अर्थ—उत्तरप्रकृतियोंमें ३० प्रकृतियोंका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चारोंप्रकारका है अवशेष उत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्यप्रदेश-बन्ध सादि व अध्रुवके भेदसे दो प्रकारका है तथा शेष ९० प्रकृतियोंका उत्कृष्टादि चारोंप्रकारका प्रदेशबन्ध सादि-अध्रुवके भेदसे दोप्रकारका ही है।

अथानन्तर ३० प्रकृतियोंके नाम गिनाते हैं—

णाणंतरायदसयं, दंसणछक्कं च मोहचोद्दसयं।
तीसण्हमणुक्कस्सो, पदेसबंधो चदुवियप्पो ॥२०९॥

अर्थ—पांचज्ञानावरण, ५ अन्तराय, निद्रा, प्रचला, चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवलदर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण-सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया और लोभ, भय, जुगुप्सा इन सर्व ३० प्रकृतियोंके अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि इत्यादिरूपसे चारप्रकारके हैं। सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव का स्वरूप पहले कहा था वही जानना।

विशेषार्थ—इन ३० प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध श्रेणीमें होता है, किन्तु अप्रत्याख्यानावरणकषायका चतुर्थगुणस्थानमें और प्रत्याख्यानावरणका पञ्चमगुणस्थानमें होता है। अतः जो श्रेणीपर आरुढ़ नहीं हुए अथवा चतुर्थ व पञ्चमगुणस्थानको प्राप्त नहीं हुए उनके इन ३० प्रकृतियोंका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध अनादि है, जो चढ़कर पुनः गिर गए हैं उनके सादि है भव्यकी अपेक्षा अध्रुव और अभव्यकी अपेक्षा ध्रुव है। शेष कर्मोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवोंके सम्भव होनेसे पुनः पुनः हो सकता है अतः शेष प्रकृतियोंका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवरूप होता है। आयुके अतिरिक्त सर्वप्रकृतियोंका जघन्यप्रदेशबन्ध सूक्ष्मएकेन्द्रियअपर्याप्तकभवके प्रथम-समयमें होता है जो पुनः-पुनः हो सकता है। आयुकर्मका बन्ध तो आठअपकर्षकालमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही होता है अतः ३० प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्यप्रदेशबन्ध तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्यप्रदेशबन्ध कादाचित्क होनेसे सादि और अध्रुव है।

उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी चतुर्विधप्रदेशबन्धमें सादि इत्यादि ४ भेदोंकी सन्दृष्टि——

प्रदेशबन्धके प्रकार	तीसप्रकृति	नब्बेप्रकृति
उत्कृष्ट	२	२
अनुत्कृष्ट	४	२
अजघन्य	२	२
जघन्य	२	२

अथानन्तर उत्कृष्टप्रदेशबन्ध होनेकी सामग्री बताते हैं—

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीदं ॥२१०॥

अर्थ—जो जीव उत्कृष्टयोगोंसे सहित हो, सञ्ज्ञीपर्याप्त और अल्पप्रकृतियोंका बन्धक होता है, वही जीव उत्कृष्टप्रदेशबन्धको करता है तथा जघन्यप्रदेशबन्धमें इससे विपरीत जानना अर्थात् जघन्ययोगसे सहित असञ्ज्ञीअपर्याप्त बहुतप्रकृतियोंका बन्धक जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।

आगे मूलप्रकृतिसम्बन्धी उत्कृष्टबन्धका स्वामित्व गुणस्थानोंकी अपेक्षा कहते हैं—

आउक्कस्स पदेसं, छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाण तणुकसाओ, बंधदि उक्कस्सजोगेण ॥२११॥

अर्थ—आयुकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध तृतीयगुणस्थानको छोड़कर प्रथमगुणस्थानसे सप्तमगुणस्थान तक छहगुणस्थानवर्ती जीव करते हैं। मोहनीयकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध नवम गुणस्थानवर्तीजीव करता है। शेष ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्र और अन्तरायका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध उत्कृष्टयोगोंका धारी सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्तीजीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। इन तीनों स्थानोंमें उत्कृष्टयोगद्वारा अल्पप्रकृतिबन्धकजीव उपर्युक्त मूलप्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता हैं।

विशेषार्थ—उत्कृष्टयोगके साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, नाम, गोत्र और वेदनीय इन छह कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशामक या क्षपक ज्ञानावरणादि छहोंकर्मोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्धक है। उत्कृष्टयोगके साथ सातप्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त चारोंगतिका पञ्चेन्द्रियसञ्ज्ञी, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टिजीव मोहनीयकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है तथा उत्कृष्टयोगके साथ आठ कर्मोंका बन्ध करनेवाला सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त चारोंगतिका पञ्चेन्द्रियसञ्ज्ञी, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टिजीव आयुकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है[१]। सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता और अप्रमत्तगुणस्थानमें आयुकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। अतः आयुकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त व अप्रमत्त इन ६ गुणस्थानोंमें ही सम्भव है।

आगे उत्तरप्रकृतियोंमें उत्कृष्टप्रदेशका स्वामित्व तीनगाथाओंमें कहते हैं—

सत्तर सुहुमसरागे, पंचऽणियट्टिम्हि देसगे तिदियं।
अयदे विदियकसायं, होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ॥२१२॥
छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं च सम्मगो य जदी।
सम्मो वामो तेरं, णरसुरआऊ असादं तु ॥२१३॥
देवचउक्कं वज्जं, समचउरं सत्थगमणसुभगतियं।
आहारमप्पमत्तो, सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥२१४॥ विसेसयं।

अर्थ—ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय इन १७ प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें होता है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें पुरुषवेद और चारसञ्ज्वलनकषाय, इन ५ प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध है, देशविरतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानकी चारकषाय, असंयतगुणस्थानवर्तीजीव अप्रत्याख्यानकी चार कषाय और हास्यादि ६ नोकषाय, निद्रा-प्रचला और तीर्थङ्करका

१. महाबन्ध पु० पृ० १४-२४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय-देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त-विहायोगति, सुभग, सुस्वर व आदेय इन १३ प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिजीव करता है और आहारकद्विकका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध अप्रमत्तगुणस्थानमें होता है। इन ५४ प्रकृतिबिना शेष ६६ प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टिजीव करता है ॥२१२-२१३-२१४॥

विशेषार्थ—छह[1] मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर उपशामक और क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत पांचज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवल इन चारदर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांचअन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त और उत्कृष्टप्रदेश-बन्धमें वर्तमान अन्यतर चारगतिका सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय-मिथ्यादृष्टिजीव स्त्यानगृद्धि आदि तीनदर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी सर्वपर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ सात-प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगयुक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर चारगतिका सम्यग्दृष्टिजीव है। सर्वपर्याप्तियोंसे पर्याप्त सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चार-गतिका सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टिजीव असातावेदनीयके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्कके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चारगतिका असंयतजीव है। प्रत्याख्यानावरण-कषायचतुष्कके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर तिर्यञ्च या मनुष्य सयता-संयतजीव है। चार सञ्ज्वलनकषायोंका बंध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर अनिवृत्तिकरणउपशामक या क्षपक क्रोधसञ्ज्वलनके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। तीन सञ्ज्वलनकषायोंका, दो सञ्ज्वलनकषायोंका और एक सञ्ज्वलन-

१. महाबन्ध पुस्तक ६ पृष्ठ ९२ के पेरा नं० १७२ से प्रारम्भ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषायका बन्ध करनेवाला उक्त अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती उपशमक या क्षपक क्रमशः मान, माया व लोभके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त आठों-कर्मोंकाबन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त मिथ्यादृष्टि सञ्ज्ञीतिर्यञ्च या मनुष्य नरकायुके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त आठों कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर चारोंगतिका सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टिजीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त आठों कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर चारगतिका सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि मनुष्यायुके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर सञ्ज्ञीतिर्यञ्च व मनुष्य मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देवायुके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त नामकर्मकी नरकसम्बन्धी २८ प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यमिथ्यादृष्टि नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वर के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त नामकर्मकी २३ प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर संज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, हुण्डकसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, बादर सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण इन नामकर्मकी २५ प्रकृतियोंके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त नामकर्मकी २५ प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य नामकर्मकी मनुष्यगति, ४ जाति, औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्ता-सृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रस इन नौ प्रकृतियोंके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त देवगतिसम्बन्धी नामकर्मकी २८ प्रकृतियोंके साथ सातमूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय, तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देवगति, वैक्रियकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय इन नामकर्मकी ९ प्रकृतियोंके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। नामकर्मकी ३० प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयत आहारकशरीर व आहारकशरीरअङ्गोपाङ्गके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त नामकर्मकी २९ प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोग सहित चारोंगतिका सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिजीव चारसंस्थान और चारसंहननके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है यही जीव वज्रर्षभ-नाराचसंहननके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है, किन्तु मिथ्यादृष्टिके स्थानपर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि कहना चाहिए। सर्वपर्याप्तियोंसे पर्याप्त नामकर्मकी २५ प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य अथवा देव नामकर्मकी परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभ इन पांच प्रकृतियोंके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योत-प्रकृतिके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी भी उक्त जीव ही है, किन्तु २५ प्रकृतियोंके स्थानपर २६ प्रकृतियां कहना चाहिए। सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त नामकर्मकी २९ प्रकृतियोंके साथ सातमूलप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि-मनुष्य तीर्थङ्करप्रकृतिके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है[1]।

अब मूलप्रकृतिमें जघन्यप्रदेशबन्धसम्बन्धी स्वामित्व कहते हैं—

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णये जोगे।
सत्तण्हं तु जहण्णं, आउगबंधेवि आउस्स ॥२१५॥

अर्थ—सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकजीव अपनी पर्यायके प्रथमसमयमें जघन्यउपपाद-योगसे आयुबिना सातमूल प्रकृतियोंका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है पश्चात् आयुका बन्ध होनेपर उसी जीवके आयुकर्मका भी जघन्यप्रदेशबन्ध होता है।

अथानन्तर उत्तरप्रकृतियोंमें प्रदेशबन्धसम्बन्धी स्वामित्व कहते हैं—

घोडणजोगोऽसण्णी, णिरयदुसुरणिरयआउगजहण्णं।
अपमत्तो आहारं, अयदं तित्थं च देवचऊ ॥२१६॥

अर्थ—घोटमानयोगोंका धारक असञ्ज्ञीजीव नरकद्विक, नरकायु और देवायुका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है तथा आहारकद्विकका अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव जघन्यप्रदेशबन्ध करता है। (अतः इसके अपूर्वकरणसे बहुत प्रकृतियोंका बन्ध होता है।)

---

१. महाबन्ध पु. ६ पृ. ९५ पर समाप्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयतगुणस्थानवर्तीजीव तीर्थङ्करप्रकृति और देवचतुष्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग) इन ५ प्रकृतियोंका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।

विशेषार्थ—नामकर्मकी ३१ प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोटमान जघन्ययोगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयतजीव आहारकद्विक (आहारकशरीर व आहारकशरीरअङ्गोपाङ्ग) का जघन्यप्रदेशबन्ध करता है[1]। नामकर्मकी २९ प्रकृतियोंके साथ सातमूलकर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्ययोगसे युक्त प्रथमसमयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टिमनुष्य देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है[2]। नामकर्मकी ही ३० प्रकृतियोंके साथ सातप्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य-उपपादयोगसे युक्त प्रथमसमयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतरदेव या नारकी तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है[3]।

उपरोक्तगाथा कथित ११ प्रकृतिबिना शेष उत्तरप्रकृतियोंमें विशेषता दिखाते हैं—

चरिमअपुण्णभवत्थो, तिविग्गहे पढमविग्गहम्हि ठिओ।
सुहुमणिगोदो बंधदि, सेसाणं अवरबंधं तु ॥२१७॥

अर्थ—६०१२ क्षुद्रभवोंमें से अन्तिम क्षुद्रभवमें स्थित और विग्रहगतिके तीन-मोड़ामें से प्रथमवक्रगतिमें स्थित सूक्ष्मनिगोदियाजीव उपर्युक्तगाथा कथित ११ प्रकृति-बिना शेष १०९ प्रकृतियोंका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।

विशेषार्थ—उपर्युक्त सूक्ष्मनिगोदियाजीवके सबसे जघन्य उपपादयोग होता है जो अनन्तरवर्तीसमयमें एकान्तानुवृद्धियोगरूप हो जानेसे वृद्धिको प्राप्त हो जाता है इसीलिए उपर्युक्त जीवके प्रथमसमयमें जघन्यप्रदेशबन्ध होता है।

इसप्रकार जघन्य और उत्कृष्टप्रदेशबन्धके स्वामी कहे। जहांपर उत्कृष्ट अर्थात् सबसे अधिकपरमाणु बंधते हैं वह उत्कृष्टप्रदेशबन्ध है तथा जहांपर अल्पतम कार्मणपरमाणुओंका बन्ध होता है वह जघन्यप्रदेशबन्ध है। चारप्रकारके बन्धमें पहले जो प्रकृतिबन्ध कहा वह मूल व उत्तरप्रकृतिरूप है उनमें से एकजीवके एकसमयमें

---

१. महाबन्ध पु ६ पृ. ११५। २. महाबन्ध पु. ६ पृ. ११४। ३. महाबन्ध पु. ६ पृ. ११४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युगपत् बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके जघन्यादि भेदरूप स्थिति-अनुभाग और प्रदेशरूपबन्ध होता है।

एकजीवके एककालसम्बन्धी बन्धयोग्यप्रकृतियोंकी गुणस्थानापेक्षा सन्दृष्टि—

गुणस्थान	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अन्तराय	एकजीवके एककालमें बन्धयोग्य कुल प्रकृतियां
मिथ्यात्व	५	९	१	२२	१	२३-२५-२६-२८-२९-३०	१	५	६७-६९-७०-७२-७३-७४
सासादन	५	९	१	२१	१	२८-२९-३०	१	५	७१-७२-७३
मिश्र	५	६	१	१७	०	२८-२९	१	५	६३-६४
असंयत	५	६	१	१७	१	२८-२९-३०	१	५	६४-६५-६६
देशसंयत	५	६	१	१३	१	२८-२९	१	५	६०-६१
प्रमत्त	५	६	१	९	१	२८-२९	१	५	५६-५७
अप्रमत्त	५	६	१	९	१	२८-२९-३०-३१	१	५	५६-५७-५८-५९
अपूर्वकरण	५	६-४	१	९	०	२८-२९-३०-३१-१	१	५	५५-५६-५७-५८-२६
अनिवृत्ति-करण	५	४	१	५-४-३-२-१	०	१	१	५	२२-२१-२०-१९-१८
सूक्ष्म-साम्पराय	०	४	१	०	०	१	१	५	१७
उपशान्तमोह	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षीणमोह	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सयोगी	०	०	१	०	०	०	०	०	१
अयोगी	०	०	०	०	०	०	०	०	०
कुल योग	५	९-६-४	१	२२-२१-१७-१३-९-५-४-३-२-१	१	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१	१	५	७४-७३-७२-७१-७०-६९-६७-६६-६५-६४-६३-६१-६०-५९-५८-५७-५६-५५-२६-२२-२१-२०-१९-१८-१७ और १

आगे प्रकृति व प्रदेशबन्धके कारणरूप योगस्थानका स्वरूप-संख्या और स्वामी ४२ गाथाओंसे कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोगट्ठाणा तिविहा, उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
भेदाएक्केक्कंपि य, चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ॥२१८॥

अर्थ—योगस्थान तीनप्रकारके हैं—उपपादयोगस्थान, एकान्तवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान तथा इनमें भी १४ जीवसमासकी अपेक्षा प्रत्येकके १४-१४ भेद हैं उनमें भी प्रत्येकके जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्यअनुत्कृष्ट के भेदसे तीन भेद हैं ।

विशेषार्थ—उत्पन्न होनेके प्रथमसमयमें उपपादयोग होता है, द्वितीय समयसे लेकर शरीरपर्याप्तिसे अपर्याप्त रहनेके अन्तिम समयतक एकान्तानुवृद्धियोग होता है । विशेष इतना है कि लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुबन्धके योग्य कालसे नीचे अर्थात् अपने जीवितके दो त्रिभागमें एकान्तानुवृद्धियोग होता है । एकान्तानुवृद्धियोगके पश्चात् परिणामयोग होता है[1] । सात लब्ध्यपर्याप्त जीवसमासोंके उपपादयोगस्थान, एकान्तानुवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान अर्थात् तीनों ही योगस्थान होते हैं । सात निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवसमासोंके उपपादयोगस्थान व एकान्तानुवृद्धियोगस्थान होते हैं । सात निवृत्तिपर्याप्तकों के परिणामयोगस्थान ही होता है[2] ।

आगे उपपादयोगस्थानका स्वरूप कहते हैं—

उववादजोगठाणा भावादिसमयट्ठियस्स अवरवरा ।
विग्गहइजुगदिगमणे जीवसमासे मुणेदव्वा ॥२१९॥

अर्थ—उपपादयोगस्थानकी एकसमयकी स्थिति होती है, मोड़ेवाली विग्रहगतिके प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान होता है तथा जो जीव बिना मोड़ाके ऋजुगतिसे सीधा जाकर नवीनपर्यायको धारणकरे उसके प्रथमसमयमें उत्कृष्ट उपपादयोगस्थान होता है वे उपपादयोगस्थान १४ जीवसमासों में जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—**शंका**—पर्यायधारण करनेके प्रथमसमयमें तो अपर्याप्तावस्था ही है वहां पर्याप्तजीवसमासमें उपपादयोगस्थान कैसे कहा ?

समाधान—निर्वृत्त्यपर्याप्तजीवके पर्याय धारण करनेके प्रथमसमयमें जो योगस्थान है वह होता पर्याप्तजीवसमासमें उपपादयोगस्थान जानना, क्योंकि उसके पर्याप्तनामकर्मका उदय है और लब्ध्यपर्याप्तकजीवके पर्यायके प्रथमसमयमें जो योगस्थान होता है वह

१. धवल पु. १० पृ. ४२० । २. धवल पु. १० पृ. ४०३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपर्याप्तजीवसमासमें उपपादयोगस्थान जानना, क्योंकि उसके अपर्याप्तनामकर्मका उदय है। 'उपपद्यते' अर्थात् जीवके द्वारा पर्यायके प्रथमसमयमें प्राप्त किया जाए वह उपपाद है, इस उपपादयोगस्थानके सर्वसामान्यको आदि लेकर जो भेद हैं वे जीवकी नवीनपर्याय धारण करनेके प्रथमसमयमें ही होते हैं। उसका जघन्य व उत्कृष्टकाल एकसमय है[1]। विग्रहगतिमें वर्तमान जीवके तद्भवस्थ होनेके प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोग होता है[2]। ऋजुगतिसे तद्भवस्थ होनेके प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोग होता है।

अब परिणामयोगस्थानका स्वरूप कहते हैं—

परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति।
लद्धिअपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोधव्वा ॥२२०॥

अर्थ—शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेके समयसे आयुके अन्तपर्यन्त परिणामयोगस्थान होता है और जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है ऐसे लब्ध्यपर्याप्तकजीवके अपनी आयु (श्वासके अठारहवेंभागप्रमाण अर्थात् १ सेकिण्डके २४वें भागप्रमाण) के दो त्रिभाग व्यतीत हो जानेपर शेष अन्तिमत्रिभागके प्रथमसमयसे अन्तसमयपर्यन्त स्थितिके सर्वभेदोंमें उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारके परिणामयोगस्थान जानना।

विशेषार्थ—पर्याप्त होनेके प्रथमसमयसे लेकर ऊपर सर्वकाल परिणामयोग होता है। यद्यपि गाथामें व धवल पु. १० पृ. ४२०, ४२२, ४२७ व ४३१ पर शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त होनेपर 'परिणामयोग' होता है ऐसा कहा गया है तथापि ध. पु. १० पृ. ५५ पर कहा है कि 'एक भी पर्याप्तिके अपूर्ण रहनेपर पर्याप्तकोंमें परिणामयोग नहीं होता इस बातके ज्ञापनार्थ "सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ" ऐसा सूत्रमें कहा गया है[3]।

लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुबन्धके योग्यकालमें अपने जीवितके त्रिभागमें परिणामयोग होता है। लब्ध्यपर्याप्तकोंके आयुबन्धकालमें ही परिणामयोग होता है ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि इस प्रकारसे जो जीव परिणामयोगमें स्थित है एवं उपपादयोगको नहीं प्राप्त हुआ है उसके एकान्तानुवृद्धियोगके साथ परिणामके (परिणमन) होनेमें विरोध आता है[4]।

---

१. "जहण्णुक्कसेण एग समओ" धवल पु. १० पृ. ४२०। २. 'पढमसमय तब्भवत्थस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स' धवल पु. १० पृ. ४२१। ३. एक्काए वि पज्जत्तीए असमत्ताए पज्जत्तएसु परिणामजोगो ण होदि त्ति जाणावणट्ठं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो त्ति उत्तं। (धवल पु. १० पृ. ५५) ४. लद्धिअपज्जत्ताणमाउअबंधकाले चेव परिणामजोगो होदि त्ति के वि भणंति। तण्ण घडदे, परिणामजोगे ट्ठिदस्स अपत्तुववादजोगस्स एयंताणुवड्ढिजोगेण परिणामविरोहादो। (धवल पु. १० पृ. ४२०-२१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सगपज्जत्तीपुण्णे, उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं, लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठं वि ॥२२१॥

अर्थ—अपनी-अपनी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके ऊपर अर्थात् शरीरपर्याप्तिके प्रथमसमयके पश्चात् सर्व जीवोंके उत्कृष्टयोग हो सकता है, किन्तु शरीरपर्याप्तिके समय सबके जघन्यपरिणामयोग होता है। लब्ध्यपर्याप्तकोंके भी उत्कृष्टपरिणामयोग होता है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म व बादर निर्वृत्तिपर्याप्तकोंके शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त होनेके प्रथमसमयमें ही जघन्य परिणामयोग होता है। परम्परापर्याप्तिसे अर्थात् सर्वपर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुए उनके ही उत्कृष्टपरिणामयोग होता उसके आगे सूक्ष्म व बादर लब्ध्यपर्याप्तकोंके उत्कृष्टपरिणामयोग होते हैं[1]।

अथानन्तर एकान्तानुवृद्धियोगस्थानका स्वरूप कहते हैं—

एयंतवड्ढिठाणा, उभयट्ठाणाणमंतरे होंति ।
अवरवरट्ठाणाओ, सगकालादिम्हि अंतम्हि ॥२२२॥

अर्थ—उपपादयोग और परिणामयोगरूप दोनोंस्थानोंके बीचमें अर्थात् पर्याय धारण करनेके द्वितीयसमयसे शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके पूर्वसमयतक एकअन्तर्मुहूर्तकाल-पर्यन्त अपर्याप्तावस्थामें एकान्तानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। उस एकान्तानुवृद्धिका जघन्य-स्थान तो अपने कालके प्रथमसमयमें और उत्कृष्टस्थान अन्तिमसमयमें होता है। अतएव एकान्त अर्थात् नियमसे अपने समयोंमें समय-समयप्रति असंख्यात-असंख्यातगुणी अविभागप्रतिच्छेदोंकी वृद्धि जिसमें हो वह एकान्तानुवृद्धिस्थान है। इसप्रकार योगोंके विशेष १४ जीवसमासोंमें जानना। लब्ध्यपर्याप्तकोंके जीवितके अन्तिम त्रिभागके नीचे एकान्तानुवृद्धियोग होता है।

विशेष—परिणामयोगके सम्बन्धमें दो मत हैं। एकमतानुसार सर्वपर्याप्तियोंसे

---

१. सुहुम-बादराणं णिव्वत्तिपज्जत्तयाणमेदे जहण्णया परिणामजोगा। सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढम समए चेव होदि। तस्सुवरि तेसिं चेव उक्कस्सिया परिणामजोगा। परंपरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स। तदुवरि सुहुम-बादराणं लद्धिअपज्जत्तयाणमुक्कस्सया परिणामजोगा। (धवल पु. १० पृ. ४२२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्तक होनेपर परिणामयोग होता है[1]। दूसरे मतानुसार शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त होनेके प्रथमसमयमें परिणामयोग होता है[2]।

अब योगस्थानके अवयव कहते हैं—

अविभागपडिच्छेदो, वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं।
गुणहाणीवि य जाणे, ठाणं पडि होदि णियमेण ॥२२३॥

अर्थ—सर्वयोगस्थान अर्थात् सर्वउपपादयोगस्थान, सर्वएकान्तानुवृद्धियोगस्थान व सर्वपरिणामयोगस्थान इन तीनोंमें से प्रत्येक जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण हैं[3] उनमें एक-एकस्थानके प्रति अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और गुणहानि ये पांच भेद हैं। जगत्श्रेणी अर्थात् सात राजूके जितने प्रदेश होते हैं उनके असंख्यातवेंभाग सर्वयोगस्थानोंकी संख्या है।

विशेषार्थ—अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं, वर्गके समूहको वर्गणा, वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक अथवा जिसमें क्रमवृद्धि और क्रमहानि होती है वह स्पर्धक है[4] तथा स्पर्धकके समूहको गुणहानि कहते हैं एवं गुणहानिके समूहको नानागुणहानि और नानागुणहानिका समूह योगस्थान है।

सात लब्ध्यपर्याप्तकोंके उपपादयोगस्थान सबसे स्तोक हैं उनसे उनके एकान्तानुवृद्धियोगस्थान असंख्यातगुणे हैं उनसे उनके ही परिणामयोगस्थान असंख्यातगुणे हैं। सात निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवसमासोंके उपपादयोगस्थान सबसे स्तोक हैं उनसे उनके ही एकान्तानुवृद्धियोगस्थान असंख्यातगुणे हैं। सात निर्वृत्तिपर्याप्तकोंके अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि परिणामयोगस्थानोंको छोड़कर उनमें अन्य योगस्थानोंका अभाव है[5]।

आगे इनका स्वरूप कहते हैं—

पल्लासंखेज्जदिमा, गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे।
गुणहाणिफड्डयाओ, असंखभागं तु सेढीये ॥२२४॥

अर्थ—एक योगस्थानमें गुणहानिकी शलाकाएं (संख्या) पल्यके असंख्यातवें-

---

१. धवल पु. १० पृ. ५५, सूत्र २४ की टीका। २. धवल पु. १० पृ. ४२२। ३. धवल पु. १० पृ. ४०४। ४. धवल पु १० पृ. ४५२। ५. धवल पु. १० पृष्ठ ४०४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागप्रमाण हैं। यह नानागुणहानिका प्रमाण है और एकगुणहानिमें स्पर्धक जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्रमाण है।

विशेषार्थ—परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जघन्ययोगस्थानमें जो स्पर्धक हैं उनसे जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्थानजाकर स्पर्धकोंकी दूनी वृद्धि होती है। इसप्रकार उत्कृष्टयोगस्थानके प्राप्त होने तक दूनी-दूनी वृद्धि जानना चाहिए। एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण है और नानायोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। तदनुसार नानायोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर स्तोक हैं और इनसे एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं[1]।

फड्डयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियाखावा।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ॥२२५॥

अर्थ—एक-एक स्पर्धकमें वर्गणाओंकी संख्या उतनी ही अर्थात् जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण है और एक-एकवर्गणामें असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाणवर्ग हैं।

विशेषार्थ—जगच्छ्रेणिके असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणाएं मिलकर एकस्पर्धक होता है[2]। जगत्श्रेणीको जगत्श्रेणीसे गुणा करना अर्थात् ७ राजू × ७ राजू = ४९ वर्गराजू, इसको जगत्प्रतर कहते हैं। (वर्गणामें वर्ग) असंख्यातजगत्प्रतर × $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ (वर्गणाओंकी संख्या) = लोकपूर्ण अर्थात् समस्तजीवप्रदेश। अथवा श्रेणीके असंख्यातवेंभाग वर्गणाशलाकाओंमें यदि लोकप्रमाण जीवप्रदेश पाए जाते हैं तो एकवर्गणामें कितने जीवप्रदेश पाए जावेंगे, इसप्रकार प्रमाणसे फलगुणित इच्छाको अपवर्तित करनेपर असंख्यात प्रतरप्रमाण जीवप्रदेश एक-एक वर्गणामें होते हैं[3]।

एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं ॥२२६॥

अर्थ—एक-एक वर्गमें असंख्यातलोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद होते हैं और अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण प्रदेशोंमें शक्तिकी जघन्यवृद्धिरूप जानना।

भावार्थ—एक-एक जीवप्रदेशमें असंख्यातलोकप्रमाण योगाविभागप्रतिच्छेद होते हैं[4]। जिसका दूसराभाग न हो सके ऐसे शक्तिके अंशको अविभागप्रतिच्छेद

---

१. महाबन्ध पु. ६ पृ. ८। २. ध. पु. १० पृ. ४४३। ३. महाबन्ध पु. ६ पृ. ६।
४. ध. पु. १० पृ. ४४० सूत्र १७८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं[1]। यहां पर्यन्त विपरीतक्रमसे कथन किया अतः सीधाक्रम इसप्रकार है कि अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह वर्ग, वर्गका समूह वर्गणा वर्गणाका समूह स्पर्धक, स्पर्धकका समूह गुणहानि, गुणहानिका समूह नानागुणहानि और नानागुणहानिका समूह स्थान है ऐसा समझना चाहिए।

अथानन्तर योगस्थानोंमें सर्वस्पर्धकादिकोंका प्रमाण कहते हैं—

इगिठाणफड्डयाओ, वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी।
सेढि असंखेज्जदिमा, असंखलोगा हु अविभागा ॥२२७॥

अर्थ—एकयोगस्थानमें सर्वस्पर्धक, सर्व वर्गणाओंकी संख्या और प्रदेशगुणहानिआयामका प्रमाण सामान्यसे जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र है। अतः इनसभी का प्रमाण भी सामान्यसे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र ही कहा है। एकयोगस्थानमें अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं।

विशेषार्थ—एकगुणहानिमें जो स्पर्धकका प्रमाण है, उसको एकस्थानगत नानागुणहानिके प्रमाणसे गुणा करनेपर जो लब्ध आया उतनेप्रमाण एकयोगस्थानमें स्पर्धक हैं। एकस्पर्धकगत वर्गणाओंको एकयोगस्थानमें पाए जानेवाले स्पर्धके प्रमाणसे गुणा करनेसे जो लब्ध आया उतनेप्रमाण एकयोगस्थानमें वर्गणाएं होती हैं।

एकस्पर्धकमें वर्गणाका प्रमाण जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र है उसको एकगुणहानिगत स्पर्धकके प्रमाणसे गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण एकगुणहानिसम्बन्धी वर्गणाएं हैं। यहांपर गुणकारका प्रमाण जगत्श्रेणीके भागहारप्रमाणसे असंख्यातगुणाहीन है, अन्यथा श्रेणीके असंख्यातवेंभागकी सिद्धि नहीं हो सकती सो उक्त प्रमाण ही गुणहानिआयाम कहलाता है तथा इन सभीको सामान्यसे जगच्छ्रेणीका असंख्यातवांभाग कहते हैं, क्योंकि असंख्यातके बहुत भेद हैं। एकयोगस्थानमें समस्तअविभागप्रतिच्छेद असंख्यातलोकप्रमाण ही हैं, कर्मपरमाणुके समान अथवा जघन्यज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके समान अनन्त नहीं है, क्योंकि जीवके प्रदेश लोकप्रमाण हैं। तथैव एकस्थानमें नानागुणहानि, पल्यको दोबार असंख्यातका भाग देनेपर जो

---

१. ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा स्वीकार किया जावे तो जिसप्रकार कर्मके अविभागप्रतिच्छेद अनन्त होते हैं, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि योगके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण असंख्यातलोकप्रमाण है" ऐसा यहां ऊपर गाथासूत्रमें भी कहा गया है। (ध. पु. १० पृ. ४४१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण आवे उतने प्रमाण है। नानागुणहानिके बराबर दोके अङ्क लिखकर परस्पर गुणाकरनेपर जो लब्ध आया वह अन्योन्याभ्यस्तराशि है, इसका प्रमाण एकबार असंख्यातसे भाजित पल्यके बराबर है। एकगुणहानिसम्बन्धी स्पर्धकका प्रमाण दोबार असंख्यातसे भाजित जगच्छ्रेणीप्रमाण है तथा एकबार असंख्यातका भाग जगत्श्रेणीमें देनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण एक स्पर्धकमें वर्गणाएं हैं। एकगुणहानिसम्बन्धी-स्पर्धकोंमें एकस्पर्धककी वर्गणाके प्रमाणसे गुणित प्रमाणराशि एकगुणहानिकी सर्ववर्गणाएं हैं। इन वर्गणाओंको एकयोगस्थानगत नानागुणहानिसे गुणा करनेपर एकयोगस्थान-सम्बन्धी समस्तवर्गणाओंका प्रमाण प्राप्त होता है। इसप्रकार इन नानागुणहानियोंको आदि लेकर क्रमसे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा जानना।

सव्वे जीवपदेसे, दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा।
उवरिं उत्तरहीणं, गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ॥२२८॥

अर्थ—जीवके सर्वप्रदेश लोकप्रमाण हैं उनमें डेढगुणहानिआयामका भाग देनेपर जो संख्या आवे वह प्रथमगुणहानिके प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणा होती है[1]। आगें-आगे एक-एकविशेष (चय) घटानेसे एक-एकवर्गणा होती है तथा प्रत्येकगुणहानिमें प्रथमनिषेकका प्रमाण क्रमसे आधा-आधा जानना एवं प्रथमवर्गणाको दो गुणहानिका भाग देनेपर जो प्रमाण होता है उतना विशेष (चय) का प्रमाण समझना[2]।

विशेषार्थ—निषेकसम्बन्धी सन्दृष्टि निम्नप्रकार है—(धवल पु. १० पृ. ७६)

१६	३२	६४	१२८	६४	३२	१६	८
२०	४०	८०	११२	५६	२८	१४	७
२४	४८	९६	९६	४८	२४	१२	६
२८	५६	११२	८०	४०	२०	१०	५

८८ + १७६ + ३५२ + ४१६ + २०८ + १०४ + ५२ + २६=१४२२

१. "पढमाए वग्गणाए जीवपदेसपमाणेण सव्वजीवपदेसा केवचिरेण कालेण अवहिरिज्जंति? दिवड्ढ गुणहाणि-ट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जंति।" धवल पु. १० पृ. ४४५-४४६। २. "को विसेसो? दोगुणहाणीहि सेडीहि असंखेज्जदिभागमेत्ताहि पढमवग्गणाजीवपदेसेसु खंडिदेसु तत्थ एगखंडमेत्तो।" धवल पु. १० पृ. ४४४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फड्डयसंखाहि गुणं, जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी ।
बिदियादिवग्गणाणं, वग्गा अविभाग अहियकमा ॥२२६॥

अर्थ—जघन्यवर्गको स्पर्धककी संख्यासे गुणा करनेपर उस स्पर्धककी प्रथमवर्गणाके एक वर्गका प्रमाण प्राप्त होता है । द्वितीयादिवर्गणाके वर्गमें क्रमशः एक-एक-अविभागप्रतिच्छेद बढ़ता जाता है ।

विशेषार्थ—**"अविभागपडिच्छेदो"** इत्यादि गाथाओंका अर्थस्पष्ट करते हैं—अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानि और स्थान इतने भेद कहे यहां एकजीवके एकसमयमें होनेवाले गुणहानियोंके समूहको नानागुणहानि और नानागुणहानिके समूहको स्थान कहते हैं तथा स्पर्धकके समूहको गुणहानि, क्रमसे वृद्धिरूप वर्गणासमूहको स्पर्धक, वर्गके समूहको वर्गणा, अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं और जीवप्रदेशोंमें कर्मप्रदेशसमूहको ग्रहण करनेकी शक्तिमें जघन्यवृद्धि अविभागप्रतिच्छेद कहलाता है । यहां योगका अधिकार है अतः योगरूप शक्तिकी जघन्यवृद्धिको ग्रहण किया ।

वर्गकी सन्दृष्टि 'व' अक्षर जानना, उसके आगे जघन्यशक्तिप्रमाणवाले जितने प्रदेश पाए जावें उतने लिखने सो इसप्रकार जघन्यशक्तिप्रमाण शक्तिधारक जीवके प्रदेश असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाण हैं । तद्यथा—लोकप्रमाण जीवप्रदेशोंको डेढगुणहानिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने जघन्यशक्तिप्रमाण शक्तिके धारक प्रदेश हैं । इसप्रकार एकगुणहानिमें जितना वर्गणाका प्रमाण कहा उसप्रमाणको डेढ़गुणा किया सो डेढ़गुणहानिका प्रमाण हुआ, यह जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र ही है । इसका भाग जीवप्रदेशोंमें देनेपर (लोक=जगत्श्रेणी×जगत्श्रेणी×जगत्श्रेणी ÷ $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ =असंख्यात-श्रेणी×श्रेणी) असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाण जीवप्रदेशोंका प्रमाण होता है सो इतने प्रदेशोंके समूहको प्रथम वर्गणा कहते हैं[1] । एकप्रदेशसम्बन्धीशक्तिको वर्ग कहा था, यहां असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाण आत्मप्रदेशोंका समूह वर्गणा है अतः एकवर्गणामें असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाण वर्ग कहे हैं ।

जिस जघन्यशक्तिरूपवर्गमें जितने अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण कहा उससे एकअधिक अविभागप्रतिच्छेद जिनमें पाए जावें ऐसी शक्तिके धारक जितने जीवप्रदेश हों

१. धवल पु. १० पृ ४४३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उतने प्रदेश उसके ऊपर लिखना। वे प्रदेश प्रथमवर्गणामें जितने प्रदेश कहे थे उनमें एकविशेष (चय) प्रमाण कम जानने। प्रथमवर्गणामें जितने प्रदेश हैं उसमें दोगुण-हानिका भाग देनेपर जो प्रमाण हो वह विशेष (चय) का प्रमाण जानना[1]। विशेषकी सन्दृष्टि 'वि' जानना, जो एकगुणहानिमें वर्गणाओंका प्रमाण है उसको दूना करनेपर दोगुणहानिका प्रमाण होता है। इसप्रकार प्रथमवर्गणाके प्रदेशोंमें से विशेष (चय) का प्रमाण घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उतने प्रदेशोंके समूहकी द्वितीयवर्गणा होती है। यहां पूर्वोक्त जघन्यशक्तिसे एकअविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्तिके धारक प्रदेशोंको वर्ग कहते हैं और इनके समूहको द्वितीयवर्गणा जानना तथा द्वितीयवर्गणासम्बन्धी वर्गमें जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उससे एकअविभागप्रतिच्छेद जिसमें बढ़ता हो ऐसी शक्तिके धारक जितने जीवप्रदेश हों उतने उसके ऊपर लिखना सो द्वितीयवर्गणामें कहे उनमें से विशेष (चय) का प्रमाण घटानेपर जितना प्रमाण रहे उतने जानने। यहां द्वितीय-वर्गणासम्बन्धी वर्गके अविभागप्रतिच्छेदसे एकअविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग कहते हैं उनका समूह तृतीयवर्गणा जाननी। इसी क्रमसे एक-एक अवि-भागप्रतिच्छेदसे अधिकशक्ति लिये हुए एक-एकविशेष (चय) रूपसे घटते-घटते प्रमाण-सहित वर्गोंके समूहरूप एक-एकवर्गणा होती है। इसप्रकार जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण वर्गणा होती है उसीसमय प्रथमस्पर्धक होता है[2]। इसीलिए एकस्पर्धकमें जगत्-श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणा कही है इसकी सहनानी ४ का अङ्क है। इस प्रथमस्पर्धकको ही जघन्यस्पर्धक कहते हैं तथा इस प्रथमस्पर्धककी अन्तिमवर्गणाके वर्गमें अविभागप्रतिच्छेदोंका जो प्रमाण हुआ उसके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर देकर[3] प्रथमस्पर्धकके प्रथमवर्गणासम्बन्धी जघन्यवर्गमें जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उनसे दूने अविभागप्रतिच्छेदके धारक वर्ग पाए जाते हैं, उससे कम शक्तिकेधारक कोई प्रदेश नहीं पाए जाते। जघन्यवर्गसे दूने अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्तिको धारण करनेवाले जो जीव-प्रदेश हैं उन्हें वर्ग जानना और इनका समूह द्वितीयस्पर्धककी प्रथमवर्गणा जाननी। प्रथमस्पर्धककी अन्तिमवर्गणामें जो वर्गोंकी संख्या है उसमें से एक चय घटानेपर द्वितीय-स्पर्धककी प्रथमवर्गणामें वर्गोंकी संख्या प्राप्त होती है। इस प्रथमवर्गणाके वर्गसे एक अविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्तिके धारक जीवप्रदेश अर्थात् वर्ग हैं और ऐसे वर्गोंका समूह

१. ध. पु. १० पृ. ४४४ विशेषका प्रमाण "श्रेणीके असंख्यातवेंभागसे खंडित प्रथमवर्गणा।"
२. ध. पु. १० पृ. ४५२ 'जिसमें क्रमसे (एक-एकअविभागप्रतिच्छेदकी) वृद्धि हो वह स्पर्धक है।
३. ध. पु. १० पृ ४५५ सूत्र १८४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयवर्गणा है। उस द्वितीयस्पर्धककी प्रथमवर्गणासम्बन्धी प्रदेशोंके प्रमाणमें एक-विशेष (चय) के प्रमाणसे कम और एकअविभागप्रतिच्छेद अधिकवाले प्रदेशरूपवर्गोंका समूह द्वितीयस्पर्धककी द्वितीयवर्गणा है। इसी क्रमसे आगे प्रत्येकवर्गणामें एक-एक अविभागप्रतिच्छेदरूपसे अधिक शक्तिको लिए एक-एक विशेष (चय) से घटते प्रमाणको लिए हुए वर्ग होते हैं। जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणाओंके समूहको द्वितीय-स्पर्धक जानना।

द्वितीयस्पर्धककी अन्तिमवर्गणाके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर देकर[1] प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासम्बन्धी जघन्यवर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंसे तिगुने अविभाग-प्रतिच्छेदके धारक प्रदेश पाए जाते हैं, क्रमशक्तिकेधारक प्रदेश नहीं पाए जाते हैं। अतः जघन्यवर्गसे तिगुने अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्तिधारण करनेवाले तथा द्वितीयस्पर्धककी अन्तिमवर्गणाके प्रदेशोंसे एकविशेष (चय) हीन वर्गोंका समूह तृतीयस्पर्धककी प्रथम-वर्गणा है। इससे ऊपर पूर्ववत् जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणा होती हैं। क्रमशः प्रत्येकवर्गणा एक-एक अविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्तिके धारक तथा एक-एक विशेषसे हीनप्रमाणको लिये हुए वर्गोंके समूहरूप है और उन वर्गणाओंका समूह तृतीय-स्पर्धक है। इसी क्रमसे "फड्ढयसंखाहिगुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादि" इत्यादि गाथा-सूत्र २२९ में कथित क्रमसे जघन्यवर्गको अपने-अपने स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणाकरनेपर उस-उस स्पर्धककी प्रथमवर्गणा होती है। प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासम्बन्धी जघन्यवर्गका अर्थात् वर्गके अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाणको चौगुना करनेपर चतुर्थस्पर्धककी प्रथमवर्गणाके वर्गका अर्थात् वर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। पांचगुणा करनेपर पञ्चम-स्पर्धककी प्रथमवर्गणाके वर्गोंके अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, छहगुणा करनेपर छठेस्पर्धककी प्रथमवर्गणाके वर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इसप्रकार जिस स्पर्धककी प्रथम-वर्गणा विवक्षित हो उतना गुणा जघन्यवर्गको करनेपर विवक्षित स्पर्धकसम्बन्धी प्रथम-वर्गणाका वर्ग अर्थात् वर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण प्राप्त होता है[2] तथा प्रथम-वर्गणाके वर्गमें एक-एकअविभागप्रतिच्छेद बढ़ानेपर द्वितीयादिवर्गणाके वर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। इसप्रकार प्रत्येक वर्गणामें एक-एक विशेष (चय) हीन वर्गोंका प्रमाण क्रमसे जानना। जगच्छ्रेणीके असंख्यातभागप्रमाण वर्गणाओंके

१. ध.पु. १० पृ ४५५ सूत्र १८४। २. पढमिच्छसलागगुणा तत्थादीवग्गणा चरिमसुद्धा।
सेसेण चरिमहीणा सेसेगूणं तमाणासं॥ (षट् खं. सूत्र पु. १० पृ. ४५७)
यहां 'पढम'से अभिप्राय प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासे है। इच्छित शलाकाओंसे अभिप्राय अभीष्ट स्पर्धक संख्यासे है। उस संख्यासे आदिम वर्गणाको गुणित करनेपर वहांकी आदिम वर्गणाका प्रमाण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समूहको एकस्पर्धक जानना चाहिए[1]। जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्पर्धक होनेपर एकगुणहानि होती है, अतएव एकगुणहानिमें जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्पर्धक कहे हैं[2] इसकी सन्दृष्टि '९' का अङ्क जानना। इसके ऊपर द्वितीयगुणहानिके प्रथम-स्पर्धककी प्रथमवर्गणामें वर्गोंकी संख्या प्रथमगुणहानिके प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासे आधी समझनी। इस वर्गणाके वर्गोंमें अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण एकअधिक गुणहानि-के स्पर्धकोंकी संख्याप्रमाणसे जघन्यवर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उतना जानना तथा अविभागप्रतिच्छेदोंका क्रम पूर्वोक्त ही जानना एवं प्रदेशरूप वर्गोंकी संख्याप्रमाण प्रथमगुणहानिके प्रथमस्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणाके प्रमाणसे द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणाका प्रमाण आधा है और इसमें एक विशेष (चय) घटानेपर द्वितीयवर्गणाका प्रमाण होता है। द्वितीयगुणहानिमें विशेष (चय) का प्रमाण प्रथमगुणहानिके विशेष (चय) प्रमाणसे आधा जानना। इसीप्रकार एक-एक विशेष घटानेपर तृतीयादि वर्गणाका प्रमाण जानना, तथैव द्वितीयगुणहानिकी प्रथमवर्गणासे तृतीयगुणहानिकी प्रथमवर्गणामें वर्गोंकी संख्याका प्रमाण और विशेष (चय) का प्रमाण आधा-आधा जानना। ऐसे ही गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधाप्रमाण जानना। इसप्रकार पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण नानागुणहानि होती है[3] तब एकयोग-स्थान होता है, इसीलिए एकस्थानमें पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण नानागुणहानि कही हैं। यह सर्वकथन जघन्ययोगस्थानका जानना। इसप्रकार यह कथन शक्तिकी प्रधानतासे किया है, अब प्रदेशोंकी प्रधानतासे अङ्कसन्दृष्टि द्वारा कथन करते हैं—

माना कि सर्वजीवप्रदेश ३१००, नानागुणहानि ५, एकगुणहानिमें वर्गणाका

---

१. फद्दय परूवणाए असंखेज्जाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तीयो तमेग फद्दयं होदि ॥१८२॥ प्रथमस्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंसे द्वितीयवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अबिभागप्रतिच्छेद एकअविभागप्रतिच्छेदसे अधिक हैं। द्वितीयावर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंसे तृतीयवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद एक अविभागप्रतिच्छेदसे अधिक हैं। तृतीयवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंसे चतुर्थवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धो अविभागप्रतिच्छेद एक अविभागप्रतिच्छेदसे अधिक हैं। इसप्रकार अन्तिम वर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदों तक ले जाना चाहिए। इसके आगे नियमसे क्रमवृद्धिका व्युच्छेद हो जाता है। इसीप्रकार सब स्पर्धकोंके कहना चाहिए। (ध पु. १० पृ. ४५२-५३)

२. एकगुणहानि जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र है, क्योंकि नानागुणहानि शलाकाओंसे योगस्थानको भाजित करनेपर अध्वान का प्रमाण जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्राप्त होता है। (ध पु. १० पृ. ७४)

३. "णाणागुणहाणिसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ" धवल पु. १० पृ. ७४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणरूप गुणहानिआयाम ८, नानागुणहानिप्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेपर (२×२×२×२×२) अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण=३२। एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० में देनेपर ३१००÷३१=१०० सो यह अन्तिमगुणहानिका प्रमाण है इससे आदिगुणहानि पर्यन्त दूने-दूनेप्रमाण जीवप्रदेश हैं। अर्थात् १००, २००, ४००, ८००, १६०० इसलिए आदिगुणहानिसे आगे प्रत्येक गुणहानिप्रति आधा-आधाद्रव्य कहा है। यहां सर्वद्रव्य ३१०० में कुछअधिक डेढ़गुणहानिका भाग देनेपर गुणहानिआयाम ८ का डेढ़गुणा (१२) और कुछ अधिक कहनेसे एकके ६४ भागोंमें से ७ भाग अधिक $१२\frac{७}{६४}$ इसका भाग देनेपर $३१००\div१२\frac{७}{६४}=२५६$ प्राप्त हुए[1]। यह प्रथमगुणहानिके प्रथमस्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणामें जीवप्रदेशोंकी संख्या जाननी। दोगुणहानि (१६) का भाग प्रथमवर्गणा, २५६ में देनेपर (२५६÷१६) १६ आए यह विशेष (चय) का प्रमाण जानना। विशेषको दोगुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथमवर्गणाका प्रमाण होता है। इसप्रकार प्रथमवर्गणामें से एक-एक विशेष घटानेपर द्वितीयादिवर्गणा होती है। ऐसे एककम गुणहानिआयाम (७), इस विशेषको घटानेपर गुणहानिके अन्तिमस्पर्धककी अन्तिमवर्गणा होती है तथा गुणहानि-गुणहानिप्रति आदिवर्गणासे आदिवर्गणाका संख्याप्रमाण आधा-आधा जानना और विशेष (चय) का भी प्रमाण आधा-आधा जानना। इससे प्रथमवर्गणामें दोगुणहानिका भाग देनेपर विशेष (चय) का प्रमाण होता है, इसीकारण दोगुणहानिको निषेकहार कहते हैं ऐसा अङ्कसन्दृष्टिसे कथन किया तथैव अर्थसन्दृष्टिसे भी कथन जानना। सर्वजीवोंके प्रदेश लोकप्रमाण, नानागुणहानि पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण और एकगुणहानिका आयाम जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। इसप्रकार इनमें यथायोग्य कथन जान लेना। ऊपर यह सर्वकथन किया जा चुका है अतः यहां विशेष नहीं कहा है तथा वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि तथा नानागुणहानि और जघन्यस्थानमें अविभागप्रतिच्छेद प्राप्त करनेका विधान "धवल पु. १० योगचूलिका में पृ. ३९५ से ४१२ तक कहा है।"

अनुभागबन्धमें भी वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानिका कथन है तथा योगके प्रकरणमें भी इसीप्रकार कथन है। दोनोंमें अन्तर इतना है कि अनुभागबन्धमें जो एक वर्गकी शक्ति है, वही उस वर्गणाकी शक्ति है। प्रदेशकी हीनाधिकतासे

१. धवल पु. १० पृ. ४४६-४४७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसशक्तिमें हानि-वृद्धि नहीं होती,[1] किन्तु योगप्रकरणमें वर्गके शक्तिअंशमें (वर्गणामें) वर्गोंकी संख्यासे गुणा करनेपर वर्गणाकी शक्ति प्राप्त होती है[2]। जैसे प्रथमवर्गणामें १२८ जीवप्रदेश हैं और एकप्रदेश (वर्ग) के शक्तिअंश—अविभागप्रतिच्छेद १०० हैं तो प्रथमवर्गणाके कुल अविभागप्रतिच्छेद १००×१२८=१२,८०० होते हैं। दूसरीवर्गणामें वर्गोंकी संख्या १२६ (चय हीन) है। वर्गके अविभागप्रतिच्छेद १०१ हैं। दूसरीवर्गणा के कुल अविभागप्रतिच्छेद १०१×१२६=१२,७२६। इसप्रकार दूसरी वर्गणामें शक्ति-अंशकी हानि हुई।

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तऽवरफड्डयावड्ढी।
अंतरछक्कं मुच्चा, अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ॥२३०॥

अर्थ—जघन्ययोगस्थानमें अंगुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्पर्धक बढ़नेपर दूसरा योगस्थान होता है। छह अन्तरस्थानोंको छोड़कर जघन्ययोगस्थानसे उत्कृष्ट-योगस्थान तक प्रतिस्थान अंगुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्पर्धकोंकी वृद्धि होती है।

विशेषार्थ—सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तकजीवके पूर्वोक्त सबसे जघन्यउपपाद-योगस्थान पाया जाता है इसके अनन्तर पश्चात्वर्तीस्थानको आदि लेकर सर्वोत्कृष्ट-योगस्थानपर्यन्त सान्तर व निरन्तर और सान्तर-निरन्तर (उभय) सभीयोगस्थानोंमें एक-एक योगस्थानकेप्रति सूच्यंगुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धक युगपत् बढ़ते हैं तब उत्तरोत्तरस्थान होता है। प्रथमजघन्यस्थानसे सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण जघन्यस्पर्धक दूसरेस्थानमें अधिक हैं। द्वितीययोगस्थानमें स्पर्धकविन्यासकी वृद्धि नहीं है, किन्तु दोनों ही स्थानोंमें स्पर्धक समान हैं इसलिए जघन्ययोगस्थान-सम्बन्धी स्पर्धक स्तोक हैं ऐसा कहनेपर जघन्ययोगस्थानको जघन्यस्पर्धकके प्रमाणसे (गुणा ?) करनेपर उपरिमयोगस्थानके जघन्यस्पर्धकोंकी अपेक्षा वे स्तोक हैं यह अभिप्राय है[3]।

श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्ययोगस्थानके प्रक्षेपभागहारका विरलन-कर जघन्ययोगस्थानको समखण्ड करके देनेपर प्रत्येक विरलनरूपके प्रति एकयोग-

---

१. बंधाणुभागखडयघादेहि विणा उक्कड्डुणा-ओकड्डुणाहि वड्ढि-हाणियो ण होंति त्ति जाणावणट्ठं। एग परमाणुहि ट्ठिदाणुभागस्स ट्ठाणत्तपदुप्पायणट्ठं। ण भिण्ण परमाणुट्ठिद अणुभागो ट्ठाण। (ध.पु. १२ पृ. ९६)

२. "पढमफद्दयस्स आदिवग्गणायामे आदिवग्गेण गुणिदे पढमफद्दय आदिवग्गाणा होदि।" (ध.पु १० पृ. ४६४)

३. धवल पु. १० पृ. ४८२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक्षेपका प्रमाण प्राप्त होता है। अब उनमें से एक प्रक्षेपको ग्रहणकर जघन्ययोगस्थानको प्रतिराशि करके उसमें मिला देनेपर द्वितीयस्थान होता है। द्वितीयप्रक्षेपको ग्रहणकर द्वितीयस्थानको प्रतिराशि करके उसमें मिला देनेपर तृतीययोगस्थान होता है पश्चात् तृतीयप्रक्षेपको ग्रहणकर तृतीययोगस्थानको प्रतिराशि करके उससे मिला देनेपर चतुर्थयोगस्थान होता है। इसप्रकार विरलन मात्र सर्वप्रक्षेपोंके प्रविष्ट होने तक ले जाना चाहिए तब दुगुणी वृद्धिका स्थान उत्पन्न होता है[1]।

जघन्ययोगस्थानसम्बन्धी प्रक्षेपभागहारका जो कि श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्रमाण व कृतयुग्म है, जघन्यस्थानके स्पर्धकोंमें भाग देनेपर अंगुलके असंख्यातवेंभाग मात्र जघन्यस्पर्धकप्रमाण एक योगप्रक्षेप आता है। यह योगप्रक्षेप वृद्धि व हानिका अभाव होनेसे अवस्थित है। इस प्रक्षेपमें जघन्यस्थानको प्रतिराशि करके मिलानेपर द्वितीययोगस्थानके स्पर्धकसम्बन्धी अविभागीप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं, ऐसा कहा गया है। इन अंगुलके असंख्यातवेंभागमात्र जघन्यस्पर्धकोंसे चरमस्पर्धकसे आगे अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि चरमस्पर्धकके अविभागप्रतिच्छेदोंसे प्रक्षेपके अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हीन पाए जाते हैं। इसलिए ये प्रक्षेपअविभागप्रतिच्छेद यथास्वरूपसे लोकमात्र जीवप्रदेशोंमें विभक्त होकर गिरते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए[2]।

अब छह अन्तरोंको छोड़कर जघन्यस्थानसे उत्कृष्टस्थानपर्यन्त जीवोंके योगस्थान होते हैं, सो कहते हैं—

सरिसायामेणुवरिं, सेढिअसंखेज्जभाग ठाणाणि।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं, फड्डयमिह जायदे चयदो ॥२३१॥

अर्थ—समानआयामवाले स्थानोंके ऊपर चयसे श्रेणोके असंख्यातवेंभागप्रमाणस्थान चढ़नेपर एक अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न होता है।

विशेषार्थ—[3]शंका—इसप्रकार अवस्थितक्रमसे प्रक्षेपोंकी वृद्धि होनेपर कितने योगस्थान जाकर एक अपूर्वस्पर्धक होता है?

समाधान—ऐसी शङ्का होनेपर उत्तर देते हैं कि वह श्रेणीके असंख्यातवेंभाग मात्र योगस्थान जाकर उत्पन्न होता है, क्योंकि साधिक चरम योगस्पर्धकमात्र वृद्धिके

१. धवल पु. १० पृ ४८९। २. धवल पु. २ पृ ४८४-८५। ३. धवल पु. १० पृ ४८७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिना अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न नहीं होता। चरमस्पर्धकमें योगप्रक्षेप श्रेणीके असंख्यातवें-भागमात्र हैं, क्योंकि एक योगप्रक्षेपका चरमस्पर्धकमें भाग देनेपर श्रेणीका असंख्यातवां-भाग पाया जाता है। इसकारण तत्प्रायोग्य श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्रमाण प्रक्षेपोंकी वृद्धि हो जानेपर वहां पूर्वके स्पर्धकोंकी अपेक्षा एक अधिक (नवीन) स्पर्धकोंके अन्तिम-स्पर्धकमें जितने जीवप्रदेश हैं उतने जीवप्रदेश मात्र अनन्तर (अन्तिम) अधस्तनस्पर्धकके वर्गोंको वृद्धिप्राप्त प्रक्षेपोंमें से ग्रहण करके ऊपर यथाक्रमसे स्थापितकर फिर उनमें से चरमस्पर्धकके जीवप्रदेशोंके बराबर ही जघन्यस्थानसम्बन्धी जघन्य (प्रथमवर्गणाके) वर्गोंको ग्रहणकरके उनमें ही यथाक्रमसे मिलाकर शेषको पहिलेके समान ही असंख्यात-लोकसे खण्डित करनेपर जो लब्ध हो उसको विवक्षित स्थानसम्बन्धी स्पर्धककी वर्गणाओं-के जीवप्रदेशोंसे पृथक्-पृथक् गुणित करके इच्छित वर्गणाके जीवप्रदेशोंको समखण्ड करके देनेपर विवक्षितस्थान उत्पन्न होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यहांसे आगे एक-एक प्रक्षेपके बढ़नेपर स्पर्धक अवस्थित ही होकर श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र स्थान उत्पन्न होते हैं फिर इसप्रकार अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न होता है। इसप्रकार अन्तिम-योगस्थान तक ले जाना चाहिए।

शङ्का—अब १+२+३+४+५+६+७+८+९+१०+११+१२+१३+१४+१५ इसप्रकार एकको आदि लेकर एक अधिक क्रमसे जघन्यस्पर्धकशलाकाओंको स्थापितकर संकलनसूत्रके अनुसार मिलाकर $\left(\frac{१५+१}{२}\times १५=१२०\right)$ जघन्यस्थानसम्बन्धी जघन्यस्पर्धककी शलाकाओंका प्रमाण क्यों नहीं बतलाया?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इन स्पर्धकशलाकाओंके असंख्यातवें-भागमात्र ही जघन्यस्पर्धकशलाकाएं जघन्यस्थानमें पाई जाती हैं[१]।

आगे इसीविषयमें और भी विशेष कथनकी प्रतिज्ञा आचार्य करते हैं—

एदेसिं ठाणाणं, जीवसमासाण अवरवरविसयं।
चउरासीदिपदेहिं, अप्पाबहुगं परूवेमो ॥२३२॥

अर्थ—ये जो योगस्थान कहे हैं उनमें १४ जीवसमासोंके जघन्योत्कृष्टकी

१. धवल पु. १० पृ. ४८७-८८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षा तथा "चकार" से उपपादिक तीनप्रकारके योगोंकी अपेक्षा ८४ स्थानोंमें अब अल्पबहुत्वका कथन करेंगे।

विशेषार्थ—सबसे अल्पस्थानको बताकर फिर क्रमशः वृद्धिगतस्थानोंका कथन करना अल्पबहुत्वकथन है। चौदह जीवसमासोंका योगाविभागप्रतिच्छेदअल्पबहुत्व तीन प्रकार है—१. स्वस्थान २. परस्थान ३. सर्वपरस्थान[1]। इनमें सर्वपरस्थान-अल्पबहुत्व जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्टके भेदसे तीनप्रकारका है[2]। आगे ८ गाथाओंसे १४ जीवसमासोंके योगाविभागप्रतिच्छेदसम्बन्धी सर्वपरस्थानके जघन्योत्कृष्ट अल्पबहुत्वको कहेंगे।

उसे ही कहते हैं—

सुहुमगलद्धिजहण्णं, तण्णिव्वत्तीजहण्णयं तत्तो।
लद्धिअपुण्णुक्कस्सं, बादरलद्धिस्स अवरमदो ॥२३३॥

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु।
बादरलद्धिस्स वरं, बीइंदियलद्धिगजहण्णं ॥२३४॥

बादरणिव्वत्ति वरं, णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो।
एवं बितिबितितिचतिचचउविमणो होदि चउविमणो ॥२३५॥

तह य असण्णीसण्णी, असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं।
सुहुमेइंदियलद्धिगअवरं एयंतवड्ढिस्स ॥२३६॥

सण्णिस्सुववादवरं, णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स।
एयंतवड्ढिअवरं, लद्धिदरे थूलथूले य ॥२३७॥

तह सुहुमसुहुमजेट्ठं, तो बादरबादरे वरं होदि।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ॥२३८॥

अंतरमुवरीवि पुणो, तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं।
एयंतवड्ढिठाणा, तसपणलद्धिस्स अवरवरा ॥२३९॥

१. धवल पु. २ पृ. ४०४। २ धवल पु. १० पृ ४०८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लद्धीणिव्वत्तीणं, परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ, अंतरअंतरिय उवरूवरिं ॥२४०॥

अर्थ—सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग सबसे स्तोक है। उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है[1] ।।२३३।।

सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग बादरएकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यउपपादयोगकी अपेक्षा असंख्यातगुणा है। उससे बादरएकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है। उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है और उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है[2] ।।२३४।।

द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यउपपादयोगसे बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्तिअपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा और उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है[3] ।।२३५।।

चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्टउपपादयोगकी अपेक्षा असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपाद-

१. धवल पु. १० पृ. ४१४। २. धवल पु. १० पृ. ४१४। ३. धवल पु. १० पृ. ४१४-४१५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5213

योग असंख्यातगुणा है, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा और उससे सूक्ष्म एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है[1] ।२३६।

सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यएकान्तानुवृद्धियोगसे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा और उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है[2] ।

बादरएकेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकके जघन्यएकान्तानुवृद्धियोगकी अपेक्षा सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृ त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है । उससे आगे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानोंका अन्तर करके सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा और उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असख्यातगुणा है[2] ।।२३८।।

उससे आगे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र अन्तर होकर सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृ त्तिपर्याप्तका जघन्यपरिणामयोग असख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृ त्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृ त्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है । इसके आगे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र अन्तर होकर द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है । उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्ता-

१ धवल पु. १० पृ. ४१५-४१६ । २. धवल पु १० पृ. ४१६ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है[१] ।।२३९।।

इससे आगे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानोंका अन्तर करके द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट परिणामयोग असख्यातगुणा है, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है। इससे आगे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानोंका अन्तर करके द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है। उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है। इससे आगे श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानोंका अन्तर होकर द्वीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्ति-

१. धवल पु. १० पृ. ४१७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है[1] ॥२४०॥

एदेसिं ठाणाओ, पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला, अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ॥२४१॥

अर्थ—उपर्युक्त गाथाओंमें कथित ८४ स्थानोंमें क्रमसे पूर्वस्थानसे अनन्तरवर्ती-स्थान पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे होकर भी अपनी अधस्तनगुणहानिशलाका (नानागुणहानि) से उत्पन्न जो अन्योन्याभ्यस्तराशि है उस प्रमाण हैं तथा वही गुणकारशलाका है।

विशेषार्थ—यहां सर्वत्र गुणकार पल्योपमका असंख्यातवांभाग होकर भी वह अपने इच्छित योगसे नीचेकी नानागुणहानिशलाकाओंका विरलनकर दुगुणा करके उनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाण होता है[2]।

पूर्वमें कथित जघन्य और उत्कृष्टरूप उपपादादि तीनों स्थानोंके निरन्तर-एकयोगस्थानके बीचमें अन्य योगस्थान न हो इसप्रकार प्रवर्तनेका काल कितना है? सो कहते हैं—

अवरुक्कस्सेण हवे, उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण, इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥२४२॥

अर्थ—उपपादयोगस्थान और एकान्तानुवृद्धियोगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल जघन्य और उत्कृष्टसे एकसमय है, क्योंकि उपपादयोगस्थान जन्मके प्रथमसमयमें होता है। एकान्तानुवृद्धियोगस्थान समय-समयवृद्धिरूप भिन्न-भिन्न होते हैं[3] तथा परिणाम-योगस्थानका काल एक समयसे आठसमय पर्यन्त है।

अट्ठसमयस्स थोवा, उभयदिसासुवि असंखसंगुणिदा ।
चउसमयोत्ति तहेव य, उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥२४३॥

१. ध. पु. १० पृ. ४१८-४१९-४२०। २. ध. पु. १० पृ. ४२०। ३. ध. पु. १० पृ. ४२० व ४२३ या ४९८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आठसमय निरन्तर प्रवर्तनेवाले योगस्थान सबसे स्तोक हैं और सातसे चारसमयतक प्रवर्तनेवाले ऊपरितन और अधस्तन ये दोनोंही प्रकारके स्थान असंख्यातगुणे हैं, किन्तु तीन और दोसमयतक प्रवर्तनेवाले उपरितनस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—जिन योगस्थानोंमें जीव एकसमयको आदि लेकर उत्कर्षसे चारसमय परिणमते हैं वे चतुःसामयिक अर्थात् चारसमय रहनेवाले योगस्थान कहे जाते हैं। उनका प्रमाण श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र है। इसीप्रकार पञ्चसामयिक, षट्सामयिक, सप्तसामयिक, अष्टसामयिक जानना तथापि यवमध्यसे ऊपरके सप्तसामयिक, षट्सामयिक, पञ्चसामयिक, चतुःसामयिक तथा उपरिमत्रिसामयिक व द्विसामयिक योगस्थान श्रेणीके असंख्यातेंभागमात्र हैं[1]।

अल्पबहुत्वके अनुसार आठसमय योग्य योगस्थान सबसे स्तोक हैं अर्थात् आगें कहे जानेवाले योगस्थानोंसे स्तोक हैं। दोनोंही पार्श्वभागोंमें सातसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं, दोनों ही पार्श्वभागोंमें छहसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यात-असंख्यातगुणे हैं, दोनों हो पार्श्वभागोंमें पांचसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असख्यातगुणे हैं, दोनों ही पार्श्वभागोंमें चारसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं, उनसे तीनसमय योग्य उपरिमयोगस्थान असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे भी दोसमय योग्य योगस्थान असख्यातगुणे हैं। यहां गुणकार पल्योपमके असंख्यातवेंभाग है[2]। इसका विशेष स्पष्टीकरण यवाकार रचना से होता है जो अगले पृष्ठ पर है—

१. धवल पु. १० पृ. ४९४-४९५। २. धवल पु. १० पृ. ५०३-५०४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

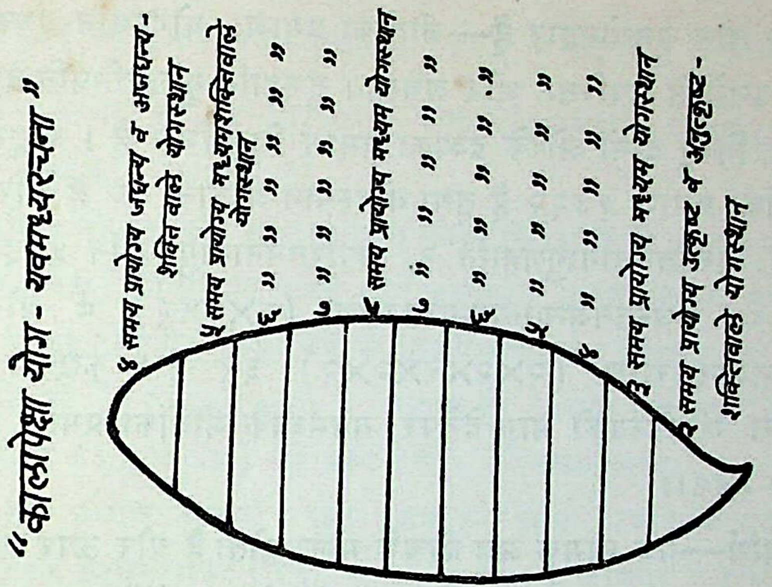

आठसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान स्तोक हैं।
दोनों पार्श्वभागोंमें स्थित सातसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।
" " " " " छह " " " " " " "
" " " " " पांच " " " " " " "
" " " " " चार " " " " " " "
उपरितन तीन " " " " " " "
" दो " " " " " " "

आगे पर्याप्तत्रसजीवों के परिणामयोगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण कहते हैं—

मज्झे जीवा बहुगा, उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता।
हेट्ठिमगुणहाणिसलादुवरि सलागा विसेसऽहिया ॥२४४॥

दव्वतियं हेट्ठुवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं ॥२४५॥

चत्तारि तिण्णि कमसो, पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ॥२४६॥

अर्थ—जीवोंके प्रमाणरूप यवरचनाके बीचमें जीव बहुत हैं। ऊपर तथा नीचे क्रमसे विशेष हीनरूप कम-कम हैं। अधस्तनगुणहानिशलाकासे उपरितनगुणहानिशलाका विशेष अधिक है ॥२४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यके तीन अनुयोगद्वार हैं—जीवोंका प्रमाण, योगस्थान-अध्वान और गुण-हानिआयाम। इनमें से उपरितन और अधस्तन गुणहानि-गुणहानिप्रति द्रव्य दुगुने-दुगुने होते चले गए हैं, किन्तु दोनों ओरके द्रव्यका प्रमाण भिन्न-भिन्न है। अङ्कसन्दृष्टिमें यव-मध्यके सर्वजीवोंका प्रमाण १४२२ है तथा योगस्थान-अध्वान ३२ हैं और एकगुणहानि-आयाम ४ है। अधस्तननानागुणहानि ३, उपरितननानागुणहानि ५ इसप्रकार सर्व-नानागुणहानि ८, अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशि (२×२×२) ८ और (१४२२) उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि (२×२×२×२×२) ३२ है। कुछकम तीनगुणहानि ($११\frac{७}{६४}$) से कुल जीवद्रव्यको भाग देनेपर यवमध्यके जीवोंका प्रमाण (१२८) प्राप्त होता है ।।२४५-२४६।।

विशेषार्थ—यव नामक अन्न बीचमें मोटा होता है और ऊपर तथा नीचे क्रमसे घटता-घटता होता है उसीप्रकार त्रसपर्यायसम्बन्धी योगस्थानोंमें यवाकारमें जो मध्यका स्थान है वहां जीवोंका प्रमाण बहुत है अर्थात् मध्यवर्ती स्थानकेधारकजीव बहुत हैं तथा उस मध्यके स्थानसे ऊपरके स्थानोंमें और नीचेके स्थानोंमें क्रमसे जीवोंका प्रमाण घटता-घटता है उन स्थानोंके धारकजीव क्रमसे घटते-घटते हैं। इसप्रकार यह यवाकार-रचना है वहां नीचेकी गुणहानिशलाकासे ऊपरकी गुणहानिशलाकाका प्रमाण कुछ अधिक है।

यवाकार जीवोंकी संख्यासम्बन्धी रचनामें पहले अङ्कसन्दृष्टिसे कथन करते हैं—

यहां द्रव्य तो त्रसपर्याप्तजीवोंका प्रमाण १४२२ और त्रसपर्याप्तजीवसम्बन्धी परिणामयोगस्थानका अध्वान ३२, गुणहानिआयामका प्रमाण ४, ऐसी सर्वगुणहानि ८, इनको नानागुणहानि कहते हैं। अधस्तनगुणहानिका प्रमाण ३ और उपरितनगुणहानिका प्रमाण ५ इसप्रकार नानागुणहानि ८ होती हैं। नानागुणहानिकी संख्याके बराबर (उतनी-बार) दोका अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण आता है सो अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशि (२×२×२) ८ है एवं उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण (२×२×२×२×२) ३२ है तथा दोनों अन्योन्याभ्यस्तराशियां मिलकर (३२+८) ४० प्रमाण होती हैं। यहां कुछ कम तीनगुणी गुणहानिका भाग द्रव्यमें देनेपर जीवोंकी संख्या यवाकारके मध्यकी होती है, सो गुणहानिके आयामका प्रमाण ४ को तिगुना करनेसे (४×३) १२ हुए। किंचित् ऊन कहनेका यहां अभिप्राय यह है कि एकके ६४ भागोंमें ५७ भाग ($\frac{५७}{६४}$) घटानेसे समच्छेदविधान द्वारा ७११ का ६४वां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग $\left(\frac{७११}{६४}\right)$ हुआ सो इसका भाग सर्वद्रव्य १४२२ में देनेपर $\left(१४२२ \div \frac{७११}{६४} = \frac{१४२२}{१} \times \frac{६४}{७११} = \right)$ १२८ आया सो यह यवाकारमें मध्यका प्रमाण जानना, क्योंकि मध्यमें जीव अधिक हैं ऐसा कहा गया है[1]।

मध्यसे उपरितन और अधस्तनगुणहानिके निषेकोंमें से अपनी-अपनी गुणहानिसम्बन्धी विशेष (चय) का प्रमाण क्रमसे हीन जानना। अपनी-अपनी गुणहानिके प्रथमनिषेक (१२८) को दोगुणी गुणहानिके आयामप्रमाणरूप दोगुणहानि (२×८=१६) का भाग देनेपर जो (१२८÷८=१६) प्रमाण हो अथवा अन्तिमनिषेक (८०) में एकअधिक गुणहानि (१+४÷५) का भाग देनेपर जो लब्ध आवे (८०÷५=१६) वह विशेष (चय) का प्रमाण जानना। अतः अधस्तन और उपरितन गुणहानिका द्रव्य और विशेष (चय) आधा-आधा (१६, ८, ४, २ व १) जानना। इसीको कहते हैं—

उपरितन ५ गुणहानियोंमें से प्रथमगुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेकके प्रमाण (१२८) में दोगुणहानि (८) का भाग देनेपर १२८÷८=१६ आए सो यह विशेष (चय) जानना। इसप्रकार प्रत्येक निषेकमें से १६, १६ घटाना तथा अन्तिमनिषेकमें से एककम गुणहानिआयामप्रमाण विशेष (चय) घटानेपर आदिनिषेक १२८, मध्यनिषेक ११२ व ९६ और अन्तिमनिषेक ८० हुआ। १२८+११२+९६+८० इन सभीको जोड़ देनेपर ४१६ हुए सो यह उपरितन प्रथमगुणहानिका सर्वधन जानना सो यवमध्यके प्रमाणको एकअधिक तिगुणे गुणहानिआयामसे गुणा करनेपर एवं गुणहानिआयामका भाग देनेपर प्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य जानना। यवमध्यके प्रमाण १२८ को तिगुनीगुणहानि (१२) में एकअधिक (१२+१=१३) से गुणा करने तथा गुणहानिआयामका भाग देनेपर ४१६ आए, यह प्रथमगुणहानिका द्रव्य है। ऊपर एक-एक गुणहानिमें द्रव्य और विशेषका प्रमाण आधा-आधा जानना। एककम नानागुणहानिका जो प्रमाण है उतनी बार २ के अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसका भाग प्रथमगुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तिमगुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण होता है। उपरितनगुणहानि ५ में से एककम किया तो ५−१=४ लब्ध आया अतः ४ बार दोके अङ्क लिखकर (२×२×२×२) परस्परगुणा करनेपर १६ प्राप्त हुआ, इसका भाग प्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य ४१६ में देनेपर ४१६÷१६=२६, सो यह अन्तिमगुणहानिका द्रव्य जानना।

१. धवल पु. १० पृ ८०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधस्तनगुणहानि ३ हैं। प्रथमगुणहानिसम्बन्धी यवमध्यके प्रमाणमें से एक विशेष (चय) घटानेपर अधस्तनप्रथमगुणहानिका प्रथमनिषेक प्राप्त होता है। यवमध्य १२८ मेंसे विशेषका प्रमाण १६ घटानेपर १२८−१६=११२ रहा, यह आदिनिषेक जानना तथा इसके एक-एक निषेकमें से एक-एक विशेष (चय) घटाते-घटाते अन्तिम निषेकमें एककम गुणहानिआयामप्रमाण विशेष घटानेपर ६४ होते हैं। मुख ६४, भूमि ११२, इनको जोड़ देनेपर ६४+११२=१७६ हुआ इसका आधा ८८, इसको पद (४) से गुणा करनेपर ८८×४=३५२ यह अधस्तनप्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य है। अर्थात् यवमध्य १२८ को ११ से गुणा करनेपर (१२८×११=१४०८) लब्धराशिमें ४ का भाग देनेपर १४०८÷४=३५२ आया। यवमध्यको दूना करके ४ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण उपरितनप्रथमगुणहानिसम्बन्धीद्रव्यमें से यहां ऋणका प्रमाण जानना। यवमध्य १२८ का दूना २५६ को ४ से भाग दिया तो २५६÷४=६४ आया यह ऋणरूपद्रव्य जानना। इस ऋणरूप द्रव्यको उपरितनप्रथमगुणहानिके द्रव्यमें से घटानेपर अधस्तनप्रथमगुणहानिका द्रव्य होता है तथा उपरितनगुणहानिसम्बन्धी निषेकसे अधस्तनगुणहानिके निषेकमें उपरितनगुणहानिके चयका प्रमाण ऋणरूप जानना। जैसे—उपरितनगुणहानिका प्रथमनिषेक १२८ है यहां चयका प्रमाण १६ घटानेपर अधस्तनगुणहानिके प्रथमनिषेकका प्रमाण (१२८−१६=११२) होता है इसीप्रकार सर्वत्र जानना। गुणहानि-गुणहानिप्रति द्रव्य आधा-आधा जानना वहां एककम अधस्तनगुणहानिमें मात्र दोके अङ्कका भाग गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तिमगुणहानिका द्रव्य होता है तथा ऋण भी जो प्रथमगुणहानिमें कहा वह गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधा होता है। (६४।३२।१६) एवं "अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं" इस सूत्रसे अन्तधन ६४ को गुणाकार दो से गुणा करनेपर ६४×२=१२८ और आदि (१६) घटानेपर १२८−१६=११२, सो यह अधस्तनगुणहानियोंमें ऋणका प्रमाण होता है अथवा गुणहानिआयामके प्रमाणसे अधस्तन अन्तिमगुणहानिमें विशेष (चय) के प्रमाण ४ का गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतना यवमध्यके प्रमाणमें से घटानेपर जो शेष रहे उतना ऋणरूप द्रव्य जानना। तद्यथा—गुणहानिआयाम ४ में अधस्तन अन्तिमगुणहानिके विशेष (चय) का गुणा किया तो (४×४)=१६ लब्ध आया, इसको यवमध्य (१२८) में से घटानेसे १२८−१६=११२ शेष रहे सो यह सर्वऋणका प्रमाण है तथा ६४+३२+१६=११२ यह अधस्तनगुणहानिके प्रथमनिषेकका द्रव्य जानना एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

अधस्तन व उपरितनसर्वगुणहानियोंके सर्वद्रव्यको "अंतधणं गुणगुणियं" इत्यादि सूत्रसे जोड़कर लब्धराशिमें ऋणरूपद्रव्य घटानेपर शुद्धद्रव्य १४२२ होता है। यहां गुणहानिके प्रत्येक निषेकमें से घटाए हुए विशेष (चय) का प्रमाण, योगोंके स्थानरूप निषेकोंमें जीवोंका प्रमाण एवं गुणहानिमें सर्वद्रव्यका प्रमाण और अधस्तनगुणहानिमें उपरितन-गुणहानिसे जितना द्रव्य कम है वह ऋणका प्रमाण है।

उपरितनप्रथमगुणहानि ४१६ और अधस्तनप्रथमगुणहानि ३५२ है अतः अधस्तनप्रथमगुणहानिमें ६४ ऋणरूप जोड़नेसे उपरितनप्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्रव्यके बराबर हो जाता है। अधस्तनद्वितीयगुणहानिके द्रव्य (१७६) में ३२ ऋणरूप द्रव्य जोड़नेसे (१७६+३२) २०८ उपरितनद्वितीयगुणहानिसम्बन्धी द्रव्यके बराबर हो जाता है। अधस्तनतृतीयगुणहानिके द्रव्य (८८) में ऋणरूपद्रव्य १६ जोड़नेसे (८८+१६) १०४ उपरितनतृतीयगुणहानिसम्बन्धी द्रव्यके बराबर हो जाता है। इसप्रकार ६४+३२+१६=११२ अधस्तनगुणहानिमें कुल ऋणका प्रमाण होता है।

"त्रसजीवोंके योगस्थानोंमें जीव यवमध्य"

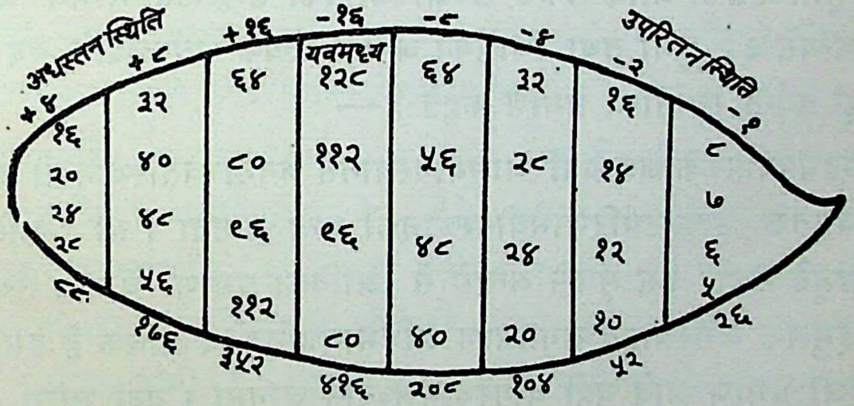

नोट—अङ्कसन्दृष्टिकी अपेक्षा योगस्थानोंमें कुल जीवोंकी संख्या १४२२ है। इसमें से ६१६ जीव तो यवमध्यगुणहानिके नीचे हैं और ३९० जीव यवमध्यगुणहानिके ऊपर हैं और ४१६ यवमध्यगुणहानिमें हैं[1]।

पुण्णतसजोगठाणं, छेदाऽसंखस्सऽसंखबहुभागे।
दलमिगिभागं च दलं, दव्वदुगं उभयदलवारा ॥२४७॥

१. धवल पु. १० पृ. ७६।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—द्रव्य और स्थितिका प्रमाण क्रमसे पर्याप्तत्रसजीवराशिके प्रमाण तथा पर्याप्तत्रससम्बन्धी परिणामयोगस्थानोंके प्रमाण जानना और पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण नानागुणहानियोंमें असंख्यातका भाग देनेसे असंख्यातबहुभागका जो प्रमाण हो उसका आधा तो नीचेकी गुणहानिका और शेषका आधा तथा शेष बचा हुआ असंख्यातवां एकभाग मिलकर ऊपरकी नानागुणहानिका प्रमाण होता है इसप्रकार दोनों नानागुणहानियोंका प्रमाण समझना।

विशेषार्थ—जैसे द्रव्यका प्रमाण १४२२ कहा वैसे संख्यातका भाग प्रतराङ्गुलमें देनेपर जो लब्ध आवे उसका जगत्प्रतरमें भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतने प्रमाण पर्याप्तत्रसजीव हैं[१] तथा जिसप्रकार योगस्थानअध्वान ३२ कहा वैसे ही द्वीन्द्रियपर्याप्तक के जघन्यपरिणामयोगसे सञ्ज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्टपरिणामयोगपर्यन्त जितने योगस्थान हों उतना योगस्थानका अध्वान जानना, वे स्थान ८४ कहे वहां द्वीन्द्रियपर्याप्तके जघन्यपरिणामयोगस्थानका प्रमाण जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागको ७५ बार पल्यके असंख्यातवेंभागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उसको अपवर्तन करनेपर जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र ही हुआ तथा इसमें सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागमात्र मिलनेपर अनन्तरस्थान हुआ उसको आदि लेकर सञ्ज्ञीपर्याप्तका उत्कृष्टयोगस्थान अङ्कसन्दृष्टिकी अपेक्षा जघन्यसे ३२ गुणा तथा यथार्थकी अपेक्षा पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभाग गुणे हैं सो यहां पर्यन्त स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

द्वीन्द्रियपर्याप्तकके जघन्यपरिणामयोगस्थानसे अनन्तरवर्तीस्थान तो आदि जानना और सञ्ज्ञीपर्याप्तके उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानको अन्त जानना। सो **"आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदेरुवसंजुदे ठाणे"** इस सूत्रसे अन्तमें से आदिका प्रमाण घटाना तथा एक-एक स्थानमें सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद अधिक हैं इसलिए इनका भाग देनेपर, जो प्रमाण आवे वही योगस्थानअध्वान जानना। यहां भाज्य और भागहारमें जघन्यस्पर्धकको अपवर्तन करके देना। अब इन स्थानोंके धारक कितने-कितनेजीव पाए जाते हैं ऐसा भेद करने के लिए विधान कहते हैं जैसे—आठनानागुणहानिमें ३ नीचे की ओर ५ ऊपर की कही थीं वैसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण सर्वनानागुणहानिमें असंख्यातका भाग देना उसमें से एकभाग पृथक् रखकर शेष बहुभागका

१ "पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेणजगपदरे भागे हिदे सव्व जोगट्ठाणाणं तसपज्जत्तजीवपमाण होदि।" (धवल पु. १० पृ. ६१)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधा तो नीचेकी नानागुणहानिका प्रमाण जानना और बहुभागका आधा और जो एक-भाग पृथक् रखा था वह मिलानेपर जो प्रमाण हो. उतना ऊपरकी नानागुणहानिका प्रमाण जानना।

णाणागुणहाणिसला, छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ ।
गुणहाणीणद्धाणं, सव्वत्थवि होदि सरिसं तु ॥२४८॥

अर्थ—उपरितन और अधस्तनसर्वगुणहानियोंको मिलानेसे नानागुणहानियोंकी संख्या पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागमात्र है, इस नानागुणहानिका भाग पूर्वोक्त योगस्थानअध्वानमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना एकगुणहानिके आयामका प्रमाण है[1]। जैसे—योगस्थानअध्वान ३२ में सर्वनानागुणहानि ८ का भाग देनेपर ३२÷८=४ आए, यह एकगुणहानिके आयामका प्रमाण है वैसे ही यहां भी जानना। गुणहानिआयाम उपरितन और अधस्तनगुणहानिमें समान है तथा एक-एक गुणहानिमें इतने स्थान हैं। गुणहानिआयामकी दूनी दोगुणहानि जानना।

अण्णोण्णगुणिदरासी, पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु ।
हेट्ठिमरासीदो पुण, उवरिल्लमसंखसंगुणिदं ॥२४९॥

अर्थ—अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण है, किन्तु उसमें अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशिसे उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणी है।

विशेषार्थ—नानागुणहानिप्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है। जैसे अधस्तनअन्योन्याभ्यतराशि (८) और उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि (३२) कही उसीप्रकार सामान्यसे पल्यके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है तथापि नीचेकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे उपरितनअन्योन्या-भ्यस्तराशि असंख्यातगुणी है। वहां जघन्यपरिणामयोगसे उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान पर्यंन्त योगस्थानोंमें जीवोंका विभाग अङ्कसन्दृष्टिवत् इसप्रकार जानना।

किंचित्ऊन तिगुने गुणहानिआयामका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है[2]। इसमें दो गुणहानिका भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है। इस

१ "णाणागुणहाणिसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। णाणागुणहाणिसलगाहि जोगट्ठाणद्धाणे ओवट्ठिदे तदुवलभादो।" (धवल पु. १० पृ. ७४) २. "सुहुमबुद्धीए णिहालिज्जमाणे किंचूणतिण्णिगुणहाणि-मेत्तजवमज्झाणि होंति।" (धवल पु. १० पृ. ७८) "एदं किंचूणतोहि गुणहाणीहि ओवट्ठिदे जेण जवमज्झ-मागच्छदि तेण जवमज्झपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे किंचूणतिण्णिगुणहाणिकालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं।" (धवल पु. १० पृ. ८०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चयको दोगुणहानिसे गुणा करे तो यवमध्य होता है तथा उसके ऊपरकी गुणहानिमें प्रथमनिषेक यवमध्यके प्रमाण उपरितन द्वितीयादिक निषेक एक-एक चयरूपहीन जानना, सो एककम गुणहानिके आयामप्रमाण चय यवमध्यमें से घटानेपर प्रथमगुणहानिके अन्तिमनिषेकका प्रमाण होता है। इसमें एक विशेष (चय) घटानेपर यवमध्यसे आधा-प्रमाण होता है वही द्वितीयगुणहानिका प्रथमनिषेक जानना। इसके ऊपर एक विशेष घटानेपर द्वितीयादिक निषेक होते हैं, सो एककम गुणहानिआयामप्रमाण विशेष घटाने-पर अन्तिमनिषेक होता है। यहां प्रथमगुणहानिमें जो चयका प्रमाण था उसका आधा द्वितीयगुणहानिमें चयका प्रमाण जानना तथा द्वितीयगुणहानिके अन्तिमनिषेकमें से एक-चय घटानेपर द्वितीयगुणहानिके प्रथमनिषेकसे आधाप्रमाण होता है वही तृतीयगुणहानि-का प्रथमनिषेक जानना। इससे द्वितीयगुणहानिके चयसे आधाप्रमाण जो चय सो एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादिनिषेक होते हैं। इसप्रकार अन्तिमगुणहानिपर्यन्त जानना। गुणहानि-गुणहानिप्रति जीवद्रव्य आधा-आधा जानना तथा अधस्तनगुणहानिमें यवमध्यके नीचे प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकसे अन्तिमगुणहानिके अन्तिमनिषेकपर्यन्त गुणहानि-गुणहानिप्रति समस्त निषेकोंमें जो-जो उपरितनगुणहानिके निषेकोंमें प्रमाण कहा उसमें से अपनी-अपनी गुणहानिमें जितना-जितना विशेष (चय) का प्रमाण कहा उतना-उतना निषेकमें से घटानेपर निषेकका प्रमाण होता है। इसीको कहते हैं—

उपरितनप्रथमगुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेक यवमध्यके बराबर है उसमें से प्रथमगुणहानिमें जितना विशेष (चय) का प्रमाण कहा उतना घटानेपर अधस्तनप्रथम-गुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेकका प्रमाण होता है तथा उपरितनप्रथमगुणहानिके द्वितीय-निषेकके प्रमाणमें से प्रथमगुणहानिके विशेष (चय) का प्रमाण घटानेपर अधस्तन प्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्वितीयनिषेकका प्रमाण होता है। इसप्रकार प्रथमगुणहानिके अन्तिमनिषेकपर्यन्त जानना। उपरितनद्वितीयगुणहानिके प्रथमनिषेकसम्बन्धी प्रमाणमें से द्वितीयगुणहानिके विशेष (चय) का प्रमाण घटानेपर अधस्तनद्वितीयगुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेकका प्रमाण जानना। उपरितनद्वितीयगुणहानिके द्वितीयनिषेकमें से उतना ही चय घटानेपर अधस्तनद्वितीयगुणहानिके द्वितीयनिषेकका प्रमाण होता है इसप्रकार अन्तिमनिषेकपर्यन्त जानना। ऐसे ही तृतीयादिक गुणहानिमें भी ऋणका प्रमाण अपने-अपने विशेष (चय) के समान जानकर निषेकोंका प्रमाण जानना। अधस्तनगुणहानिकी रचनामें ऋणको मिलानेपर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह उपरितनगुणहानि रचनाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान है। इसप्रकार जिस-जिस निषेकमें जितना-जितना प्रमाण हो उस-उस योगस्थान-में उतना-उतना जीवोंका प्रमाण जानना। "मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि" इस सूत्रके अनुसार मुख अन्तिमनिषेक और भूमि आदिनिषेकको मिलाकर आधा करके पश्चात् गुणहानिआयामके प्रमाणसे गुणा करनेसे जो प्रमाण आवे वह उस गुणहानिके सर्वद्रव्यका प्रमाण जानना, ऐसा प्रत्येक गुणहानिका सर्वद्रव्य प्राप्त करनेके लिए जानना। प्रथमगुणहानिके सर्वद्रव्यसे द्वितीयगुणहानिका द्रव्य आधा है, ऐसे गुणहानि-गुणहानिप्रति द्रव्य आधा-आधा जानना। सर्वगुणहानियोंके द्रव्यको प्राप्त करनेके लिए "अंतधणं गुणगुणियं" इत्यादि सूत्रसे प्रथमगुणहानिके अन्तधनरूप द्रव्यको गुणाकर दोसे गुणाकरके उसमें से अन्तिमगुणहानिके आदिधनरूप द्रव्यको कम करना तथा एककम गुणाकार २-१=१ का भाग देनेपर उपरितन व अधस्तनरूप सर्वगुणहानिका प्रमाण होता है।

अधस्तनगुणहानियोंमें, अपने-अपने विशेष (चय) को गुणहानिआयामसे गुणा करनेसे उस-उस गुणहानिसम्बन्धी ऋणका प्रमाण प्राप्त होता है। सर्वगुणहानियोंका ऋणरूप द्रव्य प्राप्त करनेके लिए "अंतधणं गुणगुणियं" इत्यादि सूत्रसे प्रथमगुणहानिके ऋणरूप द्रव्यको गुणाकार दोसे गुणाकरके उसमें से अंतिमगुणहानिके ऋणरूप द्रव्यको घटानेसे तथा एककम गुणकार २-१=१ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको उपरितन-गुणहानिके द्रव्यमें से घटानेपर अथवा अधस्तनगुणहानिके द्रव्यमें मिलानेपर अधस्तन तथा उपरितनगुणहानिमें द्रव्य समान होता है।

उपरितन और अधस्तनसर्वगुणहानिसम्बन्धी सर्वद्रव्यको जोड़नेपर पर्याप्त-त्रसजीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है। इसप्रकार पर्याप्तत्रससम्बन्धी परिणामयोगस्थानोंमें पर्याप्तत्रसजीवोंका प्रमाण जानना। इस कथनसम्बन्धी अङ्कसन्दृष्टि पूर्वमें कह चुके हैं सो तदनुसार ठीकप्रकार समझना। उपरितनगुणहानिके प्रथमनिषेकरूप जो योगस्थान हैं उनके धारकजीव बहुत हैं उसके नीचे और ऊपर जो योगस्थान हैं उनके धारक पूर्वोक्त क्रमसे थोड़े हैं, इसीलिए यवाकार रचना कही है।

आगे उन परिणामयोगस्थानके धारकजीव कितना-कितना प्रदेशबन्ध करते हैं? इस प्रश्नके उत्तरस्वरूप आचार्य समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण त्रैराशिक विधिसे कहते हैं—

इगिठाणफड्ढयाओ, समयपबद्धं च जोगवड्ढी य।
समयपबद्धचयट्ठं, एदे हु पमाणफलइच्छा ॥२५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—द्वीन्द्रियपर्याप्तकके प्रथमजघन्यपरिणामयोगस्थानका स्पर्धक, समयप्रबद्ध और योगोंकी वृद्धि, ये तीनों समयप्रबद्धके बढ़नेका प्रमाण प्राप्त करनेके लिए क्रमसे त्रैराशिकसम्बन्धी प्रमाणराशि, फलराशि और इच्छाराशि हैं।

विशेषार्थ—जघन्ययोगस्थानमें श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धक प्रमाणराशि हैं, जघन्ययोगस्थानसे जघन्यसमयप्रबद्धप्रमाण प्रदेशोंका बन्ध होता है यह फलराशि है; एक-एक योगस्थानमें सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धक बढ़ते हैं सो यह इच्छाराशि है। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने-उतने प्रदेशोंकी अधिकता लिये एक-एक उपरितन-योगस्थानोंसे समयप्रबद्ध बढ़ते हैं। जघन्ययोगस्थानसे जघन्यसमयप्रबद्ध बंधता है तथा इसके अनन्तरवर्तीयोगस्थानसे इतने प्रमाण वृद्धिङ्गत होता हुआ समयप्रबद्ध बंधता है। इस-प्रकार निरन्तर बढ़ता हुआ जघन्ययोगस्थान जहां दुगुना होता है वहां जघन्यसमयप्रबद्ध भी दूना है और जहां जघन्ययोगस्थान चारगुणा है वहां जघन्यसमयप्रबद्ध भी चारगुणा बंधता है। इसप्रकार सञ्ज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्टयोगस्थानमें जघन्ययोगस्थान पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागगुणे होते हैं। यहां जघन्यसमयप्रबद्धको पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागसे गुणाकरे ऐसा समयप्रबद्ध बंधता है।

अथानन्तर इसी बातको पांच गाथाओं द्वारा कहते हैं—

बीइन्दियपज्जत्तजहण्णट्ठाणादु सण्णिपुण्णस्स ।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य, जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ॥२५१॥

अर्थ—द्वीन्द्रियपर्याप्तजीवके जघन्यपरिणामयोगस्थानसे सञ्ज्ञीपर्याप्तजीवके उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्यंन्त परिणामयोगस्थान क्रमसे एक-एकस्थानमें समानवृद्धि[१]-रूप प्रमाणसे बढ़ते हुए जानने।

सेढियसंखेज्जदिमा, तस्स जहण्णस्स फड्डया होंति ।
अंगुलअसंखभागा, ठाणं पडि फड्डया उड्ढा ॥२५२॥

अर्थ—द्वीन्द्रियपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोगस्थान जगत्श्रेणीके असंख्यातवें-भागमात्र स्पर्धकोंके समूहरूप है और इसके बाद प्रत्येकस्थानके प्रति सूच्यङ्गुलके

१ "जोगपक्खेवो अगुलस्स असंजेज्जदिभागमेत्तजहण्णफद्दयपमाणो वड्ढिहाणिमभावेण अवट्ठिदो आगच्छदि।" (धवल पु. १० पृ. ४८४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धक बढ़ते हुए जानने तथा जघन्यस्पर्धकके जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उनको जगत्श्रेणीके असंख्यातवेंभागसे भाग देनेपर सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागमात्र जघन्यस्पर्धकप्रमाण एकयोग प्रक्षेप प्राप्त होता है। अतः एकयोग प्रक्षेपप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद एक-एक योगस्थानमें बढ़ते हैं[1]।

अब जघन्ययोगस्थानमें वृद्धिका क्रम कहते हैं—

धुववड्ढीवड्ढंतो, दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते ।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि ॥२५३॥

अर्थ—इसप्रकार स्थान-स्थानप्रति ध्रुववृद्धिरूपसे बढ़ता हुआ जघन्ययोगस्थान (श्रेणीके असंख्यातवेंभाग जाकर)[2] क्रमसे दूना-दूना हो जाता है और अन्तमें सञ्ज्ञी-पर्याप्तकजीवके उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानमें गुणाकारका प्रमाण पल्यके अर्धच्छेदके असंख्यातवेंभागप्रमाण है अर्थात् जघन्ययोगस्थानके अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणको पल्य-के अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने सर्वोत्कृष्टयोगस्थान-के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं।

अब योगस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

आदी अंते सुद्धे, वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ।
सेढिअसंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणा णिरंतरगा ॥२५४॥

अर्थ—अन्तिम उत्कृष्टस्थानके जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उनमें से जघन्य-स्थानके अविभागप्रतिच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण आवे उसमें वृद्धिका भाग देवें सो एक-एक स्थानमें सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धकके जितने अविभाग-प्रतिच्छेद हों उतने बढ़ते हैं। अतः इनका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने स्थान जानने। इनमें एकजघन्ययोगस्थान मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने सर्वनिरन्तरयोग-स्थान जानने, ये योगस्थानजगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण हैं।

आगे सर्वयोगस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढीअसंखभागा हु ।
सांतरणिरंतराणिवि, सव्वाणिवि जोगठाणाणि ॥२५५॥

१. देखो धवल पु. १० पृ. ४८४ सूत्र १८९ की टीका। २. धवल पु. १० पृ. ४८८ सूत्र १९३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अन्तर्गत (६ अन्तरोंमें होनेवाले) योगस्थान उन निरन्तर योगस्थानोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण होते हैं, ये भी जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभाग ही हैं तथा] जो निरन्तर, सान्तर और मिश्ररूपयोगस्थान हैं वे अन्तर्गतयोगस्थानके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण हैं, ये भी जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभाग हैं। इसप्रकार तीनों योगस्थानोंको मिलानेपर जो सर्वयोगस्थान हैं वे भी जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण ही हैं, क्योंकि असंख्यातके बहुतभेद हैं सो यथायोग्य असंख्यातका भाग जानना।

अब इन योगस्थानोंके आदि और अन्तस्थानको बताते हैं—

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो।
पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ॥२५६॥

अर्थ—इन सर्वयोगस्थानोंमें सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके तीनोंमोड़ाओंसे उत्पन्न होनेवाले अन्तिम (६०१२वें) क्षुद्रभवके प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान होता है वह तो आदिस्थान जानना तथा संज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकजीवका जो उत्कृष्ट-परिणामयोगस्थान है वह अन्तिमस्थान है।

अथानन्तर प्रकृतिआदि चारप्रकारके बन्धोंके कारण कहते हैं—

जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य, बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥२५७॥

अर्थ—प्रकृति और प्रदेशबन्धयोगोंके निमित्तसे होते हैं जैसा शुभ व अशुभ-योग होगा वैसा ही प्रकृतिबन्ध तथा जैसा तीव्र-मन्दयोग होगा वैसा ही समयप्रबद्ध बन्धता है इसलिए इनका कारण योग है तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायके निमित्तसे होता है अतः जैसी कषाय होगी वैसा ही यथायोग्य स्थितिबन्ध होगा तथा वैसा ही यथायोग्य अनुभागबन्ध भी होगा, क्योंकि इनका मुख्य निमित्त कषाय है। जघन्य एकसमय और उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्तकालप्रमाण जिनके कषायस्थान उदयरूप नहीं होते ऐसे उपशान्तकषाय एवं जिसके कषायस्थानक्षीण हो गए हैं ऐसे क्षीणकषाय और सयोग-केवलीके तत्काल स्थितिबन्धका कारण कषाय नहीं है। 'च' शब्द से अयोगकेवलीके बन्धके कारण योग और कषाय दोनों ही नहीं हैं।

विशेषार्थ—इससम्बन्धमें धवलाकार वीरसेनाचार्यका मत है कि ११-१२-१३वें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानमें सातावेदनीयका १ समय प्रमाणस्थिति व अनुभागबन्ध होता है[1]।

अब योगस्थान, प्रकृतिसंग्रह, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान, अनुभाग-बन्धाध्यवसायस्थान और कर्मोंके प्रदेशोंका अल्पबहुत्व तीनगाथाओं से कहते हैं—

सेढि असंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि।
तेहिं असंखेज्जगुणो, पयडीणं संगहो सव्वो ॥२५८॥

अर्थ—निरन्तर या सान्तर अथवा सान्तर-निरन्तर ये सर्वयोगस्थान जगच्छ्रेणी-के असंख्यातवेंभाग प्रमाण हैं और उनसे असंख्यातलोकगुणा मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियों-का समुदाय है। सर्वयोगस्थानके प्रमाणको असंख्यातलोकसे गुणा करनेपर सर्वउत्तरोत्तर कर्मप्रकृतियोंका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणकी उत्तरप्रकृति ५ हैं इनमें क्षायोपशमिक श्रुतज्ञानका भेद लब्ध्यक्षररूप ज्ञान तो निरावरण है। सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जो जघन्यज्ञान होता है उसका नाम लब्ध्यक्षर है। नाशके बिना एक स्वरूपसे अवस्थित रहनेसे केवल-ज्ञान अक्षर है, क्योंकि उसमें वृद्धि और हानि नहीं होती। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा चूंकि सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तका ज्ञान भी ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा वही है अतः इस ज्ञानको भी अक्षर कहते हैं। इसका प्रमाण केवलज्ञानका अनन्तवांभाग है, यह ज्ञान निरावरण है, क्योंकि अक्षरका अनन्तवांभाग नित्य उद्घाटित रहता है ऐसा आगमका वचन है अथवा इसके आवृत्त होनेपर जीवके अभावका प्रसङ्ग आता है। इस लब्ध्यक्षर-ज्ञानमें सर्व जीवराशिका भाग देनेपर सर्वजीवराशिसे अनन्तगुणे ज्ञानाविभागप्रतिच्छेद आते हैं[2]। इस लब्ध्यक्षरज्ञानमें सर्व जीवराशिका भाग देनेपर ज्ञानाविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा सर्व जीवराशिसे अनन्तगुणा लब्ध होता है। इस प्रक्षेपको प्रतिराशिभूत लब्ध्य-क्षरज्ञानमें मिलानेपर पर्यायज्ञानका प्रमाण उत्पन्न होता है[3]। इसके आगे असंख्यातलोक बार षट्स्थानपतित वृद्धिसे बढ़ते हुए पर्यायसमास ज्ञानके भेद हैं। उनके आवरणकी अपेक्षा असंख्यातलोक मात्र छहस्थान प्रमाण पर्यायसमास श्रुतज्ञानावरणके भेद हैं[4] तथा श्रुतज्ञान-मतिज्ञानपूर्वक होता है, अतः इतने ही मतिज्ञानावरणके भी भेद हैं, अवधिज्ञाना-वरणमें घनाङ्गुलके असंख्यातवेंभागहीन लोकको सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागसे गुणा

१. "तेणेव कारणेण ट्ठिदि-अणुभागेहिं इरियावह कम्ममप्पमिदि भणिदं।" (धवल पु. १३ पृ. ४९)

२. ध. पु. १३ पृ. २६२। ३. ध. पु. १३ पृ. २६३-२६४। ४. ध. पु. १३ पृ. २७७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक और मिलानेपर जो प्रमाण आवे उतने देशावधिके भेद हैं। अतः देशावधिआवरणके भी इतने ही भेद हैं तथा अग्निकायजीवके प्रमाणको अग्निकायके शरीरकी अवगाहनाके भेदोंके प्रमाणसे गुणाकरनेपर जो प्रमाण हो उतने परमावधिके भेद हैं। अतः परमावधिआवरणके भी इतने ही भेद हैं तथा सर्वावधि एक ही प्रकार है इसलिए सर्वावधिआवरणका भी एक ही भेद है। बीसकोड़ाकोड़ीसागर समयप्रमाणवाले कल्पकालको असंख्यातसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने मनःपर्यय-ज्ञानके भेद हैं इसलिए मनःपर्ययज्ञानके आवरणके भी इतने ही भेद हैं और केवलज्ञान भेदसे रहित है इसलिए इसके आवरणका भी एकही भेद है। इसप्रकार सर्व मिलकर अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानावरणसे अधिक श्रुतज्ञानावरणसे युक्त मतिज्ञानावरण-प्रमाण ज्ञानावरणकी प्रकृतियोंके उत्तरोत्तर भेद हैं। नामकर्मकी प्रकृतियोंमें आनुपूर्वी-प्रकृतिके उत्तरोत्तरभेदकी अपेक्षा जानने, क्योंकि आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है।

[1]उत्सेध घनाङ्गुलके संख्यातवेंभागमात्र सबसे जघन्यअवगाहनाके साथ नरक-गतिको जानेवाले और विशिष्ट मुखाकाररूपसे स्थित सिक्थमत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानु-पूर्वीका एकविकल्प पाया जाता है पुनः उसी जघन्यअवगाहनाके साथ नरकगतिको जाने-वाले दूसरे सिक्थमत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका दूसराविकल्प पाया जाता है, क्योंकि पहलेके जीवप्रदेशोंका अनुपरिपाटीसे जो अवस्थान पाया जाता उससे यहांपर पहलेके आकाशप्रदेशोंसे पृथग्भूत आकाशप्रदेशोंके सम्बन्धसे भिन्न अनुपरिपाटीका अवस्थान देखा जाता अब उसी सबसे जघन्यअवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थ-मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मका तृतीयविकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि पहले-की अनुपरिपाटीरूपसे जो अवस्थान है इससे यहांपर भी पहलेके आकाशप्रदेशोंसे पृथग्भूत आकाशप्रदेशोंके सम्बन्धसे अन्यअनुपरिपाटीका अवस्थान उपलब्ध होता है यह कारण सर्वत्र कहना चाहिए। पुनः सबसे जघन्यअवगाहनाके साथ अलब्धपूर्व मुखाकाररूपसे नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका चतुर्थविकल्प होता है, क्योंकि पहले नहीं उपलब्ध हुए ऐसे मुखाकाररूपसे वह परिणत हुआ है। पुनः उसी सर्वजघन्यअवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्यके नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्वीका पांचवांविकल्प उपलब्ध होता है, क्योंकि यह अलब्धपूर्व मुखाकाररूपसे परिणमित हुए द्रव्यका कारण है। इसप्रकार छह, सात, आठ, नौ, दस, आवलि, उच्छ्व-

---

१. धवल पु. १३ पृ. ३७२ से ३८४ तक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास, स्तोक, लव, घटिका, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर और राजूरूप तिर्यक्प्रतर तक नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प कहने चाहिए। पुनः इसीक्रमसे दो-तीन आदि तिर्यक्प्रतर विकल्पोंको सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागमात्र तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनेमात्र नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प प्राप्त होने तक बढ़ाते जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नूतन-नूतन मुखविकल्पोंके साथ नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्योंकी वह सबसे जघन्य अवगाहना ध्रुव करनी चाहिए। राजुप्रतर, राजुवर्ग और तिर्यक्प्रतर ये एकार्थवाची शब्द हैं। सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागसे तिर्यक्प्रतरको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश उपलब्ध होते हैं उतने ही सिक्थमत्स्यकी सबसे जघन्यअवगाहनाकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प प्राप्त होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इनसे अधिक विकल्प नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

अब एकप्रदेशअधिक सबसे जघन्यअवगाहनाके साथ नरकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करके या उसके बिना विग्रहगति द्वारा उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्योंके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उतने ही विकल्प प्राप्त होते हैं। अधिकअवगाहनाके अधिकमुखाकार प्राप्त नहीं होते, क्योंकि कारणरूप शक्तिमें भेद होनेसे ही कार्यमें भेद उत्पन्न होता है। समानशक्तिसंख्यासे युक्त एक कारणके होनेपर कार्यके संख्याविषयक भेद नहीं होता है, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है।

इसप्रकार पृथक्-पृथक् सर्वअवगाहनाविकल्पोंमें नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके सूच्यङ्गुलके असंख्यातवें भागसे गुणित राजुप्रतरप्रमाण विकल्प कहने चाहिए। वे इसप्रकार प्राप्त होते हैं, ऐसा समझकर सिक्थमत्स्यकी अवगाहनाको महामत्स्यकी अवगाहनामें से घटाकर जो शेष रहे उसमें जघन्यअवगाहनाके विकल्पकी अपेक्षा एक मिलानेपर श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र अवगाहनाविकल्प होते हैं; क्योंकि संख्यातघनाङ्गुलोंमें भी श्रेणीके असंख्यातवेंभागरूप संख्याका व्यवहार होता हुआ देखा जाता है। पुनः यदि एकअवगाहनाके विकल्पकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प अंगुलके असंख्यातवेंभागसे गुणित तिर्यक्प्रतरप्रमाण प्राप्त होते हैं तो संख्यातघनाङ्गुल मात्र अवगाहनाविकल्पोंके कितने नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे इसप्रकार संख्यातघनाङ्गुलोंसे सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागमात्र तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तक जीवके उत्सेधघनाङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण सबसे जघन्यअवगाहनाके द्वारा तिर्यञ्चोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेपर एक तिर्यञ्च-गतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि वह एकआकाशप्रदेशके सम्बन्धसे अपूर्वमुखाकाररूपसे परिणमनका हेतु है। पुनः दूसरे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्त जीवके उसी जघन्यअवगाहनाके साथ तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेपर अपूर्वमुखाकार प्राप्त होता है उस-समय दूसरा तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प होता है। इसप्रकार जघन्यअवगाहनाका आलम्बन लेकर घनलोकप्रमाण तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्पोंके प्राप्त होने तक अपूर्व-अपूर्व मुखाकारोंके साथ तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न कराना चाहिए। जघन्यअवगाहनाका आलम्बन लेकर तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं, क्योंकि इनसे अधिक मुखाकारोंका प्राप्त होना यहां सम्भव नहीं है। सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकोंके सबसे जघन्यअवगाहनाके साथ तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेपर नूतन-नूतन मुखाकार उत्कृष्टरूपसे यदि बहुत होते हैं तो वे घनलोकप्रमाण होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। पुनः एकप्रदेशअधिक सर्वजघन्यअवगाहनाके आश्रयसे भी घनलोकप्रमाण ही तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मके विकल्प होते हैं। इसीप्रकार दोप्रदेश अधिक जघन्य अवगाहनासे महामत्स्यकी उत्कृष्टअवगाहनापर्यन्त इन सर्व अवगाहनाओं सम्बन्धी पृथक्-पृथक् घनलोकप्रमाण तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए।

अब सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी सबसे जघन्यअवगाहनाको महामत्स्यकी अवगाहनामें से घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अङ्क मिलाकर श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्रमाणसे घनलोकको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही तिर्यञ्चगत्यानु-पूर्वीनामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां होती हैं।

उत्सेधघनाङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण सबसे जघन्यअवगाहनाके द्वारा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजीव विग्रहगतिसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। यहां मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वीका एक विकल्प प्राप्त होता है।

पुनः दूसरे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्त जीवके जघन्यअवगाहनाके साथ विग्रहगति-से मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर दूसरा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प होता है। पुनः तीसरे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजीवके जघन्यअवगाहनासहित अलब्धपूर्वमुखाकारके द्वारा मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका तीसराविकल्प होता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि अन्यथा अपूर्वमुखाकारकी उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है। यदि कहो कि कार्यभेदसे कारणमें भेद मानना असिद्ध है तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इसप्रकार कारणके बिना ही कार्यकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग प्राप्त होता है। सबसे जघन्य इस अवगाहनाका आलम्बन लेकर अलब्धपूर्व नानाविधमुखाकारोंके साथ मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके ४५ लाखयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने विकल्प प्राप्त होनेतक मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतिके विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए। यहां जघन्यअवगाहनाका आलम्बन लेकर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं।

इस अवगाहनासे प्राप्त आनुपूर्वीप्रकृतियोंको स्थापित करके सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्यअवगाहनाको महामत्स्यकी उत्कृष्टअवगाहनामें से घटाकर जो शेष रहे उसमें से एक अङ्क मिलानेपर जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण अवगाहनाविकल्प होते हैं। इन अवगाहनाविकल्पोंसे एकअवगाहनासम्बन्धी आनुपूर्वीविकल्पोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके सर्वप्रकृति विकल्पोंका जोड़ होता है।

उत्सेधघनाङ्गुलके संख्यातवेंभागमात्र सर्वजघन्यअवगाहनाके द्वारा देवगतिको जानेवाले सिक्थमत्स्यके एक देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प प्राप्त होता है। पुनः उसी सर्व जघन्य अवगाहनाके द्वारा अलब्धपूर्व मुखाकारके साथ देवगतिको जानेवाले सिक्थमत्स्यके देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका दूसरा विकल्प प्राप्त होता है। मुखका अर्थ शरीर है, उसका आकार संस्थान है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए। इस विषयमें एक श्लोक भी कहा है—

"मुखमर्द्धं शरीरस्य सर्वं वा मुखमुच्यते।
तत्रापि नासिका श्रेष्ठा नासिकायाश्च चक्षुषी॥"

अर्थ—शरीरके आधेभागको मुख कहते हैं, अथवा पूरा शरीर ही मुख कहलाता है। उसमें भी नासिका श्रेष्ठ है और नासिका से भी दोनों आंखें श्रेष्ठ हैं।

इसप्रकार पुनः-पुनः अलब्धपूर्वमुखाकारके साथ देवोंमें उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्योंके नौसौयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने ही सबसे जघन्यअवगाहनाका आलम्बन लेकर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं। अब एकप्रदेश अधिक सबसे जघन्यअवगाहनामें भी इतने ही प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसप्रकार दोप्रदेशअधिक सर्वजघन्यअवगाहनासे सबसे उत्कृष्टमहामत्स्यकी अवगाहनातक ले जाना चाहिए। अब यदि एक अवगाहनाविकल्पके नौसौयोजन बाहल्य-रूप तिर्यक्प्रतरप्रमाण देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होते हैं तो संख्यातघनाङ्गुल-मात्र अवगाहनाविकल्पोंके कितने देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इसप्रकार समस्तअवगाहनाविकल्पोंसे नौसौयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर देव-गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामक प्रकृतिके सर्वउत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं।

तेहिं असंखेज्जगुणा, ठिदि अवसेसा हवंति पयडीणं।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा ॥२५९॥

अर्थ—उन प्रकृतिविकल्पोंसे स्थितिबन्धके भेद असंख्यातगुणे हैं तथा स्थिति-भेदोंसे असंख्यातगुणे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान जानना। (जिन परिणामोंसे स्थितिबन्ध हो उन परिणामोंको स्थितिबन्ध्याध्यवसाय कहते हैं।)

विशेषार्थ—एक-एकप्रकृतिके स्थितिभेद जघन्यस्थितिको उत्कृष्टस्थितिमें से घटाकर उसमें एकसमयका भाग देकर और एक मिलानेपर जघन्यस्थितिसे एक-एकसमय बढ़ते हुए उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त संख्यातपल्यप्रमाण पाए जाते हैं सो एकप्रकृतिके स्थितिभेद संख्यातपल्यप्रमाण होते हैं तो पूर्वोक्त सर्व उत्तरोत्तर प्रकृतिभेदोंके स्थिति-सम्बन्धी भेद कितने होते हैं? इसप्रकार त्रैराशिकद्वारा प्रकृतिविकल्पके प्रमाणसे संख्यातपल्यगुणे स्थितिके भेद होते हैं तथा इन स्थितिके भेदोंसे स्थितिबन्धाध्यवसाय-स्थान असंख्यातगुणे हैं। प्रकृतियोंके अपने-अपने उदयसे जो परिणाम उत्पन्न होते हैं उनकी ही अपनी-अपनी बन्धमें स्थिति कारण होनेसे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सञ्ज्ञा है। स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान कषायस्थान नहीं है[1]।

अङ्कसन्दृष्टि—एक प्रकृतिकी स्थितिबन्धके कारणरूप परिणाम ३१०० हैं और उस एकप्रकृतिके स्थितिभेद ४० सौ स्थितिस्थान जानने। नानागुणहानि ५ तथा नानागुणहानिप्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२, एकगुणहानिमें स्थितिका प्रमाण गुणहानिआयामप्रमाण, सो नानागुणहानिशलाकाका भाग सर्वस्थितिमें देनेपर जो प्रमाण हो वह गुणहानिआयामका प्रमाण जानना। नाना-गुणहानि ५ का भाग स्थिति ४० में देनेपर ४०÷५=८ प्राप्त हुए सो ८ एकगुणहानि

१. धवल पु. ११ पृ. ३१०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयाम जानना। इसको दूना करनेपर दोगुणहानिका प्रमाण होता है। उन स्थितिके भेदोंमें सबसे जघन्यस्थितिबन्धके कारण ऐसे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सबसे स्तोक हैं उनका प्रमाण ९ है। "पदहतमुखमादिधनं" इस सूत्रसे एकगुणहानिका जो आयाम वही पद है गच्छ ८ से हत अर्थात् गुणा हुआ मुख अर्थात् ९×८=७२। एकअधिक गुणहानि का भाग आदिस्थानमें देनेपर जो प्रमाण हो वह चय जानना। यहां गुणहानिके प्रमाण ८ को एकअधिक करनेपर ९ का भाग आदिस्थान ९ में देनेपर ९÷९=१ आया यह चय जानना। एक-एक स्थानमें एक-एक चय बढ़ता हुआ स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान प्रथमगुणहानिपर्यन्त जानना, सो "व्येकपदार्धघ्नचयगुणोगच्छउत्तरधनं" अर्थात् एककम गच्छके आधेको चयसे गुणा करके पुनः गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह सर्व चयधन जानना। यहां गच्छ ८ में से एककम करनेपर ८-१=७, इसका आधा ३½, चयके प्रमाण १ से गुणा करनेसे ३½ ही रहे तथा इसको गच्छके प्रमाण ८ से गुणा करनेपर २८ हुए सो चयधन जानना तथा आदिधन और उत्तरधन (चयधन), इन दोनोंको मिलानेपर प्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। आदिधन ७२ और उत्तरधन २८, दोनोंको जोड़ने पर ७२+२८=१०० हुए यह प्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य जानना तथा गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना द्रव्य है अतः १००-२००-४००-८०० और १६०० यह दूना-दूना क्रम एककम नानागुणहानिप्रमाण बार होता है। अन्तरस्थानोंमें अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे प्रमाणसे आदिको गुणा करे जो प्रमाण होवे वह अन्तिम-गुणहानिका प्रमाण जानना।

यहां नानागुणहानि ५ में से एक घटानेपर ५-१=४ रहे सो इतनी बार दो के अङ्क लिखकर (२×२×२×२) परस्परगुणा करनेपर १६ हुए सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ का आधा है। इस १६ से प्रथमस्थान १०० को गुणा करे तो १००×१६ =१६०० हुए, यह अन्तिमगुणहानिका द्रव्यप्रमाण जानना।

"अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं" यह करणसूत्र स्थान-स्थानप्रति जो समान गुणकार होता है उनको जोड़ने के लिए है। अतः गुणकार करते-करते अन्तमें जो प्रमाण आवे उसको गुणकारके प्रमाणसे गुणा करके लब्धराशिमें से आदिके प्रमाणको घटानेसे जो प्रमाण आवे उसमें एककम उत्तर (चय) का भाग देनेसे सर्वधन प्राप्त होता है। सो यहां अन्तस्थानका प्रमाण १६०० को दूने करनेपर ३२००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए इसमें से आदिका प्रमाण १०० घटानेपर ३२००–१००=३१०० रहे। इसप्रकार पांचों गुणहानिका जोड़ देनेपर एकप्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण ३१०० अध्यवसाय-स्थान जानने। यह अङ्कसन्दृष्टि अपेक्षा कथन हुआ अब यथार्थकथन करते हैं—एक-प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं सो यह द्रव्यका प्रमाण है, एकप्रकृतिके, जघन्यस्थितिसे उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त संख्यातपल्यप्रमाण स्थितिभेद स्थितिस्थान हैं, पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागमात्र नानागुणहानिका प्रमाण है तथा पल्यके असंख्यातवेंभागमात्र अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण है।

नानागुणहानिशलाकाका स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण हो सो गुणहानि-आयाम जानना। इसको दूना करनेपर दो गुणहानि होती है। यहां सर्वस्थितिके भेदोंमें जघन्यस्थितिबन्धके कारण ऐसे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सबसे स्तोक हैं, तथापि ये असख्यातलोक मात्र हैं। **'पदहतमुखमादिधनं'** गच्छसे गुणित आदिस्थान ही आदिधन कहलाता है। एकअधिक गुणहानिआयामका भाग आदिधनमें देनेपर चयका प्रमाण होता है, **"व्येकपदार्थघ्नचयगुणोगच्छ उत्तरधनं"** एककम गच्छके आधेको चयसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसको पुन: गच्छसे गुणा करनेपर चयधन होता है तथा आदिधन और चयधन इन दोनोंको मिलानेपर प्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। इसप्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना होते-होते अन्तमें एककम नानागुणहानिप्रमाण दूना होनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिके आधेप्रमाणसे 'आदि' को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अन्तिम-गुणहानिका द्रव्य जानना, सो **"अंतधणं गुणगुणिय आदिविहीणं रुउणुत्तरं भजियं"** इस सूत्रसे अन्तमें जो प्रमाण आया उसको गुणकार दोसे गुणा करनेपर तथा उसमें से आदि-के प्रमाणको घटाकर उसमें एककम गुणकारके (२–१=१) प्रमाणसे भाग देकर जो लब्ध आया वह सर्वगुणहानिका धन जानना। इसप्रकार एकप्रकृतिके संख्यातपल्यप्रमाण स्थितिभेदोंके असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हुए तो सर्व उत्तरोत्तर प्रकृतिभेदोंके कितने स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान होंगे? इसप्रकार त्रैराशिक करके स्थितिके भेदोंसे असंख्यातलोकगुणे होते हैं। इन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंमें अध: प्रवृत्तकरणवत् अनुकृष्टिविधान है सो निम्न प्रकार जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुकृष्टिविधान की रचना

स्थितिभेद	स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान	समस्त स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंका स्पष्टीकरण			
१६	२२२	५४	५५	५६	५७
१५	२१८	५३	५४	५५	५६
१४	२१४	५२	५३	५४	५५
१३	२१०	५१	५२	५३	५४
१२	२०६	५०	५१	५२	५३
११	२०२	४९	५०	५१	५२
१०	१९८	४८	४९	५०	५१
९	१९४	४७	४८	४९	५०
८	१९०	४६	४७	४८	४९
७	१८६	४५	४६	४७	४८
६	१८२	४४	४५	४६	४७
५	१७८	४३	४४	४५	४६
४	१७४	४२	४३	४४	४५
३	१७०	४१	४२	४३	४४
२	१६६	४०	४१	४२	४३
१	१६२	३९	४०	४१	४२

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो ।
एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेदव्वा ॥२६०॥

अर्थ—इन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंसे असंख्यातलोकगुणे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान हैं । इससे अनन्तगुणे कर्मोंके परमाणु हैं ।

विशेषार्थ—जघन्यस्थितिबन्धके कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान उन सम्बन्धी अनुभागाध्यवसायस्थान असंख्याततलोकको असंख्यातसे गुणा करे सो असंख्यातलोक×असंख्यातप्रमाण है सो यहां पर द्रव्य जानना तथा जघन्यस्थितिबन्धके कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं वे यद्यपि असंख्याततलोकबार अविभागप्रतिच्छेदोंकी षट्स्थानवृद्धि को लिए हुए हैं तथापि असंख्यातलोकमात्र ही है । नानागुणहानिशलाका दोबार असंख्यातसे भागित आवलिप्रमाण है । अर्थात् आवलिको दोबार असंख्यातसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाण है। स्थितिस्थानोंमें नानागुणहानिका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना एकगुणहानिका आयाम जानना। इसका दूना करनेपर दोगुणहानि होती है। आवलिका असंख्यातवांभागप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है।

यहां जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमें अनुभागबन्ध्यवसायस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं और सबसे स्तोक हैं, इसको मुख कहते हैं। 'पदहतमुखमादिधनं' गुणहानिआयामरूप जो पद, उससे मुखको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह आदिधन है। एककम पद जो गुणहानिआयाम, उसको आधा कर इसको चयसे गुणाकरके पुनः पदसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे वह चयधन है। आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। इसप्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना क्रमसे करके अन्तिमगुणहानिमें एककम नानागुणहानिप्रमाण दूना करनेसे गुणकारका प्रमाण होता है और यह अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधाप्रमाण है। इससे आदिगुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर अन्तिमगुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। तथा "अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं" इस सूत्रसे अन्तिमगुणहानिके द्रव्यको गुणकार दोसे गुणाकरके उसमें से आदिगुणहानिका द्रव्य घटानेपर गुणाकाररूप उत्तर जो दो उसमें से एक घटानेपर एक रहा, उसका भाग देनेपर उतना ही रहा, सो यह सर्वगुणहानिका द्रव्य है। यह जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानसम्बन्धी अनुभागाध्यवसायस्थानका प्रमाण हुआ। एकस्थिति भेदके अनुभागाध्यवसायस्थानभेद इतने हुए तो पूर्वोक्त सर्वस्थितिभेदोंके अनुभागाध्यवसायस्थान कितने होंगे? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण हो वह स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानसे असंख्यातगुणा जानना तथा इन अनुभागाध्यवसायस्थानोंसे कर्मके प्रदेशरूप परमाणु अनन्तगुणे हैं।

अब इसीको अङ्क सन्दृष्टिसे कहते हैं—

एकसमयमें जितने परमाणु बन्धते हैं उसे समयप्रबद्ध कहते हैं इसका प्रमाण ६३००, कर्मकी स्थितिका प्रमाण ४८ समय, नानागुणहानि ६, एक-एकगुणहानिमें जितनी स्थिति हो वह एकगुणहानिका आयाम है उसका प्रमाण ८, नानागुणहानिप्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४, गुणहानिके आयामको दूना करनेपर दोगुणहानि १६। इसप्रकार एककम अन्योन्याभ्यस्तराशि (६३) का भाग सर्वद्रव्य ६३०० में देनेपर ६३००÷६३=१०० आए, यह अन्तिमगुणहानिका प्रमाण जानना। इससे दूना-दूनाद्रव्य आदिकी गुणहानिपर्यंन्त जानना, सो आधेप्रमाण अन्योन्या-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्यस्तराशि ३२ से अन्तिमगुणहानिके द्रव्य १०० को गुणा करनेपर आदिगुणहानिाक द्रव्य होता है। (१००×३२=३२००) यह प्रथम (आदि) गुणहानिका द्रव्य है इससे द्वितीयादि गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना ३२००—१६००—८००—४००—२००—१०० तथा उस प्रथमगुणहानि सम्बन्धी द्रव्यको गुणहानिआयामका भाग देनेपर मध्य-धन होता है, सो ३२०० में ८ का भाग देनेपर ३२००÷८=४०० सो यह मध्यधन है इसमें एककम गुणहानिआयामके आधेप्रमाणको निषेकके भागहार दोगुणहानिमें से घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह चयका प्रमाण है। एकगुणहानि ७, इसके आधा ३½ को दोगुणहानि १६ में घटानेपर १६—३½=१२½ इसका भाग मध्यधनमें देनेपर $\left(४००\div\frac{२५}{२}\right)$ ३२, यह प्रथमगुणहानिमें चय जानना। इस चयको दोगुणहानिसे गुणाकर, जो प्रमाण हो वह आदि निषेक है अर्थात् ३२×१६=५१२ आदि निषेक हुआ। इसमें से एक चय (३२) घटानेपर (५१२—३२) ४८०, यह दूसरा निषेक है। इसप्रकार क्रमसे प्रथमगुणहानिके अन्तिमनिषेकमें प्रथमगुणहानिसम्बन्धी एकचय घटानेपर प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकसे आधाप्रमाण होता है इसे द्वितीयगुण-हानिका प्रथमनिषेक जानना। इसप्रकार द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी एक-एकचय घटानेपर द्वितीयादिक निषेक होते हैं। यहां पूर्वोक्त विधानसे प्रथमगुणहानिसे द्वितीयगुणहानिमें चयका प्रमाण और निषेकोंका प्रमाण सर्व आधे-आधे होते हैं। इसके अन्तिमनिषेकमें से द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी एकचय घटानेपर तृतीयगुणहानिका प्रथमनिषेक होता है। इससे एक-एकचय घटानेपर, द्वितीयादिकनिषेक होते हैं। यहां चयका और निषेकोंका प्रमाण द्वितीयगुणहानिसे आधा-आधा जानना। इसीप्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधा प्रमाण है।

अब सर्वगुणहानिका यंत्र लिखते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणहानि	प्रथमगुणहानि	द्वितीयगुणहानि	तृतीयगुणहानि	चतुर्थगुणहानि	पञ्चम-गुणहानि	षष्ठम-गुणहानि
सर्वगुणहानियोंका कुल द्रव्य ६३००	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
चयद्रव्य	३२	१६	८	४	२	१
प्रत्येक गुणहानि का सर्व-द्रव्य	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

उपर्युक्त सन्दृष्टिका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—

समयप्रबद्धकी ६३०० वर्गणा कर्मरूपसे बंधी और उसकी आबाधाकाल-अधिक ४८ समयकी स्थितिसम्बन्धी निषेक रचना आबाधाकालमें तो नहीं होती। आबाधाकाल व्यतीत होनेके पश्चात् पहलेसमयमें ५१२ परमाणुरूप प्रथमनिषेक है। ३२-३२ कम प्रतिनिषेक द्रव्य दिया जाता है। एकगुणहानिके कालमें सर्वपरमाणु ३२०० हैं। द्वितीयगुणहानिका प्रथमनिषेक २५६ परमाणुओंका है इसके पश्चात् प्रत्येकनिषेक १६-१६ हीनरूपसे हैं। द्वितीयगुणहानिमें सर्वपरमाणु १६०० हैं। इस-प्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधा द्रव्य है, यहां सर्वगुणहानिमें ६३०० परमाणुकी इसीप्रकार रचना होती है, सो जैसे अङ्कसन्दृष्टिके द्वारा कथन किया उसीप्रकार अर्थरूप भी जानना। विशेष इतना है कि जो द्रव्यादिकका प्रमाण जैसा हो वैसा ही जानना।

इसी कथनको मोहनीयकर्मकी अपेक्षासे कहते हैं—

मोहनीयकर्मकी स्थिति सत्तरकोड़ाकोड़ीसागरप्रमाणमें से ७००० वर्ष आबाधा-कालको घटानेपर जो शेष रहे उसके जितने समय हों उसे स्थितिनिषेकरचनाका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण जानना । पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें से घटानेपर जो प्रमाण रहे उसे नानागुणहानिशलाकाका प्रमाण जानना । इसका भाग उस स्थितिमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना एकगुणहानिके आयामका प्रमाण है, इसको दूना करनेपर दोगुणहानिका प्रमाण होता है । नानागुणहानि प्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्पर-गुणा करनेसे जो प्रमाण आवे वह अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना । अङ्कसन्दृष्टिमें जैसा विधान कहा वैसा विधान करते हुए गुणहानिमें और निषेकोंमें जितना द्रव्यका प्रमाण आवे उतना ही जानना । आबाधाकालके पीछे प्रथमसमयमें तो प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण हो उतने परमाणु हैं ।

दूसरेसमयके दूसरेनिषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण हो उतने परमाणु हैं । इसप्रकार एकगुणहानिके कालसम्बन्धी जितने समय हों उतने समयोंमें प्रथमगुणहानिका जितना द्रव्य हो उतने परमाणु जानना । पश्चात् (आगे) इसी क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा द्रव्य है । अतः सर्वगुणहानिमें इसी क्रमसे सम्पूर्णसमयप्रबद्धका विभाजन होता है । सो इसप्रकार जो समयप्रबद्ध बंधता है उसके विभाजनका विधान है और एक-एकसमयप्रबद्ध प्रत्येकसमयमें नवीन बंधते हैं उनका सन्ततिरूप अनादि सम्बन्ध है । प्रतिसमय एकसमयप्रबद्धप्रमाण, बंध और निर्जरा होनेपर भी जीवके किंचित्ऊन डेढ़-गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण कर्मोंकी सत्ता सदाकाल रहती है अर्थात् गुणहानि-आयामके प्रमाणको डेढ़गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें से कुछ प्रमाणको घटानेपर जो लब्ध आवे उससे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो लब्ध हो उतने कर्मपरमाणुओंकी सत्ता जीवके सदैव पाई जाती है तथा वर्तमानकालमें एक-एकसमयप्रबद्धका एक-एक निषेक उदय होते हुए प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्धका उदय होता है यह किसप्रकार होता है ? द्व्यर्धगुणहानिसे डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धमात्र सत्ता है तथा एक-एक समयप्रबद्ध किसप्रकार उदयमें आता है ? इस कथनको अङ्कसन्दृष्टिकी त्रिकोण रचनासे कहेंगे ।

त्रिकोणयन्त्रका अर्थ अङ्कसन्दृष्टिके अनुसार इसप्रकार है—

६३०० परमाणुप्रमाण समयप्रबद्धका बन्ध प्रतिसमय होता है जो आबाधा-कालको छोड़कर ४८ समयरूप स्थितिमें क्रमसे ४८ समयोंमें इसप्रकार खिरते हैं— प्रथमगुणहानि—५१२–४८०–४४८–४१६–३८४–३५२–३२०–२८८ । द्वितीयगुण-हानि—२५६–२४०–२२४–२०८–१९२–१७६–१६०–१४४ । तृतीयगुणहानि—१२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२०–११२–१०४–९६–८८–८० और ७२ । चतुर्थगुणहानि—६४–६०–५६–५२–४८–४४–४०–३६ । पञ्चमगुणहानि—३२–३०–२८–२६–२४–२२–२०–१८ । षष्ठमगुणहानि—१६–१५–१४–१३–१२–११–१०–९ । इन छहों गुणहानियोंमें ६३०० परमाणुओंका इसप्रकार विभाजन हो जाता है । यहां जिस समयप्रबद्धका बन्ध होनेपर आबाधाअधिक ४८ समय हो गए उसका और उससे पहले बंधे समयप्रबद्धका तो कोई भी निषेक सत्तामें नहीं रहा इसलिए उनका तो कुछ प्रयोजन रहा नहीं तथा जिस समयप्रबद्धका बन्ध होनेपर आबाधाअधिक ४७ समय हो चुके उसके ४७ निषेक तो निर्जीर्ण हो गए अन्तिम एकनिषेक शेष रहा वह त्रिकोणयन्त्रमें ९ परमाणुरूप ऊपर लिखा तथा इसके नीचे जिस समयप्रबद्धको बंधे आबाधाकालअधिक ४६ समय हो चुके उसके ४६ निषेक तो निर्जीर्ण हो गए शेष दोनिषेक सत्तामें रहे सो त्रिकोणयन्त्रमें ९ परमाणु और १० परमाणुके दोनिषेक लिखे तथा इसके नीचे जिस समयप्रबद्धको बंधे आबाधाअधिक ४५ समय व्यतीत हो चुके उसके ४५ निषेक तो निर्जीर्ण हो गए शेष ३ निषेक सत्तामें रहे सो त्रिकोणयन्त्रमें ९-१० और ११ के तीननिषेक लिखे हैं । इसीप्रकार जिस जिससमयप्रबद्धका बन्ध होनेपर एकसमयमें उस-उसके एक-एककम निषेक तो निर्जीर्ण हुए तथा शेष एक-एकअधिक निषेक सत्तामें रहे उनको नीचे लिखनेसे जिस समयप्रबद्धका बन्ध होनेपर आबाधाअधिक एकसमय हुआ हो उसका एकनिषेक तो निर्जीर्ण हो गया शेष ४७ निषेक रहे वे ९ से ४८० परमाणुके निषेकपर्यन्त लिखे तथा इसके नीचे अन्तमें जिससमयप्रबद्धका बन्ध होनेपर मात्र आबाधाकाल ही व्यतीत हुआ और जिसका एक भी निषेक नहीं खिरा उसके ९ से ५१२ पर्यन्त ४८ निषेक ही सत्तामें पाए जावेंगे सो लिखे हैं । इसप्रकार त्रिकोणयन्त्रके अनुसार निर्जीर्ण होनेके पश्चात् जो निषेक शेष रहे वे क्रमसे लिखे सो इस सर्वत्रिकोणयन्त्रका जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाण सत्ता जीवके सदाकाल रहती है । अब जोड़नेका विधान कहते हैं—

अन्तिमगुणहानिमें अन्तिमनिषेक ९ लिखकर उसको एक-एकअधिक गुणकार ९, ऐसी एक पंक्ति करनी और दूसरीपंक्तिके अन्तमें शून्य लिखना पश्चात् सङ्कलनरूप प्रमाण लिखना तथा द्वितीयादिगुणहानिमें प्रथमादिगुणहानिका सर्वद्रव्य तो 'आदि' जानना और अन्तमें दोनों पंक्तियोंमें पूर्वोक्त प्रमाणसे दूना-दूना प्रमाण जानना । यहां प्रथमगुणहानिकी दो पक्तियां इसप्रकार हैं—

यहां ९×१=९ यह प्रथम जोड़ है तथा ९×२=१८, १×१=१ इन दोनोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलानेसे १८+१=१९, सो ९ और १०=१९। ९×३=२७, ३×१=३ इन दोनोंके मिलनेसे २७+३=३०, सो ९+१०+११ का जोड़ ३० इसप्रकार जोड़ करनेपर अन्तमें ९×८=७२ और २८×१=२८ इनको मिलानेसे ७२+२८=१०० सो सर्व-गुणहानिके सर्वनिषेकोंका योग १०० हुआ तथा द्वितीयगुणहानिकी पंक्ति दो हैं ऐसा जानना। ९×२=१८, १८×१=१८ यह तो प्रथमनिषेक और ९×२=१८, १८×२=३६ और २×१=२ इनको मिलानेपर ३८ सो १८ और २० मिलकर (१८+२०) ३८ होते हैं। इसीप्रकार अन्तमें ९×२=१८ और १८×८=१४४ तथा २८×२=५६ ये दोनों मिलनेसे २०० सो द्वितीयगुणहानिमें सर्वनिषेकोंका जोड़ जानना। इस द्वितीय-गुणहानिमें प्रथमगुणहानिका द्रव्य सर्वत्र एक-एक जगह मिलानेपर त्रिकोण रचनामें जोड़ होता है।

जैसे प्रथमगुणहानिका द्रव्य १०० मिलानेपर ११८, उसके नीचे ३८ में १०० मिलाने से १००+३८=१३८, इसीप्रकार जानना। ऐसे अन्तिमगुणहानिपर्यन्त दोनों पंक्तियोंमें तो दूना-दूना प्रमाण लिखकर उन दोनों पंक्तियोंके एक-एकस्थानका प्रमाण मिलानेपर जिस-जिस प्रमाणमें प्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य मिलानेपर जो-जो प्रमाण हो उतना-उतना त्रिकोण रचनामें क्रमसे पंक्तियोंका जोड़ जानना। ९।१९।३०।४२।५५। ६९। ८४। १००। ११८। १३८। १६०। १८४। २१०। २३८। २६८। ३००। ३३६। ३७६। ४२०। ४६८। ५२०। ५७६। ६३६। ७००। ७७२। ८५२। ९४०। १०३६। ११४०। १२५२। १३७२। १५००। १६४४। १८०४। १९८०। २१७२। २३८०। २६०४। २८४४। ३१००। ३३८८। ३७०८। ४०६०। ४४४४। ४८६०। ५३०८। ५७८८। ६३००। इन सर्वका जोड़ करनेपर जो प्रमाण हो उतना त्रिकोणयन्त्रसम्बन्धी कुल जोड़ होता है, सो यह जोड़ किंचित्ऊन डेढगुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण होता है। सर्वत्रिकोणरचनाके द्रव्यका जोड़ ७१,३०४ है तथा गुणहानि आयामके प्रमाण ८ को डेढ़गुणा करनेसे (८×$\frac{३}{२}$) १२ इसी द्वचर्ध (डेढ़) गुणहानिसे समयप्रबद्ध ६३०० को गुणा करनेपर ६३००×१२=७५,६०० लब्ध होता है, किन्तु यहांपर तो सर्वद्रव्यका प्रमाण ७१,३०४ ही है इसका कारण यह है कि यहां गुणकार किंचित्ऊन कहा है। यहां त्रिकोणरचनाका जो सर्व जोड़ है वही सत्तारूप द्रव्य जानना। सो अङ्कसन्दृष्टिद्वारा जैसे कथन किया वैसे ही अर्थसन्दृष्टिकी अपेक्षा भी सर्वकथन है। निषेकादिका प्रमाण जैसा हो वैसा ही जानना तथा अन्य सर्वविधान अङ्कसन्दृष्टिवत् जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसप्रकार कुछकम डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण कर्मकी सत्ता जीवके सदैव पायी जाती है। गुणहानिआयामके समयोंका जो प्रमाण है उसको डेढ़गुणाकरके उसमें से किंचित्ऊन अर्थात् पल्यकी संख्यातवर्गशलाकासे अधिक गुणहानिआयामका १८वां भाग घटाना और उससे समयप्रबद्धप्रमाणको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने कर्मपरमाणु जीवके साथ सदाकाल रहते हैं। इसीसे सर्वस्थितिसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्मप्रदेश अनन्तगुणे कहे हैं। जैसे समय-समयमें एक-एकनवीनसमयप्रबद्ध बंधते हैं वैसे ही एक-एक समयप्रबद्ध उदयरूप होकर खिरते हैं तथापि सत्ता पूर्वोक्त प्रमाण सदा बनी रहती है। एकसमयमें एकसमयप्रबद्धकी निर्जरा (खिरना) किसप्रकार होती है सो कहते हैं—

वर्तमान विवक्षितसमयमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध होनेपर आबाधाकाल भी हो गया और जिसका पहले एक भी निषेक नहीं खिरा उसके तो ५१२ रूप प्रथमनिषेक उदयरूप होता है और शेषनिषेक आगामीकालमें उदयमें आवेंगे तथा जिस समयप्रबद्धका बन्ध होनेपर आबाधाकाल और एकसमय होगया हो एवं जिसके एकनिषेक पहले खिर गया हो उसका ४८० रूप दूसरानिषेक वर्तमानसमयमें उदय आता है। ४६ निषेक आगे उदयमें आवेंगे तथा जिस समयप्रबद्धको बन्ध होनेके बाद आबाधाकाल और दो समय व्यतीत हो गए हों उसके २ निषेक तो पहले खिरे और ४४८ रूप तीसरानिषेक वर्तमानसमयमें खिरता है शेष ४५ निषेक आगामीकालमें खिरेंगे। इसी क्रमसे जिस-जिस समयप्रबद्धका बन्ध पहले-पहले हुआ उसका पिछला-पिछला निषेक वर्तमानकालमें उदय होता है शेष निषेक आगामीकालमें उदय होते हैं। अन्तमें समयप्रबद्धका बन्ध होनेसे अब आबाधाकाल और ४७ समय होगए तथा ४७ निषेक जिसके पहले खिर गए हैं उसका ९ रूप अन्तिमनिषेक वर्तमानकालमें उदयरूप होता है। शेष कोई निषेक नहीं रहा अतः पहले जो समयप्रबद्ध बंधे थे उनके सर्वनिषेक निर्जीर्ण हो गए इसलिए उनका कुछ प्रयोजन ही नहीं।

इसप्रकार वर्तमानविवक्षित एकसमयमें ५१२ से ९ पर्यन्त सर्वनिषेक एकसमयमें उदय होते हैं उनका जोड़ देनेपर सम्पूर्ण समयप्रबद्धका उदय कहा है। ऐसे एक-एकसमयप्रबद्धप्रमाण परमाणु खिरते हैं वहीं एक समयप्रबद्धप्रमाण परमाणु नवीन बन्धते हैं तथा किंचित्ऊन डेढ़गुणहानिसे गुणित प्रमाण समयप्रबद्ध सत्तामें रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्कसन्दृष्टिवत् अर्थसन्दृष्टिका कथन है अतः अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्मपरमाणु अनन्तगुणे कहे हैं, क्योंकि एकसमयप्रबद्धमें, अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें-भागप्रमाण अनन्तकर्मपरमाणु होते हैं।

"इति प्रदेशबन्धप्रकरण"

।। इसप्रकार बन्धोदयसत्त्वाधिकारमें बन्धप्रकरण पूर्ण हुआ ।।

—❖—

।। अथ उदयप्रकरण ।।

चारप्रकारके बन्धका निरूपण करनेके अनन्तर अब गुणस्थानोंमें उदयका नियम कहते हैं—

आहारं तु पमत्ते, तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से ।
सम्मं वेदगसम्मे, मिच्छदुगयदेव आणुदओ ॥२६१॥

अर्थ—आहारकशरीर और आहारकअङ्गोपाङ्गका उदय प्रमत्तगुणस्थानमें ही होता है, तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय सयोगी और अयोगकेवलीके ही है। मिश्रमोहनीय-का उदय सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय असंयतादि चार-गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिके ही है, आनुपूर्वीका उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतगुणस्थानमें ही है, अन्यत्र उनके उदयका अभाव है।

आनुपूर्वीकर्मके उदयसम्बन्धी कुछ विशेषता कहते हैं—

णिरयं सासणसम्मो, ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू ।
मिच्छादिसु सेसुदओ, सगसगचरमोत्ति णादव्वो ॥२६२॥

अर्थ—सासादनसम्यग्दृष्टि मरणकर नरकगतिमें नहीं जाता है इसीकारण उनके सासादनगुणस्थानमें नरकगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं है तथा शेष प्रकृतियोंका उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें अपने-अपने उदयस्थानके अन्तसमयपर्यन्त जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ——यहां उदयप्रकरणमें व्युच्छित्ति, उदय और अनुदय ऐसे तीनप्रकारसे कथन करते हैं—जिस-जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही, उन प्रकृतियोंका उस गुणस्थानपर्यन्त उदय जानना तथा उन गुणस्थानोंसे आगेके गुणस्थानोंमें उनका उदय नहीं रहता है और उन गुणस्थानोंमें जितनी प्रकृतियोंका उदय हो सो उदय जानना।

नीचेके गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका उदय कहा हो उनमेंसे उसी गुण-स्थानमें जितनी व्युच्छित्ति कही हो उनको घटानेपर उस गुणस्थानके ऊपरवर्ती गुण-स्थानमें उदयप्रकृतिका प्रमाण जानना। यहां इतनी विशेषता है कि जो प्रकृति आगेके गुणस्थानोंमें उदययोग्य है, विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय नहीं है तो उसको उस गुणस्थानकी उदययोग्य प्रकृतिमेंसे घटा देना और पूर्वगुणस्थानमें जिसका उदय नहीं था किन्तु विवक्षितगुणस्थानमें उसका उदय होगा अतः उसको जोड़ देना यही उदय-सम्बन्धी व्यवस्थाका क्रम है तथा जितनी प्रकृतियोंका मूलमें उदय कहा उनमें जो प्रकृति शेष रहें उनका अनुदय होता है। इसप्रकार व्युच्छित्ति-उदय और अनुदयका कथन जानना।

अब गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तिको षट्खण्डागमके कर्त्ता श्री पुष्पदंत-भूतबली आचार्यके मतानुसार क्रमसे कहते हैं——

दस चउरिगि सत्तरसं, अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्कएक्कदुगदुग, चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधि ॥२६३॥

अर्थ——अभेदविवक्षासे मिथ्यादृष्टिआदि गुणस्थानोंमें क्रमसे उदयव्युच्छित्ति १०-४-१-१७-८-५-४-६-६-१-२-२-१४-२९ और १३ प्रकृतिकी जानना।

विशेषार्थ—कर्मकी १४८ प्रकृतियोंमें से अभेदविवक्षासे उदययोग्य १२२ प्रकृतियां हैं। उदयव्युच्छित्ति गुणस्थानोंके क्रमसे होती गई है जैसे—मिथ्यात्वगुणस्थानमें १० प्रकृतिकी उदयव्युच्छित्ति है। सासादनगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्नप्रकृति चार हैं। इसमतमें एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय नामकर्मकी इन प्रकृतियों-की उदयव्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होती है, सासादन गुणस्थानमें इनका उदय "पुष्पदंत-भूतबली" आचार्यके मतानुसार नहीं है[1] तथा "यतिवृषभाचार्य" के मतानुसार

१. धवल पु. १ सूत्र ३६ पृ. २६१, धवल पु. ३ सूत्र ७४-७६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनका उदय सासादनगुणस्थानमें भी कहा है[1]। मिश्रगुणस्थानमें १, असंयतगुणस्थानमें १७, देशसंयतगुणस्थानमें ८, प्रमत्तगुणस्थानमें ५; अप्रमत्तगुणस्थानमें ४, अपूर्वकरण-गुणस्थानमें ६, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ६, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें १, उपशान्त-मोहगुणस्थानमें २, क्षीणमोहगुणस्थानमें २ और १४, सयोगकेवलीके २९ प्रकृतिकी उदयव्युच्छित्ति है, क्योंकि नानाजीवोंकी अपेक्षा साता और असाता दोनोंही वेदनीयकी व्युच्छित्ति नहीं है। अयोगकेवलीके १३ प्रकृतिकी उदयव्युच्छित्ति जानना।

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदय ११७, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयका उदय नहीं होनेसे पांचप्रकृतिका अनुदय है। सासादनगुणस्थानमें उदय १०६ प्रकृतिका, मिथ्यात्वगुणस्थानकी व्युच्छिन्नप्रकृति १० और नरकगत्यानुपूर्वी इस प्रकारसे ११ का उदय न होनेसे अनुदय १६ का। मिश्रगुणस्थानमें उदयरूपप्रकृति १००, सासादनसम्बन्धी ४ और तीनआनुपूर्वीका उदय नहीं है तथा मिश्रप्रकृतिके मिलनेसे अनुदयप्रकृति २२। असंयतगुणस्थानमें उदययोग्यप्रकृति १०४, आनुपूर्वी ४ और सम्यक्त्वमोहनीय मिलनेसे तथा मिश्रमोहनीयगुणस्थानकी मिश्रगुणस्थानमें ही व्युच्छित्ति हुई अतः १८ प्रकृतिका अनुदय है। असंयतमें व्युच्छित्ति १७ प्रकृतिकी है इसलिए देशसंयतगुणस्थानमें उदयप्रकृति ८७ और अनुदयप्रकृति ३५। प्रमत्तगुणस्थानमें आहारक-द्विकसहित तथा देशसंयतगुणस्थानकी व्युच्छिन्नप्रकृति ८ बिना उदयप्रकृति ८१ और अनुदयप्रकृति ४१ हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली ५ प्रकृतियोंके बिना अप्रमत्त-गुणस्थानमें उदयप्रकृति ७६ और अनुदय ४६ प्रकृतिका है। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्न प्रकृति ४ हैं अतः उनके बिना अपूर्वकरणगुणस्थानमें उदय ७२ प्रकृतिका है, अनुदय ५० प्रकृतिका है। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति ६ कही हैं उनके बिना अनि-वृत्तिकरणगुणस्थानमें उदयरूप प्रकृति ६६ एवं अनुदयरूप प्रकृति ५६ हैं। अनिवृत्ति-करणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न प्रकृति ६ हैं अतः इनके बिना सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान-में उदयप्रकृति ६० एवं अनुदय ६२ प्रकृतिका है। यहां व्युच्छिन्नरूपप्रकृति १ कही गई है इसीकारण १ प्रकृतिबिना उपशान्तमोहगुणस्थानमें उदयप्रकृति ५९, अनुदय-प्रकृति ६३ हैं। इसगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति दो हैं अतः इन दोप्रकृतिके बिना क्षीणमोहगुणस्थानमें उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ६५ हैं। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नरूप १६ प्रकृतिके बिना तथा तीर्थङ्करप्रकृतिके मिलनेसे सयोगकेवलीके उदय-

---

१. जयधवल पु २ पृ. १०८ व १२२। धवल पु. ४ पृ. १६५ "जे पुण देवसासणा एइंदिएसुप्पज्जति त्ति भणंति।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति ४२ एवं अनुदयप्रकृति ८२ हैं। इसी गुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली २९ प्रकृतियां कही हैं, उनके बिना अयोगकेवलीगुणस्थानमें उदयरूपप्रकृति १३ तथा अनुदय-प्रकृति १०९ हैं।

षट्खण्डागम रचयिता 'पुष्पदंत-भूतबली' आचार्यके मतानुसार उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदय प्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	११७	५	५ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १० (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय व विकलत्रय)
सासादन	४	१०६	१६	१६ (१०+५+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	१००	२२	२२ (१६+४+३ नरकगत्यानुपूर्वीविना—१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१८	१८ (२२+१-५ आनुपूर्वीचार व सम्यक्त्व-प्रकृति) १७ [अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकषट्क, नरक व देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी दुर्भग, अनादेय व अयशस्कीर्ति]
देशसंयत	८	८७	३५	८ (प्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, नीचगोत्र, उद्योत)
प्रमत्तसंयत	५	८१	४१	४१ (३५+८-२ आहारकद्विक) ५ (आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)
अप्रमत्त	४	७६	४६	४ (सम्यक्त्व और अर्धनाराच-कीलक व सृपाटिकासंहनन)
अपूर्वकरण	६	७२	५०	६ (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण	६	६६	५६	६ (स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद व सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६२	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	६३	२ (नाराच व वज्रनाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	६५	१६ (ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, निद्रा और प्रचला)
सयोगकेवली	२९	४२	८०	८० (६५+१६-१ तीर्थङ्कर) २९ (वज्रर्षभनाराचसंहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, तैजस-कार्मण, संस्थान ६, वर्णादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर)
अयोग	१३	१३	१०९	१३ (साता-असातावेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र।

आगे यतिवृषभाचार्यकृत चूर्णिसूत्रका उपदेशरूप द्वितीयपक्ष कहते हैं—

पण णवइगि सत्तरसं अड पंच च चउर छक्क छच्चेव।
इगिदुग सोलस तीसं बारस उदये अजोगंता ॥२६४॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसे अयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त व्युच्छिन्नप्रकृतियां क्रमसे ५-९-१-१७-८-५-४-६-१-१६-३० और १२ हैं। ~~व्युच्छिन्नरूप प्रकृतियां मिथ्यात्वगुणस्थानसे अयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे ५-९-१-१७-८-५-४-६-१-१६-३० और १२ हैं।~~

विशेषार्थ—यद्यपि गाथोक्त इसमतका स्पष्टरूपसे कथन नहीं है, किन्तु निष्कर्षसे ऐसा ज्ञात होता है।

जयधवल पु. २ पृ. १२२ पर सञ्ज्ञीजीवोंकी कालप्ररूपणा पुरुषवेदके समान कही है तथा पृष्ठ ११५ पर पुरुषवेदीके अनन्तानुबन्धीविभक्तिकाल एकसमय कहा है। मोहनीयकी २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टिजीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकर एकसमयके बाद अनन्तानुबन्धीसहित सञ्ज्ञी रहा तथा अगले समयमें मरण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर असञ्ज्ञीजीवोंमें उत्पन्न हो गया। इसप्रकार सासादनगुणस्थानमें मरणकर असञ्ज्ञीजीवोंमें उत्पन्न होता है। यदि कहा जाय कि अगलेसमयमें मिथ्यादृष्टि होकर मरणकर असञ्ज्ञी हो गया सो सम्भव नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टि होनेके प्रथमसमयमें मरण नहीं होता है।

कषायपाहुड़चूर्णिसूत्रके कर्त्ता आचार्यके अनुसार उदयव्युच्छित्ति, उदय व अनुदयप्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	५	पूर्वसन्दृष्टिमें १० प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति कही है, किन्तु स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियकी व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थानमें न होकर सासादनगुणस्थानमें होती है अतः यहां ५ की व्युच्छित्ति कही है।
सासादन	९	१११	११	९ (अनन्तानुबन्धी ४ कषाय+स्थावर एवं एकेन्द्रियादि चारजाति।) ११ (५+५+१ नरकगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	१००	२२	पूर्वसन्दृष्टिके अनुसार
असंयत	१७	१०४	१८	,, ,, ,,
देशसंयत	८	८७	३५	,, ,, ,,
प्रमत्तसंयत	५	८१	४१	,, ,, ,,
अप्रमत्त	४	७६	४६	,, ,, ,,
अपूर्वकरण	६	७२	५०	,, ,, ,,
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५६	,, ,, ,,
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६२	,, ,, ,,
उपशान्तमोह	२	५९	६३	,, ,, ,,
क्षीणमोह	१६	५७	६५	पूर्वसन्दृष्टिमें १३वें-१४वें गुणस्थानमें साता-असाता इन दोनोंही प्रकृतियोंका उदय नानाजीवोंकी अपेक्षा १४वें गुणस्थानतक माना है, किन्तु यहां दोनोंमें से एकका ही उदय माना है इसीकारण दोनों गुणस्थानोंमें उदय-अनुदय प्रकृतियोंमें पूर्वकी अपेक्षा १-१ प्रकृतिका अन्तर है।
सयोगकेवली	३०	४२	८०	
अयोगकेवली	१२	१२	११०	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब गुणस्थानोंमें उदयव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियोंके नाम आठगाथाओंसे कहते हैं—

मिच्छे मिच्छादावं, सुहुमतियं सासणे अणेइंदी ।
थावरवियलं मिस्से, मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ॥२६५॥

अयदे बिदियकसाया, वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।
मणुयतिरियाणुपुव्वी, दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥२६६॥

देसे तदियकसाया, तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी ।
छट्ठे आहारदुगं, थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ॥२६७॥

अपमत्ते सम्मत्तं, अंतिमतियसंहदी यऽपुव्वम्हि ।
छच्चेव णोकसाया, अणियट्टी भागभागेसु ॥२६८॥

वेदतिय कोहमाणं, मायासंजलणमेव सुहुमंते ।
सुहुमो लोहो संते, वज्जं णारायणारायं ॥२६९॥

खीणकसायदु चरिमे, णिद्दा पयला य उदयवोच्छिण्णा ।
णाणंतरायदसयं, दंसणचत्तारि चरिमम्हि ॥२७०॥

तदियेक्कवज्जणिमिणं, थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं ।
संठाणं वण्णागुरुचउक्क पत्तेय जोगिम्हि ॥२७१॥

तदियेक्कं मणुवगदी, पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं ।
जसतित्थं मणुवाऊ, उच्चं च अजोगिचरिमम्हि ॥२७२॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण इन पांचप्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषाय चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इन ९ प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है। मिश्रगुणस्थानमें एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही उदयव्युच्छित्ति है ॥२६५॥

असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरणकषाय चार, वैक्रियकशरीर, वैक्रियक-अङ्गोपाङ्ग, नरकगति, देवगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १७ प्रकृतियां उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ।।२६६।।

देशसंयतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानकी चारकषाय, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र व तिर्यञ्चगतिकी उदयव्युच्छित्ति होती है । प्रमत्तगुणस्थानमें आहारकशरीर, आहारक-अङ्गोपाङ्ग, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचलाकी उदयव्युच्छित्ति है ।।२६७।।

अप्रमत्तगुणस्थानमें सम्यक्त्वमोहनीय, अर्धनाराच-कीलित व सृपाटिकासंहनन-की अपूर्वकरणगुणस्थानमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उदय-व्युच्छित्ति होती है । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें तीनोंवेद व सञ्ज्वलनक्रोधके साथ श्रेणी चढ़नेकी अपेक्षा सवेदभाग और अवेदभागमें व्युच्छित्ति कहेंगे ।।२६८।।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें तीनोंवेदकी, अवेद-वेदरहितभागमें क्रमसे सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान, सञ्ज्वलनमाया इसप्रकार ६ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है । बादरलोभ भी अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ही व्युच्छिन्न होता है । सूक्ष्म-साम्परायगुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभकी एवं उपशान्तमोहगुणस्थानमें वज्रनाराच और नाराचसंहननकी उदयव्युच्छित्ति होती है ।।२६९।।

क्षीणकषायगुणस्थानके अन्तिम दो समयोंमें से द्विचरमसमयमें निद्रा और प्रचलाकी तथा चरमसमयमें ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण और ५ अन्तरायकी इस-प्रकार सर्व १६ प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है ।।२७०।।

सयोगकेवलीगुणस्थानमें दोनों वेदनीयमें से कोई एकवेदनीय, वज्रर्षभनाराच-संहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त-विहायोगति, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, तैजस-कार्मणशरीर, ६ संस्थान, वर्णादिचार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर इन ३० प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छित्ति होती है ।।२७१।।

अयोगीगुणस्थानके अन्तमें साता-असातावेदनीयमें से कोई एक, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और उच्चगोत्र ये १२ प्रकृतियां व्युच्छित्तिरूप हैं ।।२७२।।

विशेषार्थ—पूर्वमतानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतु-रिन्द्रियका उदय मिथ्यात्वमें ही कहा है अतः मिथ्यात्वगुणस्थानके अन्तमें इनकी उदय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्युच्छित्ति हो जाती है, किन्तु गाथा २६४ के मतानुसार उपर्युक्त ५ प्रकृतिका उदय सासादनगुणस्थानमें कहा अतः इनकी उदयव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें होती है। सयोगकेवली व अयोगकेवलीगुणस्थानमें यहां जो साता-असातावेदनीयमेंसे एककी व्युच्छित्ति कही है वह एकजीवकी अपेक्षा कथन किया गया है, किन्तु नानाजीवोंकी अपेक्षा इन दोनोंगुणस्थानोंमें साता-असातावेदनीयकी व्युच्छित्ति नहीं है, क्योंकि सयोगी व अयोगी-गुणस्थानमें एकजीवापेक्षा ३० व १२ प्रकृतिकी क्रमसे व्युच्छित्ति कही है एवं नाना-जीवोंकी अपेक्षा २९ व १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही गई है।

जिसप्रकार अन्यगुणस्थानोंमें साता-असातावेदनीयजन्य सुख-दुःख होता है उसीप्रकार केवलीभगवान् के भी होना चाहिए। ऐसी शंका होनेपर आचार्य समाधान करते हुए अगली गाथा कहते हैं--

णट्ठा य रायदोसा, इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ॥२७३॥

अर्थ--केवलीभगवान्के घातियाकर्मोंका नाश हो जानेसे रागके कारणभूत चारप्रकारकी माया, चारप्रकारका लोभ, तीनवेद, हास्य-रति तथा द्वेषके कारणभूत चार-प्रकारका क्रोध, चारप्रकारका मान अरति-शोक भय और जुगुप्साका निर्मूल नाश हो गया है अतः इनका राग-द्वेष नष्ट हो चुका है तथा युगपत् सकलतत्त्वप्रकाशी ज्ञानमें क्षयोपशमरूप परोक्षमतिज्ञान और श्रुतज्ञान नहीं हो सकते इसलिए इन्द्रियजनित ज्ञान नष्ट हो गया, इसीकारण केवलीके साता और असातावेदनीयके उदयसे सुख-दुःख नहीं है, क्योंकि सुख-दुःख इन्द्रियजनित हैं तथा वेदनीयके सहकारीकारण मोहनीयका अभाव हो गया है अतः वेदनीयके उदय होनेपर भी वह सुख-दुःख देनेरूप कार्यकरनेमें असमर्थ है।

वेदनीयकर्म केवलीके इन्द्रियजन्य सुख-दुःखका कारण क्यों नहीं है? इसके उत्तरस्वरूप दोगाथाएं कहते हैं--

समयट्ठिदिगो बंधो, सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ, सादसरूवेण परिणमदि ॥२७४॥
एदेण कारणेण दु, सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता, परीसहा जिणवरे णत्थि ॥२७५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—केवलीभगवानके सातावेदनीयका बन्ध एकसमयकी स्थितिवाला है अतः उदयरूप ही है तथा केवलीके असातावेदनीयका उदय सातारूपसे परिणत होता है ॥२७४॥

केवलीके निरन्तर साताका ही उदय है, क्योंकि असाताके उदयसे होनेवाले (क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, निषद्या, रोग, तृणस्पर्श और मल) परीषह नहीं होते हैं ॥२७५॥

विशेषार्थ—केवलीभगवानके अनन्तगुणीहीन अनुभागशक्तिवाली असाताका उदय है, क्योंकि पूर्वमें अनेकों अनुभाग काण्डकोंके द्वारा असातावेदनीयकी अनुभागशक्ति क्षीण की जा चुकी है और मोहनीयकी सहायताका भी अभाव हो गया है अतः असातावेदनीयका अप्रकट-सूक्ष्म उदय है तथा जो सातावेदनीयका बन्ध होता है उसका अनुभाग अनन्तगुणा है। सातावेदनीयकी स्थितिकी अधिकता संक्लेशसे एवं अनुभागकी अधिकता विशुद्धतासे होती है, अतः केवलीके विशुद्धता विशेष होनेसे स्थितिका अभाव है तथापि जो एकसमयकी स्थितिसहित अनन्तअनुभागवाला बन्ध हो रहा है, वह उदयरूप ही जानना। चूँकि केवलीके सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा होता है अतः जो असाताका उदय है, वह भी उदयागत अनुभागयुक्त सातावेदनीयके द्वारा प्रतिहत[1] हो जाता है।

शंका—कोई कहता है कि सातावेदनीय असातारूप परिणत होती है ऐसा क्यों नहीं कहते हो ?

समाधान—साताका स्थितिबन्ध दोसमयका नहीं हैं, किन्तु उदयरूप एकसमयवाला है, अन्यथा कहनेपर असाताके बन्धका प्रसङ्ग आता है, किन्तु वह सम्भव नहीं है, क्योंकि उदयरूप एकसमयकी स्थिति लिये हुए बंधनेवाली साताकी पूर्वसमयमें सत्ता ही नहीं है अतः साताका असातारूप स्तुविकसंक्रमण सम्भव नहीं है।

दूसरीबात यह है कि **"एकादशजिने"** तथा **"वेदनीय शेषा"** तत्त्वार्थसूत्रके इन सूत्रोंके अनुसार वेदनीयकर्मके निमित्तसे होनेवाली ११ परीषह केवलीके होती हैं ऐसा जो कहा गया है, उसका कारण यह है कि यद्यपि असातावेदनीयका उदय केवलीके पाया जाता है अतः उसके कार्यरूप परीषहोंका होना मात्र उपचारसे कहा है मुख्यरूपेण तो केवलीके परीषहका अभाव ही है।

---

१. धवल पु. १३ पृ. ५३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंका—साताका उदयकाल तो अन्तर्मुहूर्त कहा गया है उसका कुछकम एक-कोटिपूर्वतक केवलीभगवानके निरन्तर उदय कैसे रह सकता है ?

समाधान—सयोगकेवलीके अतिरिक्त अन्यत्र साताका उदयकाल अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। केवलीके निरन्तर उदयरूप एकसमयकी स्थितिवाला साताका बन्ध होता रहता है जो अन्यत्र सम्भव नहीं है[1]।

अब उदय-अनुदय दोगाथाओंसे कहते हैं—

सत्तरसेक्कारख चदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी।
छावट्ठि सट्ठि णवसगवण्णास दुदालबारुदया ॥२७६॥

अर्थ—मिथ्यात्वसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे ११७-१११-१००-१०४-८७-८१-७६-७२-६६-६०-५९-५७-४२ और १२ प्रकृतिका उदय पाया जाता है।

पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठि असीदि दुगुणपणवण्णं ॥२७७॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानोंमें क्रमसे ५-११-२२-१८-३५-४१-४६-५०-५६-६२-६३-६५-८० और ११० प्रकृतियां अनुदयरूप हैं। अर्थात् इनका उदय नहीं पाया जाता है।

नोट—गाथा २७७ तक का विशेषकथन गाथा २६३ के विशेषार्थसे जानना चाहिए तथा इस कथन (उदय-अनुदय-उदयव्युच्छित्ति) सम्बन्धी सन्दृष्टियां गाथा २६३ व २६४ में दी गई हैं वहांसे जानना।

उदय-उदीरणारूप प्रकृतियोंकी विशेषता तीनगाथाओंसे कहते हैं—

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो।
मोत्तूण तिण्णिठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥२७८॥

अर्थ—उदय और उदीरणारूप प्रकृतियोंमें स्वामीपनेकी अपेक्षा कुछ विशेषता नहीं है, किन्तु प्रमत्त, सयोगी व अयोगी इन तीनगुणस्थानोंको छोड़ देना, क्योंकि इन

१. धवल पु. १३ पृ. ५४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनगुणस्थानोंमें ही विशेषता है शेष गुणस्थानोंमें समानता ही है। (अब उसी विशेषता-को आगे कहते हैं।)

तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलिणमेकदं किच्चा।
सादमसादं च तहिं, मणुवाउगमवणिदं किच्चा ॥२७९॥

अर्थ—सयोग-अयोगकेवलीगुणस्थानकी ३० और १२ प्रकृति मिलकर ४२ प्रकृतियोंमें से साता-असाता और मनुष्यायु इन तीनप्रकृतियोंको घटाना चाहिये।

अवणिदतिप्पयडीणं, पमत्तविरदे उदीरणा होदि।
णत्थित्ति अजोगिजिणे, उदीरणा उदयपयडीणं ॥२८०॥

अर्थ—घटाई हुई साता आदि तीनप्रकृतियोंकी उदीरणासे व्युच्छित्ति प्रमत्त गुणस्थान में हो जाती है अतः यहां आठप्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति होती है शेष ३९ प्रकृतियोंकी उदीरणा तथा उदीरणाव्युच्छित्ति सयोगकेवलीके ही होती है। अयोग-केवलीके उदीरणा नहीं पाई जाती यही यहां विशेषता है।

अब उदीरणासे व्युच्छिन्न प्रकृतियोंका कथन गुणस्थानोंमें करते हैं—

पण णव इगि सत्तरसं, अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलुगदालं, उदीरणा होंति जोगंता ॥२८१॥

अर्थ—मिथ्यात्वसे सयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे ५-९-१-१७-८-८-८-४-६-६-१-२-१६ और ३९ प्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति होती है।

अथानन्तर दोगाथाओंसे उदीरणा-अनुदीरणारूप प्रकृतियोंको कहते हैं—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि तियसदरी।
णवतिगिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं ॥२८२॥
पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी, पणछक्कडसट्ठि तेसीदी ॥२८३॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि १३ गुणस्थानोंमें क्रमसे ११७-१११-१००-१०४-८७-८१-७३-६९-६३-५७-५६-५४-३९ प्रकृतियां उदीरणारूप हैं तथा ५-११-२२-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८-३५-४१-४९-५३-५९-६५-६६-६८ और ८३ प्रकृतियां अनुदीरणारूप हैं। इनका विशेष कथन निम्नसन्दृष्टिसे जानना चाहिए।

गुणस्थानोंमें उदीरणाव्युच्छित्ति-उदीरणा और अनुदीरणारूप प्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	उदीरणा-व्युच्छित्ति	उदीरणा	अनुदीरणा	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	५	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
सासादन	९	१११	११	" " " " "
मिश्र	१	१००	२२	" " " " "
असंयत	१७	१०४	१८	" " " " "
देशसंयत	८	८७	३५	" " " " "
प्रमत्त	८	८१	४१	८ (उदयव्युच्छित्तिमें कथित ५ प्रकृति तथा साता व असातावेदनीय और मनुष्यायु)
अप्रमत्त	४	७३	४९	यहां उदयमें ७६ प्रकृति कही हैं, किन्तु सातादि तीन प्रकृतियोंकी उदीरणा छठे गुणस्थानमें ही हो जाने से यहां अनुदीरणामें ३ प्रकृति बढ़ गईं अतः उदीरणारूप ७३ प्रकृतियां ही रहीं।
अपूर्वकरण	६	६९	५३	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
अनिवृत्तिकरण	६	६३	५९	" " " " "
सूक्ष्मसाम्पराय	१	५७	६५	" " " " "
उपशान्तमोह	२	५६	६६	" " " " "
क्षीणमोह	१६	५४	६८	" " " " "
सयोग	३९	३९	८३	८३ (६८+१६-१ तीर्थङ्कर)

गुणस्थानोंमें उदय-उदीरणारूप त्रिभङ्गीका कथन करके गतिआदि १४ मार्गणाओंमें उदयत्रिभङ्गीका कथन करते हुए प्रथम ही उदयका कथन करते हैं—

गदियादिसु जोग्गाणं, पयडिप्पहुदीणमोघसिद्धाणं।
सामित्तं णेदव्वं, कमसो उदयं समासेज्ज ॥२८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध गुणस्थानोंमें सिद्ध किए जा चुके हैं। उदयापेक्षा उनका स्वामित्व गतिआदि मार्गणाओंमें क्रमसे घटित करना चाहिए।

आगे इस विषयमें सर्वप्रथम कुछ विशेष बातें पांचगाथाओंसे कहते हैं—

गदिआणुआउउदओ, सपदे भूपुण्णबादरे ताओ।
उच्चुदओ णरदेवे, थीणतिगुदओ णरे तिरिये ॥२८५॥

अर्थ—किसी भी विवक्षित भवके प्रथमसमयमें ही उस विवक्षितभवके योग्य गति, आनुपूर्वी और आयुका उदय होता है। तथा 'सपदे' कहनेसे एकजीवके एक ही गति, आनुपूर्वी तथा आयुका उदय युगपत् होता है। आतपनामकर्मका उदय बादर-पर्याप्तपृथ्वीकायिकजीवके ही होता है। उच्चगोत्रका उदय मनुष्य और देवोंके ही सम्भव है[1] और स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्राओंका उदय मनुष्य और तिर्यञ्चके ही सम्भव है, अन्यके नहीं।

संखाउगणरतिरिए, इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय, आहारविगुव्विणुट्ठवगे ॥२८६॥

अर्थ—संख्यातवर्षकी आयुवाले कर्मभूमियां मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही इन्द्रियपर्याप्तिके पूर्ण होनेके पश्चात् स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्राप्रकृति उदययोग्य हैं, किन्तु आहारकऋद्धि और वैक्रियकऋद्धिकेधारक मनुष्योंको छोड़कर सर्वकर्मभूमिज मनुष्योंमें इसके उदयकी योग्यता है।

अयदापुण्णे ण हि थी, संढोवि य धम्मणारयं मुच्चा।
थीसंढयदे कमसो, णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू ॥२८७॥

अर्थ—निर्वृत्तिअपर्याप्तके असंयतगुणस्थानमें स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उदय नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरणकर स्त्रीमें उत्पन्न नहीं होता, किन्तु घर्मानामक प्रथमनरक नपुंसकवेदके लिए अपवादरूप है, क्योंकि जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध करलिया है, ऐसा मनुष्य क्षायिक या कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वसहित मरणकर घर्मानरकमें ही उत्पन्न होता है अतः असंयतगुणस्थानमें स्त्रीवेदीके तो चारोंआनुपूर्वीका उदय नहीं है, किन्तु नपुंसकवेदीके नरकगत्यानुपूर्वीका उदय तो है शेष तीनका उदय नहीं है।

1. धवल पु. १५ पृ. १५२ पर देशसंयमी तिर्यञ्चोंके भी उच्चगोत्रका उदय कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इगिविगलथावरचऊ, तिरिए अपुण्णो णरेवि संघडणं ।
ओरालदु णरतिरिए, वेगुव्वदु देवणेरयिए ॥२८८॥

अर्थ—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, ये तिर्यञ्चोंके ही उदययोग्य हैं. किन्तु अपर्याप्तप्रकृति मनुष्योंके भी उदययोग्य है । वज्रर्षभनाराचादि छहसंहनन और औदारिकशरीरनामकर्मका युगल, मनुष्य व तिर्यञ्चके उदययोग्य है। वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग देव और नारकियों-के ही उदययोग्य है ।

तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु ।
सेसाणं पयडीणं, ओघं वा होदि उदओ दु ॥२८९॥

अर्थ—तेज-वायु और साधारणवनस्पतिकायिकके बिना अन्य बादरपर्याप्तक-तिर्यञ्चोंके उद्योतप्रकृतिका उदय होता है और शेष प्रकृतियोंका उदय गुणस्थानके क्रमसे जानना ।

विशेष—आतपनामकर्मका उदय पृथ्वीकायिकमें ही है ।

इसप्रकार पांच गाथासूत्रोंमें उदयका विशेष नियम कहकर अब गतिमार्गणा-सम्बन्धी कथनमें सर्वप्रथम "नरकगति" में उदयरूप प्रकृतियोंको कहते हैं—

थीणतिथीपुरिसूणा, घादी णिरयाउणीचवेयणियं ।
णामे सगवचिठाणं, णिरयाणू णारयेसुदया ॥२९०॥

अर्थ—स्त्यानगृद्धिआदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन पांचबिना ४२ प्रकृति और नरकायु, नीचगोत्र, साता व असातावेदनीय एवं नामकर्ममें से नारकियोंके भाषापर्याप्तिके स्थानमें होनेवाली २९ प्रकृतियां, नरकगत्यानुपूर्वी इसप्रकार ये ७६ प्रकृतियां नरकगतिमें उदययोग्य कही गई हैं ।

नामकर्मसम्बन्धी २९ प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी ।
णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णाचऊ य वचिठाणं ॥२९१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, तैजस-कार्मण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अप्रशस्तविहायोगति, हुण्डकसंस्थान, निर्माण, पञ्चेन्द्रियजाति, नरकगति, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श ये २९ प्रकृतियां नारकीजीवके वचनपर्याप्तिके स्थानपर उदयरूप हैं।

अब घर्मानामक प्रथमनरकमें उदयव्युच्छित्ति, उदय-अनुदयरूप प्रकृतियोंको कहते हैं—

मिच्छमणंतं मिस्सं, मिच्छादितिए कमा छिदी अयदे।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ ॥२९२॥

अर्थ—यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी ४ कषायकी व्युच्छित्ति, मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व) में सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी व्युच्छित्ति और असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकी चारकषाय, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग इन १२ प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—घर्मानरकसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदय ७४ प्रकृतिका एवं मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयका होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ है अत: वह मिथ्यात्वगुणस्थानकी अनुदयरूप दो तथा नरकगत्यानुपूर्वीसहित सासादनमें अनुदयप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७२, मिश्रगुणस्थानमें उदयप्रकृति ६९, मिश्रमोहनीयका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति ७। असंयतगुणस्थानमें उदयप्रकृति ७० तथा सम्यक्त्व और नरकगत्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति ४।

घर्मानरकसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति, उदय, अनुदयरूप प्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति ७६, गुणस्थान ४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७४	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	७२	४	४ (२+१+नरकगत्यानुपूर्वी) व्यु. ४ (अनन्तानुबन्धी)
मिश्र	१	६९	७	७ (४+४-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१२	७०	६	६ (७+१-२ सम्यक्त्व, नरकगत्यानुपूर्वी) १२ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, नरकायु, अयशस्कीर्ति, नरकद्विक, वैक्रियकद्विक)

अब द्वितीयादि छह पृथ्वियोंमें उदयादिका कथन करते हैं—

बिदियादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि य असंजदट्ठाणे ।
णत्थि णिरयाणुपुव्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो ॥२९३॥

अर्थ—वंशादि छह पृथ्वियोंमें घर्मावत् उदययोग्य प्रकृति ७६ हैं, किन्तु यहां विशेषता यह है कि असंयतगुणस्थानमें नरकगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं है, क्योंकि जिसके नरकायुका बन्ध हो गया है ऐसा सम्यग्दृष्टिजीव वंशादि छहपृथ्वियोंमें जन्म नहीं लेता है। अतः इसकी (नरकानुपूर्वीकी) व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होने से मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ७४, अनुदय सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन दोका है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, उदय ७२ प्रकृतिका, अनुदय ४ प्रकृतिका। मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति ७, उदयप्रकृति ६९, व्युच्छिन्नप्रकृति १। असंयतगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिके मिलनेसे अनुदयप्रकृति ७, उदयप्रकृति ६९, व्युच्छिन्नप्रकृति ११ हैं।

वंशादि ६ पृथ्वीसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति ७६, गुणस्थान ४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	७४	२	व्यु. २ (मिथ्यात्व और नरकगत्यानुपूर्वी)
सासादन	४	७२	४	पूर्व सन्दृष्टि अनुसार
मिश्र	१	६६	७	" " "
असंयत	११	६६	७	७ (७+१-१ सम्यक्त्व) ११ (पूर्वसन्दृष्टि कथित १२-१ नरकगत्यानुपूर्वी)

अब तिर्यञ्चगतिमें उदयादिका कथन करते हैं--

तिरिये ओघो सुरणरणिरयाऊउच्च मणुदुहारदुगं ।
वेगुव्वछक्कतित्थं, णत्थि हु एमेव सामण्णे ॥२६४॥

अर्थ--तिर्यञ्चगतिमें सर्वरचना गुणस्थानवत् जानना। उदययोग्य १२२ प्रकृतियोंमें से यहां देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आहारकशरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर ये १५ प्रकृतियां उदययोग्य नहीं है अतः १०७ प्रकृतिका उदय पाया जाता है।

विशेषार्थ---पांचप्रकारके तिर्यञ्चोंमें से सामान्यतिर्यञ्चके उदययोग्य १०७ प्रकृति ही हैं, गुणस्थान ५ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति १०५, अनुदयप्रकृति २। सासादनगुणस्थानमें अनुदयप्रकृति ७, उदयप्रकृति १००, व्युच्छिन्नप्रकृति ९। (सासादनकी व्युच्छिन्नप्रकृति ९, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका उदयाभाव तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होनेसे) मिश्रगुणस्थानमें अनुदय १६, उदय ९१ और व्युच्छित्ति एकप्रकृतिकी है। (सम्यक्त्व और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका उदय होने से) असंयतगुणस्थानमें अनुदयप्रकृति १५, उदयप्रकृति ९२, व्युच्छिन्नप्रकृति (अप्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति) ८ हैं। देशसंयतगुणस्थानमें अनुदयरूपप्रकृति २३, उदयप्रकृति ८४ तथा असंयतगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ८ ही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्यतिर्यञ्चसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—
उदययोग्य प्रकृति १०७, गुणस्थान ५।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	१०५	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति। ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	९	१००	७	७=(५+२) ९=(अनन्तानुबंधी ४, एकेन्द्रियादि जाति ४, स्थावर)
मिश्र	१	९१	१६	१६ (९+७+१ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी—१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	९२	१५	१५ (१६+१—२ सम्यक्त्व व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी) ८ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८४	२३	८ (प्रत्याख्यानकषाय ४, उद्योत, तिर्यञ्चगति, नीचगोत्र और तिर्यञ्चायु)

अथानन्तर सामान्यपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पर्याप्तक पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंमें उदयादि कहते हैं—

थावरदुगसाहारणताविगिविगलूण ताणि पंचक्खे।
इत्थिअपज्जत्तूणा, ते पुण्णे उदयपयडीओ ॥२७५॥

अर्थ—सामान्यतिर्यञ्चसम्बन्धी पूर्वोक्त १०७ प्रकृतिमें से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, एकेन्द्रिय और विकलत्रयकी तीन इन ८ प्रकृतियोंके बिना शेष ९९ प्रकृतियां पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उदय योग्य हैं।

विशेषार्थ—यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्व व अपर्याप्त इन दो प्रकृतिकी उदय ९७ प्रकृति का और अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्वप्रकृतिका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति ९५ और अनुदय-प्रकृति ४ हैं। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति पूर्वोक्त ८ प्रकृति की, उदय ९२ प्रकृतिका और अनुदय तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी व सम्यक्त्वबिना ७ प्रकृतिका। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ८, उदयप्रकृति ८४ और अनुदयप्रकृति १५।

पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चसामान्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ९९, गुणस्थान ५।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	९७	२	अनु. २ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) व्यु. २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	४	९५	४	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९१	८	८ (४+४-१ सम्यग्मिथ्यात्व+तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी)
असंयत	८	९२	७	७ (८+१-२ सम्यक्त्व, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी) ८ (पूर्वसन्दृष्टि अनुसार)
देशसंयत	८	८४	१५	पूर्ववत्

पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चसामान्यकी उदययोग्य प्रकृतियोंमें से स्त्रीवेद और अपर्याप्तके बिना पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उदययोग्य ९७ प्रकृतियां हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ (मिथ्यात्व), उदयप्रकृति ९५, अनुदयप्रकृति २ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व)। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय), उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, अनुदय-प्रकृति ७, उदयप्रकृति ९०। असंयतमें व्युच्छित्ति ८, उदय ९१ का और अनुदय ६ का। देशसंयतमें व्युच्छित्ति आठकी, उदय ८३ का एवं अनुदय १४ का है।

पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ९७, गुणस्थान ५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९५	२	२ (मिश्रप्रकृति व सम्यक्त्वप्रकृति) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	९४	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९०	७	१ (सम्यग्मिथ्यात्व) ७ (७+१ तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी−१ मिश्रमोहनीय)
असंयत	७	९१	६	६ (७+१−२ सम्यक्त्व, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी) ८ (४ अप्रत्याख्यानकषाय+दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८३	१४	८ (पूर्वोक्त)

अथानन्तर योनिमति और लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चोंमें उदयादि कहते हैं—

पुसंढूणित्थिजुदा, जोणिणिये अविरदे ण तिरयाणू।
पुण्णिदरे थी थीणति, परघाददु पुण्णउज्जोवं ॥२९६॥
सरगदिदु जसादेज्जं, आदीसंठाणसंहदीपणगं।
सुभगं सम्मं मिस्सं, हीणा तेऽपुण्णसंढजुदा ॥२९७॥जुम्मं॥

अर्थ—पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चके उदययोग्य ९७ प्रकृतियोंमें से पुरुषवेद व नपुंसकवेद कमकरके स्त्रीवेद मिलानेसे योनिमतितिर्यञ्च (तिर्यञ्चनी) के उदययोग्य प्रकृति ९६ हैं (गुणस्थान पांच हैं।) तथा योनिमतीतिर्यञ्चसम्बन्धी उदययोग्य ९६ प्रकृतियोंमें से स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, उद्योत, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, यशस्कीर्ति, आदेय, आदिके पांचसंस्थान, आदिके पांचसंहनन, सुभग, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, इन २७ प्रकृतियोंको घटाकर तथा अपर्याप्त व नपुंसकवेद मिलानेसे पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्चके उदययोग्य प्रकृति ७१ हैं और एक मिथ्यात्वगुणस्थान है।

विशेषार्थ—योनिमतितिर्यञ्चके उदययोग्यप्रकृति ९६ तथा गुणस्थान ५ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयव्युच्छित्ति मिथ्यात्वप्रकृतिकी, उदयप्रकृति ६४, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषाय ४, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन ५ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ९३, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति, उदयरूप प्रकृति ८९, अनुदय ७ प्रकृतिका है। अविरतसम्यग्दृष्टि मरणकर तिर्यञ्चिनी अर्थात् स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता अतः असंयतगुणस्थानमें पूर्वोक्त ८ में से तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके बिना ७ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ८९ हैं, क्योंकि यहां सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय पाया जाता है, अनुदयप्रकृति ७ हैं। देशसंयतगुणस्थानमें गुणस्थानोक्त ८ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति, उदय ८२ प्रकृतिका तथा अनुदय १४ प्रकृतिका है।

योनिमतितिर्यञ्च (तिर्यञ्चिनी) सम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि--

उदययोग्यप्रकृति ९६, गुणस्थान ५।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९४	२	पूर्वसन्दृष्टि अनुसार
सासादन	५	९३	३	५ (अनन्तानुबन्धी ४+तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	८९	७	७ (५+३-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	७	८९	७	अनु. ७ (७+१-सम्यक्त्वप्रकृति) व्यु. ७ (पूर्वोक्त ८-१ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८२	१४	व्यु. ८ (पूर्वोक्त)

अथानन्तर मनुष्यगतिमें उदयादिका कथन करते हैं—

मणुवे ओघो थावरतिरियादावदुगएयवियलिंदी।
साहरणिदराउतियं, वेगुव्वियछक्क परिहीणो ॥२९८॥

अर्थ—मनुष्य चारप्रकारके हैं, उनमें से सामान्यमनुष्यके गुणस्थानोक्त उदययोग्य १२२प्रकृतिमे से स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, एकेन्द्रिय,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, साधारण, नरक-तिर्यञ्च व देवायु, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, इन २० प्रकृतियोंको घटानेसे उदययोग्य १०२ प्रकृतियां हैं।

मिच्छमपुण्णं छेदो, अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे।
बिदियकसायणराणू, दुब्भगऽणादेज्ज अज्जसयं ॥२९९॥

देसे तदियकसाया, णीचं एमेव मणुससामण्णे।
पज्जत्तेवि य इत्थीवेदापज्जत्तिपरिहीणो ॥३००॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्तकी, सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वकी, असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषाय ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति इन आठप्रकृतिकी और देशसंयतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानकी ४ कषाय और नीचगोत्रकी उदयव्युच्छित्ति होती है। इसके आगे प्रमत्तसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त गुणस्थानोक्त क्रमसे उदयव्युच्छित्ति जानना। पर्याप्त मनुष्यमें, सामान्यमनुष्यकी १०२ प्रकृतियोंमें से स्त्रीवेद और अपर्याप्तप्रकृति कम करनेपर १०० प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ—सामान्यमनुष्यके मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ९७ एवं अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर ये ५ हैं। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, उदयरूपप्रकृति ९५, अनुदयरूप प्रकृति ७ हैं। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, उदय ९१ प्रकृतिका और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदयाभाव तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उदय होनेसे यहां अनुदय ११ प्रकृतिका है। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ८ प्रकृतिकी, उदय ९२ प्रकृतिका तथा सम्यक्त्व और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय १० प्रकृतिका है। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८४, अनुदयप्रकृति १८। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१ और आहारकद्विकके मिलनेसे अनुदयप्रकृति २१ हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, उदयरूप प्रकृति ७६ और अनुदयरूप प्रकृति २६ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय ७२ प्रकृतिका, अनुदय ३० प्रकृतिका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६६ प्रकृतिका, अनुदय ३६ प्रकृतिका। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, उदय ६० प्रकृतिका तथा अनुदय ४२ प्रकृतिका है। उपशान्तकषायगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति २, उदयप्रकृति ५६, अनुदयप्रकृति ४३। क्षीणकषायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदय प्रकृति ५७ एवं अनुदयप्रकृति ४५। सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३०, तीर्थङ्करसहित उदययोग्यप्रकृति ४२ एवं अनुदयप्रकृति ६० हैं। अयोग-केवलीगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १२ प्रकृतिकी, उदय १२ प्रकृतिका और अनुदय ९० प्रकृतिका जानना चाहिए।

सामान्यमनुष्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति १०२, गुणस्थान १४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	९७	५	५ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थङ्कर) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	४	९५	७	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९१	११	११ (७+४+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	९२	१०	१० (११+१–२, मनुष्यगत्यानुपूर्वी व सम्यक्त्व) ८ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	५	८४	१८	५ (प्रत्याख्यानकषाय ४ और नीचगोत्र)
प्रमत्तसंयत	५	८१	२१	२१ (१८+५–२ आहारकद्विक) ५ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा और आहारकद्विक)
अप्रमत्तसंयत	४	७६	२६	४ (अर्धनाराच, कीलक, सपाटिकासंहनन, सम्यक्त्व)
अपूर्वकरण	६	७२	३०	६ (हास्यादि नोकषाय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण	६	६६	३६	६ (स्त्री-पुरुष व नपुंसकवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४२	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	४३	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	४५	१६ (निद्रा. प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय)
सयोगकेवली	३०	४२	६०	६० (४५+१६−१ तीर्थङ्कर) ३० (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	९०	१२ (,, ,, ,, ,, ,,)

इसीप्रकार सामान्यमनुष्यमें उदययोग्य १०२ प्रकृतिमें से स्त्रीवेद और अपर्याप्त-प्रकृति कम करनेपर पर्याप्तमनुष्यके उदययोग्य १०० प्रकृति हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९५, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्वादि ५। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति ६। मिश्रगुण-स्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ९०, अनुदयप्रकृति १०। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ९१, सम्यक्त्व और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८३, अनुदय-प्रकृति १७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८०, अनुदयप्रकृति २०। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७५ और अनुदयप्रकृति २५ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयरूपप्रकृति ७१, अनुदय २९ प्रकृतिका। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ५, उदयप्रकृति ६५ तथा अनुदयप्रकृति ३५। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, उदयरूप प्रकृति ६० तथा अनुदयरूप प्रकृति ४० हैं। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति ४१। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ४३। सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३०, उदयरूप प्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति ५८। अयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १२ प्रकृति की, उदय १२ प्रकृतिका तथा अनुदय ८८ प्रकृतिका पाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्तमनुष्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति १००, गुणस्थान १४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९५	५	५ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थङ्कर)
सासादन	४	९४	६	४ (अनन्तानुबन्धी)
मिश्र	१	९०	१०	१० (६+४+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	९१	९	९ (१०+१–२ मनुष्यगत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) ८ (पूर्वसन्दृष्टिके अनुसार)
देशसंयत	५	८३	१७	५ („ „ „)
प्रमत्तसंयत	५	८०	२०	२० (१७+५–२ आहारकद्विक) ५ (पूर्वसन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७५	२५	४ (पूर्वसन्दृष्टिमें कही हुईं)
अपूर्वकरण	६	७१	२९	६ („ „ „)
अनिवृत्तिकरण	५	६५	३५	५ (पुरुष व नपुंसकवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४०	१ (पूर्वसन्दृष्टिके अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५०	४१	२ („ „ „)
क्षीणमोह	१६	५७	४३	१६ („ „ „)
सयोगकेवली	३०	४२	५८	५८ (४३+१६–१ तीर्थङ्कर) ३० (पूर्वसन्दृष्टिके अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	८८	१२ (पूर्वसन्दृष्टिके अनुसार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणुसिणिएत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा ।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

अर्थ—पर्याप्तमनुष्यसम्बन्धी उदययोग्य १०० प्रकृतियोंमें से तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये ५ प्रकृति कम करके स्त्रीवेद मिलानेपर मनुष्यिनिके उदययोग्य ९६ प्रकृतियां हैं तथा लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यके लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्चवत् ७१ प्रकृतियां उदययोग्य हैं (किन्तु तिर्यञ्च आनुपूर्वी, तिर्यञ्च गति और तिर्यञ्चायु ये तिर्यञ्चसम्बन्धी तीनप्रकृतियां छोड़कर उनके स्थानपर मनुष्यसम्बन्धी मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी-मनुष्यायु जानना) गुणस्थानएक मिथ्यात्व है ।

विशेषार्थ—मनुष्यिनिके उदययोग्यप्रकृति ९६ तथा गुणस्थान १४ हैं । यहां मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदयव्युच्छित्ति १ मिथ्यात्वकी, उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति । सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चारकषाय और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ९३, अनुदयप्रकृति ३ । मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति, उदय ८९ प्रकृतिका, अनुदय ७ प्रकृतिका । असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन ७ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ८९, अनुदय ७ प्रकृतिका । देशसंयतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानकषाय चार और नीचगोत्र इन ५ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ८२, अनुदयप्रकृति १४ । प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्राकी, उदय ७७ प्रकृतिका तथा अनुदय १९ प्रकृतिका है । अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति २२ । अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७० और अनुदयप्रकृति २६ हैं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके भागोंमें व्युच्छिन्नप्रकृति क्रमसे स्त्रीवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया ये चार हैं । उदयप्रकृति ६४, अनुदयप्रकृति ३२ । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति, ६० प्रकृतिका उदय एवं ३६ प्रकृतिका अनुदय है । उपशान्तमोहगुणस्थानमें वज्रनाराच व नाराचसंहननकी व्युच्छित्ति, उदयरूप प्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ३७ । क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १६ प्रकृतिकी, उदय ५७ प्रकृतिका, अनुदय ३९ प्रकृतिका । सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ३० प्रकृति की, उदय ४१ प्रकृति का और अनुदय ५५ प्रकृतिका । अयोगीगुणस्थानमें व्युच्छित्ति तीर्थङ्करबिना ११ प्रकृतिकी, उदय ११ प्रकृतिका तथा अनुदय ८५ प्रकृतियोंका है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योनिमतिमनुष्य (मनुष्यिनि) के उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्य प्रकृति ९६, गुणस्थान १४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९४	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	५	९३	३	५ (अनन्तानुबन्धी ४+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	८९	७	७ (३+५−१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	७	८९	७	अनु. ७ (७+१−१ सम्यक्त्वप्रकृति) व्यु. ७ (पूर्वोक्त ८−१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	५	८२	१४	५ (पूर्वोक्त)
प्रमत्तसंयत	३	७७	१९	३ (स्त्यानगृद्धिआदि ३ निद्रा)
अप्रमत्तसंयत	४	७४	२२	४ (अर्धनाराचादि तीनसंहनन और सम्यक्त्व)
अपूर्वकरण	६	७०	२६	६ (हास्यादि नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	४	६४	३२	४ (स्त्रीवेद और सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	३६	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	३७	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	३९	
सयोगकेवली	३०	४१	५५	
अयोगकेवली	११	११	८५	

अब भोगभूमिजमनुष्य और तिर्यञ्चोंमें उदयादिका कथन दो गाथाओंमें करते हैं—

मणुसोघं वा भोगे, दुब्भग चउणीचसंढथीणतियं।
दुग्गदितित्थमपुण्णं, संहदिसंठाणचरिमपणं ॥३०२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हारदुहीणा एवं, तिरये मणुदुच्चगोदमणुवाउं ।
अवणिय पक्खिव णीचं, तिरियदुतिरियाउउज्जोवं ॥३०३॥जुम्मं॥

अर्थ—भोगभूमिजमनुष्योंमें सामान्यमनुष्यके उदययोग्य १०२ प्रकृतियोंमें से दुर्भग आदि चार (दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति) नीचगोत्र नपुंसकवेद स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, अप्रशस्तविहायोगति, तीर्थङ्कर, अपर्याप्त वज्रनाराचादि अन्तिम ५ संहनन, न्यग्रोधपरिमण्डलादि ५ सस्थान और आहारकद्विक इन २४ प्रकृति के बिना शेषं ७८ प्रकृतियां उदययोग्य हैं । तथैव भोगभूमिजमनुष्यसम्बन्धी ७८ प्रकृतियों में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु और उच्चगोत्र कम करके नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योतप्रकृति मिलानेपर ७९ प्रकृतियां भोगभूमिज तिर्यञ्चके उदययोग्य जानना ।

विशेषार्थ—भोगभूमिजमनुष्यके मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति २ सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका । सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति ३ । मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ मिश्रमोहनीयकी, उदय ७१ प्रकृतिका तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होने और आनुपूर्वीका उदय नहीं होनेसे अनुदय ७ प्रकृतिका । असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय चार एवं मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ६, क्योंकि यहां सम्यक्त्वप्रकृति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय पाया जाता है ।

भोगभूमिजमनुष्यसम्बन्धो उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति ७८, गुणस्थान ४ ।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७६	२	२ (गाथा ३०१ की सन्दृष्टि अनुसार) १ („ „ „ „ „)
सासादन	४	७५	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	७१	७	७ (४+३+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी—१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	५	७२	६	६ (७+१—२ सम्यक्त्व, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) ५ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार भोगभूमिजतिर्यञ्चसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ७७, अनुदयरूप सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति ये २ हैं। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी, सम्यग्मिथ्यात्वसहित उदय ७२ प्रकृतिका, आनुपूर्वीके उदयका अभाव होनेसे अनुदयप्रकृति ७ हैं। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४ और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उदयप्रकृति ७३ तथा अनुदयप्रकृति सम्यक्त्व और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका उदय होवेसे ६ हैं।

भोगभूमिजतिर्यञ्चोंके उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति ७९, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७७	२	२ (गाथा ३०१ की सन्दृष्टि अनुसार) १ (" " " " ")
सासादन	४	७६	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	७२	७	७ (४+३+१ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	५	७३	६	५ (४ अप्रत्याख्यानकषाय और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)

अथानन्तर देवगतिसम्बन्धी उदयादिका कथन करते हैं—

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं।
खिव देवे णेवित्थी, इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य ॥३०४॥

अर्थ—भोगभूमिजमनुष्यके उदययोग्य ७८ प्रकृतियोंमें से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यायु और वज्रर्षभनाराचसंहनन इन छहप्रकृतियोंको कम करके देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग और देवायु इन पांच प्रकृतियोंको मिलानेपर देवगतिमें सामान्यसे ७७ प्रकृतियां उदय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य हैं, किन्तु देवोंमें स्त्रीवेद और देवांगनाओंमें पुरुषवेदका उदय नहीं होता अतः देव व देवांगनाओंमें उदययोग्य ७६ प्रकृति हैं ।

विशेषार्थ––मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ७५, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दो प्रकृतियोंका। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्वकी, उदयप्रकृति ७०, देवगत्यानुपूर्वीका उदय न होनेसे और मिश्रप्रकृतिका उदय है अतः अनुदयप्रकृति ७। असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकी कषायचार, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग और देवायुकी व्युच्छित्ति तथा उदय ७१ प्रकृतिका, देवगत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय ६ प्रकृतिका है।

सामान्यदेवोंके उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि––

उदययोग्यप्रकृति ७७, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७५	२	१ (मिथ्यात्व) २ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व)
सासादन	४	७४	३	४ (अनन्तानुवन्धीकषाय)
मिश्र	१	७०	७	७ (४+३+१ देवगत्यानुपूर्वी, १ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	६	७१	६	६ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीरं, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग और देवायु)

सौधर्म स्वर्गसे नवग्रैवेयकपर्यन्त देवोंमें स्त्रीवेदबिना उदययोग्य ७६ प्रकृति हैं गुणस्थान आदिके चार हैं। यहां मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियां क्रमसे १–४–१–६। उदयरूप प्रकृतियां क्रमसे ७४–७३–६९–७०। अनुदयरूप प्रकृति २–३–७–६ क्रमसे जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौधर्मस्वर्गसे नवग्रैवेयकपर्यन्त देवोंमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ७६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७४	२	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)
सासादन	४	७३	३	,, ,, ,, ,,
मिश्र	१	६९	७	,, ,, ,, ,,
असंयत	९	७०	६	,, ,, ,, ,,

अब अनुदिशादिविमानसम्बन्धी कथन करते हैं—

अविरदठाणं एक्कं, अणुद्दिसादिसु सुरोघमेव हवे।
भवणतिकप्पित्थीणं, असंजदे णत्थि देवाणु ॥३०५॥

अर्थ—नवअनुदिश, पंचअनुत्तर इन १४ विमानोंमें एक असंयतगुणस्थान ही होता है अतः सामान्यसे देवोंमें असंयतगुणस्थानमें उदयरूप जो ७० प्रकृतियां कहीं वे ही यहां भी उदयरूप जानना। भवनत्रिकदेव-देवियोंमें और कल्पवासिनी देवांगनाओंमें सामान्यदेववत् उदययोग्य ७७ में से देवोंमें स्त्रीवेद और देवांगनाओंमें पुरुषवेदबिना ७६ प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ—भवनत्रिकमें और कल्पवासिनी देवांगनाओंमें सम्यग्दृष्टिजीव उत्पन्न नहीं होते हैं अतः इनके असंयतगुणस्थानमें देवगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं है। विशेष यह है कि सासादन और असंयतगुणस्थानमें क्रमशः ५ एवं ८ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति जानना, शेषकथन सुगम है। तद्यथा—मिथ्यात्वादि चारगुणस्थानोंमें क्रमशः १-५-१-८ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, ७४-७३-६९-६९ प्रकृतिका उदय एवं २-३-७-७ प्रकृतिका अनुदय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवनत्रिकदेव-देवी एवं कल्पवासिनीदेवियोंमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय-सम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ७६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७४	२	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)
सासादन	५	७३	३	५ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४+१ देवगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	६९	७	७ (५+३-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	६९	७	७ (७+१-१ सम्यक्त्व)

॥ इति गतिमार्गणा ॥

अथ इन्द्रियमार्गणा।

अथानन्तर इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी उदयादिको तीन गाथाओंमें कहते हैं—

तिरियअपुण्णं वेगे, परघादचउक्कपुण्णसाहरणं।
एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं ॥३०६॥
णिमंगोवंगतसं, संहदिपंचक्खमेवमिह वियले।
अवणिय थावरजुगलं, साहरणेयक्खमादावं ॥३०७॥
खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्टं।
ओघं सयले साहरणिगिविगलादावथावरदुगूणं ॥३०८॥विसेसयं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्चसम्बन्धी ७१ प्रकृतियोंमें परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्त, साधारण, एकेन्द्रियजाति, यशस्कीर्ति, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्थावर और सूक्ष्म इन १३ प्रकृतियोंको मिलानेसे तथा अङ्गोपाङ्ग, त्रस, सृपाटिकासंहनन और पञ्चेन्द्रियजाति इन चार प्रकृतियोंको कम करनेपर एकेन्द्रियके ८० प्रकृतियां उदययोग्य हैं।

एकेन्द्रियसम्बन्धी उपर्युक्त ८० प्रकृतिमें से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतपप्रकृति घटाकर एवं त्रस, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, अङ्गोपाङ्ग, सृपाटिका-संहनन तथा द्वीन्द्रियादि अपनी-अपनी जाति मिलानेसे उदययोग्य ८१ प्रकृतियां हैं। सकलेन्द्रियमें गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतिमें से साधारण, एकेन्द्रिय, विकलत्रय (तीन), आतप, स्थावर और सूक्ष्म ये ८ प्रकृति कम करके शेष ११४ प्रकृतियां उदययोग्य जानना।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण तथा सासादन-गुणस्थानमें जिनका उदय नहीं पाया जाता ऐसी स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, क्योंकि इन ६ प्रकृतिका उदय एकेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तावस्थामें होता है। अतः उपर्युक्त सर्व ११ प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति एकेन्द्रियमार्गणासम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें होती है और उदय ८० प्रकृतिका, अनुदयका यहां अभाव है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय और स्थावरकी होती है। यहां उदय ६९ प्रकृतिका एवं अनुदय ११ प्रकृतिका है।

एकेन्द्रियमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ८०, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	११	८०	०	११ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उद्योत, आतप, उच्छ्वास)
सासादन	६	६९	११	६ (अनन्तानुबन्धीकीकषाय ४, एकेन्द्रिय, स्थावर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, अपर्याप्त स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति और दुःस्वर इन १० की, उदय ८१ का, अनुदयका अभाव है। सासादन-गुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीरूप चारकषाय तथा द्वीन्द्रियादि अपनी-अपनी जाति इसप्रकार ५ हैं, उदयप्रकृति ७१ और अनुदयप्रकृति १० हैं।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ८१, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	८१	०	१० (मिथ्यात्व, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दुःस्वर, अप्रशस्तविहायोगति)
सासादन	५	७१	१०	५ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४ और स्व-स्वजाति)

पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्व और अपर्याप्तकी, उदय-प्रकृति १०९, अनुदय गुणस्थानोक्त ५ प्रकृतिका। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चारकषायकी व्युच्छित्ति, उदय १०६ प्रकृतिका, नरकगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं होनेसे अनुदय ८ प्रकृतिका। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त १, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १४। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १०। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २७। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३३। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३८। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४२। अनि-वृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय ६६ प्रकृतिका, अनुदय ४८ प्रकृति-का। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ की, उदय ६० का, अनुदय ५४ का। उप-शान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति ५५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १६ की, उदय ५७ प्रकृतिका और अनुदय भी ५७ प्रकृतिका है। सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति ७२। अयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १२, उदयरूप प्रकृति १२ तथा अनुदयप्रकृति १०२ हैं।

पञ्चेन्द्रियके उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति ११४, गुणस्थान १४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	१०९	५	५ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व)
सासादन	४	१०६	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	१००	१४	१४ (८+४+नरकगत्यानुपूर्वीबिना ३ आनुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१०	१० (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, अनन्तानुबन्धीकी ४ कषाय, सम्यग्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व और अपर्याप्त) १७ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिके अनुसार)
देशसंयत	८	८७	२७	८ (,, ,, ,, ,, ,,)
प्रमत्त	५	८१	३३	३३ (२७+८–२ आहारकद्विक)
अप्रमत्त	४	७६	३८	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	४२	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४८	६ (,, ,, ,, ,, ,,)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५४	१ (,, ,, ,, ,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५६	५५	२ (,, ,, ,, ,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	५७	१६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सयोगकेवली	३०	४२	७२	७२ (५७+१६−१ तीर्थङ्करप्रकृति) ३० (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगकेवली	१	१२	१०२	१२ (,, ,, ,, ,, ,,)

"इति इन्द्रियमार्गणा"

—❖—

अथ कायमार्गणा।

अब कायमार्गणामें उदयादिका कथन करते हैं—

एवं वा पणकाये, ण हि साहारणमिणं च आदावं।
दुसु तद्दुगमुज्जोवं, कमेण चरिमम्हि आदावं ॥३०६॥

अर्थ—इन्द्रियमार्गणामें कथित एकेन्द्रियसम्बन्धी ८० प्रकृतिमें से साधारण-प्रकृति कम करनेसे पृथ्वीकायमें उदययोग्य ७९, साधारण और आतपप्रकृति घटानेपर जलकायमें ७८, साधारण, आतप व उद्योत कम करनेसे ७७ प्रकृति तेजकाय-वायुकायमें एवं आतपप्रकृति कम करनेसे वनस्पतिकायमें ७९ प्रकृतियां उदययोग्य जानना।

विशेषार्थ—पृथ्वीकायमें उदययोग्य ७९ प्रकृति तथा गुणस्थान दो हैं। "णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगेय तेउदुगे" गाथा ११५ के इस सूत्रवचनसे पृथ्वी-जल और प्रत्येक वनस्पतिकायमें सासादनगुणस्थानवाला मरणकर उत्पन्न होता है। अतः इन तीनकायोंमें उत्पन्न हुए सासादनगुणस्थानवर्तीजीवके मिथ्यात्व, आतप, उद्योत, सूक्ष्म व अपर्याप्त ये पांच प्रकृतियां उदययोग्य नहीं है और सासादनगुणस्थान तो इनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें ही रहता है। स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होनेपर, उच्छ्वासप्रकृति उच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर और परघातप्रकृति शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर उदययोग्य है अतः इन ५ प्रकृतियोंका यहां उदय नहीं है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १०, उदयप्रकृति ७९ तथा अनुदयप्रकृतिका अभाव है। सासादनगुण-स्थानमें व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय ६९ प्रकृतिका, अनुदय १० प्रकृतिका है।

पृथ्वीकायमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति ७९, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	७९	०	१० (मिथ्यात्व, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उच्छ्वास, परघात)
सासादन	६	६९	१०	६ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय और स्थावर)

जलकायमें उदययोग्य ७८ प्रकृतियां हैं। गुणस्थान २ हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति पूर्वोक्त १० में से आतपबिना ९, उदयप्रकृति ७८, अनुदयका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, अनुदयप्रकृति ९ तथा उदयप्रकृति ६९।

जलकायमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ७८, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	९	७८	०	९ (मिथ्यात्व, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उच्छ्वास और परघात)
सासादन	६	६९	९	६ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय और स्थावर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेजकाय तथा वायुकायमें उदययोग्य ७७ प्रकृति तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

वनस्पतिकायमें उदययोग्यप्रकृति ७९ तथा गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन ये दो हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उच्छ्वास और उद्योत ये १० हैं, उदयरूप प्रकृति ७९, अनुदयका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, उदयप्रकृति ६९, अनुदयप्रकृति १० हैं।

वनस्पतिकायमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति ७९, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	७९	०	१० (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उच्छ्वास, परघात, उद्योत)
सासादन	६	६९	१०	६ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय और स्थावर)

अथानन्तर त्रसकायमें उदयादिका कथन करते हैं—

ओघं तसे ण थावरदुगसाहरणेयतावमथ ओघं।

अर्थ—त्रसकायमें उदयादिका कथन गुणस्थानवत् जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहांपर गुणस्थानोक्त उदययोग्य १२२ प्रकृतिमें से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतपप्रकृति घटानेसे उदययोग्य ११७ प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—त्रसकायमें उदययोग्य ११७ प्रकृतियां, गुणस्थान १४ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति मिथ्यात्व और अपर्याप्त, उदयप्रकृति ११२, अनुदयप्रकृति ५। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीचारकषाय और विकलत्रयकी तीन, उदयप्रकृति १०९, नरकगत्यानुपूर्वीका उदयाभाव होनेसे अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति १, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १७। असंयत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १३। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ८ प्रकृतिकी, उदय ८७ प्रकृतिका, अनुदय ३० प्रकृतिका। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ५ प्रकृतिकी, उदय ८१ प्रकृतिका तथा अनुदय ३६ प्रकृतिका है। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, उदय ७६ प्रकृतिका, अनुदय ४१ प्रकृतिका। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४५। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय ६६ प्रकृतिका, अनुदय ५१ प्रकृतिका है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, उदय ६० प्रकृतिका और अनुदय ५७ प्रकृतिका। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २ प्रकृतिकी, उदय ५९ प्रकृतिका, अनुदय ५८ प्रकृतिका है। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ६०। सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२ तथा अनुदयप्रकृति ७५। अयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १२, उदयरूपप्रकृति १२ तथा अनुदयप्रकृति १०५ हैं।

त्रसकायिकजीवोंमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११७, गुणस्थान १४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	११२	५	५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	७	१०९	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ७ (अनन्तानुबन्धी ४+विकलत्रय ३)
मिश्र	१	१००	१७	१७ (८+७+नरकगत्यानुपूर्वीबिना शेष ३ गत्यानुपूर्वी—१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१३	१३ (१७+१—४ गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) १७ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
देशसंयत	८	८७	३०	८ (,, ,, ,, ,, ,,)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमत्त	५	८१	३६	३६ (३०+८-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४		४१	४ („ „ „ „ „)
अपूर्वकरण	६	७२	४५	६ („ „ „ „ „)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५१	६ („ „ „ „ „)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५७	१ („ „ „ „ „)
उपशान्तमोह	२	५९	५८	२ („ „ „ „ „)
क्षीणमोह	१६	५७	६०	१६ („ „ „ „ „)
सयोगकेवली	३०	४२	७५	७५ (६०+१६=७६-१ तीर्थङ्कर) ३० (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	१०५	१२ („ „ „ „ „)

"इति कायमार्गणा"

अथ योगमार्गणा।

अब योगमार्गणामें सर्वप्रथम चारमनोयोग तथा सत्य, असत्य, उभय वचनयोगसम्बन्धी उदयादिका कथन करते हैं—

मणवयणसत्तगे ण हि ताविगिविगलं च थावराणुचओ ॥३१०॥

अर्थ—सत्यआदि चारमनोयोग और सत्य, असत्य व उभय वचनयोग इसप्रकार इन ७ में सामान्यसे उदययोग्य १२२ प्रकृतिमें से आतप, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, आनुपूर्वीचतुष्क और स्थावरचतुष्क इन १३ प्रकृतिके बिना उदययोग्य प्रकृति १०९ तथा गुणस्थान १३ होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ––यहां गुणस्थान १३ कहे हैं, सो सत्य व अनुभयमनोयोग एवं सत्य वचनयोगकी अपेक्षासे हैं, किन्तु असत्य व उभयमनोयोगमें तथा असत्य व उभय वचनयोगमें १२ गुणस्थान ही होते हैं ।

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्वकी, उदय १०४ प्रकृतिका, अनुदय ५ प्रकृतिका । सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चारकषायकी, उदय १०३ प्रकृतिका, अनुदय ६ प्रकृतिका । मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्वकी, उदय १०० प्रकृतिका, अनुदय ९ प्रकृतिका । असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १३ प्रकृतिकी, क्योंकि चारों गत्यानुपूर्वीका उदय तो परभवके लिए गमन करते समय होता है और मनोयोग तथा वचनयोग अपनी-अपनीपर्याप्ति अर्थात् मनपर्याप्ति और वचनपर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् होते हैं अतः यहां आनुपूर्वीको नहीं कहा । असंयतगुणस्थानमें उदयप्रकृति १०० और अनुदयप्रकृति ९ हैं । देशसंयतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र और तिर्यञ्चगतिकी व्युच्छित्ति, ८७ प्रकृतिका उदय, २२ प्रकृतिका अनुदय है । प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ५ प्रकृतिकी, उदय ८१ प्रकृतिका, अनुदय २८ प्रकृतिका । अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६ तथा ३३ अनुदयरूपप्रकृति हैं । अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ३७ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४३ । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४९ । उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति ५० हैं । क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ५२ । सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४२ हैं, क्योंकि अयोगकेवलीगुणस्थानमें योगका अभाव है अतः अयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली १२ प्रकृतियां भी सयोगकेवलीगुणस्थानमें ही व्युच्छित्तिको प्राप्त होती हैं । सयोगकेवलीके उदयप्रकृति भी ४२ हैं तथा अनुदय ६७ प्रकृतिका पाया जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यादि चारमनोयोग तथा सत्य-असत्य-उभय वचनयोगसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति १०९, गुणस्थान १३।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०४	५	१ (मिथ्यात्व) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सासादन	४	१०३	६	४ (अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क)
मिश्र	१	१००	९	९ (६+४=१०–१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	९	९ (९+१=१०–१ सम्यक्त्व) १३ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवायु, नरकायु, देवगति, नरकगति, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८७	२२	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्तसंयत	५	८१	२८	२८ (२२+८=३०–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३३	४ (गाथा २६४ को सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	३७	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४३	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४९	१ (,, ,, ,, ,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५९	५०	२ (,, ,, ,, ,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	५२	१६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सयोगकेवली	४२	४२	६७	६७ (५२+१६=६८–१ तीर्थङ्कर) नोट–यह १३वां गुणस्थान सत्य-अनुभयमनोयोग व सत्य वचनयोगकी अपेक्षासे है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे अनुभयवचनयोग और औदारिककाययोगमें उदयादि कहते हैं--

अणुभयवचि वियलजुदा, ओघमुराले ण हारदेवाऊ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ ॥३११॥

अर्थ--अनुभयवचनयोगमें पूर्वोक्त १०९ प्रकृतिमें से विकलत्रयकी तीन मिलानेसे उदययोग्य ११२ प्रकृति हैं तथा औदारिककाययोगमें गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतिमें से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देव-नरकगति, देव-नरकगत्यानुपूर्वी, मनुष्य-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अपर्याप्त और नरकायु कम करनेसे १०९ प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ--अनुभयवचनयोगमें उदययोग्य ११२ प्रकृति तथा गुणस्थान १३ हैं। यहां मिथ्यात्वसे सयोगीगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे १ मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुबन्धी और विकलत्रय इसप्रकार ७, १-१३-८-५-४-६-६-१-२-१६ और ४२ प्रकृति व्युच्छित्ति रूप जानना। उसीप्रकार १०७-१०६-१००-१००-८७-८१-७६-७२-६६-६०-५९-५७ और ४२ प्रकृति गुणस्थान क्रमसे उदययोग्य हैं एवं यथाक्रमसे ५-६-१२-१२-२५-३१-३६-४०-४६-५२-५३-५५ और ७० प्रकृति गुणस्थानोंमें अनुदयरूप जानना।

अनुभयवचनयोगमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि--

उदययोग्य प्रकृति १०९, गुणस्थान १३।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०७	५	५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिवत्) १ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिवत्)
सासादन	७	१०६	६	७ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, विकलत्रय)
मिश्र	१	१००	१२	१२ (७+६=१३-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	१२	१२ (१२+१=१३-सम्यक्त्व) १३ (गाथा ३१० की सन्दृष्टिवत्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयत	८	८७	२५	८ (गाथा २६४ के अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३१	३१ (२५+८=३३-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिके अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३६	४ (,, ,, ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	६	७२	४०	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४६	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५२	१ (,, ,, ,, ,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५९	५३	२ (,, ,, ,, ,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	५५	१६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सयोगी	४२	४२	७०	७० (५५+१६=७१-१ तीर्थङ्कर)

औदारिककाययोगमें उदययोग्य १०९ प्रकृति, गुणस्थान १३ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ५ प्रकृतियोंमें से अपर्याप्तबिना ४ तथा एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय इसप्रकार इन ९ प्रकृतिकी, उदयप्रकृति १०६, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमोहनीय और तीर्थङ्कर ये तीन हैं। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति अनन्तानुबन्धी कषाय ४, उदय ९७ प्रकृतिका, अनुदय १२ प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ (सम्यग्मिथ्यात्व), उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति १५। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यानकषाय ४ और दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन ७ प्रकृतियोंकी, उदय ९४ प्रकृतिका, अनुदय १५ प्रकृतिका। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ८ प्रकृतिकी, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २२ हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें औदारिककाययोगकी प्रवृत्ति होते हुए आहारककाययोगकी प्रवृत्ति नहीं होती है, क्योंकि एककालमें दोयोग नहीं हो सकते इसलिए यहां व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धिआदि ३ की, उदयप्रकृति ७९, अनुदयप्रकृति ३०। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३३। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ३७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४३। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४९। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ५०। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ५२। सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४२, उदयप्रकृति ४२ और अनुदयप्रकृति ६७ हैं।

औदारिककाययोगमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्य प्रकृति १०९, गुणस्थान १३।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	९	१०६	३	३ (तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व) ९ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय)
सासादन	४	९७	१२	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९४	१५	१५ (१२+४=१६-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	७	९४	१५	१५ (१५+१=१६-१ सम्यक्त्व) ७ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८७	२२	८ (४ प्रत्याख्यानकषाय+तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चायु, नीचगोत्र और उद्योत)
प्रमत्त	३	७९	३०	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७६	३३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिके अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	३७	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४३	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४९	१ (,, ,, ,, ,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५९	५०	२ (,, ,, ,, ,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	५२	१६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सयोगकेवली	४२	४२	६७	६७ (५२+१६=६८-१ तीर्थङ्कर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औदारिकमिश्रकाययोगमें उदयादिका कथन दो गाथाओंमें करते हैं—

तम्मिस्से पुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं ।
परघादचओ अयदे णादेज्जदुदुब्भगं ण संढिच्छी ।।३१२।।
साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोद्दसा साणे ।
चउदालं वोछेदो अयदे जोगिम्हि छत्तीसं ।।३१३।।जुम्मं।।

अर्थ—पूर्वोक्त १०९ प्रकृतियोंमें एक अपर्याप्तप्रकृतिके मिलनेसे तथा सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धिआदि तीन, स्वरद्विक, प्रशस्त व अप्रशस्तविहायोगति, परघात, आतप, उद्योत और उच्छ्वास ये १२ प्रकृति कम करनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उदययोग्य ९८ प्रकृति हैं। असंयतगुणस्थानमें अनादेय, आदेय, दुर्भग, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका उदय नहीं है अतः इन प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें ही हो जाती है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें सूक्ष्मत्रय और मिथ्यात्वकी, सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीआदि १४, असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानआदि ४४ और सयोगकेवलीके ३६ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें उदययोग्य प्रकृति ९८; गुणस्थान-मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगकेवली ये चार हैं।

सामान्यसे उदययोग्य १२२ प्रकृतियोंमें से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियकषट्क, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, नरकायु, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, परघात, आतप, उद्योत और उच्छ्वास इन २४ प्रकृतियोंको कम करनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उदययोग्य ९८ प्रकृति हैं, क्योंकि यहां देव-नरकगतिसम्बन्धी तथा पर्याप्तकाल और विग्रहगतिसम्बन्धी प्रकृतियोंका उदय नहीं है तथा आतपप्रकृति पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य है अतः उसका यहां उदय नहीं कहा है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली १४ प्रकृतियां इसप्रकार हैं—अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, नपुंसकवेद और स्त्रीवेद। असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषाय चार तथा देशसंयतकी उद्योतबिना शेष ७, प्रमत्तकी आहारकद्विक-स्त्यानगृद्धित्रिकबिना शून्य, अप्रमत्तकी चार, अपूर्वकरणकी ६, अनिवृत्तिकरणकी स्त्री व नपुंसकवेदबिना ४, सूक्ष्मसाम्परायकी १ सूक्ष्मलोभ, उपशान्तकषायकी वज्रनाराच व नाराचसंहनन, क्षीण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषायकी १६ इसप्रकार ४+७+०+४+६+४+१+२+१६=४४ प्रकृतियां असंयतगुणस्थानमें ही व्युच्छिन्न होती हैं, क्योंकि देशसंयतसे क्षीणकषायगुणस्थान पर्यन्त औदारिकमिश्रकाययोग नहीं होता है। सयोगीगुणस्थानमें ३६ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति है, क्योंकि कपाटसमुद्घातके समय इनके औदारिकमिश्रकाययोगमें सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, परघात और उच्छ्वासका उदय नहीं होता।

इसप्रकार यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, उदय ९६ प्रकृतिका तथा अनुदय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १४, उदयप्रकृति ९२, अनुदयप्रकृति ६। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ४४ प्रकृतिकी, उदय सम्यक्त्वसहित ७९ प्रकृतिका, अनुदय १९ प्रकृतिका। सयोगकेवलीके व्युच्छिन्नप्रकृति ३६, उदयप्रकृति तीर्थङ्करसहित ३६, अनुदयप्रकृति ६२ हैं।

औदारिकमिश्रकाययोगमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि---

उदययोग्यप्रकृति ९८, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	४	९६	२	२ (तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व) ४ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	१४	९२	६	१४ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर-स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दुभग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
असंयत	४४	७९	१९	१९ (१४+६=२०-१ सम्यक्त्व) ४४ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, प्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, नीचगोत्र, सम्यक्त्व, हास्यादि ६, अन्तके तीनसंहनन, पुरुषवेद, सञ्ज्वलनकषाय ४, वज्रनाराच और नाराचसंहनन तथा गाथा २६४ की सन्दृष्टिवत् क्षीणकषायगुणस्थानकी १६।
सयोगकेवली	३६	३६	६२	६२ (४४+१९=६३-१ तीर्थङ्कर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—सयोगकेवलीके कपाटसमुद्घातकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोग कहा गया है, क्योंकि उससमय उनके औदारिकमिश्रकाययोग पाया जाता है।

अब वैक्रियककाययोगमें उदयादिका कथन करते हैं—

वोघं वेगुव्वे ण सुराणू पक्खिवेज्ज णिरयाऊ।
णिरयगदिहुंडसंढं दुग्गदि दुब्भगचओ णीचं ॥२१४॥

अर्थ—देवगतिमें उदययोग्य ७७ प्रकृतियोंमें से देवगत्यानुपूर्वी कम करके तथा नरकायु, नरकगति, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भगचतुष्क और नीचगोत्र मिलानेपर वैक्रियककाययोगमें उदययोग्य ८६ प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—वैक्रियककाययोगमें उदययोग्य प्रकृति ८६ तथा गुणस्थानआदिके चार हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ (मिथ्यात्व), उदयप्रकृति ८४, अनुदयप्रकृति २ सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, उदयप्रकृति ८३, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ८०, अनुदयप्रकृति ६। असयत-गुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, नरकगति-देवगति, नरकायु-देवायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १३, उदयप्रकृति सम्यक्त्वसहित ८० तथा अनुदयप्रकृति ६ हैं।

वैक्रियककाययोग सम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि——

उदययोग्यप्रकृति ८६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	८४	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	८३	३	४ (अनन्तानुबन्धी)
मिश्र	१	८०	६	६ (४+३=७-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	८०	६	६ (६+१=७-१ सम्यक्त्व) १३ (अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय, वैक्रियकद्विक, नरकगति, नरकायु, देवगति, देवायु, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब वैक्रियकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें उदयादिका कथन ३ गाथाओंसे करते हैं—

वेगुव्वं वा मिस्से, ण मिस्स परघादसरविहायदुगं ।
साणे ण हुंडसंढं, दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥३१५॥
णिरयगदिआउणीचं, ते खित्तयदेवणिज्ज थीवेदं ।
छट्टगुणं वाहारे, ण थीणतियसंढथीवेदं ॥३१६॥
दुग्गदिदुस्सरसंहदि, ओरालदु चरिमपंचसंठाणं ।
ते तम्मिस्से सुस्सर, परघाददुसत्थगदि हीणा ॥३१७॥विसेसयं॥

अर्थ—वैक्रियककाययोगमें उदययोग्य ८६ प्रकृतियोंमें से मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) परघात, उच्छ्वास, स्वरद्विक, प्रशस्त व अप्रशस्तविहायोगति इन प्रकृतियोंको कम करनेसे वैक्रियकमिश्रकाययोगमें उदययोग्य ७९ प्रकृतियां हैं। उसमें भी यहां सासादनगुणस्थानमें हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकगति, नरकायु, नीचगोत्रका उदय नहीं है, (क्योंकि सासादनगुणस्थानवाला जीव मरकर नरकमें नहीं जाता है।) किन्तु असंयतगुणस्थानमें इनका उदय रहता है।

आहारककाययोगमें सामान्यसे छठेगुणस्थानमें उदययोग्य ८१ प्रकृतियोंमें से स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, नपुंसकवेद और स्त्रीवेद, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, ६ संहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रबिना शेष पांचसंस्थान, इन २० प्रकृतिबिना ६१ प्रकृति उदययोग्य हैं। आहारकमिश्रकाययोगमें उपर्युक्त ६१ प्रकृतियोंमें से सुस्वर, परघात, उच्छ्वास और प्रशस्तविहायोगति कम करनेसे ५७ प्रकृतियां उदययोग्य हैं। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें १ प्रमत्तगुणस्थान ही है।

विशेषार्थ—वैक्रियकमिश्रकाययोगसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ७८, अनुदयप्रकृति १ (सम्यक्त्व)। सासादनगुणस्थानमें स्त्रीवेद और अनन्तानुबन्धी चार कषायकी व्युच्छित्ति, उदय ६९ प्रकृतिका और अनुदयप्रकृति १०। असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकी चार कषाय, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देव-नरकगति, देव-नरकायु, दुर्भगादितीन इसप्रकार इन १३ प्रकृति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की व्युच्छित्ति, सम्यक्त्व, हुण्डकसंस्थानादिक आठ इन ९ का उदय पाया जानेसे उदयप्रकृति ७३ और अनुदय ६ प्रकृतिका है।

वैक्रियकमिश्रकाययोगमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति ७९, गुणस्थान ३।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७८	१	अनुदय १ (सम्यक्त्व) व्यु. १ (मिथ्यात्व)
सासादन	५	६९	१०	१० (हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकगति, नरकायु, नीचगोत्र, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व) ५ (अनन्तानुबंधी की ४ कषाय और स्त्रीवेद)
असंयत	१३	७३	६	६ (१०+५=१५-९ उपर्युक्त हुण्डकसंस्थानादि ८ और सम्यक्त्व) १३ (गाथा ३१४ की सन्दृष्टि अनुसार)

आगे कार्मणकाययोगमें उदयादिका कथन दो गाथाओंसे करते हैं—

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं।
उवघादपणविगुव्वदुथीणतिसंठाणसंहदी णत्थि ॥३१८॥
साणे थीवेदछिदी, णिरयदुणिरयाउगं ण तियदसयं।
इगिवण्णं पणवीसं, मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो ॥३१९॥जुम्मं॥

अर्थ—कार्मणकाययोगमें उदययोग्य प्रकृति ८९ हैं। गुणस्थानोक्त सामान्यसे १२२ प्रकृतियोंमें से स्वरद्विक, प्रशस्त व अप्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारकद्विक, औदारिकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक, ६ संस्थान, ६ संहनन इसप्रकार इन ३३ प्रकृतियोंके बिना उदययोग्य ८९ प्रकृति हैं। उसमें भी सासादनगुणस्थानमें स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति होती है और नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी व नरकायु इन तीनका उदय नहीं होता तथा मिथ्यात्वगुणस्थानमें ३, सासादनगुणस्थानमें १०, असंयतगुणस्थानमें ५१ और सयोगकेवलीके २५ प्रकृतिकी उदयव्युच्छित्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें उदययोग्य प्रकृतियां ८९ हैं।

शंका—अनादिसंसारमें विग्रहगति और अविग्रहगतिमें मिथ्यात्वसे सयोगी-पर्यन्त सर्वगुणस्थानोंमें कार्मणशरीरका निरन्तर उदय है। **"विग्रहगतौ कर्मयोगः"** इस सूत्रद्वारा विग्रहगतिमें ही कार्मणकाययोग क्यों कहा?

समाधान—**"सिद्धे सत्यारंभो नियमाय"** सिद्ध होते हुए भी पुनश्च आरम्भ नियमके लिए है अतः यहां पर ऐसा नियम है कि विग्रहगतिमें कार्मणयोग ही है अन्य-योग नहीं है क्योंकि विग्रहगतिमें कार्मणवर्गणाके अतिरिक्त अन्य वर्गणा नहीं आती अन्यत्र अन्य वर्गणाओंके कारण योग होता है इसलिए अन्यत्र कार्मणकाययोग नहीं होता है।

शंका—विग्रहगतिका अर्थ तो यह भी है कि विग्रह—नवीनशरीरको धारण करनेके लिए जो गमन होता है वह विग्रहगति है। अतः यहां मिथ्यात्व, सासादन और असंयतगुणस्थानमें तो विग्रहगति हो सकती है, किन्तु सयोगीगुणस्थानमें तो विग्रहगति-का अभाव है फिर वहां कार्मणकाययोग कैसे हो सकता है?

समाधान—विग्रहगतिमें ही कार्मणकाययोग हो ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि प्रतर व लोकपूरणसमुद्घातमें भी तीनसमयपर्यन्त कार्मणकाययोग पाया जाता है।

कार्मणकाययोगसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म और अपर्याप्तकी व्युच्छित्ति, उदय ८७ प्रकृतिका, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन २ प्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकी ४ कषाय, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय और स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति, उदय ८१ प्रकृतिका, अनुदय नरकद्विक और नरकायुसहित ८ प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति वैक्रियकद्विकबिना १५ तथा देशसंयतकी उद्योत-बिना सात, प्रमत्तकी आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धिबिना शून्य। अप्रमत्तकी तीनसंहनन-बिना एक सम्यक्त्व, अपूर्वकरणकी ६, अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें ही हो जानेसे ५, सूक्ष्मसाम्परायकी एक, उपशान्तमोहकी शून्य, क्षीणमोह सम्बन्धी १६ इसप्रकार ये सर्व मिलकर ५१ प्रकृतिकी होती है, क्योंकि देश-संयतसे क्षीणमोहगुणस्थानपर्यन्त कार्मणकाययोग नहीं होता है। यहां सम्यक्त्व, नरकद्विक, नरकायुसहित उदयप्रकृति ७५ एवं अनुदय १४ प्रकृतिका है। सयोगकेवलीमें व्युच्छिन्न रूप ४२ प्रकृतिमें से वज्रर्षभनाराच, स्वरद्विक, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, औदारिक-द्विक, संस्थान ६, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीरके बिना शेष २५ प्रकृतिकी यहां सयोगकेवलीमें व्युच्छित्ति होती है। उदयरूप प्रकृति तीर्थङ्करसहित २५ और अनुदयप्रकृति ६४ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्मणकाययोगसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयकी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ८९, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	३	८७	२	२ (तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व) ३ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त)
सासादन	१०	८१	८	८ (३+२=५+३ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु)
असंयत	५१	७५	१४	१४ (१०+८=१८–४ सम्यक्त्व, नरकद्विक और नरकायु) ५१ (वैक्रियकद्विकबिना असंयतकी १५+ उद्योतबिनः देशसंयतकी ७+अप्रमत्तकी १ सम्यक्त्व+अपूर्वकरणकी ६ हास्यादि +अनिवृत्तिकरणकी स्त्रीवेदबिना ५+ सूक्ष्मसाम्परायकी १ लोभ+क्षीणमोहकी १६)
सयोगकेवली	२५	२५	६४	६४ (५१+१४=६५–१ तीर्थङ्कर)

"इति योगमार्गणा"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ वेदमार्गणा ।

अब वेदमार्गणासम्बन्धी उदयादिका कथन करते हैं--

मूलोघं पुंवेदे, थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं ।
इगिविगलं थीसंढं, तावं णिरयाउगं णत्थि ॥३२०॥

अर्थ--पुरुषवेदमें सामान्यसे गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियोंमें से स्थावरादि चार, नरकद्विक, तीर्थङ्कर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप और नरकायु ये १५ प्रकृतियां उदययोग्य नहीं हैं ।

विशेषार्थ--पुरुषवेदमें उदययोग्य १०७ प्रकृति, गुणस्थानआदिके ९ हैं । यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १०३, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका । सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकी ४ कषाय, उदयप्रकृति १०२, अनुदयप्रकृति ५ । मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ९६ तथा तीनआनुपूर्वीके उदयका अभाव होनेसे एवं सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति ११ । असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय चार, वैक्रियकद्विक, सुरद्विक, देवायु, मनुष्य-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति १४, उदयप्रकृति ९९, सम्यक्त्व और तिर्यञ्च-मनुष्य-देवगत्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति ८ । देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८५, अनुदयप्रकृति २२ । प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति आहारकद्विकसहित ७९, अनुदयप्रकृति २८ । अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ३३ । अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७०, अनुदयप्रकृति ३७ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें पुरुषवेद तथा अवेदभागसम्बन्धी सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया, सूक्ष्मलोभ, वज्रनाराच व नाराचसंहनन, क्षीणकषायगुणस्थानकी १६ और तीर्थङ्करबिना शेष ४१ प्रकृति सयोगकेवलीसम्बन्धी इसप्रकार व्युच्छिन्नप्रकृति ६४ हैं, क्योंकि सवेदभागके आगे वेदका उदय नहीं है । उदयप्रकृति ६४ और अनुदयप्रकृति ४३ है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुषवेदमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति १०७, गुणस्थान ९।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०२	५	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९६	११	११ (५+४=९+३ आनुपूर्वी (नरकगत्यानुपूर्वीविना) और सम्यग्मिथ्यात्वका उदय है अतः उसे कम किया)
असंयत	१४	९९	८	८ (११+१=१२−४, तीनआनुपूर्वी और सम्यक्त्व) १४ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकद्विक, देवायु, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, देवद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश.)
देशसंयत	८	८५	२२	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	७९	२८	२८ (२२+८=३०−२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७४	३३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	३७	६ („ „ „ „ „)
अनिवृत्तिकरण सवेदभाग	६४	६४	४३	६४ (पुरुषवेद+अवेदभागसे सयोगीपर्यन्त क्रमशः व्युच्छिन्न होनेवाली ३+१+२+१६+४१=६४)

अथानन्तर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें उदयादिका कथन करते हैं—

इत्थिवेदेवि तहा, हारदुपुरिसूणमित्थिसंजुत्तं।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुं सुराउतित्थयरं ॥३२१॥

अर्थ—पुरुषवेदसम्बन्धी उदययोग्य प्रकृति १०७ में से आहारकद्विक और पुरुषवेद कम करके स्त्रीवेद मिलानेसे स्त्रीवेदमें उदययोग्य प्रकृति १०५ हैं तथा सामान्यसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतिमें से देवद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु और तीर्थङ्कर ये आठप्रकृतियां कम करनेपर नपुंसकवेदमें उदययोग्य प्रकृति ११४ हैं।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदमें उदययोग्यप्रकृति १०५, गुणस्थान ९ हैं। यहां मिथ्यात्व गुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १०३, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दो। सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी कषाय ४, देव-मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन ७ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति १०२, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९६ अनुदयप्रकृति ९। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, वैक्रियकद्विक, देवायु, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति ये ११ हैं। उदयप्रकृति ९६, अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ८, उदयप्रकृति ८५ और अनुदयप्रकृति २०। मत्तसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, क्योंकि स्त्रीवेदी संक्लेशी हैं अतः उनके आहारकद्विक नहीं हैं। उदयप्रकृति ७७, अनुदयप्रकृति २८। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति, सम्यक्त्व एवं अंतिमतीन संहनन ये ४ हैं, उदयप्रकृति ७४ तथा अनुदय ३१ प्रकृतिका है। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६ हास्यादि नोकषाय, उदयप्रकृति ७०, अनुदयप्रकृति ३५ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें व्युच्छिन्नप्रकृति पूर्वोक्त ६४, उदयप्रकृति ६४ और अनुदयप्रकृति ४१ हैं।

स्त्रीवेदमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १०५, गुणस्थान ९।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	२	२ (सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	७	१०२	३	७ (अनन्तानुबन्धी कषाय ४, देव-मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	९६	९	९ (७+३=१०-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	११	९६	९	९ (९+१=१०-१ सम्यक्त्व) ११ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, देवायु, वैक्रियकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयत	८	८५	२०	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्तसंयत	३	७७	२८	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७४	३१	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	३५	६ („ „ „ „ „)
अनिवृत्तिकरण	६४	६४	४१	६४ (गाथा ३२० की सन्दृष्टि अनुसार)

नपुंसकवेदमें उदययोग्यप्रकृति ११४, गुणस्थान ९ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ये ५, उदयप्रकृति ११२, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व ये दो। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ये ११, उदयप्रकृति १०६, अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९६, अनुदयप्रकृति १८। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकद्विक, नरकद्विक, नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १२ उदयप्रकृति ९७, अनुदयप्रकृति १७। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ८, उदयप्रकृति ८५, अनुदयप्रकृति २९। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति स्त्यानगृद्धिआदि निद्रा तीन, उदयप्रकृति ७७, अनुदयप्रकृति ३७। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यक्त्व और अन्तिम तीन संहनन ये ४, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ४०। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति हास्यादि ६ नोकषाय, उदयप्रकृति ७० तथा अनुदयप्रकृति ४४ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६४, उदयप्रकृति ६४ तथा अनुदयप्रकृति ५० जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नपुंसकवेदमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११४, गुणस्थान ६।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११२	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त)
सासादन	११	१०६	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ११ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्य व तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	९६	१८	१८ (११+८=१९-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१२	९७	१७	१७ (१८+१=१९-सम्यक्त्व, नरकगत्यानुपूर्वी) १२ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकद्विक, नरकद्विक, नरकायु, दुर्भग, अनादेय, और अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८५	२९	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्तसंयत	३	७७	३७	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७४	४०	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	४४	६ („ „ „ „ „)
अनिवृत्तिकरण	६४	६४	५०	

॥ इति वेदमार्गणा ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ कषायमार्गणा ।

अब कषायमार्गणामें उदयादिका कथन करते हैं—

तित्थयरमाणमायालोहचउक्कूणमोघमिह कोहे ।
अणरहिदे णिगिविगलं तावऽणकोहाणुथावरचउक्कं ॥३२२॥

अर्थ—कषायमार्गणामें क्रोधकषायमें सामान्यसे गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियोंमें से चारप्रकारके क्रोधको छोड़कर शेष मान-माया व लोभचतुष्क सम्बन्धी १२ कषाय और तीर्थङ्कर इसप्रकार १३ प्रकृतिबिना १०९ प्रकृति उदययोग्य हैं तथा अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यादृष्टिके (अर्थात् अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर जो मिथ्यात्वमें आया है) शेष तीनप्रकारके क्रोधमें एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनन्तानुबन्धीक्रोध, ४ आनुपूर्वी, स्थावरादि चार इन १४ प्रकृतियोंका उदय नहीं है तथा सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व व आहारकद्विकका भी उदय नहीं है ।

"एवं माणादितिए" गाथा ३२३ के इन वचनोंके अनुसार मानादि तीन कषायोंमें क्रोधकषायवत् ही कथन जानना । स्व-स्व कषायके अतिरिक्त १२ कषाय एवं तीर्थङ्करप्रकृति इन १३ के बिना उदययोग्य १०९ प्रकृति हैं ।

विशेषार्थ—क्रोधकषायमें उदययोग्य प्रकृतियां १०९ हैं और गुणस्थान ९ हैं । यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ५, उदयप्रकृति १०५, अनुदयप्रकृति सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आहारकद्विक । सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीक्रोध, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रयकी तीन इसप्रकार ६ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदय ९९ प्रकृतिका, नरकगत्यानुपूर्वीसहित अनुदयरूप १० प्रकृति । मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ मिश्रप्रकृतिकी, उदय ९१ प्रकृतिका तथा नरकगत्यानुपूर्वीबिना शेष तीनआनुपूर्वीका उदय नहीं होनेसे अनुदयप्रकृति १८ । असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानक्रोध, वैक्रियकषट्क, मनुष्य व तिर्यञ्चआनुपूर्वी, देवायु व नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १४ । उदयप्रकृति ९५, सम्यक्त्व तथा चारोंआनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदयप्रकृति १४ । देशसंयतमें प्रत्याख्यानक्रोध, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यञ्च-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गति इन पांचप्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदय ८१ प्रकृतिका और अनुदयप्रकृति २८ हैं। प्रमत्तसंयतमें आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा इन पांचकी व्युच्छित्ति, उदय ७८ प्रकृतिका, आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय ३१ प्रकृतिका। अप्रमत्तगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृति, अन्तिम तीनसंहनन इन चारप्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ७३, अनुदयप्रकृति ३६। अपूर्वकरणगुणस्थानमें हास्यादि छह नोकषायकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ६९, अनुदयप्रकृति ४०। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें व्युच्छित्ति तीनवेदकी, दूसरे भागमें सञ्ज्वलनक्रोध तथा सूक्ष्मसाम्परायसम्बन्धी शून्य, उपशान्तकषायसम्बन्धी २, क्षीणकषायसम्बन्धी १६ और सयोगकेवलीसम्बन्धी तीर्थङ्करबिना शेष ४१ इसप्रकार ६३ प्रकृतियोंकी है। उदयप्रकृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके दूसरे क्रोधकषायवाले भागमें ६३, अनुदयप्रकृति ४६ हैं।

अनन्तानुबन्धी रहित क्रोधमें उदययोग्यप्रकृति ९१ हैं, क्योंकि क्रोधकषायसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानकी उदययोग्यप्रकृति १०५ में से एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनन्तानुबन्धीक्रोध, चारआनुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त इन १४ प्रकृतियोंका यहां उदय नहीं होनेसे इनको कम किया। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यात्वको जो प्राप्त हुआ है उसके एकआवलीकालपर्यन्त अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता है उसके भी उदययोग्य ९१ ही प्रकृतियां हैं।

नोट—अनन्तानुबन्धी ४ कषायकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वके उदयसे जो प्रथमगुणस्थानमें आया ऐसे जीवके अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता है, क्योंकि इस जीवके अनन्तानुबन्धीचारकषाय सत्तामें नहीं है, किन्तु पहले गुणस्थानमें आनेपर अनन्तानुबन्धीका नवीनबन्ध होनेसे इसका उदय बन्धावलीकालके पश्चात् होगा। मिथ्यात्वगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी ४ कषायका उदय नहीं है उससमय इसजीवके, १०५ में से १४ बिना ९१ प्रकृतिका उदय होता है। १०५ प्रकृतियोंका उदय क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टिके होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रोधकषायमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १०९, गुणस्थान ९।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	१०५	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	६	९९	१०	१० (५+४=९+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ६ (अनन्तानुबन्धीक्रोध, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और स्थावर)
मिश्र	१	९१	१८	१८ (१०+६=१६–१सम्यग्मिथ्यात्व+३ गत्यानुपूर्वी) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१४	९५	१४	१४ (१८+१=१९–सम्यक्त्व और चार-गत्यानुपूर्वी) १४ व्यु. (अप्रत्याख्यानक्रोध वैक्रियकषट्क, देव-नरकायु, मनुष्य-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी दुर्भग, अनादेय, अयश.)
देशसंयत	५	८१	२८	५ (प्रत्याख्यानक्रोध तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र)
प्रमत्त	५	७८	३१	३१ (२८+५=३३–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिके अनुसार)
अप्रमत्त	४	७३	३६	४ (,, ,, ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	६	६९	४०	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६३	६३	४६	व्यु. ६३ (अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथम-भागकी ३ वेद, द्वितीयभागकी सञ्ज्वलनक्रोध, सूक्ष्मसाम्परायकी शून्य, उपशान्तकषायकी २, क्षीण-कषायकी १६, सयोगकेवलीकी तीर्थङ्करबिना ४१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीप्रकार मान-माया-लोभकषायोंमें भी उदयादिका कथन जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि सूक्ष्मलोभसम्बन्धी कथनमें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका भी कथन होगा।

"इति कषायमार्गणा"

अथ ज्ञानमार्गणा।

एवं माणादितिए, मदिसुदअण्णाणगे दु स गुणोघं।
वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचऊ ॥३२३॥

अर्थ—इसप्रकार मानादि तीनकषायोंमें जानना। (इसका कथन गाथा ३२२ में कषायमार्गणाके अन्तर्गत कर दिया है।) ज्ञानमार्गणाके अन्तर्गत कुमति और कुश्रुत-ज्ञानमें सामान्यसे गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतिमें से आहारकद्विक, तीर्थङ्कर, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके बिना शेष ११७ प्रकृतियां उदययोग्य हैं तथा विभङ्ग (कुअवधि) ज्ञानमें भी ११७ में से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, आनुपूर्वी ४ इन १३ प्रकृतियोंके बिना शेष १०४ प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ—ज्ञानमार्गणाके अन्तर्गत कुमति-कुश्रुतज्ञानमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति, मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगत्यानुपूर्वीकी, उदयप्रकृति ११७, अनुदयका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति गुणस्थानोक्त ९, उदयप्रकृति १११ और अनुदयप्रकृति ६ हैं।

कुमति-कुश्रुतज्ञानमें उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११७, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	६	११७	०	६ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नरकगत्यानुपूर्वी)
सासादन	९	१११	६	९ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभङ्ग (कुअवधि) ज्ञानमें उदययोग्य १०४ प्रकृति तथा गुणस्थान दो ही हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १०४, अनुदयका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, उदयप्रकृति १०३ और अनुदयप्रकृति १ है।

कुअवधिज्ञानमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १०४, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०४	०	१ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०३	१	४ (अनन्तानुबन्धी कषाय)

सण्णाणपंचयादी, दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं।
मणपज्जवपरिहारे, णवरि ण संढित्थि हारदुगं॥३२४॥
चक्खुम्मि ण साहारणताविगिबितिजाइ थावरं सुहुमं।

अर्थ—पांचज्ञानसे दर्शनमार्गणा पर्यन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् रचना है, किन्तु मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धिसंयममें विशेषता यह है कि नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और आहारकद्विक ये चारप्रकृति उदययोग्य नहीं हैं तथा चक्षुदर्शनमें साधारण, आतप, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रियजाति, स्थावर, सूक्ष्म और तीर्थङ्कर ये आठप्रकृति उदययोग्य नहीं है अतः इन बिना ११४ प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है।

विशेषार्थ—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें गुणस्थान असंयतसे क्षीण-कषायपर्यन्त ९ होते हैं, उदययोग्य प्रकृति १०६ हैं। यहां सामान्यसे गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतिमें से प्रथम, द्वितीय और तृतीयगुणस्थानसम्बन्धी व्युच्छिन्नप्रकृतियां १५ तथा तीर्थङ्कर इन १६ प्रकृतियोंका उदय नहीं पाया जाता है। उदयव्युच्छित्ति, उदय और अनुदयका कथन इसप्रकार है—

असंयतगुणस्थानसे क्षीणकषायपर्यन्त ९ गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति क्रमसे १७-८-५-४-६-६-१-२ और १६ जानना तथा उदय यथाक्रम १०४-८७-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८१–७६–७२–६६–६०–५९ व ५७ प्रकृतियोंका है। अनुदयगुणस्थानोंमें क्रमसे २–१९–२५–३०–३४–४०–४६–४७ और ४९ प्रकृतियोंका जानना।

मति-श्रुत-अवधिज्ञानमें उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति १०६, गुणस्थान ९।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	१७	१०४	२	२ (आहारकद्विक) १७ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
देशसंयत	८	८७	१९	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	२५	२५ (१९+८=२७–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३०	४ (,, ,, ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	६	७२	३४	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४०	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४६	१ (,, ,, ,, ,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५९	४७	२ (,, ,, ,, ,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	४९	१६ (,, ,, ,, ,, ,,)

मन:पर्ययज्ञानमें नपुंसकवेद व स्त्रीवेद और आहारकद्विक उदययोग्य नहीं है अतः सामान्यसे गुणस्थानोक्त प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी ८१ प्रकृतियोंमें से इन चारको कम करनेपर यहां उदययोग्य प्रकृति ७७ हैं और गुणस्थान प्रमत्तसे क्षीणकषायपर्यन्त सात हैं। यहां प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्रा, उदययोग्य प्रकृति ७७, अनुदयका अभाव है। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदययोग्यप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ३। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति हास्यादि ६ नोकषाय, उदय-प्रकृति ७०, अनुदयप्रकृति ७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति पुरुषवेद तथा सञ्ज्वलनक्रोध मान-माया, उदयप्रकृति ६४, अनुदयप्रकृति १३। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सञ्ज्वलनलोभ, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति १७ । उपशान्तमोहमें व्युच्छिन्नप्रकृति, वज्रनाराच और नाराचसंहनन, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति १८ । क्षीणकषायगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति गुणस्थानोक्त १६, उदयप्रकृति ५७ तथा अनुदयप्रकृति २० हैं ।

मनःपर्ययज्ञानमें उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ७७, गुणस्थान ७ ।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
प्रमत्त	३	७७	०	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७४	३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	७	६ („ „ „ „ „)
अनिवृत्तिकरण	४	६४	१३	४ (पुरुषवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	१७	१ (सञ्ज्वलनलोभ)
उपशान्तकषाय	२	५९	१८	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणकषाय	१६	५७	२०	१६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

केवलज्ञानमें उदययोग्य प्रकृति ४२, गुणस्थान सयोग और अयोगकेवली ये २ । सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदय नहीं है । अयोगकेवलीके व्युच्छिन्नप्रकृति १२, उदयप्रकृति १२ और अनुदयप्रकृति ३० हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवलज्ञानमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि–

उदययोग्यप्रकृति ४२, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
सयोगकेवली	३०	४२	०	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
अयोगकेवली	१२	१२	३०	" " " " "

"इति ज्ञानमार्गणा"

अथ संयममार्गणा।

संयममार्गणामें सामायिक–छेदोपस्थापनासंयममें उदययोग्य प्रकृति ८१, गुणस्थान प्रमत्तादि ४ हैं। यहां प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदय नहीं है। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ५। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ९। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति १५ हैं।

सामायिक छेदोपस्थापनासंयममें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ८१, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
प्रमत्त	५	८१	०	५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	५	४ (" " " " ")
अपूर्वकरण	६	७२	९	६ (" " " " ")
अनिवृत्तिकरण	६	६६	१५	६ (" " " " ")

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिहारविशुद्धिसंयममें "संढित्थी हारदुगं ण" के अनुसार नपुंसक-स्त्रीवेद और आहारकद्विक इन चारके बिना उदययोग्य प्रकृति ७७ और गुणस्थान दो हैं। यहां प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति स्त्यानगृद्धित्रिक, उदयप्रकृति ७७, अनुदय नहीं है। अप्रमत्तमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७४ और अनुदयप्रकृति ३ हैं।

परिहारविशुद्धिसंयममें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति ७७, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
प्रमत्त	३	७७	०	३ (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)
अप्रमत्त	४	७४	३	४(सम्यक्त्व,अर्धनाराच-कीलित-सृपाटिकासंहनन)

सूक्ष्मसाम्परायसंयममें उदययोग्य प्रकृति ६०, गुणस्थान १ सूक्ष्मसाम्पराय। उदयादिका सर्वकथन सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवत् जानना।

यथाख्यातसंयममें, सामान्य गुणस्थानोक्त उपशान्तकषायसम्बन्धी उदयप्रकृति ५९ में एक तीर्थङ्कर प्रकृति और मिलानेसे उदययोग्य प्रकृति ६० हैं तथा उपशान्तकषायादि चारगुणस्थान। यहां उपशान्तकषाय गुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति १। क्षीणकषायमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६, उदयरूप प्रकृति ५७, अनुदयरूप प्रकृति ३ हैं। सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति १८ हैं। अयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १२, उदयप्रकृति १२, अनुदयप्रकृति ४८ हैं।

यथाख्यातसंयममें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति ६०, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
उपशान्तकषाय	२	५९	१	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन) १ (तीर्थङ्कर)
क्षीणकषाय	१६	५७	३	१६ (गाथा २६४ को सन्दृष्टि अनुसार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सयोगकेवली	३०	४२	१८	१८ (१६+३=१९-१ तीर्थङ्कर) ३० (गाथा २६४ के अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	४८	१२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिके अनसार)

देशसंयममें उदयादिकी सर्वरचना देशसंयतगुणस्थानके समान जानना। उदययोग्य प्रकृति ८७ तथा गुणस्थान एक देशसंयत।

असंयममें तीर्थङ्कर और आहारकद्विकबिना उदययोग्य प्रकृति ११९ प्रकृति हैं। गुणस्थान मिथ्यात्वादि चार हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ११७, अनुदयप्रकृति गुणस्थानोक्त पांचमें से तीर्थङ्कर और आहारकद्विक-बिना शेष दो। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ९, उदयप्रकृति १११, अनुदय-प्रकृति ८। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १९। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १५ हैं।

असंयममें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११९, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्व) ५ (स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय)
सासादन	९	१११	८	८ (५+२=७+१ नरकगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	१००	१९	१९ (८+९=१७+३ नरकबिना शेष गत्यानुपूर्वी=२०-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१५	१५ (१९+१=२०-४ गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) १७ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

"इति संयममार्गणा"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ दर्शनमार्गणा ।

दर्शनमार्गणाके अन्तर्गत चक्षुदर्शनमें उदययोग्य प्रकृतियां ११४, गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणकषायपर्यन्त १२ हैं । मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्तकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ११०, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और आहारकद्विक ये चार । सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति अनन्तानुबन्धी ४ कषाय और चतुरिन्द्रियजाति, उदयप्रकृति १०७, अनुदयप्रकृति ७ । मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १४ । असंयतगुणस्थावमें व्युच्छिन्नप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १० । देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २७ । प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३३ । अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३८ । अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४२ । अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४८ । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ५४ है । उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ५५ । क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७ और अनुदयप्रकृति ५७ हैं ।

चक्षुदर्शनमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११४, गुणस्थान १२ ।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	११०	४	४ (आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	५	१०७	७	७ (४+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ५ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४ और चतुरिन्द्रियजाति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र	१	१००	१४	१४ (७+५=१२+नरकबिना शेष ३ गत्यानुपूर्वी–१सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१०	१० (१४+१=१५–४ गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) १७ (गाथा २६३ की सन्दृष्टिके अनुसार)
देशसंयत	८	८७	२७	८ (,, ,, ,, ,, ,,)
प्रमत्तसंयत	५	८१	३३	३३ (२७+८=३५–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्तसंयत	४	७६	३८	४ (,, ,, ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	६	७२	४२	६ (हास्यादि ६ नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४८	६ (तीनवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५४	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	५५	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	५७	१६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

अचक्षुदर्शनमें तीर्थङ्करबिना शेष १२१ प्रकृतियां हैं। गुणस्थानमिथ्यात्वसे क्षीणमोहपर्यन्त १२ हैं। यहां उदयादिकी सर्वरचना गुणस्थानकी रचनावत् हैं सो निम्न-सन्दृष्टिसे जानना।

अचक्षुदर्शनावरणमें उदयादिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १२१, गुणस्थान १२।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	९	१११	१०	१० (५+४=९+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ९ (गाथा २६४ के अनुसार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र	१	१००	२१	२१ (१०+९+३ शेषआनुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१७	अनुदय १७ (२१+१=२–५, गत्यानुपूर्वी ४ और सम्यक्त्व) व्यु. १७ (गुणस्थानोक्त)
देशसंयत	८	८७	३४	८ (गुणस्थानोक्त)
प्रमत्तसंयत	५	८१	४०	४० (३४+८=४२–२ आहारकद्विक) ५ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	४	७६	४५	४ (,, ,,)
अपूर्वकरण	६	७२	४९	६ (,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५५	६ (,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६१	१ (,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५९	६२	२ (,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	६४	१६ (,, ,,)

अवधिदर्शनमें उदययोग्य प्रकृति अवधिज्ञानवत् ही १०६ हैं तथा उदयादिकी सर्वरचना अवधिज्ञानके समान ही है। अवधिदर्शनमें गुणस्थान असंयतसे क्षीणमोहपर्यन्त ९ हैं।

केवलदर्शनमें उदययोग्यप्रकृति ४२ हैं गुणस्थान २ हैं। उदयादिकी सर्वरचना केवलज्ञानवत् ही जानना।

॥ इति दर्शनमार्गणा ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ लेश्यामार्गणा ।

अथानन्तर लेश्यामार्गणामें उदयादिका कथन करते हैं—

किण्हदुगे सगुणोघं, मिच्छे णिरयाणुवोच्छेदो ॥३२५॥
साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणुवोछिदी एवं ।
काओदे अयदगुणे, णिरयतिरिक्खाणुवोछेदो ॥३२६॥

अर्थ—लेश्यामार्गणामें कृष्ण-नीललेश्यामें तीर्थङ्करादि तीनप्रकृतियोंके बिना उदययोग्य प्रकृति ११९ हैं और सर्वकथन अपने-अपने गुणस्थानवत् है, किन्तु मिथ्यात्व गुणस्थानमें नरकगत्यानुपूर्वीकी भी व्युच्छित्ति हो जाती है ।

कृष्ण व नीललेश्यासहित सासादनगुणस्थानमें गुणस्थानोक्त ९ तथा देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है । तथैव कपोतलेश्यामें भी उदययोग्य ११९ प्रकृति हैं । कपोतलेश्याके असंयतगुणस्थानमें नरक व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी भी व्युच्छित्ति होती है ।

विशेषार्थ—लेश्यामार्गणामें कृष्ण व नीललेश्यामें तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके बिना उदययोग्य प्रकृति ११९ हैं । गुणस्थान मिथ्यात्वआदि चार हैं । "अयदोत्ति छल्लेस्साओ" इसवचनसे असंयतगुणस्थानपर्यन्त छहलेश्या हैं । यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ५ प्रकृति और नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृति की है, क्योंकि सासादनगुणस्थानवाला मरणकर नरक नहीं जाता है । मिश्रगुणस्थानमें आनुपूर्वीका उदय नहीं है तथा असंयतगुणस्थानवर्ती द्वितीयादि नरकपृथ्वीमें उत्पन्न नहीं होते अतः कृष्ण-नीललेश्यारूप नरकगत्यानुपूर्वीकी यहीं (मिथ्यात्वमें) व्युच्छित्ति कही है । सासादनगुणस्थानमें गुणस्थानोक्त ९ तथा असंयतसम्बन्धी देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है । मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी तथा असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषाय ४, नरकगति, नरकायु, वैक्रियकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये तीन इसप्रकार १२ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है । यहां "भोग पुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन वचनोंके अनुसार यहां तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी नहीं कही, क्योंकि असंयतदेव–नारकी, तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। नरकसे आया सम्यग्दृष्टिजीव कर्मभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, वहां पर अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त पूर्वभवसम्बन्धी लेश्या रहती है अतः मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय यहां असंयतगुणस्थानमें पाया जाता है।

तथा मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयप्रकृति ११७, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सासादनगुणस्थानमें उदयप्रकृति १११, अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थानमें उदयप्रकृति ९९, अनुदयप्रकृति २१। असंयतगुणस्थानमें उदयप्रकृति ९९, अनुदयप्रकृति २० हैं।

कृष्ण–नील लेश्यामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति ११९, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	६	११७	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) ६ (गुणस्थानोक्त ५+१ नरकगत्यानुपूर्वी)
सासादन	१३	१११	८	१३ (४ अनन्तानुबन्धीकषाय, एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, देवद्विक, देवायु और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	९८	२१	२१ (१३+८+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१२	९९	२०	२० (२१+१=२२–सम्यक्त्व, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) १२ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, अनादेय, नरकगति, नरकायु)

कापोतलेश्यामें उदययोग्य ११९ प्रकृति हैं तथा गुणस्थान आदिके ४ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ५ प्रकृतिकी, उदयप्रकृति ११७, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सासादनगुणस्थानमें गुणस्थानोक्त ९ प्रकृति तथा देवगति, देवगत्यानुपूर्वी और देवायु इन १२ प्रकृतिकी, उदयप्रकृति १११,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९८, अनुदयप्रकृति २१। असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषाय ४, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्च व मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भगादि तीन इन १४ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति १०१, अनुदयप्रकृति १८ हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषीदेवोंके अपर्याप्तकालमें कृष्ण, नील और कपोतलेश्या ही है तथा पर्याप्तकालमें तेजोलेश्याका जघन्यअंश पाया जाता है। अशुभलेश्याका धारक असंयत भवनत्रिकमें उत्पन्न नहीं होता अतः देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायुकी उदय-व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें ही होती है।

कपोतलेश्यामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि--

उदययोग्यप्रकृति ११९, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) ५ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१२	१११	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) १२ (९ गुणस्थोक्त, देवद्विक देवायु)
मिश्र	१	९८	२१	२१ (१२+८+२ मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी—१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१४	१०१	१८	१८ (२१+१=२२-४, नरकगत्यानुपूर्वी-बिना तीन आनुपूर्वी और सम्यक्त्व) १४ (१२ कृष्ण व नीललेश्यासम्बन्धो सन्दृष्टिवत्+नरक व तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी)

आगे तीन शुभलेश्याओंमें उदयादिका कथन करते हैं—

तेउतिये सगुणोघं णादाविगिविगलथावरचउक्कं।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे ॥३२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—तेजोआदि तीन शुभलेश्याओंमें अपने-अपने गुणस्थानके समान १२२ प्रकृतिमेंसे आतप, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रय, स्थावरादि ४, नरकद्विक, नरकायु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृति का उदय न होनेसे उदययोग्य १०९ प्रकृति हैं। उसमें भी मिथ्यादृष्टिआदि दोगुणस्थानोंमें मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भी उदय नहीं है।

विशेषार्थ—पीत (तेजो) और पद्मलेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिबिना उदययोग्य १०८ प्रकृति हैं, गुणस्थान आदिके सात हैं। यहांपर मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १ मिथ्यात्वप्रकृतिकी, उदयप्रकृति १०३, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और "णराणू ण मिच्छदुगे" इसवचनसे मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन पांचप्रकृतिका। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकी कषाय ४, उदयप्रकृति १०२, अनुदयप्रकृति ६। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी, उदय ९८ प्रकृतिका, अनुदयप्रकृति १०। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय अयशस्कीर्ति ये १३ हैं, उदयप्रकृति १०० और अनुदयप्रकृति ८ हैं। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति प्रत्याख्यानकीकषाय ४, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, उद्योत, नीचगोत्र ये आठ, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २१ हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धिआदि तीन, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति २७। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यक्त्व और अन्तिम तीनसंहनन, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३२ हैं।

पीत (तेज) और पद्मलेश्यामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि— उदययोग्यप्रकृति १०८, गुणस्थान १ से ७ तक।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	५	५ (मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०२	६	४ (अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया)
मिश्र	१	९८	१०	१० (५+४+देवगत्यानुपूर्वी व सम्यग्मिथ्यात्व)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयत	१३	१००	८	८ (१०+१=११–मनुष्य-देवगत्यानुपूर्वी, सम्यक्त्व) १३ (अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय, देवद्विक, देवायु, वैक्रियकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८७	२१	८ (गुणस्थानोक्त, गाथा २६४ की सन्दृष्टि)
प्रमत्त	५	८१	२७	२७ (२१+८=२९–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३२	४ (गुणस्थानोक्त, गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

शुक्ललेश्यामें उदययोग्यप्रकृति १०९ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त १३ हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी, उदयप्रकृति १०३, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थङ्कर, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति पीत, पद्मलेश्यावत् १०२। अनुदय पीत, पद्मलेश्याकी अपेक्षा यहां तीर्थङ्करप्रकृति सर्वत्र अनुदयरूप होनेसे अनुदयप्रकृति अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त एक-एक अधिक होती जानेसे सासादनगुणस्थानमें ७ प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९८, अनुदयप्रकृति ११। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १३, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २२। प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति २८। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३३ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति गुणस्थानोक्त ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति गुणस्थानोक्तमेंसे १३ कम जानना, क्योंकि शुक्ललेश्यामें मूलमें ही उदययोग्य १३ प्रकृतियां कम की हैं अतः यहां ३७ प्रकृति अनुदयरूप है। यह १३ प्रकृति कमका क्रम आगेके गुणस्थानोंमें सर्वत्र जानना। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४३। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४९। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ५०। क्षीणमोहगुणस्थानमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ५२। सयोगकेवलीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४२, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति ६७ जानना।

शुक्ललेश्यामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १०९, गुणस्थान १३।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	६	६ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०२	७	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९८	११	११ (७+४+१ देवगत्यानुपूर्वी–१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	९	९ (११+१=१२–३ सम्यक्त्व, देव-मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८७	२२	८ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ की सन्दृष्टि-अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	२८	२८ (२२+८=३०–२ आहारकद्विक) ५ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३३	४ (गुणस्थानोक्त ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	६	७२	३७	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४३	६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४९	१ (,, ,, ,, ,, ,,)
उपशान्तमोह	२	५९	५०	२ (,, ,, ,, ,, ,,)
क्षीणमोह	१६	५७	५२	१६ (,, ,, ,, ,, ,,)
सयोगकेवली	४२	४२	६७	६७ (५२+१६=६८–१ तीर्थङ्कर)

"इति लेश्यामार्गणा"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ भव्य-सम्यक्त्वमार्गणा ।

भविदरुवसमवेदगखइये सगुणोघमुवसमे खइये ।
ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं ॥३२८॥
खाइयसम्मो देसो णर एव जदो तहिं ण तिरियाऊ ।
उज्जोवं तिरियगदी तेसिं अयदम्हि वोच्छेदो ॥३२९॥

अर्थ--भव्य-अभव्य, उपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व-मार्गणामें अपने-अपने गुणस्थानवत् कथन जानना, किन्तु विशेषता यह है कि उपशम व क्षायिकसम्यक्त्वमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय नहीं है तथा उपशमसम्यक्त्वमें तीन (नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य) गत्यानुपूर्वी और आहारकद्विक ये पांचप्रकृति उदययोग्य नहीं है और देशसंयतगुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होता है (क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि भोगभूमिज तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है वहांपर देशसंयम नहीं है) इसलिये देशसंयतगुणस्थानमें तिर्यञ्चायु-उद्योत और तिर्यञ्चगति इन तीनोंका उदय नहीं है । इसकारण इन तीनोंकी उदयव्युच्छित्ति असंयतगुणस्थानमें हो जाती है । "सेसाणं सगुणोघं" गाथा २३० के इन वचनोंके अनुसार शेष तीन (सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व) में अपने-अपने गुणस्थानके समान उदयादिकी रचना जानना ।

विशेषार्थ--भव्यमार्गणामें गुणस्थानवत् उदययोग्यप्रकृति १२२ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्वसे अयोगीपर्यन्त १४ हैं तथा उदयव्युच्छित्ति-उदय व अनुदयसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानके समानही जानना । अभव्यमार्गणामें उदययोग्य प्रकृति ११७ और गुणस्थान एक मिथ्यात्वही होता है ।

सम्यक्त्वमार्गणामें सम्यक्त्वीके उदययोग्यप्रकृति १०४ हैं, किन्तु यहां 'णादितियाणूयहारदुगं' इसवचनसे उपशमसम्यक्त्वमें नरक-तिर्यञ्च और मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा सम्यक्त्वबिना १०० प्रकृति उदययोग्य है, क्योंकि प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें नरक-तिर्यञ्च व मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता कारणकि जिसने पहले देवायुका बन्ध कर लिया है उसके उपशमश्रेणीसे उतरते समय यदि अपूर्वगुणस्थानपर्यन्त मरण हो तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह मरकर असंयतगुणस्थानवर्तीदेवही होता है तथा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें तो देवायुके बिना अन्य तीनआयुका सत्त्व ही नहीं है, क्योंकि द्वितीयोपशमसम्यक्त्व श्रेणीके सम्मुख सातिशयअप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीवके ही स्वीकार किया गया है तथा अणुव्रत व महाव्रत देवायुबिना अन्यआयुको बांधनेवाले जीवोंके नहीं होते हैं इसलिए द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें देवगत्यानुपूर्वीबिना तीनोंआनुपूर्वीका उदय नहीं है। उपशमसम्यक्त्वमें गुणस्थान असयतादि आठ होते हैं। असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरणकषाय चार, देव-नरकआयु, नरक-देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, दुर्भंग, अनादेय और अयशस्कीर्ति इन १४ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति १००, अनुदय नहीं है नरकगति और नरकायुका उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा ही जानना। देशसंयतगुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरणकषाय ४, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति इन आठ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति यहां भी तिर्यञ्चायु आदि चार प्रकृतिका उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा जानना, उदय ८६ प्रकृतिका, अनुदयप्रकृति १४ हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्राकी व्युच्छित्ति है, क्योंकि आहारकद्विक तो उपशमसम्यक्त्वमें मूलमें ही उदययोग्य नहीं है। प्रमत्तगुणस्थानमें उदयप्रकृति ७८, अनुदयप्रकृति २२। अप्रमत्तगुणस्थानमें अन्तिम तीनसंहननकी ही व्युच्छित्ति है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वमें सम्यक्त्वप्रकृतिका मूलमें ही उदय नहीं है, उदययोग्यप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति २५। अपूर्वकरणगुणस्थानमें हास्यादि ६ नोकषायकी व्युच्छित्ति, उदय ७२ प्रकृतिका, अनुदय २८ प्रकृतिका। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें तीनवेद और सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया इन ६ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति, ६६ प्रकृतिका उदय, ३४ प्रकृतिका अनुदय है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सञ्ज्वलनलोभकी व्युच्छित्ति, उदय ६० प्रकृतिका और अनुदय ४० प्रकृतिका है। उपशान्तमोहगुणस्थानमें वज्रनाराच और नाराच इन दोसंहननोंकी व्युच्छित्ति, उदय ५९ प्रकृतिका तथा अनुदय ४१ का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशमसम्यक्त्वमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति १००, गुणस्थान ८।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	१४	१००	०	१४ (गुणस्थानोक्त १७—३ मनुष्य-तिर्यञ्च व नरकगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८६	१४	८ (प्रत्याख्यानावरणकषाय ४, तिर्यञ्चआयु, तिर्यञ्चगति उद्योत और नोचगोत्र)
प्रमत्त	३	७८	२२	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	३	७५	२५	३ (अर्धनाराच-कीलक व असम्प्राप्तासृपाटिका-संहनन)
अपूर्वकरण	६	७२	२८	६ (हास्य-रति-अरति-शोक-भय-और जुगुप्सा)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	३४	६ (तीनवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४०	१ [सञ्ज्वलन (सूक्ष्म) लोभ]
उपशान्तमोह	२	५९	४१	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)

वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्वमें उदययोग्य प्रकृति १०६ हैं क्योंकि यहां उदययोग्य १२२ प्रकृतिमेंसे आदिके तीनगुणस्थानोंमें क्रमसे व्युच्छिन्न होनें वाली ५-९ व १ प्रकृति तथा तीर्थङ्करप्रकृति इन १६ का उदय नहीं है। गुणस्थान असंयतगुणस्थानसे अप्रमत्तपर्यन्त ४ हैं। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त १७, क्योंकि कृतकृत्यवेदकवालेजीवका गमन चारोंगतियोंमें सम्भव है इसलिए चारों गत्यानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है। उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति २ (आहारकद्विक)। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति १९। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति २५। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४ तथा उपरितनगुणस्थानोंमें व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियां क्रमसे ६+६+१+२+१६+३० एवं तीर्थङ्कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिना ११ इसप्रकार सर्वप्रकृति ७६ हैं। यहां उदय ७६ प्रकृतिका एवं अनुदय ३० प्रकृतिका है।

वेदकसम्यक्त्वमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १०६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	१	१०४	२	२ (आहारकद्विक) १७ (गुणस्थानोक्त)
देशसंयत	८	८७	१९	८ (पूर्वसन्दृष्टिमें कथित)
प्रमत्त	५	८१	२५	२५ (१९+८=२७-२ आहारकद्विक)
अप्रमत्त	७६	७६	३०	व्यु० ७६ अप्रमत्तगुणस्थानसे अयोगीपर्यन्त व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियां क्रमसे ४+६+६+१+२+३०+तीर्थङ्कर-बिना ११=७६

क्षायिकसम्यक्त्वमें भी उदययोग्य १०६ प्रकृति हैं गुणस्थान असंयतसे अयोगी-पर्यन्त ११ हैं। यहां असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त १७ तथा तिर्यञ्चायु, उद्योत और तिर्यञ्चगति इन २० प्रकृतिकी है, क्योंकि देशसंयतगुणस्थानमें क्षायिक-सम्यग्दर्शन मनुष्यके ही होता है, तिर्यञ्चके नहीं अतः तिर्यञ्चायु-उद्योत व तिर्यञ्च-गति इन तीनप्रकृतिका उदय पञ्चमगुणस्थानमें नहीं होनेसे इनकी व्युच्छित्ति चतुर्थ-गुणस्थानमें ही हो गई। असंयतगुणस्थानमें उदयप्रकृति १०३, अनुदय आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन तीन प्रकृतिका। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति प्रत्याख्याना-वरणकषाय ४ और नीचगोत्र, उदयप्रकृति ८३, अनुदयप्रकृति २३। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति आहारकद्विकसहित ८०, अनुदयप्रकृति २६। अप्रमत्त-गुणस्थानमें सम्यक्त्वबिना गुणस्थानोक्त ३ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति ३१। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनु-दयप्रकृति ३४। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदय-प्रकृति ४०। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभ, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४६। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ४७। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्ति १६ प्रकृतिकी, उदय ५७ प्रकृतिका और अनुदय ४९ प्रकृतिका है। सयोगकेवलीमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति तीर्थङ्करबिना ६४, क्योंकि यहां तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय पाया जाता है। अयोगकेवलीमें व्युच्छिन्नप्रकृति १२, उदयप्रकृति १२ और अनुदयप्रकृति ९४ जानना।

क्षायिकसम्यक्त्वमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति १०६, गुणस्थान ११।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	२०	१०३	३	३ (आहारकद्विक व तीर्थङ्कर) २० (१७ तो गाथा २६३ के अनुसार एवं तिर्यञ्चायु, उद्योत, तिर्यञ्चगति)
देशसंयत	५	८३	२३	५ (प्रत्याख्यानावरणकषाय ४, नीचगोत्र)
प्रमत्त	५	८०	२६	५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि के अनुसार) २६ (२३+५=२८–२ आहारकद्विक)
अप्रमत्त	३	७५	३१	३ (अन्तिम तीनसंहनन)
अपूर्वकरण	६	७२	३४	६ (हास्यादि नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४०	६ (तीनवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४६	१ (सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	४७	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	४९	१६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	३०	४२	६४	६४ (४९+१६=६५–१ तीर्थङ्कर)
अयोगकेवली	१२	१२	९४	३० (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) में मिश्रगुणस्थानवत् उदययोग्यप्रकृति १०० हैं तथा गुणस्थान एक मिश्र ही है। सासादनसम्यक्त्वमें सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व आहारकद्विक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और तीर्थङ्कर तथा नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ बिना उदययोग्यप्रकृति १११ हैं, गुणस्थान एक सासादन ही है। मिथ्यात्वमें सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन ५ प्रकृतियोंके बिना उदययोग्य ११७ प्रकृति तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्वही है।

"इति भव्य-सम्यक्त्वमार्गणा"

अथ सञ्ज्ञीमार्गणा।

अथानन्तर सञ्ज्ञीमार्गणामें उदयादिका कथन करते हैं—

सेसाणं सगुणोघं सण्णिस्सवि णत्थि तावसाहरणं।
थावरसुहुमिगिविगलं असण्णिणोवि य ण मणुदुच्चं ॥३३०॥
वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभग आउतियं।

अर्थ—शेष सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन व मिथ्यात्व इन तीनमें अपने-अपने गुणस्थानके समान उदयादि जानना। (इसका कथन सम्यक्त्वमार्गणामें किया जा चुका है।)

सामान्यसे उदययोग्य १२२ प्रकृतिमेंसे आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रय, और तीर्थङ्कर इन ९ प्रकृतिबिना सञ्ज्ञीमार्गणामें उदययोग्य प्रकृति ११३ हैं। असञ्ज्ञीके मनुष्यगति व मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, वैक्रियकषट्क, आदिके पांचसंहनन, आदिके पांच संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभगादितीन, नरकादि तीनआयु ये २६ प्रकृतियां उदययोग्य नहीं है। इसकारण सामान्यसे मिथ्यात्वगुणस्थान सम्बन्धी ११७ प्रकृतियोंमेंसे उपर्युक्त २६ प्रकृतियां घटानेपर उदययोग्य ९१ प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—सञ्ज्ञीमार्गणामें उदययोग्य प्रकृति ११३, गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणमोहपर्यन्त १२। सयोगकेवली और अयोगकेवली भी भावमनरहित हैं इसलिए सञ्ज्ञी नहीं हैं तथा तिर्यञ्चोंकेबिना अन्यत्र असञ्ज्ञीपना नहीं पाया जाता है। अतः सयोग व अयोगकेवली असञ्ज्ञी भी नहीं हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति २ (मिथ्यात्व और अपर्याप्त), उदयप्रकृति १०९, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और आहारकद्विक ये चार। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति १०६, नरकगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं होनेसे अनुदयप्रकृति ७। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १००, तिर्यञ्च-मनुष्य व देवगत्यानुपूर्वीका उदय न होनेसे तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय है अतः अनुदयप्रकृति १३ हैं। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति १७, उदयप्रकृति नरकादि चारोंगत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्वसहित १०४, अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २६। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३२। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३७। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४१। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ६ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, ६६ प्रकृतिका उदय, ४७ प्रकृतिका अनुदय है। सूक्ष्मसाम्परायमें सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभकी व्युच्छित्ति, ६० प्रकृतिका उदय और ५३ प्रकृतियोंका अनुदय है। उपशान्तमोह गुणस्थानमें २ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, ५९ प्रकृतिका उदय तथा ५४ प्रकृतिका अनुदय जानना। क्षीणमोहगुणस्थानमें गुणस्थानोक्त १६ तथा सयोगी व अयोगोगुणस्थानसम्बन्धी ४२ प्रकृतियोंमेंसे तीर्थङ्करबिना शेष ४१ इसप्रकार ५७ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति, ५७ प्रकृतिकाही उदय और ५६ प्रकृति अनुदयरूप जानना।

सञ्ज्ञीमार्गणामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११३, गुणस्थान १२।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	१०९	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व, आहारकद्विक) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	४	१०६	७	७ (४+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ४ (अनन्तानुबन्धोकषाय)
मिश्र	१	१००	१३	१३ (७+४=११+३ गत्यानुपूर्वी— १ सम्यग्मिथ्यात्व)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयत	१७	१०४	९	१७ (गुणस्थानोक्त गाथा २६४ के अनुसार)
देशसंयत	८	८७	२६	८ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३२	३२ (२६+८=३४–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६३ को सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३७	४ („ „ „ „)
अपूर्वकरण	६	७२	४१	६ („ „ „ „)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४७	६ („ „ „ „)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५३	१ („ „ „ „)
उपशान्तमोह	२	५९	५४	२ („ „ „ „)
क्षीणमोह	५७	५७	५६	

नोट–शङ्का—मनसहित होनेके कारण सयोगकेवली भी सञ्ज्ञी होते हैं ?

समाधान—सयोगकेवली सञ्ज्ञी नहीं होते, क्योंकि ज्ञानावरण व दर्शनावरण-कर्मसे रहित होनेके कारण केवलीके मनके अवलम्बनसे बाह्य अर्थका ग्रहण नहीं होता अतः केवलीको सञ्ज्ञी नहीं कह सकते।

शङ्का—तो केवली असञ्ज्ञी रहे आवें ?

समाधान—केवली असञ्ज्ञी भी नहीं हैं, क्योंकि जिन्होंने समस्त पदार्थोंको साक्षात् कर लिया है उन्हें असञ्ज्ञी माननेमें विरोध आता है।

शङ्का—केवली असञ्ज्ञी होते हैं, क्योंकि वे मनकी अपेक्षाके बिना ही विकलेन्द्रियजीवोंके समान बाह्यपदार्थको ग्रहण करते हैं ?

समाधान—यदि मनकी अपेक्षा न करके ज्ञानकी उत्पत्ति मात्रका आश्रय करके असञ्ज्ञीपना सम्भव होता, किन्तु ऐसा तो है नहीं।

शङ्का—असञ्ज्ञीके विषयमें ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान—असञ्ज्ञीजीवोंके मनका अभाव होनेसे अतिशयबुद्धिका भी अभाव है, किन्तु केवलीके मनका अभाव होनेसे अतिशयबुद्धिके अभावका दोष नहीं है अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवलीके मनका अभाव होते हुए भी अतिशयबुद्धि पाई जाती है अतः केवली असञ्ज्ञी भी नहीं हैं ।

क्षायोपशमिकज्ञान अवश्य ही कहीं पर (सञ्ज्ञी जीवोंमें) मनसे उत्पन्न होता है इसलिए मनका अभाव होनेसे विशेषक्षायोपशमिकज्ञानका अभाव सिद्ध होगा न कि केवलज्ञानका अभाव सिद्ध होगा अर्थात् केवलीके मनका अभाव होनेसे अतिशयरूप केवलज्ञानका सद्भाव पाया जाता है ।

असञ्ज्ञीमार्गणामें मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र, देवगति, नरकगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, आदिके पांचसंहनन, आदिके ५ संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभगादि ३, नरक-मनुष्य और देवायु इन २६ प्रकृतियोंको मिथ्यात्व गुणस्थानसम्बन्धी ११७ उदययोग्य प्रकृतियोंमेंसे घटानेपर शेष ९१ प्रकृतियां उदययोग्य हैं । गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन । यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति गुणस्थानोक्त ५, तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्रा, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दुःस्वर, अप्रशस्तविहायोगति इसप्रकार १३ (क्योंकि स्त्यानगृद्धिआदि प्रकृतियोंका उदय पर्याप्तअवस्थामें होता है, किन्तु सासादनगुणस्थान असञ्ज्ञीके पर्याप्तअवस्थामें नहीं होता अतः इनकी भी व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही हो जाती है) मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयप्रकृति ९१, अनुदयका अभाव है । सासादनगुणस्थानमें गुणस्थानोक्त ९ प्रकृतियों-की व्युच्छित्ति, उदय ७८ प्रकृतिका और अनुदय १३ प्रकृतिका है ।

असञ्ज्ञीजीवोंके उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ९१, गुणस्थान २ ।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१३	९१	०	१३ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्रा, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दुःस्वर और अप्रशस्तविहायोगति)
सासादन	९	७८	१३	९ गुणस्थानोक्त (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

"इति सञ्ज्ञीमार्गणा"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ आहारमार्गणा ।

अब आहारमार्गणामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय कहते हैं—

आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ ॥३३१॥
कम्मे व अणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३३२॥

अर्थ—आहारमार्गणामें आहारकअवस्थामें उदयादिका कथन सामान्यसे गुणस्थानके समान ही जानना, किन्तु विशेष यह है कि यहां चारोंआनुपूर्वियोंका उदय नहीं है अतः उदययोग्य प्रकृति ११८ ही हैं तथा अनाहारकअवस्थामें कार्मणकाययोगके समान ८९ प्रकृतियोंका उदय है। इसप्रकार मार्गणास्थानोंमें कर्मप्रकृतियोंके उदयादिका कथन (अपने भाई) बलदेव और माधवचन्द्रसे पूजित (आचार्य) नेमिचन्द्र (सिद्धान्तचक्रवर्ति) ने कहा है। [यहां संस्कृत टीकाकारने "बलमाहवचदच्चियणेमिचंदेण" इस पदका "बलभद्र और माधव (नारायण) से पूजित नेमिनाथ तीर्थङ्करने कहा है" ऐसा भी अर्थ किया है।]

विशेषार्थ—आहारमार्गणामें चारआनुपूर्वीके बिना उदययोग्य ११८ प्रकृतियां हैं। गुणस्थान आदिके १३ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ११३, अनुदयप्रकृति ५। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ९, उदयप्रकृति १०८ और अनुदयप्रकृति १० हैं। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति १०० और अनुदयप्रकृति १८। असंयतगुणस्थानमें चारआनुपूर्वीबिना व्युच्छित्ति १३ प्रकृतिकी, उदय १०० प्रकृतिका, अनुदय १८ प्रकृतिका। देशसंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति ३१। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३७। अप्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६ और अनुदयप्रकृति ४२ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४६ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ५२। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति ६० और अनुदयप्रकृति ५८ हैं। उपशान्तमोहगुणस्थानमें व्युच्छित्ति २ प्रकृतिकी, उदय ५९ प्रकृतिका, अनुदय ५९ प्रकृतिका। क्षीणमोहगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ६१। सयोगीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ४२, उदयप्रकृति ४२ और अनुदयप्रकृति ७६ जानना।

आहारमार्गणामें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ११८, गुणस्थान १३।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११३	५	अनु० ५ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थङ्कर) व्यु० ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सासादन	९	१०८	१०	९ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
मिश्र	१	१००.	१८	१८ (१०+९=१९–१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	१८	१८ (१८+१=१९–१ सम्यक्त्व) १३ (गुणस्थानोक्त १७–४ गत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८७	३१	८ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३७	३७ (३१+८=३९–२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	४२	४ (,, ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	६	७२	४६	६ (,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५२	६ (,, ,, ,, ,,)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५८	१ (सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	५९	२ (वज्रनाराच व नाराच संहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	६१	१६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	४२	४२	७६	७६ (६१+१६=७७–१ तीर्थङ्कर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनाहारकमार्गणामें उदययोग्य प्रकृति ८९, गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, सयोगी, अयोगी ये ५ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ३, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १०, उदयप्रकृति ८१, अनुदय प्रकृति ८। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ५१, उदयप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति १४। सयोगकेवलीगुणस्थानमें[1] उदयव्युच्छित्ति साता-असातामेंसे कोई एक, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, तैजस-कार्मण, वर्णादिचार, अगुरुलघु इन १३ प्रकृतिकी, उदयप्रकृति २५, अनुदयप्रकृति ६४। अयोगीगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १२ (गाथा २६३ की सन्दृष्टिके अनुसार), उदयप्रकृति १२ और अनुदयप्रकृति ७७ हैं।

अनाहारकमें उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदययोग्यप्रकृति ८९, गुणस्थान ५।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	३	८७	२	२ (सम्यक्त्व और तीर्थङ्कर) ३ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त)
सासादन	१०	८१	८	८ (३+२=५+३ नरकद्विक-नरकायु)
असंयत	५१	७५	१४	१४ (१०+८=१८-४ सम्यक्त्व, मनुष्य-तिर्यञ्च और देवगत्यानुपूर्वी) ५१ (गाथा ३१८-३१९ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगी	१३	२५	६४	६४ (१४+५१=६५-१ तीर्थङ्कर) १३ (साता-असातामेंसे एक, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु और वर्णादिचार)
अयोगी	१२	१२	७७	

"इति उदयप्रकरण समाप्त"

१. सयोगकेवलीके अनाहारकअवस्था केवली समुद्घातमें होती है, किन्तु वहां बन्धव्युच्छित्ति किसीभी प्रकृतिकी नहीं होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ सत्त्वप्रकरणम् ।

आगे प्रकृतियोंके सत्त्वका निरुपण करते हुए सर्वप्रथम मिथ्यात्वगुणस्थानमें सत्त्वका वर्णन करते हैं—

तित्थाहारा जुगवं, सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए।
तस्सत्तिकम्मियाणं, तग्गुणठाणं ण संभवदि ॥३३३॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें जिसके तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व है उसके आहारकद्विकका सत्त्व नहीं होता, तथा जिसके आहारकद्विकका सत्त्व होता है उसके तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं है। जिसके आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका युगपत् सत्त्व पाया जाता है उसके मिथ्यात्वगुणस्थान नहीं होता है। अतः मिथ्यात्वगुणस्थानमें एकजीवकी अपेक्षा आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका युगपत् सत्त्व न होकर एकका ही सत्त्व रहता है तथा नानाजीवोंकी अपेक्षा दोनोंका सत्त्व पाया जाता है। इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें १४८ प्रकृतियोंका सत्त्व नानाजीवोंकी अपेक्षा होता है। सासादनगुणस्थानमें एकजीव अथवा नानाजीवोंकी अपेक्षा क्रमसे या युगपत् तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका सत्त्व नहीं होनेसे १४५ प्रकृति सत्त्वयोग्य हैं। मिश्र गुणस्थानमें एक तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व न होनेसे १४७ प्रकृतिका सत्त्व है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जिनके सत्त्व पाया जावे उनके वह गुणस्थान नहीं होता।

अब आयुबन्ध होनेपर सम्यक्त्व और अणुव्रत-महाव्रत सम्बन्धी नियम कहते हैं—

चत्तारिवि खेत्ताइं, आउगबंधेण होदि सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहदि देवाउगं मोत्तुं ॥३३४॥

अर्थ—चारोंही गतियोंमें किसीभी आयुका बन्ध होनेपर सम्यक्त्व होता है, किन्तु देवायुके बिना अन्य तीनआयुका बन्ध करनेवाला अणुव्रत-महाव्रत धारण नहीं कर सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—यदि चारोंआयुमें से किसीभी आयुका बन्ध पहले हुआ है तो सम्यक्त्व होनेमें कोई बाधा नहीं है, किन्तु यदि पहले नरक-तिर्यञ्च और मनुष्यायुमें से किसी एकआयुका बन्ध हुआ है तो तिर्यञ्च तो अणुव्रत तथा मनुष्य अणुव्रत और महाव्रत धारण करनेमें समर्थ नहीं है। यदि देवायु पहले बन्धी है तो अणुव्रत-महाव्रत धारणमें कोई बाधा नहीं है।

णिरियतिरिक्खसुराउग-सत्ते ण हि देससयलवदखवगा।
अयदचउक्कं तु अणं, अणियट्टीकरणचरिमम्हि ॥३३५॥
जुगवं संजोगित्ता, पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं।
वोलिय कमसो मिच्छं, मिस्सं सम्मं खवेदि कमे ॥३३६॥जुम्मं॥

अर्थ—नरक, तिर्यञ्च तथा देवायुका सत्त्व होनेपर क्रमसे देशव्रत-महाव्रत और क्षपकश्रेणी नहीं होती है। असंयतादि चारगुणस्थानवाले जीव अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानके चरमसमयमें अनन्तानुबन्धीकी युगपत् विसंयोजना करते हैं। पुनः तीन-करण करके अनिवृत्तिकरण कालके बहुभाग बीत जानेपर शेष सङ्ख्यातवें एकभागमें क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय करते हैं। इसप्रकार सात प्रकृतियोंके क्षयका क्रम है ॥३३५-३३६॥

विशेषार्थ—यहां तीन गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका सत्त्व पूर्वोक्त ही समझना। असंयतगुणस्थानसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त उपशमसम्यग्दृष्टि तथा क्षयोपशमसम्यग्दृष्टि, इन दोनोंके असंयतगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी आदिकी उपशमरूप सत्ता होनेसे १४८ प्रकृतियोंका सत्त्व है। देशसंयतगुणस्थानमें नरकायु न होनेसे १४७ प्रकृतिका सत्त्व है। प्रमत्तगुणस्थानमें नरक तथा तिर्यञ्चायुका सत्त्व नहीं है अतः यहां १४६ प्रकृतिका ही सत्त्व है। तथैव अप्रमत्तगुणस्थानमें भी १४६ प्रकृतिका ही सत्त्व है। क्षायिक-सम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चारकषाय, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सातप्रकृतियोंका सत्त्व असंयतादि गुणस्थानोंमें नहीं है अतः क्षायिक सम्यग्दृष्टिके इन गुणस्थानोंमें सात-सात प्रकृतियोंको कम करके सत्त्व पाया जाता है।

विद्यमान जिस आयुको भोगाजावे वह भुज्यमान और आगामी कालके लिए जिसका बन्ध किया जावे वह बध्यमान कहलाती है। इन दोनोंकी अपेक्षासे नरकायुका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्त्व होनेपर जीव देशव्रत धारण नहीं कर सकता तथा तिर्यञ्चायुका सत्त्व होनेपर महाव्रत नहीं होता, देवायुका सत्त्व होनेपर क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता तथा अनन्तानुबन्धीकषाय चार और दर्शनमोहनीयकी तीन इसप्रकार इन ७ प्रकृतियोंकी सत्ताका नाश असंयतादि चारगुणस्थानोंमें से किसी एक गुणस्थानमें करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है।

अब इनके (उपर्युक्त ७ प्रकृतियोंके) नाशका क्रम कहते हैं—

इन सप्तप्रकृतियोंका नाश करते हुए सर्वप्रथम तीनकरण करता है उनमेंसे अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तिमसमयमें अनन्तानुबन्धी चारकषायकी युगपत् विसंयोजना करता है अर्थात् अप्रत्याख्यान आदि १२ कषाय और ९ नोकषायमें से किन्हीं पांचकषायरूप परिणमाता है। इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके पीछे दर्शनमोहके नाशके लिए उद्यम करके पहले अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ऐसे तीनकरण करता है। यहां अनिवृत्तिकरणका जो अन्तर्मुहूर्तमात्र काल है उसमें सङ्ख्यातका भाग देकर उसमें से एकभागबिना बहुभाग व्यतीत हो जाय तब उस एकभागके प्रथमसमयसे क्रमसे तीनप्रकृतियोंका क्षय करता है। प्रथमसमयमें मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय करता है पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करता है। इसके अनन्तर सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय करता है तब क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है। इसका विशेष कथन लब्धिसार क्षपणासारग्रन्थमें है तथा धवल पु० १३ में है।

अब स्वयं नेमिचन्द्राचार्य क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षययोग्य प्रकृतियोंका क्रम कहते हैं—

सोलट्ठेक्किगिछक्कं, चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं।
खीणे सोलसऽजोगे, बावत्तरि तेरुवत्तंते ॥३३७॥

अर्थ—क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ९ भागोंमें क्रमसे १६, ८, १, १ और ६ तथा शेष चारभागोंमें एक-एक प्रकृतिकी सत्ता व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एकप्रकृतिकी, क्षीणकषायमें १६, सयोगीगुणस्थानमें सत्त्वव्युच्छित्तिका अभाव तथा अयोगीगुणस्थानमें अन्तिम दो समयोंमें से द्विचरमसमयमें तो ७२ की और चरम..मयमें १३ प्रकृतियोंकी सत्त्वसे व्युच्छित्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—यहां सम्बन्ध प्राप्त उपशमन और क्षपणविधि को कहते हैं, किन्तु उनमेंभी सर्वप्रथम उपशमनविधिको कहते हैं—

[1]अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंका असंयतसम्यग्दृष्टिसे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानतक चार-गुणस्थानोंमें रहनेवाला कोई भी जीव उपशम करनेवाला होता है। अपने स्वरूपको छोड़कर अन्यप्रकृतिरूप से रहना अनन्तानुबन्धीका उपशम है और उदयमें नहीं आना ही दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशम है, क्योंकि उत्कर्षण, अपकर्षण और पर-प्रकृतिरूपसे संक्रमणको प्राप्त और उपशान्त हुई उन तीनप्रकृतियोंका अस्तित्व पाया जाता है। अपूर्वकरणगुणस्थानमें एक भी कर्मका उपशम नहीं होता, किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थानवालाजीव प्रत्येकसमयमें अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता हुआ एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें एक-एक स्थितिखण्डका घातकरता हुआ सङ्ख्यातहजार स्थितिखण्डोंका घात करता है और उतने ही स्थिति बन्धापसरणोंको करता है। तथा एक-एक स्थितिखण्डके कालमें सङ्ख्यातहजार अनुभागखण्डोंका घात करता है और प्रतिसमय असङ्ख्यातगुणित श्रेणीरूपसे प्रदेशोंकी निर्जरा करता है तथा जिन अप्रशस्तप्रकृतियों का बन्ध नहीं होता, उनकी कर्मवर्गणाओंको उससमय बंधनेवाली अन्यप्रकृतियोंमें असङ्ख्यातगुणित श्रेणी-रूपसे सङ्क्रमण कर देता है। इसप्रकार अपूर्वकरणगुणस्थानको उल्लंघ करके एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रवेशकरके एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पूर्वोक्तविधिसे रहता है। तत्पश्चात् एकअन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा बारहकषाय और ९ नोकषायका अन्तर (करण) करता है। (नीचेके व ऊपरके निषेकोंको छोड़कर बीचके कितने ही निषेकोंके द्रव्यको निक्षेपण करके बीचके निषेकोंमें से मोहनीयकर्मके अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं।) अन्तरकरणविधि हो जानेपर प्रथमसमय से लेकर ऊपर अन्तर्मुहूर्त जाकर असंख्यातगुणीश्रेणिके द्वारा नपुंसकवेदका उपशम करता है।

शङ्का—उपशम किसे कहते हैं?

समाधान—उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृतिसंक्रमण, स्थिति-काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातके बिनाही कर्मोंके सत्तामें रहने को उपशम कहते हैं।

---

१. ध० पु० १ पृ० २१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदनन्तर एकअन्तर्मुहूर्त जाकर नपुंसकवेदकी उपशमविधिके समानही स्त्रीवेदका उपशम करता है, पुनः एकअन्तर्मुहूर्त व्यतीत होनेपर उसी विधिसे पुरुषवेदके (एकसमय कम दोआवलीमात्र नवकसमयप्रबद्धको छोड़कर शेष सम्पूर्ण) प्राचीनसत्तामें स्थित कर्मके साथ छह नोकषायका उपशम करता है। इसके आगे एकसमय कम दोआवलीप्रमाण कालके द्वारा पुरुषवेदके नवकसमयप्रबद्धका उपशम करता है। इसके पश्चात् प्रत्येक समयमें असङ्ख्यातगुणीश्रेणीके द्वारा सञ्ज्वलनक्रोधके एकसमय कम दोआवलीमात्र नवकसमयप्रबद्धको छोड़कर सत्तामें स्थित पूर्वकर्मोंके साथ अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानक्रोधका एकअन्तर्मुहूर्तमें युगपत् ही उपशम करता है। इसके पश्चात् एकसमय कम दोआवलीमें सञ्ज्वलनक्रोधके नवकसमयप्रबद्धका उपशम करता है। तत्पश्चात् प्रतिसमय असङ्ख्यातगुणी श्रेणीके द्वारा संज्वलनमानके एकसमय कम दोआवलीमात्र नवकसमयप्रबद्धको छोड़कर प्राचीनसत्तामें स्थितकर्मोंके साथ अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानमानका एक अन्तर्मुहूर्तमें उपशम करता है। इसके पश्चात् एकसमयकम दोआवलीमात्र कालमें सञ्ज्वलनमानके नवकसमयप्रबद्धका उपशम करता है। तदनन्तर प्रतिसमय असङ्ख्यातगुणित श्रेणीरूपसे उपशम करता हुआ, मायासञ्ज्वलनके नवकसमयप्रबद्धको छोड़कर सत्तामें स्थित प्राचीनकर्मोंके साथ अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमायाका अन्तर्मुहूर्तमें उपशम करता है। तत्पश्चात् एकसमय कम दोआवलीमात्रकालमें मायासञ्ज्वलनके नवकसमयप्रबद्धका उपशम करता है। तत्पश्चात् प्रत्येक समयमें असङ्ख्यातगुणी श्रेणीरूपसे कर्मप्रदेशोंका उपशम करता हुआ लोभ वेदकके दूसरेत्रिभागमें सूक्ष्मकृष्टिको करता हुआ सञ्ज्वलनलोभके नवकसमयप्रबद्धको छोड़कर सत्तामें स्थित प्राचीनकर्मोंके साथ प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यानलोभका एकअन्तर्मुहूर्तमें उपशम करता है। इसप्रकार सूक्ष्मकृष्टिगत लोभको छोड़कर और एकसमय कम दोआवलीमात्र नवकसमयप्रबद्ध तथा उच्छिष्टावलीमात्र निषेकोंको छोड़कर शेष स्पर्द्धकगत सम्पूर्ण बादरलोभ अनिवृत्तिकरणके चरमसमयमें उपशान्त हो जाता है। इसप्रकार नपुंसकवेद से लेकर जबतक बादरसञ्ज्वलनलोभ रहता है तबतक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवालाजीव इन पूर्वोक्त प्रकृतियोंका उपशम करनेवाला होता है। इसके अनन्तरसमयमें जो सूक्ष्मकृष्टिगत लोभका अनुभव करता है और जिसने अनिवृत्ति इस सञ्ज्ञाको नष्ट कर दिया है ऐसा जीव सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती होता है। तदनन्तर वह अपने कालके चरमसमयमें सूक्ष्मकृष्टिगत सम्पूर्णलोभ-सञ्ज्वलनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशम करके उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ होता है। इसप्रकार मोहनीयकी उपशमनविधिका वर्णन संक्षेपसे हुआ।

भावार्थ—लब्धिसारादि अन्य ग्रन्थोंमें द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति अप्रमत्तसंयतगुणस्थानमें ही बतलाई है, किन्तु यहां उपशमनविधिके कथनमें उसकी उत्पत्ति असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक किसीभी एकगुणस्थानमें बतलाई गई है तथा अनन्तानुबन्धीका अन्य प्रकृतिरूपसे सङ्क्रमण होनेको ग्रन्थान्तरोंमें विसंयोजना कहा है, किन्तु यहां उसे उपशम कहा है। यद्यपि यह केवल शब्द भेद है और स्वयं वीरसेनस्वामीको द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीका अभाव इष्ट है तथापि उसे 'विसंयोजना' शब्दसे न कहकर उपशमशब्दके द्वारा कहनेसे उनका अभिप्राय यह रहा हो कि द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिजीव कदाचित् मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होकर पुनः अनन्तानुबन्धीका बन्ध करने लगता है और जिन कर्मप्रदेशोंका उसने अन्यप्रकृतिरूपसे सङ्क्रमण किया था उनका पुनः अनन्तानुबन्धीरूपसे सङ्क्रमण हो सकता है। इसप्रकार यद्यपि द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी सत्ता नहीं रहती है, तथापि उसका पुनः सद्भाव होना सम्भव है। अतः द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन न कहकर 'उपशम' शब्दका प्रयोग किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है।

अब क्षपणविधिको कहते है—

[1]अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन सातप्रकृतियोंका असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत जीव नाश करता है।

शङ्का—इन सातप्रकृतियोंका युगपत् नाश करता है या क्रमसे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीनकरण करके अनिवृत्तिकरणके चरमसमयमें पहले अनन्तानुबन्धीचारकषायका युगपत् क्षय करता है। तत्पश्चात् पुनः तीनकरण करके उनमेंसे अधःकरण और अपूर्वकरणको उल्लंघकर अनिवृत्तिकरणके सङ्ख्यातभाग व्यतीत हो जानेपर मिथ्यात्वका क्षय करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर

१. ध० पु० १ पृ० २१५ से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर सम्यक्प्रकृतिका क्षय करता है।

इसप्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होकर जिससमय क्षपणविधि प्रारम्भ करता है उससमय अधःप्रवृत्तकरण करके क्रमसे अन्तर्मुहूर्तमें अपूर्वकरणगुणस्थानवाला होता है। वह एकभी कर्मका क्षय नहीं करता है, किन्तु प्रत्येकसमयमें असङ्ख्यातगुणितरूपसे कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा करता है। एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें एक-एक स्थितिकाण्डकघात करता हुआ अपने कालके भीतर सङ्ख्यातहजार स्थितिकाण्डकोंका घात करता है। और उतने ही स्थितिबन्धापसरण करता है तथा उनसे सङ्ख्यातहजारगुणे अनुभागकाण्डकों का घात करता है, क्योंकि एकअनुभागकाण्डके उत्कीरण-कालसे एक स्थितिकाण्डकका उत्कीरणकाल सङ्ख्यातगुणा है, ऐसा सूत्रवचन है। इसप्रकार अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी क्रिया करके और अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रविष्ट होकर, वहांपर भी अनिवृत्तिकरणकालके सङ्ख्यात भागोंको अपूर्वकरणके समान स्थितिकाण्डकघात आदि विधिसे व्यतीतकर अनिवृत्तिकरणके कालमें सङ्ख्यातभाग शेष रहनेपर स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियजाति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन सोलहप्रकृतियोंका क्षय करता है, पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरणसम्बन्धी क्रोध-मान-माया और लोभ इन आठ प्रकृतियोंका एकसाथ क्षय करता है, यह सत्कर्मप्राभृतका उपदेश है, किन्तु कषायप्राभृतका उपदेश तो इसप्रकार है कि पहले आठ कषायोंका क्षय हो जाने के पश्चात् एकअन्तर्मुहूर्तमें पूर्वोक्त १६ कर्मप्रकृतियां क्षयको प्राप्त होती हैं। ये दोनों ही उपदेश हमारे लिए तो सत्य हैं, क्योंकि वर्तमानमें केवली-श्रुतकेवलीका अभाव होनेसे यह निर्णय नहीं हो सकता कि कौनसा उपदेश घटित हो सकता है ? तत्पश्चात् आठ कषाय और १६ प्रकृतियों के नाश होनेपर एकअन्तर्मुहूर्त जाकर चारसञ्ज्वलन और नौ नोकषायोंका अन्तरकरण करता है। अन्तरकरण करनेके पहले चार सञ्ज्वलन और नौ नोकषायसम्बन्धी तीनवेदोंमेंसे जिन दो प्रकृतियोंका उदय रहता है उनकी प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित करता है और अनुदयरूप ११ प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति एकसमयकम आवलीमात्र स्थापित करता है। तत्पश्चात् अन्तरकरण करके एक अन्तर्मुहूर्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यतीत होनेपर नपुंसकवेदका क्षय करता है। तदनन्तर एक अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जानेपर स्त्रीवेदका क्षय करता है। पुनः एक अन्तर्मुहूर्त जाकर सवेदभागके द्विचरमसमयमें पुरुषवेदके पुरातन सत्तारूप कर्मोंके साथ ६ नोकषायका युगपत् क्षय करता है तदनन्तर एकसमयकम दोआवलीमात्रकालके व्यतीत होनेपर पुरुषवेदका क्षय करता है। तत्पश्चात् एकअन्तर्मुहूर्त ऊपरजाकर क्रोधसञ्ज्वलनका क्षय करता है। पश्चात् एक-अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होनेपर मानसञ्ज्वलनका क्षय करता है। इसके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर मायासञ्ज्वलनका क्षय करता है। पुनः एकअन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानको प्राप्त होता है। वह सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्तीजीव भी अपने गुणस्थानके अन्तिमसमयमें लोभसञ्ज्वलनका क्षय करता है और उसी कालमें क्षीणकषायगुणस्थानको प्राप्त करके तथा अन्तर्मुहूर्त बिताकर अपने कालके द्विचरमसमयमें निद्रा और प्रचलाका युगपत् क्षय करता है। तदनन्तर अपनेकालके अन्तिम (चरम) समयमें ५ ज्ञानावरण, चारदर्शनावरण और ५ अन्तराय इन १४ प्रकृतियोंका क्षय करता है। इसप्रकार इन ६० प्रकृतियोंका क्षय हो जानेपर यह जीव सयोगकेवलीजिन होता है। सयोगीजिन किसी भी कर्मका क्षय नहीं करते। तत्पश्चात् बिहार करके और क्रमसे योगनिरोध करके वे अयोगकेवली होते हैं। अयोगकेवली भी अपने कालके द्विचरमसमयमें वेदनीयकी दोनों प्रकृतियोंमें से अनुदयरूप कोई एक-वेदनीय, देवगति, पांचशरीर, पांचशरीरसंघात, पांचशरीरबन्धन, छहसंस्थान, तीन-अङ्गोपाङ्ग, छहसंहनन, पांचवर्ण, दोगन्ध, पांचरस, आठस्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र इन ७२ प्रकृतियोंका क्षय करते हैं। पश्चात् अपने कालके अन्तिमसमयमें उदयागत कोई एकवेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय-जाति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेय-यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र इन १३ प्रकृतियों क्षय करते हैं। अथवा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी-सहित अयोगकेवली अपने द्विचरमसमयमें ७३ प्रकृतियोंका और चरमसमयमें १२ प्रकृतियोंका क्षय करते हैं। इसप्रकार संसारकी उत्पत्तिके कारणोंका विच्छेद हो जानेसे इसके अनन्तरवर्तीसमयमें कर्मरजसे रहित निर्मल दशाको प्राप्त सिद्ध हो जाते हैं। इनमें से जो जीव कर्म-क्षपणव्यापार करते हैं उन्हें क्षपक कहते हैं और जो जीव कर्मोंके उपशमन करनेमें व्यापार करते हैं उन्हे उपशमक कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे क्षपकअनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानोंमें क्षय (सत्त्वसे व्युच्छित्ति) योग्य प्रकृतियोंके नाम दोगाथाओंमें कहते हैं—

णिरियतिरिक्खदु वियलं-थीणतिगुज्जोवतावएइंदी।
साहरणसुहुमथावर, सोलं मज्झिमकसायट्ठं ॥३३८॥
संढित्थि छक्कसाया, पुरिसो कोहो य माण मायं च।
थूले सुहुमे लोहो, उदयं वा होदि खीणम्हि ॥३३९॥जुम्मं॥

अर्थ—नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय ३, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर ये १६ प्रकृतियाँ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें तथा अप्रत्याख्यानकी चारकषाय, प्रत्याख्यानकी चारकषाय ये आठ दूसरेभागमें सत्तासे व्युच्छिन्न होती हैं। तृतीयभागमें नपुंसकवेद, चतुर्थभागमें स्त्रीवेद, पञ्चमभागमें हास्यादि ६ नोकषाय। छठेभागमें पुरुषवेद, सातवेंभागमें सञ्ज्वलनक्रोध और आठवेंभागमें सञ्ज्वलनमान, नवेंभागमें सञ्ज्वलनमाया। इसप्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें (१६+८+१+१+१+६+१+१+१) ३६ प्रकृतियोंकी सत्त्वसे व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें सञ्ज्वलनलोभ और क्षीणकषायगुणस्थानमें उदयव्युच्छित्तिके समान ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय निद्रा और प्रचला इन १६ प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति है। सयोगकेवलीके सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है।

अब अयोगकेवली गुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

देहादी फस्संता, थिरसुहसरसुरविहायदुग दुभगं।
णिमिणाजसऽणादेज्जं, पत्तेया पुण्ण अगुरुचऊ ॥३४०॥
अणुदयतदियं णीचम-जोगिदुचरिमम्हि सत्तवोच्छिण्णा।
उदयगबार णराणू, तेरस चरिमम्हि वोच्छिण्णा ॥३४१॥जुम्मं॥

अर्थ—पांचशरीर, पांचबन्धन, पांचसंघात, ६ संस्थान, तीनअङ्गोपाङ्ग, ६ संहनन, पांचवर्ण, दोगन्ध, पांचरस, आठस्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास तथा जिसका उदय नहीं पाया जाता ऐसी साता-असातामें से एकवेदनीय और नीचगोत्र ये ७२ प्रकृतियां अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं। अयोगीगुणस्थानके चरमसमयमें जिसका उदय है ऐसी साता-असातामें से एकवेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है।

अब आचार्य गुणस्थानोंमें असत्त्व और सत्त्वरूप प्रकृतियोंको कहते हैं—

णभतिगिणभइगि दोद्दो, दस दससोलसट्ठगा दिहीणेसु।
सत्ता हवंति एवं, असहायपरक्कमुद्दिट्ठं ॥३४२॥

अर्थ—मिथ्यात्वसे क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे शून्य-तीन-एक-दो-दो और दस प्रकृतियोंका असत्त्व जानना तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें १०, द्वितीयभागमें १६, प्रकृतिका असत्त्व है। आगे तृतीयादिभागोंमें आठआदि प्रकृतियोंका असत्त्व है। यहां असत्त्वरूप प्रकृतियोंको सत्त्वरूप सर्व (१४८) प्रकृतियोंमें से घटानेपर अवशेष प्रकृतियां अपने-अपने गुणस्थानोंमें सत्त्वप्रकृतियां हैं सो सहायतारहित है पराक्रम जिनका ऐसे वर्धमानस्वामीने कहा है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं पाई जावे उसे असत्त्व और जिनकी सत्ता पाई जाती है उसे सत्त्व कहते हैं।

मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्वशून्य, सत्त्वप्रकृति १४८, व्युच्छित्तिशून्य। सासादनगुणस्थानमें असत्त्वप्रकृति ३, सत्त्व १४५ प्रकृतिका, व्युच्छित्तिशून्य। मिश्रगुणस्थानमें असत्त्वप्रकृति १, सत्त्व १४७ प्रकृतिका, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतगुणस्थानमें असत्त्व शून्य, सत्त्वप्रकृति १४८, व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी। देशसंयतगुणस्थानमें असत्त्वप्रकृति १, सत्त्वप्रकृति १४७, व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १। प्रमत्तगुणस्थानमें असत्त्वरूप प्रकृति २, सत्त्वरूप प्रकृति १४६, व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य। अप्रमत्तगुणस्थानमें असत्त्वरूप प्रकृति २, सत्त्वरूप प्रकृति १४६, व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ८ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें असत्त्वरूप प्रकृति १०, सत्त्वरूपप्रकृति १३८, व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें असत्त्वरूप प्रकृतियां १०, सत्त्वरूप प्रकृतियां १३८, सत्त्वसे व्युच्छिन्नप्रकृति १६। दूसरेभागमें असत्त्वरूप प्रकृतियां २६, सत्त्वरूप प्रकृतियां १२२, व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां ८ हैं। तृतीयभागमें असत्त्व ३४ प्रकृतिका, सत्त्व ११४ प्रकृतिका, व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी। चतुर्थभागमें असत्त्व ३५ का, सत्त्व ११३ का, व्युच्छित्ति १ की। पञ्चमभागमें असत्त्व ३६ का, सत्त्व ११२ का और व्युच्छित्ति ६ की। षष्ठमभागमें असत्त्वप्रकृति ४२, सत्त्वप्रकृति १०६, व्युच्छिन्नप्रकृति १। सप्तम भागमें असत्त्वरूप प्रकृति ४३, सत्त्वरूप प्रकृति १०५, व्युच्छिन्नप्रकृति १। अष्टमभागमें असत्त्वप्रकृति ४४, सत्त्वप्रकृति १०४, व्युच्छिन्नप्रकृति १। नवमभागमें असत्त्वप्रकृति ४५, सत्त्वप्रकृति १०३, व्युच्छिन्नप्रकृति १। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें असत्त्वप्रकृति ४६, सत्त्वप्रकृति १०२, व्युच्छिन्नप्रकृति १। क्षीणकषायगुणस्थानमें असत्त्वप्रकृति ४७, सत्त्वप्रकृति १०१ और व्युच्छिन्नप्रकृति १६। सयोगकेवलीगुणस्थानमें असत्त्वरूप प्रकृति ६३, सत्त्वप्रकृति ८५, व्युच्छित्तिका अभाव है। अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त असत्त्वप्रकृति ६३, सत्त्वप्रकृति ८५, व्युच्छिन्नप्रकृति ७२। चरमसमयमें असत्त्वरूप प्रकृति १३५, सत्त्वरूप प्रकृति १३, व्युच्छिन्नप्रकृति १३।

नोट—१४ वें गुणस्थानमें मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं है अतः शेष ७२ प्रकृतियोंके साथ स्तिवुकसंक्रमणद्वारा मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी भी सत्त्वव्युच्छित्ति द्विचरमसमयमें हो जाती है चरमसमयमें केवल १२ प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है[1]।

क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्य सर्व १४८ प्रकृति, गुणस्थान १३।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	
सासादन	३	१४५	०	३ (आहारकद्विक-तीर्थङ्कर)
मिश्र	१	१४७	०	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४८	१	१ (नरकायु)
देशसंयत	१	१४७	१	असत्त्व १ (नरकायु) १ (तिर्यञ्चायु)

१. ध० पु० ६ पृ० ४१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमत्त	२	१४६	०	२ (नरकायु व तिर्यञ्चायु)
अप्रमत्त	२	१४६	८	८ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, देवायु, दर्शनमोहनीयकी ३)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	१० (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, दर्शनमोहनीय ३, नरक-तिर्यञ्च व देवायु)
अनिवृत्तिकरण क्षपक-प्रथम-भाग	१०	१३८	१६	१६ (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी विकलत्रय ३, स्त्यानगृद्धिआदि निद्रा ३, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर)
द्वितीयभाग	२६	१२२	८	८ (अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय और प्रत्याख्यानकी ४ कषाय)
तृतीयभाग	३४	११४	१	१ (नपुंसकवेद)
चतुर्थभाग	३५	११३	१	१ (स्त्रीवेद)
पंचमभाग	३६	११२	६	६ (हास्यादि नोकषाय)
षष्ठमभाग	४२	१०६	१	१ (पुरुषवेद)
सप्तमभाग	४३	१०५	१	१ (सञ्ज्वलन क्रोध)
अष्टमभाग	४४	१०४	१	१ („ „ मान)
नवमभाग	४५	१०३	१	१ („ „ माया)
सूक्ष्मसाम्परायक्षपक	४६	१०२	१	१ („ „ लोभ)
क्षीणमोह	४७	१०१	१६	१६ (५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, निद्रा, प्रचला)
सयोगकेवली	६३	८५	०	६३ (घातियाकर्मकी ४७, नरक-देव और तिर्यञ्चायु, नरकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि चारजाति, आतप, उद्योत, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अयोगकेवलीके द्विचरम समयमें	६२	८५	७२	७२ [५ शरीर, ५ बन्धन, ५ सङ्घात, ६ संहनन, ३ अङ्गोपाङ्ग, ६ संस्थान, ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-प्रशस्त-विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात. उच्छ्वास, साता या असातामें से कोई एक, नीचगोत्र]
अयोगकेवली चरम समयमें	१३५	१३	१३	व्यु० १३ (साता-असातावेदनीयमें से एक, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस-बादर-पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति. तीर्थङ्कर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी)

अब उपशमश्रेणीवालेके चारित्रमोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियोंके उपशमका विधान कहते हैं—

खवणं वा उवसमणे, णवरि य संजलण पुरिसमज्झम्हि ।
मज्झिमदोद्दो कोहा-दीया कमसोवसंता हु ॥३४३॥

अर्थ—उपशमविधानमें भी क्षपणाविधानके समान क्रम जानना, किन्तु विशेष बात यह है कि सञ्ज्वलनकषाय और पुरुषवेदके मध्यमें बीचके जो अप्रत्याख्यान तथा प्रत्याख्यानकषायसम्बन्धी दो-दो क्रोधादि हैं सो पहले उनको क्रमसे उपशमन करता है पश्चात् सञ्ज्वलनक्रोधादिका उपशम करता है । (इसका विशेष कथन गाथा ३३७ के विशेषार्थमें कर चुके हैं ।)

विशेषार्थ—नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि ६ नोकषाय, पुरुषवेदका अनुक्रमसे उपशम होता है और पुरुषवेदको उपशमानेके अनन्तर उस पुरुषवेदका नवकसमय-प्रबद्धरूप बन्धसहित मध्यमअप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान क्रोधका उपशम करता है यहां जो तत्कालीन नवीवबन्ध हुआ उसकानाम नवकबन्ध है तथा जो पुरुषवेदका नवीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध हुआ उसके निषेक पुरुषवेदको उपशमानेके कालमें उपशमावने योग्य न हुए इसलिए अचलावलीमें कर्मप्रकृतिको अन्यथारूप परिणमानेके लिए असमर्थता है, क्योंकि पुरुषवेदके निषेक मध्यमक्रोधयुग्मको उपशमावनेके कालमें उपशमाते हैं। इसीप्रकार सञ्ज्वलनक्रोधादिके नवकबन्धका स्वरूप यथावस्थित जानना। उसके अनन्तर सञ्ज्वलनक्रोधका उपशम होता है, इसके अनन्तर इसी सञ्ज्वलनक्रोधके नवकबन्धसहित मध्यमरूप अप्रत्याख्यानमान और प्रत्याख्यानमानको उपशमाता है। उसके अनन्तर सञ्ज्वलनमानका उपशम होता है। इसके पश्चात् उस सञ्ज्वलनमानके नवकबन्धसहित मध्यमअप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानमायायुगलका उपशम होता है तथा इसके पश्चात् सञ्ज्वलनमायाका उपशम होता है। तदनन्तर सञ्ज्वलनमायाका नवकबन्धसहित मध्यम अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानलोभका उपशम होता। उसके अनन्तर बादरसञ्ज्वलनलोभको उपशमाता है। ऐसी विशेषता मोहनीय कर्ममें ही जानना इसी लिये मोहनीयके बिना अन्य कर्मोंका उपशम विधान नहीं है। इसप्रकार उपशमश्रेणीमें मोहका उपशम होता है, सत्ताका नाश नहीं होता अतः अपूर्वकरणसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त उपशमश्रेणीवालेके नरकायु तिर्यञ्चायुबिना १४६ प्रकृतिकी सत्ता जानना तथा जिसने अनन्तानुबन्धीकषायकी विसंयोजना कर दी हो उसके १४२ प्रकृतिकी सत्ता होती है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालेके १३८ प्रकृतिकी सत्ता। अपूर्वकरणसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त जानना तथा जिसके आयुबन्ध ही न हुआ हो उस क्षायिकसम्यग्दृष्टिके असंयतादि चारगुणस्थानोंमें भी १३८ प्रकृतिकी ही सत्ता जानना।

णिरयादिसु पयडिट्ठिदिअणुभागपदेसभेदभिण्णस्स।
सत्तस्स य सामित्तं, णेदव्वमिदो जहा जोग्गं ॥३४४॥

अर्थ—नरकगतिआदि मार्गणाओंमें भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारभेदोंसे सहित जो प्रकृतियोंका सत्त्व है वह यथायोग्य समझना।

अब गत्यादिमार्गणाओंमें सत्त्वको कहनेके लिए परिभाषासूत्र कहते हैं—

तिरिए ण तित्थसत्तं, णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि।
आऊणि होंति सत्ता, सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥३४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—तिर्यञ्चगतिमें तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्ता नहीं होती, नरकगतिमें भुज्यमान नरकायु तथा बध्यमानतिर्यञ्च व मनुष्यायुका सत्त्व है, देवायुका नहीं है। तिर्यञ्चगतिमें भुज्यमानतिर्यञ्चायु एवं बध्यमाननरक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देवायुका सत्त्व है। मनुष्यगतिमें भुज्यमानमनुष्यायु तथा बध्यमान नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देवायुका सत्त्व है। देवगतिमें भुज्यमानदेवायु और बध्यमानतिर्यञ्च व मनुष्यायुका सत्त्व है। अवशेष प्रकृतिका सत्त्व गुणस्थानवत् जानना। (जिसको भोग रहा है उसको भुज्यमान और भविष्यकालमें उदयहोनेयोग्य जिसका बन्ध हुआ है उसको बध्यमान कहते हैं।)

अथानन्तर नरक-तिर्यञ्च व मनुष्यगतिमें सत्त्वका कथन २ गाथाओंसे करते हैं—

ओघं वा णेरइये, ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ, तिरिए ओघं ण तित्थयरं ॥३४६॥
एवं पंचतिरिक्खे, पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ।
ओघं मणुसतियेसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ॥३४७॥

अर्थ—नरकगतिमें गुणस्थानवत् सत्ता जानना, किन्तु यहां देवायुका सत्त्व नहीं है अतः १४७ प्रकृतियां सत्त्वयोग्य हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व तृतीयनरकपर्यन्त ही है, मनुष्यायुका सत्त्व छठे नरकपर्यन्त ही है। तिर्यञ्चगतिमें भी सत्त्वका कथन गुणस्थानवत् ही जानना, परन्तु तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं है अतः वहां सत्त्वयोग्य १४७ प्रकृतियां हैं ।।३४६।।

इसीप्रकार पांचप्रकारके तिर्यञ्चोंमें भी सामान्यरीतिसे सत्त्व जानना, किन्तु विशेषता यह है कि लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चोंमें नरक व देवायुका सत्त्व नहीं है। तीनप्रकारके मनुष्योंमें भी गुणस्थानवत् ही सत्त्व समझना, किन्तु लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यमें लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्चके समान नरक व देवायु और तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व न होनेसे १४५ प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है।

विशेषार्थ—नरकगतिमें सामान्यसे सत्त्वयोग्यप्रकृति देवायुबिना १४७ हैं। घर्मादितीन नरकपृथ्वियोंमें सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७ ही हैं। गुणस्थानआदिके चार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्वका अभाव है, सत्त्व १४७ प्रकृतिका, सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है। सासादनगुणस्थानमें आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका असत्त्व तथा १४४ प्रकृतिका सत्त्व, व्युच्छित्ति शून्य। मिश्रगुणस्थानमें असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृतिका, सत्त्व १४६ प्रकृतिका, व्युच्छित्ति नहीं है। असंयतगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है, सत्त्व १४७ प्रकृतिका सत्त्वव्युच्छित्तिका यहां भी अभाव है।

धर्मा-वंशा-मेघा, इन तीनपृथ्वियोंमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति-सम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४७	०	
सासादन	३	१४४	०	३ (तीर्थङ्कर व आहारकद्विक)
मिश्र	१	१४६	०	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४७	०	

अञ्जना-अरिष्टा-मघवी नामा ४, ५ व ६ठी पृथ्वीमें देवायु व तीर्थङ्कर-प्रकृतिके बिना सत्त्वयोग्य १४६ प्रकृति हैं, गुणस्थान ४ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्तिका अभाव है, सत्त्वप्रकृति १४६ हैं। सासादनगुणस्थानमें असत्त्व आहारकद्विकका, सत्त्व १४४ प्रकृतिका, व्युच्छित्ति नहीं है। मिश्र व असंयत-गुणस्थानमें भी असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है, इन दोनोंगुणस्थानोंमें सत्त्व-प्रकृति १४६-१४६ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अञ्जना-अरिष्टा-मघवी पृथ्वियोंमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४ ।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४६	०	
सासादन	२	१४४	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४६	०	
अविरत	०	१४६	०	

माघवीनासक सप्तमपृथ्वीमें मनुष्यायु, देवायु और तीर्थङ्करप्रकृतिबिना सत्त्वयोग्य १४५ प्रकृतियां हैं । गुणस्थान आदिके ४ हैं । यहांपर मिथ्यात्व, मिश्र और असंयतगुणस्थानमें असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्तिका अभाव है, किन्तु सासादनगुणस्थानमें आहारकद्विकका असत्त्व पाया जाता है । चारों ही गुणस्थानोंमें सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है तथा सत्त्व चारों गुणस्थानोंमें क्रमसे १४५-१४३-१४५ और १४५ प्रकृतिका है ।

माघवीपृथ्वीमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५, गुणस्थान ४ ।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४५	०	
सासादन	२	१४३	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४५	०	
असंयत	०	१४५	०	

तिर्यंचगतिमें सामान्यसे सत्त्वयोग्य प्रकृति १४७ हैं, क्योंकि यहां तीर्थङ्कर-प्रकृतिका सत्त्व नहीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यञ्चगतिमें सामान्यसे असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति सम्बन्धी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७, गुणस्थान ५।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४७	०	
सासादन	२	१४५	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४७	०	
असंयत	०	१४७	२	२ (नरकायु व मनुष्यायु)
देशसंयत	२	१४५	०	२ (,, ,,)

सामान्यतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, योनिमतितिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्ततिर्यंचमें भी सत्त्व इसीप्रकार जानना, किन्तु विशेषता यह है कि लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यंचमें नरक-देवायुका सत्त्व नहीं है अतः सत्त्व १४५ प्रकृतिका है। "ण हि सासणो अपुण्णे" इत्यादि वचनोंसे लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यंचके सासादनगुणस्थान नहीं है इसलिए एकमात्र मिथ्यात्वगुणस्थान ही है। शेष चारप्रकारके तिर्यंचोंमें ५-५ गुणस्थान हैं।

मनुष्यगतिमें सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यिनीमें गुणस्थानवत् सर्व कथन है, किन्तु मनुष्यिनीके क्षपकश्रेणीमें विशेषता यह है कि क्षपकश्रेणीमें स्थित मनुष्यिनीके तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला अर्थात् सम्यग्दृष्टिजीव मनुष्यिनियोंमें उत्पन्न नहीं होता है तथा सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य, मनुष्यिनीमें देशसंयतगुणस्थानमें, तिर्यंचायुकी सत्ता नहीं है इसलिए इस गुणस्थानमें १४६ प्रकृतिका सत्त्व और दो प्रकृतिका असत्त्व है। मनुष्यिनीके क्षपकश्रेणीमें तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्ताका अभाव है, इसकारणसे अपूर्वकरणगुणस्थानमें सत्त्व १३७ और असत्त्व १० प्रकृतिका जानना। इसीप्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त गुणस्थानोक्त सत्त्वप्रकृतियोंसे एक-एकप्रकृति हीनरूपसे सत्त्व जानना, किन्तु असत्त्व गुणस्थानोक्तही है।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चके समान तीर्थङ्कर, नरकायु और देवायुबिना सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५ और गुणस्थान १ मिथ्यात्वही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्य व पर्याप्त मनुष्यकी अपेक्षा असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान उपशान्तकषायबिना शेष १३।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	१४८ (नानाजीवोंकी अपेक्षा)
सासादन	३	१४५	०	३ (आहारकद्विक-तीर्थङ्कर)
मिश्र	१	१४७	०	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४८	२	२ (नरक व तिर्यञ्चायु)
देशसंयत	२	१४६	०	
प्रमत्त	२	१४६	०	
अप्रमत्त	२	१४६	८	८ (अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, दर्शनमोह ३, देवायु)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	क्षायिकसम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा उपशमश्रेणी चढ़ते हुए १३८ तथा उपशमसम्यग्दृष्टिके उपशमश्रेणी चढ़ते हुए १४६ प्रकृतिका सत्त्व है।
अनिवृत्तिकरण भाग १	१०	१३८	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार)
भाग २	२६	११२	८	(,, ,, ,, ,,)
भाग ३	३४	११४	१	(,, ,, ,, ,,)
भाग ४	३५	११३	१	(,, ,, ,, ,,)
भाग ५	३६	११२	६	(,, ,, ,, ,,)
भाग ६	४२	१०६	१	(,, ,, ,, ,,)
भाग ७	४३	१०५	१	(,, ,, ,, ,,)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग ८	४४	१०४	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार)
भाग ९	४५	१०३	१	(" " " ")
सूक्ष्मसाम्पराय	४६	१०२	१	(" " " ")
क्षीणकषाय	४७	१०१	१६	(" " " ")
सयोगकेवली	६३	८५	०	(" " " ")
अयोगकेवली द्विचरमसमय	६३	८५	७२	(" " " ")
अयोगकेवली चरमसमय	१३५	१३	१३	(" " " ")

आगे देवगतिमें सत्त्वादिका कथन करते हैं—

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ, सारोत्ति होदि तिरियाऊ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥३४८॥

अर्थ—देवगतिमें सामान्योक्त गुणस्थानवत् सत्त्वादिका कथन है, किन्तु नरकायुका सत्त्व नहीं होनेसे १४७ प्रकृतिका सत्त्व है तथा सहस्रारस्वर्गतक ही तिर्यंचायुका सत्त्व है आगे नहीं। भवनत्रिकके सभी देवोंमें तथा कल्पवासिनीदेवियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ—सौधर्मसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १२ स्वर्गोंमें १४७ प्रकृतियोंका सत्त्व है, क्योंकि तिर्यंचायुका सत्त्व सहस्रारस्वर्गतक ही है। गुणस्थानआदिके ४ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें "किण्ह दुगसुहतिलेस्सय वामेविणितित्थयरसत्तं" इसवचनसे तीर्थङ्कर-प्रकृतिके सत्त्व बिना १४६ प्रकृतिका सत्त्व, असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है। सासादनगुणस्थानमें असत्त्वप्रकृति आहारकद्विक और तीर्थङ्कर सत्त्वप्रकृति १४४, व्युच्छित्ति शून्य। मिश्रगुणस्थानमें असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृतिका, सत्त्व १४६ प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें असत्त्वका अभाव होनेसे सत्त्व १४७ प्रकृतिका। मिश्र और असंयतगुणस्थानमें सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौधर्मस्वर्गसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७, गुणस्थान आदिके चार।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१	१४६	०	१ (तीर्थङ्कर)
सासादन	३	१४४	०	३ (आहारकद्विक व तीर्थङ्कर)
मिश्र	१	१४६	०	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४७	०	

शेष आनतादि ४ स्वर्गोंमें और नवग्रैवेयकमें नरकायु तिर्यंचायुबिना सत्त्व १४६ प्रकृतिका है। गुणस्थान मिथ्यात्वादि ४ हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्व एक तीर्थङ्करप्रकृतिका, सत्त्व १४५ प्रकृतिका। सासादनगुणस्थानमें असत्त्व आहारकद्विक, तीर्थङ्करप्रकृतिका, सत्त्व १४३ प्रकृतिका। मिश्रगुणस्थानमें असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृतिका, सत्त्व १४५ प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है, सत्त्वप्रकृति १४६। यहां चारोंही गुणस्थानोंमें सत्त्वव्युच्छित्तिका अभाव है।

आनतादि ४ स्वर्ग तथा नवग्रैवेयकमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१	१४५	०	१ (तीर्थङ्कर)
सासादन	३	१४३	०	३ (तीर्थङ्कर व आहारकद्विक)
मिश्र	१	१४५	०	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४६	०	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नौअनुदिश, पञ्चअनुत्तरविमानोंमें नरकायु व तिर्यञ्चायुके बिना सत्त्वयोग्य प्रकृतियां १४६ हैं और गुणस्थान एक असंयत ही है।

सर्वभवनत्रिकदेव-देवियों व कल्पवासिनीदेवियोंके तीर्थङ्कर और नरकायुका सत्त्व नहीं होनेसे सत्त्वयोग्य प्रकृति १४६ हैं एवं गुणस्थान ४ हैं। मिथ्यात्व-मिश्र और असंयतगुणस्थानमें असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्तिका सर्वथा अभाव है, किन्तु सासादनगुणस्थानमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व १४४ प्रकृतियोंका, सत्त्वव्युच्छित्तिका यहां भी अभाव है।

भवनत्रिकदेव-देवियों और कल्पवासिनीदेवियोंमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४६	०	
सासादन	२	१४४	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४६	०	
असंयत	०	१४६	०	

आगे इन्द्रिय और कायमार्गणामें सत्त्वादिका कथन करते हैं—

ओघं पंचक्खतसे, सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा।
तेउदुगे ण णराऊ, सव्वत्थुव्वेल्लणावि हवे ॥३४६॥

अर्थ—पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायमें सामान्यसे गुणस्थानवत् ही सत्त्वादिका कथन है, सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८ हैं। शेष एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्त तथा पृथ्वीसे वनस्पतिकायपर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्चके समान १४५ प्रकृतियोंकी सत्ता है, किन्तु तेजकाय और वायुकायमें मनुष्यायुका सत्त्व नहीं है अतः इन दोनोंके १४४ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। इन्द्रिय और कायमार्गणामें सर्वत्र प्रकृतियोंकी उद्वेलना भी होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—इन्द्रिय और कायमार्गणामें पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायमार्गणामें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान १४ हैं। सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना। अवशेष एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियमार्गणामें एवं पृथ्वीकाय, जलकाय, और वनस्पतिकायमार्गणामें लब्ध्यपर्याप्तकवत् तीर्थङ्कर, नरकायु और देवायुबिना सत्त्व-प्रकृति १४५ हैं और गुणस्थान दो हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है, सत्त्व १४५ प्रकृतियोंका सासादनगुणस्थानमें असत्त्व आहारकद्विकका, सत्त्व १४३ प्रकृतिका। तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यायुका भी सत्त्व नहीं होनेसे सत्त्वप्रकृति १४४ हैं। गुणस्थान एक मिथ्यात्व है।

पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायमार्गणामें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान १४।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
सासादन	३	१४५	०	(,, ,, ,, ,,)
मिश्र	१	१४७	०	(,, ,, ,, ,,)
असंयत	०	१४८	०	(,, ,, ,, ,,)
देशसंयत	१	१४७	१	(,, ,, ,, ,,)
प्रमत्त	२	१४६	०	(,, ,, ,, ,,)
अप्रमत्त	२	१४६	८	(,, ,, ,, ,,)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	(,, ,, ,, ,,)
अनिवृत्तिकरण भाग १	१०	१३८	१६	(,, ,, ,, ,,)
भाग २	२६	१२२	८	(,, ,, ,, ,,)
भाग ३	३४	११४	१	(,, ,, ,, ,,)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग ४	३५	११३	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके समान)
भाग ५	३६	११२	६	(„ „ „ „)
भाग ६	४२	१०६	१	(„ „ „ „)
भाग ७	४३	१०५		(„ „ „ „)
भाग ८	४४	१०४	१	(„ „ „ „)
भाग ९	४५	१०३	१	(„ „ „ „)
सूक्ष्मसाम्पराय	४६	१०२	१	(„ „ „ „)
उपशान्त कषाय	२ १०	१४६ १३८	० ०	(उपशमसम्यक्त्वसहित उपशमश्रेणीकी अपेक्षा) (क्षायिक „ „ „)
क्षीणकषाय	४७	१०१	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके समान)
सयोगकेवली	६३	८५	०	(„ „ „ „)
अयोगकेवली द्विचरम समय	६३	८५	७२	(„ „ „ „)
अयोगकेवली चरम समय	१३५	१३	१३	(„ „ „ „)

एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पृथ्वी-जल-वनस्पतिकायमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति सम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५, गुणस्थान आदिके २।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४५	०	
सासादन	२	१४३	०	२ (आहारकद्विक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शङ्का—उद्वेलना किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसप्रकार रस्सीको बल देकर बटा था, पुनः बटको खोल दिया उसीप्रकार जिनप्रकृतियोंका बन्ध किया था पश्चात् उसको उद्वेलनाभागहारसे अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप प्राप्त कराकर नाशकरना उद्वेलना कहलाती है।

अब उद्वेलनारूप प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

हारदु सम्मं मिस्सं, सुरदुग णारयचउक्कमणुकमसो।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ॥३५०॥

अर्थ—आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये १३ प्रकृतियां उद्वेलनप्रकृतियां हैं।

अथानन्तर उद्वेलनप्रकृतियोंके स्वामी कहते हैं—

चदुगदिमिच्छे चउरो, इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं, सपदे उप्पण्ण ठाणेवि ॥३५१॥

अर्थ—चारोंगतिवाले मिथ्यादृष्टिजीवोंके चारप्रकृतियां, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रियजीवोंके ६ प्रकृतियां और तेजकाय व वायुकायमें तीनप्रकृतियां उद्वेलनयोग्य हैं तथा अपने स्थानमें या उत्पन्नस्थानमें कथंचित् सत्त्व है और कथंचित् सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ—तीर्थङ्कर, नरकायु व देवायुकी सत्ता जिसके नहीं है ऐसे चतुर्गतिवाले संक्लेशपरिणामी मिथ्यादृष्टिजीवके उद्वेलना हुए बिना सत्त्वतो १४५ प्रकृतिका है तथा आहारकद्विककी उद्वेलना होनेपर १४३ प्रकृति का सत्त्व[1], सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर १४२ प्रकृतिका सत्त्व, मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) की उद्वेलना होनेपर १४१ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। इसप्रकार स्वस्थानोंमें सत्त्व जानना

१. असंयत, संयतावस्थाको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तमें आहारकद्विककी उद्वेलना प्रारम्भ करता है। जबतक वह असंयत रहता है तबतक वह उद्वेलना करता है।

(ध० पु० १६ पृ० ४१८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा उत्पन्नस्थानमें एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पृथ्वी-जल और वनस्पति-कायमें पूर्वोक्तप्रकारसे १४५-१४३-१४२-१४१ का सत्त्व है तथा देवगति व देवगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेपर स्वस्थानमें इन एकेन्द्रियादिके १३९ प्रकृतिका सत्त्व है और नरकद्विक-वैक्रियिकद्विक अर्थात् इन चारकी उद्वेलना होनेपर १३५ प्रकृतिका सत्त्व है एवं उत्पन्नस्थानमें तेजकाय व वायुकायमें मनुष्यआयुका भी सत्त्व नहीं है। अतः उद्वेलना हुए बिना सत्त्व १४४ प्रकृतिका है तथा आहारकद्विककी उद्वेलना होनेपर क्रमसे १४२-१४१-१४० प्रकृतिका सत्त्व, देवगति व देवगत्यानुपूर्वीकी उद्वेलना होनेसे १३८ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, नारकचतुष्क (नरकगति-नरक-गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग) की उद्वेलना होनेसे १३४ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, तथा स्वस्थानमें तेजकाय, वायुकायके उच्चगोत्रकी उद्वेलना होने-पर सत्त्व १३३ प्रकृतिका है एवं मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर सत्त्व १३१ प्रकृतिका है। ये अन्तिम दो सत्त्व (१३३–१३१ का) उत्पन्न स्थानमें एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायमें भी जानना। यहां पूर्वपर्यायमें अथवा उद्वेलनाके बिना जो सत्त्व है उसके साथ उत्तरपर्यायमें उत्पन्न होते समय उस उत्तरपर्यायमें जो सत्त्व है उसे उत्पन्नस्थान सत्त्व कहते हैं तथा उस विवक्षितपर्यायमें उत्पन्न होनेके बाद उद्वेलना होकर अथवा उद्वेलना हुए बिना नवीनबन्ध होकर जो सत्त्व होता है उसे स्वस्थानसत्त्व कहते हैं।

तेजकाय-वायुकाय जीवोंमें सत्त्वयोग्यप्रकृति १४४।

	०	०	०	०	०	०	०
	आ २	स १	मि १	सु २	ना ४	उ १	स २
१४४	१४२	१४१	१४०	१३८	१३४	१३३	१३१

उपर्युक्त सन्दृष्टिमें तेजकाय-वायुकाय जीवसम्बन्धी कथन किया गया है। तीन आयु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व न होनेसे यहां १४४ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। प्रथम पंक्तिमें शून्य स्थापित किया है उसका अभिप्राय उद्वेलनाका अभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताना है। द्वितीय पंक्तिमें उद्वेलन हुई प्रकृतियोंको बताया गया है। तृतीय पंक्ति १४४ सत्त्वयोग्य प्रकृतियोंमेंसे उद्वेलना होनेपर कितनी प्रकृतियां सत्त्व में रहती हैं यह दर्शाया गया है। द्वितीय और तृतीय पंक्तिका स्पष्टीकरण इसप्रकार है कि आहारकद्विक (आ २) की उद्वेलना होनेपर सत्त्व १४२ प्रकृतिका, सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना होने पर सत्त्व १४१ प्रकृतिका, मिश्रप्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर सत्त्व १४० प्रकृतिका, देवद्विक (सु २) की उद्वेलना होनेपर १३८ प्रकृतिका सत्त्व, नारकचतुष्क (ना ४) अर्थात् नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्गकी उद्वेलना होनेपर सत्त्व १३४ प्रकृतिका, उच्चगोत्रकी उद्वेलना होनेपर सत्त्व १३३ प्रकृतिका, मनुष्यद्विक (म २) अर्थात् मनुष्यगति व मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी उद्वेलना होनेपर १३१ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है।

विकलत्रय तथा पृथ्वी-अप-वनस्पतिकायमें सत्त्वयोग्य १४५ प्रकृति—

ए	द्वि	त्रि	च	पृ	अ	व	१४५
०	०	०	०	०			
आ २	स १	मि १	सु २	नार ४			
१४३	१४२	१४१	१३९	१३५	१३३	१३१	

उपर्युक्त सन्दृष्टिमें प्रथमपंक्तिमें एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पृथ्वीकाय-अपकाय तथा वनस्पतिकायमें सत्त्वयोग्य देवायु-नरकायु व तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४५ प्रकृति है यह दर्शाया गया है। द्वितीयपंक्तिमें जो शून्य रखे गए हैं वे जिसके उद्वेलना नहीं हुई है वह दिखानेके लिये हैं। तृतीय पंक्तिमें उद्वेलन प्रकृतियोंके नाम बताए गए हैं तथा चतुर्थपंक्तिमें उद्वेलना प्रकृतियोंके बिना सत्त्वयोग्य प्रकृतियां कही गई हैं। इसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

आहारकद्विक की उद्वेलना होनेपर (१४५-२) १४३ का सत्त्व, सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर १४२ प्रकृतिका सत्त्व, मिश्रप्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर १४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिका सत्त्व, देवद्विक (सु २) की उद्वेलना होनेपर १३९ प्रकृतिका सत्त्व, नारक-चतुष्ककी उद्वेलना होनेपर सत्त्व १३५ प्रकृतिका, तेजकाय व वायुकायमें उच्चगोत्रकी उद्वेलना करके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेवालेके उच्चगोत्र व मनुष्यायुबिना सत्त्व १३३ प्रकृतिका, तेजकाय-वायुकायमें मनुष्यद्विककी उद्वेलना करके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होने वालोंके सत्त्व १३१ प्रकृतिका पाया जाता है।

अब योगमार्गणामें सत्त्वादिका कथन करते हैं—

पुणेकारसजोगे, साहारयमिस्सगेवि सगुणोघं ।
वेगुव्वियमिस्सेवि य, णवरि ण माणुसतिरिक्खाऊ ॥३५२॥

अर्थ—चारमनोयोग, चारवचनयोग तथा औदारिक-वैक्रियिक-आहारक और आहारकमिश्रकाययोगमें अपने-अपने गुणस्थानवत् सत्त्वादिका कथन जानना। तथैव वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें गुणस्थानके समान ही सत्त्व जानना, किन्तु विशेषता यह है कि यहां मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुकी सत्ता नहीं है, अतः सत्त्वप्रकृतियां १४६ ही हैं।

विशेषार्थ—चारमनोयोग, चारवचनयोग, औदारिककाययोगमें सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान १२ या १३ हैं। यहां सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना कुछ भी विशेषता नहीं है।

चारमनोयोग-चारवचनयोग-औदारिककाययोगमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान १२ या १३।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	
सासादन	३	१४५	०	३ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
मिश्र	१	१४७	०	१ (,, ,, ,, ,,)
असंयत	०	१४८	१	१ (नरकायु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयत	१	१४७	१	अस० १ (नरकायु) व्यु० १ (तिर्यञ्चायु)
प्रमत्तसंयत	२	१४६	०	२ (नरक व तिर्यञ्चायु)
अप्रमत्तसंयत	२	१४६	८	२ (,, ,,) ८ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण भाग १	१०	१३८	१६	१० व १६ (,, ,, ,, ,,)
भाग २	२६	१२२	८	२६ व ८ (,, ,, ,, ,,)
भाग ३	३४	११४	१	१ (नपुंसकवेद)
भाग ४	३५	११३	१	१ (स्त्रीवेद)
भाग ५	३६	११२	६	६ (हास्यादि नोकषाय)
भाग ६	४२	१०६	१	१ (पुरुषवेद)
भाग ७	४३	१०५	१	१ (सञ्ज्वलन क्रोध)
भाग ८	४४	१०४	१	१ (,, ,, मान)
भाग ९	४५	१०३	१	१ (,, ,, माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	४६	१०२	१	१ (,, ,, लोभ)
उपशान्त-कषाय १	२	१४६	०	२ (नरक व तिर्यञ्चायु) उपशमसम्यक्त्व-सहित उपशमश्रेणी की अपेक्षा
उपशान्त-कषाय २	१०	१३८	०	१० (८वें गुणस्थानवत्) क्षायिकसम्यक्त्व-सहित उपशमश्रेणी की अपेक्षा
क्षीणकषाय	४७	१०१	१६	४७ व १६ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	६३	८५	०	६३ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) यह गुणस्थान सत्य व अनुभय मनोयोग व वचनयोग में है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारक-आहारक मिश्रकाययोगमें नरकायु व तिर्यञ्चायुबिना शेष १४६ प्रकृतिका सत्त्व है और गुणस्थान एक प्रमत्त ही है।

वैक्रियिककाययोगमें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान ४ हैं। यहां मिथ्यात्व-गुणस्थानमें सत्त्वप्रकृति १४८, असत्त्वका अभाव है और सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करकी सत्तावाला तृतीयपृथ्वीपर्यन्त जाता है उसके अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मिथ्यात्व रहता है इसीलिए यहां १४८ प्रकृतिका सत्त्व कहा। सासादन-मिश्र और असंयत गुणस्थानमें गुणस्थानवत् सत्त्व-असत्त्वादिका कथन जानना।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें तिर्यञ्च व मनुष्यायुके बिना सत्त्वप्रकृत्ति १४६, गुणस्थान (१-२-४) ३ हैं। यहां मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थानमें सत्त्व १४६ प्रकृतिका तथा असत्त्व नहीं है। सासादनगुणस्थानमें आहारकद्विक, तीर्थङ्कर और नरकायुबिना सत्त्व १४२ प्रकृतिका है, क्योंकि इन चारप्रकृतियोंका यहां असत्त्व पाया जाता है।

औदारिकमिश्रकाययोगमें तथा कार्मणकाययोगमें सत्त्वादिका कथन करते हैं—

ओरालमिस्सजोगे, ओघं सुरणिरयआउगं णत्थि।
तम्मिस्सवामगे ण हि, तित्थं कम्मेवि सगुणोघं ॥३५३॥

अर्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें देवायु और नरकायुके बिना गुणस्थानोक्त सामान्यवत् सत्त्वप्रकृति १४६ हैं, गुणस्थान १-२-४-१३ ये चार हैं। यहां मिथ्यात्व-गुणस्थानमें "तम्मिस्से वामगे ण हि तित्थं" इस वचनसे असत्त्व एक तीर्थङ्करप्रकृतिका एवं सत्त्व १४५ प्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीनप्रकृतिका असत्त्व और १४३ प्रकृतिका सत्त्व। असंयतगुणस्थानमें असत्त्व नहीं होनेसे सत्त्वप्रकृति १४६ हैं। सयोगीगुणस्थानमें असत्त्व ६१ प्रकृतिका और सत्त्व ८५ प्रकृतिका है। यहां चारों ही गुणस्थानोंमें सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है।

कार्मणकाययोगमें चारों भुज्यमानआयु सम्भव हैं अतः सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान १-२-४-१३ ये चार हैं। यहां मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है अतः सत्त्व १४८ प्रकृतिका है, किन्तु सासादनगुणस्थानमें आहारकद्विक और तीर्थङ्कर एवं नरकायुका असत्त्व, सत्त्व १४४ प्रकृतिका। सयोगकेवलीगुण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानमें असत्त्व ६३ प्रकृतिका और सत्त्व ८५ प्रकृतिका है। यहां भी चारों गुणस्थानोंमें सत्त्वव्युच्छित्तिका अभाव है।

अथानन्तर वेदमार्गणासे आहारमार्गणापर्यन्त सत्त्वादिका कथन करते हैं—

वेदादाहारोत्ति य, सगुणोघं णवरि संढथीखवगे।
किण्हदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तं ॥३५४॥

अर्थ—वेदमार्गणासे आहारमार्गणापर्यंन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् सामान्यसे सत्त्व जानना, किन्तु विशेषता यह है कि क्षपकश्रेणीवाले नपुंसकवेदी और स्त्रीवेदीके तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्ता नहीं है। इसीप्रकार कृष्ण व नीललेश्यावाले मिथ्यादृष्टिके और पीत-पद्म-शुक्लरूप तीन शुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिजीवके भी तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ—वेदमार्गणामें पुरुषवेदीके सत्त्वप्रकृति १४८ और मिथ्यात्वसे सवेदअनिवृत्तिकरणपर्यन्त गुणस्थान ९ हैं। यहां सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार) जानना। नपुंसकवेदमें और स्त्रीवेदमें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान आदिके ९ किन्तु यहां **"णवरि संढथीखवगे"** इन वचनोंसे क्षपकश्रेणीमें तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व होने पर नपुंसक और स्त्रीवेदके उदयसे संक्लिष्टपरिणामीजीवके क्षपकश्रेणीमें आरोहणका अभाव है इसलिए क्षपकअपूर्वकरणादिगुणस्थानोंमें गुणस्थानोक्त सत्त्वप्रकृतियोंमें एक-एक प्रकृतिसे हीन सत्त्व जानना। शेष सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) जानना।

कषायमार्गणामें सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान क्रोध-मान-माया कषायमें तो मिथ्यात्वसे अनिवृत्तिकरणपर्यन्त ९ हैं, किन्तु लोभकषायमें सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त १० गुणस्थान हैं। सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार) जानना।

ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत और कुअवधि (विभङ्ग) ज्ञानमें सत्त्व १४८ प्रकृतिका, मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है, सत्त्वप्रकृति १४८ हैं। सासादनगुणस्थानमें असत्त्व आहारकद्विक व तीर्थङ्कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन ३ प्रकृतिका और सत्त्व १४५ प्रकृतिका । मति-श्रुत-अवधिज्ञानमें सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८, गुणस्थान असंयतसे लेकर क्षीणमोह पर्यन्त ९ हैं । सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार) जानना । मनःपर्ययज्ञानमें नरक और तिर्यञ्चायुके बिना सत्त्व १४६ प्रकृतिका है, गुणस्थान प्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त ७ हैं । यहां सत्त्व तो गुणस्थानवत् ही जानना, किन्तु असत्त्व गुणस्थानोक्त असत्त्वरूप प्रकृतियोंमें दो-दो प्रकृतिकम जानना । केवलज्ञानमें सत्त्वयोग्य प्रकृति ८५, गुणस्थान सयोगी-अयोगी ये दो हैं । यहां सत्त्व तो गुणस्थानवत् ही है, किन्तु असत्त्व सयोगी गुणस्थानमें नहीं है और अयोगीगुणस्थानके भी द्विचरमसमयपर्यन्त तो असत्त्व नहीं है किन्तु चरमसमयमें ७२ प्रकृतिका असत्त्व है ।

संयममार्गणामें सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें नरक-तिर्यञ्चायु बिना सत्त्वयोग्य प्रकृति १४६ गुणस्थान प्रमत्तादिचार हैं । यहां सत्त्वसम्बन्धी कथन तो गुणस्थानवत् है असत्त्व गुणस्थानोक्त प्रकृतियोंमेंसे दो-दो प्रकृति कम जानना । सो सर्वत्र नरक व तिर्यञ्चायु ये दो प्रकृतियां कम करना चाहिए ।

परिहारविशुद्धिसंयममें सत्त्व पूर्वोक्त १४६ प्रकृतिका, गुणस्थान प्रमत्त और अप्रमत्त ये दो हैं तथा क्षपक सूक्ष्मसाम्परायसंयममें सत्त्वप्रकृति १०२, गुणस्थान एक सूक्ष्मसाम्पराय । यथाख्यातसंयममें सत्त्वयोग्य प्रकृति १४६ गुणस्थान उपशान्तकषायादि चार हैं । उपशान्तकषायमें उपशम सम्यक्त्वसहित उपशम श्रेणी चढ़ते हुए १४६ प्रकृतिका सत्त्व है और क्षायिकसम्यक्त्व सहित उपशमश्रेणी चढ़ते हुए १३८ प्रकृतिका सत्त्व है । यहां दोनों स्थानोंपर असत्त्व क्रमसे २ व १० प्रकृतियोंका सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है । क्षीणकषाय गुणस्थानमें १०१ प्रकृतिका सत्त्व, ३७ प्रकृतिका असत्त्व और १६ प्रकृतिको सत्त्वसे व्युच्छित्ति । सयोगीगुणस्थानमें सत्त्व ८५ प्रकृतिका, असत्त्वप्रकृति ६३, सत्त्वसे व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य । अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयतक सत्त्वप्रकृति ८५, असत्त्वप्रकृति ६३, सत्त्वसे व्युच्छिन्न प्रकृति ७२ । अयोगीगुणस्थानके चरमसमयमें सत्त्वप्रकृति १३, असत्त्वप्रकृति १३५, सत्त्वसे व्युच्छिन्न प्रकृति १३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथाख्यातसंयममें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति सम्बन्धी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
उपशान्तकषाय	२	१४६	०	(उपशमसम्यक्त्वसहित उपशमश्रेण्यापेक्षा।)
उपशान्तकषाय	१०	१३८	०	द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न माननेवाले मतानुसार १४६ प्रकृतिकी सत्ता है। (क्षायिकसम्यक्त्वसहित उपशमश्रेण्यापेक्षा।)
क्षीणकषाय	३७	१०१	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	६३	८५	०	(,, ,, ,, ,,)
अयोगीद्विचरम समयपर्यन्त	६३	८५	७२	(,, ,, ,, ,,)
,, चरमसमयमें	१३५	१३	१३	(,, ,, ,, ,,)

देशसंयम (संयमासंयम) में नरकायुबिना सत्त्वयोग्य प्रकृति १४७ और गुणस्थान एक देशसंयतही है। असंयममें सत्त्वप्रकृति १४८ और गुणस्थान मिथ्यादृष्टि-आदि चार हैं। यहां दोनोंही संयमोंमें सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) जानना।

दर्शनमार्गणामें चक्षु-अचक्षुदर्शनमें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणकषायपर्यन्त १२ हैं। यहां सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिवत्) जानना। अवधिदर्शनमेंसत्त्वयोग्य प्रकृति १४८, गुणस्थान असंयतसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ९ हैं। यहां भी सत्त्वादिसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना। केवलदर्शनमें सर्वरचना केवलज्ञानवत् ही जानना।

लेश्यामार्गणामें कृष्ण और नील लेश्यामें सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान मिथ्यात्वादिचार। यहां "किण्ह दुगे बामे ण तित्थयरसत्तं" इस वचनसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीन अशुभ लेश्याओंमें तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ नहीं होता तथा जिसके नरकायुका बन्ध हो गया है वह भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरी-तीसरी पृथ्वीमें कापोत लेश्यासे ही गमन करता है अतः यहां तीर्थङ्करप्रकृतिका असत्त्व होनेसे १४७ प्रकृतिका सत्त्व है। सासादनआदि गुणस्थानोंमें रचना गुणस्थानवत् ही जानना।

कापोतलेश्यामें सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान आदिके चार। सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानोक्त ही जानना। तेज (पीत) और पद्मलेश्यामें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थानमिथ्यात्वसे अप्रमत्तपर्यन्त ७ हैं। यहां **"सुहतियलेस्सिय वामे वि ण तित्थयर सत्तं"** इस वचनसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावालाजीव जो कि नरक जानेके सम्मुख है उसके ही सम्यक्त्वकी विराधना होती है। तीनों शुभलेश्याओंमें सम्यक्त्वकी विराधना नहीं होती इसलिए तीर्थङ्करप्रकृतिका असत्त्व होनेसे यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें सत्त्व १४७ प्रकृतिका है। सासादनआदि गुणस्थानोंमें सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ को सन्दृष्टिवत्) जानना। शुक्ललेश्यामें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त १३। मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं होनेसे सत्त्व १४७ प्रकृतिका है। शेष सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार) जानना।

भव्यमार्गणामें सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८, गुणस्थान १४ हैं। यहां सत्त्वादि सम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ को सन्दृष्टिवत्) जानना।

आगे अभव्यमार्गणामें जो विशेषता है उसे कहते हैं—

अभव्वसिद्धे णत्थि हु, सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं।
आहारचउक्कस्सवि, असण्णिजीवे ण तित्थयरं ॥३५५॥

अर्थ—अभव्यमार्गणामें तीर्थङ्करप्रकृति, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, आहारकचतुष्क इन ७ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। असञ्ज्ञोजीवोंके तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ—अभव्यमार्गणामें तीर्थंकर, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, आहारकबन्धन और आहारकसङ्घात इन ७ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होनेसे सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१ हैं और गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है, क्योंकि अभव्यजीवके कभी भी सम्यग्दर्शनकी अभिव्यक्ति नहीं होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वमार्गणामें उपशमसम्यक्त्वमें सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान असंयतसे उपशान्तकषायपर्यन्त ८ हैं। यहां असंयतगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है, सत्त्वप्रकृति १४८। देशसंयतगुणस्थानमें असत्त्व १ नरकायुका, सत्त्व १४७ प्रकृतिका है। आगे प्रमत्तगुणस्थानसे उपशान्तमोहगुणस्थानपर्यन्त असत्त्व नरकायु और तिर्यञ्चायुका, सत्त्व १४६ प्रकृतिका। अन्य सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना।

उपशमसम्यक्त्वमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान ८।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	०	१४८	१	१ (नरकायु)
देशसंयत	१	१४७	१	१ (तिर्यञ्चायु)
प्रमत्त	२	१४६	०	
अप्रमत्त	२	१४६	०	
अपूर्वकरण	२	१४६	०	यह कथन उस मतकी अपेक्षा है जो द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका नियम स्वीकार नहीं करता है।
अनिवृत्तिकरण	२	१४६	०	
सूक्ष्मसाम्पराय	२	१४६	०	
उपशान्तकषाय	२	१४६	०	

वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्वमें सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त चार हैं। गुणस्थानोंमें सत्त्वादिका सर्वकथन गाथा ३४२ की सन्दृष्टिके अनुसार जानना।

क्षायिकसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय और दर्शनमोहनीयकी ३ इन सातप्रकृतिबिना सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१ हैं। गुणस्थान असंयतसे अयोगीपर्यन्त ११ हैं। यहां असंयतगुणस्थानमें असत्त्व नहीं है अतः सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१ हैं। नरकायु-तिर्यञ्चायुकी व्युच्छित्ति भी यहींपर हो जाती है। क्षायिकसम्यक्त्वी तिर्यञ्चके देश-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयतगुणस्थान नहीं हो सकता, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि भोगभूमिजतिर्यञ्चोंमें ही उत्पन्न होता है और भोगभूमिजजीवोंका नियत आहार होनेसे व्रत अर्थात् संयम नहीं हो सकता। अतः देशसंयतगुणस्थानमें असत्त्व दोप्रकृतिका, सत्त्व १३९ प्रकृतिका। प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें भी १३९ प्रकृतियोंका ही सत्त्व है। अपूर्वकरणगुणस्थानमें दोनों (उपशम-क्षपक) श्रेणीकी अपेक्षा सत्त्व १३८ प्रकृतिका है। आगे अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानोंमें गुणस्थानवत् ही सर्वकथन है।

क्षायिकसम्यक्त्वमें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१, गुणस्थान ११।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	०	१४१	२	२ (नरकायु-तिर्यञ्चायु)
देशसंयत	२	१३९	०	इस गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वी मनुष्य तो हो सकता है, किन्तु तिर्यञ्च नहीं हो सकता है।
प्रमत्त	२	१३९	०	
अप्रमत्त	२	१३९	१	१ (देवायु-क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा)
अपूर्वकरण	३	१३८	०	क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा पहले देवायुका बन्ध होनेसे कोई क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशम-श्रेणी चढ़ता हो तो उसके १३९ प्रकृतिका सत्त्व रह सकता है, यदि देवायुका बन्ध नहीं हुआ हो तो १३८ प्रकृतिका सत्त्व रहेगा।
अनिवृत्तिकरण से अयोगी-पर्यन्त	—	—	—	यहां सर्वकथन गुणस्थानवत् गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार जानना।

सम्यग्मिथ्यात्वमें तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४७ प्रकृतिका सत्त्व है। गुणस्थान एक सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र)। सासादनसम्यक्त्वमार्गणामें तीर्थङ्कर और आहारकद्विक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिना सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५ है। गुणस्थान एक सासादन ही है। मिथ्यात्वमें सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८ हैं तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

सञ्ज्ञीमार्गणामें सत्त्वप्रकृति १४८ हैं तथा गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणकषायपर्यन्त १२ हैं। सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना। असञ्ज्ञीमार्गणामें "ण तित्थयरं" इस वचनसे तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व नहीं होनेसे १४७ प्रकृतिका सत्त्व है। गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन ये दो ही हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें असत्त्व नहीं होनेसे सत्त्वप्रकृति १४७ हैं। सासादनगुणस्थानमें आहारकद्विकका सत्त्व नहीं होनेसे १४५ प्रकृतिका ही सत्त्व है। आहारमार्गणामें सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त १३ हैं, सत्त्वादिका सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना।

अनाहारमार्गणामें सत्त्वादिका कथन करके सत्त्वअधिकारको पूर्ण करते हैं—

कम्मेवाणाहारे, पयडीणं सत्तमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३५६॥

अर्थ—अनाहारमार्गणामें कार्मणकाययोगके समान सत्त्वादिका कथन जानना। इसप्रकार बलदेव और माधवचन्द्रसे अर्चित ऐसे नेमिचन्द्राचार्यने कहा है।

विशेषार्थ—अनाहारमार्गणामें कार्मणकाययोगवत् सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८ हैं। गुणस्थान १-२-४-१३-१४ ये पांच हैं। यहां मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और सयोगीगुणस्थानमें सर्वरचना कार्मणकाययोगवत् जानना, किन्तु अयोगीगुणस्थानमें गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) कथन जानना।

अनाहारकमार्गणामें असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि—
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान ५।

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	
सासादन	४	१४४	०	४ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और नरकायु)
असंयत	०	१४८	६३	६३ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिमें १३वें गुणस्थानके अनुसार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सयोगी	६३	८५	०	
अयोगीद्विचरम समय पर्यन्त	६३	८५	७२	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगीके चरमसमयमें	१३५	१३	१३	(„ „ „ „)

नोट—संस्कृत टीकाकारने गाथाका अर्थ करते हुए उत्तरार्धके अर्थमें "एकबार तो बलभद्र, माधव (नारायण) से अर्चित श्री 'नेमि' तीर्थङ्करदेवने तथा दूसरी बार बलदेव और माधवचन्द्रत्रैविद्यदेव नामा अपने भाईयोंसे पूजित सिद्धान्तचक्रवर्ती श्रीनेमिचन्द्राचार्यने मार्गणास्थानमें कर्मप्रकृतियोंका सत्त्व सम्बन्धी कथन किया है ।" ऐसा कहा है ।

अब बन्ध-उदय-सत्त्वाधिकारको पूर्ण करते हुए अन्तिममंगलाचरण करते हैं—

सो मे तिहुवणमहिदो, सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं, बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥३५७॥

अर्थ—जो तीनलोकसे पूजित, सिद्ध, बुद्ध, कर्मरूपी अञ्जनसे रहित और नित्य हैं वे मुझको ज्ञानीजनोंसे प्रार्थना करनेयोग्य ऐसे परम-उत्कृष्ट शुद्धज्ञान (केवलज्ञान) का लाभ देवें ।

इसप्रकार नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीविरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामा हिन्दीटीकामें 'बन्ध-उदय-सत्त्व' नामक द्वितीय अधिकारपूर्ण हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ सत्त्वभंगाधिकार ।

अब नेमिचन्द्राचार्य मंगलाचरणपूर्वक कर्मप्रकृतियोंके भङ्गसहित सत्त्वस्थानोंको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं---

णमिऊण वड्ढमाणं, कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ।
पयडीण सत्तठाणं, ओघे भंगे समं वोच्छं ।।३५८।।

गाथा---(मैं ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र आचार्य) स्वर्णके समान शरीरवर्णवाले, इन्द्रद्वारा पूजित वर्धमानतीर्थङ्करदेवको नमस्कारकरके गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके भङ्ग-सहित सत्त्व स्थानोंको कहूँगा ।

विशेषार्थ---एकजीवके एककालमें जितनी कर्मप्रकृतियोंकी सत्ता पाई जावे उनके समूहका नाम स्थान है । इसप्रकार अन्य-अन्य संख्याको लिये हुए कर्मप्रकृतियोंकी जो सत्ता पायी जावे वह अन्य-अन्य सत्त्वस्थान कहलाते हैं तथा उस सत्त्वस्थानकी समान संख्यारूप कर्मप्रकृतियोंमें संख्या तो समान ही रहे, किन्तु प्रकृतियां बदल जांय उसे भङ्ग कहते हैं । जैसे---किसी जीवके १४६ प्रकृतिकी सत्ता है और किसीके १४५ प्रकृतिकी सत्ता हो तो ये स्थान तो दो हुए, किन्तु उस एकस्थानकी संख्यामें जैसे कि १४५ प्रकृतिकी सत्तावाले स्थानमें किसीके तो मनुष्यायु तथा देवायुसहित १४५ प्रकृतिकी सत्ता है, तथा किसीके तिर्यञ्चायु और नरकायु की सत्तासहित १४५ प्रकृतिकी सत्ता है । अतः यहांपर स्थान तो एकही रहा, क्योंकि संख्या तो एक है, किन्तु प्रकृतियोंके -बदलनेसे भङ्ग दो हुए । इसीप्रकार सर्वत्र स्थान और भङ्ग समझना ।

अथानन्तर गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान और भङ्गोके कहनेका विधान बताते हैं---

आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं ।
भेदेण य भंगसमं परूवणं होदि बिदियम्हि ।।३५९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यहां प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान और भङ्गोका वर्णन दोप्रकारसे समझना। आयुके बन्ध और अबन्धके भेदकी अपेक्षा नहीं करके प्रथमवर्णन तथा आयुबन्धके भेद-सहित उसकी अपेक्षा रखकर दूसरा वर्णन है।

अब इन दोनों पक्षोंमें से पहले सामान्यसे प्रथमपक्षके अनुसार सत्ताका विधान करते हैं—

सव्वं तिगेग सव्वं चेगं छसु दोण्णि चउसु छद्दस य दुगे।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पडि सत्तं जाणे ॥३६०॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानोंमें से क्रमसे सर्व, तीनकम, एककम, सर्व, एककम आगे ६ गुणस्थानोंमें दोकम, पुनश्च उपशमश्रेणोके चारगुणस्थानोंमें छहकम, क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा दो गुणस्थानोंमें १० कम। आगेके दोगुणस्थानोंमें क्रमसे ४६ व ४७ कम तथा ६३ कम प्रकृतिरूप सत्त्व जानना तथा 'च' शब्दसे अयोगकेवलीके १३५ कम प्रकृतिका सत्त्व जानना।

सयोगकेवलीगुणस्थानमें जिन ६३ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं रहता उनके नाम कहते हैं—

घाई तियउज्जोवं थावरवियलं च ताव एइंदी।
णिरय-तिरिक्ख दु सुहुमं साहरणे होइ तेसट्ठी ॥३६०क॥

अर्थ—चारघातियाकर्मोंकी ४७ प्रकृतियां, मनुष्यायुबिना शेष तीनआयु, उद्योत, स्थावर, विकलत्रय, (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) आतप, एकेन्द्रियजाति, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म और साधारण। ये ६३ प्रकृतियां हैं, जिनका कि सत्त्व केवलीभगवानके नहीं पाया जाता है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें १४८ प्रकृतिका सत्त्व, सासादनगुणस्थानमें तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीनबिना १४५ प्रकृतिका, मिश्रगुणस्थानमें तीर्थङ्कर-प्रकृतिबिना १४७ प्रकृतिका, असंयतगुणस्थानमें १४८ प्रकृतिका, देशसंयतगुणस्थानमें नरकायुबिना १४७ प्रकृतिका, प्रमत्तादि छहगुणस्थानोंमें नरकायु और तिर्यञ्चायुके बिना १४६ प्रकृतिका सत्त्व है, किन्तु उपशमश्रेणीके अपूर्वकरणादि चारगुणस्थानोंमें पूर्वोक्त नरक-तिर्यञ्चआयु तथा अनन्तानुबन्धी ४ कषायके बिना १४२ प्रकृतिका सत्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है । क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा अपूर्वकरणादि दो गुणस्थानोंमें नरकायु, तिर्यञ्चायु, देवायु, दर्शनमोहकी तीन और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन १० प्रकृतिबिना १३८ प्रकृतिका सत्त्व है । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति (१६+८+१+१+६+१+१+१+१) ३६ तथा पूर्वोक्त नरकायु आदि १० (३६+१०) इन ४६ प्रकृतिबिना सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें १०२ प्रकृतिका सत्त्व है । क्षीणकषायगुणस्थानमें लोभसहित ४७ प्रकृतिबिना १०१ प्रकृतिका सत्त्व है । सयोगी और अयोगीगुणस्थानमें घातिया-कर्मकी ४७ प्रकृति, नामकर्म १३ और मनुष्यायुबिना शेष तीनआयु इन ६३ प्रकृति-बिना ८५ प्रकृतिका सत्त्व है । 'चकार' से अयोगीगुणस्थानके अन्तसमयमें १३५ प्रकृति-बिना १३ प्रकृतिका सत्त्व है । इसप्रकार गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका सत्त्व जानना ।

आगे जिनगुणस्थानोंमें जो प्रकृतियां कम की गई हैं उनके नाम कहते हैं—

सासणमिस्से देसे, संजददुग सामगेसु णत्थी य ।
तित्थाहारं तित्थं, णिरयाऊ णिरयतिरिय आउअणं ॥३६१॥

अर्थ—सासादनगुणस्थानमें तीर्थङ्कर और आहारकद्विक, मिश्रगुणस्थानमें तीर्थङ्कर, देशसंयतगुणस्थानमें नरकायु, प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें नरकायु-तिर्यञ्चायु और उपशमश्रेणीमें नरकायु, तिर्यञ्चायु अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये ६ तथा 'च' कारसे क्षपकश्रेणीमें 'दस ये दुगे' इत्यादि गाथा ३६० के पूर्वार्धके इन वचनानुसार कम की हुई प्रकृतियां जानना ।

गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थानगत सत्त्व-असत्त्वप्रकृतिसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	
सासादन	३	१४५	३ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक)
मिश्र	१	१४७	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४८	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयत	१	१४७	१ (नरकायु)
प्रमत्त	२	१४६	२ (नरक–तिर्यञ्चायु)
अप्रमत्त	२	१४६	२ („ „)
१. अपूर्वकरण सामान्यसे उपशम-श्रेणीकी अपेक्षा	२	१४६	२ (नरक-तिर्यञ्चायु) उस मतके अनुसार जो कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धी की विसंयोजनाका नियम स्वीकार नहीं करता ।
२. अनन्तानुबंधीके विसंयोजकके उपशम-श्रेणीकी अपेक्षा	६	१४२	६ (नरक-तिर्यंचायु+४ अनन्तानुबन्धी) उपशमश्रेणी चढ़नेके पहले चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो जाती है ।
३. क्षायिकसम्यग्दृष्टि (उपशमश्रेणी आरोहक) की अपेक्षा	९	१३९	९ (नरक-तिर्यंचायु, दर्शनमोहनीयकी ३, अनन्तानुबन्धी ४)
४. क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा	१०	१३८	१० (नरक-तिर्यंच-देवायु, दर्शनमोहनीय ३, अनन्तानुबन्धी ४)
अनिवृत्तिकरण			
१ सामान्यसे उपशम श्रेणी की अपेक्षा	२	१४६	अपूर्वकरण गुणस्थानवत् ।
२ उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	६	१४२	
३ „ „ „	९	१३९	
४ „ „ „	१०	१३८	
सूक्ष्मसांपराय			
१ उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	२	१४६	अपूर्वकरण गुणस्थानवत् ।
२ „ „ „	६	१४२	
३ „ „ „	९	१३९	
४ „ „	१०	१३८	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशान्तकषाय			
१ ८वें गुणस्थानवत्	२	१४६	अपूर्वकरण गुणस्थानवत् ।
२ " " "	६	१४२	
३ " " "	९	१३९	
क्षीणमोह	४७	१०१	
सयोगकेवली	६३	८५	
अयोगकेवली			
१. द्विचरमसमयपर्यन्त	६३	८५	
२. चरमसमयमें	१३५	१३	

गुणस्थानोंमें आयुके बन्ध-अबन्धका भेदपूर्वक वर्णन तो आगे करेंगे, यहां अब सत्त्वस्थान-संख्याको दो गाथाओंमें कहते हैं--

विगुणणव चारि अट्ठं, मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं ।
तिय उवसमगे संते, चउवीसा होंति पत्तेयं ॥३६२॥
चउछक्कदि चउअट्ठं, चउछक्क य होंति सत्तठाणाणि ।
आउगबंधाबंधे, अजोगि अंते तदो भंगा ॥३६३॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि तीनगुणस्थानोंमें क्रमशः १८-४ व ८ सत्त्वस्थान हैं । असंयतादि चारगुणस्थानोंमें ४०-४० सत्त्वस्थान, अपूर्वकरणादि तीन उपशमश्रेणीवाले गुणस्थानोंमें तथा उपशान्तकषायगुणस्थानमें प्रत्येकके २४-२४ सत्त्वस्थान, क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा अपूर्वकरणसे अयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे ४-३६-४-८-४ और ६ सत्त्व-स्थान हैं ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणीसम्बन्धी अपूर्वकरणगुणस्थानमें ४, अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानमें ३६, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें ४, क्षीणकषायगुणस्थानमें ८, सयोगकेवली-गुणस्थानमें ४ और अयोगकेवलीगुणस्थान्में ६ सत्त्वस्थान जानना । इसप्रकार आयु-कर्मके बन्ध और अबन्धकी विवक्षामें अयोगीगुणस्थानपर्यन्त सत्त्वस्थान कहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तित्थसमे णिधिमिच्छेब द्धाउसि माणुसीगदि एग ।
मणुवणिरयाऊ भंगुप्पज्जत्ते भुज्जमाण णिरयाऊ ॥३६३क॥

अर्थ—तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित बद्धायुष्क मिथ्यादृष्टिके मनुष्यगतिमें मनुष्यायु-नरकायुका एक भङ्ग होता है। मरकर उत्पन्न होनेपर भुज्यमाननरकायुका एक भङ्ग होता है।

विशेषार्थ—तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित मिथ्यादृष्टिके दो ही गति सम्भव हैं १. मनुष्यगति २. नरकगति। जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध कर लिया हो उसी मनुष्यके मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व हो सकता है, क्योंकि द्वितीय या तृतीय नरकमें उत्पन्न होनेसे एक अन्तर्मुहूर्तपूर्व वह मनुष्य मिथ्यात्वमें आ जावेगा। अतः मनुष्यगतिमें एक बद्धायुष्कसम्बन्धी भङ्ग ही सम्भव नहीं है। नरकमें उत्पन्न होनेके एक अन्तर्मुहूर्ततक वह मिथ्यादृष्टि रहता है उसके पश्चात् सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करने लगता है। नरकगतिमें परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध मरणसे छहमाह पूर्व होता है।

अब उपर्युक्त सत्त्वस्थानोंमें भङ्गोंकी संख्या कहते हैं—

पण्णास बार छक्कदि, वीससयं अट्ठदाल दुसु दालं।
अडवीसा बासट्ठी, अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठ ॥३६४॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि सातगुणस्थानोंमें तथा उपशम-क्षपकश्रेणीसंयुक्त ८-९-१० वें गुणस्थानमें एवं उपशान्तकषायसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त अठारह आदि सत्त्व-स्थानोंमें क्रमसे ५०-१२-३६-१२०-४८-४०-४०-२८-६२-२८-२४-८-४ और ८ भङ्ग जानना।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानके १८ सत्त्वस्थानोंमें ५०, सासादनगुणस्थानके ४ सत्त्वस्थानोंमें १२, मिश्रगुणस्थानके ८ सत्त्वस्थानोंमें ३६, असंयतगुणस्थानसम्बन्धी ४० सत्त्वस्थानोंमें १२० भङ्ग, देशसंयतगुणस्थानके ४० सत्त्वस्थानोंके ४८ भङ्ग प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानके ४०-४० स्थानोंके ४०-४०- भङ्ग, उपशम-क्षपकश्रेणीसम्बन्धी अपूर्वकरणगुणस्थानके (२४+४) २८ सत्त्वस्थानोंमें २८ भंग, उपशम-क्षपकश्रेणी-सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके (२४+३६) ६० सत्त्वस्थानोंमें ६२ भङ्ग, उपशम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षपकश्रेणीसम्बन्धी सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके (२४+४) २८ सत्त्वस्थानोंमें २८ भङ्ग, उपशान्तकषायगुणस्थानमें २४ सत्त्वस्थानसम्बन्धी २४ भङ्ग, क्षीणकषायगुणस्थानमें ८ सत्त्वस्थानोंके ८ भङ्ग हैं, सयोगकेवलीगुणस्थानके चारसत्त्वस्थानोंमें ४ भङ्ग, तथा अयोगकेवलीगुणस्थानके ६ सत्त्वस्थानोंमें ८ भङ्ग हैं।

गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान और भङ्गोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मिथ्या.	सासा.	मिश्र	असं.	देशसं.	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्व.	अनिवृ.	सूक्ष्म सां.	उपशां.	क्षीण.	सयो.	अयो.
सत्त्व स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	२४ उप. ४ क्षप.	२४ उप. ३६ क्षप	२४ उप. ४ क्षप.	२४	८	४	६
भंग	५०	१२	३६	१२०	४८	४०	४०	२८	६२	२८	२४	८	४	८

णिरियादिसु भुज्जेगं, बंधुदगं वारि बारि दोण्णेत्थ।
पुणरुत्तसमविहीणा, आउगभंगा पज्जेव ॥३६४क॥
णिरयतिररयाणु, णेरइयणहाउ तिरियमणुय आऊ य।
तेरिच्छिदेवाऊ, माणुसदेवाउ एगेगे ॥३६४ख॥

अर्थ—नरकादि चारआयुमें से भुज्यमान एकआयु तथा दूसरीआयुका बन्ध हो जानेपर १२ भङ्ग होते हैं (नरकायु-मनुष्यायु, नरकायु-तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चायु-नरकायु, तिर्यञ्चायु-तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चायु-मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु-देवायु, मनुष्यायु-नरकायु, मनुष्यायु-तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु-मनुष्यायु, मनुष्यायु-देवायु, देवायु-तिर्यञ्चायु और देवायु-मनुष्यायु) इन १२ भङ्गोंमें से पुनरुक्त (तिर्यञ्चायु-नरकायु, मनुष्यायु-नरकायु, मनुष्यायु-तिर्यञ्चायु, देवायु-तिर्यञ्चायु, देवायु-मनुष्यायु) पांचभङ्गोंको तथा दो समभङ्गों (तिर्यञ्चायु-तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु-मनुष्यायु) को कम करदेनेपर शेष पांचभङ्ग बद्धचमानआयुकी अपेक्षा होते हैं। जो निम्नप्रकार हैं—

१. नरकायु—तिर्यञ्चायु २. नरकायु—मनुष्यायु ३. तिर्यञ्चायु—मनुष्यायु ४. तिर्यञ्चायु—देवायु ५. मनुष्यायु—देवायु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयुके बन्ध-अबन्धकी अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थानके १८ सत्त्वस्थानोंमें कर्मप्रकृतियोंकी संख्या बताते हैं—

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं।
हीणा सव्वे सत्ता, मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं ॥३६५॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती बद्धायुष्कके सत्त्वरूप सर्वप्रकृतियोंमेंसे २-३-६-७-८-९-११-१७-१९ और २१ प्रकृतियां कम करनेसे १० सत्त्वस्थान हुए तथा अबद्धायुष्कके ८ सत्त्वस्थानपर्यन्त तो इनमेंसे एक-एकप्रकृति और कमकरना एवं शेष दोस्थान पूर्वोक्त ही जानना। इसप्रकार अबद्धायुष्कके भी १० स्थान हैं और दोनों (बद्धायुष्क-अबद्धायुष्क) के मिलकर २० स्थानोंमें नवमां-दशवां तथा १९-२०वां स्थान समान होने से दो स्थान कम करनेसे शेष १८ सत्त्वस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानके कहे हैं।

विशेषार्थ—जिसके आगामीआयुका बन्ध हो गया है उसे बद्धायुष्क तथा जिसके आगामी आयुका बन्ध नहीं हुआ उसे अबद्धायुष्क कहते हैं।

मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानोंमें जो प्रकृतियां कमकी गई हैं उनके नाम कहते हैं—

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं।
देवतिरियाउसहिया, हारचउक्कं तु छच्चेदे ॥३६६॥
आउदुगहारतित्थं, सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं।
णारयछक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं ॥३६७॥जुम्मं॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानोंमें कमकी गईं प्रकृतियां क्रमसे तिर्यञ्चायु देवायु। भुज्यमान-बध्यमान आयुसे रहित कोई भी दोआयु, तीर्थङ्करप्रकृति। देवायु, तिर्यञ्चायु और आहारकचतुष्क। कोई भी दोआयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क। कोई भी दोआयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्वप्रकृति। इन्हीं ८ प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व मिलानेपर ९। इन्हीं ९ प्रकृतियोंमें देवद्विक मिलानेपर ११ प्रकृति। इन ११ प्रकृतियोंमें नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरसंघात ये ६ प्रकृतियां मिलावेपर १७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन १७ प्रकृतियोंमें मनुष्यायु और उच्चगोत्र मिलानेपर १९ प्रकृति तथा इन्हीं १९ प्रकृतियोंमें मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी मिलानेपर २१ प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—यहां तिर्यञ्च व देवायुके बिना १४६ प्रकृतिकी सत्तासे युक्त बद्धायुष्कका एक सत्त्वस्थान है तथा भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु व तीर्थङ्करप्रकृतिरहित १४५ प्रकृतिकी सत्तायुक्त एक सत्त्वस्थान; देवायु-तिर्यञ्चायु, आहारकचतुष्क, इन ६ प्रकृतिबिना १४२ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान; दो आयु, आहारकचतुष्क, और तीर्थङ्कर इन सात प्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिसे युक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ७ और एक सम्यक्त्व, इन ८ प्रकृतिबिना १४० प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ८ और सम्यग्मिथ्यात्व इन ९ प्रकृतिबिना १३९ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ९ और देवगति-देवगत्यानुपूर्वी इन ११ प्रकृतिबिना १३७ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ११ और नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिक अंगोपांग, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिकसङ्घात इन १७ प्रकृतियोंकेबिना १३१ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त १७ और मनुष्यायु, उच्चगोत्र इन १९ प्रकृतिबिना १२९ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त १९ और मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन २१ प्रकृतिबिना १२७ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। इसप्रकार ये १० सत्त्वस्थान बद्धायुष्कके जानने चाहिए।

अबद्धायुष्कके भुज्यमानआयुकी सत्ता पाई जाती है किन्तु बध्यमान आयुकी सत्ता नहीं पाई जाती है अतः पूर्वोक्तसत्त्वसे एक-एक बध्यमानआयुसे रहित अबद्धायुष्कके १० सत्त्वस्थान जानना। इसप्रकार बद्धायुष्क व अबद्धायुष्कसम्बन्धी (१०+१०) २० सत्त्वस्थानोंमें यहांपर पुनरुक्त दोस्थानोंसे रहित मिथ्यात्वगुणस्थानके १८ सत्त्वस्थान हैं।

यहां पहले जिसके नरकायुका बन्ध हुआ ऐसा मिथ्यादृष्टि मनुष्य वेदकसम्यक्त्वको ग्रहणकरके असंयतगुणस्थानवर्ती होकर केवली अथवा श्रुतकेवलीके निकट सोलहकारण भावनाकी आराधना करके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करता है इसप्रकार तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तासहित मरणके समय भुज्यमानमनुष्यायुका अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर मिथ्यादृष्टि हुआ उससमय उस जीवके तिर्यञ्चायु और देवायुके सत्त्वका अभाव है अतः १४६ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान पाया जाता है, यहां भंगभी एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही पाया जाता है। जिनके बध्यमानतिर्यञ्च व मनुष्यायु हो और भुज्यमानमनुष्यायु हो उन असंयतसम्यग्दृष्टिके तीर्थङ्करप्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। बध्यमान-देवायु एवं भुज्यमानमनुष्यायुसहित असंयतादि चारगुणस्थानवर्तीजीव सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वमें नहीं जाते तथा भुज्यमाननरकायु बध्यमानमनुष्यायु इसप्रकारका एकभंग नरकायुके ६ माह शेष रहनेपर होता है वहां मिथ्यात्वपना नहीं होता अतः भुज्यमानमनुष्यायु, बध्यमानरकायु इसप्रकार एकही भंग होता है, अन्यप्रकार प्रकृतियोंके बदलनेसे १४६ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं पाया जाता है तथा अबद्धायुष्कके भुज्यमान एक आयुके सत्त्वबिना अन्य आयुका सत्त्व सम्भव नहीं हो सकता अतः देवायु, मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु बिना १४५ प्रकृतिका सत्त्वरूप स्थान होता है वहां भी भुज्यमान-नरकायुरूप एक भंग जानना, क्योंकि वह बध्यमाननरकायु और तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला मनुष्य मरणकर नारकी हुआ उसके (अपर्याप्त-विश्राम-विशुद्धि-इनतीन) अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मिथ्यादृष्टिपना रहता है, वहां अबद्धायुष्क होनेसे भुज्यमाननरकायुके सत्त्वबिना अन्यसत्त्व नहीं है उस जीवके १४५ प्रकृतिका सत्त्वस्थान होता है अन्य जीवके इसप्रकारका सत्त्व नहीं पाया जाता।

बद्धायुष्कके दूसरा सत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमान इन दो आयुको छोड़कर शेष दोआयु और तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४५ प्रकृतियोंका जानना। यहांपर भंग कहते हैं—

भुज्यमाननरकायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमाननरकायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्य-मानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानमनु-ष्यायु-बध्यमाननरकायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानतिर्य-ञ्चायु, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु, इसप्रकार १२ भंग हुए। इनमें भुज्यमान-तिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु और भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु ये दो भंग पुनरुक्त हैं, क्योंकि भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु इस भंगमें तिर्यञ्चायुकी ही सत्ता है अन्य आयुकी नहीं। इसीप्रकार भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायुमें भी जानना चाहिए।

उपर्युक्त पुनरुक्तभंगोंके बिना शेष १० भंग रहे उनमें भुज्यमान-तिर्यञ्चायु-बध्यमान-नरकायुके और भुज्यमाननरकायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु के समानता है अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों भङ्गोंमें नरकायु-तिर्यञ्चायुकी ही सत्ता होनेसे दोनों भङ्गोंमें एक ही भङ्ग गिनना। इसीप्रकार भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु और भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायुमें तथा भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु और भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायुमें, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु और भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायुमें, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु एवं भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायुमें, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु तथा भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायुमें समानता है इसलिए एक-एक ही भङ्ग गिना इसप्रकार १४५ प्रकृतिकी सत्तावाले बद्धायुष्कके ५ भङ्ग जानने।

अबद्धायुष्कका दूसरा सत्त्वस्थान, १४५ प्रकृतिमें से बध्यमान एक आयुकी सत्ता घटानेपर १४४ प्रकृतिरूप ही है अतः चारोंगतिके जीवोंके भुज्यमान आयुकी अपेक्षा चार भङ्ग हैं। भुज्यमानतिर्यञ्चायुवालेके तिर्यञ्चायुसहित १४४ प्रकृतिका सत्त्वस्थान पाया जाता है। भुज्यमाननरकायुवालेके नरकायुकी सत्तासहित १४४ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। इसप्रकार प्रकृतियोंके बदलनेसे यहां भी अन्य-अन्य भङ्ग जानना, तथैव अन्यत्र भी जानना चाहिए।

किसी मिथ्यादृष्टि जीवने पहले अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त करके वहांपर आहारचतुष्कका बन्ध नहीं किया इसलिए उसके आहारकचतुष्कका सत्त्व नहीं है। अथवा अप्रमत्तगुणस्थानमें आहारकचतुष्कका बन्ध करके पश्चात् असंयमी या मिथ्यादृष्टि होकर आहारकचतुष्ककी उद्वेलनाकरके आहारकचतुष्कके सत्त्वरहित हुआ ऐसा जीव मनुष्यमें उत्पन्न होकर पहले नरकायुका बन्ध करके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर असंयतगुणस्थानवर्ती होता हुआ केवली-श्रुतकेवलीके निकट षोडशकारणभावनाको भाकर तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्धकरके तथा तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व होनेसे भुज्यमानआयुके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर द्वितीय और तृतीयपृथ्वीमें गमन करनेके योग्य मिथ्यादृष्टि होता है। जिस जीवके तीसराबद्धायुस्थान तिर्यञ्चायु, देवायु और आहारकचतुष्कके बिना १४२ प्रकृतिरूप पाया जाता है, वहांपर एक ही भङ्ग है। अतः इसीप्रकारसे १४२ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, अन्य प्रकारसे नहीं।

जिसने पहले मनुष्य-तिर्यञ्चायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं होता और जिसके देवायुका बन्ध हो गया हो उसके तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व हो सकता है, किन्तु मिथ्यादृष्टिके नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शङ्का—तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ मनुष्यके ही कहा है तो फिर असंयत देव-नारकीके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध कैसे कहा ?

समाधान—यद्यपि तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ तो मनुष्यके ही होता है, तथापि वह यदि सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता है तो अन्तर्मुहूर्तअधिक आठवर्षकम दो-कोटिपूर्वअधिक तेतीससागरपर्यन्त उत्कृष्टरूपसे प्रतिसमय तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध समय-प्रबद्धमें होता रहता है। इसलिये देव—नारकोमें भी तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध घटित होता है।

तृतीय अबद्धायुष्कसत्त्वस्थान मनुष्यायुके सत्त्वसे भी रहित है अतः तिर्यञ्च-मनुष्य-देवायु और आहारकचतुष्टय इन सातप्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिरूप है। यदि तीर्थंकरप्रकृतिकी सत्तावाला मरणकर द्वितीय-तृतीयनरकमें गया वहां अपर्याप्तादि अवस्थाओंमें तीनअन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मिथ्यादृष्टि हो रहता है उसके भुज्यमाननरकायुबिना अन्यआयुका सत्त्व नहीं है। इसी जीवके इस प्रकारकी सत्ता पाई जाती है अतः एक ही भङ्ग है, अन्यप्रकारसे ऐसी सत्ता नहीं पायी जाती।

बद्धायुष्कका चतुर्थसत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु, आहारक-चतुष्क और तीर्थंकर इन ७ प्रकृतिके बिना १४१ प्रकृतिरूप जानना। यहां पूर्वोक्त १२ भङ्गोंमें से दोपुनरुक्त और ५ समान भङ्गोंके बिना शेष ५ भङ्ग जानना। तथैव अबद्धायुष्कका चतुर्थसत्त्वस्थान भुज्यमानआयुबिना शेष तीनआयु, आहारकचतुष्क और तीर्थंकरबिना १४० प्रकृतिरूप जानना। यहां भुज्यमान चारआयुकी अपेक्षा चार भङ्ग हैं।

बद्धायुष्कका पञ्चमसत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु, आहा-रकचतुष्क, तीर्थंकर और सम्यक्त्वप्रकृति इन आठप्रकृतिके बिना १४० प्रकृतिरूप है। यहां पूर्वोक्त प्रकारही ५ भग जानने। अर्थात् पूर्वकथित १२ भंगोंमें से २ पुनरुक्त और ५ समानभगबिना शेष ५ भग हैं। अबद्धायुष्कका पञ्चमसत्त्वस्थान पूर्वोक्त १४० प्रकृतिमें से बध्यमानआयुबिना १३९ प्रकृतिरूप जानना। यहां भी चारआयुके भेदसे चारभंग हैं।

बद्धायुष्ककी अपेक्षा छठासत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमानआयु बिना दोआयु, तीर्थङ्करप्रकृति, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिबिना १३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिरूप जानना। यहांपर भंग पूर्वोक्तप्रकार ५ ही जानने। तथैव अबद्धायुष्ककी अपेक्षा उपर्युक्त १३९ प्रकृतियोंमें से बध्यमानआयुबिना १३८ प्रकृतिरूप है। यहां भंग चारगतिकी अपेक्षा चार ही जानना।

बद्धायुष्ककी अपेक्षा देवद्विककी उद्वेलना जिनके हो गई है ऐसे एकेन्द्रिय, विकलत्रयजीवोंके भुज्यमानतिर्यञ्चायु व बध्यमानमनुष्यायुबिना शेष देवायु और नरकायु, आहारकचतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी इन ११ प्रकृतिबिना १३७ प्रकृतिरूप सातवां सत्त्वस्थान जानना। यहां एकेन्द्रिय व विकलत्रयसम्बन्धी भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु तथा भुज्यमान तिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायु ये दाभंग हैं। उनमें भुज्यमानतिर्यञ्चायु, बध्यमानतिर्यञ्चायु यह पुनरुक्त भंग है अतः यहाँ नहीं गिना इस कारण एक ही भंग जानना। उद्वेलनाका स्वरूप जो पहले कहा है वही यहां जानना।

अब मिथ्यादृष्टिके किसी-किसी स्थानके भङ्ग कहते हुए अबद्धायुष्ककी अपेक्षा सातवें सत्त्वस्थानसम्बन्धी चारभङ्ग दोगाथाओंसे कहते हैं—

उव्वेल्लिददेवदुगे, बिदियपदे चारि भंगया एवं।
सपदे पढमो बिदियं, सो चेव णरेसु उप्पण्णो ॥३६८॥
वेगुव्वअट्ठरहिदे, पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे।
सुरछब्बंधे तदियो णरेसु तब्बंधणे तुरियो ॥३६९॥जुम्मं॥

अर्थ—बद्धायुष्कके सप्तमसत्त्वस्थानके बाद अबद्धायुष्कापेक्षा १३६ प्रकृतिरूप ७ वां स्थान है। यहां जिसके देवगतिआदि दोप्रकृतियोंकी उद्वेलना हुई है उसके चारभंग हैं। वे इस प्रकार हैं—जैसे एकेन्द्रिय अथवा विकलत्रयजीवके देवद्विककी उद्वेलना होनेपर अपनी ही पर्यायमें १३६ प्रकृतिरूप स्थान होना प्रथमभंग है। वही जीव मरणकर मनुष्यमें उत्पन्न हुआ वहाँ दूसराभंग हुआ। जिसके वैक्रियक-अष्टककी उद्वेलना हुई है ऐसा वही एकेन्द्रिय अथवा विकलत्रयजीव मरणकरके तिर्यञ्चपंचेन्द्रियजातिमें उत्पन्न हुआ और वहां देवगति आदि छहप्रकृतियोंका बन्ध करने पर भी आहारकचतुष्कआदि १० व नरकद्विक इन १२ के बिना १३६ रूप तीसरा भंग हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वही जीव मरण करके मनुष्य हुआ और यहां पर देवगति आदि छह प्रकृतियोंका बन्ध करता है, किन्तु नरकद्विकबिना १३६ प्रकृतिका ही बन्ध करता है अतः यह चौथाभङ्ग जानना।

विशेषार्थ—अबद्धायुष्ककी अपेक्षा सप्तमसत्त्वस्थान १३६ प्रकृतिरूप है। जिसके देवद्विकको उद्वेलना हुई ऐसे एकेन्द्रिय अथवा विकलत्रय मिथ्यादृष्टिके उसी पर्यायमें आहारकचतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी ये ९ और भुज्यमानतिर्यञ्चायुबिना शेष तीनआयु इन १२ प्रकृतिके बिना सत्त्व १३६ प्रकृतिका पाया जाता है सो एक यह भङ्ग है। जिसके देवद्विककी उद्वेलना हो गई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयमिथ्यादृष्टि मरणकर मनुष्य हुआ उसके अपर्याप्तावस्थामें मिथ्यात्व होनेसे सुरचतुष्कका बन्ध नहीं होता अतः पूर्वोक्त ९ और भुज्यमानमनुष्यायुबिना तीनआयु इसप्रकार १२ प्रकृतिबिना १३६ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, यह दूसराभङ्ग हुआ। जिसके वैक्रियिकशरीर–वैक्रियिकअङ्गोपांग, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरसंघात-रूप वैक्रियिकअष्टककी उद्वेलना हो गई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरणकरके पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें उत्पन्न हुआ। यहां देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक-शरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकसंघात और वैक्रियिकबन्धनरूप सुरषट्कका तो बन्ध किया और नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वीका बन्ध नहीं किया। यहां आहारकचतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी ये ९ और भुज्यमान-तिर्यञ्चायुबिना तीनआयु इसप्रकार १२ प्रकृतिबिना १३६ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है यह तृतीय भङ्ग है। वैक्रियिकअष्टककी उद्वेलना करनेवाला वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरणकर मनुष्यमें उत्पन्न हुआ वहां सुरषट्कका बन्ध होने से पूर्वोक्त ९ और भुज्यमानमनुष्यायुबिना तीनआयु इसप्रकार १२ प्रकृतिबिना १३६ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है यह चौथा भङ्ग है। यहां सर्वभंगोंमें १३६ प्रकृति ही हैं इसलिए स्थान तो एक ही है और प्रकृति बदलनेके चारप्रकार हैं अतः भंग भी चार हुए।

बद्धायुष्ककी अपेक्षा अष्टमसत्त्वस्थान नारकषट्कको उद्वेलना होनेसे एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियजीवके होता है। भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायुके बिना देव-नरकायु, आहारकचतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघात इन १७ प्रकृतिबिना १३१ प्रकृतिरूप जानना, यहां भुज्यपानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायुरूप दोभग हैं, किन्तु भुज्यमानतिर्यञ्चायु, बध्यमानतिर्यञ्चायु यह भंग पुनरुक्त होनेसे एक ही भंग समझना।

अथानन्तर अबद्धायुष्ककी अपेक्षा दोभङ्ग कहते हैं—

णारकछक्कुव्वेल्ले, आउगबंधुज्झिदे दु भंगा हु।
इगिविगलेसिगिभंगो, तम्मि णरे विदियमुप्पण्णे ॥३७०॥

अर्थ—अबद्धायुष्ककी अपेक्षा आठवें सत्त्वस्थानमें आयुबन्धके बदलनेसे दोभंग होते हैं। उनमेंसे नरकगतिआदि ६ प्रकृतियोंकी उद्वेलना करनेवाले एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियजीवके अपनी ही पर्यायमें १३० प्रकृतिरूप स्थान होना प्रथमभंग है तथा वही जीव मरणकर मनुष्य हुआ वहां आयुके बदलनेसे १३० प्रकृतिरूप स्थान होना दूसराभंग है।

विशेषार्थ—अबद्धायुष्ककी अपेक्षा अष्टमसत्त्वस्थान भुज्यमानआयुके बिना तीनआयु और आहारकचतुष्कआदि १५ प्रकृतिबिना १३० प्रकृतिरूप जानना। यहां भङ्ग २ हैं। नारकषट्क (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअंगोपांग, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिकसंघात) की उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीवके तिर्यञ्चायुबिना ३ आयु और आहारकचतुष्टयआदि १५ इसप्रकार १८ प्रकृतिके बिना १३० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता यह एकभंग है तथा वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरणकर मनुष्यमें उत्पन्न हुआ वहां अपर्याप्तकालमें मनुष्यायुके बिना तीनआयु और आहारकचतुष्कआदि १५ प्रकृतिके बिना १३० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है यह दूसरा भंग है।

बद्धायुष्ककी अपेक्षा नवमसत्त्वस्थान उच्चगोत्रकी उद्वेलना होनेपर तेजकाय-वायुकायजीवोंमें पाया जाता है, यह पूर्वोक्त १३० प्रकृतियोंमेंसे उच्चगोत्रका अभाव होनेसे १२९ प्रकृतिरूप है, यहां भंग एक ही है। भुज्यमानतिर्यञ्चायु, बध्यमानतिर्यञ्चायुरूप भंग पुनरुक्त है। यहां अन्यप्रकार कोई भंग नहीं है इसलिए इसीका ग्रहण करना। तथैव अबद्धायुष्ककी अपेक्षा ९ वां सत्त्वस्थान १२९ प्रकृतिरूप ही है। यहस्थान बद्धायुष्कके समान ही है. अतः पुनरुक्त होनेसे इसस्थानका ग्रहण नहीं करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बद्धायुष्ककी अपेक्षा १० वां सत्त्वस्थान मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर अग्निकाय-वायुकायजीवोंमें पाया जाता है। यहस्थान पूर्वोक्त १२९ प्रकृतिमें से मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वीके बिना १२७ प्रकृतिके सत्त्ववाला है। यहां पर भी भंग एकही है। तथैव अबद्धायुष्ककी अपेक्षा भी १० वां सत्त्वस्थान पूर्वोक्त १२७ प्रकृतिरूप ही जानना इसप्रकार बद्धायुष्क-अबद्धायुष्ककी अपेक्षा इस १० वें सत्त्वस्थानमें प्रकृति और उसकी संख्यामें कुछ भी विशेषता नहीं है। अतः यहस्थान ग्रहण नहीं करना।

अब बद्धायुष्कसम्बन्धी पांच भेदोंको कहते हैं—

णिरियाऊ-तिरियाऊ णिरिय-णराऊ तिरिय-मणुवायु।
तेरंचिय-देवाऊ माणुस-देवाउ एगेगं ॥३७०क॥

अर्थ—नरकायु–तिर्यञ्चायु, नरकायु–मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु–मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु–देवायु, मनुष्यायु–देवायु इन पांच भेदोंमें से बद्धायुष्कजीवके कोई भेद होता है ॥३७०क॥

विशेषार्थ—बद्धायुष्ककी अपेक्षा पांच भंगोंका कथन है। बद्धायुष्कके आयुकर्मकी दो प्रकृतियोंका सत्त्व होता है। प्रकृतिके बदलनेसे बद्धायुष्कके आयुकर्मकी अपेक्षा पांचभंग होते हैं। जिनका नाम गाथामें उल्लेख किया गया है।

आगे १८ स्थानोंके पुनरुक्त और समभङ्गके बिना जो ५० भङ्ग कहे हैं उनमेंसे किस-किस स्थानमें कितने-कितने भङ्ग होते हैं उनकी संख्या कहते हैं—

विदिये तुरिये पणगे, छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं।
बिगचउपणछस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ॥३७१॥

अर्थ—बद्धायुष्कापेक्षा द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठम सत्त्वस्थानमें ५-५ भंग जानना तथा शेष प्रथम-तृतीय-सप्तम-अष्टम-नवम और दशम स्थानमें १-१ भंग है। अबद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठम और सप्तम स्थानमें चार-चार भंग हैं। अष्टमस्थानमें दो तथा शेष प्रथम व तृतीयस्थानमें एक-एक भंग जानना चाहिए। इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें सत्त्वस्थान १४ और उनके भंग ५० जानना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थान एवं भंग (बद्धायुष्क-अबद्धायुष्ककी अपेक्षा) की सन्दृष्टि—

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंग संख्या	प्रकृति संख्या	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	बद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थान	१	१४६	१४६ (१४८–२ तिर्यञ्च-देवायु) मिथ्यादृष्टिमनुष्यने नरकायुका बन्ध करनेके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया और तीर्थङ्करप्रकृतिका भी बन्ध कर लिया। मरणके अन्तर्मुहूर्त पहले मिथ्यात्वगुणस्थानमें आया उससमय उसके १४६ प्रकृति की सत्ता होती है। नोट—जिस सम्यग्दृष्टिमनुष्यने मनुष्य व तिर्यञ्चायु बांध ली हो उसके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ नहीं होता है। ४ से ७ वें गुणस्थानवर्ती जिस मनुष्यने देवायु बांध ली हो वह मिथ्यात्वमें नहीं आ सकता है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थान	१	१४५	१४५ (१४८–३, मनुष्य-तिर्यंञ्च-देवायु) उपर्युक्त प्रकारसे तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तासहित द्वितीय व तृतीय नरकका नारकी उत्पन्न होनेसे तीनअन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यादृष्टि रहता है, उससमय उसके आगामी आयुका बन्ध नहीं होता, क्योंकि नरकमें आयुका बन्ध अन्तिम ६ माहमें होता है। अतः बध्यमान आयुकी सत्ता कम होनेसे बद्धायुष्ककी अपेक्षा जो १४६ प्रकृतिका सत्त्वस्थान कहा उसमेंसे बध्यमान मनुष्यआयु घटा देनेपर १४५ प्रकृतिकी सत्तासहित सत्त्वस्थान यहां होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व	बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४५	१४५ (१४८-३, भुज्यमान व बध्यमान-आयुबिना दोआयु एवं तीर्थङ्कर) इसस्थानमें १२ भंग सम्भव हैं, क्योंकि मनुष्य व तिर्यंच-गतिमें चारों ही आयुका बन्ध हो सकता है, किन्तु नरक व देवगतिमें जीवोंके तिर्यञ्च व मनुष्यगतिका ही बन्ध हो सकता है।

भुज्यमान आयु	बध्यमान आयु	भंग संख्या
नरक	तिर्यञ्च	१
,,	मनुष्य	१
तिर्यञ्च	नरक	०
,,	तिर्यञ्च	०
,,	मनुष्य	१
,,	देव	१
मनुष्य	नरक	०
,,	तिर्यञ्च	०
,,	मनुष्य	०
,,	देव	१
देव	तिर्यञ्च	०
,,	मनुष्य	०

उपर्युक्त सन्दृष्टिमें १२ भंगोंमें पुनरुक्त भंगमें तथा जहां भुज्यमान व बध्यमान आयु समान ही है उस भंगके आगे शून्य दिया है अतः १२ में से यहां ५ ही भङ्ग गिने हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीयस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४४	१४४ (१४८–४, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर) १४५ प्रकृतिकी सत्तासहित पूर्वोक्त जीवकी १४५ सत्त्व प्रकृतियोंमें से बध्यमान आयु कमकरनेसे अवद्धायुष्कके १४४ प्रकृति की सत्ता रही अतः ४ गतिकी अपेक्षा [८-९-१०-११ वां] ४ भङ्ग होते हैं।
,,	बद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीयस्थान	१	१४२	१४२ (१४८-६, तिर्यञ्च व देवायु और आहारकचतुष्क) कोई मिथ्यादृष्टिमनुष्य पहले अप्रमत्त-गुणस्थानको प्राप्त हुआ, किन्तु वहां उसने आहारकचतुष्कका बन्ध नहीं किया और मिथ्यात्वगुणस्थानको पुनः प्राप्त कर लिया। अथवा अप्रमत्तगुणस्थानमें आहारकचतुष्क-का बन्ध कर लिया पश्चात् मिथ्यात्वगुण-स्थानमें आकर पश्चात् असंख्यात वर्षोंमें आहारकचतुष्ककी उद्वेलना कर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ वहां नरकायुका बन्ध करके पश्चात् वेदकसम्यग्दृष्टि होकर केवली-श्रुत-केवलीके पादमूलमें षोडशकारणभावना भाकर तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भकरके उस कर्मसे सहित होकर द्वितीय–तृतीय नरकको जानेवाला जीव भुज्यमानआयुका अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहनेपर मरणसे पूर्व मिथ्यात्वमें आगया उसके १४२ प्रकृतिका सत्त्व होता है तथा जिस मनुष्यने देवायुका बन्धकर लिया है एवं तीर्थङ्करप्रकृतिका बंध आरम्भकर लिया हो उसके सम्यक्त्व नहीं छूटता है तथा उसके प्रतिसमय आठवर्ष व एक अन्तर्मुहूर्तकम दोकोटी पूर्वसहित ३३ सागरपर्यन्त उत्कृष्टरूपसे तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध समयप्रबद्धमें होता रहेगा। इसप्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				नारकी होनेवाले जीवके ही यह भङ्ग सम्भव है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीयस्थान	१	१४१	१४१ (१४८–७, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु और आहारकचतुष्क) तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तासहित २-३ नरकमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टिजीवके निवृत्त्य-पर्याप्तावस्थामें १४१ प्रकृतिकी सत्ता रहेगी, क्योंकि इस अवस्थामें बध्यमानआयुकी सत्ता नहीं रहती है तथा नरकायुके अन्तिम छह माह पूर्वतक १४१ प्रकृतिका सत्त्व रहता है, क्योंकि नरकायुके अन्तिम छहमाहमें आयु बन्ध होता है।
”	बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थान	१ .ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४१	१४१ (१४८–७, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दोआयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) बद्धायुष्ककी अपेक्षा पूर्वकथित दूसरे-स्थानमें चारोंगतिमें जीवोंके १२ भङ्गोंमें से २ पुनरुक्त और ५ समान भङ्गोंको कम करके शेष जो पांच भङ्ग कहे हैं वे ही यहां भी जानना, किन्तु वहां और यहां अन्तर इतना ही है कि उसस्थानमें आहारक-चतुष्कका सत्त्व है और यहां नहीं है।
”	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	१४० (१४८–८, भुज्यमानआयुबिना शेष तीन आयु, तीर्थङ्कर और आहारक-चतुष्क) बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थसत्त्व-स्थानमें ४ गतिके जीवोंकी बध्यमानआयुको छोड़कर केवल भुज्यमानआयुकी अपेक्षा ४ भङ्ग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व	बद्धायुष्कको अपेक्षा पञ्चम-स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४०	१४० (१४०–८, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दोआयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क और सम्यक्त्वप्रकृति) बद्धायुष्ककी अपेक्षा पूर्वोक्तस्थानोंके समान ही यहाँ पर भी ५ भङ्ग हैं, किन्तु अन्तर इतना ही है कि यहां सम्यक्त्वप्रकृति भी कम हुई है।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चम-स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१३९	(१४८–९, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क और सम्यक्त्व-प्रकृति) अबद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानके समान ही यहां भी ४ भङ्ग जानना, किन्तु यहांपर सम्यक्त्वप्रकृति भी कम हुई है।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा षष्ठमस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१३९	१३९ (१४८–९, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दो आयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति) बद्धायुष्ककी अपेक्षा पञ्चमस्थानके समान ही यहांपर भी ५ ही भङ्ग हैं, किन्तु यहां सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम हुई है।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा षष्ठमस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१३८	बद्धायुष्क की अपेक्षा छठे सत्त्वस्थानमें कही गई १३९ प्रकृतियोंमें से बध्यमानआयु कम करने पर यहां १३८ प्रकृतिकी सत्ता पाई जाती है तथा अबद्धायुष्ककी अपेक्षा पूर्वोक्त ५ वें स्थान के समान ही यहां भी ४ भङ्ग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३७	१४८–११, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमान-मनुष्यायुके बिना २ आयु, आहारक-चतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति और देवगत्यानुपूर्वी। १३७ प्रकृति सहित यह सत्त्वस्थान एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्त तिर्यञ्चोंके हो सकता है। जिसने देवद्विककी उद्वेलना की है ऐसा जीव तिर्यञ्चायु व मनुष्यायु बांध सकता है अतः दो भङ्ग होते हैं, किन्तु भुज्यमानतिर्यञ्चायु व बध्यमानतिर्यंचायुको मानकर तो पुनरुक्त होनेसे उसे नहीं गिना। अतः तिर्यञ्चमनुष्यायुका एक भंग होता है।
,,	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३६	१३६ (बद्धायुष्कापेक्षा सप्तमस्थानमें कथित १३७ प्रकृतिमें से बध्यमानआयु कम करके १३६ प्रकृति रहती हैं।)
,,	,,	१	१३६	बद्धायुष्कापेक्षा सप्तमसत्त्वस्थान वाला एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यंन्त मिथ्यादृष्टि-जीव मरणकर मनुष्य हुआ उसके अपर्याप्तावस्थामें १३६ प्रकृतिकी सत्ता होती है। (१४८–१२, भुज्यमान मनुष्यायुबिना शेष तीन आयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और देवद्विक)
,,	,,	१	१३६	वही एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्तका तिर्यंचजीव जिसके वैक्रियिकअष्टककी उद्वेलना हो गई है तथा मरकर पंचेन्द्रियतिर्यञ्च हुआ तथा पर्याप्तावस्थामें सुर-षट्क (देवद्विक, वैक्रियिकद्विक, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिक-संघात) का बन्ध किया ऐसे जीवकी १३६ प्रकृतिकी सत्ता हो सकती है। १३६ (१४८–१२, भुज्यमानतिर्यंच-आयुबिना तीनआयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकद्विक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क-की अपेक्षा सप्तमस्थान	१	१३६	उपर्युक्त भङ्गमें तिर्यञ्च मरणकर मनुष्यमें उत्पन्न हुआ। वहां बध्यमानआयु का बन्ध नहीं था, किन्तु सुरषट्कका बन्ध किया उस जीवके १३६ प्रकृतिकी सत्ता हो सकती है। यहां १३६ प्रकृति उपर्युक्त ही हैं, किन्तु भुज्यमानतिर्यञ्चायुके स्थानपर भुज्यमान मनुष्यायु होगी।
मिथ्यात्व	बद्धायुष्कको अपेक्षा अष्टमस्थान	१	१३१	एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्त जिस जीवके नारकषट्ककी उद्वेलना हुई तथा मनुष्यायुका बंध किया हो उसके १३१ प्रकृतिकी सत्ता पायी जाती है। १३१ (१४८–१७, देव-नरकायु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक, वैक्रियिकशरीरबन्धन और वैक्रियिकशरीरसंघात) यहां भुज्यमान और बध्यमानतिर्यंचआयु और भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायुरूप दोभंग हो सकते हैं, किन्तु पहला भंग पुनरुक्त होनेसे यहां एक ही भंग ग्रहण करना।
,,	अबद्धायुष्क-की अपेक्षा अष्टमस्थान	१	१३०	बद्धायुष्कको अपेक्षा पूर्वकथित आठवें-स्थानमें जो १३१ प्रकृतियां कही हैं उनमेंसे यहांपर बध्यमान मनुष्य आयु कम करनेपर १३० प्रकृतिरूप स्थान होता है।
		१	१३०	एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरणकर मनुष्यमें उत्पन्न हुआ उसके निवृत्त्यपर्याप्तावस्थामें १३० प्रकृतिकी सत्ता हो सकती है, किन्तु अबद्धायुष्कको अपेक्षा कथित उपर्युक्त अष्टमस्थानमें भुज्यमानतिर्यंचायु है और यहां भुज्यमानमनुष्यायु है इतना ही अन्तर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व	बद्धायुष्ककी अपेक्षा नवमस्थान		१२६	उच्चगोत्रकी जिसके उद्वेलना हुई है ऐसे तेजकाय-वायुकायजीवको यह स्थान होता है । १२६ (अबद्धायुष्कापेक्षाकथित अष्टम-स्थानसम्बन्धी १३० प्रकृतियोंमेंसे उच्चगोत्र कम कर दिया) तेजकाय-वायुकायजीव तिर्यंच हैं और तिर्यंचायुका ही बन्ध करते हैं अन्य आयुका नहीं ।
,,	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा नवमस्थान	१	१२६	ऊपरवर्ती तेजकाय-वायुकायजीवोंके बध्यमानतिर्यंचायुका बन्ध नहीं हुआ तो भी १२६ प्रकृतिकी ही सत्ता रहेगी तथा भंग भी उपर्युक्त हो रहेगा, प्रकृति भी वे ही रहेंगी अतः सत्त्वस्थान और भंग नहीं बदलनेसे ग्रहण नहीं किया ।
,,	बद्धायुष्ककी अपेक्षा दशमस्थान	१	१२७	तेजकाय-वायुकाय (अबद्धायुष्कापेक्षा नवमस्थानवाले) जीवोंके मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वीकी उद्वेलना होनेसे १२७ प्रकृति-की ही सत्ता रहती है । इसजीवने तिर्यंचायु का बन्ध कर लिया है ।
,,	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा दशमस्थान	१	१२७	उपर्युक्त जीव ने तिर्यंचायुका पहले बन्ध नहीं किया तथापि १२७ प्रकृतिकी ही सत्ता रहेगी, सत्त्वस्थान और भंगमें भी कोई अन्तर नहीं होनेसे इसका ग्रहण नहीं किया गया है ।

अब सासादन तथा मिश्रगुणस्थानमें सत्त्वस्थान और भङ्गोंकी संख्या चार-गाथाओंमें कहते हैं—

सत्ततिगं आसाणे, मिस्से तिगसत्तसत्तएयारा ।
परिहीण सव्वसत्तं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सासादनगुणस्थानमें सर्वप्रकृतियोंमेंसे सात अथवा तीनप्रकृतिकमरूप दोसत्त्वस्थान हैं। मिश्रगुणस्थानमें सर्वप्रकृतियोंमें से तीन, सात, सात और ११ प्रकृति कमरूप चारस्थान तो बद्धायुष्ककी अपेक्षा और अबद्धायुष्ककी अपेक्षा उनमेंसे भी एक-एकप्रकृति कमरूप चारस्थान बद्धायुष्कके समान ही जानना। इसप्रकार सासादन-गुणस्थानमें चार और मिश्रगुणस्थानमें ८ स्थान जानना चाहिए।

आगे सासादनगुणस्थानके सत्त्वस्थानोंमें जो प्रकृतियां कम हुई हैं उनके नाम कहते हैं—

तित्थाहारचउक्कं, अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे।
हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं ॥३७३॥

अर्थ—सासादनगुणस्थानमें तीर्थङ्करप्रकृति, आहारकचतुष्क और भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना शेष दोआयु इन सातप्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान तथा प्रथमस्थानमें कम की गई सातप्रकृतियोंमें से आहारकचतुष्क (आहारकशरीर, आहा-रकअंगोपांग, आहारकशरीरबन्धन, आहारकशरीरसंघात) के बिना शेष तीनप्रकृति कम करनेसे १४५ रूप दूसरास्थान जानना तथा १४५ प्रकृतिरूप इस सत्त्वस्थानमें आहारक-चतुष्कका सत्त्व कहा है वह अन्य आचार्योंके मतानुसार है।

मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

तित्थण्णदराउदुगं, तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च।
हारचउक्के सहिया, ते चेव य होंति एयारा ॥३७४॥

अर्थ—मिश्रगुणस्थानमें तीर्थङ्कर, भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु इन तीनबिना १४५ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान, तीर्थङ्कर, भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क अथवा आहारकचतुष्क इन सातप्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिरूप द्वितीयस्थान, तृतीयस्थान भी इसीप्रकार १४१ प्रकृतिरूप ही है, तीर्थङ्कर, भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क और आहारकचतुष्क इन ११ प्रकृतिबिना १३७ प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान इसप्रकार ये चारस्थान बद्धायुष्कापेक्षा तथा इनमें एक-एक प्रकृतिरूप चारस्थान अबद्धायुष्कापेक्षा जानना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर उपर्युक्त गुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानोंमें भङ्गकी संख्या कहते हैं—

साणे पण इगि भंगा, बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव ।
मिस्से पणपण भंगा, बद्धस्सियरस्स चउ चऊणेया ॥३७५॥

अर्थ—सासादनगुणस्थानसम्बन्धी बद्धायुष्ककी अपेक्षा दोसत्त्वस्थानोंमें पांच और एक तथा अवद्धायुष्ककी अपेक्षा दोसत्त्वस्थानोंमें ४ और २ भङ्ग हैं । इसप्रकार चारस्थानसम्बन्धी १२ भङ्ग जानना । मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी बद्धायुष्ककी अपेक्षा चारस्थानोंमें पांच-पांचभंग एवं अवद्धायुष्ककी अपेक्षा चारस्थानोंके चार-चार भङ्ग होनेसे यहां आठस्थानोंके ३६ भंग हुए ।

बंधंदेवाउगुवसमसद्दिट्ठी बंधिऊण आहारं ।
सो चेव सासणो जादो तस्सिं पुण बंध एक्कोदु ॥३७५क॥
तस्सेव य बंधाउगठाणे भंगा दु भुज्जमाणम्मि ।
मणुवाउगम्मि एक्को देवेसु ववणगे विदियो ॥३७५ ख॥

अर्थ—देवायुका बन्धकरके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर (सप्तमगुणस्थानमें) आहारकका बन्धकरके सासादनगुणस्थानमें जानेपर उसके आयुबन्धकी अपेक्षा मनुष्य-देवायुरूप एकही भङ्ग होता है ।

उपशमसम्यग्दृष्टिमनुष्य आहारकचतुष्कका बन्धकरके सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है और देवायुका बन्ध करना है तो उसके भुज्यमानआयुकी अपेक्षा सासादनगुणस्थानमें दोभङ्ग होते हैं । सासादनगुणस्थानमें देवायुके बन्धसे पूर्व 'मनुष्यायु' का एकभङ्ग । सासादनगुणस्थानमें मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर 'देवायु' का दूसरा भङ्ग होता है ।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानमें १४१ प्रकृतिरूप बद्धायुष्कापेक्षा सत्त्वस्थानमें चारोंगतिके बद्धायुष्कजीवोंकी अपेक्षा पूर्वोक्तप्रकार १२ भंगमें से समभंग और पुनरुक्तभंगबिना ५ भंग जानना तथा १४० प्रकृतिरूप अबद्धायुष्कस्थानमें भुज्यमान चारआयुकी अपेक्षा चारभंग जानना । १४५ प्रकृतिरूप बद्धायुष्कमें जिसके आहारकचतुष्कका बन्ध हुआ उसमें किसीको सासादनगुणस्थानकी प्राप्ति होती है, इस उपदेशकी अपेक्षा एक ही भंग जानना । १४४ प्रकृतिरूप अवद्धायुष्कस्थानमें दो भंग हैं । वहां भुज्यमान-मनुष्यायुवाला उपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्कका बन्धकरके सासादनगुण-स्थानवर्ती हुआ यह भी एकभङ्ग है तथा पहले जिसके देवायुका बन्ध हुआ था ऐसा उपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्कका बन्धकरके सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो मरकर देव हुआ, यहां भुज्यमानदेवायुका सत्त्व पाया जाता है यह दूसराभङ्ग है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंका—आयुबन्धके शेष चारभङ्ग क्यों नहीं होते ?

समाधान—गाथा ३३४ के अनुसार देवायुके अतिरिक्त यदि अन्यआयुका बन्ध हो जावे तो मनुष्य संयम धारण नहीं कर सकता। आहारकशरीरका बंध संयमीमनुष्य सप्तमगुणस्थानमें करता है। अतः मनुष्य व देवायुके अतिरिक्त शेष चारभङ्ग सम्भव नहीं हैं।

मिश्रगुणस्थानमें बद्धायुष्ककी अपेक्षा चारों स्थानोंमें पूर्वोक्तप्रकार १२ भङ्गमें से पुनरुक्त और समभङ्गबिना पांच-पांच भङ्ग जानने। अबद्धायुष्कके चारों स्थानोंमें भुज्यमान चारआयुकी अपेक्षा चार-चार भङ्ग जानना।

शङ्का—मिश्रगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीका सत्त्व क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—असंयतादि चारगुणस्थानोंमेंसे कहींपर तीनकरण करके अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन किया और मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) के उदयसे मिश्रगुणस्थानवर्ती हुआ उसके अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं पाया जाता।

शङ्का—सम्यग्मिथ्यात्वनामक तृतीयगुणस्थानमें जीव चारित्रमोहनीयको अनन्तानुबन्धीरूपसे क्यों नहीं परिणमा लेता ?

समाधान—क्योंकि मिश्रगुणस्थानमें चारित्रमोहनीयको अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणमानेका कारणभूत मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता है अथवा सासादनगुणस्थानमें जिसप्रकारके तीव्रसंक्लेशरूप परिणाम पाये जाते हैं, मिश्रगुणस्थानमें उसप्रकारके तीव्रसंक्लेशरूप परिणाम नहीं पाये जाते, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चारित्रमोहको अनन्तानुबन्धीरूपसे नहीं परिणमाता है[1]।

---

१. जयधवल पु० २ पृ० २१९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सासादन व मिश्रगुणस्थानमें बद्धायुष्क व अबद्धायुष्ककी अपेक्षा सत्त्वस्थान और भङ्ग तथा उनमें पायी जानेवाली प्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

सासादन	बद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमान व बध्यमान-आयुबिना दोआयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) सासादनगुणस्थानको चारों ही आयु बांधनेवाला जीव प्राप्त कर सकता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें बद्धायुष्कापेक्षा द्वितीय-स्थानमें १२ भंग कहे हैं उसीप्रकार यहां भी १२ भङ्ग होते हैं, किन्तु पुनरुक्तभङ्ग २; समभङ्ग ५ इन ७ के बिना शेष ५ ही भङ्ग ग्रहण किए हैं।
,,	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	उपर्युक्त १४१ प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कम करने पर १४० प्रकृतिरूप यह स्थान होता है। इसके चार भंग चारोंगति की अपेक्षासे हैं।
,,	बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	१	१४५	१४५ (१४८-३, भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायुबिना २ आयु और तीर्थङ्कर) मनुष्य, आहारकचतुष्कका बन्ध कर-लेनेके बाद इस गुणस्थानमें आ सकता है। किसी आचार्यके मतसे इस अवस्थामें आहा-रकचतुष्कका सत्त्व नहीं है अर्थात् १४१ प्रकृतिका सत्त्व होता है।
,,	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	१	१४४	बद्धायुष्ककी अपेक्षा कथित द्वितीय-स्थानकी १४५ प्रकृतियोंमें से बध्यमानदेवायु कम करनेपर १४४ प्रकृति रहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				भुज्यमानमनुष्यआयुवाला उपशमसम्यग्दृष्टिजीव आहारकचतुष्कका बन्धकरनेके बाद सासादनगुणस्थानमें आया तब उसके १४४ प्रकृतिकी सत्ता रहेगी।
		१	१४४	जिस उपशमसम्यग्दृष्टिमनुष्यने पहले देवायुका बन्ध किया हो और सप्तमगुणस्थानमें आहारकचतुष्कका बन्ध करके प्रमत्तहोकर द्वितीयगुणस्थानमें आया और मरण किया तथा देव होगया उससमय उसके १४४ प्रकृतिकी सत्ता रहती है। अबद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानके प्रथमभंगमें भुज्यमानमनुष्यायु होती है। यहां भुज्यमानदेवायु है। इसगुणस्थानमें १२ भंग न होकर ११ भंग ही होते हैं ऐसा किन्हीं आचार्योंका मत है [गाथा ३९४ देखो] और बध्यमानदेवायुवाला द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिजीव सासादनगुणस्थानमें मरता नहीं ऐसा उनका मत है।
मिश्र	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथमस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४५	१४५ (१४८–३, भुज्यमान व बध्यमानआयुबिना दो आयु और तीर्थङ्कर) यह गुणस्थान चारोंही गतिके जीवोंमें पाया जाता है तथा चारों ही बध्यमानआयुवालाजीव इस गुणस्थानको प्राप्त करता है। अतः मिथ्यात्वगुणस्थानमें बद्धायुष्कके द्वितीयस्थानमें कथित १२ भंगोंके समान यहां भी १२ भंग होते हैं, किन्तु पूर्वके समान ही दोपुनरुक्त और पांच समानभग कम करनेपर ५ ही भंग ग्रहण किये हैं।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथमस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे ४	१४४	बद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थानमें कथित १४५ प्रकृतियोंमें से बध्यमानआयुको कम करनेपर १४४ प्रकृति रहीं। चारोंगतिसम्बन्धी भुज्यमानआयुकी अपेक्षा चारभंग होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र	बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे ५	१४१	१४१ (१४८–७, भुज्यमान-बध्यमानआयु विना दोआयु, तीर्थङ्कर और अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क) असंयतादि चारगुणस्थानोंमें से किसी-भी गुणस्थानमें तीनकरणके द्वारा अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्कको विसंयोजना जिसने की हो तथा दर्शनमोहनीयका क्षय करनेके सम्मुख न हो वह जीव संक्लिष्टपरिणामोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे मिश्रगुणस्थानमें आता है तथा १४१ प्रकृतिकी सत्तावाला होता है। इसस्थानमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें बद्धायुष्ककी अपेक्षा कथित द्वितीयस्थानके समान १२ भंग होते हैं किन्तु दो पुनरुक्त और ५ समान भंगोंको छोड़कर ५ ही भंग ग्रहण किये हैं।
”	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	१४० (बद्धायुष्कको अपेक्षा द्वितीयस्थानमें कथित १४१ प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कम करनेसे १४० प्रकृतिकी सत्ता रहती है।) ४ भंग, भुज्यमानचारों आयुकी अपेक्षा।
”	बद्धायुष्कको अपेक्षा तृतीयस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४१	१४१ (१४८–७, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दोआयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क) चारों ही गतिके जीव इसगुणस्थानमें आ सकते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानके बद्धायुष्ककी अपेक्षा कथित द्वितीयस्थानमें जो १२ भंग कहे गये हैं उसीप्रकार यहां भी १२ भंग जानना, किन्तु पूर्वानुसार यहां भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				दोपुनरुक्त और ५ समान भंगोंको कमकरके शेष ५ भंग ही ग्रहण किये गए हैं।
मिश्र	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीयस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	बद्धायुष्कके तृतीयस्थानमें जो १४१ प्रकृतियां कही गई हैं उनमेंसे बध्यमानआयु कम करने पर १४० प्रकृति रहती हैं। चारोंगतिकी अपेक्षासे ४ भंग होते हैं।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म १ ति. दे १ म. दे. ५	१३७	१३७ (१४८–११, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दोआयु, तीर्थङ्कर, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क, आहारकचतुष्क) बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानमें जो जीव बताया है वैसा ही जीव यहां भी समझना, किन्तु आहारकचतुष्क यहां नहीं पाया जाता है। भग यहां भी १२ ही हैं, किन्तु पुनरुक्त और समभंग बिना ५ ही भंग ग्रहण किये गए हैं।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थस्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१३६	१३६ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानमें कथित १३७ प्रकृतिमेंसे बध्यमानआयु कम करनेपर १३६ प्रकृति रहती हैं। चारगतिकी अपेक्षा ४ भंग होते हैं।

आगे असंयतगुणस्थानमें ४० स्थानोंकी सिद्धि करते हुए उन स्थानोंके १२० भङ्ग व प्रकृतियोंकी संख्या आदिका कथन ६ गाथाओंसे कहते हैं—

दुग छक्क सत्त अट्ठं, णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा।
णभमिगि चउ पण हीणं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तित्थाहारे सहियं, तित्थूणं अह य हारचउहीणं ।
तित्थाहारचउक्केणूणं इति चउपडिट्ठाणं ॥३७७॥

अणुदरआउसहिया, तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया ।
मिच्छं मिस्सं सम्मं, कमेण खविदे हवे ठाणा ॥३७८॥

आदिमपंचट्ठाणे, दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स ।
इयरस्सवि णादव्वा, तिगतिगइगि तिण्णितिण्णेव ॥३७९॥

मणुवणिरयाउगे णरसुर आऊ णिरागबंधम्मि ।
तिरियाऊणा तिगिदरे मिच्छव्वणम्मि भुज्जमणुसाऊ ॥३७९ क॥

बिदियस्सवि पणठाणे, पण पण तिग तिण्ण चारि बद्धस्स ।
इयरस्स होंति णेया, चउचउइगिचारि चत्तारि ॥३८०॥

पुव्वुत्तपणपणाउग, भंगा बंधस्स भुज्जमणुसाऊ ।
अणतियाऊसहिया, तिगतिग चउणिरयतिरियाऊण ॥३८० क॥

आदिल्लदससु सरिसा, भंगेण य तिदियदसयठाणाणि ।
बिदियस्स चउत्थस्स य, दसठाणाणि य समा होंति ॥३८१॥

अर्थ—दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृतियोंसे रहित पांचस्थान बराबर लिखने तथा इसी-प्रकार पांच-पांचस्थानकी चारपंक्ति नीचे-नीचे लिखना । इनमें प्रथमपंक्तिके पांचस्थानोंमें तो शून्य घटाना अर्थात् वे पांचोंस्थान जैसे थे वैसेही २, ६, ७, ८ और ९ प्रकृतिरहित जानना तथा द्वितीय-पंक्ति में एक-एकप्रकृति और घटानेसे वे पांचोंस्थान सर्वप्रकृतियोंमें से ३, ७, ८, ९ और १० प्रकृति-रहित जानने । तृतीयपंक्तिमें चार-चार प्रकृति घटाना । वे पांचोंस्थान ६, १०, ११, १२, १३ प्रकृति-रहित जानना । चतुर्थपंक्तिमें पांच-पांच प्रकृति घटाना वे पांचोंस्थान ७, ११, १२, १३, १४ प्रकृति-रहित जानना ॥३७६॥

बद्धायुष्क व अबद्धायुष्कको प्रथम दोपंक्तियोंके जो पांच-पांच स्थान हैं वे तीर्थङ्करप्रकृतिरहित जानने इसलिये द्वितीयपंक्तिमें एक-एकप्रकृति घटाई । बद्धायुष्क और अबद्धायुष्कको तीसरी दोपंक्तियों के जो पांच-पांचस्थान हैं वे आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग आहारकबन्धन, आहारकसङ्घातरहित जानने अतः तीसरीपंक्तिमें चार-चारप्रकृति घटाई । बद्धायुष्क और अबद्धायुष्कको चौथी दोपंक्तियोंके जो पांच-पांचस्थान हैं वे आहारकचतुष्क और तीर्थङ्कररहित जानना इसलिये चतुर्थपंक्तिमें पांच-पांचप्रकृति घटाई इसप्रकार चारपंक्तिरूप स्थान जानने ॥३७७॥

तिर्यञ्चायु और एक कोई अन्य आयु ये दोप्रकृति, तथा दो तो ये और अनंतानुबन्धीचतुष्क ये ६, इन्हीं ६ में मिथ्यात्वप्रकृति मिलनेसे ७, पुनः सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति मिलानेसे ८ और इन्हींमें सम्यक्त्वप्रकृति मिलानेसे ९ प्रकृति जानना ॥३७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमपंक्तिके बद्धायुष्कसम्बन्धी पांचस्थानोंमें दो-दोभङ्ग होनेसे १० भङ्ग हैं। इसके आगे अबद्धायुष्कसम्बन्धी पांचस्थानोंमें तिर्यञ्चायुबिना क्रमसे ३-३-१-३-३ भङ्ग हैं। इसप्रकार अबद्धायुष्कके १३ भङ्ग हैं ।।३७९।।

तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले जीवके बद्धायुष्कापेक्षा अपुनरुक्तभंग दो होते हैं (१) मनुष्यायु-नरकायु (२) मनुष्यायु-देवायु। अबद्धायुष्क जीवके तिर्यंचायुको छोड़कर अन्य तीन भुज्यमान-आयुकी अपेक्षा तीनभंग होते हैं, किन्तु क्षायिक सम्यक्त्वके सम्मुख जीवके, जिसने मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय कर दिया है, भुज्यमान मनुष्यायुका एक ही भंग होगा. क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणा मनुष्य ही करता है ।। ३७९ क ।।

द्वितीयपंक्तिसम्बन्धी बद्धायुष्कके पांचस्थानोंमें क्रमसे ५-५-३-३ और ४ भंग हैं। अत: ये सर्व २० भंग हैं तथा अबद्धायुष्कके ५ स्थानोंमें अनुक्रमसे ४-४-१-४ और ४ भंग हैं। अत: ये सर्व १७ भंग हैं ।।३८०।।

गाथा ३८० में जो द्वितीयपंक्तिके प्रथम व द्वितीयस्थानमें आयुके पांच-पांच भंग बतलाए गए हैं, उनका कथन पूर्वमें कही गई गाथा ३६४ ख के अनुसार जानना। तृतीय व चतुर्थस्थानमें आयुके जो तीन-तीनभंग कहे हैं, उनमें भुज्यमान तो मनुष्यआयु है और बद्धचमान शेष तीन आयु (नरक-देव-तिर्यंच) की अपेक्षा तीनभंग होते हैं। (दर्शनमोहकी क्षपणा मनुष्य ही करता है अत: भुज्यमान मनुष्यायु ही होती है. अन्य आयु भुज्यमान नहीं हो सकती, क्योंकि अन्यगतियोंमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय संभव नहीं है।) चतुर्थस्थानमें जो ४ भंग कहे हैं वे पूर्वोक्त पांच भंगोंमें से नरकायु-तिर्यंचायु रूप १ भंग कम करके शेष चारभंग जानना। (क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि नारकी तिर्यंचायुका बन्ध नहीं कर सकता मात्र मनुष्यायुका ही बंध करेगा। क्षायिकसम्यग्दृष्टितिर्यंचके भी नरकायुका बन्ध संभव नहीं है उसके देवगतिका ही बन्ध होगा।)

प्रथमपंक्तिसम्बन्धी बद्धायुष्क व अबद्धायुष्कके ५-५ स्थानोंकी अपेक्षा १० स्थान हैं उनमें जो भंग हैं उसीके समान तृतीयपंक्तिके १० स्थानोंमें भी भंग जानना ।।३८१।।

विशेषार्थ—तृतीयपंक्तिमें प्रथमपंक्तिके समान बद्धायुष्क के १० व अबद्धायुष्कके १३ भंग हैं। द्वितीय तथा चतुर्थपंक्तिसंबन्धी दशस्थानों के भंग समान हैं।

बद्धायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टिके प्रथमपंक्तिसंबन्धी जो पांचस्थान हैं वे तीर्थङ्करप्रकृतिसहित हैं, किन्तु तिर्यंचके तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वका अभाव है। अत: प्रथमपंक्तिका प्रथमस्थान, भुज्यमान-बध्यमान तिर्यञ्चायु और एक अन्य कोई आयु, इन दोबिना १४६ प्रकृतिरूप है। जहां भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान नरकायु, भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमान देवायु, भुज्यमान नरकायु-बध्यमान मनुष्यायु, भुज्यमान देवायु-बध्यमान मनुष्यायु इसप्रकार ४ भंग हैं, वहां भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमान नरकायु, भुज्यमान नरकायु-बध्यमान मनुष्यायु इन दोनों भंगोंमें प्रकृति समान हैं, इसलिए एक ही भंग ग्राह्य है तथा भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमान देवायु, भुज्यमान देवायु-बध्यमान मनुष्यायु इन दोनों भंगोंमें प्रकृति समान हैं अत: एक ही भंग ग्राह्य है, ऐसे दोभंग जानना। प्रथमपंक्तिमें अनन्तानुबन्धीके विसंयोजकजीवके अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, तिर्यञ्चायु और अन्य कोई एकआयु इन छहप्रकृतिबिना १४२ प्रकृतिरूप दूसरा सत्त्वस्थान है। जिसके मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय हुआ हो उसके १४१ प्रकृतिरूप तीसरास्थान, जिसने सम्यग्मिथ्यात्वका भी क्षय किया है उसके १४० प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान, जिसके सम्यक्त्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिका भी क्षय हुआ है उसके १३९ प्रकृतिरूप पांचवां सत्त्वस्थान है। इन चारों-स्थानोंमें भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु और भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायुरूप दो-दो भंग हैं।

अबद्धायुष्ककी प्रथमपंक्तिसम्बन्धी पांच सत्त्वस्थानोंमें प्रथमस्थान १४५ प्रकृतिरूप और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होनेपर दूसरास्थान १४१ प्रकृतिरूप है। इन दोनोंमें भुज्यमाननरकायु-मनुष्यायु व देवायुकी अपेक्षा ३ भंग हैं तथा मिथ्यात्वका क्षय होनेपर तीसरास्थान १४० प्रकृतिरूप है, यहां भुज्यमानमनुष्यायुरूप एक ही भंग है। मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) प्रकृतिका क्षय होनेपर १३९ प्रकृतिरूप चतुर्थ-स्थान है, यहां भुज्यमाननरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीनभंग हैं क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिमनुष्य मरणकर नरकगति या देव-गतिमें उत्पन्न होता है, यहां नरक-देवगतिमें भी ऐसी सत्ता पाई जाती है। सम्यक्त्व-प्रकृतिका अभाव होनेपर १३८ प्रकृतिकी सत्तारूप पांचवांस्थान है, यहां भी भुज्यमान मनुष्य-देव और नरकायुकी अपेक्षा तीनभंग पाये जाते हैं तथा मनुष्यायुसहित १३८ प्रकृतिकी सत्तावाला क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव इसीभवमें घातियाकर्मोंका नाशकरके केवली हुआ तो इस जीवके गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक न होकर तपआदि तीन ही कल्याणक होते हैं एवं जो तीसरे भवमें घातियाकर्मोंका नाशकरते हैं वे नियमसे देवायुका ही बन्ध करते हैं। यहां देवपर्यायमें देवायुसहित १३८ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है इसको आयुके छहमाह अवशेष रहनेपर मनुष्यायुका बन्ध होता है और पञ्च-कल्याणक भी होते हैं। जिसके मिथ्यात्वावस्थामें नरकायुका बन्ध हुआ, पश्चात् सम्य-ग्दृष्टिहोकर तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध किया हो तो वह जीव नरकमें उत्पन्न होता है, यहां नरकायुसहित १३८ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, इसके छहमहिना आयु अवशिष्ट रहनेपर मनुष्यायुका ही बन्ध होता है और तब इस नारकीके उपसर्गका निवारण हो जाता है[1]। तथा गर्भादिकल्याणक होते हैं।

बद्धायुष्कके द्वितीयपंक्तिसम्बन्धी पांचसत्त्वस्थानोंमें भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दो आयु और तीर्थंकरप्रकृतिरहित १४५ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान है, अनन्तानु-

---

१. "तित्थयर संतकम्मुवसग्गं णिरए णिवारयंति सुरा। छम्मासाउगसेसे सग्गे अमलाणमालंको ॥१९५॥" त्रि. सा. जिन नारकियोंके तीर्थङ्करनामकर्म सत्तामें हैं, उनकी आयुमें छःमाह शेष रहनेपर देवगण उन नारकियोंका उपसर्ग निवारण करदेते हैं और स्वर्गमें माला नहीं मुरझाती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धीका विसंयोजन होनेपर १४१ प्रकृतिरूप दूसरास्थान है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें जिसप्रकार १४५ प्रकृतिके सत्त्वस्थानमें चारोंगतिसम्बन्धी १२ भंगोंमें से दो पुनरुक्त और ५ समभंगबिना पांचभंग ग्रहण किये थे उसीप्रकार इनदोनों स्थानोंमें भी ५-५ भंग जानना। मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय होनेपर १४० प्रकृतिरूप तृतीयस्थान है, यहां भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमाननरकायु-तिर्यञ्चायु-देवायु तथा मनुष्यायुकी अपेक्षा चारभङ्ग होते हैं। इनमें भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु यहभङ्ग पुनरुक्त है और प्रकृति समान होनेसे इसके बिना शेष तीनभङ्ग ग्रहण करना। सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृतिका क्षय होनेपर १३९ प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान है यहां भी पूर्वोक्त तीनभङ्ग जानना। सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय होनेपर १३८ प्रकृतिरूप पांचवांस्थान है, यहां भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमान-मनुष्यायु-बध्यमाननरकायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु इन सात भङ्गोमें पांचवांभङ्ग पुनरुक्त है, क्योंकि एकमनुष्यायु ही है तथा प्रथम व तृतीयभङ्ग समान है, छठा और सातवांभङ्ग भी समान है, क्योंकि इनमें प्रकृतियोंकी समानता है अतः इन तीनभगबिना यहां ४ ही भंग ग्रहण करना। चारोंगतिसम्बन्धी पूर्वोक्त १२ भंगोंमें से यहां पांचभंग नहीं होते, क्योंकि तिर्यञ्चायु-नरकायुका भंग सम्भव नहीं है, इसलिए उपर्युक्त ७ भंगोंमेंसे चार ही भंग कहे हैं।

अबद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयपंक्तिसम्बन्धी पांचस्थानोंमें भुज्यमानआयुबिना तीनआयु और तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४४ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होनेपर १४० प्रकृतिरूप द्वितीयस्थान है। इन दोनों स्थानोंमें भुज्यमान-चारोंआयुकी अपेक्षा चार-चारभंग हैं तथा मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय होनेपर १३९ प्रकृतिरूप तीसरास्थान है यहां भुज्यमानमनुष्यायुबिना अन्यभंगका अभाव है इसलिए एक ही भंग है। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय होनेपर १३८ प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान है यहां भुज्यमानमनुष्यायु और कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा भुज्यमाननरकायु-तिर्यञ्चायु और देवायुरूप चारभंग हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय होनेपर क्षायिकसम्य-ग्दृष्टिके १३७ प्रकृतिरूप पांचवांस्थान है। यहां भुज्यमान चारआयुकी अपेक्षा चार-भंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बद्धायुष्क-अबद्धायुष्ककी अपेक्षा तृतीयपंक्तिमें आहारकचतुष्करूप चार-चार-प्रकृति घटानेपर दसस्थान होते हैं। यहां प्रथमपंक्तिके समान २३ भंग जानने, क्योंकि यहांपर भी तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व है।

चतुर्थपंक्तिमें बद्धायुष्क व अबद्धायुष्ककी अपेक्षा दसस्थानोंमें तीर्थङ्कर व आहारकचतुष्करूप पांच-पांचप्रकृति घटानेपर दसस्थान होते हैं। यहां द्वितीयपंक्तिके समान ३७ भंग जानना, क्योंकि यहांपर तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व नहीं है। इसप्रकार असंयतगुणस्थानमें सर्वमिलकर ४० सत्त्वस्थान और उनके १२० भंग हैं।

असंयतगुणस्थानके ४० सत्त्वस्थान व १२० भङ्गोंकी संक्षिप्तसन्दृष्टि—

				दो व तीन-आयु रहित	अनंतानुबंधी चतुष्करहित	मिथ्यात्व-रहित	सम्य-ग्मिथ्यात्व-रहित	सम्यक्त्व-रहित	जोड़
				प्रथमपंक्ति					
तीर्थङ्करसहित	बद्धायुष्क	दोआयु रहित	सत्त्व	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९	५ स्थान
			भंग	२	२	२	२	२	१० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीनआयु रहित	सत्त्व	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५ स्थान
			भंग	३	३	१	३	३	१३ भङ्ग
				द्वितीयपंक्ति					
तीर्थङ्कररहित	बद्धायुष्क	दोआयु रहित	सत्त्व	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५ स्थान
			भंग	५	५	३	३	४	२० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीनआयु रहित	सत्त्व	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७	५ स्थान
			भंग	४	४	१	४	४	१७ भङ्ग
				तृतीयपंक्ति					
तीर्थंकरसहित व आहा.चतुष्करहित	बद्धायुष्क	दोआयु रहित	सत्त्व	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५	५ स्थान
			भंग	२	२	२	२	२	१० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीनआयु रहित	सत्त्व	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५ स्थान
			भंग	३	३	१	३	३	१३ भङ्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थपंक्ति								
तीर्थंकर व आहारक चतुष्करहित	बद्धायुष्क	दो आयु रहित	सत्त्व	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५ स्थान
			भंग	५	५	३	३	४	२० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीन आयु रहित	सत्त्व	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३	५ स्थान
			भंग	४	४	१	४	४	१७ भङ्ग
			असंयतगुणस्थानसम्बन्धी सर्वसत्त्वस्थान तथा सर्वभङ्गोंका योग						४० स्थान १२० भङ्ग

असंयतगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थान व भङ्गसम्बन्धी विस्तृतसन्दृष्टि—

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंगसख्या	प्रकृति संख्या	विशेष
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथमस्थान	२	१४६	१४६ (१४८–२, तिर्यञ्चायु वं एक अन्य-आयु) १४६ प्रकृतिकी सत्तावाले जीवोंके चारभङ्ग हैं— १ भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु २. ,, ,, ,, देवायु ३. ,, नरकायु- ,, मनुष्यायु ४. ,, देवायु ,, ,, इन चारभङ्गोंमें से १ व तीसरे भंगमें आयु (नरकायु-मनुष्यायु) समान है, तथा २ व ४थे भंगमें आयु (मनुष्य-देवायु) समान है, इसलिये दोभंग कमकरके २ ही भंग ग्रहण किये हैं।
,,	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथमस्थान	३	१४५	१४५ (उपर्युक्त १४६ प्रकृतिमें से बध्यमानआयु कम करनेसे १४५ प्रकृति रहीं), क्योंकि यहां आयुवन्ध हुआही नहीं, अवद्धायुष्क है। यहां ३ भङ्ग इसप्रकार हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				१. भुज्यमाननरकायु २. भुज्यमानमनुष्यायु ३. भुज्यमानदेवायु ।
असंयत	बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	२	१४२	१४२ (१४८—६ तिर्यञ्चायु, अन्य कोई-आयु, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क) २ भङ्ग इसप्रकार हैं— १. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु । २. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु । अथवा १. भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु । २. " नरकायु- " मनुष्यायु ।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीयस्थान	३	१४१	१४१ (उपर्युक्त १४२—१, बध्यमानआयु) ३ भङ्ग इसप्रकार हैं— १. भुज्यमाननरकायु, २. भुज्यमानदेवायु, ३. भुज्यमानमनुष्यायु ।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा तृतीयस्थान	२	१४१	१४१ (बद्धायुष्कसम्बन्धी द्वितीयस्थानमें कथित १४२—१ मिथ्यात्व) २ भङ्ग बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीय-स्थानके अनुसार जानना । इसमें भुज्यमान-मनुष्यायु है ।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीयस्थान	१	१४०	१४० (उपर्युक्त १४१—१ भुज्यमानमनु-ष्यायु, क्योंकि मनुष्य ही क्षायिकसम्य-क्त्वका प्रारम्भ करनेवाला होता है कारण कि इस क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है । अतः एकही भङ्ग होता है ।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थान	२	१४०	१४० (बद्धायुष्ककी अपेक्षा तृतीयस्थानमें कथित १४१ प्रकृतियोंमें से सम्य-ग्मिथ्यात्वप्रकृति कमकी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				२ भङ्ग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानके अनुसार यहां भी जानना ।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थस्थान	३	१३९	१३९ (उपर्युक्त १४० प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कमकी) ३ भंग यहां इसप्रकार हैं— १. भुज्यमाननरकायु, २. भुज्यमानमनुष्यायु, ३. भुज्यमानदेवायु । क्षायिकसम्यक्त्वको जिसमनुष्यने प्रारंभ किया हो ऐसा कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिजीव देव अथवा नरकगतिमें गया इस अपेक्षासे भुज्यमान ३ आयु होती हैं। अतः भंग तीन हैं ।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा पञ्चम-स्थान	२	१३९	१३९ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानमें कथित १४० प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्व-प्रकृति कमकी) २ भंग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानके समान जानना ।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चम-स्थान	३	१३८	उपर्युक्त १३९ प्रकृतिमें १ बध्यमानआयु कमकरनेपर १३८ प्रकृति शेष रहीं । यहां ३ भंग हैं, वे इसप्रकार हैं— १. भुज्यमानमनुष्यायु, २. भुज्यमानदेवायु, ३. भुज्यमाननरकायु । तीर्थंकरप्रकृति सहित क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीवके १३८ प्रकृतिकी सत्तावाला यह स्थान होता है। इस सत्त्वस्थानवाले जीवके यदि भुज्यमानआयु मनुष्य हो और वह क्षायिकसम्यक्त्वसहित तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध कर चुका है तो उसीभवसे मोक्ष जाता है एवं उसके तप-ज्ञान-निर्वाण ये तीन ही कल्याणक होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				यदि तीसरे भवमें मोक्ष जानेवाला हो तो देवायुका बन्धकर देवगतिमें जाता है वहांपर इसके १३८ प्रकृतिकी सत्ता रहती है। वहांसे मरणकर मनुष्यगतिमें आता है, वहांसे मोक्ष जाता है। इस जीवके पांचों कल्याणक होते हैं। यदि इसमनुष्यने पहले नरकायुका बन्ध किया हो तो नरकमें जावेगा, वहां इसके १३८ प्रकृतिकी सत्ता रहेगी। वहांसे मरणकर मनुष्यभवमें आकर पञ्चकल्याणक होंगे और मोक्ष जावेगा। नरकसे मनुष्यपर्यायमें आकर तीर्थङ्कर होनेवाले जीवके नरकसे निकलनेके ६ माह पहिलेसे ही उपसर्ग नहीं होता। नरक व देवगतिसे मनुष्यभवमें आनेवाले जीवके १३८ प्रकृतिकी सत्ता होती है, किन्तु आयुके ६ माह अवशेष रहनेपर मनुष्यायुका बन्ध हुआ अतः बध्यमान आयुके बढ़नेसे १३९ प्रकृतिकी सत्ता हो जाती है।
असंयत	बद्धायुष्ककी अपेक्षा षष्ठमस्थान	५	१४५	१४५ (१४८-३, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना २ आयु और तीर्थङ्कर) मिथ्यात्वगुणस्थानमें १४५ प्रकृतिकी सत्तावाले बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानमें १२ भंगोंमें से २ पुनरुक्त और ५ समभङ्ग-बिना शेष ५ भङ्ग कहे थे उसीके समान यहां भी ५ भङ्ग जानना।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा षष्ठमस्थान	४	१४४	१४४ (१४८-४, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर). भुज्यमान चारों आयुकी अपेक्षा ही चारभंग कहे हैं।
"	बद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तमस्थान	५	१४१	१४१ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा छठेस्थानमें कथित १४५ प्रकृतिमेंसे अनतानुबन्धी-कषायचतुष्क कम की)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				५ भंगभी बद्धायुष्कके छठेस्थानवत् ही यहां जानने ।
असंयत	अबद्धायुष्क-की अपेक्षा सप्तमस्थान	४	१४०	१४० (अबद्धायुष्ककी अपेक्षा छठेस्थानमें कथित १४४ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क कम की) भुज्यमान चारोंआयुकी अपेक्षाही यहां भी चार भङ्ग हैं ।
,,	बद्धायुष्ककी अपेक्षा अष्टमस्थान	३	१४०	१४० (बद्धायुष्ककी अपेक्षा सप्तमस्थानमें कथित १४१ प्रकृतिमें से १ मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भङ्ग इसप्रकार हैं— १. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु । २. ,, ,, - ,, तिर्यञ्चायु । ३. ,, ,, - ,, मनुष्यायु । ४. ,, ,, - ,, देवायु । उपर्युक्त ४ भङ्गोंमेंसे तीसराभङ्ग भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायुरूप है और वह पुनरुक्त होनेसे उसके बिना शेष तीनभंग यहां जानना चाहिए । यहां पुनरुक्तता का कारण यह है कि भुज्यमान-बध्यमान ये दोनोंही मनुष्यायु हैं ।
,,	अबद्धायुष्क-की अपेक्षा अष्टमस्थान	१	१३९	१३९ (अबद्धायुष्कके सातवेंस्थानमें कथित १४० प्रकृतिमें से मिथ्यात्वप्रकृति कम करनेसे १३९ प्रकृति हैं) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायुसम्बन्धी ।
,,	बद्धायुष्ककी अपेक्षा नवमस्थान	३	१३९	(बद्धायुष्कके आठवेंस्थानमें कथित १४० प्रकृतिमें से सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5223

				१. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु । २. ,, ,, – ,, तिर्यञ्च । ३. ,, ,, – ,, मनुष्य । ४. ,, ,, – ,, देवायु । उपर्युक्त ४ भंगोंमें तीसराभंग पुनरुक्त है क्योंकि वहां भुज्यमान-बध्यमान दोनों ही मनुष्यायु हैं अतः उस भंगके बिना शेष ३ भंगोंको ही यहां ग्रहण किया है ।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा नवमस्थान	४	१३८	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा आठवें स्थानमें कथित १३९ प्रकृतिमें से 'सम्यग्मिथ्यात्व' प्रकृति कम करनेपर १३८ प्रकृति रहीं । फिर कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि हो गया । ४ भंग, भुज्यमान चारोंआयुकी अपेक्षा कहे हैं, क्योंकि पूर्वबद्धायुकी अपेक्षा ऐसा जीव मरणकर चारोंगतियोंमें उत्पन्न हो सकता है ।
,,	बद्धायुष्क की अपेक्षा दशमस्थान	४	१३८	बद्धायुष्कके ९ वें स्थानमें कथित १३९ प्रकृतियोंमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कम करनेसे १३८ प्रकृतिका सत्त्व है । यहां ४ भंग इसप्रकार हैं— १. भुज्यमानमनुष्यायु–बध्यमाननरकायु । २. ,, ,, – ,, तिर्यञ्चायु । ३. ,, ,, – ,, देवायु । ४. ,, तिर्यंचायु– ,, ,, ।
,,	अबद्धायुष्क की अपेक्षा दशमस्थान	४	१३७	अबद्धायुष्कसम्बन्धी ९वें स्थानमें कथित १३८ प्रकृतियोंमें से सम्यक्त्वप्रकृति कम करनेपर १३७ प्रकृतिका सत्त्व है । ४ भंग; भुज्यमान चारों आयुकी अपेक्षासे हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयत	बद्धायुष्ककी अपेक्षा ११वां स्थान	२	१४२	१४२ (१४८–६, तिर्यञ्चायु: अन्य कोई एकआयु, आहारकचतुष्क) बद्धायुष्ककी अपेक्षा दूसरेस्थानमें कथित २ भंगोंके समान ही यहां भी दोभंग हैं।
„	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ११वां स्थान	३	१४१	उपर्युक्त १४२ प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कम करनेपर १४१ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। ३ भंग इसप्रकार हैं— १. भुज्यमाननरकायु, २ भुज्यमानमनुष्यायु, ३. भुज्यमानदेवायु।
„	बद्धायुष्ककी अपेक्षा १२वां स्थान	२	१३८	१३८ (बद्धायुष्कके ११ वें स्थानमें कथित १४२–४ अनन्तानुबन्धी कषाय) २ भंग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा कथित द्वितीयस्थानके समान ही जानना।
„	अबद्धायुष्क-की अपेक्षा १२वां स्थान	३	१३७	१३७ (अबद्धायुष्ककी अपेक्षा कथित ११वें स्थानकी १४१ प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धीकषाय ४ कम की) ३ भंग इसप्रकार हैं— १. भुज्यमाननरकायु, २. भुज्यमानमनुष्यायु, ३. भुज्यमानदेवायु।
„	बद्धायुष्ककी अपेक्षा १३वां स्थान	२	१३७	१३७ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा १२ वें स्थानमें कथित १३८ प्रकृतियोंमें १ मिथ्यात्व-प्रकृति कम की) २ भंग, बद्धायुष्कसम्बन्धी द्वितीयस्थानके समान यहां भी जानना।
„	अबद्धायुष्क-की अपेक्षा १३वां स्थान	१	१३६	१३६ (अबद्धायुष्कके १२ वें स्थानमें कथित १३७ प्रकृतिमेंसे मिथ्यात्वप्रकृति कम की)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				१ भंग, अबद्धायुष्कसम्बन्धी तृतीय-स्थानके समान जानना।
असंयत	बद्धायुष्ककी अपेक्षा १४वां स्थान	२	१३६	१३६ (बद्धायुष्कके १३ वें स्थानमें कथित १३७ प्रकृतिमें से सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति कम की) २ भंग, बद्धायुष्कके दूसरे स्थानके अनुसार यहां भी जानना।
"	अबद्धायुष्कको अपेक्षा १४वां स्थान	३	१३५	१३५ (अबद्धायुष्कके १३ वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से १ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भंग, अबद्धायुष्कके प्रथमस्थानके समान यहां भी जानना।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा १५वां स्थान	२	१३५	१३५ (बद्धायुष्कके १४ वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कमकी) २ भंग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा दूसरे स्थानके समान यहां भी जानना।
"	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा १५वां स्थान	३	१३४	१३४ (अबद्धायुष्कके १४ वें स्थानकी १३५ प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कमकी) ३ भंग, अबद्धायुष्कके प्रथमस्थानके समान यहां भी जानना।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा १६वां स्थान	५	१४१	१४१ (१४८–७. भुज्यमान व बध्यमान-आयुबिना २ आयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) ५ भंग. बद्धायुष्ककी अपेक्षा छठे स्थानके समान यहां भी जानना।
"	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा १६वां स्थान	४	१४०	उपर्युक्त १४१ प्रकृतिमें से १ बध्यमान आयु कम करनेसे १४० प्रकृति हैं। ४ भंग, भुज्यमानचारोंआयुकी अपेक्षा जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १७वां स्थान	५	१३७	१३७ (बद्धायुष्कके १६ वें स्थानमें कथित १४१ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धीकषाय ४ कम की) ५ भंग, बद्धायुष्कके छठे स्थानवत् जानना ।
,,	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १७वां स्थान	४	१३६	१३६ (अबद्धायुष्कके १६ वें स्थानकी १४० प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की) ४ भंग, भुज्यमान चारोंआयुकी अपेक्षा जानना ।
,,	बद्धायुष्कको अपेक्षा १८वाँस्थान	३	१३६	१३६ (बद्धायुष्कके १७ वें स्थानकी १३७ प्रकृतिमेंसे १ मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भंग, बद्धायुष्कके ६ वें स्थानके समान जानना ।
,,	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १८वां स्थान	१	१३५	१३५ (अबद्धायुष्कके १७ वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमेंसे १ मिथ्यात्वप्रकृति कम की) १ भङ्ग, अबद्धायुष्कके ८ वें स्थानके समान है ।
,,	बद्धायुष्क की अपेक्षा १९वांस्थान	३	१३५	१३५ (बद्धायुष्कके १८ वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से १ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भङ्ग, बद्धायुष्कके ९ वें स्थानके समान ।
,,	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १९वांस्थान	४	१३४	१३४ (अबद्धायुष्कके १८ वें स्थानकी १३५ प्रकृतिमें से सम्यग्मिथ्यात्व कम की) ४ भंग, भुज्यमान चारोंआयुकी अपेक्षा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा २०वां स्थान	४	१३४	१३४ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा १९ वें स्थानकी १३५ प्रकृतिमें से सम्यक्त्वप्रकृति कम की) ४ भङ्ग, बद्धायुष्कके १० वें स्थानके समान ही जानना ।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा २०वां स्थान	४	१३३	१३३ (अबद्धायुष्कके १९ वें स्थानकी १३४ प्रकृतिमेंसे १ सम्यक्त्वप्रकृति कम की) ४ भङ्ग, अबद्धायुष्कके १० वें स्थान के समान हैं ।

आगे देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्त इन तीनगुणस्थानोंमें स्थान और भङ्ग कहते हैं—

देसतियेसुवि एवं, भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो ।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा ॥३८२॥

अर्थ—असंयतगुणस्थानके समान देशसंयतादि तीनगुणस्थानोंमें ४०-४० सत्त्व-स्थान जानना और सर्वस्थानोंमें एक-एक भङ्ग है, किन्तु देशसंयतगुणस्थानकी द्वितीय और चतुर्थपंक्तिके (बद्धायुष्क-अबद्धायुष्क) प्रथम व द्वितीयस्थानमें दो-दो भङ्ग जानना ।

विशेषार्थ—देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थानमें भी असंयतगुणस्थानके समान दो-छह-सात-आठ और ९ प्रकृतिरहित पांचस्थान बराबर लिखना तथा इसके नीचे-नीचे चारपंक्ति बद्धायुष्ककी करना और उसके नीचे बध्यमानएक-एकआयु घटा-कर अबद्धायुष्ककी भी चार ही पंक्ति करना । इन पंक्तियोंमें प्रथमपंक्ति तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्कसहित है अतः यहां कोई प्रकृति कम नहीं की, द्वितीयपंक्तिमें तीर्थङ्करप्रकृति कम करना । तृतीयपंक्तिमें तीर्थंकरप्रकृति मिलाना और आहारक-चतुष्क कम करना, चतुर्थपक्तिमें तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क ये पांच प्रकृति कम करना इसप्रकार बद्धायुष्क व अबद्धायुष्ककी आठपंक्तिके ४० स्थान हुए । यहां बद्धा-युष्कके जो २० स्थान हैं वहां भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायु ऐसा एक-एक ही भंग है, इसके बिना अन्य तीनआयुका बन्ध होनेपर देशव्रत व महाव्रत नहीं होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(गाथा ३३४)। अबद्धायुष्कके जो २० स्थान हैं वहां मात्र भुज्यमानमनुष्यायुसम्बन्धी एक-एक ही भङ्ग है, किन्तु विशेषता इतनी है कि देशसंयतगुणस्थानमें तीर्थङ्कर-प्रकृतिरहित द्वितीयपंक्ति और चतुर्थपंक्तिके दसस्थानोंमेंसे प्रथम व द्वितीयस्थानमें दो-दो भङ्ग हैं, तथा बद्धायुष्ककी द्वितीय और चतुर्थपंक्तिके प्रथम व द्वितीयस्थानमें तो भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायु तथा भुज्यमानतिर्यञ्चायु व बध्यमानदेवायुरूप दो दो भंग हैं। अबद्धायुष्ककी द्वितीय व चतुर्थपंक्तिके प्रथम व द्वितीयस्थानमें भुज्यमानमनुष्यायु और भुज्यमानतिर्यञ्चायुरूप दो-दो भग हैं। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानके ४० स्थानोंमें ४८ भंग हुए तथा प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ४०-४० स्थानोंमें एक-एकभङ्गकी अपेक्षा ४०-४० भङ्ग हैं।

देशसंयतगुणस्थानके ४० सत्त्वस्थानोंके ४८ भङ्गसंबंधोसन्दृष्टि—

			प्रथमपंक्ति				
			दो व तीन-आयु रहित प्रथमस्थान	अनंतानुबंधी चतुष्करहित द्वि० स्थान	मिथ्यात्व-रहित तृतीय स्थान	सम्यग्मिथ्यात्व-रहित चतुर्थस्थान	सम्यक्त्व-रहित पंचमस्थान
तीर्थङ्कर व आ० चतुष्कसहित	बद्धायुष्क	प्रकृति	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९
		भंग	१	१	१	१	१
	अबद्धायुष्क	प्रकृति	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८
		भंग	१	१	१	१	१
द्वितीयपंक्ति (तीर्थंकर रहित)							
आहारक चतुष्क-सहित	बद्धायुष्क	प्रकृति	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८
		भंग	२	२	१	१	१
	अबद्धायुष्क	प्रकृति	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७
		भंग	२	२	१	१	१
तृतीयपंक्ति							
तीर्थङ्करसहित	बद्धायुष्क	प्रकृति	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५
		भंग	१	१	१	१	१
	अबद्धायुष्क	प्रकृति	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४
		भंग	१	१	१	१	१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

			चतुर्थपंक्ति				
तीर्थंकर व आहारक चतुष्करहित	बद्धायुष्क	प्रकृति	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४
		भंग	२	२	१	१	१
	अबद्धायुष्क.	प्रकृति	१४०	१३६	१३५	१३४	१३२
		भंग	२	२	१	१	१

आगे उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान और भंग कहनेकी इच्छासे आचार्य सर्वप्रथम अपूर्वकरणगुणस्थानमें स्थान और भंगोंको कहते हैं—

दुगछक्कतिणिवग्गेणूणापुव्वस्स चउपडिं किच्चा ।
णभमिगिचउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३८३॥

अर्थ—उपशमश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें दो-छह, तीनका वर्ग (३×३) अर्थात् ९ प्रकृतिसे हीन तीनस्थान जानना। उनस्थानोंकी ४ पंक्ति करके क्रमसे शून्य-१-४ और ५ प्रकृति कम करें तो बद्धायुष्कके स्थान होते हैं और इतर अर्थात् अबद्धायुष्कके स्थानोंमें बद्धायुष्कके स्थानोंमेंसे भी एक-एक प्रकृति कम करना चाहिए। इसप्रकार २४ स्थान हुए।

विशेषार्थ—उपशमकअपूर्वकरणगुणस्थानमें २-६ व ९ प्रकृतियोंसे रहित तीनस्थान हैं और इनकी चारपक्ति करना। प्रथमपंक्तिमें शून्य, द्वितीयपंक्तिमें तीर्थङ्करप्रकृति कम करना, तृतीयपंक्तिमें आहारकचतुष्क घटाना, चतुर्थपक्तिमें तीर्थङ्कर व आहारकचतुष्क, इन पांचप्रकृतियोंको कम करना। इसप्रकार बद्धायुष्कके १२ स्थान हुए तथा अबद्धायुष्ककी चारों पंक्तियोंमें सर्वस्थानोंमें अपने-अपने नीचे एक-एक बध्यमानदेवायु घटानेपर १२ स्थान होते हैं। इसप्रकार आठपक्तियोंमें तीन-तीनस्थान होनेसे सर्व २४ स्थान होते हैं।

अब जो प्रकृतियां घटाईं उनके नाम तथा सत्त्वस्थानोंके भङ्ग कहते हैं—

णिरियतिरियाउ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि ।
हीणा एदे णेया भंगे एक्केक्कगा होंति ॥३८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नरक और तिर्यञ्च ये दोनोंआयु, प्रथम (अनन्तानुबन्धी) चारकषाय इसप्रकार ६ तथा ६ तो ये और ३ दर्शनमोहनीय ऐसी सर्व ९ प्रकृति सो इन प्रकृतियों से हीन ३ स्थान जानने। इनके भंग एक-एकहो होते हैं।

विशेषार्थ—नरक व तिर्यञ्चायु, ये दोप्रकृति घटानेपर १४६ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान है। नरक-तिर्यञ्चायु और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन छहप्रकृतिबिना १४२ प्रकृतिरूप द्वितीयसत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ६ और ३ दर्शनमोहनीयकी इन ९ प्रकृतिके बिना १३९ प्रकृतिरूप तृतीयस्थान है। इन तीनों स्थानोंकी चारपंक्ति करना, यहां प्रथमपंक्तिमें तो एक भी प्रकृति कम नहीं होगी, द्वितीयपंक्तिमें एक तीर्थङ्करप्रकृति कम करके तीनस्थान जानने। तृतीयपंक्तिमें आहारकचतुष्करूप चार-चारप्रकृति कमकरके तीनस्थान जानना। चतुर्थपंक्तिमें आहारकचतुष्क और तीर्थङ्कर ये ५-५ प्रकृति कमकरके तीनस्थान जानने। इसप्रकार ये १२ स्थान बद्धायुष्ककी अपेक्षासे हैं। इन्हीं स्थानोंकी प्रकृतियोंमेंसे बध्यमानदेवायु घटानेपर अबद्धायुष्कके १२ स्थानोंमें प्रकृतियोंकी संख्या जानना। इन २४ स्थानोंमें एक-एक ही भंग होता है। यहां बध्यमानआयुके स्थानोंमें तो भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायु रूप ही एकभंग जानना और अबद्धायुष्कस्थानोंमें भुज्यमानमनुष्यायुरूप एकभंग जानना। इसप्रकार उपशमकअपूर्वकरणगुणस्थानवर्तीजीवोंके २४ स्थान और २४ ही भंग होते हैं।

उपशमकअपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थान—भङ्ग और प्रकृतिसंख्यासम्बन्धी विशेषविवरणसहित संदृष्टि—

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंगसंख्या	प्रकृति संख्या	विशेष
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थान	१	१४६	१४६ (१४८—२, नरकायु-तिर्यञ्चायु) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमान-देवायु।
"	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थान	१	१४५	१४५ (उपर्युक्त १४६ प्रकृतिमें से १ बध्यमानआयु कम करनेपर १४५ प्रकृति-की सत्ता)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				१ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु,-बध्यमान-देवायु ।
उपशमक-अपूर्वकरण	बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान	१	१४२	१४२ (बद्धायुष्कके प्रथमस्थानकी १४६ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी चारकषाय कम की)
				१ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमान-देवायु ।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीयस्थान	१	१४१	१४१ (१४२ उपर्युक्त प्रकृतियोंमेंसे १ बध्य-मानआयु कम करनेपर १४१ प्रकृति की सत्ता है)
				१ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु ।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा तृतीयस्थान	१	१३९	बद्धायुष्कसम्बन्धी द्वितीयस्थानकी १४२ प्रकृतियोंमेंसे दर्शनमोहनीयकी तीन-प्रकृति कम की ।
				यह जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होनेसे तीर्थङ्करप्रकृतिवाला हो सकता है ।
				१ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमान-देवायु ।
"	अबद्धायूष्क की अपेक्षा तृतीयस्थान	१	१३८	उपर्युक्त १३९ प्रकृतिमेंसे १ बध्यमान-आयु कम की ।
				१ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु ।
"	बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थान	१	१४५	१४५ (१४८—३, आयु २, तीर्थङ्कर)
				१ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमान-देवायु ।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थस्थान	१	१४४	उपर्युक्त १४५ प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कम करनेसे १४४ प्रकृतिकी सत्ता है ।
				१ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशमक-अपूर्वकरण	बद्धायुष्ककी अपेक्षा पञ्चमस्थान	१	१४१	बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानकी १४५ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की। १ भङ्ग, मनुष्यायु (भुज्यमान)-बध्यमानदेवायु।
„	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा पञ्चमस्थान	१	१४०	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानकी १४४ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की। १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
„	बद्धायुष्ककी अपेक्षा ६ठा स्थान	१	१३८	बद्धायुष्ककी अपेक्षा पञ्चमस्थानकी १४१ प्रकृतिमें से दर्शनमोहनीयकी ३ प्रकृति कम की हैं। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
„	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा ६ठा स्थान	१	१३७	उपर्युक्त १३८ प्रकृतिमेंसे १ बध्यमानआयु कम करनेपर १३७ प्रकृतियोंकी सत्ता है। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
„	बद्धायुष्क की अपेक्षा ७वां स्थान	१	१४२	१४२ (१४८–६, २ आयु, आहारकचतुष्क) १ भङ्ग भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
„	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ७वां स्थान	१	१४१	१४१ (उपर्युक्त १४२ प्रकृतिमें से १ बध्यमानआयु कमकी) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
„	बद्धायुष्कको अपेक्षा ८वां स्थान	१	१३८	१३८ (बद्धायुष्कके ७ वें स्थानसम्बन्धी १४२ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशमक-अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ८वां स्थान	१	१३७	१३७ (उपर्युक्त १३८ प्रकृतिमें से १ बध्यमानआयु कम की) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
"	बद्धायुष्क की अपेक्षा ९वां स्थान	१	१३५	१३५ (बद्धायुष्कके ८ वें स्थानकी १३८ प्रकृतियोंमें से दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति कम की) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवाय।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ९वां स्थान	१	१३४	१३४ (उपर्युक्त १३५ प्रकृतिमें से १ बध्यमानआयु कम की) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
"	बद्धायुष्क की अपेक्षा १०वां स्थान	१	१४१	१४१ (१४८—७, २ आयु-तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १०वां स्थान	१	१४०	१४० (उपर्युक्त १४१ प्रकृतिमें से १ बध्यमानआयु कम करनेपर १४० प्रकृतिकी सत्तावाला स्थान बना) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
"	बद्धायुष्क की अपेक्षा ११वां स्थान	१	१३७	१३७ (बद्धायुष्कके १० वें स्थानसम्बन्धी १४१ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी चार कषाय कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
"	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ११वां स्थान	१	१३६	१३६ (उपर्युक्त १३७ प्रकृतिमें से १ बध्यमानआयु कम की) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशमक-अपूर्वकरण	बद्धायुष्ककी अपेक्षा १२वांस्थान	१	१३४	१३४ (बद्धायुष्कसम्बन्धी ११ वें स्थानकी १३७ प्रकृतिमें से दर्शनमोहनीयकी ३ प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमान-देवायु।
„	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १२वांस्थान	१	१३३	१३३ (अबद्धायुष्कसम्बन्धी ११ वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से दर्शनमोहनीयकी ३ प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।

अथावन्तर उपशमककी अपेक्षा अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायमें तथा उपशान्तकषायमें एवं क्षपकअपूर्वकरणमें सत्त्वस्थान और भङ्ग कहते हैं—

एवं तिसु उवसमगे, खवगापुव्वम्मि दसहिं परिहीणं।
सव्वं चउपडि किच्चा, णभमेक्कं चारि पण हीणं ॥३८५॥

अर्थ—उपशमकअपूर्वकरणगुणस्थानके समान उपशमकअनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तकषाय इन तीनगुणस्थानोंमें भी सत्त्वस्थान और भङ्ग (गाथा ३८३ के समान) २४-२४ ही जानना। क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानमें १० प्रकृतिरहित एकस्थानकी चारपंक्तियां करके क्रमसे शून्य-१-४ और ५ प्रकृतियां कम करना चाहिए। इसप्रकार स्थान ४ और उसके भङ्ग भी चार होते हैं।

विशेषार्थ—क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानमें भुज्यमानमनुष्यायुबिना तीनआयु, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और दर्शनमोहनीयकी ३, इन दसप्रकृतिबिना १३८ प्रकृतिरूप एकसत्त्वस्थानकी चारपंक्ति करना। यहां पूर्वके समान ही प्रथमपंक्तिमें शून्य, द्वितीयपंक्तिमें तीर्थङ्कर, तृतीयपंक्तिमें आहारकचतुष्क तथा चतुर्थपंक्तिमें तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क घटानेपर क्रमशः १३८, १३७, १३४ और १३३ प्रकृतिरूप चारस्थान होते हैं। इनमें भुज्यमानमनुष्यायुरूप एक-एक ही भङ्ग है अतः चार ही भङ्ग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानमें सत्त्वस्थान और भङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंगसंख्या	प्रकृति संख्या	विशेष
क्षपकअपूर्व-करण	१ ला	१	१३८	१३८ (१४८—१०, भुज्यमानआयुविना ३ आयु, अनन्तानुवन्धी ४ कषाय दर्शन-मोहनीय ३) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
,,	२ रा	१	१३७	उपर्युक्त १३८ में से १ तीर्थङ्करप्रकृति कम की। १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
,,	३ रा	१	१३४	१३४ (प्रथम सत्त्वस्थानकी १३८ प्रकृतिमेंसे आहारकचतुष्करूप ४ प्रकृति कम की) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।
,,	४ था	१	१३३	१३३ (प्रथमसत्त्वस्थानसम्बन्धी १३८ प्रकृति में से आहारकचतुष्क और तीर्थङ्कर-प्रकृति कम को) १ भङ्ग, भुज्यमानमनुष्यायु।

अब क्षपकअनिवृत्तिकरणमें सत्त्वस्थान और भङ्ग कहते हैं—

एदे सत्तट्ठाणा, अणियट्टिस्सवि पुणोवि खविदेवि।
सोलस अट्ठेक्केक्कं, छक्केक्कं एक्कमेक्क तहा ॥३८६॥
णिरयदुगं तिरियदुगं, विगतिगचउरक्खजादिथीणतियं।
उज्जोवं आतावेगि, साहारणसुहुम थावरयं ॥३८६ क॥
मज्झडकसाय संढथीवेदं हस्सपमुहछक्कसाया।
पुरिसो कोहो माणो, अणियट्टीभागहीण पयडिओ ॥३८६ ख॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—क्षपकअपूर्वकरणके समान क्षपकअनिवृत्तिकरणमें भी चारस्थान हैं और १६-८-१-१-६-१-१ और १ प्रकृति कम करनेसे आठस्थान अन्य भी हैं। इन आठ की भी चारपंक्तियां करके पूर्ववत् क्रमसे शून्यादि घटानेसे ३२ भेद हो जाते हैं। इसप्रकार ४ और ३२ मिलकर क्षपकअनिवृत्तिकरणके ३६ स्थान जानना ।।३८६।।

नरकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सुक्ष्म, स्थावर, मध्यकी आठकषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय पुरुषवेद, क्रोध और मान ये प्रकृतियां अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षय होती हैं ।।३८६ क ख।।

विशेषार्थ—गाथा ३८६ में जिन १६-८-१-१-६-१-१-१ प्रकृतियोंको अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें कम करनेके लिए कहा गया है उनका नामोल्लेख मात्र गाथा ३८६ क ख में किया है। क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें अनुक्रमसे एकेन्द्रियादि चारजाति, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा ये १६ तथा आगे अप्रत्याख्यानकषाय ४, प्रत्याख्यानकषाय ४ ये आठ, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, ६ (हास्यादि नोकषाय) पुरुषवेद, सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान ये प्रकृतियां कम करनेपर क्रमशः १२२-११४-११३-११२-१०६-१०५-१०४-१०३ प्रकृतिरूप आठस्थान हैं। इन आठस्थानोंकी चारपंक्ति करना और प्रथमपंक्तिमें कोई भी प्रकृति कम नहीं की, द्वितीयपंक्तिमें तीर्थङ्करप्रकृति घटाई, तृतीयपंक्तिमें आहारकचतुष्क घटाया और चतुर्थपंक्तिमें तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क कम किया। इसप्रकार चारपंक्तिकी अपेक्षा ३२ स्थान हुए तथा अपूर्वकरणवत् ४ स्थान कहे ये सर्व (३२+४) ३६ स्थान क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें हैं।

अब इन स्थानोंके भंग दो गाथाओंसे कहते हैं—

> भंगा एक्केक्का पुण, णउंसयक्खविदचउसु ठाणेसु।
> विदियतुरियेसु दो दो, भंगा तित्थयरहीणेसु ।।३८७।।

अर्थ—क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ३६ स्थानोंमें एक-एकभंङ्ग है, किन्तु जहां नपुंसकवेदका क्षय होता है ऐसे चारों स्थानोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तारहित दूसरी और चौथीपंक्तिके दोस्थानोंमें दो-दोभङ्ग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थीपुरिसोदयचडिदे, पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि ।
संढस्सुदये पुव्वं, थीखविदं संढमत्थित्ति ॥३८८॥

अर्थ—जो जीव भावस्त्रीवेद अथवा पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़ते हैं वे पहले भावनपुंसकवेदका क्षय करते हैं, किन्तु भावस्त्रीवेदको सत्ता वहां रहती है। भावनपुंसकवेदके उदयसहित जो क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं वे पहले भावस्त्रीवेदका क्षय करते हैं, उनके पूर्वमें कहे गए दोस्थानोंमें नपुंसकवेदकी सत्ता रहती है। इसप्रकार दोस्थानोंके दो-दोभङ्ग हैं। ऐसा होनेपर ३६ स्थानोंके ३८ भङ्ग जानना तथा पूर्वमें उपशमकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानके २४ स्थानसम्बन्धी २४ भङ्ग कहे थे सो ये सर्व मिलकर (३८+२४) ६२ भंग हुए। इस मतके अनुसार मायाके सत्त्वरहित चारपंक्तियोंके चारस्थान नहीं कहे हैं तथा **'चदुसेक्के बादरे'** इत्यादि जो गाथा आगे कहेंगे उस मतके अनुसार मायाके सत्त्वरहित चारस्थान होते हैं।

क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ३६ सत्त्वस्थान व उनके ३८ भंगों की सन्दृष्टि—

नरक, तिर्यञ्च व देवायु रहित	सत्त्व प्र०	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
	भङ्ग	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तीर्थङ्कर रहित	सत्त्व प्र०	१३७	१२१	११३	११२	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
	भङ्ग	१	१	१	२	१	१	१	१	१
आहारक चतुष्करहित	सत्त्व प्र०	१३४	११८	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
	भङ्ग	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तीर्थङ्कर व आ० चतुष्क रहित	सत्त्व प्र०	१३३	११७	१०९	१०८	१०७	१०१	१००	९९	९८
	भङ्ग	१	१	१	२	१	१	१	१	१

जहां एकभङ्ग है वहां भुज्यमानमनुष्यायुरूप भंग जानना। दो-दोभंगोंका स्पष्टीकरण इसप्रकार है कि जिसके तीर्थङ्कर प्रकृतिकी सत्ता नहीं है ऐसे जीवके यदि क्षपकश्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें स्त्रीवेदका उदय हो तो वह पहले नपुंसकवेदका नाश करके पश्चात् स्त्रीवेदका नाश करेगा, किन्तु यदि श्रेणी चढ़तेहुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नपुंसकवेदका उदय है तो पहले स्त्रीवेदका नाश करेगा पश्चात् नपुंसकवेदका नाश होगा इसलिए दो-दोभंग होते हैं। अर्थात् नपुंसकवेदरहित स्त्रीवेदसहित १ भंग और दूसरा स्त्रीवेदरहित नपुंसकवेदसहित इसप्रकार दोभंग जानना।

अब क्षपकसूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषायगुणस्थानमें सत्त्वस्थान और भंग कहते हैं—

अणियट्टिचरिमठाणा, चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स।
ते इगिदोण्णिविहीणं, खीणस्सवि होंति ठाणाणि ॥३८९॥

अर्थ—क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें सञ्ज्वलनमानरहित १०३ प्रकृतिरूप स्थान कहा था उसकी चारपंक्तियोंमें क्रमसे शून्य-एक-चार और पांचप्रकृति घटानेसे चारस्थान कहे थे इन चारोंमें सञ्ज्वलनमाया घटानेसे १०२-१०१-९८ और ९७ प्रकृतिरूप स्थान क्षपकसूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके होते हैं तथा इन चारों ही स्थानोंमें सञ्ज्वलनलोभ घटानेपर १०१-१००-९७ और ९६ प्रकृतिरूप स्थान क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त रहते हैं और इन चारोंस्थानोंमें निद्रा-प्रचलाप्रकृति घटानेपर ९९-९८-९५ और ९४ प्रकृतिरूप चारस्थान क्षीणकषायगुणस्थानके चरमसमयमें होते हैं।

आगे सयोगी-अयोगीगुणस्थानमें स्थान और भंग कहते हैं—

ते चोद्दसपरिहीणा, जोगिस्स अजोगिचरिमगेवि पुणो।
बावत्तरिमडसट्ठिं, दुसु दुसु हीणेसु दुगदुगा भङ्गा ॥३९०॥

अर्थ—क्षीणकषायगुणस्थानके चरमसमयसंबंधी चारस्थानोंमें १४ प्रकृतियां कम करनेपर ८५ आदि प्रकृतिरूप चारस्थान सयोगकेवलीगुणस्थानमें होते हैं और वे अयोगकेवलीके द्विचरमसमयपर्यंत रहते हैं। सयोगकेवलीसंबंधी चारस्थानोंमेंसे प्रथम और द्वितीयस्थानमें ७२ प्रकृतियां तथा तीसरे-चौथेस्थानमें ६८ प्रकृतियां घटानेपर अयोगकेवलीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यंत चारस्थान होते हैं। यहां पुनरुक्तता होनेसे दोही स्थान जानना। अंतिम दोसमयवर्ती जो दो-दोस्थान हैं उनमें दो-दोभंग हैं।

विशेषार्थ—क्षीणकषायगुणस्थानके चरमसमयसम्बन्धी चारस्थानोंमें से ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४ और अन्तराय ५ ये १४ प्रकृति घटानेपर ८५-८४-८१ और ८० प्रकृतिरूप चारस्थान सयोगीगुणस्थानमें और अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहते हैं। तथा इनमें पहलेस्थानमें ७२ प्रकृतियां और दूसरेस्थानमें भी ७२ प्रकृतियां घटानेसे १३ व १२ प्रकृतिरूप दोस्थान होते हैं। और तृतीय-चतुर्थस्थानमें ६८ प्रकृतियां घटानेसे १३ व १२ प्रकृतिरूप दोस्थान होते हैं।

बिदियंतेरसबारसठाणं पुणरुत्तमिदि विहायपुणो।
दुसु सादेदरपयडी, परियट्टणदो दुगदुगा भंगा ॥३९० क॥

अर्थ—अयोगीजिन के तृतीय व चतुर्थस्थानमें जो दुबारा १३ व १२ प्रकृतिके स्थान बने हैं वे पुनरुक्त होनेसे छोड़नेयोग्य हैं। इन १३ व १२ प्रकृतिके सत्त्वस्थानोंमें साता व असातावेदनीय प्रकृतियोंके बदलनेसे दो-दोभंग जानना। किसी जीवके साताका ही सत्त्व रह जाय और अन्य किसी जीव (अयोगीजिन) के असातावेदनीयका सत्त्व रह जाता है। इसप्रकार साता व असाताकी अपेक्षा दो-दोभंग होते हैं।

आगे "दुगछक्कतिण्णिवग्गे" इत्यादि गाथा ३८३ में पहले अनन्तानुबन्धीसहित आठस्थान उपशमश्रेणीवालोंके कहे थे वे श्री कनकनन्दीआचार्यके पक्षमें नहीं हैं इत्यादि विशेषकथनपूर्वक उन आठस्थानोंके भंग चारगाथाओंमें कहते हैं—

णत्थि अणं उवसमगे, खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठा य।
पच्छा सोलादीणं, खवणं इदि केइं णिद्दिट्ठं ॥३९१॥

अर्थ—श्रीकनकनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तीके सम्प्रदायमें इसप्रकार कहा है कि उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वसहित १४६ प्रकृतियोंके सत्त्वको आदि लेकर बद्धायुष्क और अबद्धायुष्ककी चारपंक्तियोंमें जो आठस्थान कहे थे वे नहीं है इसलिए जो २४ स्थान कहे थे उनमें आठस्थान कम कर देनेपर १६ ही स्थान हैं। क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती प्रथम तो अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप आठकषायोंका क्षय करते हैं पश्चात् १६ आदि प्रकृतियोंका क्षय करते हैं ऐसा किन्हीं आचार्योंके मतानुसार कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो आठस्थान कम होते हैं उनका विवरण इसप्रकार है—

बद्धायुष्ककी अपेक्षा					अबद्धायुष्ककी अपेक्षा				
प्रथमस्थान	१४६	प्रकृतियुक्त		१ भङ्ग	प्रथमस्थान	१४५	प्रकृतियुक्त		१ भङ्ग
द्वितीय "	१४५	"	"	१ भङ्ग	द्वितीय "	१४४	"	"	१ भङ्ग
तृतीय "	१४२	"	"	१ भङ्ग	तृतीय "	१४१	"	"	१ भङ्ग
चतुर्थ "	१४१	"	"	१ भङ्ग	चतुर्थ "	१४०	"	"	१ भङ्ग
				सर्वं ४ भङ्ग					सर्वं ४ भङ्ग

अन्यआचार्योंके मतानुसार क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सत्त्वस्थान व उनकी प्रकृतिसंख्या—

	१३८	१३०	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
तीर्थङ्कर-रहित	१३७	१२९	११३	११२	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
आहारक-चतुष्करहित	१३४	१२६	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
तीर्थंकर और आहा०चतुष्क-रहित	१३३	१२५	१०९	१०८	१०७	१०१	१००	९९	९८

अणियट्टिगुणट्ठाणे, मायारहिदं च ठाणमिच्छंति ।
ठाणा भंगपमाणा, केई एवं परूवेंति ॥३९२॥

अर्थ—कोई आचार्य "अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें मायाकषाय रहित चारस्थान हैं" ऐसा मानते हैं । तथा कोई आचार्य स्थानोंको भंगके प्रमाण अर्थात् दोनोंको एकसी संख्या मानते हैं ।

इसप्रकारकी मान्यता होनेपर स्थान और भंगोंकी संख्या कहते हैं—

अट्ठारह चउ अट्ठं, मिच्छतिये उवरि चाल चउठाणे ।
तिसु उवसमगे संते, सोलस सोलस हवे ठाणा ॥३९३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मिथ्यात्वादि तीनगुणस्थानोंमें पूर्वोक्तप्रकार १८-४ और ८ स्थान हैं। आगे असंयतादि चारगुणस्थानोंमें ४०-४० स्थान हैं। उपशमकअपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय तथा उपशान्तमोह इन चारगुणस्थानोंमें १६-१६ स्थान हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें १८, सासादनगुणस्थानमें ४, मिश्रगुणस्थानमें ८, असंयतगुणस्थानमें ४०, देशसंयतगुणस्थानमें ४०, प्रमत्तगुणस्थानमें ४०, अप्रमत्तगुणस्थानमें ४० स्थान हैं। उपशमकअपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतमोह इन चारों गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वरहित बद्धायुष्क-अबद्धायुष्कसम्बन्धी चारपंक्तिके आठस्थान हैं अतः सर्व ३२ स्थान तथा क्षपकअपूर्वकरणमें पूर्वोक्त चारस्थान हैं, क्षपकअनिवृत्तिकरणमें ३६ स्थान तो पूर्वोक्त और सञ्ज्वलनमायारहित चारस्थान जो सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें कहे थे वे यहां अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ही कहे हैं। इसप्रकार पूर्वोक्त ३६ और मायाकषायंरहित ४ ऐसे (३६+४) ४० स्थान हैं। क्षपकसूक्ष्मसाम्परायमें चार, क्षीणकषायमें आठ, सयोगीके चार और अयोगीके पूर्वोक्त ६ स्थान जानना।

अब इन स्थानोंके भंगोंकी संख्या कहते हैं—

पण्णेकारं छक्कदि, बीससयं अट्ठदाल दुसु तालं।
विसडतिगणं वीसं, सोलट्ठ य चारि अट्ठेव ॥३६४॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंके क्रमसे पूर्वोक्तप्रकार ५०-११-३६-१२०-४८-४०-४० तथा उपशम-क्षपक इन दोनों श्रेणियोंके मिलकर २०-३८-२०-१६-८-४-८ भंग जानना। यहांपर गुरुओंके सम्प्रदायभेदसे अनेकप्रकारका कथन किया है वह भी श्रद्धा करनेयोग्य है, क्योंकि इनकी अपेक्षाका निश्चय साक्षात् केवली-श्रुतकेवलीबिना नहीं हो सकता है।

विशेषार्थ—इन स्थानोंके भंग पूर्वोक्तप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें ५०, सासादनगुणस्थानमें १२, इनमेंसे बद्धायुष्कसम्बन्धीस्थानमें देवअपर्याप्तक भेद निकालकर ११ भग हैं। जिसके देवायुका बन्ध हुआ है ऐसे द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिजीवका सासादनगुणस्थानमें मरण नहीं होता ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, सो इनकी अपेक्षा ही ११ भंग हैं। मिश्रगुणस्थानमें ३६, असंयतगुणस्थानमें १२०, देशसंयतगुणस्थानमें ४८, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ४०-४०, अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती उपशमकके १६ और क्षपकमें चार इसप्रकार २० स्थान। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमे उपशमकके पूर्वोक्त १६, क्षपकके ३६ तथा नपुंसकवेद में क्षपणास्थानके चारस्थानोंमें तीर्थङ्कररहित दूसरी व चौथीपंक्तिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री-नपुंसकवेदके बदलनेसे दो भंग होते हैं तथा मायारहित चारस्थानके चारभंग ये सर्व मिलकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ५८ भंग हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशमकमें १६, क्षपकमें चार इसप्रकार सर्व (१६+४) २० भंग हैं। उपशान्तमोहगुणस्थानमें १६, क्षीणकषायमें ८ स्थानोंके ८ भंग, सयोगीगुणस्थानके ४, अयोगीमें ६ स्थानोंके आठभंग जानना।

अब सत्त्वस्थानाधिकारको पूर्ण करनेके इच्छुक आचार्य इसके पढ़नेका फल बताते हैं—

एवं सत्तट्ठाणं, सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ, सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ॥३९५॥

अर्थ—इसप्रकार सत्त्वस्थानका विस्तारसहित मैंने वर्णन किया। इसको सम्यक् प्रकार जो पढ़े, सुने अथवा भावनाकरे वह निर्वाणसुखको प्राप्त होता है।

वरइंदणंदिगुरुणो, पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा, सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

अर्थ—आचार्योंमें प्रधान श्रीमद् इन्द्रनंदीभट्टारकके पास सम्पूर्णसिद्धान्तको सुनकर श्रीकनकनंदि सिद्धांतचक्रवर्तीके द्वारा यह सत्त्वस्थान सम्यंक्प्रकारसे प्ररूपण किया गया।

अब आचार्य स्वयंको चक्रवर्तीके समान बताते हुए इस सत्त्वस्थान कथनके अधिकारको समाप्त करते हैं—

जह चक्केण य चक्की, छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया, छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

अर्थ—जिसप्रकार चक्रवर्तीने भरतक्षेत्रके छहखण्डोंको चक्ररत्नके द्वारा निर्विघ्नरूपसे अपने वशमें किया उसीप्रकार मैंने भी बुद्धिरूपीचक्रसे जीवस्थान-क्षुद्रकबन्ध-बन्धस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धके भेदसे षट्खण्डागमरूप शास्त्रसमुद्रमें भले प्रकार अवगाहन किया है।

इसप्रकार आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामा हिन्दीटीकामें सत्त्वस्थानभंगप्ररूपक तृतीयअधिकार सम्पूर्ण हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ त्रिचूलिका अधिकार ।

अब त्रिचूलिकाधिकार कहनेकी प्रतिज्ञा करतेहुए नमस्कारात्मक मङ्गल करते हैं—

असहायजिणवरिंदे, असहायपरक्कमे महावीरे ।
पणमिय सिरसा वोच्छं, तिचूलियं सुणह एयमणा ॥३९८॥

अर्थ—इन्द्रियादिककी सहायतासे रहित है ज्ञानादिशक्तिरूप पराक्रम जिनका ऐसे महावीर प्रभु और शेष वृषभादि तीर्थङ्कर जिनेन्द्रदेवोंको सिरसा नमस्कार करके मैं (नेमिचन्द्राचार्य) त्रिचूलिकाधिकारको कहूँगा सो भव्यजीवों ! तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ।

विशेषार्थ—जिसमें कथित अथवा अकथित या विशेषतापूर्वक नहीं कहे हुए अर्थका चिन्तवन किया जाता है वह चूलिका कहलाती है ।

सूत्रद्वारा सूचित अर्थका विशेषवर्णन करना चूलिका है । जिससे अर्थप्ररूपणा किये जानेपर पूर्वमें वर्णित पदार्थके विषयमें शिष्योंको निश्चय उत्पन्न हो उसे चूलिका कहते हैं ऐसा अभिप्राय है ।[1] अन्यत्र भी कहा है—

सूत्रमें सूचित अर्थको प्रकाशित करना चूलिका है ।[2] अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेषप्ररूपणा करना चूलिका है ।[3] किसी पदार्थके विशेषव्याख्यानको, कथित-विषयमें जो अनुक्तविषय हैं उनको अथवा उक्त-अनुक्तविषयसे मिले हुए कथनको चूलिका कहते हैं ।[4]

यहांपर नवप्रश्न, पञ्चभागहार, दशकरण इन तीनविषयोंका चिन्तन किया जावेगा अतः इस अधिकारका नाम त्रिचूलिका है ।

---

१. ध. पु ११ पृ. १४० । २. ध. पु. १० पृ. ३९५ । ३. ध. पु. ७ पृ. ५७५ । ४.- बृहद्द्रव्यसंग्रहकी टीका पृ० ६८ (शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान शांतिवीरनगरसे प्रकाशित)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे उन तीनचूलिकाओंमें से सर्वप्रथम नवप्रश्नचूलिकाको कहते हैं—

किं बंधो उदयादो, पुव्वं पच्छा समं विणस्सदि सो।
सपरोभयोदयो वा, णिरंतरो सांतरो उभयो ॥३९९॥

अर्थ—पहले जो प्रकृतियां कहीं उनमेंसे उदयव्युच्छित्तिके पहले बन्धव्युच्छित्ति किन-किन प्रकृतियोंकी होती है ? उदयव्युच्छित्तिके पश्चात् बन्धव्युच्छित्ति किन-किन प्रकृतियोंकी होती है ? उदयव्युच्छित्तिके साथ-साथ बन्धव्युच्छित्ति किन-किन प्रकृतियों की होती है ? इसप्रकार ये तीनप्रश्न हुए। जिनका अपना ही (स्वयंका ही) उदय होनेपर बन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? जिनका अन्यप्रकृतियोंके उदय होनेपर बंध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? जिनका दोनों (स्व-परप्रकृतियों) के उदय होनेपर बन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? इसप्रकार ये तीनप्रश्न हुए। जिनका निरन्तरबन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? जिनका सान्तरबन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? जिनका निरन्तर व सान्तरबन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? इसप्रकार ये तीनप्रश्न हैं। ऐसे सर्व नौप्रश्न हैं जिनका इस अधिकारमें विचार किया जावेगा।

विशेषार्थ—नवप्रश्नचूलिकाके नौ प्रश्न इसप्रकार हैं—

जिनकी बन्धव्युच्छित्ति पहले तथा उदयव्युच्छित्ति बादमें होती है, जिनकी उदयव्युच्छित्ति पहले और बन्धव्युच्छित्ति बादमें होती है, जिनकी बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् होती है, अन्यप्रकृतिके उदयमें ही जिनका बन्ध होता है, स्वोदयमें ही जिनका बन्ध होता है, स्वोदय-परोदयमें जिनका बन्ध होता है, जिनका अन्तर्मुहूर्तकालआदिपर्यन्त बन्ध होता हो ऐसी निरन्तर बन्धनेवाली, एकसमयसे अन्तर्मुहूर्तसेकम कालपर्यंत जिनका बन्ध होता है ऐसी सान्तर बन्धनेवाली और जिनका कभी निरन्तर तथा कभी सान्तर बंध होता है ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं। सान्तर-निरन्तरका लक्षण—

पडिवक्खपयडिबन्धमस्सिदूण थक्कमाणबंधा सांतरबंधि त्ति तं सांतरबंधीसु पडिवक्खपयडिबंधाविणाभावं दट्ठूण वुत्तं। परमत्थदो पुण एगसमयं बंधिदूण विदियसमए जिस्से बंधविरामो दिस्सदि सा सांतरबंधपयडी। जिस्से बंधकालो जहण्णो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो सा णिरंतरबंधपयडि त्ति घेत्तव्वं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिपक्षप्रकृतिके बन्धका आश्रयकरके बन्धविश्रान्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृति सान्तरबन्धी है, इसप्रकार जो कहा है वह सान्तरबन्धी प्रकृतियोंमें प्रतिपक्षप्रकृतिके बन्धके अविनाभावको देखकर कहा है। वास्तवमें तो एकसमय बंधकर द्वितीयसमयमें जिस प्रकृतिकी बन्धविश्रान्ति देखी जाती है वह सान्तरबन्धप्रकृति है। जिसका बन्धकाल जघन्यभी अन्तर्मुहूर्तमात्र है वह निरन्तरबन्धप्रकृति है ऐसा ग्रहण करना चाहिए।[1] अन्यत्र भी कहा है—

यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्रं बन्धः, उत्कर्षतः समयादारभ्य यावदन्तर्मुहूर्तं न परतः, सान्तरबन्धाः, अन्तर्मुहूर्तमध्येऽपि सान्तरो विच्छेदलक्षणान्तरसहितो बंधो यासां ताः सान्तरा इति व्युत्पत्तेः। अन्तर्मुहूर्तोपरि विच्छिद्यमानबन्धवृत्तिजातिमत्यः सान्तरबन्धा इति फलितार्थः। जघन्येनापि या अन्तर्मुहूर्तं यावन्नैरन्तर्येण बन्ध्यन्ते ता निरन्तबन्धाः, निर्गतमन्तरमुहूर्तमध्ये व्यवच्छेदलक्षणं यस्य तादृशो बन्धो यासामिति व्युत्पत्तेः, अन्तर्मुहूर्तमध्याविच्छिन्न बन्धवृत्तिजातिमत्य इति यावत्[2]।

अथान्तर उपर्युक्त ९ प्रश्नोंमेंसे प्रथमतीनप्रश्नोंके उत्तरस्वरूप प्रकृतियोंके नाम दोगाथाओंसे कहते हैं—

देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण सो पच्छा।
मिच्छत्तादावाणं, णराणुथावरचउक्काणं ॥४००॥
पण्णरकसायभयदुगहस्सदुचउजाइपुरिसवेदाणं।
सममेक्कत्तीसाणं, सेसिगिसीदाण पुव्वं तु ॥४०१॥जुम्मं॥

अर्थ—देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक, अयशस्कीर्ति और देवायु इन आठ-प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति, उदयव्युच्छित्तिके पश्चात् होती है। मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावरादि चार, सञ्ज्वलनलोभबिना १५ कषाय, भय-जुगुप्सा, हास्य-रति, एकेन्द्रियादि चारजाति और पुरुषवेद इन ३१ प्रकृतियोंकी बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् होती है। शेष ज्ञानावरणादि ८१ प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिसे पूर्व होती है।

१. ध० पु० ८ पृ० १००। २. क० प्र० पृ० १४-१५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—प्रश्न १, जिनकी बन्धव्युच्छित्ति से पहले उदयव्युच्छित्ति होती है वे प्रकृति कौन-कौनसी हैं ? उत्तर-देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, अयशस्कीर्ति और देवायु इन आठ प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्तिसे पहले बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। प्रश्न २, जिन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्तिसे पहले बन्धव्युच्छित्ति होती हैं वे प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं ? उत्तर-ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९, वेदनीयकी २, सञ्ज्वलनलोभ, स्त्री-नपुंसकवेद, अरति-शोक, नरक-तिर्यञ्च-मनुष्यायु, नरक-तिर्यञ्च-मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर, ६ संहनन, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, ६ सस्थान, वर्णचतुष्क, नरक-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात और श्वासोच्छ्वास), उद्योत, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र-नीचगोत्र और अन्तरायकी पांच ये ८१ प्रकृतियां उदयव्युच्छित्तिसे पूर्व बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। प्रश्न ३, बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् किन-किन प्रकृतियोंकी होती है ? उत्तर-मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण, सञ्ज्वलनलोभबिना १५ कषाय, भय-जुगुप्सा, हास्य-रति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियजाति, पुरुषवेद इन ३१ प्रकृतियोंकी बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् होती है।

यहांपर महाधवलके अनुसार स्थावर, एकेन्द्रिय और विकलत्रयकी व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थानमें होती है ऐसा जानना। आगेके गुणस्थानोंमें उदय अथवा बन्धका अभाव होजाना व्युच्छित्ति कहलाती है।

आगे अन्य तीनप्रश्नोंका समाधान दोगाथाओंसे करते हैं—

सुरणिरयाऊ तित्थं, वेगुव्वियछक्कहारमिदि जेसिं।
परउदयेण य बंधो, मिच्छं सुहुमस्स घादीओ ॥४०२॥
तेजदुगं वण्णचऊ, थिरसुहजुगलगुरुणिमिणधुवउदया।
सोदयबंधा सेसा, बासीदा उभयबंधाओ ॥४०३॥जुम्मं॥

अर्थ—देवायु, नरकायु, तीर्थङ्कर, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देव-गति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayū Trust/eGangotri

११ प्रकृतियोंका परके उदयमें बंध होता है। मिथ्यात्वप्रकृति तथा सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय इसप्रकार ये तो १५ प्रकृति और तैजस-कार्मण, वर्णादि चार, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण ये १२ ध्रुव-बन्धी प्रकृति मिलकर २७ प्रकृतियां स्वोदयप्रकृतियां हैं। इनका बन्ध भी स्वयंके उदय होनेपर ही होता है, किन्तु उदय तो बन्धके अभावमें भी होता है। अर्थात् इन प्रकृतियोंके उदय होनेमें इन्हींका बन्ध होना आवश्यक नहीं है। जैसे ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४ और अन्तराय ५ इन १४ प्रकृतियोंका बन्ध तो १०वें गुणस्थानतक होता है, किन्तु उदय १२वें गुणस्थानतक है। इसीप्रकार अन्यप्रकृतियोंका भी जानना। तथा अवशेष (५ निद्रा, २ वेदनीय, २५ मोहनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्च-मनुष्यगति, ५ जाति, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, ६ संहनन, ६ संस्थान, तिर्यञ्च-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, उच्च-नीचगोत्र ये ८२ प्रकृतियां स्वपरोदयबंधी हैं अर्थात् स्वयंके उदयमें अथवा परप्रकृतिके उदयमें इनका बन्ध होता है।

अब पूर्वोक्त ९ प्रश्नोंमें से अन्तिमतीन प्रश्नोंका उत्तर ४ गाथाओंसे देते हैं—

सत्तेताल धुवावि य, तित्थाहाराउगा णिरंतरगा।
णिरयदुजाइचउक्कं, संहदिसंठाणपणपणगं ॥४०४॥
दुग्गमणादावदुगं, थावरदसगं असादसंढित्थि।
अरदीसोगं चेदे, सांतरगा होंति चोत्तीसा ॥४०५॥ जुम्मं॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि ४७ ध्रुवबन्धी प्रकृतियां, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, आयु ४ ये ५४ प्रकृतियां निरन्तर बंधनेवाली हैं और नरकद्विक, एकेन्द्रियादि चारजाति, प्रथमसंहननबिना ५ संहनन, प्रथम संस्थानबिना ५ संस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावरआदि १०, असातावेदनीय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति और शोक ये ३४ प्रकृतियां सान्तरबन्धी हैं। एकसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तसे कम कालपर्यंन्त जिनका बन्ध होता है वे सान्तरप्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—पांचज्ञानावरण, नौदर्शनावरण, पांचअन्तराय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादिचतुष्क इन ४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतियोंका अपनी-अपनी व्युच्छित्तिपर्यन्त सदा बंध पाया जाता है अतः ये ध्रुवबन्धी हैं।[1] तीर्थङ्कर, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, चार आयु ये ७ प्रकृति उपर्युक्त ४७ प्रकृतियोंमें मिलकर ५४ प्रकृतियां निरन्तरबन्धी हैं।[2] इनमेंसे ४७ प्रकृतियोंका तो व्युच्छित्तिसे पूर्वसमयतक निरन्तरबन्ध पाया जाता है और आहारकद्विक और तीर्थङ्कर-प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होनेके पश्चात् जिन गुणस्थानोंमें इनका बन्ध पाया जाता है वहां निरन्तर प्रतिसमय अन्तर्मुहूर्तसे अधिककालपर्यन्त बन्ध पाया जाता है। आयुका जिस-कालमें बन्ध होना योग्य है उससमयसे अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त निरन्तरबन्ध होता है इसलिए इसको निरन्तरबन्धी कहते हैं। नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चारजाति वज्र-र्षभनाराचबिना पांचसंहनन, समचतुरस्रबिना पांचसंस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, असातावेदनीय, स्त्री-नपुंसकवेद, अरति और शोक ये ३४ प्रकृति सांतरबन्धी हैं, क्योंकि इन प्रकृतियोंका बन्ध एकसमयसे अन्तर्मुहूर्तसेकम कालपर्यन्त होता है।[3]

सुरणरतिरियोरालियवेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं।
परघाददुसमचउरं, पंचिंदिय तसदसं सादं ॥४०६॥
हस्सरदिपुरिसगोददु, सप्पडिवक्खम्मि सांतरा होंति।
णट्ठे पुण पडिवक्खे, णिरंतरा होंति बत्तीसा ॥४०७॥जुम्मं॥

अर्थ—देवद्विक, मनुष्यद्विक, तिर्यञ्चद्विक, औदारिकद्विक, वैक्रियिकद्विक, प्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्रसंस्थान, पञ्चे-न्द्रियजाति, त्रसादिदश, सातावेदनीय, हास्य-रति, पुरुषवेद, गोत्रकर्मकी दो ये ३२ प्रकृतियां प्रतिपक्षीके रहते हुए सान्तरबन्धी हैं और प्रतिपक्षीके बंधका नाश होनेपर निरन्तरबन्धी हैं अर्थात् ये प्रकृतियां उभयबन्धी हैं।

विशेषार्थ—देवगति-देवगत्यानुपूर्वी मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्र-

१. धवल पु० ८ पृ० १७। २. धवल पु० ८ पृ० १६। ३. धवल पु० ८ पृ० १७-१८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थान, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये ३२ प्रकृतियां सान्तर व निरन्तर अर्थात् उभयबन्धी हैं।[1] जैसे—अन्यगतिका जहां बन्ध पाया जाय वहां तो देवगति सप्रतिपक्षी है, क्योंकि वहां देवगतिका बन्ध अन्तर्मुहूर्तसेकम कालपर्यंत पाया जाता है तथा जब केवलदेवगतिका ही बन्ध होता है तो देवगति निष्प्रतिपक्षी है, क्योंकि यहांपर अन्यगतिका बंधव्युच्छित्ति हो जानेसे बन्ध नहीं पाया जाता है इसलिए वह निरन्तरबन्धी है, इसीकारण देवगतिको उभयबन्धी कहा है। इसीप्रकार अन्यप्रकृतियोंका भी उभयरूपबन्ध जानना। उभयबन्धीप्रकृतियोंका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—

देवद्विक, वैक्रियिकद्विक व उच्चगोत्र—द्वितीयगुणस्थानतक सांतरबंधी तथा आगेके गुणस्थानोंमें एवं भोगभूमिजजीवोंमें निरन्तरबन्धी है। **मनुष्यद्विक**—१२वें स्वर्गपर्यंत सान्तरबधी एवं आगेके स्वर्गोंमें तथा सम्यग्दृष्टि देव व नारकियोंमें निरन्तरबंधी है। **तिर्यञ्चद्विक और नीचगोत्र**—७वें नरकमें मिथ्यादृष्टि तथा सासादनी जीवके एवं तेजकायिक-वायुकायिकजीवोंके निरन्तरबधी तथा अन्यजीवोंके सासादनगुणस्थानपर्यंत सान्तरबंधी है। **औदारिकद्विक**—देव-नारकियों व चतुरिन्द्रियपर्यन्त तिर्यञ्च जीवोंके निरन्तरबंधी है, अन्यजीवोंके दूसरेगुणस्थानतक सांतरबंधी है। **प्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान**—सुभग, सुस्वर, आदेय और पुरुषवेद दूसरेगुणस्थानतक सांतरबंधी और उसके आगे निरन्तरबंधी है। **परघात, उच्छ्वास, पंचेंद्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक**—प्रथमगुणस्थानमें सांतरबंधी और आगे निरन्तरबंधी है। **स्थिर, शुभ, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय, हास्य, रति**—६ठे गुणस्थानतक सांतरबंधी और आगेके गुणस्थानोंमें निरन्तरबंधी है।

---

१. धवल पु० ८ पृ० १८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवप्रश्नचूलिकाके अन्तर्गत आगतप्रश्नोंके उत्तरस्वरूप प्रकृतियोंकी सन्दृष्टि—

प्रकृति	स्वोदयपरोदय बन्धी	सान्तर व निरन्तर बधो	बध किस गुणस्थानसे किस गुणस्थान तक	उदय किस गुणस्थानसे किस गुणस्थान तक	प्रकृति-संख्या
ज्ञानावरण ५	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१–१०	१–१२	१–५
चक्षुदर्शनावरणादि ४	„	„	„	„	६–९
निद्रा–प्रचला	स्वपरोदयबन्धी	„	१–८	„	१०–११
निद्रानिद्रादि ३	„	„	१–२	१–६	१२–१४
सातावेदनीय	„	सांतर-निरतरबंधी	१–१३	१–१४	१५
असातावेदनीय	„	सान्तरबन्धी	१–६	„	१६
मिथ्यात्व	स्वोदयीबन्धी	निरन्तरबन्धी	१	१	१७
अनन्तानुबन्धी ४	स्वपरोदयबन्धी	„	१–२	१–२	१८–२१
अप्रत्याख्यानावरण ४	„ „	„	१–४	१–४	२२–२५
प्रत्याख्यानावरण ४	„ „	„	१–५	१–५	२६–२९
सञ्ज्वलनक्रोधादि ३	„ „	„	१–९	१–९	३०–३२
सञ्ज्वलनलोभ	„ „	„	„	१–१०	३३
हास्य–रति	„ „	सांतर-निरतरबधी	१–८	१–८	३४–३५
अरति–शोक	„ „	सान्तरबन्धी	१–६	„	३६–३७
भय–जुगुप्सा	„ „	निरन्तरबन्धी	१–८	„	३८–३९
नपुंसकवेद	„ „	सान्तर „	१	१–९	४०
स्त्रीवेद	„ „	„ „	१–२	„	४१
पुरुषवेद	„ „	सांतर-निरंतरबंधी	१–९	„	४२
नरकायु	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१	१–४	४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यञ्चायु	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१–२	१–५	४४
मनुष्यायु	,,	,,	१, २, ४	१–१४	४५
देवायु	परोदयबन्धी	,,	१,२,४–७	१–४	४६
नरकगति	,,	सांतरबन्धो	१	,,	४७
तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१–२	१–५	४८–४९
मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी	,,	,,	१–४	१–१४	५०–५१
देवगति	परोदयबन्धी	,,	१–८	१–४	५२
एकेन्द्रियादि ४ जाति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	५३–५६
पञ्चेन्द्रियजाति	,,	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१–८	१–१४	५७
औदारिकशरीर व औदारिकअंगोपांग	,,	,,	१–४	१–१३	५८–५९
वैक्रियिकशरीर	परोदय बंधी	,,	१–८	१–४	६०
आहारकशरीर	,,	निरन्तरबन्धी	७–८	६	६१
तैजसशरीर	स्वोदयबन्धी	,,	१–८	१–१३	६२
कार्मणशरीर	,,	,,	,,	,,	६३
वैक्रियिकअंगोपांग	परोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	,,	१–४	६४
आहारकअङ्गोपाङ्ग	,,	निरन्तरबन्धी	७–८	६	६५
निर्माण	स्वोदयबन्धो	,,	१–८	१–१३	६६
समचतुरस्रसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	,,	,,	६७
न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान	,,	सान्तरबन्धी	१–२	,,	६८
स्वातिसंस्थान	,,	,,	,,	,,	६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुब्जकसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबंधी	१–२	१–१३	७०
वामनसंस्थान	"	"	"	"	७१
हुण्डकसंस्थान	"	"	१	"	७२
वज्रर्षभनाराचसंहनन	"	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१–४	"	७३
वज्रनाराचसंहनन	"	सान्तरबन्धी	१–२	१–११	७४
नाराचसंहनन	"	"	"	"	७५
अर्धनाराचसंहनन	"	"	"	१–७	७६
कीलितसंहनन	"	"	"	"	७७
असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन	"	"	१	"	७८
वर्णादिचतुष्क	स्वोदयबंधी	निरन्तरबन्धी	१–८	१–१३	७९–८२
नरकगत्यानुपूर्वी	परोदयबंधी	सान्तरबन्धी	१	१, २ व ४	८३
देवगत्यानुपूर्वी	"	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१–८	"	८४
अगुरुलघु	स्वोदयबंधी	निरन्तरबन्धी	"	१–१३	८५
उपघात	स्वपरोदयबंधी	"	"	"	८६
परघात	"	सान्तर-निरन्तर बन्धी	"	"	८७
आतप	"	सान्तरबन्धी	१	१	८८
उद्योत	"	"	१–२	१–५	८९
उच्छ्वास	"	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१–८	१–१३	९०
प्रशस्तविहायोगति	"	"	"	"	९१
अप्रशस्त "	"	सान्तरबन्धी	१–२	"	९२
प्रत्येकशरीर	"	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१–८	"	९३
साधारणशरीर	"	सान्तरबन्धी	१	१	९४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रस	स्वपरोदयबंधी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१-८	१-१४	९५
स्थावर	,,	सान्तरबन्धी	१	१	९६
सुभग	,,	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१-८	१-१४	९७
दुर्भग	,,	सान्तरबन्धी	१-२	१-४	९८
सुस्वर	,,	सान्तर-निरन्तर बंधी	१-८	१-१३	९९
दुःस्वर	,,	सान्तरबंधी	१-२	,,	१००
शुभ	स्वादयबंधी	सान्तर-निरंतर बंधी	१-८	,,	१०१
अशुभ	,,	सान्तरबंधी	१-६	,,	१०२
बादर	स्वपरोदयबंधी	सान्तर-निरन्तर बंधी	१-८	१-१४	१०३
सूक्ष्म	,,	सान्तरबन्धी	१	१	१०४
पर्याप्त	,,	सान्तर-निरंतर बन्धी	१-८	१-१४	१०५
अपर्याप्त	,,	सान्तरबन्धी	१	१	१०६
स्थिर	स्वोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१-८	१-१३	१०७
अस्थिर	,,	सान्तरबन्धी	१-६	,,	१०८
आदेय	स्वपरोदयबंधी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१-८	१-१४	१०९
अनादेय	,,	सान्तरबन्धी	१-२	१-४	११०
यशस्कीर्ति	,,	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१-१०	१-१४	१११
अयशस्कीर्ति	,,	सान्तरबन्धी	१-६	१-४	११२
तीर्थङ्कर	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	४-८	१३-१४	११३
उच्चगोत्र	स्वपरोदयबंधी	सान्तर-निरन्तर बन्धी	१-१०	१-१४	११४
नीचगोत्र	,,	,,	१-२	१-५	११५
अन्तराय	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-१०	१-१२	११६-१२०

"इति नवप्रश्नचूलिका प्रकरण सम्पूर्ण"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ पञ्चभागाहारचूलिका ।

जत्थ वरणेमिचंदो, महणेण विणा सुणिम्मलो जादो ।
सो अभयणंदिणिम्मलसुओवही हरउ पावमलं ॥४०८॥

अर्थ—जिसमें मन्थनबिना ही उत्कृष्टनेमिचन्द्र निर्मल हुए ऐसे अभयनंदिका निर्मलशास्त्रसमुद्र जीवोंके पापमलको दूर करे ।

भावार्थ—लोकोक्ति है कि "समुद्रमंथन करके चन्द्रमा प्रकट हुआ" इसीप्रकार अभयनंदिनामा आचार्यके द्वारा उपदिष्ट शास्त्रसमुद्रमें से मंथनबिना ही नेमिचन्द्राचार्य-रूपी निर्मलचन्द्रमा प्रकट हुए अर्थात् उस शास्त्रके अत्यल्पाभ्यासते ही निर्मलता प्राप्त हुई, ऐसी निर्मलताका कारण जो शास्त्रसमुद्र है वह समस्तजीवोंके पापमलको दूर करे । इसप्रकार यहां आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण किया गया है ।

अब भागाहारचूलिकाके पांचभेदोंको कहते हैं—

[1]उव्वेलणविज्झादो, अधापवत्तो गुणो य सव्वो य ।
संकमदि जेहिं कम्मं, परिणामवसेण जीवाणं ॥४०९॥

अर्थ—संसारीजीवोंके अपने जिनपरिणामोंसे शुभकर्म और अशुभकर्म संक्रमण करें अर्थात् अन्यप्रकृतिरूप परिणमें उनपरिणामोंको सक्रमण कहते हैं ।[2] उस संक्रमणके उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुण और सर्वके भेदसे पांचभेद हैं ।

विशेषार्थ—उद्वेलनप्रकृतियोंके द्रव्यमें उद्वेलनभागहारका भाग देनेपर जो द्रव्य आवे उतनाद्रव्य प्रत्येक उद्वेलनकाण्डकद्वारा परप्रकृतिरूप संक्रमण होता है ।

---

१. ध. पु. १६ पृ ४०८ । तथा उव्वेलण-विज्झादो, अधापवत्त-गुणसकमो चेय । तह सव्वसंकमो त्ति य पंचविहो संकमो णेयो ॥ (जय. ध. पु ९ पृ. १७२) २. संकमादो समयाविरोहेण एयपयडिट्ठिदिपदेसाणं अण्णपयडिसरूवेण परिणमणलक्खणावो । अर्थात् जैसा आगममें बतलाया है तदनुसार एक प्रकृतिके स्थितिगत कर्मपरमाणुओंका अन्य सजातीय प्रकृतिरूप परिणमना संक्रमण है । (जयधवल पु. ७ पृ.२३८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथोक्त भागाहार (संक्रम) के जो उद्वेलनादि ५ भेद हैं उनके लक्षण कहते हैं— [1]करणपरिणामोंके बिना रस्सीको उकलनेके समान कर्मप्रदेशोंका परप्रकृतिरूपसे संक्रांत होना उद्वेलनासंक्रम है, इसका भागहार अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। यथासम्यग्दृष्टिजीव मिथ्यात्वमें आकर अन्तर्मुहूर्तपर्यंत सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अधःप्रवृत्तसंक्रम करता है उसके बाद उद्वेलनासक्रमको प्रारम्भकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिघात करनेवाले उसके पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण उद्वेलना कालके अन्ततक निरंतर उद्वेलना भागहारके द्वारा विशेषहीन प्रदेशसंक्रम होता है। यहांपर भज्यमान द्रव्य प्रत्येक समयमें विशेषहीन होता जाता है इसे विशेष हानिका कारण कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अंतिम स्थितिकाण्डकमें गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम हो जाता है। इसप्रकार उद्वेलनासंक्रमका कथन किया। [2]अब विध्यातसंक्रमका कथन करते हैं—वेदकसम्यक्त्व कालके भीतर दर्शनमोहनीयकी क्षपणासम्बन्धी अधःप्रवृत्तकरणके अंतिम समयतक सर्वत्र ही मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका विध्यातसंक्रम होता है तथा उपशमसम्यग्दृष्टिके भी गुणसंक्रमकालके पश्चात् सर्वत्र विध्यातसंक्रम होता है। इसका भागहार भी अङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि उद्वेलनाभागहारसे यह असंख्यातगुणाहीन है। इसीप्रकार अन्य प्रकृतियोंके भी विध्यातसंक्रमका विषय यथासम्भव जानना चाहिये। अब अधःप्रवृत्तसंक्रमका लक्षण कहते हैं—बन्धप्रकृतियोंका अपने बंधके सम्भव विषयमें जो प्रदेशसंक्रम होता है उसे अधःप्रवृत्तसंक्रम कहते हैं। उसका प्रतिभाग पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। चारित्रमोहनीयको २५ प्रकृतियोंका अपने बंधके योग्य विषयमें बध्यमान प्रकृतिप्रतिग्रहरूपसे अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। [3]गुणसंक्रमका लक्षण कहते हैं—प्रत्येकसमयमें असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे जो प्रदेशसंक्रम होता है उसे गुणसंक्रम कहते हैं। अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे लेकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें, चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें, उपशमश्रेणिमें, अनन्तानुबंधीकी विसंयोजनामें, सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अंतिमकाण्डकमें गुणसंक्रम होता है। इसका भागहार भी पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण होकर भी अधःप्रवृत्तसंक्रमके भागहारसे असंख्यातगुणा हीन है। सर्वसंक्रमका स्वरूप कहते हैं—सभी प्रदेशोंका जो संक्रम होता है उसे सर्वसंक्रम कहते हैं। वह कहां पर होता है? उद्वेलना, विसंयोजना और

१. जयधवल पु० ९ पृ० १७०-१७१। २. जयध० पु० ९ पृ० १७१। ३. जयध० पु० ९ पृ० १७२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षपणामें अंतिमस्थितिकाण्डककी अंतिमफालिके संक्रमके समय होता है। उसका भागहार एक अङ्कप्रमाण है।

बंधे संकामिज्जदि, णोबंधे णत्थि मूलपयडीणं।
दंसणचरित्तमोहे, आउचउक्के ण संकमणं ॥४१०॥

अर्थ—अन्य प्रकृतिरूप परिणमनेको संक्रमण कहते हैं। जिस प्रकृतिका बंध होता है उसीमें संक्रमण होता है[1] अर्थात् अन्यप्रकृति बंधप्रकृतिरूप होकर परिणमन करती है यह सामान्यकथन है तथा कहीं जिस प्रकृतिका बंध नहीं हुआ है उसमें भी संक्रमण होता है। 'नो बंधे' अर्थात् 'जिसका बंध नहीं हुआ है उसमें संक्रमण भी नहीं होता' इस वचनके कहनेका अभिप्राय यह है कि दर्शनमोहनीयमें सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्वप्रकृतिका बंध न होनेपर भी मिथ्यात्वप्रकृतिका द्रव्य सक्रमण कर जाता है अतः दर्शनमोहनीयके बिना शेष प्रकृतियां बंध होनेपर उनमें ही संक्रमणरूप होती हैं ऐसा नियम है। मूलप्रकृतियोंका परस्परमें संक्रमण नहीं होता। जैसे—ज्ञानावरणप्रकृति दर्शनावरणादिप्रकृतिरूप नहीं होती, किन्तु उत्तरप्रकृतियोंमें संक्रमण पाया जाता है। जैसे—ज्ञानावरणकर्मकी ५ उत्तरप्रकृतियोंमें परस्पर संक्रमण पाया जाता है। इसीप्रकार सभी उत्तरप्रकृतियोंमें जानना, किन्तु दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयमें कदाचित् भी संक्रमण नहीं पाया जाता अर्थात् दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियां चारित्रमोहनीयरूप होकर परिणमन नहीं करती और चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियां दर्शनमोहनीयरूप होकर नहीं परणमती। चारों आयुओंमें भी परस्पर संक्रमण नहीं होता। इसप्रकार संक्रमणका स्वरूप जानना।

सम्मं मिच्छं मिस्सं, सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि।
सासणमिस्से णियमा, दंसणतियसंकमो णत्थि ॥४११॥

अर्थ—सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति अपने-अपने असंयतादि गुणस्थानोंमें संक्रमण नहीं करती। सम्यक्त्वप्रकृतिका संक्रमण चतुर्थगुणस्थानसे सप्तमगुणस्थानपर्यंत नहीं होता है। दर्शनमोहनीयकी इन तीनों ही प्रकृतियोंका संक्रमण सासादन

१. बन्धे संकमो अबन्धे णत्थि। कुदो? सभावियादो। अर्थात् बन्धके होनेपर संक्रमण सम्भव है, बन्धके अभावमें वह सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। (ध पु १६ पृ. ३४०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता। सामान्यसे दर्शनमोहनीयका संक्रमण चतुर्थसे सप्तम-गुणस्थानपर्यंत होता है।

मिच्छे सम्मिस्साणं, अधापवत्तो मुहुत्तअंतोत्ति।
उव्वेलणं तु तत्तो, दुचरिमकंडोत्ति णियमेण ॥४१२॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृतिका अंतर्मुहूर्तपर्यंत अधःप्रवृत्तकरणसंक्रमण होता है और उद्वेलनसंक्रमण उपान्त्य (अन्तके समीपवर्ती अर्थात् द्विचरम) काण्डकपर्यंत नियमसे होता है।

विशेषार्थ—यहांपर संक्रमण फालिरूप रहता है। एकसमयमें संक्रमण होनेवाले प्रदेशपुंजको फालि कहते हैं। समयसमूहमें संक्रमण होनेको काण्डक कहते हैं।

उव्वेलणपयडीणं गुणं तु चरिमम्हि कंडये णियमा।
चरिमे फालिम्मि पुणो सव्वं च य होदि संकमणं ॥४१३॥

अर्थ—उद्वेलनप्रकृतियोंका द्विचरमकाण्डकपर्यंत उद्वेलनसंक्रमण तथा अन्तिमकाण्डकमें नियमसे गुणसंक्रमण होता है और अन्तिमफालिमें सर्वसंक्रमण होता है। सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति उद्वेलनप्रकृतिमें समाविष्ट है इसलिए इन प्रकृतियोंका भी चरमकाण्डकमें गुणसंक्रमण व चरमफालिमें सर्वसंक्रमण होता है। (गाथा ६१२ से ६१७ तक देखो।)

आगे सर्वसंक्रमणप्रकृतियोंमें तिर्यगेकादश अर्थात् जिनका उदय तिर्यञ्चगतिमें ही होता है ऐसी जो ११ प्रकृतियां हैं उनके नाम गिनाते हैं—

तिरियदुजादिचउक्कं, आदावुज्जोवथावरं सुहुमं।
साहारणं च एदे, तिरियेयारं मुणेदव्वा ॥४१४॥

अर्थ—तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियआदि चारजाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नामकर्मकी इन ११ प्रकृतिका उदय तिर्यञ्चगतिमें ही होता है इसलिए इनको तिर्यगेकादश कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उद्वेलनप्रकृतियोंको कहते हैं—

आहारदुगं सम्मं, मिस्सं देवदुगणारयचउक्कं ।
उच्चं मणुदुगमेदे, तेरस उव्वेलणा पयडी ॥४१५॥

अर्थ—आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअंगोपांग, उच्चगोत्र और मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये १३ उद्वेलनप्रकृति हैं ।

बंधे अधापवत्तो, विज्झादं सत्तमोत्ति हु अबंधे ।
एत्तो गुणो अबन्धे, पयडीणं अप्पसत्थाणं ॥४१६॥[1]

अर्थ—प्रकृतियोंका बन्ध होनेपर अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, किन्तु मिथ्यात्वप्रकृतिका नहीं होता है, क्योंकि "सम्मं मिच्छं मिस्सं" इत्यादि गाथा ४११ के द्वारा इसका निषेध पहले ही कर दिया है और असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यंत मिथ्यात्वका विध्यातसंक्रमण होता है अपूर्वकरणसे उपशांतकषायगुणस्थानपर्यन्त बन्धरहित अप्रशस्तप्रकृतियोंका गुणसंक्रमण है । अतः अन्यत्र भी प्रथमोपशमसम्यक्त्वादिके ग्रहणके प्रथमसमयसे अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त गुणसंक्रमण है ऐसा जानना । सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके पूरणकालमें मिथ्यात्वके क्षय करनेमें अपूर्वकरणपरिणामोंसे मिथ्यात्वके अतिमकाण्डककी द्विचरमफालिपर्यन्त गुणसंक्रमण और चरमफालिमें सर्वसंक्रमण होता है ।

विशेषार्थ— [2]'बंधे अधापवत्तो' का स्पष्टीकरण करते हुए बतलाते हैं कि जहां जिन प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव है वहां उन प्रकृतियोंका बन्ध होनेपर और उसके न होनेपर भी अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है । यह नियम बन्धप्रकृतियोंके लिए हैं, अबन्धप्रकृतियोंके लिए नहीं; क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंमें भी अधःप्रवृत्तसंक्रम पाया जाता है । 'विज्झाद अबंधे' का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जिन प्रकृतियोंका जहां नियमसे बन्ध सम्भव नहीं है वहां उन प्रकृतियोंका विध्यातसंक्रम होता है । यह भी नियम मिथ्यात्वसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त ही ध्रुवस्वरूपसे है । 'गुणसंकमो दु एत्तो' अर्थात् अप्रमत्तगुणस्थानसे आगेके गुणस्थानोंमें बन्धरहित प्रकृतियोंका गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम भी होता है ।

---

१. बन्धे अधापमत्तो विज्झाद अबन्ध अप्पमत्तंतो । गुणसंकमो दु एत्तो पयडीणं अप्पसत्थाणं ॥ धवल पु० १६ पृ० ४०९ । २. धवल पु० १६ पृ० ४०९–४१० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शङ्का—सर्वसंक्रम भी होता है यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—यह उपर्युक्त गाथामें प्रयुक्त 'तु' शब्दसे जाना जाता है । यह प्ररूपणा 'अप्पसत्थाणं' अर्थात् अप्रशस्तप्रकृतियोंको की गयी है, न कि प्रशस्तप्रकृतियोंकी; क्योंकि उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमें भी बन्धरहित प्रशस्तप्रकृतियोंका अधःप्रवृत्तसंक्रम देखा जाता है ।

अथानन्तर सर्वसंक्रमणरूप प्रकृतियोंको कहते हैं—

तिरियेयारुव्वेल्लणपयडी संजलणलोहसम्ममिस्सूणा ।
मोहा थीणतिगं च य, बावण्णे सव्वसंकमणं ॥४१७॥

अर्थ—पूर्वोक्त तिर्यगेकादशप्रकृतियां, उद्वेलनरूप प्रकृतियां, (सञ्ज्वलनलोभ, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन तीनबिना) मोहनीयकर्मकी २५ और स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्रा इन सर्व ५२ प्रकृतियोंमें सर्वसंक्रमण होता है ।

आगे प्रकृतियोंके संक्रमणका नियम कहते हैं—

उगुदालतीससत्तयवीसे एक्केक्कबारतिचउक्के ।
इगिचदुदुगतिगतिगचदुपणदुगतिण्णि संकमणा ॥४१८॥[1]

अर्थ—उनतालीस प्रकृतियोंमें एक, ३० प्रकृतियोंमें चार, सातप्रकृतियोंमें दो, बीसप्रकृतियोंमें तीन, एक प्रकृतिमें तीन, एक प्रकृतिमें चार, बारह प्रकृतियोंमें पांच, चार प्रकृतियोंमें दो, और चार प्रकृतियोंमें तीन प्रकारके संक्रमण होते हैं । इस गाथामें कही गई प्रकृतियों और भागहारोंकी यह संदृष्टि है—

प्रकृति	३९	३०	७	२०	१	१	१२	४	४	४
भागहार	१	४	२	३	३	४	५	२	३	३

१. उगुदाल तीस सत्त य वीसं एगेग बार तियचउक्कं । एवं चदु दुग तिय तिय चदु पण दुग तिग दुगं च बोद्धव्व ॥ २. धवल पु० १६ पृ० ४१० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किस-किस प्रकृतिमें कौन-कौनसे संक्रमण होते हैं इसका कथन १० गाथाओंमें करते हैं—

सुहुमस्स बंधघादी, सादं संजलणलोहपंचिदी।
तेजदुसमवण्णचऊ, अगुरुगपरघादउस्सासं ॥४१९॥
सत्थगदी तसदसयं, णिमिणुगुदाले अधापवत्तो दु।
थीणतिबारकसाया, संढित्थी अरदि सोगो य ॥४२०॥
तिरियेयारं तीसे, उव्वेलणहीणचारि संकमणा।
णिद्दा पयला असुहं, वण्णचउक्कं च उवघादे ॥४२१॥
सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदिसंठाणदसं, णीचापुण्णथिरछक्कं च ॥४२२॥
वीसण्हं विज्झादं, अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते।
विज्झादगुणे सव्वं, सम्मे विज्झादपरिहीणा ॥४२३॥विसेसयं॥

अर्थ—पांचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण, पांचअन्तराय, सातावेदनीय, सञ्ज्वलनलोभ, पंचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णादिचार, अगुरुलघु, परघाद, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति और निर्माण इन ३९ प्रकृतियोंमें उद्वेलनसंक्रमण नहीं होता तथा 'विज्झादंसत्तमोत्ति हु अबंधे' इस सूत्रानुसार अप्रमत्तगुणस्थानसे पूर्व इनकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होनेसे विध्यातसंक्रमण भी इनमें नहीं है। "एत्तो गुणे अबंधे" इस सूत्रके अनुसार इनमें गुणसंक्रमण भी नहीं है। सर्वसंक्रमणरूप जो ५२ प्रकृतियां कही हैं उनमें ये प्रकृतियां नहीं हैं अतः सर्वसंक्रमण भी इनमें नहीं होता इसप्रकार उपर्युक्त ३९ प्रकृतियोंमें एक अधःप्रवृत्त संक्रमण ही होता है शेष चारसंक्रमण नहीं होते। अन्य प्रकृतियोंमें भी इसीप्रकार संक्रमणका कथन आगे करेंगे सो वहांसे समझना।

शङ्का—मिथ्यात्वप्रकृतिका मिथ्यात्वगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तसंक्रमण क्यों नहीं कहा?

समाधान—"सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि" इत्यादि गाथा ४११ के अनुसार मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्वप्रकृतिका अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, बारहकषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक और तिर्यगेकादश की इन ३० प्रकृतियोंमें उद्वेलनसंक्रमणके बिना चार संक्रमण पाए जाते हैं। निद्रा, प्रचला, अशुभवर्णादि चार और उपघात इन ७ प्रकृतियोंमें गुणसंक्रमण और अधःप्रवृत्तसंक्रमण ही पाए जाते हैं। असातावेदनीय, अप्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहननबिना ५ संहनन समचतुरस्रसंस्थानबिना ५ संस्थान, नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशस्कीर्ति इसप्रकार २० प्रकृतियोंमें विध्यात, अधःप्रवृत्त और गुणसंक्रमण पाए जाते हैं। मिथ्यात्वप्रकृतिमें विध्यात, गुण और सर्वसंक्रमण पाये जाते हैं तथा सम्यक्त्वप्रकृतिमें विध्यातसंक्रमणके बिना चार संक्रमण पाए जाते हैं ॥४१९-२३॥

विशेषार्थ—पांचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण, सातावेदनीय, सञ्ज्वलनलोभ, पञ्चेन्द्रियजाति तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तवर्ण-रस-गंध-स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और पांचअन्तराय; इन ३९ प्रकृतियोंका एक अधःप्रवृत्तसंक्रम ही होता है, क्योंकि पांचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण और पांच अन्तरायका मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिम समयतक बन्ध हो है। इसीलिए इन प्रकृतियोंके अधःप्रवृत्तसंक्रमणको छोड़कर अन्य संक्रम नहीं होते बन्धव्युच्छित्तिके हो जानेपर उनका सक्रमण नहीं होता, क्योंकि प्रतिग्रह (जिनमें विवक्षित प्रकृतियां संक्रान्त होती हैं।) प्रकृतियोंका यहां अभाव है।

शङ्का—सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तवर्ण, गन्ध, रस व स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर आदि छह और निर्माण; इनकी बंधव्युच्छित्ति हो जानेपर विध्यात अथवा गुणसंक्रम क्यों नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे प्रशस्तप्रकृतियां हैं।

सञ्ज्वलनलोभका एक अधःप्रवृत्तसक्रम ही होता है, क्योंकि बंधके होनेपर ही आनुपूर्वीसंक्रम (सञ्ज्वलनक्रोधका सञ्ज्वलनमानादिमें, सञ्ज्वलनमानका सञ्ज्वलनमायादिमें, इत्यादि) द्वारा उनका संक्रम होता है।

शङ्का—इनप्रकृतियोंका सर्वसक्रम क्यों नहीं होता ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्यप्रकृतियोंमें क्षेपण करके इनका विनाश नहीं होता। स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, बारहकषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंग्गति, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति, तिर्यंग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीर; इन तीस प्रकृतियोंके उद्वेलनसंक्रमण बिना शेष चार संक्रम होते हैं। यथा—स्थानगृद्धित्रय, स्त्रीवेद, तिर्यंग्गति, तिर्यंग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत और अनन्तानुबंधीचतुष्कका मिथ्यात्वसे सासादनगुणस्थानतक अधःप्रवृत्त-संक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्वरूप मिश्रगुण-स्थानसे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानतक उनका विध्यातसक्रमण होता है, क्योंकि वहां उनके बंधका अभाव है। क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे लेकर अपने-अपने अन्तिम-स्थितिकाण्डककी द्विचरमफालितक उनका गुणसंक्रमण होता है तथा अन्तिमफालिका सर्वसंक्रमण होता है।

नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीरका मिथ्यात्वगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहांपर इनका बंध पाया जाता है। सासादनगुणस्थानसे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानतक उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि अप्रशस्ताके होनेपर वहां बन्धका अभाव है। एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण; इनका देव व नारकमिथ्यादृष्टियोंमें विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनके इनका बन्ध नहीं होता। विशेष इतना है कि एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरप्रकृतिके ईशानकल्पतकके देव अधः-प्रवृत्तसंक्रमके द्वारा संक्रामक हैं, क्योंकि उनमें इनका बन्ध देखा जाता है। अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे अन्तिम स्थितिकाण्डककी द्विचरमफालि तक इन प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण होता है, क्योंकि अप्रशस्तताके होनेपर उनके बन्धका अभाव है, इनकी अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है, क्योंकि उसका विनाश निक्षेपपूर्वक होता है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका मिथ्यात्वसे असंयतगुणस्थानतक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध देखा जाता है। आगे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानके अंतिम-समयतक उनका विध्यातसंक्रम होता है। ऊपर अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे अंतिमकाण्डककी द्विचरमफालितक उनका गुणसंक्रमण होता है। इसका कारण सुगम है। अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है, क्योंकि वह अन्यप्रकृतिमें प्रक्षिप्त होकर नष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी प्ररूपणा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके समान है। विशेष इतना है कि देशसंयतगुणस्थानतक इनका अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है।

अरति और शोकका मिथ्यात्वसे प्रमत्तसंयतगुणस्थानपर्यन्त अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि उनमें इनका बन्ध पाया जाता है। अप्रमत्तसंयतगुणस्थानमें इनका विध्यात-संक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध नहीं है। अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे लेकर अपने अंतिम स्थितिकाण्डककी द्विचरमफालि तक उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि वहां अप्रशस्तता होनेपर उनका बन्ध नहीं होता। उनकी अंतिमफालिका सर्वसंक्रम होता है। इसका कारण सुगम है।

निद्रा, प्रचला तथा अप्रशस्तवर्ण-गन्ध-रस व स्पर्श और उपघातके अधःप्रवृत्त-संक्रम और गुणसंक्रम ये दो ही संक्रम होते हैं। यथा-निद्रा और प्रचलाका मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम सप्तमभागतक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि यहां इनका बन्ध पाया जाता है। आगे सूक्ष्मसाम्परायिकके अंतिमसमयतक उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि यहां उनका बन्ध नहीं है।

अप्रशस्तवर्णादिचतुष्क मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानके सात भागोंमेंसे छठे भागतक इनका अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। आगे सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिमसमयतक उनका गुणसंक्रम होता है। इसके आगे उनका संक्रम नहीं है, क्योंकि बन्धके न होनेसे उनकी प्रतिग्रह प्रकृतियोंका वहां अभाव है।

उपघातकी प्ररूपणा वर्णचतुष्कके समान है। इन निद्रा आदि सातप्रकृतियोंका विध्यातसंक्रम नहीं होता, क्योंकि क्षपक और उपशमकश्रेणियोंमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। इनका उद्वेलनसंक्रम भी नहीं होता, क्योंकि अन्य प्रकृतियोंमें प्रक्षिप्त होकर उनका विनाश नहीं होता।

असातावेदनीय, पांचसंस्थान, पांचसंहनन, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति और नीचगोत्र इन २० प्रकृतियोंके अधःप्रवृत्तसंक्रम, विध्यातसंक्रम और गुणसंक्रम ये तीन संक्रम होते हैं। यथा—असाता-वेदनीय, अस्थिर और अशुभ इनका मिथ्यात्वसे प्रमत्तसंयतगुणस्थानतक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि यहां इनका बन्ध पाया जाता है। अप्रमत्तसंयतगुणस्थानमें उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतियोंका अभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुण्डकसंस्थान और असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननका मिथ्यात्वगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहांपर इनका बन्ध पाया जाता है। आगे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानतक इनका विध्यात संक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध नहीं होता। असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्च व मनुष्यमिथ्यादृष्टियोंमें भी उनका विध्यातसंक्रम ही होता है, क्योंकि उनके इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिकगुणस्थानके अन्तिमसमयतक उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि वहांपर इनके बन्धका अभाव है। आगे उनका संक्रम नहीं होता, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतियोंका अभाव है।

चारसंस्थान, चारसंहनन, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र और अप्रशस्तविहायोगतिका मिथ्यात्वगुणस्थानसे सासादनगुणस्थानपर्यंत अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। आगे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानके अन्तिमसमयतक उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि आगे उनका बंध नहीं होता। अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिमसमयपर्यंत उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि वे अप्रशस्तप्रकृतियां हैं। आगे उनका संक्रम नहीं है, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतियोंका अभाव है। इसीप्रकार अपर्याप्त नामकर्मके विषयमें भी कहना चाहिये। विशेष इतना है कि इसका अधःप्रवृत्तसंक्रमण केवल मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है।

अयशस्कीर्तिकी प्ररूपणा अपर्याप्त प्रकृतिके समान है। विशेष इतना है कि मिथ्यात्वसे प्रमत्तसंयतगुणस्थानतक इसका अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, क्योंकि इन गुणस्थानोंमें उसका बन्ध पाया जाता है।

मिथ्यात्वप्रकृतिके विध्यातसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम ये तीनसंक्रम होते हैं। यथा—प्रथमसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकालतक उपशमसम्यग्दृष्टिजीवके मिथ्यात्वका गुणसंक्रम होता है। क्षपणामें भी अपूर्वकरणगुणस्थान (क्षपकअपूर्वकरण) के प्रथमसमयसे लेकर अन्तिमस्थितिकाण्डककी द्विचरमफालि तक उसका गुणसंक्रम होता है। तथा अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है। उपशमसम्यग्दृष्टिके ही मिथ्यात्वप्रकृतिका विध्यातसंक्रम भी होता है।

वेदकसम्यक्त्व (सम्यक्त्वप्रकृति) के अधःप्रवृत्तसंक्रम, उद्वेलनसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम; ये चारसंक्रम होते हैं। यथा—मिथ्यात्वको प्राप्त हुए सम्यग्दृष्टिके अन्तर्मुहूर्तकालतक सम्यक्त्वप्रकृतिका अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। उसके आगे पल्योपमके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंख्यातवेंभागमात्र कालतक उसका अंगुलके असंख्यातवेंभाग प्रतिभागवाला उद्वेलनसंक्रम होता है। उद्वेलनके अन्तिमकाण्डकके प्रथमसमयसे लेकर उसकी ही द्विचरमफालितक उसीका गुणसंक्रम होता है तथा उसकी अंतिमफालिका सर्वसंक्रम होता है।

सम्मविहीणुव्वेल्ले पंचेव य तत्थ होंति संकमणा।
संजलणतिये पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो य ॥४२४॥

अर्थ—सम्यक्त्वप्रकृतिबिना उद्वेलनारूप १२ प्रकृतियोंमें पांचों संक्रमण होते हैं तथा सञ्ज्वलनक्रोधादि तीन और पुरुषवेदमें अधःप्रवृत्त एवं सर्वसंक्रमण ही पाए जाते हैं। इन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होते हुए भी गुणसंक्रमणकी प्राप्ति नहीं होती है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आहारकशरीर, आहारकशरीरअङ्गोपाङ्ग नामकर्म और उच्चगोत्र इन बारह प्रकृतियोंके पांच संक्रमण होते हैं। यथा–मिथ्यात्वको प्राप्त सम्यग्दृष्टिके अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यग्मिथ्यात्वका अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है। उसके आगे पल्योपमके असंख्यातवेंभागमात्र कालतक सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलनसंक्रम होता है। अन्तिमकाण्डकमें उसकी ही द्विचरमफालितक गुणसंक्रम होता है। चरमफालिका सर्वसंक्रम होता है। दर्शनमोहक्षपकअपूर्वकरणके प्रथमसमयसे लेकर अन्तिमस्थितिकाण्डककी द्विचरमफालितक सम्यग्मिथ्यात्वका गुणसंक्रम होता है। उसकी अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है। उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टिके उसका अंगुलके असंख्यातवेंभाग प्रतिभागवाला विध्यातसंक्रम होता है।

देवगति और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरणगुणस्थानके सातभागोंमें से छठेभागपर्यंत अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध पाया जाता है। उसके आगे बंधका अभाव होनेपर भी अधःप्रवृत्तसंक्रम ही होता है, क्योंकि वे प्रशस्तप्रकृतियां हैं। देव-नारकियोंमें उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनके इनका बन्ध नहीं होता। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोंमें उद्वेलनके अन्तिमकाण्डकके प्राप्त न होने तक उनका उद्वेलनसक्रमण होता है। अतिमकाण्डकमें उसीकी द्विचरमफालितक गुणसंक्रम होता है तथा अंतिमफालिका सर्वसंक्रम होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरअङ्गोपाङ्ग प्ररूपणा देवगतिके समान है। नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी भी प्ररूपण. वगतिके समान है। विशेष इतना है कि मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही इनका अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है। सासादनगुणस्थानसे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानतक उनका विध्यातसंक्रम होता है। देव-नारकियोंमें भी इनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि देव-नारकियोंके इनका बन्ध नहीं होता। अपूर्वकरणगुणस्थानसे अपने अन्तिमस्थितिकाण्डककी द्विचरमफालितक उनका गुणसंक्रम और अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें उनका उद्वेलनसंक्रम होता है। उद्वेलनके अन्तिमकाण्डकमें (द्विचरमफालितक) उनका गुणसंक्रम और उसीकी अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है। इसप्रकार उक्त दो प्रकृतियोंके पांचसंक्रम होते हैं।

मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका मिथ्यात्वसे असंयतगुणस्थानपर्यंत अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध पाया जाता है। देशसंयतसे अप्रमत्तसंयतगुणस्थानपर्यंत उनका विध्यातसंक्रम होता है। असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनमें इनका बन्ध नहीं होता है। तेज-वायुकायिकोंमें द्विचरम उद्वेलनकाण्डकतक उनका उद्वेलनसंक्रम होता है। अन्तिम उद्वेलनकाण्डकमें (द्विचरमफालितक) गुणसंक्रम और उसीकी अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है।

आहारकशरीर और आहारकअङ्गोपाङ्ग नामकर्मोंका अप्रमत्तासंयतसे लेकर अपूर्वकरण तक अध:प्रवृत्तासंक्रम होता है, क्योंकि वहां इनका बन्ध नहीं होता। आहारकशरीर सत्कर्मिकसंयत असंयमको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तमें उद्वेलना प्रारम्भ करता है, जब तक वह असंयत है और जब तक सत्कर्मसे रहित होता है तब तक वह उद्वेलना करता है। आहारकद्विकका उद्वेलनकालके भीतर उद्वेलनसंक्रम होता है अंतिमस्थितिकाण्डकमें गुणसंक्रम होता है। उसमें ही अंतिमफालिका सर्वसंक्रम होता है।

उच्चगोत्रका मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानोंमें अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है। आगें इस प्रकृतिका संक्रम नहीं होता है, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतिका अभाव है। सप्तमपृथ्वीके नारकियोंमें उसका विध्यातसंक्रम होता है। तेजकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उसका उद्वेलनसंक्रम होता है, क्योंकि वहां उद्वेलनके योग्य परिणाम पाये जाते हैं। अन्तिम उद्वेलनकाण्डकमें गुणसंक्रम होता है। उसीकी अन्तिमफालिका सर्वसंक्रम होता है।

तीन संज्वलनकषायों और पुरुषवेदके अध:प्रवृत्तसंक्रम और सर्वसंक्रम ये दो संक्रम होते हैं। यथा—तीन संज्वलनकषायों और पुरुषवेदका मिथ्यात्वसे अनिवृत्ति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करणगुणस्थाननक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। इनके अन्तिमकाण्डककी अन्तिमफालिके सर्वसंक्रम होता है।

ओरालदुगे वज्जे तित्थे विज्झादधापवत्तो य।
हस्सरदिभयजुगुच्छे अधापवत्तो गुणो सव्वो ॥४२५॥

अर्थ—औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्करप्रकृतिमें विध्यात व अधःप्रवृत्तसंक्रमण पाया जाता है। यहां तीर्थङ्करप्रकृतिमें जो विध्यातसंक्रमण कहा है वह द्वितीय व तृतीय नरक जानेके सम्मुख मनुष्य एवं जो मरणको प्राप्त हुआ है ऐसा मिथ्यादृष्टि नारकीजीवके होता है। हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियोंमें अधःप्रवृत्तसंक्रमण, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण पाये जाते हैं इसप्रकार प्रकृतियोंमें सर्वसंक्रमण कहा।

विशेषार्थ—हास्य, रति, भय और जुगुप्साके अधःप्रवृत्तसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम होते हैं। यथा—औदारिकद्विक और प्रथमसंहननका मिथ्यात्वसे असंयतगुणस्थानतक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहां पर उनका बन्ध देखा जाता है। असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें इनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनमें इनका बन्ध नहीं होता। तीर्थङ्करप्रकृतिका असंयतगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानतक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें उसका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि वहां उसका बन्ध नहीं होता।

सम्मत्तूणुव्वेलणथीणतितीसं च दुक्खवीसं च।
वज्जोरालदुतित्थं मिच्छं विज्झादसत्तट्ठी ॥४२६॥

अर्थ—सम्यक्त्वप्रकृतिकेबिना १२ उद्वेलनप्रकृतियां, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानकी १२ कषाय, स्त्री नपुंसकवेद, अरति-शोक, तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, असातावेदनीय, अप्रशस्त-विहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहननबिना ५ संहनन, समचतुरस्रसंहननबिना ५ संस्थान, नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, तीर्थङ्कर और मिथ्यात्व ये सर्व ६७ प्रकृतियां विध्यातसंक्रमणकी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब जिन प्रकृतियोंका अधःप्रवृत्तसंक्रमण और जिन प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण होता है उन प्रकृतियोंके नाम कहते हैं।

मिच्छूणिगिवीससयं, अधापवत्तस्स होंति पयडीओ।
सुहुमस्स बंधघादिप्पहुदी उगुदालुरालदुगतित्थं ॥४२७॥
वज्जं पुंसंजलणति ऊणा गुणसंकमस्स पयडीओ।
पणहत्तरिसंखाओ पयडीणियमं विजाणाहि ॥४२८॥जुम्मं॥

अर्थ—मिथ्यात्वप्रकृतिबिना शेष १२१ प्रकृतियां अधःप्रवृत्तसंक्रमणकी जानना तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बंधनेवाली घातियाकर्मोंकी १४ प्रकृतियोंको आदि लेक ३९ प्रकृति, औदारिद्विक, तीर्थङ्कर, वज्रर्षभनाराचसंहनन, पुरुषवेद और सञ्ज्वलन-क्रोधादि ३ इन ४७ प्रकृतियोंके बिना ७५ प्रकृति गुणसंक्रमणसंबंधी जानना।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तसंक्रमणसम्बन्धी प्रकृतियां १२१ हैं तथा ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, सातावेदनीय, सञ्ज्वलनलोभ, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान शुभवर्णादि ४, अगुरुलघु परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, तीर्थङ्कर, वज्रर्षभनाराचसंहनन, पुरुषवेद और सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया इन ४७ प्रकृतिबिना शेष ७५ प्रकृति गुणसंक्रमणकी जानना। इसप्रकार प्रकृतियोंमें संक्रमणसम्बन्धी नियम कहा।

जिन-जिन प्रकृतियोंमें जो-जो संक्रमण होते हैं उनकी सूचक संदृष्टि—

प्रकृतियोंके नाम	उद्वेलन संक्रमण	विध्यात संक्रमण	अधःप्रवृत्त संक्रमण	गुणसंक्रमण	सर्वसंक्रमण
ज्ञानावरण ५	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
दर्शनावरण ४	"	"	"	"	"
स्त्यानगृद्धिआदि निद्रा ३	"	है	"	है	है
निद्रा–प्रचला २	"	नहीं है	"	"	नहीं है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	उद्वेलन	विध्यात	अधःप्रवृत्त	गुण	सर्व	
सातावेदनीय १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है	१
असातावेदनीय १	,,	है	,,	है	,,	३
अनन्तानुबन्धी ४	,,	,,	,,	है	है	४
अप्रत्याख्यानावरण ४	,,	,,	,,	,,	,,	४
प्रत्याख्यानावरण ४	,,	,,	,,	है	,,	४
सञ्ज्वलनक्रोधादि ३	,,	नहीं है	,,	नहीं है	,,	२
सञ्ज्वलनलोभ १	,,	,,	,,	,,	नहीं है	१
नोकषाय ४	,,	,,	,,	है	है	३
अरति-शोक २	,,	है	,,	,,	,,	४
नपुंसकवेद १	,,	,,	,,	,,	,,	४
स्त्रीवेद १	,,	,,	,,	,,	,,	४
पुरुषवेद १	,,	नहीं है	,,	नहीं है	,,	२
मिथ्यात्व १	,,	है	नहीं है	है	,,	३
सम्यग्मिथ्यात्व १	है	है	है	,,	,,	५
सम्यक्त्व १	,,	नहीं है	,,	,,	,,	४
नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी	,,	है	,,	,,	,,	५
तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी	नहीं है	,,	,,	,,	,,	४
मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी	है	,,	,,	,,	,,	५
देवगति-देवगत्यानुपूर्वी	,,	,,	,,	,,	,,	५
एकेन्द्रिय १	नहीं है	,,	,,	,,	,,	४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	उ.	वि.	अ.	गु.	स.	
विकलत्रय ३	नहीं है	है	है	है	है	४
पञ्चेन्द्रिय १	"	नहीं है	"	नहीं है	नहीं है	१
औदारिकद्विक २	"	है	"	"	"	२
वैक्रियिकद्विक २	है	"	"	है	है	५
आहारकद्विक २	"	"	"	"	"	५
तैजस-कार्मण २	नहीं है	नहीं है	"	नहीं है	नहीं है	१
निर्माण १	"	"	"	"	"	१
समचतुरस्रसंस्थान १	"	"	"	"	"	१
न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान १	"	है	"	है	"	३
स्वातिसंस्थान १	"	"	"	"	"	३
कुब्जकसंस्थान १	"	"	"	"	"	३
हुण्डकसंस्थान १	"	"	"	"	"	३
वामनसंस्थान १	"	"	"	"	"	३
वज्रर्षभनाराचसंहनन १	"	"	"	नहीं है	"	२
वज्रनाराचादिसंहनन ४	"	"	"	है	"	३
असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन	"	"	"	"	"	३
शुभवर्णादि ४	"	नहीं है	"	नहीं है	"	१ एक
अशुभवर्णादि ४	"	"	"	है	"	२ दो
अगुरुलघु	"	"	"	नहीं है	"	१ एक
उपघात	"	"	"	है	"	२ दो
परघात १	"	"	"	नहीं है	"	१ एक
उच्छ्वास १	"	"	"	नहीं है	"	१ ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	उ.	नि.	अ.	गु.	स्व.	
आतप १	नहीं है	है	है	है	है	४
उद्योत १	"	"	"	"	है	४
प्रशस्तविहायोगति १	"	नहीं है	"	नहीं है	नहीं है	१
अप्रशस्त " १	"	है	"	है	"	३
प्रत्येकशरीर १	"	नहीं है	"	नहीं है	"	१
त्रस १	"	"	"	"	नहीं है	१
सुभग १	"	"	"	"	"	१
सुस्वर १	"	"	"	"	"	१
शुभ १	"	"	"	"	"	१
बादर १	"	"	"	"	"	१
पर्याप्त १	"	"	"	"	"	१
स्थिर १	"	"	"	"	नहीं है	१
आदेय १	"	"	है	"	"	१
यशस्कीर्ति १	"	"	है	"	"	१
साधारणशरीर १	"	है	"	है	है	४
स्थावर १	"	"	"	"	"	४
दुर्भग १	"	"	"	"	नहीं है	३
दुःस्वर १	नहीं है	"	"	"	"	३
अशुभ १	"	"	है	"	"	३
सूक्ष्म १	"	"	"	"	है	४
अपर्याप्त १	"	"	"	"	नहीं है	३
अस्थिर १	"	"	"	"	"	३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	उ.	वि.	अ.	गु.	स.	
अनादेय १	नहीं है	है	है	है	नहीं है	३
अयशस्कीर्ति	,,	,,	,,	,,	,,	३
तीर्थङ्कर १	,,	,,	,,	नहीं है	,,	२
उच्चगोत्र १	है	,,	,,	है	है	५
नीचगोत्र १	नहीं है	,,	,,	,,	नहीं है	३
अन्तराय ५	,,	नहीं है	,,	नहीं है	,,	१

ठिदिअणुभागाणं पुण, बंधो सुहुमोत्ति होदि णियमेण ।
बंधपदेसाणं पुण, संकमणं सुहुमरागोत्ति ॥४२९॥

अर्थ—स्थिति और अनुभागबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यंत ही है इसलिए स्थिति और अनुभागका कारण कषाय है तथा बन्धरूप हुए परमाणुओंका संक्रमण भी सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत ही है । "बंधे अधापवत्तो"[1] इससूत्रके अभिप्रायसे स्थितिबन्धपर्यन्त ही संक्रमण संभव है ।

अथानन्तर पांचभागहारोंका अल्पबहुत्व ६ गाथाओंसे कहते हैं—

सव्वस्सेक्कं रूवं, असंखभागो दु पल्लछेदाणं ।
गुणसंकमो दु हारो, ओकट्टुक्कट्टणं तत्तो ॥४३०॥

हारं अधापवत्तं, तत्तो जोगम्हि जो दु गुणगारो ।
णाणागुणहाणिसला, असंखगुणिदक्कमा होंति ॥४३१॥

तत्तो पल्लसलायच्छेदहिया पल्लछेदणा होंति ।
पल्लस्स पढममूलं, गुणहाणीवि य असंखगुणिदकमा ॥४३२॥

अण्णोण्णब्भत्थं पुण, पल्लमसंखेज्जरूवगुणिदकमा ।
संखेज्जरूवगुणिदं, कम्मुक्कस्साट्ठिदी होदि ॥४३३॥

१. गो० क० गाथा ४१६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगुलअसंखभागं, विज्झादुव्वेल्लणं असंखगुणं ।
अणुभागस्स य णाणागुणहाणिसला अणंताओ ॥४३४॥
गुणहाणिअणंतगुणं, तस्स दिवड्ढं णिसेयहारो य ।
अहियकमाणण्णोण्णब्भत्थो रासी अणंतगुणो ॥४३५॥कुलयं॥

अर्थ—सर्वसंक्रमणनामा भागहार सबसे स्तोक है, उसका प्रमाण १ संख्यारूप है। चरमफालिमें जितने परमाणु शेष रहे थे सर्वसंक्रमणभागहारके प्रमाण १ से भाग देनेपर जितने परमाणु आए वे सर्वपरमाणु अन्यप्रकृतिरूप परिणमन करें उसे सर्वसंक्रमण जानना तथा असंख्यातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण गुणसंक्रमणनामा भागहार है। जिन प्रकृतियोंमें गुणसंक्रमण होता है उनके परमाणुओंमें गुणसंक्रमणभागहारका भाग देनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उतने परमाणु यथायोग्य कालमें समय-समयप्रति असंख्यातगुणे होकर अन्यप्रकृतिरूप परिणमन करते हैं उसे गुणसंक्रमण कहते हैं तथा इससे उत्कर्षण व अपकर्षणभागहार असंख्यातगुणा है तथापि वह पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण ही है, उसका इन पंचभागहारोंमें कथन नहीं है फिरभी जहां उत्कर्षण, अपकर्षणभागहारका कथन आवे वहां यही प्रमाण जानना। इससे अधःप्रवृत्तसंक्रमणभागहार असंख्यातगुणा है तो भी वह पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। अधःप्रवृत्तसंक्रमणरूप प्रकृतियोंके परमाणुओंमें पल्यके असंख्यातवेंभागका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने परमाणु अन्यप्रकृतिरूप होकर परिणमन करें उसे अधःप्रवृत्तसंक्रमण कहते हैं। योगोंके कथनमें जो गुणकार कहा है वह असंख्यातगुणा है तथापि वह पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभाग ही है। जघन्ययोगस्थानोंको पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागसे गुणा करनेपर उत्कृष्टयोगस्थान होता है तथा कर्मस्थितिकी नानागुणहानिशलाका का प्रमाण असंख्यातगुणा है अर्थात् पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उतने प्रमाण हैं। इससे पल्यके अर्धच्छेदोंका प्रमाण अधिक है, अधिकताका यह प्रमाण वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंके बराबर है। इससे पल्यका प्रथमवर्गमूल असंख्यातगुणा है। द्विरूप वर्गधारामें पल्यके अर्धच्छेदरूप स्थानसे असंख्यातस्थान व्यतीत होनेपर पल्यका प्रथमवर्गमूल होता है, इससे कर्मस्थितिकी एकगुणहानिके समयोंका प्रमाण असंख्यातगुणा है सो ७०० को चारबार करोड़से गुणा करनेपर जो लब्ध आया उससे गुणित पल्यमें नानागुणहानिके प्रमाणका भाग देनेपर यह प्रमाण प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। इससे कर्मस्थितिकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातगुणा है अतः नानागुणहानिके प्रमाण बराबर दोका अङ्क लिखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है। इससे पल्यका प्रमाण असंख्यातगुणा है सो अन्योन्याभ्यस्तराशिके प्रमाणको पल्यकी वर्गशलाकासे गुणा करनेपर पल्यका प्रमाण प्राप्त होता है, इससे कर्मकी उत्कृष्टस्थिति संख्यातगुणी है। इसप्रकार एकसागरके १० कोड़ाकोड़ी पल्य हैं तो ७० कोड़ाकोड़ीसागरके पल्योंका प्रमाण ७०० को चारबार करोड़से गुणा करनेपर पल्य होते हैं। इससे विध्यातसंक्रमणभागहार असंख्यातगुणा है तथापि वह सूच्यंगुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण है अर्थात् सूच्यंगुलमें आकाशके जितने प्रदेश होते हैं उनका असंख्यातवेंभागप्रमाण है। इसप्रकार विध्यातसंक्रमणरूप प्रकृतियोंके परमाणुओंमें सूच्यंगुलके असंख्यातवेंभागका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु अन्यप्रकृतिरूप होकर परिणमन करें उसे विध्यातसंक्रमण जानना चाहिये। इससे उद्वेलनभागहार असंख्यातगुणा फिर भी वह सूच्यंगुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। उद्वेलनरूप प्रकृतियोंके परमाणुओंमें उद्वेलनभागहारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने परमाणु अन्यप्रकृतिरूप होकर परिणमें उसे उद्वेलनसंक्रमण कहते हैं। इससे कर्मोंके अनुभागबन्धकथनमें नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण अनन्त है, इससे उस अनुभागकी एकगुणहानिआयामका प्रमाण अनन्तगुणा है, उसीकी डेढ़गुणहानिआयामका प्रमाण एकगुणहानिआयामके प्रमाणसे आधा ($\frac{1}{2}$) अधिक है तथा अनुभागकी दोगुणहानिका प्रमाण डेढ़गुणहानिके प्रमाणसे आधा ($\frac{1}{2}$) अधिक है। अनुभागकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण अनन्तगुणा जानना। इसप्रकार पञ्चभागहारोंके अल्पबहुत्वका प्रसङ्ग होनेसे अन्यका भी अल्पबहुत्व निरूपण किया।

पञ्चभागाहार (संक्रमण) सम्बन्धी अल्पबहुत्वका कथन करते हैं—

गुणसंक्रमणके द्वारा संक्रान्त होनेवाले प्रदेशाग्रका अवहारकाल स्तोक है। अधःप्रवृत्तसंक्रमके द्वारा संक्रांत होनेवाले प्रदेशाग्रका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। विध्यातसंक्रमके द्वारा संक्रांत होनेवाले प्रदेशाग्रका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। यह अल्पबहुत्व उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमभागहारोंका है, न कि सर्वभागहारोंका; क्योंकि विध्यातसंक्रमभागहारसे अधःप्रवृत्तसंक्रमभागहार विशेष हीन पाया जाता है।

शङ्का—यह कहांसे जाना जाता है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान—वह, प्रत्याख्यानावरणलोभके जघन्य संक्रमद्रव्यसे केवलज्ञानावरणका जघन्यसंक्रमद्रव्य विशेष अधिक है, इस आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्वसे जाना जाता है।

उसकी अपेक्षा उद्वेलनसंक्रमसे संक्रांत होनेवाले द्रव्यका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्वका यहां अवधारण करना चाहिये[1]।

उद्वेलनसंक्रममें प्रदेशाग्र सबसे स्तोक हैं, क्योंकि उसे लानेका भागहार अंगुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। इससे असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र विध्यातसंक्रममें है, क्योंकि इन दोनोंको लानेका भागहार अंगुलके असंख्यातवेंभागरूपसे समान होनेपर भी पहले भागहारसे विध्यातसंक्रमका भागहार असंख्यातगुणा हीन स्वीकार किया गया है। उससे अधःप्रवृत्तसंक्रममें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, क्योंकि इसे लानेके लिए भागहार पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। उससे गुणसंक्रममें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, क्योंकि पूर्वद्रव्यके भागहारसे यह द्रव्य असंख्यातगुणेहीन भागहारसे सम्बन्ध रखता है। गुणसंक्रमके प्रदेशाग्रसे सर्वसंक्रममें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह द्रव्य एक अङ्कप्रमाण भागहारसे सम्बन्ध रखता है। इसप्रकार द्रव्योंके अल्पबहुत्वके द्वारा इन पांच संक्रमभेदोंके भागहारविशेषका भी ज्ञान करा दिया है। इसलिए इसके द्वारा रचित हुए भागहारोंके अल्पबहुत्वको भी विलोमक्रमसे ले जाना चाहिये[2]। वह विलोमक्रम इसप्रकार है—सर्वसंक्रमभागहार सबसे स्तोक है, क्योंकि वह एक अङ्कप्रमाण है। उससे गुणसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण है। उससे अधःप्रवृत्तसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह पल्यके असंख्यातवेंभाग होते हुए भी पूर्वसे असंख्यातगुणा है। उससे विध्यातसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह अंगुलके असंख्यातवेंभाग है। उससे उद्वेलनसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि अंगुलके असंख्यातवेंभाग होते हुए भी पूर्वसे असंख्यातगुणा है।

"इति पञ्चभागाहारचूलिका"

१. धवल पु० १६ पृं० ४२१। २. जयधवल पु० ९ पृं० १७२-७३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ दशकरणचूलिका ।

आगे नेमिचन्द्राचार्य १४ गाथाओंमें दसकरणचूलिकाका कथन करनेकी इच्छा करते हुए सर्वप्रथम अपने श्रुतगुरुको नमस्कार करते हैं—

जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो, णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥४३६॥

अर्थ—वीरेन्द्रनन्दि आचार्यका शिष्य मैं (ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्राचार्य) सो जिन श्रुतगुरुके चरणप्रसादसे अनन्तरूप संसारसमुद्रके पारको प्राप्त हुआ हूं उन अभयनन्दि आचार्यको नमस्कार करता हूं ।

अब दसकरणोंके नाम कहते हैं—

बंधुक्कट्टणकरणं, संकममोकट्टुदीरणा सत्तं ।
उदयुवसामणिधत्ती, णिकाचणा होदि पडिपयडी ॥४३७॥

अर्थ—बन्ध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति और निकाचित ये दसकरण कर्मप्रकृतियोंके होते हैं ।

अथानन्तर १० करणोंका स्वरूप तीन गाथाओंसे कहते हैं—

कम्माणं संबंधो, बंधो उक्कट्टणं हवे वड्ढी ।
संकमणमणत्थगदी, हीणा ओकट्टणं णाम ॥४३८॥
अण्णत्थठियस्सुदये, संथुहणमुदीरणा हु अत्थित्तं ।
सत्तं सकालपत्तं, उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥४३९॥
[1]उदये संकमुदये, चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं ।
उवसंतं च णिधत्ति णिकाचिदं होदि जं कम्मं ॥४४०॥

---

१. उदए संकमउदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं । उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं ॥ (ध० पु० ६ पृ० २९५, ध० पु० ९ पृ० २३६ और ध० पु० १५ पृ० २७६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—पुद्गलद्रव्यका कर्मरूप होकर आत्मप्रदेशोंके साथ संश्लेषसम्बन्ध होना बन्ध है। कर्मोंका जो स्थिति व अनुभाग पूर्वमें था उसमें वृद्धिका होना उत्कर्षण कहलाता है। जो प्रकृति पूर्वमें बंधी थी उसका अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमन करना अर्थात् उसप्रकृतिके परमाणुओंका अन्यप्रकृतिरूप होना प्रकृतिसंक्रमण है। कर्मोंकी स्थिति व उनका अनुभाग जो पूर्वमें था उसको कम करना (घटाना) अपकर्षण कहलाता है। उदयावलीके बाहर स्थित द्रव्यको अपकर्षणकरणके बलसे उदयावलीमें लाना उदीरणा कहलाती है। जिन प्रकृतियोंके निषेकोंका उदयकाल नहीं आया अर्थात् उदयावलीसे उनका अधिककाल है सो उनकी स्थितिको घटाकर जो निषेक आवलीमात्र कालमें उदयमें आवें उनमें उनके परमाणुओंका मिलाना सो उनके साथ ही उनका उदय होवे, वह उदीरणा है। अस्तित्व अर्थात् पुद्गलोंका कर्मरूप रहना सत्त्व कहलाता है। कर्मोंका अपनी पूर्वबद्ध स्थितिबन्धके अनुसार उदयको प्राप्त होना उदय कहलाता है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। जो कर्मपरमाणु उदीरणाको प्राप्त होनेमें समर्थ न हो उसे उपशान्तकरण कहते हैं तथा जो कर्मपरमाणु उदयावलीको प्राप्त करनेमें तथा अन्यप्रकृतिरूप संक्रमणकरनेमें समर्थ नहीं होता उसे निधत्ति कहते हैं और जो कर्मपरमाणु उदयावलीको प्राप्त करनेमें तथा अन्यप्रकृतिरूप संक्रमण करनेमें अथवा उत्कर्षण-अपकर्षण करनेमें समर्थ नहीं होता उसे निकाचित कहते हैं।

विभिन्न ग्रन्थोंमें दसकरणोंके लक्षण इसप्रकार हैं—

बन्ध—"बंधो णाम दुभावपरिहारेण एयत्तावत्तो" अर्थात् द्वित्वका त्यागकरके एकत्वकी प्राप्तिका नाम बन्ध है[1]। "एकीभावो बन्धः" अर्थात् एकीभाव (जीव-कर्मकी एकरूपता) होनेको बन्ध कहते हैं[2]। "जीव-कम्माणं मिच्छत्तासंजमकसाय-जोगेहिं एयत्तपरिणामो बंधो" अर्थात् जीव और कर्मोंका मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगोंसे जो एकत्वपरिणाम होता है उसे बन्ध कहते हैं[3]। "जम्मि अणियोगद्दारे कम्मइयवग्गणाए पोग्गलक्खंधाणं कम्मपरिणामपाओग्गभावेणावट्ठिदाणं जीवपदेसेहिं सह मिच्छत्तादिपच्चयवसेण संबंधो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभेयभिण्णो परूविज्जइ तमणुयोगद्दारं बंधोत्ति भण्णदे।" अर्थात् जिस अनुयोगद्वारमें कार्मणवर्गणाके कर्मरूप परिणमन करनेकी योग्यताको प्राप्त हुए पुद्गलस्कंधोंका जीवप्रदेशोंके साथ मिथ्यात्वादिके निमित्तसे

१. धवल पु० १३ पृ० ७। २. धवल पु० १३ पृ० ३४८। ३. ध० पु० ८ पृ० २।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चारप्रकारका सम्बन्ध कहा जाता है उस अनुयोगद्वारको 'बन्ध' कहते हैं[1]। "श्लेषलक्षणः बन्धः[2]"। और भी कहा है—

[3]बन्धं प्रति भवत्यैक्यमन्योन्यानुपवेशतः।
युगपद् द्रावितस्वर्णरौप्यवज्जीवकर्मणोः॥

अर्थ—जिसप्रकार एकसाथ पिघलाए हुए स्वर्ण और चांदीका एकपिण्ड बनाए जानेपर परस्पर प्रदेशोंके मिलनेसे दोनोंमें एकरूपता मालूम होती है उसीप्रकार बन्धकी अपेक्षा जीव और कर्मोंके प्रदेशोंके परस्पर मिलनेसे दोनोंमें एकरूपता मालूम होती है।

उत्कर्षण—"कम्मप्पदेसट्ठिदिवट्ठावणमुक्कड्डुणा" अर्थात् कर्मप्रदेशोंकी स्थितिको बढ़ाना उत्कर्षण है[4]। "उक्कड्डुणा णाम कम्मपदेसाणं पुव्विल्लट्ठिदीदो अहिणवबंधसंबंधेण ट्ठिदिवड्ढावणं" अर्थात् नवीन बंधके संबंधसे पूर्वकी स्थितिमें से कर्मपरमाणुओंकी स्थितिका बढ़ाना उत्कर्षण है[5]। "स्थित्यनुभागयोर्वृद्धिः उत्कर्षण" अर्थात् स्थिति व अनुभागमें वृद्धिका होना उत्कर्षण कहलाता है[6]।

अपकर्षण—"(कम्म) पदेसाणं ठिदीणमोवट्टणा ओक्कड्डुणा णाम" अर्थात् कर्मप्रदेशोंकी स्थितियोंके अपवर्तनका नाम अपकर्षण है[7]। "स्थित्यनुभागयोर्हानिरपकर्षण णाम" अर्थात् स्थिति व अनुभाग (कर्मोंके) में हानिका होना अपकर्षण है[8]।

संक्रमण—"बंधेण लद्धप्पसरूवस्स कम्मस्स मिच्छत्तादिभेयभिण्णस्स समयाविरोहेण सहावंतरसंकंतिलक्खणो संकमो पयडिसंकमादिभेयभिण्णो" अर्थात् बन्धके द्वारा जिन्होंने कर्मभावको प्राप्त किया है और जो मिथ्यात्वादि अनेक भेदरूप हैं ऐसे कर्मोंका यथाविधि स्वभावान्तर संक्रमणरूप संक्रमका लक्षण है और वह संक्रमण प्रकृतिसंक्रमणादि अनेकभेदरूप है[9]। "अवत्थादो अवत्थंतरं संकंति संकमो त्ति" अर्थात् एक अवस्थासे दूसरी अवस्थारूप संक्रांत होना संक्रम है[10]। "जा पयडी अण्णपयडिं णिज्जदि एसो पयडिसंकमो" अर्थात् जो एकप्रकृति अन्यप्रकृतिस्वरूपताको प्राप्त कराई जाती है, यह प्रकृतिसंक्रम कहलाता है[11]। "कम्मसंकमो चउव्विहो। तं जहा पयडिसंकमो ट्ठिदि-

---

१. जयधवल पु० ८२। २. रा. वा. अ. ५। ३३ सूत्र। ३. तत्त्वार्थसार अ. ५ श्लो. १८। ४. ध० पु० १० पृ० ५२। ५. जयधवल पु. ८ पृ. २५३। ६. गो. क. गाथा ४३८ की टीका। ७. ध. पु. १० पृ. ५३। ८. गो. क. टीका (गाथा ४३८ की)। ९. जयध० पु० ८ पृ० २। १०. जयध० पु० ९ पृ० ३। ११. धवल पु० १६ पृ० ३४०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकमो अणुभागसंकमो पदेससंकमो चेदि ।। मिच्छत्तादिकज्जजणणक्खमस्स पोग्गलक्खंधस्स कम्मववएसो । तस्स संकमो कम्मत्तापरिच्चाएण सहावंतर संकंती । सो पुण दव्वट्ठियणयावलंबणेणेगत्तमावण्णो पज्जवट्ठियणयावलंबणेण चउप्पयारो होइ पयडिसंकमादिभेएण । तत्थ पयडीए पयडिअंतरेसु संकमो पयडिसंकमो त्ति भण्णइ, जहा कोह पयडीए माणादिसु संकमो त्ति । अर्थात् कर्म संक्रमण चारप्रकारका है। यथा— प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम । जो पुद्गलस्कंध मिथ्यात्वादि कार्यके उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं वह कर्म कहलाता है । उसका अपनी कर्मरूप अवस्थाका त्याग किए बिना अन्य स्वभावरूपसे संक्रमण करना कर्मसंक्रम कहलाता है । वह यद्यपि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे एक प्रकारका है तथापि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वह प्रकृतिसंक्रम आदिके भेदसे चार प्रकारका है । इनमेंसे एक प्रकृतिका दूसरी प्रकृतियोंमें संक्रमण होना प्रकृतिसंक्रम कहलाता है । जैसे क्रोधप्रकृतिका मानादिकमें संक्रमण होना प्रकृतिसंक्रम है[1] । **"जा ट्ठिदी ओकड्डिज्जदि वा उक्कड्डिज्जदि वा अण्णपयडिं संकामिज्जइ वा सो ट्ठिदिसंकमो"** अर्थात् जो स्थिति अपकर्षित, उत्कर्षित और अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमित होती है वह स्थितिसंक्रम है[2] । **"अणुभागो ओकड्डिदो वि संकमो, उक्कड्डिदो वि संकमो, अण्णपयडिं णीदो वि संकमो"** । अर्थात् अपकर्षित हुआ अनुभाग भी संक्रम है, उत्कर्षित हुआ अनुभाग भी संक्रम है तथा अन्य प्रकृतिको प्राप्त हुआ अनुभाग भी संक्रम है[3] ।

"जं पदेसग्गमण्णपयडिं णिज्जदे जत्तो पयडीदो तं पदेसग्गं णिज्जदि तिस्से पयडीए सो पदेससंकमो । एदेण परपयडिसंकंतिलक्खणो चेव पदेससंकमो ण ओकड्डुक्कड्डुणलक्खणो त्ति जाणाविदं, ट्ठिदि-अणुभागाणं च ओकड्डुक्कड्डुणाहि पदेसग्गस्स अण्णभावावत्तीए अणुवलंभादो ।" अर्थात् जो प्रदेशाग्र जिस प्रकृतिसे अन्यप्रकृतिको ले जाया जाता है वह प्रदेशाग्र यतः ले जाया जाता है इसलिए उस प्रकृतिका वह प्रदेशसंक्रम है। इसवचन द्वारा परप्रकृतिसंक्रमलक्षण ही प्रदेशसंक्रम है, अपकर्षण-उत्कर्षणलक्षण नहीं यह ज्ञान कराया गया है, क्योंकि जिसप्रकार अपकर्षण-उत्कर्षणके द्वारा स्थिति और अनुभागका अन्यरूप होना पाया जाता है उस प्रकार उनके द्वारा प्रदेशाग्रका अन्यरूप होना नहीं पाया जाता है[4] ।

---

१. जयधवल पु० ८ पृ० १४। २. जयधवल पु० ८ पृ० २४२। ३. जयध० पु० ९ पृ० ३।
४. जयध० पु० ९ पृ० १६९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवीन बन्ध होनेपर ही बन्धप्रकृतिमें अन्य स्वजाति प्रकृतियोंका संक्रमण होता है कहा भी है—"बंधे संकमदि त्ति एसो वि णाओ जाणाविदो[1]"। जिसप्रकृतिका बंध नहीं हो रहा है उस प्रकृतिमें अर्थात् उस प्रकृतिरूप संक्रमण नहीं होता। संक्रमण भी एक प्रकारका बन्ध है। कहा भी है—"[2]कथमेत्थ संकमस्स बंधगववएसो त्ति णासंकणिज्जं, तस्स वि बंधंतब्भावित्तादो। तं जहा—दुविहो बंधो अकम्मबंधो कम्मबंधो चेदि। तत्थाकम्मबंधो णाम कम्मइयवग्गणादो अकम्मसरूवेणावट्ठिदपदेसाणं गहणं। कम्मबंधो णाम कम्मसरूवेणावट्ठिदपोग्गलाणमण्णपयडिसरूवेण परिणमणं। तं जहा—सादत्ताए बद्धकम्ममंतरंगपच्चयविसेसवसेणासादत्ताए जदा परिणामिज्जइ, जदा वा कसायसरूवेण बद्धा कम्मंसा बंधावलियं वोलाविय णोकसायसरूवेण संकामिज्जंति तदा सो कम्मबंधो उच्चइ, कम्मसरूवापरिच्चाएणेव कम्मंतरसरूवेण बज्झमाणत्तादो। अर्थात् संक्रमको बन्ध संज्ञा कैसे प्राप्त होती है? ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि संक्रमका भी बन्धमें अन्तर्भाव हो जाता है। यथा—अकर्मबन्ध कर्मबन्धके भेदसे बन्धके दो भेद हैं उनमेंसे जो कार्मणवर्गणाओंमें से अकर्मरूपसे स्थित परमाणुओंका ग्रहण होता है वह अकर्मबन्ध है और कर्मरूपसे स्थित पुद्गलोंका अन्यप्रकृतिरूपसे परिणमना कर्मबन्ध है। उदाहरणार्थ—सातारूपसे बन्धको प्राप्त हुए जो कर्म अन्तरङ्ग कारणके मिलनेपर जब असातारूपसे परिणमन करते हैं, या कषायरूपसे बन्धे हुए कर्म बन्धावलीके बाद जब नोकषायरूपसे परिणमन करते हैं, तब वह कर्मबन्ध कहलाता है, क्योंकि कर्मरूपताका त्याग किये बिना ही ये कर्मान्तररूपसे पुनः बंधते हैं।

अपकर्षण और उत्कर्षणमें भी कर्म कर्मरूपताका त्याग किये बिना ही स्थित्यन्तर व अनुभागान्तररूपसे पुनः बन्धते हैं अतः अपकर्षण-उत्कर्षण का भी संक्रमणमें अन्तर्भाव किया गया है। इसप्रकार बन्धके साथ-साथ संक्रमण, अपकर्षण व उत्कर्षणका कथन किया गया है।

सत्त्व—"बंधो चेव बंधविदियसमयप्पहुडि संतकम्मं उच्चदि जाव णिल्लेवणचरिमसमओत्ति"—अर्थात् बंध ही बन्धनेके दूसरे समयसे लेकर निर्लेपन अर्थात् क्षपण होनेके अन्तिमसमयतक सत्कर्म या सत्त्व संज्ञा है[3]। अकर्मबन्धरूप व कर्मबन्धरूप संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षणके पश्चात् कर्मका सत्त्व होता है और जब तक उस

---

१. जयध० पु० ८ पृ० ३३। २. जयध० पु० ८ पृ० २। ३. ध० पु० ६ पृ० २०१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मका वेदन होकर अकर्मभावको प्राप्त नहीं होता तबतक उस कर्मका सत्त्व रहता है। अतः जिन कर्मोंका सत्त्व है उन्हीं कर्मोंका वेदन होता है। वह वेदन कर्मोदय व उदीरणा के द्वारा होता है। कहा भी है—"कधं पुण उदयोदीरणाणं वेदगववएसो ? ण, वेदिज्जमाणत्तसामण्णावेक्खाए दोण्हमेदेसिं तव्ववएससिद्धीए विरोहाभावादो।" अर्थात् उदय और उदीरणा दोनों ही सामान्यसे वेद्यमान हैं इस अपेक्षा उन दोनोंकी वेदक संज्ञा सिद्ध होनेमें विरोध नहीं आता[1]। अतः वेद्यमान उदय और उदीरणामें प्रथम कर्मोदयका कथन किया जाता है।

उदय—"ते च्चेय फलदाणसमए उदयववएसं पडिवज्जंति" अर्थात् जीवसे संबद्ध हुए वे ही कर्मस्कंध फल देनेके समयमें 'उदय' इस संज्ञाको प्राप्त होते हैं[2]। "सो चेव दुसमयाधियबंधावलियाए ट्ठिदिक्खएण उदए पदमाणो उदयसण्णिदो।" अर्थात् बंधे हुए कर्म दो समय अधिक बंधावलीके व्यतीत हो जानेपर निषेक स्थितिके क्षयसे उदयमें पतमान अर्थात् गिरता हुआ उदय इस संज्ञावाला होता है[3]। "तत्थोदयो णाम कम्माणं जहाकालजणिदो फलविवागो। कम्मोदयो उदयो त्ति भणिदं होदि।" अर्थात् यथाकाल उत्पन्न हुए फलके विपाक का नाम कर्मोदय है। कर्मोदय का नाम उदय है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है[4]। "स्वफलसंपादनसमर्थकर्मावस्थालक्षणान्युदयस्थानानि" अर्थात् कर्मोंका अपना फल देनेकी समर्थतारूप अवस्थाको प्राप्त होना उदय का लक्षण है[5]। "स्वफलसम्पादनसमर्थकर्मावस्थालक्षणानि स्वफलभूतसुखदुःखाद्यात्मकजीवविभावपरिणामजननसामर्थ्यसम्पन्नकर्मपरिणामस्वरूपाण्युदयस्थानानि।" अर्थात् अपने फलको देनेकी सामर्थ्यरूप कर्मकी अवस्था यानि कर्मोंका फल जीवमें सुख-दुःखादि विभावों (परिणामों) को उत्पन्न करना है उस फलको उत्पन्न करनेकी शक्तिसहित जो पौद्गलिक कर्मके परिणाम हैं वह उदयका लक्षण या स्वरूप है[6]। "जे कम्मक्खंधा ओकड्डुक्कड्डुणादिपओगेण विणा ट्ठिदिक्खयं पाविदूण अप्पप्पणो फलं देंति, तेसिं कम्मक्खंधाणमुदओ त्ति सण्णा।" अर्थात् जो कर्मस्कंध अपकर्षण, उत्कर्षणादि प्रयोगबिना स्थिति-क्षयको प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते हैं उन कर्मस्कंधोंकी 'उदय' यह संज्ञा है[7]। "कर्माणामनु-

---

१. जयधवल पु० १० पृ० २। २. जयधवल पु० १ पृ० २९१ पेराग्राफ नं० २५० (प्रथमसंस्करणापेक्षा) तथा द्वितीयावृत्तिकी अपेक्षा पृ० २६५ पं० नं० ७। ३. ध० पु० ६ पृ० २०२। ४. जयध० पु० १० पृ० २। ५. समयसार गाथा ५३ आत्मख्याति टीका। ६. ७. ध० पु० ६ पृ० २१३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवनमुदयः" अर्थात् कर्मफलका वेदन उदय कहलाता है[१]। "कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः" अर्थात् कर्मोंका फलदान समर्थरूपसे उद्भव सो उदय है[२]।

उदीरणा—"सो चेव बंधो बंधावलियादिक्कंतो ओक्कड्डिदूण उदए संछुब्भमाणो उदीरणा होदि।" कर्मबन्धनेके पश्चात् आवलीकाल (बंधावली) व्यतीत होनेपर अपकर्षणकर जब उदय संक्षुभ्यमान किया (दिया) जाता है सो उदीरणा है। बंधावलीकालतक तो कर्मबन्ध अचल (ज्योंका त्यों) रहता है उसके पश्चात् अपनी स्थितिपर्यंत अपकर्षणके द्वारा उसका जो द्रव्य उदयावलीमें दिया जाता है उस कर्मद्रव्यकी उदीरणा संज्ञा है[३]। "जे कम्मक्खंधा महंतेसु ट्ठिदि-अणुभागेसु अवट्ठिदा ओक्कड्डिदूण फलदाइणो कीरंति तेसिमुदीरणा त्ति सण्णा।" अर्थात् जो महान् स्थिति व अनुभागमें स्थित कर्मस्कंध अपकर्षण करके फल देनेवाले किए जाते हैं उन कर्मस्कंधोंकी 'उदीरणा' संज्ञा है[४]। "अपक्वपाचनमुदीरणा। आवलियाए बाहिरट्ठिदिमादिं कादूण उवरिमाणं ठिदीणं बंधावलियवदिक्कंतपदेसग्गमसंखेज्जलोगपडिभागेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण वा ओकट्टिदूण उदयावलियाए देदि सा उदीरणा।" अर्थात् नहीं पके हुए कर्मोंके पकानेका नाम उदीरणा है। आवलीसे बाहरकी स्थितियोंके बन्धावली अतिक्रान्त प्रदेशाग्रको असंख्यातलोक प्रतिभागसे अथवा पल्योपमके असंख्यातवेंभागरूप प्रतिभागसे अपकर्षण करके उदयावलीमें देना, यह उदीरणा कहलाती है[५]। "उदीरणा पुण अपरिपत्तकालाणं चेव कम्मणमुवायविसेसेण परिपाचणं, अपक्व परिपाचनमुदीरणेति वचनात्।" अर्थात् जिनकर्मोंका उदयकाल प्राप्त नहीं हुआ है उनको उपायविशेषसे पचाना उदीरणा है, क्योंकि अपक्वका परिपाचन उदीरणा है ऐसा वचन है[६]। "अपक्वपाचनमुदीरणेति" उदयके लिए अपक्वकर्मोंका पाचन करना (पचना) उदीरणा है[७]।

उपशामना—उपशामना दो प्रकारकी है—प्रशस्तोपशामना और अप्रशस्तोपशामना अधःकरण अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरणोंके द्वारा जो मोहनीयकर्मकी उपशामना होती है वह प्रशस्तोपशामना है। बन्धके समय सभी कर्मोंके कुछ प्रदेशोंमें अप्रशस्तोपशामना होती है यहांपर उसका प्रकरण है। "कम्मपरमाणूणं बज्झंतरंग-

---

१. प्राकृत पंचसंग्रह पृष्ठ ६७६ (भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशन)। २. पञ्चास्तिकाय गाथा ५६ की टीका। ३. धवल पु० ६ पृ० २०२। ४. धवल पु० ६ पृ० २१४। ५. धवल पु० १५ पृ० ४३। ६. जयधवल पु० १० पृ० २। ७. प्रा० पंचसंग्रह पृ० ६७६ भारतीयज्ञानपीठप्रकाशन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारणवसेण केत्तियाणं पि उदीरणावसेण उदयाणागमपइण्णा अप्पसत्थउवसामणा त्ति भण्णदे" अर्थात् कितने ही कर्म परमाणुओंका बहिरंग-अन्तरंग कारणवश उदीरणा द्वारा उदयमें अनागमनरूप प्रतिज्ञाको अप्रशस्तोपशामना कहते हैं[1]। "अप्पसत्थुवसामणाए जमुवसंतं पदेसग्गं तमोकड्डिदुं पि सक्कं, उक्कड्डिदुं पि सक्कं, पयडोए संकामिदुं पि सक्कं उदयावलियं पवेसिदुं ण उ सक्कं।" अर्थात् अप्रशस्तोपशामनाके द्वारा जो प्रदेशाग्र उपशान्त होता है वह अपकर्षणके लिये भी शक्य है, उत्कर्षणके लिये भी शक्य है तथा अन्यप्रकृतिमें सक्रमण करानेके लिये भी शक्य है। वह केवल उदयावलीमें प्रविष्ट करानेके लिए शक्य नहीं है[2]। "जं कम्ममोकड्डुक्कड्डुण-परपयडिसंकमाणं पाओग्गं होदूण पुणो णो सक्कमुदयट्ठिदिमोकड्डिदुं उदीरणाविरुद्धसहावेण परिणदत्तादो तं तहाविहपइण्णाए पडिग्गहियमप्पसत्थउवसामणाए उवसंतमिदि भण्णदे। तस्स सो पज्जाओ अप्पसत्थउवसामणाकरणं णाम।" अर्थात् जो कर्म अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रमके योग्य होकर पुनः उदीरणाके विरुद्ध स्वभावरूपसे परिणत होनेके कारण उदयस्थितिमें अपकर्षित होनेके अयोग्य है वह उसप्रकारसे स्वीकार की गई अप्रशस्तोपशामनाकी अपेक्षा उपशांत ऐसा कहलाता है। उसकी उस पर्यायका नाम उपशामनाकरण है[3]।

निधत्ति—"जं पदेसग्गं ण सक्कमुदए दादुं अण्णपयडिं वा संकामेदुं तं णिधत्तं णाम।" अर्थात् जो कर्म प्रदेशाग्र उदयमें देनेके लिए अथवा अन्यप्रकृतिरूप परिणमानेके लिए शक्य नहीं वह निधत्त है[4]। "जं कम्ममोकड्डुक्कड्डुणासु अविरुद्धसंचरणं होदूण पुणो उदय-परपयडिसंकमाणमणागमणपइण्णाए पडिग्गहियं तस्स सो अवत्थाविसेसो णिधत्तीकरणमिदि भण्णदे।" अर्थात् जोकर्म अपकर्षण और उत्कर्षण के अविरुद्धपर्यायके योग्य होकर पुनः उदय और परप्रकृतिसंक्रमरूप न हो सकनेकी प्रतिज्ञा रूपसे स्वीकृत है उसकी उस अवस्था विशेषको निधत्तीकरण कहते हैं[5]। "जं पदेसग्गं णिधत्तीकयं उदए दादुं णो सक्कं, अण्णपयडिं संकामिदुं पि णो सक्कं, ओकड्डिदुमुक्कड्डिदुं च सक्कं; एवं विहस्स पदेसग्गस्स णिधत्तमिदि सण्णा।" अर्थात् जो कर्मप्रदेशाग्र निधत्तीकृत है याचि उदयमें देनेके लिए शक्य नहीं है, अन्य प्रकृतिमें संक्रांत करनेके लिए भी शक्य नहीं है, किन्तु अपकर्षण व उत्कर्षण करनेके लिए शक्य है; ऐसे प्रदेशाग्रकी निधत्ति संज्ञा है[6]।

---

१. धवल पु० १५ पृ० २७६। २. जयधवल पु० १३ पृ० २३१। ३. जयधवल पु. १३ पृ. २३१। ४. ध. पु. ९ पृ. २३५। ५. जयध० पु० १३ पृ० २३१। ६. ध० पु० १६ पृ० ५१६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निकाचित्--"जं पदेसग्गं ओकड्डिदु' णो सक्कं, उक्कड्डिदु' णो सक्कं, अण्णपयडिं संकामिदु' णो सक्कं, उदए दादु' णो सक्कं तं पदेसग्गं णिकाचिदं णाम।" अर्थात् जो कर्मप्रदेशाग्र अपकर्षण करनेके लिए शक्य नहीं है, उत्कर्षणके लिए शक्य नहीं हैं, अन्यप्रकृतिमें संक्रान्त करनेके लिए शक्य नहीं है तथा उदयमें देनेके लिए भी शक्य नहीं है; उस प्रदेशाग्रको निकाचित कहते हैं[1]। "जं पदेसग्गं ण सक्कमोकड्डिदु-मुक्कड्डिदुमण्णपयडिसंकामेदुमुदए दादु' वा तण्णिकाचिदं णाम।" अर्थात् जो प्रदेशाग्र अपकर्षण-उत्कर्षण के लिए, अन्यप्रकृतिरूप परिणमानेके लिए और उदयमें देनेके लिए शक्य नहीं है वह निकाचित कहलाता है[2]। "जं पुण कम्मं चदुण्णमेदेसिं उदयादीण-मप्पाओग्गं होदूणावट्ठाणपइण्णं तस्स तहावट्ठाणलक्खणो पज्जायविसेसो णिकाचणाकरणं णाम।" जो कर्म इन चारों (उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण,) के अयोग्य होकर अवस्थानकी प्रतिज्ञामें प्रतिबद्ध है उसकी उस अवस्थानलक्षण पर्यायविशेषको निकाचनाकरण कहते हैं[3]।

दशकरणोंका स्वरूप कहकर आगे कर्मप्रकृतियों तथा गुणस्थानोंमें इनका कथन करते हैं--

संकमणाकरणूणा, णवकरणा होंति सव्वआऊणं।
सेसाणं दसकरणा, अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ॥४४१॥

अर्थ—चारों आयुमें संक्रमणकरणकेबिना ९ करण पाये जाते हैं, क्योंकि चारों आयु परस्परमें परिणमन नहीं करतीं। शेष बन्धयोग्य सर्वप्रकृतियोंमें दशकरण होते हैं तथा मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त तो दशों करण पाये जाते हैं।

आदिमसत्तेव तदो, सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा।
छच्च सजोगित्ति तदो, सत्तं उदयं अजोगित्ति ॥४४२॥

अर्थ—अपूर्वकरणगुणस्थानके आगें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरणकेबिना आदिके सातोंकरण पाये जाते हैं, क्योंकि अनिवृत्ति-करणपरिणामोंके द्वारा उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरण टूट जाता है तथा

---

१. धवल पु० १६ पृ० ५१७। २. ध० पु० ९ पृ० २३६। ३. जयधवल पु० १३ पृ० २३१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरणकेबिना सयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त ६ करण होते हैं, उसके आगे अयोगीगुणस्थानमें सत्त्व और उदयरूप दो ही करण होते हैं।

अब उपशान्तकषायगुणस्थानमें और भी जो विशेषता है उसको कहते हैं—

णवरि विसेसं जाणे, संकममवि होदि संतमोहम्मि।
मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं ॥४४३॥

अर्थ—उपशान्तकषायगुणस्थानमें विशेषता यह है कि मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृतिमें संक्रमणकरण भी पाया जाता है अर्थात् इनके परमाणुओंको सम्यक्त्वप्रकृतिरूप परिणमन करता है शेष प्रकृतियोंके छह ही करण होते हैं।

विशेषार्थ—यथा अपूर्वकरणगुणस्थानमें तो उपशम, निधत्ति और निकाचित इन तीन करणोंकी व्युच्छित्ति होनेपर अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें व्युच्छित्ति नहीं है तथा उपशान्तकषायगुणस्थानमें मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके ७ करण हैं एवं प्रकृतियोंमें संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरणबिना ६ करण हैं। क्षीणकषायगुणस्थानमें व्युच्छित्ति नहीं है. सयोगीगुणस्थानमें बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण और उदीरणा इन चारकरणोंकी व्युच्छित्ति होती है। अयोगीगुणस्थानमें सत्त्व-उदय इन दो करणोंकी व्युच्छित्ति होती है, शेष कथन सुगम है।

बंधुक्कट्टणकरणं, सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण।
संकमणं करणं पुण, सगसगजादीण बंधोत्ति ॥४४४॥

अर्थ—जिस-जिस प्रकृतिका जब बन्ध होता है तभी बन्ध और उत्कर्षणकरण होते हैं। और अपनी-अपनी स्वजातीय प्रकृतियोंके बन्धसमयमें संक्रमणकरण होता है।

ओक्कट्टणकरणं पुण, अजोगिसत्ताण जोगिचरिमोत्ति।
खीणं सुहुमंताणं, खयदेसं सावलीयसमयोत्ति ॥४४५॥

अर्थ—अयोगीगुणस्थानमें सत्त्वरूप जो ८५ प्रकृतियां हैं उनका अपकर्षणकरण सयोगीगुणस्थानके अन्तसमयपर्यंत जानना। क्षीणकषायगुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियां और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली सूक्ष्मलोभ इसप्रकार इन १७ प्रकृतियोंका अपकर्षणकरण एकआवलीकम क्षयदेशपर्यंत जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शङ्का—क्षयदेश किसे कहते हैं ?

समाधान—जो प्रकृति अन्य प्रकृतिरूप उदय होकर नाशको प्राप्त होती है उन परमुखोदयी प्रकृतियोंके तो अन्तकाण्डककी अन्तिमफालि क्षयदेश है तथा जो स्वमुखोदयरूपसे उदय होकर निकलती हैं उन स्वमुखोदयी प्रकृतिके एक-एकआवलीप्रमाण काल शेष रहनेपर क्षयदेश है इसलिए इन १७ प्रकृतियोंका एकआवली काल शेष रहनेपर अपकर्षण होता है।

उवसंतोत्ति सुराऊ, मिच्छत्तिय खवगसोलसाणं च।
खयदेसोत्ति य खवगे, अट्ठकसायादिवीसाणं ॥४४६॥

अर्थ—उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यंत देवायुके प्रदेश अपकर्षण (अवलम्बना[1]) करण है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्वप्रकृति ये ३ और अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षय होनेवाली [2]सोलहप्रकृतियोंके अन्तकाण्डककी अन्तिमफालीपर्यंत अपकर्षणकरण है ऐसा जानना। अनिवृत्तिकरणमें ही शेष [3]बीसप्रकृतियोंके अपने-अपने क्षयदेशपर्यन्त अपकर्षणकरण है।

मिच्छतियसोलसाणं, उवसमसेढिम्मि संतमोहोत्ति।
अट्ठकसायादीणं, उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ॥४४७॥

अर्थ—उपशमश्रेणीमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति एवं नरकाद्विकादिक १६ प्रकृतियोंका उपशांतकषायपर्यंत अपकर्षणकरण है तथा आठकषायादिकका अपने-अपने उपशमके स्थानपर्यंत अपकर्षणकरण है ॥४४७॥

---

१. **शंका**—अवलम्बनाकरण किसे कहते हैं? **समाधान**—परभवसम्बन्धी आयुकी उपरिम स्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षण द्वारा नीचे पतन करना अवलम्बनाकरण कहा जाता है। **शंका**—इसकी अपकर्षण संज्ञा क्यों नहीं की? **समाधान**—नहीं, क्योंकि परभविक आयुका उदय नहीं होनेसे इसका उदयावलिके बाहर पतन नहीं होता इसलिए इसकी अपकर्षण संज्ञा करनेमें विरोध आता है। [आशय यह है कि परभव सम्बन्धी आयुका अपकर्षण होनेपर भी उसका पतन आबाधाकालके भीतर न होकर आबाधासे ऊपर स्थित स्थितिनिषेकोंमें ही होता है इसीसे इसे अपकर्षणसे जुदा बतलाया गया है।] (ध. पु. १० पृ. ३३०-३३१)

२. नरकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, उद्योत, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा ये १६ प्रकृति।

३. अप्रत्याख्यानकषाय ४; प्रत्याख्यानकषाय ४, ९ नोकषाय, सज्ज्वलनक्रोध-मान-माया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढमकसायाणं च विसंजोजकं वोत्ति अयददेसोत्ति ।
णिरयतिरियाउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ॥४४८॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंयत, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें यथासम्भव जहां विसंयोजना हो वहां पर्यन्त अपकर्षणकरण है तथा नरकायुका असंयतगुणस्थानपर्यन्त और तिर्यञ्चायुका देशसंयतगुणस्थानपर्यंत उदीरणाकरण, सत्त्वकरण और उदयकरण होते हैं ॥४४८॥

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य, उदीरणा उवसमाहिमुहियस्स ।
समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स ॥४४९॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्वके सम्मुख होनेवाले जीवके एकसमयअधिक आवलीप्रमाण काल शेष रहनेतक मिथ्यात्वप्रकृतिका उदीरणाकरण होता है । सूक्ष्मलोभका सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें ही एकसमयअधिक आवलीकाल शेष रहने तक उदीरणाकरण है, क्योंकि उदयावली शेष रह जानेपर उदीरणा संभव नहीं है ।

[1]उदये संकममुदये, चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं ।
उवसंतं च णिधत्तिं, णिकाचिदं तं अपुव्वोत्ति ॥४५०॥

अर्थ—जो उदयावलीको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता है ऐसा उपशांतकरणद्रव्य तथा जो सक्रमण अथवा उदयको प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं है ऐसा निधत्तिकरणद्रव्य एवं जो उदयावली, संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षणको प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं है ऐसा निकाचित्ताकरणद्रव्य है । ये तीनों ही प्रकारके करणद्रव्य अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त ही पाए जाते हैं, क्योंकि अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रवेश करनेके प्रथमसमयमें ही सभी कर्मोंके ये तीनों करण युगपत् व्युच्छिन्न हो जाते हैं[2] । इन तीनों करणोंका स्वरूप सविस्तार गा. ४४० के विशेषार्थमें दिया जा चुका है ।

"इतिदशकरणचूलिकाधिकार सम्पूर्ण"

इसप्रकार आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी "सिद्धांतज्ञानदीपिका" नामा हिन्दीटीकामें 'त्रिकरणचूलिका' नामक चतुर्थाधिकार पूर्ण हुआ ।

---

१. उदए सकमउदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं । उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं ॥ (धवल पु० ६ पृ० २९५, धवल पु० ९ पृ० २३६ और ध० पु० १५ पृ० २७६, गो० क० गाथा ४४०)

२. 'सव्वेसिं कम्माणमणियट्टिगुणट्ठाणपवेसपढमसमए चेव एदाणि तिण्णि वि करणाणि अक्कमेण वोच्छिण्णाणि त्ति भणिदं होइ।" जयधवल पु० १३ पृ० २३१-६७६ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार

त्रिचूलिका अधिकारका कथन पूर्णकर आचार्य इष्टदेवको नमस्कारकरके स्थानसमुत्कीर्तनअधिकारके कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

णमिऊण णेमिणाहं, सच्चजुहिट्ठिरणमंसियंघिजुगं।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ठाणसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥४५१॥

अर्थ—प्रत्यक्ष वन्दना करनेवाले सत्यवादी युधिष्ठरनामा पाण्डवद्वारा जिनके चरणकमलोंको वन्दन किया गया है ऐसे श्री नेमिनाथभगवानको नमस्कार करके मैं (नेमिचन्द्राचार्य) प्रकृतियोंके बन्ध-उदय और सत्त्वसहित स्थानसमुत्कीर्तनको कहूँगा।

विशेषार्थ—शङ्का—स्थानसमुत्कीर्तन अधिकारको कहनेका क्या प्रयोजन है?

समाधान—पूर्वमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारमें जो प्रकृतियां कहीं उनका बंध क्रमसे होता है या अक्रमसे होता है ऐसा प्रश्न होनेपर 'इसप्रकार होता है' इस बातको जाननेके लिये स्थानसमुत्कीर्तनाधिकारको कहा जाता है।

शङ्का—स्थान किसे कहते हैं?

समाधान—जिसमें प्रकृतियां रहती हैं उसे अर्थात् प्रकृतियोंके समुदायको स्थान कहते हैं[1]। वे प्रकृतिस्थान (१) बंधस्थान, (२) उदयस्थान, और (३) सत्त्व-स्थानके भेदसे तीनप्रकारके होते हैं[2]। एक जीवके एककालमें जितनी प्रकृतियोंका बध-उदय या सत्त्व सम्भव हो उसको स्थान कहते हैं, इसीका कथन इस अधिकारमें किया जावेगा।

अब सर्वप्रथम मूलप्रकृतियोंके बन्ध-उदय-उदीरणा और सत्त्वके भेदसहित स्थानोंका कथन गुणस्थानोंमें छहगाथाओंसे करते हैं—

---

१. "चिट्ठंति एत्थ पयडीओ त्ति ट्ठाणं।" जयध० पु० २ पृ १९९। २. "ताणि च बंधट्ठाणाणि उदयट्ठाणाणि संतट्ठाणाणि त्ति तिविहाणि होंति।" ज. ध. पु. २ पृ. १९९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छसु सगविहमट्ठविहं, कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं।
छव्विहमेकट्ठाणे, तिसु एक्कमबंधगो एक्को ॥४५२॥

अर्थ—मिश्रगुणस्थानके बिना अप्रमत्तपर्यन्त ६ गुणस्थानोंमें जीव आयुबिना ७ प्रकारके अथवा आयुसहित ८ प्रकारके कर्मको बांधता है। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें आयुबिना सातप्रकारके ही कर्म बन्धते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें आयु व मोहके बिना ६ प्रकारके कर्मका ही बन्ध होता है, उपशान्तकषायादि तीन (उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली) गुणस्थानोंमें एक वेदनीयकर्मका ही बन्ध होता है और अयोगोगुणस्थान बन्ध रहित है।

चत्तारि तिण्णि तिय चउ, पयडिट्ठाणाणि मूलपयडीणं।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि कमे होंति ॥४५३॥

अर्थ—मूल प्रकृतिबन्धस्थान, भुजगारबन्धस्थान, अल्पतरबन्धस्थान और अवस्थितबन्धस्थान क्रमसे चार, तीन, तीन, और चार हैं ।।४५३।।

विशेषार्थ—इसप्रकार मूलप्रकृतियोंके सामान्यसे आठ, सात, छह, और एक प्रकृतिरूप चार बन्धस्थान हैं। यहाँ उपशमश्रेणीसे उतरते हुए भुजाकारबन्ध तीनप्रकार हैं। उपशान्तकषायगुणस्थानमें एकप्रकृतिका बन्ध था वहांसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें आया तब ६ प्रकृतिका बन्ध किया अतः एक भुजाकारबन्ध तो यह हुआ तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें ६ प्रकृतिका बन्ध था वहांसे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको प्राप्त हुआ और वहां सातप्रकृतिका बन्ध होनेसे यह भी भुजाकारबन्ध हुआ। अपूर्वकरणगुणस्थानमें सातप्रकृतिका बन्ध था नीचे प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें आठप्रकृतिका बन्ध होगा यह भी एक भुजाकारबन्ध है। इसप्रकार ये तीनभुजाकार बन्ध होते हैं।

तथैव अल्पतरबन्ध तीन होते हैं—आठकर्मके बन्धके पश्चात् सातकर्मोंका बन्ध होना एक अल्पतरबन्ध है, सातप्रकृतिके बन्धके बाद ६ प्रकृतिका बन्ध होना दूसरा अल्पतरबन्ध है, तथा ६ प्रकृतिके अनन्तर एकप्रकृतिका बन्ध हुआ सो एक यह भी अल्पतर बन्ध है। इसप्रकार अल्पतरबन्धके ये तीनभेद जानना।

स्वस्थानमें पहले जितने कर्मोंका बन्ध हो उतने ही कर्म अनन्तरसमयमें भी बंधे वह अवस्थितबन्ध कहलाता है। इसके भी चारभेद हैं—पूर्वमें आठकर्मोंका बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता था पश्चात् भी आठकर्मोंका ही बन्ध होना प्रथमअवस्थितबन्ध है, पहले सातकर्मोंका बन्ध करता था पश्चात् भी सातकर्मोंका बन्ध करने लगा यह अवस्थितबन्धका दूसरा प्रकार है। पूर्वमें ६ कर्मोंका बन्ध करता था अनन्तर भी ६ ही कर्मोंका बन्ध करना तीसरा अवस्थितबन्ध है तथा पहले एककर्मका बन्ध करता था पश्चात् भी एक ही कर्मका बन्ध करता है यह चतुर्थ अवस्थितबन्ध है। इसप्रकार अवस्थितबन्ध भी चार प्रकारका जानना।

उपशान्तकषायगुणस्थानसे नीचे उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानको छोड़कर अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानोंको प्राप्त नहीं होते इसलिये एक प्रकृतिके बन्ध होनेके बाद सात और आठप्रकृतिके बन्धरूप दो भुजाकारबन्ध नहीं होते तथा अप्रमत्त व अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके बीचके गुणस्थान छोड़कर उपशान्तकषायगुणस्थानको प्राप्त नहीं होते इसलिये आठ और ७ प्रकृतिके बन्धके पश्चात् एकप्रकृतिका बन्धरूप दो अल्पतरबन्ध भी नहीं करते हैं।

शङ्का—उपशान्तकषायगुणस्थानमें मरणकर देव असंयत होता है तो वहां एकप्रकृतिके बन्धके पश्चात् सातप्रकृतिका बन्ध एवं एक प्रकृतिक बन्धके बाद आठप्रकृतिके बंधरूप जो दो भुजाकारबन्ध है वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं कहे, क्योंकि अबद्धायुष्कका मरण नहीं होता अतः एकप्रकृतिकबन्धके बाद सातप्रकृतिका बन्धरूप भुजाकारका अभाव है और यदि बद्धायुष्क मरणकर असंयतगुणस्थानवर्ती देव हो वहां १ प्रकृतिकबन्धके पश्चात् ७ प्रकृतिका बंधरूप भुजाकारबन्ध तो सम्भव है, किन्तु एकप्रकृतिकबन्धके बाद आठप्रकृतिका बन्धरूप भुजाकारबन्धका अभाव है क्योंकि देवके अपनी आयुके छहमाह अवशेष रहनेपर ही परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध होता है इसीकारण वे दोनों भुजाकारबन्ध नहीं कहे। पहले किसी भी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता था किन्तु बादमें बन्ध करे सो यह अवक्तव्यबन्ध है। अवक्तव्यबन्ध मूलप्रकृतियोंके बन्धमें सम्भव नहीं है, क्योंकि सर्वमूलप्रकृतियोंके बन्धका अभाव नहीं है।

इसप्रकार बन्धस्थानका कथन करके अब उदय स्थानोंको कहते हैं—

अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य, मोहेण विणा हु संतखीणेसु।
घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे णियमा॥४५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त आठ मूलप्रकृतियोंका उदय है। उपशांत-कषाय-क्षीणकषायगुणस्थानमें मोहनीयकर्मके बिना सात मूलप्रकृतियोंका उदय है तथा सयोगकेवली-अयोगकेवलीगुणस्थानमें चार अघातियाकर्मोंका उदय नियमसे जानना; क्योंकि चार घातियाकर्मोंका क्षय हो जाता है।

घादीणं छदुमट्ठा उदीरगा रागिणो हि मोहस्स।
तदियाऊण पमत्ता जोगंता होंति दोण्हंपि ॥४५५॥

अर्थ—तीन घातियाकर्मोंकी उदीरणा क्षीणकषायगुणस्थानपर्यंत छद्मस्थज्ञानी करते हैं। मोहनीयकर्मकी उदीरणा करनेवाले सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती सरागीजीव हैं, वेदनीय और आयुकर्मकी उदीरणा प्रमत्तगुणस्थानपर्यंतके प्रमादी जीव करते हैं, नाम और गोत्रकर्मकी उदीरणा सयोगीगुणस्थानतकके जीव करते हैं।

मिस्सूणपमत्तंते, आउस्सद्धा हु सुहुमखीणाणं।
आवलिसिट्ठे कमसो, सग पण दो चेवुदीरणा होंति ॥४५६॥

अर्थ—मिश्रगुणस्थानके बिना प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त पांच गुणस्थानोंमें भुज्यमान-आयुके आवलीमात्र काल शेष रहनेपर आयुबिना सातकर्मोंकी उदीरणा होती है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें उतना हो काल शेष रहनेपर आयु-मोहनीय और वेदनीयकर्म-बिना पांचकर्मोंकी तथा क्षीणकषायगुणस्थानमें भी पूर्वोक्त काल शेष रहनेपर नाम और गोत्रकर्मकी उदीरणा होती है।

इसप्रकार उदय-उदीरणास्थानोंका कथन करके सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

संतोत्ति अट्ठ सत्ता, खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य, चत्तारि हवंति सत्ताणि ॥४५७॥

अर्थ—उपशांतकषायगुणस्थानपर्यन्त आठों मूलप्रकृतियोंका सत्त्व है। क्षीण-कषायगुणस्थानमें मोहनीयकर्मोंके बिना सातकर्मोंका, सयोगी-अयोगीगुणस्थानमें चार अघातियांकर्मोंका सत्त्व है। इसप्रकार आठ-सात और चार प्रकृतिरूप तीन सत्त्व-स्थान जानना।

मूलप्रकृतियोंमें बन्ध-उदय-उदीरणा और सत्त्वस्थानोंका कथन करके अब उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी उदयादिस्थानोंका कथन करते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिण्णि दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहणामाणं ।
एत्थेव य भुजगारा, सेसेसेयं हवे ठाणं[1] ॥४५८॥

अर्थ—दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्मके क्रमसे ३-१० और ८ बन्धस्थान हैं। इन तीनों कर्मोंके भुजकारबन्ध भी इन्हीं तीनमें होते हैं। शेष ज्ञानावरण व अन्तरायकर्मको पांचप्रकृतिका बन्धरूप एक ही स्थान है और गोत्र-आयु तथा वेदनीयकर्मका एकात्मक प्रकृतिरूप एक-एक ही बंधस्थान है।

णव छक्क चदुक्कं च य, बिदियावरणस्स बंधठाणाणि ।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि य जाणाहि ॥४५९॥

अर्थ—दर्शनावरणकर्मकी सर्व ९ प्रकृतिरूप प्रथम, स्त्यानगृद्धिआदि तीनिनिद्राबिना ६ प्रकृतिरूप द्वितीय और निद्रा-प्रचलाप्रकृतिबिना ४ प्रकृतिरूप तृतीय इसप्रकार तीनबन्धस्थान हैं तथा इनमें भुजकार, अल्पतर और अवस्थित एवं 'अपि' शब्दसे अवक्तव्य, ये चारों प्रकारके बन्ध होते हैं।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला अपूर्वकरणगुणस्थानके द्वितीयभागमें चारप्रकृतिरूप दर्शनावरणकर्मको बांधकर अपूर्वकरणगुणस्थानके ही प्रथमभागमें ६ प्रकृतिरूप बांधने लगा यह एक भुजकारबन्ध है। प्रमत्त, देशसयत, असंयत और मिश्रगुणस्थानमें छह प्रकृतिरूप स्थान बांधते हुए मिथ्यात्वावस्थाको प्राप्तकर तथा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि सासादनगुणस्थानको प्राप्तकर ९ प्रकृतिरूप स्थान बांधने लगा सो यह एक भुजकार है। इसप्रकार २ भुजकारबन्ध जानने। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातिशयमिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरणपरिणामोंके अन्तिमसमयमें ९ प्रकृतिरूपस्थान बांधता है तथा अनन्तरसमयमें असंयत-देशसंयत अथवा अप्रमत्त होकर ६ प्रकृतिकस्थान बांधता है यह एक अल्पतरबन्ध है। तथैव उपशमक व क्षपक अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागके चरमसमयमें छहप्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करता है वही द्वितीयभागके प्रथमसमयमें चार प्रकृतिरूपस्थान बांधने लगा सो एक यह अल्पतर हुआ, इसप्रकार दो अल्पतरबन्ध जानना। मिथ्यादृष्टि अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि ९ प्रकृतिरूप, मिश्रगुणस्थानसे अपूर्व-

---

१. "तिण्णि दस अट्ठ ट्ठाणाणि दंसणावरण-मोह-णामाणं । एत्थेव य भुजयारा सेसेसेयं हवइ ठाणं ।" (पंचसंग्रह ज्ञानपीठ पृ० १८६ गाथा २४२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करणगुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त ६ प्रकृतिरूप और अपूर्वकरणगुणस्थानके द्वितीयभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त चार प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करता है अनन्तरसमयमें भी उतनी ही प्रकृतिरूप स्थानोंका बन्ध करे तो इसप्रकार अवस्थितबन्धके तीनप्रकार हुए। उपशांतकषायगुणस्थानवर्तिजीव दर्शनावरणका बन्ध नहीं करता, किन्तु उपशमश्रेणीसे उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायके प्रथमसमयमें चारप्रकृतिरूप तथा बद्धायुष्क मरणकर देव असंयतहोकर छह प्रकृतिरूप स्थानका अवक्तव्यबन्ध करता है इसप्रकार अवक्तव्यबन्धको दोप्रकार जानना।

इसीबातको और भी स्पष्ट करते हैं—

णव सासणोत्ति बंधो, छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति।
चत्तारि होंति तत्तो, सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति ॥४६०॥

अर्थ—दर्शनावरणकर्मका ९ प्रकृतिकस्थान सासादनगुणस्थानपर्यन्त होता है, इसके आगे अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त ६ प्रकृतिकस्थान और अपूर्वकरणगुणस्थानके द्वितीयभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके चरमसमयपर्यन्त ४ प्रकृतिकस्थानका बन्ध होता है।

दर्शनावरणकर्मके बन्धस्थानोंका कथन करके आगे उदयस्थानोंका कथन करते हैं—

खीणोत्ति चारि उदया, पंचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु।
एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पंचुदया ॥४६१॥

अर्थ—दर्शनावरणकर्मकी चक्षुदर्शनावरणादि चारप्रकृतियोंका उदयस्थान जागृतावस्थावाले जीवके मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त है और निद्रावान् जीवके क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त पांचप्रकृतिरूप उदयस्थान जानना।

विशेष—प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त ५ निद्राओंमेंसे किसी एक निद्राका तथा उसके आगे निद्रा-प्रचलामें से किसी एकका उदय होता है[1]।

उदयस्थानोंका कथन करके अब दर्शनावरणकर्मके सत्त्वस्थानोंका कथन करते हैं—

१. धवल पु० १५ पृ० ८१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिच्छादुवसंतोत्ति य, अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति ।
णवसत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदूचरिमे ॥४६२॥

अर्थ—मिथ्यात्वसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यंन्त और क्षपकश्रेणीमें अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त दर्शनावरणकर्मका ९ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। इसके आगे क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त ६ प्रकृतिरूप ही सत्त्वस्थान है, क्योंकि स्त्यानगृद्धिआदि तीनप्रकृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें ही नष्ट होती हैं। क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त दर्शनावरणकर्मका ६ प्रकृतिरूप तथा चरमसमयमें ४ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है।

अथानन्तर मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंको कहते हैं—

बावीसमेक्कवीसं, सत्तारस तेरसेव णव पंच ।
चदुतियदुगं च एक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स[1] ॥४६३॥

अर्थ—मोहनीयकर्मके २२-२१-१७-१३-९-५-४-३-२ और १ प्रकृतिरूप १० बन्धस्थान जानना चाहिये।

उपर्युक्त मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंको गुणस्थानापेक्षा कहते हैं—

बावीसमेक्कवीसं, सत्तर सत्तार तेर तिसु णवयं ।
थूले पणचदुतियदुगमेक्कं मोहस्स ठाणाणि ॥४६४॥

अर्थ—मोहनीयकर्मके उपर्युक्त बन्धस्थानोंमें से मिथ्यात्वगुणस्थानमें २२ प्रकृतिरूप, सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिरूप, मिश्र और असंयतगुणस्थानमें १७-१७ प्रकृतिरूप, देशसंयतगुणस्थानमें १३ प्रकृतिरूप, प्रमत्तादि तीनगुणस्थानोंमें ९-९ प्रकृतिरूप बन्धस्थान हैं तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ५-४-३-२ और १ प्रकृतिरूप ५ स्थान हैं।

अब उपर्युक्तस्थानोंमें ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंको कहते हैं—

उगुवीसं अट्ठारस, चोद्दस चोद्दस य दस य तिसु छक्कं ।
थूले चदुतिदुगेक्कं, मोहस्स य होंति धुवबंधा ॥४६५॥

---

१. "बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच । चउ तिय दुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स।" (पंचसंग्रह ज्ञानपीठ पृ० १८८ गा० २४६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसे देशसंयतगुणस्थानपर्यंन १९-१८-१४-१४ और १०, प्रमत्तादि तीन गुणस्थानोंमें ६-६-६, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ४-३-२ और १ इसप्रकार मोहनीयकर्मकी ध्रुवबन्धीप्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व, १६ कषाय भय और जुगुप्सा ये १९ प्रकृति ध्रुवबन्धी तथा हास्य व शोकमें से एक, रति-अरतिमें से एक, तीनवेदमें से एक इसप्रकार ये तीनप्रकृति अध्रुवबन्धी हैं। सासादनगुणस्थानमें—उपर्युक्त १९ प्रकृतिमें से १ मिथ्यात्वप्रकृति कम करके १८ प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं और अध्रुवप्रकृति पूर्वोक्त तीन हैं। मिश्र और असंयतगुणस्थान उपर्युक्त १८ प्रकृतिमेंसे अनंतानुबंधीकषाय ४ कम करनेसे १४ प्रकृतियां ध्रुवबन्धी हैं तथा अध्रुवबन्धी ३ प्रकृतियां पूर्वोक्त ही हैं। देशसंयतगुणस्थानमें उपर्युक्त १४ प्रकृतिमें से अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय कम करनेसे १० प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं तथा अध्रुवप्रकृति ३ पूर्ववत् ही हैं। प्रमत्त-अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानमें उपर्युक्त १० प्रकृतिमें से प्रत्याख्यानकी ४ कषाय कम करनेसे ६ प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं, अध्रुवप्रकृति पूर्ववत् ही ३ जानना। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें उपर्युक्त ६ प्रकृतिमें से भय-जुगुप्सा प्रकृति कम करनेसे ४ प्रकृति ध्रुवबंधी हैं और १ पुरुषवेद अध्रुवप्रकृति है। द्वितीयभागमें—सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभ ये चार प्रकृति ध्रुवबन्धी है। तृतीयभागमें—सञ्ज्वलनमान-माया-लोभ ये तीन, चतुर्थभागमें—सञ्ज्वलनमाया-लोभ ये दो और पांचवेंभागमें—सञ्ज्वलनलोभ यह एक प्रकृतिध्रुवबन्धी है।

मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंके भङ्गोंका विधान एवं उनकी संख्या दो गाथाओंमें कहते हैं—

सगसंभवधुवबंधे, वेदेक्के दोजुगाणमेक्के य।
ठाणे वेदजुगाणं, भंगहदे होंति तब्भंगा ॥४६६॥

अर्थ—अपनी-अपनी पूर्वोक्त ध्रुवप्रकृतियोंमें से यथासम्भव तीन वेदोंमेंसे एकवेद, हास्य-शोक, रति-अरतिमेंसे एक-एक प्रकृति मिलानेसे स्थान होते हैं तथा वेदोंके प्रमाणमें युगलका (हास्य-शोक, रति-अरति, भय-जुगुप्सारूप) गुणाकरनेपर स्थानोंके भङ्ग होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छब्बावीसे चदु इगिवीसे दो दो हवंति छट्ठोत्ति ।
एक्केक्कमदो भंगो बंधट्ठाणेसु मोहस्स ॥४६७॥[1]

अर्थ—मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें २२ प्रकृतिक स्थानमें ६, २१ प्रकृतिक स्थानमें ४ और आगे प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत दो-दो और उसके बाद सभी बन्धस्थानोंमें एक-एक भङ्ग है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहनीयकर्मकी २२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है उसके भङ्ग ६ होते हैं जो निम्नप्रकार हैं—

१. मिथ्यात्व + सोलहकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।
२. „ + „ + स्त्रीवेद + „ + „ ।
३. „ + „ +नपुंसकवेद+ „ + „ ।
४. „ + „ + पुरुषवेद + अरति-शोक+ „ ।
५. „ + „ + स्त्रीवेद + „ + „ ।
६. „ + „ +नपुंसकवेद+ „ + „ ।

सासादनगुणस्थानमें मोहनीयकर्मकी २१ प्रकृतियोंका बन्ध होता है और उसके भङ्ग चार हैं—

१. सोलहकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।
२. „ + स्त्रीवेद + „ + „ ।
३. „ + पुरुषवेद +अरति-शोक+ „ ।
४. „ + स्त्रीवेद + „ + „ ।

मिश्र-असंयतगुणस्थानमें मोहनीयकर्मकी १७ प्रकृतियोंके बंधमें २ भङ्ग हैं—

१. बारहकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।
२. „ + „ + अरति-शोक+ „ ।

---

१. "छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेर दो दो दु। णवबन्धए पि एवं एगेगमदो पर भंगा ॥२५१॥ द्वाविंशतिके षट् भङ्गाः ६। एकविंशतिके चत्वारो भङ्गाः ४। सप्तदशके द्विवार द्वौ द्वौ भंगौ २, २। त्रयोदशके नवकबन्धेऽपि प्रमत्तपर्यन्त द्वौ द्वौ भगौ २, २। अन्त उपरि सर्वस्थानेषु एकैको भंगः १ ॥२५१॥" "प्रा० पं० स० पृ० १९१"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयतगुणस्थानमें मोहनीयकर्मकी १३ प्रकृतियोंके बन्धमें २ भङ्ग हैं—

१. आठकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।

२. „ + „ + अरति-शोक+ „ ।

प्रमत्तगुणस्थानमें मोहनीयकर्मकी ९ प्रकृतियोंके बन्धमें २ भङ्ग हैं—

१ चारकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।

२. „ + „ + अरति-शोक+ „ ।

अप्रमत्त-अपूर्वकरणगुणस्थानमें मोहनीयकर्मकी ९ प्रकृतियोंके बंधमें १ भंग है—

१. चारकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें ५ प्रकृतिके बन्धमें १ भङ्ग है—

१. चारकषाय + पुरुषवेद।

अनिवृत्तिकरणके द्वितीयभागमें ४ प्रकृतिके बन्धमें १ भङ्ग है—

१. सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभरूप ४ कषाय।

अनिवृत्तिकरणके तृतीयभागमें ३ प्रकृतिके बन्धमें १ भङ्ग है—

१. सञ्ज्वलनमान-माया-लोभरूप ३ कषाय।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके चतुर्थभागमें २ प्रकृतिके बन्धमें १ भङ्ग है—

१. सञ्ज्वलनमाया-लोभरूप २ कषाय।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके पञ्चमभागमें १ प्रकृतिके बन्धमें १ भंग है—

१. सञ्ज्वलनलोभरूप १ कषाय।

इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानसे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्त मोहनीयकर्मकी बन्धयोग्य प्रकृतियोंके स्थान और उनके भंग जानना चाहिए।

उपर्युक्त मोहनीयकर्मके १० बन्धस्थानोंमें पाए जानेवाले भुजाकारबंधादिककी संख्या कहते हैं—

दस वीसं एक्कारस, तेत्तीसं मोहबंधठाणाणि।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि य सामण्णे ॥४६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मोहनीयकर्मके पूर्वोक्त १० बन्धस्थानोंमें सामान्यप्रकारसे भुजकारबंध २०, अल्पतरबन्ध ११ और अवस्थितबन्ध ३३ हैं[1] ।

भुजकार–अल्पतर–अवस्थितबन्धका लक्षण आचार्य स्वयं अगलीगाथामें कहते हैं—

अप्पं बंधंतो, बहुबंधे बहुगादु अप्पबंधेवि ।
उभयत्थ समे बंधे, भुजगारादी कमे होंति ॥४६९॥

अर्थ—पहले अल्पप्रकृतियोंका बन्ध होकर पश्चात् अधिक प्रकृतियोंका बन्ध होना भुजकारबन्ध है । पहले अधिकप्रकृतियोंका बन्ध होवे और पश्चात् अल्पप्रकृतियों-का बन्ध होने लगे सो यह अल्पतरबन्ध है । भुजकार एवं अल्पतरबन्धमें पहले जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता था बादमें भी उतनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होवे वह अवस्थित-बन्ध है तथा 'अपि' शब्दसे इन स्थानोंमें अवक्तव्यबन्ध भी होता है ।

नोट—पहले मोहनीयकर्मका बन्ध नहीं था, किन्तु अगले समयमें उसका बन्ध हुआ, यही अवक्तव्यबन्ध कहलाता है ।

अथानन्तर सामान्यअवक्तव्यबन्धके भङ्गोंकी संख्या कहते हैं—

सामण्णअवत्तव्वो, ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे ।
एक्कं च होदि एत्थवि, दो चेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७०॥

अर्थ—सामान्यसे (भंगोंकी विवक्षा किए बिना) उपशमश्रेणीसे उतरते हुए एक अवक्तव्यबन्ध है और दूसरा अवक्तव्यबन्ध वहीं पर मरण होनेसे होता है । इसप्रकार दो अवक्तव्यबंध हैं तथा द्वितीयादि समयोंमें उसीप्रकार बंध होनेपर यहां अवस्थितबंधभी दो ही होते हैं ।

विशेषार्थ[2]—उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें एक सञ्ज्वलनलोभको बांधता था, किन्तु वहांसे और नीचे उतरकर लोभ और मायाप्रकृतिको बांधने लगा अथवा बद्धायुष्क वहां मरणकरके देव असंयतहोकर १७ प्रकृतियोंका बन्ध करता है इसप्रकार एक प्रकृतिरूप स्थानमें दो भुजाकारबन्ध हुए । माया-लोभप्रकृतिको

---

१. भुजाकाराः विंशतिः २० । अल्पतरबन्धा एकादश ११ । अवक्तव्यौ २ । एवं सर्वे एकीकृता संक्षेपेणा-वस्थितबन्धास्त्रयस्त्रिंशत् (३३) भवन्ति । २. प्राकृत पंचसंग्रह पृष्ठ १९२ से १९५ भी देखो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बांधते हुए नीचे उतरकर मानसहित तीन प्रकृतियोंको बांधता है अथवा मरणकर देव असंयतहोकर १७ प्रकृतिको बांधता है। इसप्रकार दो प्रकृतिरूप स्थानमें भी दो भुजाकारबन्ध जानना। लोभ-मान और मायाप्रकृतिको बांधते हुए नीचे उतरकर क्रोधसहित सञ्ज्वलनकषायचतुष्कको बांधता है अथवा मरणकर देव असंयत होकर १७ प्रकृतिको बांधता है सो तीन प्रकृतिरूप स्थानमें भी दो भुजाकारबन्ध हुए। चारों सञ्ज्वलनकषायको बांधता हुआ नीचे उतरकर सवेदभागमें पुरुषवेद सहित पांचप्रकृतिको बांधने लगा और मरणकर देव असंयमी हुआ तो वहां १७ प्रकृतिका बन्ध करने लगा इसप्रकार चार प्रकृतिरूप स्थानमें भी दो भुजकारबन्ध जानना। पांच प्रकृतियोंको बांधता हुआ नीचे उतरकर अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ प्रकृतिका बन्ध करता है अथवा मरणकर देव असंयमी होकर १७ प्रकृतियोंको बांधता है सो पांच प्रकृतिरूप स्थानमें ये दो भुजकारबन्ध जानना।

अपूर्वकरण या अप्रमत्त अथवा प्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिका बन्ध करता हुआ क्रमसे उतरकर देशसंयती होता है और वहां १३ प्रकृतिका बन्धकरता है अथवा असंयमी होकर या मरणकर देव असंयमीहोकर १७ प्रकृतियोंको बांधता है अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वी सासादनगुणस्थानवर्ती होकर २१ प्रकृतियोंका बन्ध करता है और प्रथमोपशमसम्यक्त्वी या वेदकसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वको प्राप्त होकर २२ प्रकृतियोंका बन्ध करता है, इसप्रकार ९ प्रकृतिरूप बंधस्थानमें चार भुजकारबन्ध हुए। १३ प्रकृतियोंको बांधता हुआ असंयत या देव असंयत होकर १७ प्रकृतियोंका बन्ध करता है अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो २१ प्रकृतिका बन्ध करने लगा, अथवा प्रथमोपशम या क्षयोपशम (वेदक) सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वको प्राप्त होकर २२ प्रकृतिका बन्ध करता है इसप्रकार १३ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें तीन भुजकारबन्ध जानना। १७ प्रकृतिका बन्ध करता हुआ प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि सासादनगुणस्थानवर्ती होकर २१ प्रकृतियोंको बांधता है अथवा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि अथवा मिश्रगुणस्थानवर्तीजीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर २२ प्रकृतियोंका बन्ध करता है इसप्रकार १७ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें दो भुजकारबन्ध हुए तथा २१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हुए मिथ्यात्वको प्राप्त होकर २२ प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा इसप्रकार २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें एक भुजकारबन्ध हुआ। इसप्रकार सर्व २+२+२+२+२+४+३+२+१=२० भुजकारबन्ध जानना। अब अल्पतरबन्धको कहते हैं—अनादि अथवा सादिमिथ्यादृष्टिजीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनकरण करता हुआ अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयमें २२ प्रकृतिका बन्ध करता हुआ अनन्तरसमयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वी होकर अथवा सादिमिथ्यादृष्टि २२ प्रकृतिका बन्ध करते हुए विशुद्धिसे वेदकसम्यग्दृष्टि होकर असंयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका बंध करता है या देशसंयती होकर १३ प्रकृतियोंका बन्ध करता है अथवा अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती होकर ९ प्रकृतियोंको बांधता है, इसप्रकार १७ प्रकृतिके बन्धस्थान में दो अल्पतरबन्ध हैं। १३ प्रकृतिका बन्ध करता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर ९ प्रकृतिका बन्ध करता है तथैव इन्हीं ९ प्रकृतियोंका बन्ध करते हुए अपूर्वकरणगुणस्थानमें अथवा अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानके प्रथमभागमें ५ प्रकृतिको बांधता है। पांच प्रकृतियोंको बांधता हुआ द्वितीय-भागमें चार प्रकृतिका बन्ध करता है तथा तृतीयभागमें ३ प्रकृतिका, चतुर्थभागमें दो प्रकृतिका, पांचवें भागमें एक प्रकृतिका बन्ध करता है इसप्रकार इन स्थानोंमें एक-एक अल्पतरबन्ध है, ये सर्व ११ अल्पतर हैं वे इसप्रकार हैं—२२ प्रकृतिरूप स्थानके ३, १७ प्रकृतिरूप स्थानके २, १३ प्रकृतिरूप स्थानका १, नौ प्रकृतिरूप स्थानका १, पांच प्रकृतिरूप स्थानका १, चार प्रकृतिरूप स्थानका १, तीन प्रकृतिरूप स्थानका १ और दो प्रकृतिरूप स्थानका १ ये सर्व ११ अल्पतरबन्ध जानना तथा दो अवक्तव्यबन्ध हैं। बीस भुजाकार दो अवक्तव्य और ग्यारह अल्पतरबन्धोंमें जितनी प्रकृतियोंका बंध कहा उतनी ही प्रकृतियोंका बंध द्वितीयादिक समयोंमें भी होवे सो अवस्थितबंध है अतः २०+२+ ११=३३ ये सर्व अवस्थितबन्ध जानना।

अथानन्तर भुजकारादिबन्धके भङ्गोंकी संख्या कहते हैं—

सत्तावीसहियसयं, पणदालं पंचहत्तरिहियसयं।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि विसेसेण ॥४७१॥

अर्थ—विशेषपनेसे अर्थात् प्रकृतियोंके परिवर्तनकी अपेक्षासे भुजाकारबन्धके १२७, अल्पतरबंधके ४५ और अवस्थितबन्धके १७५ भङ्ग हैं।

उपर्युक्त गाथामें कथित भुजकारादिबन्धोंमें सर्वप्रथम भुजाकारबन्धके भङ्गोंका विशेषतापूर्वक वर्णन करते हैं—

णभ चउवीसं बारस, वीसं चउरट्ठवीस दो दो य।
थूले पणगादीणं, तियतिय मिच्छादिभुजगारा ॥४७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—भङ्गोंकी विवक्षासे विशेष भुजाकारभङ्ग मिथ्यात्वगुणस्थानमें नहीं हैं, सासादनगुणस्थानमें २४, मिश्रगुणस्थानमें १२, असंयतगुणस्थानमें २०, देशसंयतगुणस्थानमें २४, प्रमत्तगुणस्थानमें २८, अप्रमत्तगुणस्थानमें २, अपूर्वकरणगुणस्थानमें २ और अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें पांच आदि प्रकृतिके बन्धरूप स्थानोंमें ३-३ भङ्गोंकी अपेक्षा सर्व भङ्ग १५ हैं इसप्रकार सभी गुणस्थानोंमें मिलकर भुजाकारबन्धके भङ्गोंकी संख्या १२७ जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां सर्वप्रथम भुजकारबन्धके भङ्गोंका कथन करते हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीवके मोहनीयकर्मकी २२ प्रकृतियोंका ही बन्ध है इससे अधिक प्रकृतिरूप मोहनीयकर्मका बन्धस्थान नहीं है अतः यहां भुजाकारबन्धका भङ्ग नहीं है। सासादनगुणस्थानमें बन्धयोग्य २१ प्रकृति हैं जिनके चारभग हैं। प्रथम तो २२ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करके सासादनसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें आता है तो यहां एक-एक भंगकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिके २२ प्रकृतिके बन्धस्थानसंबंधी छह भंगोंमें २१ प्रकृतिरूप स्थानके चारभंगोंका गुणा करनेसे इस भुजाकारके २४ भंग हुए तथैव मिश्रगुणस्थानमें १७ प्रकृतिरूप स्थानके दो भंग हैं। यहांसे जीव मिथ्यात्वगुणस्थानमें आता है तो मिथ्यादृष्टिके २२ प्रकृतिरूप ६ भंगोंमें १७ प्रकृतिके २ भंगोंका गुणा करनेसे इस भुजाकारके १२ भंग हुए, असंयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके दो भंग हैं यहां से जीव सासादनगुणस्थानमें आता है और २१ प्रकृतिका बन्ध करता है जिसके चारभंग हैं। इन चारभंगोंमें १७ प्रकृतिके दो भंगोंका गुणा करनेसे आठ भुजाकारबन्धके भंग हुए तथा यदि मिथ्यात्वमें आता है तो वहां २२ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके ६ भंग हैं अतः इन ६ भंगोंमें १७ प्रकृतिके २ भंगोंमें १७ प्रकृतिके दो भंगोंका गुणा करनेसे इस भुजाकारके १२ भंग हुए। इसप्रकार दो भुजाकारबन्धके १२+८=२० भंग जानना। देशसंयतगुणस्थानमें १३ प्रकृतिका बन्ध है उसके २ भंग हैं, यहांसे गिरकर जीव मिश्र अथवा असंयतगुणस्थानमें या मरण करके देव असंयतमें जाता है वहां १७ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके भी दो भंग हैं। अतः १३ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके २ भंगोंका और १७ प्रकृतिरूप दो भंगोंका परस्परमें गुणा करनेपर इस भुजाकारबन्धके ४ भंग हुए तथा यदि सासादनगुणस्थानमें आता है तो २१ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके चारभंग हैं। इन चार भंगोंका तथा पूर्वोक्त १३ प्रकृतिरूप स्थानके दो भंगोंका परस्परमें गुणा करनेपर इस भुजाकारके आठभंग होते हैं। यदि मिथ्यात्वमें आता है तो २२ प्रकृतियोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बांधता है, इसके ६ भंग हैं, इन भंगोंमें पूर्वोक्त २ भंगोंका गुणा करनेसे इस भुजाकार-बन्धके १२ भंग होते हैं। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी १७-२१-२२ प्रकृतिरूप तीन भुजाकारबन्धके ४+८+१२=२४ भंग हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिका बंध करता है उसके २ भंग हैं। यहां से यदि जीव देशसंयतगुणस्थानमें जाता है तो वहां १३ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके २ भंग हैं अतः २×२=४ भंग इस भुजाकारबन्धके हैं और यदि मिश्र अथवा असंयतगुणस्थानमें आता है तो वहां १७ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके दो भंग हैं अतः २×२=४ भंग इस भुजाकारके भी हुए। यदि सासादनगुण-स्थानको प्राप्त करता है तो २१ प्रकृतिका बन्ध करता है इसके चारभंग हैं सो २×४=८ भंग इस भुजाकारबन्धके हैं तथा यदि मिथ्यात्वगुणस्थानमें आवे तो २२ प्रकृतिका बन्ध करता है इसके ६ भंग हैं अतः २×६=१२ भंग इस भुजाकारबन्धके हुए। इस-प्रकार प्रमत्तगुणस्थानसंबंधी ४ भुजाकारबन्धोंके २८ भंग होते हैं। तथैव अप्रत्तगुण-स्थानमें ९ प्रकृतिका बन्ध करता है सो यहां एक भंग है, यहांसे मरणकर देवअसंयत हुआ तो १७ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके दो भंग हैं इसप्रकार इस भुजाकारबन्धके १×२=२ भंग जानना।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें भी अप्रमत्तगुणस्थानवत् भुजाकारके २ भङ्ग हैं, अनि-वृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें ५ प्रकृतिका बन्ध करता है सो गिरकर अपूर्वकरण-गुणस्थानमें ९ प्रकृतिका बन्ध करने लगा जिसका १ भग इसप्रकार १×१=१ इसका एक भग तथा यदि मरणकर देव असंयत हुआ तो १७ प्रकृतिका बन्ध करता है जिसके २ भंग हैं अतः इस भुजकारबन्धके भी १×२=२ भंग होते हैं। इसप्रकार अनि-वृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें होनेवाले दो भुजाकारबन्धके १+२=३ भंग होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके द्वितीयभागमें चारप्रकृतिका बन्ध करने लगा सो इसका एक भंग है वहां से प्रथमभागमें आकर ५ प्रकृतिका बन्ध करने लगा, इसका भंग भी एक है अतः इस भुजाकारबन्धके १×१=१ ही भंग होता है, और यदि मरणकरके देव असंयत हुआ तो वहां १७ प्रकृतिका बन्ध करता है उसके दो भंग हैं इसप्रकार अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानके द्वितीयभागसम्बन्धी २ भुजाकारके २+१=३ भंग जानना। इसी गुणस्थान-के तृतीयभागमें पहले ३ प्रकृतिका बन्ध करता था उसका भंग एक है वहां से गिरकर यदि द्वितीयभागमें आवे तो चारप्रकृतिका बन्ध करता है इसका एक भंग सो इस भुजा-कारके १×१=१ ही भंग हुआ और यदि मरणकर देव असंयत होवे तो १७ प्रकृतिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध करता है इसके दो भंग हैं अतः इस भुजाकारके १×२=२ भंग होते हैं। इसप्रकार तृतीयभागसम्बन्धी दो भुजाकारोंके १+२=३ भंग जानना। तथैव चतुर्थभागमें २ प्रकृतिका बन्ध करता था उसका एक भंग है, वहां से गिरकर यदि तृतीयभागमें आवे तो ३ प्रकृतिका बन्ध करने लगा उसका भी एक भंग है अतः इस भुजाकारबन्धके १×१=१ भंग है। यदि मरणकरके देव असंयत होता है तो १७ प्रकृतिका बन्ध करता है दो भंग हैं सो १×२=२ भंग इस भुजाकारबन्ध के होते हैं। इसप्रकार चतुर्थभागमें भी दो भुजकारों के १+२=३ भंग होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके पञ्चमभागमें एक प्रकृतिका बन्ध करता है उसका एक भंग है वहांसे गिरकर चतुर्थभागमें आवे और दो प्रकृतिका बन्ध करने लगे तो इसका एक ही भंग है अतः इस भुजाकारबन्धका १×१=१ भंग है। यदि मरणकर देव असंयत हुआ तो १७ प्रकृतिका बन्ध करता है सो इसके दो भंग हैं इसलिये इस भुजाकारबन्धसम्बन्धी १×२=२ भंग हैं। इसप्रकार पञ्चमभागसम्बन्धी दो भुजाकारोंके १+२=३ भंग जानना।

उपर्युक्त गुणस्थानोक्त भुजाकारबन्धसम्बन्धी भङ्गोंकी सन्दृष्टि—

सासादनगुणस्थान	२१ प्रकृतिसे	२२ प्रकृतिरूप	एक	भुजाकारबन्धके	= २४ भङ्ग
मिश्र ,,	१७ ,,	२२ ,,	,,	,,	= १२ ,,
असंयत ,,	१७ ,,	२१ व २२ ,,	२	,,	= २० ,,
देशसंयत ,,	१३ ,,	१७-२१-२२ ,,	३	,,	= २४ ,,
प्रमत्त ,,	९ ,,	१३-१७-२१-२२	४	,,	= २८ ,,
अप्रमत्त ,,	९ ,,	१७ प्रकृतिरूप	१	,,	= २ ,,
अपूर्वकरण ,,	९ ,,	१७ ,,	१	,,	= २ ,,
अनिवृत्तिकरण (प्र.भाग)	५ ,,	९ व १७ ,,	२	,,	= ३ ,,
द्वितीयभाग	४ ,,	५ व १७ ,,	२	,,	= ३ ,,
तृतीयभाग	३ ,,	४ व १७ ,,	२	,,	= ३ ,,
चतुर्थभाग	२ ,,	३ व १७ ,,	२	,,	= ३ ,,
पञ्चमभाग	१ ,,	२ व १७ ,,	२	,,	= ३ ,,
					सर्वभङ्ग=१२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब अल्पतरबन्धके भङ्ग कहते हैं—

अप्पदरा पुण तीसं, णभ णभ छद्दोण्णि दोण्णि णभ एक्कं।
थूले पणगादीणं, एक्केक्कं अंतिमे सुण्णं ॥४७३॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणपर्यंत गुणस्थानोंमें तीस, शून्य, शून्य, छह, दो, दो, शून्य और एक प्रकृतिरूप अल्पतरभंग होते हैं। स्थूल कषायवाले ९ वें गुणस्थानमें पांच आदि प्रकृतिरूप एक-एक ही अल्पतरभंग होता है, किन्तु अन्तिम ५ वें भागमें शून्य अर्थात् अल्पतरभंग नहीं होता है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें बाईस प्रकृतिका बन्ध ६ प्रकारसे होता है तथा यहांसे मिश्रगुणस्थान अथवा असंयतगुणस्थानमें जाकर १७ प्रकृतियोंका बन्ध दो प्रकारसे है अत: इनके एक-एक प्रकारमें ६-६ प्रकार होनेसे बाईस प्रकृतिसे १७ प्रकृतिके बन्धकी अपेक्षा अल्पतरबन्धके बारह भंग हैं। देशसयतगुणस्थानमें जाकर वहां १३ प्रकृतिका बन्ध दो प्रकारसे है इस अपेक्षा यहां भी अल्पतरबन्धके बारह भंग जानना। अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होकर वहां ९ प्रकृतिका बन्ध एक प्रकारसे है अत: वहां अल्पतरबन्धके ६ भंग हुए इसप्रकार ये सर्व (१२+१२+६) ३० भंग अल्पतरबन्धके हैं। आगे सासादन और मिश्रगुणस्थानमें अल्पतरबन्ध नहीं हैं इसलिये शून्य कहा। असंयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतिका बन्ध दो प्रकारसे है यहांसे देशसंयतगुणस्थानमें जाकर वहां १३ प्रकृतियोंका बन्ध दो प्रकारसे करता है इस अपेक्षासे अल्पतरबन्धके चार भंग और अप्रमत्तगुणस्थानमें जाकर वहां ९ प्रकृतियोंका बन्ध एक प्रकारसे करता है इस अपेक्षा अल्पतरभंग दो हुए अत: ये ४+२=६ भंग जानना। पुन: देशसंयतमें १३ प्रकृतिका बन्ध दो प्रकारसे है यहांसे अप्रमत्तगुणस्थानमें जाकर वहां ९ प्रकृतिका बन्ध एक प्रकारसे करता है इस अपेक्षा अल्पतरबंधके दो भंग हैं तथा प्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिका बंध दो प्रकारसे होता है यहांसे अप्रमत्तगुणस्थानमें जाकर वहां ९ प्रकृतिका बन्ध एक प्रकारसे करता है इस अपेक्षा भी दो अल्पतर भंग हैं।

शङ्का—प्रमत्त अथवा अप्रमत्तगुणस्थानमें जाकर ९ प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है, किन्तु यहां समान संख्या होनेसे अवस्थितबन्ध हो सकता है तो फिर यहां उसे अल्पतरबन्ध क्यों कह रहे हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान—प्रमत्तगुणस्थानमें अरति व शोकप्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति होती है इसी अपेक्षासे अल्पतरबन्ध होता है।

अप्रमत्तगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानमें जाता है यहां दोनोंमें ही समानरूपसे ९ प्रकृतिका बन्ध है अतः यहांपर अल्पतरबन्ध नहीं होनेसे शून्य कहा है और अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ प्रकृतिकाबन्ध एक प्रकारसे है तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें ५ प्रकृतिका बन्ध एक प्रकारसे है अतः अल्पतरबन्धका यहां एक ही भंग है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ५ प्रकृतिके बन्धका एकप्रकार पश्चात् चारप्रकृतिके बन्धका एकप्रकार होनेसे उसकी अपेक्षा एक अल्पतर भंग, ४ प्रकृतिके बन्धका एक प्रकार बादमें ३ प्रकृतिका बन्धका एकप्रकार है उसकी अपेक्षा एक अल्पतरभंग, पुनः तीन प्रकृतिके बन्धका एकप्रकार पश्चात् दो प्रकृतिके बन्धका एक प्रकार है इसलिये यहां भी एक अल्पतरभंग एवं दो प्रकृतिके बन्धका एकप्रकार पश्चात् एक प्रकृतिके बन्धका एकप्रकार होनेसे यहां भी अल्पतरका एक भंग है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके चरमभागमें एक प्रकृतिका बन्ध करता है और यहांसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें जाकर वहां बन्धका अभाव होनेसे वह अवक्तव्यबन्ध कहलाता है। इसप्रकार सर्व ३०+६+२+२+१+१+१+१+१=४५ अल्पतरबन्धके भंग हैं।

आगे भङ्गविवक्षासे अवक्तव्यबन्धके भंग व तीनोंप्रकारके बन्धोंकी अपेक्षा अवस्थितबन्धके भी भंग कहते हैं—

भेदेण अवत्तव्वा, ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे।
दो चेव होंति एत्थवि, तिण्णेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७४॥

अर्थ—भंगविवक्षासे अवक्तव्यबन्ध कहा है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान मोहनीयकर्मके बन्धसे रहित है अतः वहां से नीचे उतरकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती होकर सञ्ज्वलनलोभको बांधता है सो एक तो यह अवक्तव्यबन्धका भंग है और मरण करके देवअसंयत होकर दो प्रकारसे १७ प्रकृतियोंका बन्ध करता है इस अपेक्षा अवक्तव्यबन्धके दो भंग हैं ऐसे अवक्तव्यबन्धके सर्व (१+२) ३ भग हैं। भुजकारबन्ध के पूर्वोक्त १२७, अल्पतरबन्धके ४५ और अवक्तव्यबन्धके ३ भंगों में द्वितीयादिक समयोंमें समान प्रकृतियोंका बन्ध होनेसे अवस्थितबन्ध होता है जिसके १२७+४५+३=१७५ भंग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहनीयकर्मके सामान्य–विशेष भुजाकारादि चारप्रकारके बन्धको कहकर अब मोहनीयकर्मके उदयस्थान कहते हैं—

दस णव अट्ठ य सत्त य, छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च ।
उदयट्ठाणा मोहे, णव चेव य होंति णियमेण ॥४७५ ॥[1]

अर्थ—मोहनीयकर्मके उदयस्थान दस, नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, दो और एक प्रकृतिरूप ९ ही हैं ऐसा नियमसे जानना ।

मिच्छं मिस्सं सगुणे, वेदगसम्मेव होदि सम्मत्तं ।
एक्का कसायजादी, वेददुजुगलाणमेक्कं च ॥४७६॥

अर्थ—मोहनीयकर्मकी उदयप्रकृतियोंमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति अपने–अपवे गुणस्थानमें ही उदय होती हैं, किन्तु सम्यक्त्वप्रकृति वेदकसम्यग्दृष्टिजीवके असंयतादि चारगुणस्थानोंमें उदय होती है तथा अनन्तानुबन्धी आदि चारकषायोंकी क्रोध, मान, मायारूप चारजातिमें से एक–एक कषायजातिका, तीनों वेदोंमें से एक वेदका, हास्य-रति, और अरति–शोकरूप दो युगलोंमें से किसी एक युगलका उदय पाया जाता है ।

भय सहियं च जुगुञ्छासहियं दोहिंवि जुदं च ठाणाणि ।
मिच्छादिअपुव्वंते, चत्तारि हवंति णियमेण ॥४७७॥

अर्थ—एककालमें एकजीवके भयसहित ही प्रकृतियोंका उदय होनेसे अथवा केवल जुगुप्सासहित ही उदय होनेसे या भय और जुगुप्सा इन दो सहित ही उदय होनेसे अथवा च शब्दसे दोनों ही से रहित उदय होनेसे कूटके आकार चार–चार हैं सो ये मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त निश्चयसे होते हैं इसीकारण यहांपर चार–चार कूट कहे गए हैं । कूटके आकारों की रचना इसप्रकार है—

---

१. "एक्कं च दो व चत्तारि तदो एयाधिया दसुक्कस्सं । ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव होंति ।" प्रा० पं० स० पृ० ३१९ गाथा ३० व पृ० ४३८ गा० ३०३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तानुबन्धीसहित मिथ्यात्वका कूट

	२	भय-जुगुप्सा		१	जुगुप्सा
अरति-शोक	२–२	हास्य-रति	अरति-शोक	२–२	हास्य-रति
	१ १ १	वेद		१ १ १	वेद
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	कषाय
	१	मिथ्यात्व		१	मिथ्यात्व
	१	भय		०	
अरति-शोक	२–२	हास्य-रति	अरति-शोक	२–२	हास्य-रति
	१ १ १	वेद		१ १ १	
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	
	१	मिथ्यात्व		१	मिथ्यात्व

प्रथमकूटमें १० प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना, दूसरे व तीसरे कूटमें ९-९ प्रकृतिरूप उदयस्थान, चतुर्थकूटमें ८ प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना इसप्रकार ये चारों-कूट अनन्तानुबन्धीसहित मिथ्यात्वगुणस्थानके जानना तथा इन चारों कूटोंमें मिथ्यात्वको हटाकर चारों कूट सासादनगुणस्थानके जानना।

सासादनगुणस्थानके कूट

	२	भय-जुगुप्सा		१	जुगुप्सा
हास्य-रति	२–२	अरति-शोक	हास्य-रति	२–२	अरति-शोक
	१ १ १	वेद		१ १ १	वेद
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	कषाय
	१	भय		०	
हास्य-रति	२–२	अरति-शोक	हास्य-रति	२–२	अरति-शोक
	१ १ १	वेद		१ १ १	
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	

मिथ्यात्वके स्थान पर सम्यग्मिथ्यात्व लिखना और जो कषाय चार-चार लिखीं थी वहां ३–३ ही लिखना, क्योंकि एककालमें एकजीवके जो क्रोधका उदय है वह अनन्तानुबन्धी आदि चाररूप है। इन कूटोंमें अनन्तानुबन्धीकषायके बिना तीनरूप ही है इसीप्रकार मानादिकका उदय जानना ऐसे ये चार कूट मिश्रगुणस्थानके जानने।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्रगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
रति-हास्य २-२ अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
१ १ १ वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
३ ३ ३ ३ कषाय	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
१ सम्यग्मिथ्यात्व	१	१	१

वेदकसम्यग्दृष्टिके कूटमें सम्यग्मिथ्यात्वके स्थानपर सम्यक्त्वप्रकृति लिखना ये चारकूट वेदकसम्यक्त्वयुत अविरतगुणस्थानके जानने ।

वेदकसम्यक्त्वके असंयतगुणस्थानसम्बन्धी कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २ २ अरति शोक	२ २	२ २	२ २
वेद १ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय ३ ३ ३ ३ अनंतानुबंधी	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
सम्यक्त्व १ रहित	१	१	१

वेदकसम्यक्त्वसहित देशसंयतगुणस्थानवर्तीके कूटमें कषायके स्थानमें दो-दो कषायें लिखना, क्योंकि देशसंयतगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी व अप्रत्याख्यानकषायकेउदय का भी अभाव है, उनका उदय नहीं पाया जाता ।

वेदकसम्यक्त्वसंयुक्त देशसंयतगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २ २ अरति-शोक	२ २	२ २	२ २
वेद १ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय २ २ २ २ प्रत्याख्यान व	२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २
सम्यक्त्व १ सञ्ज्वलन	१	१	१

वेदकसम्यक्त्वसहित प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके कूटोंमें प्रत्याख्यानकषाय कम करना और दो-दो कषायोंके स्थानपर एक-एककषाय लिखना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदकसम्यक्त्वसहित प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २ २ अरति-शोक	२ २	२ २	२ २
१ १ १ वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय १ १ १ १ संज्वलन	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १
१ सम्यक्त्व	१	१	१

अपूर्वकरणगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृति कम करनेसे चारकूट होते हैं—

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २ २ अरति-शोक	२ २	२ २	२ २
१ १ १ वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय १ १ १ १ संज्वलन	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १

इसप्रकार मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त चार-चारकूट नियमसे हैं। यहां पर हास्यादिकषायकी व्युच्छित्ति हुई इसलिए अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें सञ्ज्वलनरूप चारकषायोंमें एक कषाय, तीनवेदोंमें से एक वेदका उदयरूप एक ही कूट है तथा इनमेंसे वेदको कम करनेसे दूसरे भागमें सञ्ज्वलनरूप चारकषायोंमेंसे एककषायके उदयरूप एक ही कूट है इनमेंसे क्रोधको घटानेपर तृतीयभागमें तीन सञ्ज्वलनकषायमें एकका उदयरूप एकही कूट है तथा इनमें भी मानकषायको घटानेपर चतुर्थभागमें दो सञ्ज्वलनकषायोंमें से एकका उदयरूप एक ही कूट है इनमें से मायाकषायको भी कम करने पर पांचवेंभागमें बादर सञ्ज्वलनलोभका उदयरूप एक ही कूट है।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी कूट

प्रथमभाग	द्वितीयभाग	तृतीयभाग	चतुर्थभाग	पञ्चमभाग
१ १ १ वेद	०	०	०	०
१ १ १ १ कषाय	१ १ १ १	१ १ १	१ १	१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक सूक्ष्मलोभके उदयरूप एक ही कूट है।

सूक्ष्मसाम्परायका कूट
१

इसप्रकार कूटाकाररूपसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान कहे।

अथानन्तर मिथ्यात्व, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानोंमें विशेषरूपसे कथन करते हैं—

अणसंजोजिदसम्मे, मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं।
उवसमखइये सम्मं, ण हि तत्थवि चारि ठाणाणि ॥४७८॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धीकषायका जिसके विसंयोजन हो गया है ऐसे वेदक या उपशमसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यात्वगुणस्थान होता है उसके बन्धावली या अचलावलीकालपर्यंत अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता तथा पहले अनन्तानुबंधी थी, किन्तु अब उसका विसंयोजन कर दिया इसलिए उस जीवके आवलीप्रमाणकाल तक अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं आता इस अपेक्षा मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीरहित चार-कूट और जानना।

अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २ २ अरति-शोक	२ २	२ २	२ २
१ १ १ वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय ३ ३ ३ ३ अनं. बंधी रहि.	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
१ मिथ्यात्व	१	१	१

इनमें प्रथमकूट नो प्रकृतिरूप दूसरे व तीसरेमें आठप्रकृतिरूप और चतुर्थभागमें सातप्रकृतिरूप उदयस्थान जानने तथा उपशमसम्यक्त्वमें और क्षायिकसम्यक्त्वमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय नहीं होता, सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय वेदकसम्यक्त्वमें ही होता है, इसलिए असंयत, देशसंयत, प्रमत्त व अप्रमत्तसंयतके पूर्वमें जो सम्यक्त्वमोहनीयसहित चार-चारकूट किए हैं वे वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा जानने उन सभी कूटोंमें सम्यक्त्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति घटानेपर उपशम और क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्तगुणस्थानमें चार–चार कूट और होते हैं।

वेदकसम्यक्त्वरहित असंयतगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा हास्य-रति २ २ अरति शोक वद १ १ १ कषाय ३ ३ ३ ३ अनंतानुबंधी कषायरहित	१ भय २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	१ जुगुप्सा २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३

वेदकसम्यक्त्वरहित देशसंयतगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा हास्य-रति २ २ अरति-शोक वेद १ १ १ कषाय २ २ २ २ प्रत्याख्यान व सञ्ज्वलन	१ भय २ २ १ १ १ २ २ २ २	१ जुगुप्सा २ २ १ १ १ २ २ २ २	० २ २ १ १ १ २ २ २ २

वेदकसम्यक्त्वरहित प्रमत्त–अप्रमत्तगुणस्थानके कूट

२ भय-जुगुप्सा हास्य-रति २ २ अरति-शोक वेद १ १ १ कषाय १ १ १ १ संज्वलन	१ भय २ २ १ १ १ १ १ १ १	१ जुगुप्सा २ २ १ १ १ १ १ १ १	० २ २ १ १ १ १ १ १ १

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे, अड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव।
चत्तारि दोण्णि एक्कं, ठाणा मिच्छादिसुहुमंते ॥४७६॥[1]

अर्थ—(गाथा ४७८ में) कथित कूटोंको पूर्वोक्त (गाथा ४७७ में) कूटोंमें मिलानेसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ८, सासादन और मिश्रगुणस्थानमें चार-चार, असंयतादि

मिच्छे अड चउ चउ दुसु तदो चउसु हवंति अट्ठेव। चत्तारि अपुव्वे वि य उदयट्ठाणाणि मोहम्मि॥
१. प्रा० पं० सं० पृ० ४४४ गाथा ३१५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारगुणस्थानोंमें ८-८, अपूर्वकरणगुणस्थानमें ४, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २ और सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें १ कूट है। (इसका विशेष स्पष्टीकरण निम्नलिखित संदृष्टिसे जानना)।

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	अविरत	देशविरत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्तिकरण	सूक्ष्मसाम्पराय
गाथा ४७७ के अनुसार उदयस्थान	८ ९ । ९ १०	७ ८ । ८ ९	७ ८ । ८ ९	७ ८ । ८ ९	६ ७ । ७ ८	५ ६ । ६ ७	५ ६ । ६ ७	४ ५ । ५ ६	१ २	१
गाथा ४७८ के अनुसार उदयस्थान	७ ८ । ८ ९	०	०	६ ७ । ७ ८	५ ६ । ६ ७	४ ५ । ५ ६	४ ५ । ५ ६	०	०	०
जोड़	८	४	४	८	८	८	८	४	२	१

नोट—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ५ भाग हैं उसके उदयस्थान २-१-१-१-१ हैं, किन्तु ऊपर संदृष्टिमें २-१ इसप्रकार संक्षेपमें ही लिखा गया है।

आगे अपुनरुक्तस्थानोंको कहते हैं—

दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ।
ठाणा छादि तियं च य, चदुबीसगदा अपुव्वोत्ति ॥४८०॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें दशआदि प्रकृतिरूप उदयस्थान हैं अर्थात् १० प्रकृतिरूप, ९ प्रकृतिरूप, ८ प्रकृतिरूप और ७ प्रकृतिरूप हैं। सासादन और मिश्रगुणस्थानमें ९-८ व ७ प्रकृतिरूप, असंयतगुणस्थानमें ९-८-७ व ६ प्रकृतिरूप हैं। प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में ७-६-५ व ४ प्रकृतिरूप, अपूर्वकरणगुणस्थानमें ६-५-४ प्रकृतिरूप उदयस्थान हैं, ये सभीस्थान २४-२४ भंगोंसे संयुक्त हैं। मिथ्यात्वादि ५ गुणस्थानोंमें जो अपुनरुक्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान कहे उनमें किसी-किसीकी संख्या समान होते हुए भी प्रकृतिभेदकी अपेक्षा अपुनरुक्तपना है। जैसे—९-९ प्रकृतिरूप स्थान बहुत तथापि उनमें प्रकृतियां भिन्न-भिन्न पाई जाती हैं इसलिए अपुनरुक्तता है, क्योंकि मिथ्यात्वगुणस्थानमें जो स्थान हैं वे मिथ्यात्वप्रकृतिसहित हैं, सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबंधीप्रकृतिसहित हैं, मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिसहित, असंयतगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिसहित और देशसंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषायरहित स्थान हैं। इसप्रकार प्रकृतिभेदसे अपुनरुक्तता जानना चाहिये।

[1]एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि।
एदे चउवीसगदा चदुवीसेयार दुगठाणे ॥४८१॥

अर्थ— मिथ्यात्वादि सर्वगुणस्थानोंमें १० प्रकृतिरूप एक, ९ प्रकृतिरूप छह, ८-७ व ६ प्रकृतिरूप ११-११, ५ प्रकृतिरूप ९ और चार प्रकृतिरूप ३ स्थान हैं। ये सर्वस्थान २४-२४ भंगोंसे सहित है तथा दो प्रकृतिरूप १ स्थानके २४ भंग और एक प्रकृतिरूप एकस्थानके ११ भंग हैं।

विशेषार्थ—उपर्युक्त १० प्रकृतिरूप एकस्थान तो मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही है, ९ प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं ये छहस्थान पहले कूटोंमें २ व पिछले कूटोंमें एक इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें तो ३, सासादन-मिश्रऔर असंयतगुणस्थानसम्बन्धी पहले कूटोंमें एक-एक और एक इसप्रकार सर्व ६ स्थान हैं। ८ प्रकृतिरूप ११ स्थानोंमेंसे मिथ्यादृष्टिके पहले कूटोंमें एक तथा पिछले कूटोंमें २ इसप्रकार तीनस्थान, सासादन व मिश्रगुणस्थानके दो-दो, असयतगुणस्थानमें पहले कूटोंमें २ तथा पिछले कूटोंमें एक इसप्रकार ३, देशसंयतगुणस्थानमें पहले कूटोंमें एक इसप्रकार ८ प्रकृतिके ११ स्थान हैं। ७ प्रकृतिरूप ११ स्थानोंमें मिथ्यात्वगुणस्थानके पिछले कूटोंमें एक तथा सासादन और मिश्रगुणस्थानके एक-एक स्थान, असंयतगुणस्थानमें पहले कूटोंमें एक एवं पिछले कूटोंमें २ ऐसे ३ स्थान, देशसंयतगुणस्थानके पहले कूटोंमें २ व पिछले कूटोंमें एक ऐसे ३ स्थान एवं प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके एक-एक स्थान ऐसे ७ प्रकृतिरूप ११ स्थान हैं। ६ प्रकृतिरूप ११ स्थानोंमें असंयतगुणस्थानके पिछले कूटोंमें एक, देशसंयतगुणस्थानके पहले कूटोंमें एक तथा पिछले कूटोंमें दो इसप्रकार ३ स्थाव, प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके पहले कूटोंमें २-२

---

१. "एक्क य छक्केगारं, एगारेगारसेव णव तिण्णि। एदेचदुवीसगदा, बारस दुग पंच एगम्मि ॥३१२॥" "प्रा० पं० सं० पृ० ४४२।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान और पिछले कूटोंमें एक-एक स्थान ऐसे ३-३ स्थान जानना तथा अपूर्वकरणगुणस्थानमें एक इसप्रकार ६ प्रकृतिरूप ११ स्थान हैं। ५ प्रकृतिरूप ६ स्थानोंमें देशसंयतगुणस्थानके पिछले कूटमें एक स्थान, प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके पहले कूटोंमें १-१ और पिछले कूटोंमें २-२ ऐसे ३-३ स्थान एवं अपूर्वकरणगुणस्थानके २ स्थान ये ६ स्थान ५ प्रकृतिरूप हैं। चारप्रकृतिरूप तीनस्थानोंमें प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके पिछले कूटोंमें एक-एकस्थान और अपूर्वकरणगुणस्थानमें एक स्थान है, इसप्रकार तीनस्थान हैं।

उपर्युक्त सर्वस्थानोंमें २४-२४ भंग हैं। १० प्रकृतिरूप उययस्थानोंमें क्रोधादि चारकषायोंका उदय एक-एक वेदके साथ होनेसे १२ भंग होते हैं सो इन १२ भंगोंमें हास्य-रति अथवा अरति-शोकका गुणाकरनेसे २४ भंग होते हैं। इसीप्रकार अन्यस्थानोंमें भी २४-२४ भंग जानने तथा दो प्रकृतिरूप एक स्थानके २४ एवं एकप्रकृतिरूप १ स्थानके ११ भंग हैं।

अथानन्तर दो और एक प्रकृतिरूप स्थानोंके भंगोंका विधान कहते हैं—

उदयट्ठाणं दोण्हं, पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स।
चदुविहबंधट्ठाणे, सेसेसेयं हवे ठाणं ॥४८२॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें पांच प्रकृतिका जहां बन्ध पाया जाता है ऐसे प्रथमभागमें तो कषाय-वेदरूप २ प्रकृतिका उदय है। चारप्रकृतिका जहां बन्ध पाया जाता है ऐसे द्वितीयभागमें भी एकसमय तक एक बेद और एककषायरूप दो प्रकृतियोंका उदय रहता है, इसप्रकार इन दोनोंमें ३ वेद और सञ्ज्वलनकषायचतुष्कमें से एक-एक प्रकृतिका उदय होनेसे दो प्रकृतिरूप स्थान पाया जाता है तथा चार-तीन-दो और एक प्रकृतिके बन्धस्थानोंमें तथा अबंधस्थानमें क्रमसे ४, ३, २, १ व १ सञ्ज्वलनकषायोंमें से एक कषायका उदय होनेसे एक-एक प्रकृतिरूप उदयस्थान हैं। अतएव वहांपर ४, ३, २, १, १ भंग होते हैं। इसप्रकार एकप्रकृतिरूप उदयस्थानमें भंग ११, द्विप्रकृतिरूप उदयस्थानमें भंग २४ कुल भंग २४+११=३५ होते हैं।

विशेषार्थ— [1]अनिवृत्तिकरणस्य द्विकोदये इति पंचबन्धक-चतुर्बन्धकानिवृत्तिकरण भागयोस्त्रिवेदचतुःसंज्वलनानामेकैकोदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं $\frac{५}{२}$ $\frac{४}{१}$ स्यात्। तत्र

१. प्रा० प० सं० पृ० ३२८ प० नं० १।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभश्चत्वार: त्रिभिर्वेदैर्हता: द्वादश: भंगा भवन्ति । द्विद्वादश द्वादश द्वादशेति $\begin{smallmatrix}५\\२\\१२\end{smallmatrix}$ $\begin{smallmatrix}४\\१\\१२\end{smallmatrix}$ । अर्थात् अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें दो प्रकृतिक, पांचप्रकृतिक बन्धस्थानमें १२ और ४ प्रकृतिकबन्धस्थानमें १२ ये २४ भंग होते हैं ।

आगे इसीबातका विशेष कथन चार गाथासूत्रोंमें करते हैं—

अणियट्टिकरणपढमा, संढित्थीणं च सरिस उदयद्धा ।
तत्तो मुहुत्तअंते, कमसो पुरिसादिउदयद्धा ॥४८३॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागके प्रथमसमयसे सवेदभागके अन्तसमयतक नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयका काल समान है तथा इससे पुरुषवेद और सञ्ज्वलनक्रोधादि चतुष्कका उदयकाल यथासम्भव क्रमसे अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना ।

पुरिसोदएण चडिदे, बंधुदयाणं च दुगवदुच्छित्ती ।
सेसोदयेण चडिदे, उदयदुचरिमम्हि पुरिसबंधछिदी ॥४८४॥

अर्थ—जो जीव पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़ते हैं उनके पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति व उदयव्युच्छित्ति एकसाथ होती है अथवा चकारसे बन्धव्युच्छित्ति उदयके द्विचरमसमयमें होती है तथा स्त्री व नपुंसकवेदके उदयसे जो श्रेणि चढ़ते हैं उनके पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति दोनों (स्त्री-नपुंसक) वेदोंके उदयके द्विचरमसमयमें होती है[1] । अथवा सवेदभागके चरमसमयतक पुरुषवेदका बंधक रहता है[2] ।

विशेषार्थ—कोधसंजलणपुरिसवेदोदएणक्खवगसेढिं चडिदस्स सवेदियदुचरिमसमए छण्णोकसाएहि सह खविदपुरिसवेदचिराणसंतस्स सवेदियचरिमसमए समयूणदो-आवलियमेत्तपुरिसवेदणवकसमयपबद्धाणमुवलंभादो । अर्थात् क्रोधसञ्ज्वलन और पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है अतएव जिसने सवेदभागके द्विचरमसमयमें छह नोकषायोंके साथ पुरुषवेदके सत्तामें स्थित पुरानेकर्मोंका नाशकर दिया है, उसके सवेदभागके चरमसमयमें एक समय कम दो आवलीप्रमाण कालतक स्थित रहनेवाले पुरुषवेदसंबंधी नवकसमयप्रबद्ध पाए जाते हैं । अत: पांच प्रकृतिक स्थानका जघन्य और

---

१. जयधवल पु० २ पृ० २३४-२३५। २. जयधवल पु० २ पृ० २४०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्टकाल एक समय कम दो आवली होता है[1]। इससे जाना जाता है कि पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति उदयके द्विचरमसमयमें होती है।

पणबंधगम्मि बारस, भंगा दो चेव उदयपयडीओ।
दोउदये चदुबंधे, बारेव हवंति भंगा हु ॥४८५॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागमें ५ प्रकृतियोंका बन्ध होता है इसमें दो प्रकृतिरूप उदयस्थान है और इसके भंग (४ कषाय×३ वेदकी अपेक्षा) १२ हैं। नवमगुणस्थानके ही द्वितीयभागमें ४ प्रकृतियोंका बन्ध है वहां भी एक समयपर्यंत दोप्रकृतियोंके उदयरूप १२ भंग हैं, इसप्रकार दोप्रकृतिके उदयरूप दोबन्धस्थानोंमें २४ भंग हैं।

कोहस्स य माणस्स य, मायालोहाणियट्टिभागम्हि।
चदुतिदुगेक्कं भंगा, सुहुमे एक्को हवे भंगा ॥४८६॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके द्वितीयभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त कषायोंकी अपेक्षासे ११ भंग होते हैं।

विशेषार्थ—क्रोध-मान-माया और लोभके उदयरूप अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके चार भागोंमें क्रमसे चार-तीन-दो और एक प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है उनमें क्रमसे, कषायके बदलनेकी अपेक्षा ४-३-२ और १ भंग हैं। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें मोहनीयकर्मके बन्धरहित सूक्ष्मलोभके उदयस्थानमें एकभंग है।

आगे सर्व उदयस्थानोंकी तथा उनमें पाई जानेवाली प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

बारससयतेसीदीठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा।
पणसीदिसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्मि ॥४८७॥

अर्थ—गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके सर्व १२८३ उदयस्थानोंमें तथा उनस्थानोंकी ८५०७ प्रकृतिभेदोंमें जगतके चराचरजीव मोहित हो रहे हैं।

विशेषार्थ—गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके १० प्रकृतिरूप एक, ९ प्रकृतिरूप छह, ८-७ व ६ प्रकृतिके ११-११, पांच प्रकृतिरूप नौ, चार प्रकृतिरूप तीन, दो प्रकृतिरूप

---

१. जयधवल पु० २ पृ० २४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ये सर्व ५३ उदयस्थान हैं और इनमें प्रत्येक उदयस्थानके २४-२४ भंग होनेसे (५३×२४) १२७२ तथा एक प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग हैं इसप्रकार (१२७२+११) सर्व १२८३ भंग उदयस्थानोंके जानना। इन स्थानोंमें पाई जानेवाली प्रकृतियोंका कथन इसप्रकार है—दशप्रकृतिरूप एक स्थानकी १० प्रकृति, नौ प्रकृतिरूप ६ स्थानोंकी ९×६=५४ प्रकृतियां, आठ प्रकृतिरूप ११ स्थानोंकी ८×११=८८ प्रकृतियां, सात प्रकृतिरूप ११ स्थानोंकी ७×११=७७ प्रकृतियां, छह प्रकृतिरूप ११ स्थानोंकी ६×११=६६ प्रकृतियां, पांच प्रकृतिरूप ९ स्थानोंकी ५×९=४५ प्रकृतियां, चारप्रकृतिरूप ३ स्थानोंकी ४×३=१२ प्रकृतियां, दो प्रकृतिरूप १ स्थानकी २×१=२ प्रकृतियां ये सर्व मिलकर १०+५४+८८+७७+६६+४५+१२+२=३५४ प्रकृतियां हुईं इनको २४ भंगोंसे गुणा करनेपर ३५४×२४=८४९६ होते हैं और एक प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंगोंकी ११ प्रकृतियां मिलानेसे ८४९६+११=८५०७ सर्वप्रकृतियोंकी संख्या जानना।

प्रकृतियां	१०	९	८	७	६	५	४	२
स्थान	१	६	११	११	११	९	३	१

आगे अपुनरुक्तस्थानोंकी तथा उनमें पाई जानेवाली प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

[१]एक्क य छक्केयारं, दससगचदुरेक्कयं अपुणरुत्ता।
एदे चदुवीसगदा, बार दुगे पंच एक्कम्मि ॥४८८॥

अर्थ—दशप्रकृतिरूप एकस्थान, ९ प्रकृतिरूप छहस्थान, ८ प्रकृतिरूप ग्यारहस्थान, ७ प्रकृतिरूप दसस्थान, ६ प्रकृतिरूप सातस्थान. ५ प्रकृतिरूप चारस्थान और ४ प्रकृतिरूप एकस्थान अपुनरुक्त है। इन ४० स्थानोंमें प्रत्येकके २४-२४ भङ्ग हैं। दो प्रकृतिरूप स्थानके १२ भङ्ग और एकप्रकृतिरूप स्थानके ५ भङ्ग हैं।

विशेषार्थ—१० प्रकृतिरूप, ९ प्रकृतिरूप, ८ प्रकृतिरूप स्थान तो पूर्ववत् ही हैं, किन्तु ७ प्रकृति आदिरूप स्थानोंमें कुछ विशेषता है उसे ही यहां कहते हैं—

---

१. "एक्कग छक्केक्कारस दस सत्त चउक्क एक्कगं चेव। दोसु च बारस भङ्गा एक्कम्हि य होंति चत्तारि॥" जयधवल पु. १० पृ. ५२। ध० पु० १५ पृ० ८२ भी देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वमें ७ प्रकृतिरूप ११ स्थान कहे थे, किन्तु यहां ७ प्रकृतिरूप १० ही स्थान कहे हैं इसका कारण यह है कि पूर्वमें कहे हुए ११ स्थानोंमें पहिले कूटोंमें सम्यक्त्व-प्रकृतिसहित वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी सातप्रकृतिरूप जो दो स्थान कहे थे वे समान हैं अतः पुनरुक्त होनेसे यहां एक ही ग्रहण किया इसीलिए १० स्थान कहे गए हैं। तथैव पूर्वमें ६ प्रकृतिरूप स्थान भी ११ कहे थे, किन्तु यहां पर ७ ही स्थान कहे हैं, क्योंकि पूर्वोक्त ११ स्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वसहित पहिले कूटोंमें छह-प्रकृतिरूप दो-दोकूट प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी कहे थे उनमें समानता होनेसे ४ में से दो कूट ग्रहण किए और शेष दोकूट पुनरुक्त होनेसे कम कर दिए तथा वेदकसम्यक्त्व-रहित पिछले कूटोंमें छहप्रकृतिरूप स्थानके प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी एक-एक कूट मिलकर दो कूट हुए सो ये कूट अपूर्वकरणगुणस्थानके ६ प्रकृतिरूप कूटके समान ही हैं अतः यहां भी दो कूटोंको पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं किया, इसप्रकार चारकूट सम्बन्धी चार पुनरुक्तस्थानोंको छोड़देनेसे ६ प्रकृतिरूप ७ ही स्थान यहां कहे हैं। उसीप्रकार पूर्वमें ५ प्रकृतिरूप ९ स्थान कहे थे, किन्तु यहां पर ४ ही स्थान कहे हैं, क्योंकि पूर्वोक्त ९ स्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वसहित पहिले कूटोंमे प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी एक-एक कूट कहा था, किन्तु समान होनेसे यहांपर पुनरुक्तको छोड़कर एकही ग्रहण किया तथा वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूटोंमें देशसंयतगुणस्थानका एक, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी दो-दो और अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी दो इस प्रकार इन सात कूटोंमें प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी दो-दोकूट अपूर्वकरणगुणस्थानकेदोकूटोंके समान हैं अतः चारकूटोंके ४ स्थान कम कर दिए एव वेदकसम्यक्त्वसहितकूटोंमें एक पुनरुक्त-कूटको छोड़ दिया ऐसे ५ कूटोंके ५ स्थान कम कर देनेसे ५ प्रकृतिके चार ही स्थान शेष रहे। तथैव पूर्वमें ४ प्रकृतिरूप ३ स्थान कहे थे, किन्तु यहां एक ही ग्रहण किया इसका कारण यह है कि पूर्वमें ४ प्रकृतिरूप जो तीन स्थान कहे थे उन तीनोंमें समानता होनेसे दो पुनरुक्तस्थानोंको कम कर दिया। जिनमें प्रकृतियोंकी समानता पाई जाती है ऐसे पुनरुक्त स्थानोंको घटानेपर जो स्थान रहे उन सभीका जोड़ ४० है और प्रत्येक स्थान २४-२४ भङ्ग सयुक्त है अतः ४० स्थानोंको २४ भङ्गोंसे गुणा करनेपर ४०×२४=९६०, इनमें दो प्रकृतिरूप स्थानके पूर्वोक्त २४ भङ्गोंमेंसे १२ पुनरुक्तभङ्ग कम कर देनेपर शेष १२ रहे अतः उनको मिलानेसे तथा एक प्रकृतिरूप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानके पूर्वकथित ११ भंगोंमें से छह पुनरुक्तभंग घटाकर शेष ५ भङ्ग मिलानेसे ९६०+१२+५=९७७ भङ्ग होते हैं।'

इन ९७७ भङ्गोंमें पाई जाने वाली प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

णवसयसत्तत्तरिहिं, ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा।
इगिदालूणत्तरिसयपयडिवियप्पेहिं णादव्वा ॥४८९॥

अर्थ—इसप्रकार ९७७ स्थान और उनमें पाई जाने वाली ६९४१ प्रकृतियोंके भेदोंमें तीनों लोकोंके सभी जीव मोहित हो रहे हैं।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त गाथामें कथित ९७७ भङ्गोंकी प्रकृतियां इसप्रकार हैं—दसप्रकृतिरूप एकस्थानकी १०, नौप्रकृतिरूप ६ स्थानोंकी ५४, आठप्रकृतिरूप ११ स्थानोंकी ८८, सातप्रकृतिरूप १० स्थानोंकी ७०, छहप्रकृतिरूप सातस्थानोंकी ४२, पांचप्रकृतिरूप चारस्थानोंकी २०, चारप्रकृतिरूप एकस्थानकी ४ इनको जोड़नेपर २८८ प्रकृतियां हुईं इनको २४ भङ्गोंसे गुणा करनेपर २८८×२४=६९१२ प्रकृतियां, तथा दोप्रकृतिरूप-स्थानके १२-१२ भङ्ग एक-एकप्रकृतिके गिने इसलिए २४ भङ्ग तथा एकप्रकृतिरूप स्थानके पांचभङ्ग इसप्रकार ये २९ भेद और मिलानेपर ६९१२+२९=६९४१ भेद हुए।

आगे मोहनीयकर्मके उदयस्थान तथा उनकी प्रकृतियोंको गुणस्थानोंमें उपयोगादिकी अपेक्षासे कहते हैं—

उदयट्ठाणं पयडिं, सगसगउवजोगजोगआदीहिं।
गुणयित्ता मेलविदे, पदसंखा पयडिसंखा य ॥४९०॥

अर्थ—'पुव्विल्लेसुविमिलिदे' इत्यादि गाथा ४७९ में कही हुई उदयस्थानकी संख्या और उन स्थानोंकी प्रकृतियोंकी संख्याको अपने-अपने गुणस्थानोंमें संभावित ऐसे उपयोग और योग आदि शब्दसे संयम, देशसंयम, लेश्या और सम्यक्त्वसे गुणा करके सबको जोड़नेसे जो प्रमाण हो उतनी ही वहांपर मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंकी और प्रकृतियोंकी संख्या जानना चाहिये।

मिच्छदुगे मिस्सतिये, पमत्तसत्ते जिणे य सिद्धे य।
पण छस्सत्त दुगं च य, उवजोगा होंति दो चेव ॥४९१॥

१. "एत्थ सव्व भंगसमासो एत्तियो होई ९७६।" जयध० पु० १० पृ० ५३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मिथ्यात्व और सासादन इन दोगुणस्थानोंमें तीनअज्ञान और दोदर्शन ये पांच उपयोग हैं। मिश्र, असंयत व देशसंयत इन तीनगुणस्थानोंमें तीनज्ञान व तीनदर्शन इसप्रकार ६ उपयोग हैं। प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय, व क्षीणकषाय इन सातगुणस्थानोंमें चारज्ञान और तीनदर्शन ये सात उपयोग हैं। सयोगी व अयोगीजिनमें तथा सिद्धोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग हैं[1]।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्रकृतिस्थान दशप्रकृतिरूपएक, नौ-नौ प्रकृतिरूप दो, आठप्रकृतिरूप एक इसप्रकार सर्व चारस्थान हैं। इन स्थानोंको प्रकृतियोंका जोड़ ३६ है तथा अनन्तानुबन्धीरहित नौप्रकृतिरूप एक, आठ-आठप्रकृतिरूप दो और सातप्रकृतिरूप एक इसप्रकार इन चारस्थानोंकी ३२ प्रकृतियां मिलाकर सर्व आठस्थान और ६८ प्रकृतियां हुई इनको पांचउपयोगसेगुणा करनेपर ४० स्थान और ३४० प्रकृतियां होती हैं। सासादनगुणस्थानमें नौ प्रकृतिरूप एक, आठ-आठप्रकृतिरूप दो और सातप्रकृतिरूप एक इसप्रकार चारस्थान और ३२ प्रकृतिको पांच उपयोगसे गुणा करनेपर २० स्थान और १६० प्रकृतियां होती हैं। मिश्रगुणस्थानमें नौप्रकृतिरूप एक, आठ-आठप्रकृतिरूप दो और सातप्रकृतिरूप एक इसप्रकार चारस्थान और इनकी ३२ प्रकृतियोंको ६ उपयोगसे गुणा करनेपर २४ स्थान और १९२ प्रकृतियां होती हैं। असंयतगुणस्थानमें वेदकसम्यक्त्वसहित पहिले कूटमें नौप्रकृतिरूप एक, आठ-आठप्रकृतिरूप दो और सातप्रकृतिरूप एकस्थान इसप्रकार ४ स्थान और ३२ प्रकृतियां हैं तथा वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूटमें आठप्रकृतिरूप एक, सातप्रकृतिरूप दो और छहप्रकृतिरूप एकस्थान इसप्रकार चारस्थान और उनकी २८ प्रकृतियां हैं उपर्युक्त चारस्थानोंमें ये चारस्थान मिलानेसे ८ स्थान और ३२ प्रकृतियोंमें ये २८ प्रकृतियां मिलानेपर ६० प्रकृतियां हुईं इनमें छहउपयोगसे गुणा करनेपर ४८ स्थान और ३६० प्रकृतियां होती हैं।

देशसंयतगुणस्थानमें वेदकसम्यक्त्वसहित पहिले कूटमें ८ प्रकृतिरूप एक, सातप्रकृतिरूप दो और छहप्रकृतिरूप एकस्थान ऐसे चारस्थान हैं और उनकी २८ प्रकृतियां हैं तथा वेदकसम्यक्त्वरहित पिछलेकूटमें सातप्रकृतिरूप एक, छहप्रकृतिरूप दो और पांचप्रकृतिरूप एकस्थान ये चारस्थान हैं और इनकी २४ प्रकृतियां हैं इसप्रकार पूर्वोक्त

१. देखो प्रा० पं० सं० पृ० ४६५ गा० ३६१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारस्थान और ये चारस्थान मिलानेपर स्थान तो आठ हैं और पूर्वोक्त २८ प्रकृतियोंमें २४ प्रकृतियां मिलानेसे ५२ प्रकृतियां हैं इनमें ६ उपयोगसे गुणा करनेसे ४८ स्थान और ३१२ प्रकृतियां होती हैं। प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें वेदकसम्यक्त्वसहित पहले-कूटमें सात प्रकृतिरूप एक, छह प्रकृतिरूप दो और पांचप्रकृतिरूप एकस्थान इसप्रकार चारस्थान और २४ प्रकृतियोंमें वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूटमें छहप्रकृतिरूप एक, पांचप्रकृतिरूप दो और चारप्रकृतिरूप एकस्थान इसप्रकार चारस्थान और २० प्रकृतियां मिलानेपर ८ स्थान और ४४ प्रकृतियां हुईं इनमें सात उपयोगसे गुणा करनेपर प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानके ५६-५६ स्थान और ३०८-३०८ प्रकृतियां होती हैं। अपूर्वकरण-गुणस्थानमें ६ प्रकृतिरूप एक, पांच प्रकृतिरूप दो और चारप्रकृतिरूप एकस्थान इस-प्रकार चारस्थान और उनकी २० प्रकृतियोंको सात उपयोगसे गुणा करनेपर २८ स्थान और १४० प्रकृतियां होती हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त उपर्युक्त सभीस्थान व प्रकृतियोंकी सख्याका जोड़ देनेपर (४०+२०+२४+४८+४८+५६+५६+२८=) ३२० स्थान तथा (३४०+१६०+१९२+३६०+३१२+३०८+३०८+१४०=) २१२० प्रकृतियां जानना। इन सभी स्थानों और प्रकृतियोंमें २४ भङ्गोंसे गुणा करनेपर (३२०×२४=)७६८० तो उदयस्थानोंके भङ्ग[1] एवं २१२०×२४=५०८८० प्रकृतियां हुईं।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २ प्रकृतिरूप एकस्थानको ७ उपयोगसे गुणा करनेपर ७ स्थान और प्रकृतियां १४ होती हैं इनको १२ भङ्गोंसे गुणा करें तो स्थानोंकी संख्या ८४ तथा प्रकृतियोंकी संख्या १६८ होती हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके अवेदभागमें एकप्रकृतिरूप एकस्थान है इनको ७ उपयोगसे गुणा करनेपर ७ स्थान और ७ ही प्रकृ-तियां हुईं इनमें पुनः ४ भंगसे गुणा करनेपर २८ स्थान और २८ ही प्रकृतियां होती हैं। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें एक प्रकृतिरूप एकस्थान है यहां इनको ७ उपयोगसे गुणा करनेपर ७ स्थान और ७ ही प्रकृतियां हैं यहांपर भंग एक ही है अतः उसका गुणा करनेपर ७ स्थान व उनकी ७ प्रकृतियां हुईं। इसप्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थान और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानसम्बन्धी स्थान और प्रकृतियोंकी संख्या (८४+२८+७=११९ स्थान)[2] (१६८+२८+७=२०३ प्रकृतियां) जानना। इनको अपूर्वकरणगुणस्थानतक ऊपर जो स्थान और प्रकृतियां कही गई हैं उनमें मिलाना चाहिये।

१. प्रा० प० सं० पृ० ४६५-४६६ गा ३६२ की टीका। २. प्रा. पं. सं. पृ. ४६६ गाथा ३६३ व टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकरण प्राप्त उपयोगका कथन करते हैं कि कौन-कौनसे उपयोग किस-किस-गुणस्थानमें पाए जाते हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, कुमति, कुश्रुत और विभङ्ग ज्ञान ।
सासादन „ — „ „ „ „ „ „ ।
मिश्र „ — „ „ और मिश्ररूप तीन ज्ञान ।
असंयत „ — „ „ अवधिदर्शन तथा मति-श्रुत-अवधिज्ञान ।
देशसंयत „ — „ „ „ „ „ ।
प्रमत्त „ — „ „ „ „ „ और मनःपर्ययज्ञान ।
अप्रमत्त „ — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान ।
अपूर्वकरण „ — „ „ „ „ „ „ „ „ ।
अनिवृत्तिकरण „ — „ „ „ „ „ „ „ „ ।
सूक्ष्मसाम्पराय „ — „ „ „ „ „ „ „ „ ।
उपशान्तकषाय „ — „ „ „ „ „ „ „ „ ।
क्षीणमोह „ — „ „ „ „ „ „ „ „ ।
सयोगकेवली „ — केवलदर्शन और केवलज्ञान ।
अयोगकेवली „ — „ „ „ ।

गुणस्थानकी अपेक्षा उपयोग, मोहनीयके उदयस्थान व प्रकृतिकी संख्याका परस्परमें गुणाकरके जो स्थान और प्रकृतिसंख्या होती हैं उन्हें निम्न संदृष्टिमें दिखाते हैं—[1]

गुणस्थान	उदय-स्थान सं.	प्रकृति संख्या	उपयोग-संख्या	उदयस्थानX उपयोग	प्रकृतिXउपयोग
मिथ्यात्व	८	६८=३६+३२	५	८×५=४०	६८X५=३४०
सासादन	४	३२	५	४×५=२०	३२X५=१६०
मिश्र	४	३२	६	४×६=२४	३२X६=१९२
असंयत	८	३२+२८=६०	६	८×६=४८	६०X६=३६०

१. पं० सं० पृ० ४६७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयत	८	२८+२४=५२	६	८x६=४८	५२x६=३१२
प्रमत्त	८	२४+२०=४४	७	८x७=५६	४४x७=३०८
अप्रमत्त	८	२४+२०=४४	७	८x७=५६	४४x७=३०८
अपूर्वकरण	४	२०	७	४x७=२८	२०x७=१४०
जोड़	५२	३५२	४६	३२०	२१२०
अनिवृत्तिकरण प्रथमभाग	१	२	७	१x७=७	२x७=१४
अनिवृत्तिकरण शेषभाग	१	१	७	१x७=७	१x७=७
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१	७	१x७=७	१x७=७

आगे मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेदोंकी सर्वसंख्याका प्रमाण कहते हैं—

[1]णवणउदिसगसयाहिय सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु, उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९२॥

अर्थ—इसप्रकार गुणाकार करनेपर उपयोगकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके सर्वभेद ७७९९ हुए ऐसा जानना चाहिये ।

अब उपयोगकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंमें पाई जानेवाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

एक्कावण्णसहस्सं, तेसीदिसमण्णियं वियाणाहि ।
पयडीणं परिमाणं, उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९३॥[2]

अर्थ—उपयोगके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंमें एक्कावनहजार तिरियासी (५१०८३) प्रकृतियां जानना चाहिये ।

१. देखो प्रा. पं. सं. पृ० ४६६ गा० ३६४। २. प्रा. पं. सं. पृ० ४६९ गा० ३७१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्दृष्टि—

गुणस्थान[1]	उपयोग-संख्या	उदयपद-संख्या	गुणाकार	भङ्ग
मिथ्यात्व	५	६८	२४	८१६०
सासादन	५	३२	२४	३८४०
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	६	५२	२४	७४८८
प्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अप्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अपूर्वकरण	७	२०	२४	३३६०
अनिवृत्तिकरण	७	२	१२	१६८
,,	७	१	४	२८
सूक्ष्मसांपराय	७	१	१	७
सर्वपदवृन्द				५१०८३

आगे किस-किसगुणस्थानमें कितने-कितने योग पाए जाते हैं उनकी संख्या कहते हैं—

तिसु तेरं दस मिस्से, णव सत्तसु छट्ठयम्मि एक्कारा ।
जोगिम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥४६४॥[2]

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन और असंयतगुणस्थानमें १३-१३ योग, मिश्रगुणस्थानमें १०, देशसंयतगुणस्थानमें व प्रमत्तगुणस्थानबिना अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति-

१. प्रा. पं. सं. पृ० ४७० । २. देखो पं. सं. पृ० ४४८ गाथा ३२८ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय इन सातगुणस्थानोंमें ९-९ योग, प्रमत्तगुणस्थानमें ११, सयोगकेवलीके ७ योग हैं तथा अयोगकेवलीके योगोंका अभाव है।

विशेषार्थ—किस-किस गुणस्थानमें कौन-कौनसे योग होते हैं उसे निम्न सन्दृष्टिसे जानना चाहिये।

गुणस्थान	योग संख्या	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	१३	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियककाययोग, वैक्रियकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग।
सासादन	१३	उपर्युक्त।
मिश्र	१०	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियककाययोग।
असंयत	१३	मिथ्यात्वगुणस्थानोक्त।
देशसंयत	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग और औदारिककाययोग।
प्रमत्त	११	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग।
अप्रमत्त	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
अपूर्वकरण	९	,, ,, ,,
अनिवृत्तिकरण	९	,, ,, ,,
सूक्ष्मसांपराय	९	,, ,, ,,
उपशांतकषाय	९	,, ,, ,,
क्षीणकषाय	९	,, ,, ,,
सयोगकेवली	७	सत्य-अनुभयमनोयोग, सत्य-अनुभयवचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग।
अयोगकेवली	०	०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर अपर्याप्त और पर्याप्तावस्थासम्बन्धी योगोंसे युक्त गुणस्थानोंका कथन करते हैं—

मिच्छे सासण अयदे, पमत्तविरदे अपुण्णजोगगदं ।
पुण्णगदं च य सेसे, पुण्णगदे मेलिदं होदि ।।४९५।।

अर्थ—मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और प्रमत्तविरत इन चारगुणस्थानोंमें अपर्याप्त व पर्याप्तयोगसम्बन्धीस्थान और प्रकृतियोंको योगोंसे गुणा करनेपर स्थान और प्रकृतियोंका प्रमाण होता है तथा शेष गुणस्थानोंमें केवल पर्याप्तयोगके स्थान और उनकी प्रकृतियोंको पर्याप्तसम्बन्धो योगसे गुणा करनेपर पर्याप्तयोगसम्बन्धो गुणस्थानोंके स्थान और प्रकृतियोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें चारस्थान और उनकी ३६ प्रकृतियोंको १३ योगोंसे गुणा करनेपर ५२ स्थान और ४६८ प्रकृतियां होती हैं तथा अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वगुणस्थान अपर्याप्तावस्थामें नहीं होता है अत: पिछले कूटकी बत्तोस प्रकृति और ४ स्थान हैं इनको पर्याप्तसम्बन्धी १० योगोंसे गुणा करनेपर ४० स्थान और ३२० प्रकृतियां होती हैं । इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें पर्याप्त-अपर्याप्तावस्थासम्बन्धी सर्व-स्थान ५२+४०=९२ एवं इन स्थानोंकी ४६८+३२०=७८८ प्रकृतियां जानना चाहिए । सासादनगुणस्थानमें स्थान चार और उनकी प्रकृतियां बत्तीस हैं इनमें बारह योग से गुणा करनेपर स्थान तो ४८ हुए तथा प्रकृतियां ३८४ जानना । यहां बारह योगसे ही गुणा करनेका यही कारण है कि वैक्रियकमिश्रकाययोगका कथन पृथक् करेंगे ।

मिश्रगुणस्थानमें चारस्थान व उनकी बत्तीस प्रकृतियां हैं, इनको १० योगसे गुणा करनेपर ४० स्थान तथा ३२० प्रकृतियां होतो हैं । असंयतगुणस्थानमें आठस्थान व उनकी ६० प्रकृतियोंको १० योगोंसे गुणा करनेपर स्थान ८० और प्रकृतियां ६०० होती हैं । यहां १० योगोंसे ही गुणा करनेका यह कारण है कि औदारिक-वैक्रियकमिश्र-काययोग व कार्मणकाययोगका पृथक् वर्णन करेंगें । देशसंयतगुणस्थानमें स्थान ८ और उनकी प्रकृतियां ५२ हैं इनको ९ योगोंसे गुणा करनेपर स्थान ७२ एवं प्रकृति ४६८ होती हैं । प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें स्थान ८ व प्रकृतियां ४४ हैं अत: इन स्थान व प्रकृतियोंमें ९ योगोंसे गुणा करनेपर प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके स्थान ७२-७२ तथा प्रकृतियां ३९६-३९६ हैं । यहां ९ योगोंसे ही गुणा करनेका कारण यह है कि आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोगका वर्णन पृथक् करेंगें । अपूर्वकरणगुणस्थानमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारस्थान और उनकी २० प्रकृतियां हैं इनको ९ योगोंसे गुणा करनेपर स्थान तो ३६ और प्रकृतियां १८० होती हैं[1]। इसप्रकार अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत योगोंकी अपेक्षा स्थान और प्रकृतियोंको गुणा करनेसे तथा सर्वस्थान और प्रकृतियोंका कुल जोड़करके (९२+४८+४०+८०+७२+७२+७२+३६=)५१२ स्थान एवं (७८८+३८४+३२०+६००+४६८+३९६+३९६+१८०=)३५३२ प्रकृतियां हुईं। इन स्थान (५१२) और प्रकृतियों (३५३२) को २४ भङ्गोंसे गुणा करनेपर ५१२×२४=१२,२८८ स्थान एवं ३५३२×२४=८४,७६८ प्रकृतियां होती हैं।

[2]अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें एकस्थान और दोप्रकृति हैं इनको ९ योगोंसे गुणा करनेपर ९ स्थान और १८ प्रकृति होती हैं, इनको १२ भंगोंसे गुणा करने पर १०८ स्थान और २१६ प्रकृतियां होती हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके अवेदभागमें एकस्थान और एकप्रकृति है इनको ९ योगोंसे गुणा करनेपर ९ स्थान और ९ प्रकृतियां होती हैं पुनः इनको ४ भङ्गोंसे गुणा करें तो ३६ स्थान एवं ३६ ही प्रकृतियां होती हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एकस्थान और एकप्रकृतिको ९ योगोंसे गुणा करें तो ९ स्थान तथा ९ प्रकृतियां, पुनः इनको १ भङ्गसे गुणा किया तो भी ९ स्थान और ९ प्रकृतियां ही होती हैं।

पूर्वमें जिन योगोंके लिए यह कहा था कि इनका वर्णन पृथक् करेंगे सो अब उन्हीं योगोंके विशेष कथनको बताते हैं—

सासणअयदपमत्ते, वेगुव्वियमिस्स तं च कम्मयियं।
ओरालमिस्स हारे, अडसोलडवग्ग अट्ठवीससयं॥४९६॥

अर्थ—सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें आठका वर्ग अर्थात् ६४ स्थान हैं[3]। असंयतगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें १६ का वर्ग अर्थात् २५६ स्थान हैं[4]। असंयतगुणस्थानके औदारिकमिश्रकाययोगमें आठका वर्ग अर्थात् ६४ स्थान हैं[5]। अप्रमत्तगुणस्थानके आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें १२८ स्थान हैं।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें ६४ स्थानोंमें ५१२ प्रकृति हैं सो ही कहते हैं—

१. प्रा० पं० सं० पृ० ४५६ गाथा ३४४ से पृ० ४६० गाथा ३५४ तक, किन्तु प्रमत्त गुणस्थानमें अन्तर है। २. प्रा० पं० सं० पृ० ४५५ गाथा ३४२। ३. प्रा० पं० सं० पृ० ४५३ गाथा ३३८। ४. प्रा० पं० सं० पृ० ४५३ गाथा ३३९। ५. प्रा० पं० सं० पृ० ४५४ गाथा ३४०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सासादनगुणस्थानसम्बन्धी जो चारकूट बतलाए थे उनमें तीनवेदोंमें से एकका उदय कहा था, किन्तु यहां नपुंसकवेदबिना शेष दो वेदोंमें से एकका उदय जानना। यहां ९ प्रकृतिरूप एक, ८ प्रकृतिरूप दो और ७ प्रकृतिरूप एक ऐसे चारस्थान और उनकी ३२ प्रकृतियां हैं इनको चारकषाय, दोवेद, हास्य-रति तथा अरति-शोकरूप दो युगलोंसे बने १६ भंगोंसे गुणा करनेपर ६४ स्थान और ५१२ प्रकृतियां होती हैं। असंयतगुणस्थानसम्बन्धी वैक्रियकमिश्र और कार्मणकाययोगके पूर्वमें कहे गए आठ कूटोंमें स्त्रीवेदबिना दो वेदोंमें से एक वेदका उदय यहां है। अतः इन कूटोंमें आठस्थान और ६० प्रकृति हैं इनको चारकषाय और स्त्रीवेदबिना दो वेद तथा हास्य-रति, अरति-शोक-रूप दो युगलोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो १६ भंग बने हैं उनसे गुणा करनेसे एवं २ योगोंसे गुणा करके २५६ स्थान और १९२० प्रकृतियां होती हैं। तथैव असंयतगुण-स्थानसम्बन्धी औदारिकमिश्रकाययोगमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नहीं होनेसे पूर्वोक्त आठ-कूटोंमें तीन-तीन वेद लिखे थे उनके स्थानमें एक पुरुषवेद ही जानना। इसप्रकार आठकूटोंके आठस्थान और ६० प्रकृतिको चारकषाय, एकवेद और पूर्वोक्त दो युगलसे गुणाकरनेपर जो आठभंग बने उनसे गुणाकरके पुनः एकयोगसे गुणा किया तो ६४ स्थान और ४८० प्रकृतियां हुईं। प्रमत्तसंयतगुणस्थानके आहारककाययोग और आहारकमिश्र-काययोगमें स्त्री-नपुंसकवेदरहित आठकूटोंके आठस्थान और ४४ प्रकृतियोंको आठभंगोंसे गुणाकरके पुनः आहारक-आहारकमिश्रकाययोगरूप दो योगोंसे गुणाकरनेपर १२८ स्थान और ७०४ प्रकृतियां होती हैं।

सासादन-असंयत व प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी उदयस्थान व प्रकृतियोंकी योगकी अपेक्षा संख्याको बतानेवाली संदृष्टि—

गुणस्थान	उदयस्थान	प्रकृतिसंख्या	योग संख्या	उदयस्थान × योग	प्रकृति × योग
सासादन	४	३२	१ वैक्रियकमिश्र	४×१=४	३२×१= ३२
असंयत	८	६०	२ वै.मिश्र. कार्मण	८×२=१६	६०×२=१२०
"	८	६०	१ औदारिकमिश्र	८×१=८	६०×१= ६०
प्रमत्त	८	४४	२ आहारकद्विक	८×२=१६	४४×२= ८८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सासादन असंयत व प्रमत्त इन तीनगुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी अपेक्षा भङ्गों-की संदृष्टि—

सासादनगुणस्थानमें	उदयस्थान ४	प्रत्येकके भङ्ग १६ अतः	४×१६= ६४
असंयत ,,	,, १६	,, ,, १६ ,,	१६×१६=२५६
,, ,,	,, ८	,, ,, ८ ,,	८×८= ६४
प्रमत्त ,,	,, १६	,, ,, ८ ,,	१६×८= १२८
			५१२

प्रकृतियोंकी अपेक्षा उपर्युक्त तीनगुणस्थानोंमें भङ्गोंकी संदृष्टि—

सासादनगुणस्थानमें	प्रकृतियां ३२	प्रत्येकके भङ्ग १६ अतः	३२×१६= ५१२
असंयत ,,	,, १२०	,, ,, १६ ,,	१२०×१६=१९२०
,, ,,	,, ६०	,, ,, ८ ,,	६०× ८= ४८०
प्रमत्त ,,	,, ८८	,, ,, ८ ,,	८८× ८= ७०४
			३६१६

आगे उक्त स्थानोंके प्रकृतिप्रमाणोंमें कम किए हुए वेदोंका ग्रन्थकर्त्ता स्वयं निषेध करते हैं—

णत्थि णउंसयवेदो, इत्थीवेदो णउंसइत्थिदुगे ।
पुव्वुत्तपुण्णजोगगचदुसुट्ठाणेसु जाणेज्जो ॥४९७॥

अर्थ—पूर्वमें कहे हुए अपर्याप्तयोगको प्राप्त चारस्थानोंमें क्रमसे नपुंसक-स्त्री-वेद नहीं है और शेष दो स्थानोंमें भी नपुंसक-स्त्रीवेद नहीं है ।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें नपुंसकवेद नहीं है, क्योंकि सासादनगुणस्थानवाला मरणकर नरकमें नहीं जाता है । असंयतगुण-स्थानके वैक्रियकमिश्र व कार्मणकाययोगमें स्त्रीवेद नहीं है, क्योंकि असंयतगुणस्थानवर्ती मरणकर स्त्रीवेदी नहीं होता है । असंयतगुणस्थानके ही औदारिकमिश्रकाययोगमें और प्रमत्तगुणस्थानके आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें स्त्री व नपुंसकवेद नहीं है, क्योंकि असंयतगुणस्थानवर्ती नपुंसक व स्त्रीवेदसहित तिर्यञ्च और मनुष्योंमें उत्पन्न नहीं होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तथा स्त्री व नपुंसकवेदवालेके आहारक-आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता है। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त जितने स्थान हैं उन सभीको जोड़-कर उनमें २४ भंगोंसे गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उसमें अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेद–अवेदभाग और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके १५३ स्थान तथा सासादन, असंयत और प्रमत्तवर्ती अपर्याप्तावस्थाके ५१२ स्थान मिलाकर सबका जोड़ करना चाहिए।

उपर्युक्त विधिसे योगोंकी अपेक्षा सर्वस्थानोंका जोड़ करनेपर जो संख्या प्राप्त हुई उसका प्रमाण कहते हैं—

तेवण्णणवसयाहियबारसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥४९८॥

अर्थ—इसप्रकार मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद योगोंकी अपेक्षा १२,९५३ जानना।

आगे प्रकृतियोंके भेदोंकी संख्या कहते हैं—

बिदिये बिगिपणगयदे, खदुगवणक्कं खअट्ठचउरो य ।
छट्ठे चउसुण्णसगं, पयडिवियप्पा अपुण्णम्हि ॥४९९॥

अर्थ—सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें २,१,५ अर्थात् 'अङ्कानां वामतो गतिः' इसके अनुसार ५१२, असंयतगुणस्थानके वैक्रियकमिश्र और कार्मणकाय-योगमें ०,२,९,१ अर्थात् १९२० च शब्दसे असंयतगुणस्थानके औदारिकमिश्रकाययोग-में शून्य-आठ-चार अर्थात् ४८० तथा प्रमत्तगुणस्थानके आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें चार, शून्य, सात अर्थात् ७०४ अङ्करूप प्रकृतियोंके भेद अपर्याप्तावस्थामें होते हैं। इन भेदोंको पूर्ववर्ती भेदोंमें मिलाना चाहिये।

अब सर्वभेदोंको मिलाकर जो संख्या प्राप्त हुई उसे बताते हैं—

पणदालछस्सयाहियअट्ठासीदीसहस्समुदयस्स ।
पयडीणं परिसंखा, जोगं पडि मोहणीयस्स ॥५००॥

अर्थ—इसप्रकार सर्वभेदोंको मिलानेसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंकी संख्या योगकी अपेक्षा ८८,६४५ होती है ऐसा जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर संयमके आश्रयसे स्थानादि कहते हैं—

तेरससयाणि सत्तरिसत्तेव य मेलिदे हवंतित्ति।
ठाणवियप्पे जाणसु, संजमलंबेण मोहस्स ॥५०१॥

अर्थ—संयमकी अपेक्षासे मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद १३७७ होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

विशेषार्थ—संयमके अवलम्बनकी अपेक्षासे मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद १३७७ हैं वे इसप्रकार घटित होते हैं—प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीनसंयम हैं इनको आठ-आठस्थानसे गुणा करनेपर २४-२४ स्थान होते हैं और उन स्थानोंकी ४४ प्रकृतियोंको तीनसंयमसे गुणा करनेपर १३२-१३२ प्रकृतियां होती हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें सामायिक, छेदोपस्थापना ये दो संयम हैं इनके ४-४ स्थान मिलकर आठस्थान हुए और २०-२० प्रकृति मिलकर ४० प्रकृतियां हैं इनको तथा प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके स्थान और प्रकृतियोंको २४ भंगोंसे गुणा करना एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें एकस्थान और २ प्रकृतिको २ संयमसे गुणा करनेपर दोस्थान और ४ प्रकृति होती हैं इनको पुनः १२ भंगोंसे गुणा करना तथा अवेदभागमें एकस्थान एकप्रकृतिको २ संयमसे गुणा करनेपर दोस्थान और दोप्रकृति होती हैं इनको चारभंगोंसे गुणा करना। सूक्ष्मसाम्परायमें एकस्थान, एकप्रकृति और एकही संयम है एवं भंग भी एकही है। यहां प्रमत्त-अप्रमत्त व अपूर्वकरण इन तीनगुणस्थानोंके ५६ स्थानोंको २४ से गुणा करनेपर १३४४ और अनिवृत्तिकरणके सवेद-अवेदभाग एवं सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके ३३ स्थान मिलानेसे १३७७ स्थान हो जाते हैं।[1]

---

१. प्रा. पं. सं० पृ० ४७८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थान	उदयविकल्प	संयम	गुणाकार	सर्वभंग
प्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अपूर्वकरण	४	२	२४	१९२
अनिवृत्तिकरण		२	१६	३२
सूक्ष्मसाम्पराय		१	१	१
				सर्वं उदयविकल्प १३७७

आगे मोहनीयकर्मकी उदय प्रकृतियोंके भेद कहते हैं—

[1]तेवण्णतिसदसहियं, सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
पयडिवियप्पे जाणसु, संजमलंबेण मोहस्स ।।५०२।।

अर्थ—संयमकी अपेक्षासे मोहनीयकी उदयप्रकृतियोंके भेद ७३५३ मात्र हैं ऐसा जानना चाहिए । (इनका विशेष विवरण निम्नलिखित सन्दृष्टिके अनुसार जानना)

संयमकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थान और उनमें पाई जानेवाली प्रकृतियोंकी संदृष्टि—

गुणस्थान	उदयस्थान × संयम × भंग	प्रकृति × संयम × भंग
प्रमत्त	८ × ३ = २४ × २४ = ५७६	४४ × ३ = १३२ × २४ = ३१६८
अप्रमत्त	८ × ३ = २४ × २४ = ५७६	४४ × ३ = १३२ × २४ = ३१६८
अपूर्वकरण	४ × २ = ८ × २४ = १९२	२० × २ = ४० × २४ = ९६०
अनिवृत्तिकरण सवेदभाग	१ × २ = २ × १२ = २४	२ × २ = ४ × १२ = ४८

१. देखो प्रा.-पं. सं० पृ० ४८० गाथा ३९० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवेदभाग	१×२=२×४=८	१×२=२×४=८
सूक्ष्मसाम्पराय	१×१=१×१=१	१×१=१×१=१
	कुलस्थान=१३७७	कुल प्रकृतियां=७३५२

अथानन्तर किस गुणस्थानमें कौनसी लेश्या होती है सो कहते हैं—

मिच्छ चउक्के छक्कं, देसतिये तिण्णि होंति सुहलेस्सा।
जोगित्ति सुक्कलेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५०३॥[1]

अर्थ—मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र और असंयतगुणस्थानमें छह लेश्या होती हैं, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें तीन शुभलेश्या हैं तथा अपूर्वकरणसे सयोगीगुणस्थानतक एक शुक्ललेश्या ही है एवं अयोगीगुणस्थानमें लेश्याका अभाव है।

उपर्युक्त गाथामें कथित लेश्याके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान और प्रकृतियोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

पंचसहस्सा बेसयसत्ताणउदी हवंति उदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु, लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०४॥[2]

अर्थ—लेश्याकी अपेक्षासे मोहनीयकर्मके स्थानोंके भेद ५,२९७ होते हैं ऐसा हे! शिष्य तू जान।

अट्ठतीससहस्सा, बेण्णिसया होंति सत्ततीसा य।
पयडीणं परिमाणं, लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०५॥[3]

अर्थ—लेश्याके आश्रयसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंका परिमाण ३८,२३७ होता है ऐसा जानना चाहिए।

---

१. देखो प्रा. पं. सं. पृ० ४७०–७१ गाथा ३७२-३७३। २. प्रा. पं. सं. पृ० ४७३ गाथा ३७९ भी देखो।
३. प्रा० पं० सं० पृ० ४७५ गा० ३८६ भी देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्याकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके उदयस्थान व प्रकृतियोंकी संदृष्टि—

गुणस्थान	उदयस्थानxलेश्याxभङ्ग	प्रकृतिxलेश्याxभङ्ग
मिथ्यात्व	८x६=४८x२४=११५२	६८x६=४०८x२४=९७९२
सासादन	४x६=२४x२४= ५७६	३२x६=१९२x२४=४६०८
मिश्र	४x६=२४x२४= ५७६	३२x६=१९२x२४=४६०८
असंयत	८x६=४८x२४=११५२	६०x६=३६०x२४=८६४०
देशसंयत	८x३=२४x२४= ५७६	५२x३=१५६x२४= ३७४४
प्रमत्त	८x३=२४x२४= ५७६	४४x३=१३२x२४= ३१६८
अप्रमत्त	८x३=२४x२४= ५७६	४४x३=१३२x२४= ३१६८
अपूर्वकरण	४x१=४x२४ = ९६	२०x१=२०x२४ = ४८०
अनिवृत्तिकरण सवदभाग	१x१=१x१२= १२	२x१ = २x१२ = २४
अवेदभाग	१x१=१x४= ४	१x१=१x४= ४
सूक्ष्मसाम्पराय	१x१=१x१= १	१x१=१x१= १
	कुलस्थान=५,२९७	कुल प्रकृतियां=३८,२३७

अब सम्यक्त्वके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान व प्रकृतियोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

अट्ठुत्तरीहिं सहिया तेरसयसया हवंति उदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०६॥

अर्थ—सम्यक्त्वगुणसे सहित मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद १३७८ हैं ऐसा जानो । नोट—प्रा० पं० सं० पृ० ४८१ गा० ३९१ में २५३० भेद कहे हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अट्ठेव सहस्साइं छव्वीसा तह य होंति णादव्वा।
पयडीणं परिमाणं सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०७॥

अर्थ—सम्यक्त्वगुणसे सहित मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंकी संख्या ८०२६ हैं। नोट—प्रा० पं० सं० पृ० ४८२ गा० ३९२ में १५४१८ संख्या बतलाई है।

सम्यक्त्वके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान और प्रकृतियोंकी संदृष्टि—

गुणस्थान	उदयस्थान×सम्यक्त्व×भङ्ग	प्रकृति×सम्यक्त्व×भङ्ग
असंयत वेदकसम्यक्त्व	४×१=४×२४= ९६	३२×१=३२×२४= ७६८
औपशमिक, क्षायिक	४×२=८×२४= १९२	२८×२=५६×२४=१३४४
देशसंयत वेदकसम्य.	४×१=४×२४= ९६	२८×१=२८×२४= ६७२
औपशमिक, क्षायिक	४×२=८×२४= १९२	२४×२=४८×२४=११५२
प्रमत्त वेदकसम्यक्त्व।	४×१=४×२४= ९६	२४×१=२४×२४=५७६
औपशमिक, क्षायिक	४×२=८×२४= १९२	२०×२=४०×२४=९६०
अप्रमत्त वेदकसम्य.	४×१=४×२४= ९६	२४×१=२४×२४= ५७६
औपशमिक, क्षायिक	४×२=८×२४= १९२	२०×२=४०×२४=९६०
अपूर्वकरण औपशमिक, क्षायिक	४×२=८×२४= १९२	२०×२=४०×२४=९६०
अनिवृत्ति. सवेदभाग	१×२=२×१२= २४	२×२=४×१२= ४८
,, अवेदभाग	१×२=२×४= ८	१×२=२×४= ८
सूक्ष्मसाम्पराय	१×२=२×१= २	१×२=२×१= २
	कुल स्थान=१३७८	कुल प्रकृतियां=८०२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानका कथन ११ गाथाओंसे करते हैं—

अट्ठ य सत्त य छक्क य, चदुतिदुगेगाधिमाणि वीसाणि ।
तेरस बारेयारं, पणादि एगूणयं सत्तं ॥५०८॥[1]

अर्थ—मोहनीयकर्मके २८-२७-२६-२४-२३-२२-२१-१३-१२-११ और ५ प्रकृतिरूप ११ तथा ५ प्रकृतिसे भी एक-एक प्रकृति कम अर्थात् ४-३-२ और १ प्रकृतिरूप ४ स्थान इसप्रकार सर्व १५ सत्त्वस्थान हैं ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी ३ और चारित्रमोहनीयकी २५ प्रकृति इन २८ प्रकृतिका प्रथम सत्त्वस्थान है । २८ प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वमोहनीयकी उद्वेलना होनेसे २७ प्रकृतिरूप सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेसे २६ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है । यह सत्त्वस्थान अनादिमिथ्यादृष्टिको भी होता है । २८ प्रकृतियोंमें से अनन्तानुबंधीचतुष्कका विसंयोजन होनेपर २४ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है इनमें मिथ्यात्वका क्षय होनेपर २३ प्रकृतिका, सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय हो जानेसे २२ प्रकृतिका, सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय होने पर २१ प्रकृतिका, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानरूप आठ मध्यमकषायका क्षय होनेपर १३ प्रकृतिका, स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें से एकका क्षय होनेपर १२ प्रकृतिका, स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें से अवशिष्ट एक वेदका क्षय होनेसे ११ प्रकृतिका तथा हास्यादि ६ नोकषायका क्षय होनेपर ५ प्रकृतिका, पुरुषवेदका क्षय होनेपर ४ प्रकृतिका, सञ्ज्वलनक्रोधका क्षय होनेपर ३ प्रकृतिका, सञ्ज्वलनमानका क्षय होनेपर २ प्रकृतिका, सज्वलनमायाका क्षय होनेपर बादरलोभका सत्त्व तथा बादरलोभके क्षयसे सूक्ष्मलोभका सत्त्व रहता है । बादर व सूक्ष्मलोभ एकलोभप्रकृतिके ही भेद हैं अतः इनके पृथक्-पृथक् स्थान नहीं गिने इसीकारण १५ ही सत्त्वस्थान जानना ।

अथानन्तर इन १५ स्थानोंका गुणस्थानोंकी अपेक्षा ३ गाथाओंमें कथन करते हैं—

तिण्णेगे एगेगं, दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए ।
तिण्णि य थूलेयारं, सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते[2] ॥५०९॥

पढमतियं च य पढमं, पढमं चउवीसयं च मिस्सम्हि ।
पढमं चउवीसचऊ, अविरददेसे पमत्तिदरे ॥५१०॥

---

१. प्रा० पं० स० पृ० ३२० गाथा ३३ । २. प्रा. पं. सं. पृ. ४८२ गाथा ३८३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अडचउरेक्काबीसं, उवसमसेढिम्हि खवगसेढिम्हि ।
एक्काबीसं सत्ता, अट्ठकसायाणियट्टित्ति ॥५११॥कुलयं॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८-२७-२६ प्रकृतिरूप तीन, सासादनगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक एक, मिश्रगुणस्थानमें २८-२४ प्रकृतिक दो, असंयत-देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप पांच-पांच, अपूर्वकरणगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २८-२४-२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिरूप ग्यारह, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें २८-२४-२१ व १ प्रकृतिरूप चार तथा उपशान्तकषायगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं।

गुणस्थानोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंकी संदृष्टि[1]—

गुणस्थान	सत्त्वस्थान संख्या	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	३	२८-२७ व २६ प्रकृतिरूप। २६ प्रकृतिकस्थान सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेसे बनता है और इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना चारों ही गतिके मिथ्यादृष्टिजीव करते हैं। यह २६ प्रकृतिरूपस्थान अनादिमिथ्यादृष्टिजीवके भी होता है।
सासादन	१	२८ प्रकृतिरूप।
मिश्र	२	२८-२४ ,,
असंयत	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप।
देशसंयत	५	,, ,, ,, ,, ,, ,,
प्रमत्त	५	,, ,, ,, ,, ,, ,,
अप्रमत्त	५	,, ,, ,, ,, ,, ,,
अपूर्वकरण उपशमश्रेणी	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।
अपूर्व. क्षपकश्रेणी	१	२१ प्रकृतिरूप।

१. प्रा० प० सं० पृ० ४८३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण उपशमश्रेणी	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।
अनि. क्षपकश्रेणी	९	२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिरूप।
सूक्ष्मसांपराय उपशमश्रेणी	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।
सूक्ष्म. क्षपकश्रेणी	१	१ सूक्ष्मलोभरूप।
उपशांतकषाय	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।

तेरस बारेयारं, तेरस बारं च तेरसं कमसो।
पुरिसित्थिसंढवेदोदयेण गदपणगबंधम्हि ॥५१२॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके जिस भागमें पुरुषवेद और चार सञ्ज्वलन-कषाय इन ५ प्रकृतियोंका बन्ध होता है उस भागमें पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़ने-वाले जीवके १३-१२ और ११ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान होते हैं। स्त्रीवेदके उदय-सहित श्रेणीपर आरोहण करनेवालेके १३ व १२ प्रकृतिरूप दोस्थान तथा नपुंसक-वेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके १३ प्रकृतिरूप स्थान है।

विशेषार्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होने तक चार संज्वलनकषाय और पुरुषवेदरूप पांचप्रकृतिक बन्धस्थान मोहनीय कर्मका होता है। जो पुरुषवेदकेसाथ क्षपकश्रेणी चढ़ा है उसके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रारम्भमें मोहनीयकर्मका १३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है, नपुंसकवेदका क्षय कर देनेपर मोहनीयकर्मका १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है तथा स्त्रीवेदका क्षय कर देनेपर मोहनीयकर्मका ११ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। सवेदभागके द्विचरमसमयमें छह नोकषायोंके साथ पुरुषवेदके सत्तामें स्थित पुराने कर्मोंका नाश कर दिया है उसके यद्यपि सवेदभागके चरमसमयमें पांचप्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है[1], किन्तु उसके उस पुरुषवेदका बन्ध नहीं होनेसे चारप्रकृतिक बन्धस्थान पाया जाता है, क्योंकि मोह-नीयकर्मकी दो प्रकृतिरूप (पुरुषवेद-एक संज्वलनकषाय) उदयस्थानमें पांचप्रकृतिक

१. जयधवल पु० २ पृ० २४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पुरुषवेद और चार सञ्ज्वलनकषाय) तथा चार प्रकृतिरूप (चार सञ्ज्वलनकषाय) दो बन्धस्थान एवं १३-१२ व ११ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान बतलाए गये हैं[1]। अतः मोहनीयकर्मके पांचप्रकृतिक बन्धस्थानमें पांचप्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं हैं।

जो स्त्रीवेदके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ा है उसके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रारंभमें मोहनीयकर्मका १३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान एवं नपुंसकवेदका क्षय हो जानेपर १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है[2]। जो नपुंसकवेदके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ा है उसके सवेदभागके द्विचरमसमयमें स्त्रीवेदका क्षय होकर चरमसमयमें १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है किन्तु उस समय पुरुषवेदका बन्ध नहीं होनेसे पांच प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं पाया जाता[3]। अतः नपुंसकवेदवालेके १३ प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है।

पुरिसोदयेण चडिदे, अंतिमखंडंतिमोत्ति पुरिसुदओ।
तप्पणिधिम्मिदराणं, अवगदवेदोदयं होदि ॥५१३॥

अर्थ—पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके अन्तिमखण्डके चरमसमयपर्यन्त पुरुषवेदके उदयकी प्रथमस्थितिके कालमें नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदके क्षपणाखण्ड होते हैं। पुरुषवेदकी क्षपणाके अन्तिमखण्डके चरमसमयपर्यन्त पुरुषवेदका उदय और बन्ध निरन्तर पाया जाता है, किन्तु उस समय नपुंसक या स्त्रीवेदके उदयका अभाव होता है।

तट्ठाणे एक्कारस, सत्ता तिण्होदयेण चडिदाणं।
सत्तण्हं समग छिदी, पुरिसे छण्हं च णवगमत्थित्ति॥५१४॥

अर्थ—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके क्षयके स्थानोंमें पुरुषवेद, ६ नोकषाय और चार सञ्ज्वलनकषाय इन ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। तीनों वेदोंमें से किसी भी वेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके ६ नोकषाय और पुरुषवेदके पुरातनद्रव्यकी व्युच्छित्ति एक ही कालमें होती है, किन्तु विशेष यह है कि पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवालेके पुरुषवेदके नूतन समयप्रबद्ध पाए जाते हैं इसलिये उसके ६ नोकषायकी ही सत्त्वव्युच्छित्ति होती है।

---

१. गो० क० गाथा ६६७। २. जयधवल पु० २ पृ० २४६। ३. गो० क० गाथा ४८४ का उत्तरार्ध।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवालेके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागके अन्तिमखण्डसे पूर्ववर्तीखण्डमें तथा स्त्रीवेद या नपुंसकवेदसे श्रेणीपर आरोहण करनेवाले जीवके अवेदभागमें स्त्री-नपुंसकवेदकी सत्ताका अभाव है अतः इन स्थानोंमें पुरुषवेद, ६ नोकषाय, संज्वलनकी चारकषाय इन ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है तथा तीनों वेदोंमें से किसी एक वेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेवालेके ६ नोकषाय और पुरुषवेदके पुरातन द्रव्यका इसप्रकार इन ७ प्रकृतिका युगपत् क्षय होता है, किन्तु पुरुषवेदसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके एकसमय कम दोआवलीप्रमाण नवकसमयप्रबद्ध और सञ्ज्वलनकी चारकषायसहित ५ प्रकृतिका सत्त्वस्थान है।

आगे क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें सत्त्वस्थानकी विशेषता दिखाते हैं—

इदि चदुबंधक्खवगे, तेरस बारस एगार चउसत्ता।
तिदुइगिबंधे तिदुइगि, णवगुच्छिट्ठाणमविवक्खा ॥५१५॥

अर्थ—पूर्वोक्तप्रकारसे क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके जिस भागमें चारप्रकृतियोंका बन्ध होता है उसमें १३-१२ और ११ एवं चारप्रकृतिरूप सत्त्वस्थान हैं। ३ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेको ३ प्रकृतिका, २ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेको २ प्रकृतिका एवं १ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेको १ प्रकृतिका सत्त्वस्थान पाया जाता है, किन्तु अन्तिम तीनबन्धस्थानोंमें नवकसमयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलीकी विवक्षा नहीं है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें जहां पुरुषवेदका बन्ध रुक गया है वहां मोहनीयकर्मकी चारप्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है और १३ प्रकृतियोंका सत्त्व भी है। स्त्रीवेदके उदयसे जो श्रेणी चढ़ता है उसके चारप्रकृतियोंके बन्धमें बारहप्रकृतियोंका सत्त्व भी है, किन्तु १३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है तथा जो नपुंसक व स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणीपर आरोहण करता है उसके अवेदभागमें चारप्रकृतिका बन्ध होते हुए ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है एवं ६ नोकषाय और पुरुषवेदका युगपत् क्षय होनेपर चारप्रकृतिरूप सत्त्वस्थान भी है। पुरुषवेदसहित श्रेणी चढ़नेवालेको चारप्रकृतिके बन्धमें ५ व ४ प्रकृतिका सत्त्वस्थान है तथा पुरुषवेदकी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जानेपर ४ प्रकृतिका सत्त्व है। तीनों वेदसहित श्रेणीपर आरोहण करनेवालेको सञ्ज्वलनक्रोधकी उदय-बन्ध और सत्त्वव्युच्छित्ति हो जानेपर ३ प्रकृतिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध एवं इन्हीं तीनका सत्त्व है। सञ्ज्वलनमानकी बन्ध-उदय-सत्त्वव्युच्छित्ति होनेसे २ प्रकृतिका बन्ध और सत्त्व भी २ प्रकृतिका रहता है। सञ्ज्वलनमायाकी बन्ध-उदय-सत्त्व व्युच्छित्ति हो जानेपर एकप्रकृतिका बन्ध एवं एकप्रकृतिका ही सत्त्व पाया जाता है, किन्तु विशेषता यह है कि ३-२ और १ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंमें क्रोध-मान-मायाके नवकसमयप्रबद्ध व उच्छिष्टावलीकी विवक्षा नही है।

मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थान किसप्रकार पाए जाते हैं उसे आगे दो गाथाओंमें कहते हैं—

[1]तिण्णेव दु बावीसे, इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा।
सत्तरतेरेणवबन्धगेसु पंचेव ठाणाणि ॥५१६॥
पंचविधचदुविधेसु य, छ सत्त सेसेसु जाण चत्तारि।
उच्छिट्ठावलिणवकं, अविवेकिखय सत्तठाणाणि ॥५१७॥जुम्मं॥

अर्थ—मोहनीयकर्मके २२ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें कर्मांश अर्थात् २८,२७, और २६ प्रकृतिके तीन सत्त्वस्थान, २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें २८ प्रकृतिक एक सत्त्व-स्थान, १७-१३ व ९ प्रकृतिके बन्धस्थानमें २८-२४-२३-२२ और २१ प्रकृतिक पांच-पांच सत्त्वस्थान, ५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८-२४-२१-१३-१२ और ११ प्रकृतिके छह सत्त्वस्थान, ४ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८-२४-२१-१३-१२-११ और ४ प्रकृतिरूप सात सत्त्वस्थान हैं। शेष ३-२ और एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८-२४-२१ तथा क्रमशः ३-२-१ प्रकृतिरूप एक-एक इसप्रकार चार-चार सत्त्वस्थान हैं। इन सत्त्वस्थानोंमें उच्छि-ष्टावली और नवकसमयप्रबद्धकी विवक्षा नहीं है, किन्तु गाथा ४८४ के अनुसार जिनके मतमें सवेदभागके द्विचरमसमयमें पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है उनके मतमें ४ प्रकृतिक बन्धमें पांच प्रकृतिक सत्त्व भी है।

विशेषार्थ—ये गाथाएं देशामर्सक हैं। यद्यपि इन गाथाओंसे मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थानोंका कथन किया गया है तथापि इस कथनसे बन्धस्थानोंमें उदय-स्थानोंकी भी सूचना मिलती है। मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें उदयस्थान इसप्रकार हैं—

---

१. देखो प्रा. पं. सं. पृ० ३३०-३३२ गा० ४७-५०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बावीसादिसु पंचसु दसादि-उदया हवंति पंचेव ।
सेसे दु दोण्णि एगं एगेगमदो परं णेयं ।।३७।।प्रा० पं० सं० पृ० ३२२।।

अर्थ—मोहनीयकर्मके २२ प्रकृतिक बन्धस्थानमें १०-९-८ व ७ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। २१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ९-८ व ७ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इसीप्रकार १७ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चार उदयस्थान, १३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ८-७-६ व ५ प्रकृतिक चार उदयस्थान, ९ प्रकृतिक बंधस्थान-में ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। पांचप्रकृतिक बन्धस्थानमें पांच व चार प्रकृतिक दो उदयस्थान, चारप्रकृतिक बन्धस्थानमें भी ५ व ४ प्रकृतिक दो उदय-स्थान होते हैं। ३-२ व १ प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें क्रमशः ३-२ व १ प्रकृतिक एक-एक उदयस्थान होता है।

बन्धस्थानोंमें उदय व सत्त्वस्थान सम्बन्धी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

गुणस्थान	बन्धस्थान		उदयस्थान		सत्त्वस्थान		
मिथ्यात्व	२२ प्रकृतिक	एक	१०-९-८ व ७प्रकृति.	चार	२८-२७ व २७ प्रकृतिक		३
सासादन	२१ ,,	१	९-८ व ७ ,,	३	२८ ,,		१
मिश्र	१७ ,,	१	९-८ व ७ ,,	३	२८ व २४ ,,		२
असंयत	१७ ,,	१	९-८-७ व ६ ,,	४	२८-२४-२३-२२ व २१ ,,		५
देशसंयत	१३ ,,	१	८-७-६ व ५ ,,	४	२८-२४-२३-२२ व २१ ,,		५
प्रमत्त	९ ,,	१	७-६-५ व ४ ,,	४	२८-२४-२३-२२ व २१ ,,		५
अप्रमत्त	९ ,,	१	७-६-५ व ४ ,,	४	२८-२४-२३-२२ व २१ ,,		५
अपूर्वकरण	९ ,,	१	६-५ व ४ ,,	३	उपशमश्रेणी २८-२४ व २१	क्षपकश्रेणी २१ प्रकृतिक	३व१
अनिवृत्तिकरण	५ ,,	१	५ व ४ ,,	२	उपशमश्रेणी २८-२४ व २१	क्षपकश्रेणी २१ १३ १२ ११व५	३व५
,,	४ ,,	१	५ व ४ ,,	२	२८-२४ व २१	१३-१२-११-५व४	३व५
,,	३ ,,	१	३ ,,	१	२८-२४ व २१	३ प्रकृतिक	३व१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण	२ प्रकृतिक	१	२ प्रकृतिक	१	२८-२४ व २१	२ प्रकृतिक	३व१
,,	१ ,,	१	१ ,,	१	२८-२४ व २१	१ ,,	३व१
सूक्ष्मसाम्पराय	०	०	१ ,,	१	२८-२४ व २१	१ ,,	३व१
उपशान्तकषाय	०	०	० ,,	०	२८-२४ व २१	० ,,	३
क्षीणकषाय	०	०	० ,,	०	०	० ,,	०

[1]दसणवपणरसाइं बंधोदयसत्तपयडिठाणाणि ।
भणिदाणि मोहणिज्जे, एत्तो णामं परं वोच्छं ॥५१८॥

अर्थ—इसप्रकार मोहनीयकर्मके १० बन्धस्थान, ९ उदयस्थान और १५ सत्त्वस्थानोंका कथन किया । आगे नामकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानोंको कहेंगे ।

अब नामकर्मके स्थानोंके आधारभूत ४१ जीवपदोंका दो गाथाओंमें कथन करते हैं—

णिरया पुण्णा पणहं, बादरसुहुमा तहेव पत्तेया ।
वियलाऽसण्णी सण्णी, मणुवा पुण्णा अपुण्णा य ॥५१९॥

सामण्णतित्थकेवलि, उहयसमुग्घादगा य आहारा ।
देवावि य पज्जत्ता, इदि जीवपदा हु इगिदाला ॥५२०॥जुम्मं॥

अर्थ—सर्व नारकीजीव पर्याप्त ही हैं । पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और साधारणवनस्पतिकाय ये पांचों हो बादर और सूक्ष्म भी हैं अतः ये १०, प्रत्येकवनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञी-सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य ये १७ पर्याप्त और अपर्याप्त भी होते हैं अतः इनके ३४ भेद तथा सामान्यकेवली, तीर्थंकरकेवली एवं समुद्घात करनेवाले सामान्य और तीर्थङ्करकेवली, आहारकशरीरी, देव ये ६ पर्याप्त ही होते हैं । इसप्रकार १+३४+६=४१ भेद जीवोंके हैं इसीकारण इनको 'जीवपद' कहते हैं । ये नामकर्मके बन्धस्थानोंकी विवक्षासे होते हैं अतः इन्हें कर्मपद भी कहते हैं ।

---

१. प्रा०पं० स० पृ० ३३५ गा० ५१ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर नामकर्मके बन्धस्थानोंका गुणस्थानोंमें कथन करते हैं —

तेवीसं पणवीसं, छव्वीसं अट्ठवीसमुगतीसं ।
तीसेक्कतीसमेवं, एक्को बंधो दुसेढिम्हि ॥५२१॥

अर्थ—नामकर्मके २३-२५-२६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप सात बन्धस्थान अपूर्वकरणके छठेभाग पर्यन्त यथासम्भव पाए जाते हैं और १ प्रकृतिक अष्टम बन्धस्थान उपशम-क्षपकश्रेणियोंमें अपूर्वकरणगुणस्थानके ही सप्तमभागके प्रथमसमयसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके चरमसमय पर्यन्त बंधता है ।

नामकर्मसम्बन्धी बन्धस्थानोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	नामकर्मकी बन्धस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतियोंकी संख्या
मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
सासादन	३	२८-२९-३० प्रकृतिक
मिश्र	२	२८ व २९ ,,
असंयत	३	२८-२९ व ३० ,,
देशसंयत	२	२८ व २९ ,,
प्रमत्त	२	२८ व २९ ,,
अप्रमत्त	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
अपूर्वकरण	५	२८-२९-३० व ३१ छठेभागतक । ७वें भागमें १ प्र० ।
अनिवृत्तिकरण	१	१ ।
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१ ।

अथ नामकर्मके पूर्वोक्त बन्धस्थान किस-किस कर्मपदसहित बंधते हैं इस बातको दोगाथाओंमें कहते हैं—

ठाणमपुण्णेण जुदं, पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव ।
तावदुगाणणदेणणदेणमरणिरयाणं ॥५२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिरयेण विणा तिण्हं,एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा ।
बंधंति विणा गइणा, जीवा तज्जोगपरिणामा ॥५२३॥जुम्मं॥

अर्थ—पूर्वगाथामें कहे हुए नामकर्मके आठ बन्धस्थानोंमें क्रमसे २३ प्रकृतिरूप स्थान अपर्याप्तसहित, २५ प्रकृतिकस्थान पर्याप्त और 'च' शब्दसे अपर्याप्तसहित भी बंधता है। २६ प्रकृतिका स्थान पर्याप्त तथा आतप-उद्योतमें से किसी एक प्रकृतिसहित, २८ प्रकृतिरूप स्थान देव अथवा नरकगतिसहित, २९ और ३० प्रकृतिकस्थान तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देवगतिसहित, ३१ प्रकृतिका स्थान देवगतिसहित और एक प्रकृतिरूप स्थान किसी भी गतिके साथ नहीं बंधता अर्थात् इस स्थानके साथ कोई भी गति नहीं बंधती है। इसप्रकार इन स्थानोंके योग्य परिणामवाले जीव इन स्थानोंको बांधते हैं।

आतप और उद्योत ये दो प्रशस्तप्रकृतियां पूर्वोक्त ४१ जीवपदोंमें किस जीवपदके साथ बन्धको प्राप्त होती हैं यह कहते हैं—

भूवादरपज्जत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्जोवं ।
तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाणं एयदरगेण ॥५२४॥

अर्थ—आतपप्रकृति बादरपर्याप्तपृथ्वीकायसहित ही बन्ध योग्य है और उद्योतप्रकृति तेज-वायु और साधारणवनस्पति तथा अन्य सभी सूक्ष्मजीवोंके बिना बादरपर्याप्ततिर्यञ्चसम्बन्धी पुण्यप्रकृतियोंमें से किसी एक प्रकृतिके साथ बन्धयोग्य कही है।

तीर्थङ्कर और आहारकद्विकसम्बन्धी कथन करते हैं—

णरगइणामरगइणा, तित्थं देवेण हारमुभयं च ।
संजदबंधट्ठाणं, इदराहि गईहि णत्थित्ति ॥५२५॥

अर्थ—तीर्थङ्करप्रकृतिको असंयतदेव या नारकी मनुष्यगतिसहित ही बांधते हैं और असंयतादि पांचगुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगतिसहित ही बांधते हैं। अप्रमत्त और अपूर्वकरणके छठेभागपर्यंन्त आहारकद्विक अथवा तीर्थङ्करसहित आहारकद्विकका बन्ध संयतमनुष्य ही करते हैं अन्यगतिसहित नहीं बांधते हैं।

अब नामकर्मकी ध्रुवप्रकृतियोंको कहते हैं—

णामस्स णवधुवाणि य, सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं ।
गदिजादिदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा ॥५२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तसबंधेण हि संहदिअंगोवंगाणमेक्कदरगं तु।
तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु ॥५२७॥

पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमदो दु परघादो।
जोगट्ठाणे तावं, उज्जोवं तित्थमाहारं ॥५२८॥त्रिसेसयं॥

अर्थ—तैजस-कार्मण-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण ये ९ नामकर्मकी ध्रुवप्रकृतियां, स्वरबिना त्रसादि ९ युगलों (त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति) में से एक-एकप्रकृति अतः ९ ये प्रकृतियां तथा चारगति, ५ जाति, तैजस-कार्मणबिना ३ शरीर, ६ संस्थान और चारआनुपूर्वीमें से एक-एक प्रकृतिका बन्ध होनेसे ५ प्रकृति ये इसप्रकार सर्व मिलकर (९+९+५ =) २३ प्रकृतियां सामान्यसे सभी जीवोंके बंधती हैं ।।५२६।।

मनुष्य या तिर्यञ्चसहित त्रसप्रकृतिका बन्ध होनेपर ६ संहनन और आङ्गोपाङ्गमें से एक-एकप्रकृतिका बन्ध होता है । त्रस-पर्याप्तसहित बंधकके सुस्वर-दुःस्वर तथा प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगतिमें से एक-एक प्रकृतिका बन्ध होता है ।।५२७।।

पर्याप्तसहित सभी बन्धकोंके उच्छ्वास और परघात बन्धयोग्य है एवं आतप-उद्योत, तीर्थंकर और आहारकद्विक ये भी प्रकृतियां बन्धयोग्य हैं जिसका कि कथन गाथा ५२५ में कर दिया गया है ।।५२८।।

तित्थेणाहारदुगं, एक्कसराहेण बंधमेदीदि।
पक्खित्ते ठाणाणं, पयडीण होदि परिसंखा ॥५२९॥

अर्थ—तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका युगपत् भी बन्ध होता है । अतः पूर्वोक्त २३ प्रकृतियोंमें यथासम्भव प्रकृतियोंके मिलानेसे स्थान और प्रकृतियोंकी संख्या हो जाती है ।

इसी बातको दो गाथाओं द्वारा स्पष्ट करते हैं—

एयक्खअपज्जत्तं, इगिपज्जत्तबितिचपणापज्जत्तं।
एइंदियपज्जत्तं, सुरणिरयगईहिं संजुत्तं ॥५३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पज्जत्तगवितिचपमणुसदेवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो ।
सुरगदिजुदमगदिजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३१॥जुम्मं॥

अर्थ—एकेन्द्रियअपर्याप्तसहित २३ प्रकृतिका एक बन्धस्थान है, एकेन्द्रिय पर्याप्त-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तथा मनुष्यअपर्याप्तसहित २५ प्रकृतिके ६ स्थान हैं, एकेन्द्रियपर्याप्त आतप अथवा उद्योतसहित २६ प्रकृतिक २ स्थान, देव या नरकगतिसहित २८ प्रकृतिरूप २ स्थान, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च और मनुष्यपर्याप्तसहित २९ प्रकृतिका बन्ध होता है तथा तीर्थङ्कर सहित देवगतिसंयुक्त भी २९ प्रकृतिक स्थान है, इसप्रकार ये ६ स्थान २९ प्रकृतिसम्बन्धी होते हैं। उद्योतसहित द्वी-त्री-चतु-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चसंयुक्त ४ स्थान और तीर्थङ्करसहित मनुष्य-गतिसंयुक्त एवं आहारकद्विकसहित देवगतिसंयुक्त ये २ स्थान मिलकर ६ स्थाव ३० प्रकृतिसम्बन्धी हैं, आहारकद्विक-तीर्थङ्करसहित देवगतिसंयुक्त ३१ प्रकृतिका एक ही स्थान है और अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त यश-स्कीर्तिसहित १ प्रकृतिक एक ही स्थान है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामकर्मके बन्धस्थानोंकी सन्दृष्टि—

२३ प्रकृतिक १ स्थान
१. एकेन्द्रिय अपर्याप्तयुत

२५ प्रकृतिक ६ स्थान
१. एकेन्द्रियपर्याप्त संयुक्त
२. द्वीन्द्रियअपर्याप्त संयुक्त
३. त्रीन्द्रियअपर्याप्त संयुक्त
४. चतुरिंद्रियअपर्याप्त ,,
५. पंचेन्द्रियअपर्याप्त ,,
६. मनुष्यअपर्याप्त ,,

२६ प्रकृतिक २ स्थान
१. एकेन्द्रियपर्याप्तआतपयुत
२. ,, ,, उद्योत ,,

२८ प्रकृतिक २ स्थान
१. देवगति संयुक्त
२. नरकगति संयुक्त

उनतीस प्रकृतिक ६ स्थान
१. द्वीन्द्रियपर्याप्त संयुक्त
२. त्रीन्द्रियपर्याप्त संयुक्त
३. चतुरिन्द्रियपर्याप्त ,,
४. पञ्चेन्द्रियपर्याप्त ,,
५. मनुष्यपर्याप्त संयुक्त
६. देव, तीर्थङ्कर ,,

३० प्रकृतिक ६ स्थान
१. द्वीन्द्रियपर्याप्त उद्योतयुत
२. त्रीन्द्रियपर्याप्त उद्योतयुत
३. चतुरिन्द्रियपर्याप्त ,,
४. पञ्चेन्द्रियपर्याप्त ,,
५. मनुष्य, तीर्थङ्करयुत
६. देव, आहारकयुत

इकतीस प्रकृतिक एकस्थान
१. देव, आहारक, तीर्थंकरयुत

एकप्रकृतिकस्थान
१. यशस्कीर्तियुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर नामकर्मके बन्धस्थानोंके भङ्ग कहते हैं—

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे ।
अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा हु ॥५३२॥

अर्थ—६ संस्थान और ६ संहननमें से तथा प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगतियुगल, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिके ६ युगल इन सभीमेंसे एक-एक प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है अतः इन सभीका (६×६×२×२×२×२×२×२×२) परस्परमें गुणा करनेसे ४६०८ भङ्ग होते हैं ।

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु ।
एक्कदराभावादो, तत्थेक्को चेव भंगो दु ॥५३३॥

अर्थ—बन्धरूप उन प्रशस्त और अप्रशस्तप्रकृतियोंमें नरकगतिसहित हुण्डक-संस्थान, अप्रशस्तविहायोगतिआदि एक-एक अप्रशस्तप्रकृतिका बन्ध है तथा त्रस-स्थावर लब्ध्यपर्याप्तकोंके अपर्याप्तसहित दुर्भग, अनादेयआदि अप्रशस्तप्रकृतियोंका बन्ध है, क्योंकि इनमें बन्धयोग्य प्रकृतिकी प्रतिपक्षीप्रकृतिका बन्ध नहीं है । अतः जो ४१ पद कहे थे उनमें नरकगतिसहित २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें एवं एकेन्द्रियके लब्ध्यपर्याप्तसम्बन्धी ११ पदोंके २३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें और त्रस लब्ध्यपर्याप्तकोंमें ६ पदोंके २५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें एक-एक ही भङ्ग है ।

तत्थासत्थ एदि हु, साहारणथूलसव्वसुहुमाणं ।
पज्जत्तेण य थिरसुहजुम्मेक्कदरं तु चदुभंगा ॥५३४॥

अर्थ—एकेन्द्रियके ११ भेदोंमें बादरपर्याप्तसाधारणवनस्पती और सभी पर्याप्त-सूक्ष्मोंमें पर्याप्तसहित २५ प्रकृतिक स्थानोंमें एक-एक अप्रशस्तप्रकृतिका ही बन्ध होता है । विशेष इतना है कि स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ इन दोनों युगलोंमें से किसी एक प्रशस्त अथवा अप्रशस्तप्रकृतिका बन्ध होता है अतः यहां चार भङ्ग हैं ।

पुढवीआऊतेऊवाऊपत्तेयवियलसण्णीणं ।
सत्थेण असत्थं थिरसुहजसजुम्मट्ठभंगा हु ॥५३५॥

अर्थ—बादरपर्याप्तपृथ्वी-अप्-तेज-वायु-प्रत्येकवनस्पतिके २५-२६ प्रकृतिक बन्ध-स्थानोंमें तथा पर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिंद्रिय-असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके २९-३० प्रकृतिरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धस्थानोंमें दुर्भग-अनादेयका ही बन्ध है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीनयुगलोंमेंसे किसी एक-एक प्रशस्त अथवा अप्रशस्तप्रकृतिका बन्ध होनेके कारण आठ-आठ भङ्ग होते हैं।

अब सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च और पर्याप्तमनुष्यमें २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें गुणस्थानोंकी विवक्षासे भङ्गोंका कथन करते हैं—

सण्णिस्स मणुस्सस्स य, ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु।
छादालसयं अट्ठ य, बिदिये बत्तीससयभंगा ॥५३६॥[1]

अर्थ—सञ्ज्ञीपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चसहित २९ प्रकृतिक बन्धस्थान और उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें तथा पर्याप्तमनुष्यसहित २९ प्रकृतिक बंधस्थानमें छहसंस्थान, छहसंहनन एवं विहायोगति-स्थिर-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्तियुगलमें से किसी एक-एक प्रकृतिका बन्ध सम्भव है अतएव (६×६×२×२×२×२×२×२×२) इनको परस्परमें गुणा करनेसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ४६०८ भङ्ग होते हैं। इन्हीं बन्धस्थानोंके सासादनगुणस्थानमें हुण्डकसंस्थान और सृपाटिकासंहननका बन्ध न होनेसे ५ संस्थान, ५ संहननमें से एक-एक का ही बन्ध सम्भव है इसलिए (५×५×२×२×२×२×२×२×२) इनका परस्पर गुणाकरनेसे सासादनगुणस्थानमें ३२०० भङ्ग होते हैं।

सन्दृष्टि इसप्रकार है—

मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चमें	२९	प्रकृतिरूप	स्थानके	भङ्ग	४६०८
,, ,,	३०	,,	,,	,,	४६०८
,, मनुष्यमें	२९	,,	,,	,,	४६०८
सासादनवर्ती तिर्यञ्चमें	२९	प्रकृतिरूप	स्थानके	भङ्ग	३२००
,, ,,	३०	,,	,,	,,	३२००
,, मनुष्यमें	२९	,,	,,	,,	३२००

मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाणे।
सत्थं तु पमत्तंते, थिरसुहजसजुम्मगट्ठभंगा हु ॥५३७॥

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ३३८ गा० ९२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मिश्र तथा असंयतगुणस्थानवर्ती देव-नारकीके पर्याप्तमनुष्यगति सहित २९ प्रकृतिके स्थानमें तथा असंयतदेव-नारकीके मनुष्यगतिपर्याप्त व तीर्थङ्कर सहित ३० प्रकृतिक स्थानमें स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीन युगलोंमें से किसी एक-एक प्रकृतिका बन्ध होनेसे ८-८ भंग होते हैं।

विशेषार्थ—(अप्रशस्तसंस्थान और संहनन, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय व अप्रशस्तविहायोगतिकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें हो जानेसे मात्र प्रशस्तप्रकृतियोंका ही बन्ध होता है अतएव संस्थान, संहनन आदिकी अपेक्षासे भंग नहीं होते हैं।)

मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें देवगतिसंयुक्त बन्धस्थानोंमें प्रशस्तप्रकृतियोंका ही बन्ध होता है. किन्तु अस्थिर-अशुभ और अयशस्कीर्तिका बन्ध प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त होनेसे इन तीन युगलोंकी अपेक्षा (२×२×२) ८ भंग सम्भव हैं। अप्रमत्त और अपूर्वकरण-गुणस्थानमें देवगतिसहित २८-२९-३० और ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे एक-एक ही भग है।

जीवोंकी गति-आगतिका कथन ६ गाथाओंमें करते हैं—

णेरयियाणं गमणं, सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे।
चरमचऊतित्थूणे, तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥५३८॥

अर्थ—घर्मादि तीनपृथ्वीवाले नारकी मरणकरके गर्भजपर्याप्तसैनीपञ्चेन्द्रिय-कर्मभूमिजतिर्यञ्च और मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न होते हैं, अन्तिमचार नरकोंवाले जीव तीर्थङ्करत्वादिके बिना पूर्वोक्त मनुष्य अथवा तिर्यञ्चपर्यायमें उत्पन्न होते हैं, किन्तु विशेषता यह है कि सप्तमनरकवाले जीव पूर्वोक्त तिर्यञ्चपर्यायमें ही उत्पन्न होते हैं।

विशेषार्थ—नरकसे निकले हुए जीव चक्री, नारायण-प्रतिनारायण और बल-भद्र नहीं होते हैं। नरकसे निकले जीव ढाईद्वीपवर्ती मनुष्य व तिर्यञ्च तथा अन्तिम स्वयंभूरमणद्वीपके अर्धभाग एवं स्वयंभूरमणसमुद्रवर्ती तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं। प्रथम-द्वितीय-तृतीय नरकसे निकले हुए जीव तीर्थङ्कर हो सकते हैं। चतुर्थ नरकसे निकला जीव मोक्ष जा सकता है। पञ्चमनरकसे निकला हुआ सकलसंयम और षष्ठमनरकसे निकला देशसंयम धारण कर सकता है। सप्तमनरकसे निकला हुआ जीव सम्यक्त्व धारण नहीं कर सकता। यहांपर जो यह कहा गया है कि सप्तमनरकसे निकला जीव सम्यक्त्व धारण नहीं कर सकता है सो इसी कथनकी पुष्टि षट्खण्डागमसूत्र एवं तत्त्वार्थ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजवार्तिकमें भी की गई है[1], किन्तु यतिवृषभाचार्यका मत है कि सप्तमपृथ्वीसे निकले हुए किन्हीं बिरले ही जीवोंको सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है[2]।

तत्थतणऽविरदसम्मो, मिस्सो मणुवदुगमुच्चयं णियमा।
बंधदि गुणपडिवण्णा, मरंति मिच्छेव तत्थ भवा ॥५३९॥

अर्थ—सप्तमपृथ्वीमें उत्पन्न हुआ असंयतसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्ती-जीव अपने-अपने गुणस्थानोंमें मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका नियमसे बंध करता है। सासादन-मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती सप्तमपृथ्वीके नारकी जीव जिससमय मरण करते हैं उससे अन्तर्मुहूर्तपूर्व मिथ्यात्वको प्राप्त करते ही हैं।

तेउदुगं तेरिच्छे, सेसेगअपुण्णवियलगा य तहा।
तित्थूणणरेवि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥५४०॥

अर्थ—तिर्यञ्चगतिमें बादर अथवा सूक्ष्मपर्याप्त-अपर्याप्ततेजकाय-वायुकायजीव भोगभूमिजतिर्यञ्चबिना तिर्यञ्चगतिमें नियमसे उत्पन्न होते हैं। अवशेष बादरसूक्ष्म-पर्याप्त व अपर्याप्तपृथ्वी-जलकायिक तथा नित्यनिगोद-चतुर्गतिनिगोदपर्याप्त-अपर्याप्त एवं प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपर्याप्त-अपर्याप्त जीव मरणकर तिर्यञ्चोंमें तथा त्रेसठशलाका पुरुषोंके बिना मनुष्योंमें भी उत्पन्न होते हैं। इतना यहां विशेष है कि नित्य-इतरनिगोदके सूक्ष्मजीव यदि मरणकर मनुष्य हों तो सम्यक्त्व और देशसंयमको धारण कर सकते हैं[3], किन्तु सकलसंयम ग्रहण नहीं कर सकते हैं और असंज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च प्रथमनरक एवं भवनवासी—व्यंतरदेवोंमें उत्पन्न होते हैं अन्य देव तथा नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि असंज्ञीपञ्चेन्द्रियजीवकी उत्कृष्टआयुबन्धकी स्थिति पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण ही है। बादरनित्य व इतर-निगोदके जीव मरणकरके मनुष्योंमें भी उत्पन्न होकर उसी भवसे मोक्ष जा सकते हैं जैसे भरतचक्रवर्तीके पुत्र वर्द्धनकुमारादि।

सण्णीवि तहा सेसे, णिरये भोगेवि अच्चुदंतेवि।
मणुवा जंति चउग्गदि परियंतं सिद्धिठाणं च ॥५४१॥

---

१. षट्खण्डागम पु० ६ पृ० ४८४ सूत्र २०५, राज वा. अ. ३ सूत्र ६। २. तिलोयपण्णत्ति भाग १ अ० २ श्लोक २९२। ३. धवल पु० १० पृ० २७६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—संज्ञी तिर्यञ्च भी सभी नारकियोंमें, सर्वभोगभूमिजोंमें, एवं सोलहवें-स्वर्गपर्यन्त सर्वदेवोंमें जन्म लेते हैं। कर्मभूमिज पर्याप्तमनुष्य पूर्वोक्त सभी पर्यायोंमें और कल्पातीत अहमिन्द्रोंमें उत्पन्न होते हैं एवं सिद्धस्थानको भी प्राप्त करते हैं। अपर्याप्त-मनुष्य कर्मभूमिजतिर्यञ्चोंमें और तीर्थङ्करादिबिना सामान्यमनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। तीस भोगभूमियोंके तिर्यञ्च व मनुष्य तथा असंख्यातद्वीप व समुद्रसम्बन्धी जघन्यभोग-भूमिजतिर्यञ्चसम्यग्दृष्टि तो सौधर्म-ईशानस्वर्गमें उत्पन्न होते हैं और मिथ्यादृष्टि-सासादनगुणस्थानवर्ती एवं कुभोगभूमिजमनुष्य भवनत्रिकदेवोंमें जन्म लेते हैं।

आहारगा दु देवे, देवाणं सण्णिकम्मतिरियणरे।
पत्तेयपुढविआऊबादरपज्जत्तगे गमणं ॥५४२॥
भवणतियाणं एवं, तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती।
ईसाणंताणेगे, सदरदुगंताण सण्णीसु ॥५४३॥जुम्मं॥

अर्थ—आहारकशरीरसहित प्रमत्तगुणस्थानवाले जीव मरणकरके वैमानिक-देवोंमें ही उत्पन्न होते हैं तथा सर्वार्थसिद्धि विमानके देव मरणकरके पन्द्रह कर्मभूमिके चरमशरीरी मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं, अन्यत्र नहीं, किन्तु सहस्रारस्वर्गपर्यन्तके देव कर्मभूमिके मनुष्योंमें लवणोदधि, कालोदधि, स्वयंभूरमणद्वीपके उत्तरार्ध, स्वयंभूरमण-समुद्रवर्ती सञ्ज्ञीपर्याप्तजलचर, स्थलचर, नभचरतिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं। ईशानस्वर्ग-पर्यन्तके देव पूर्वोक्त मनुष्य व तिर्यञ्चोंमें तथा बादरपर्याप्तपृथ्वी-जलकाय, प्रत्येकवन-स्पतीरूप एकेन्द्रियमें भी उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिकदेवोंका कथन भी सौधर्मईशानवत् ही जानना। विशेष इतना है कि भवनत्रिकदेव मनुष्योंमें तीर्थंकरादिक त्रेसठशलाका पुरुषोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। इसप्रकार चारों गतिके जीवोंका संक्षेपसे गति-आगतिका वर्णन किया। विशेषज्ञानके लिये धवल पु० ६ में गति-आगतिचूलिका देखनी चाहिए।

आगे चतुर्दश मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थान आठ गाथाओंसे कहते हैं—

णामस्स बंधठाणा, णिरयादिसु णवयवीस तीसमदो।
आदिमछक्कं सव्वं, पणछण्णवीस तीसं च ॥५४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नामकर्मके बन्धस्थान नरकगतिमें तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसंयुक्त २९-३० प्रकृतिके दो हैं। तिर्यञ्चगतिमें आदिके ६ बन्धस्थान, मनुष्यगतिमें सर्वस्थान तथा देवगतिमें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चार बन्धस्थान जानना चाहिए[1]।

विशेषार्थ—नरकगतिमें नामकर्मके २९-३० प्रकृतिक दो बन्धस्थान हैं। उनमें पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगति तथा मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका स्थान षष्ठम मघवीपृथ्वीतकके जीव बांधते हैं। पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगतिसहित २९ प्रकृतिके अथवा उद्योतयुक्त ३० प्रकृतिक स्थानको सप्तम माघवीपृथ्वीतकके जीव बांधते हैं। पर्याप्तमनुष्यगति व तीर्थंकरसंयुक्त ३० प्रकृतिके स्थानका बन्ध तृतीय मेघापृथ्वीपर्यन्तके ही जीव बांधते हैं, किन्तु मनुष्यगतियुक्त २९ प्रकृतिका बन्ध छठे नरकतकके नारकी जीव करते हैं तथा मार्गणाओंमें गुणस्थानकी विवक्षासे उन स्थानोंका लगाना सुगम है इसलिये गति-इन्द्रिय-पर्याप्तादिके विशेष स्थान कहते हैं—मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानवर्ती नारकीजीव तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक स्थानको ही बांधते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चद्विक और उद्योतकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें हो जाती है तथा असंयतजीव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थान एवं प्रथम तीननरकोंमें पर्याप्त मनुष्यगति व तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानको बांधते हैं। तिर्यञ्चगतिमें आदिके जो ६ स्थान हैं उनमें स्थावरबादरअपर्याप्तएकेन्द्रिय या स्थावरसूक्ष्मअपर्याप्तएकेन्द्रियसहित २३ प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं तथा एकेन्द्रियबादरपर्याप्तसहित या एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तसहित अथवा त्रसअपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चगतिसहित अथवा त्रसअपर्याप्त मनुष्यगतिसहित २५ प्रकृतिके स्थानको बांधते हैं। बादरपृथ्वीकायएकेन्द्रियजीव आतप और तिर्यञ्चगतिसहित अथवा तेज-वायुकाय तथा साधारणबिना अन्य एकेन्द्रियबादरअपर्याप्तजीव उद्योत व तिर्यञ्चगतिसहित २६ प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं। त्रसपर्याप्तपंचेन्द्रियजीव नरकगतिसंयुक्त या देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करते हैं। त्रसपर्याप्त-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजीव तिर्यञ्चगतिसहित अथवा मनुष्यगति-

---

१. "णिरए तीसुगुतीसं बंधट्ठाणाणि।" प्रा. पं. सं. पृ. ४९३ गाथा ४१९। "तिरियगई तेवीसं पणवीस छब्बीसमट्ठवीसा य तीसूण तीस बंधा।" प्रा० पं० सं० पृ० ४९४ गाथा ४२१। मनुष्यगतिमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक आठ होते हैं। देवगतिमें २५, २६, २९, ३० प्रकृतिक ये चार बन्धस्थान होते हैं। प्रा० पं० सं० पृ० ४९५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। त्रसबादरपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय अथवा पञ्चेन्द्रियजीव तिर्यञ्चगति व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं इस-प्रकार ये ६ स्थान हैं। तथैव लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चजीव २८ प्रकृतिक स्थानके बिना पांच ही स्थानोंका बन्ध करते हैं, मनुष्यगतिमें सर्वस्थानोंको बांधते हैं एवं देवगतिमें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चार स्थानोंको बांधते हैं। देव मरकर पर्याप्तएकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकता है इसलिये उसके २५ प्रकृतिक बन्धस्थान तथा आतप या उद्योतसहित २६ प्रकृतिक एवं संज्ञीपर्याप्ततिर्यंच-मनुष्यसंयुक्त २९-३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध संभव है।

अथानन्तर इन्द्रियादि मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थान कहते हैं—

पंचक्खतसे सव्वं, अडवीसूणादि छक्कयं सेसे।
चउमणवयणोराले, सड देवं वा विगुव्वदुगे ॥५४५॥

अर्थ—इन्द्रियमार्गणामें पञ्चेन्द्रियके और कायमार्गणामें त्रसकायके सर्व बन्ध-स्थान हैं। अवशेष एकेन्द्रियादिक चारमें और पृथ्वीकायादि पांचमें आदिके छह स्थानों-में से २८ प्रकृतिकस्थानकेबिना पांच-पांच बन्धस्थान जानना। चारमनोयोग-चारवचन-योग एवं औदारिकाययोगमें सर्व बन्धस्थान हैं और वैक्रियक-वैक्रियकमिश्रकाययोगमें देवगतिवत् चार स्थान हैं।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियजीवोंमें २३, २५, २६, २९, ३० प्रकृतिक नामकर्मके ये चार बन्धस्थान होते हैं। स्थावरकायमें भी इसीप्रकार ५ बन्धस्थान हैं। पंचेन्द्रिय और त्रसकायमें २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ व १ ये आठ बन्धस्थान हैं। इसीप्रकार चार मनोयोगियों व चार वचनयोगियोंमें उक्त ८ बन्धस्थान जानने। वैक्रियिक व वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें देवगतिके समान २५, २६, २९ व ३० प्रकृतिक चार बन्धस्थान होते हैं। (प्रा० पं० सं० पृ० ४९६-५००)

अडवीसदु हारदुगे, सेसदुजोगेसु छक्कमादिल्लं।
वेदकसाये सव्वं, पढमिल्लं छक्कमण्णाणे ॥५४६॥

अर्थ—आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें २८-२९ प्रकृतिक दोस्थान हैं[1]। शेष कार्मण और औदारिकमिश्रकाययोग इन दो योगोंमें आदिके ६ स्थान हैं[2]। पुरुषादि

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५०१। २. २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक ये ६ बन्धस्थान (पं० सं० पृ० ५००, ५०१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनवेद तथा क्रोधादि चारों कषायोंमें सर्व बन्धस्थान हैं[1]। ज्ञानमार्गणामें से तीन कुज्ञानोंमें आदिके छह बन्धस्थान हैं[2]।

विशेषार्थ—यहांपर देवगति तथा आहारकद्विकसहित स्थान नहीं होता क्योंकि इनका बंध अप्रमत्त तथा अपूर्वकरणगुणस्थानमें ही सम्भव है, किन्तु आहारकद्विक प्रमत्त-गुणस्थानमें होता है तथा कार्मण और औदारिकमिश्रसहित मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च-मनुष्यमें २८ प्रकृतिक स्थानका बन्ध नहीं है, क्योंकि 'कम्मे उरालमिस्सं' इम सूत्रसे देवद्विक और नरकद्विकके बन्धका कार्मण व औदारिकमिश्रकाययोगमें अभाव है। कार्मणकाययोग-सहित सासादनगुणस्थानवर्तीतिर्यञ्च-मनुष्यमें एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मपर्याप्त और अपर्याप्त-सहित २३-२५ व २६ का एवं नरक-देवगतिसहित २८ का तथा विकलत्रयसयुक्त २९-३० प्रकृतिकस्थान इन सर्व स्थानोंके बिना अवशेष तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय व मनुष्यगतिसहित २९-३० प्रकृतिक दो बन्धस्थान हैं। यहां "मिच्छदुगेदेवचऊतित्थं णहि" इस वचनसे देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानका अभाव है। कार्मणकाययोगसहित असंयतमनुष्यमें देवगति व तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिकस्थान भी जानना।

तीनोंवेदोंमें और चारोंकषायोंमें सर्व बन्धस्थान हैं। विशेष यह है कि नपुंसक-वेदमें २९-३० प्रकृतिके दोस्थान तृतीयनरकपर्यन्त जानना। नपुंसकवेदसहित तिर्यंच-गतिमें एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मअपर्याप्तसहित २३ प्रकृतिका, एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मपर्याप्त-संयुक्त २५ प्रकृतिका, त्रसअपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च-मनुष्य-गतिसहित २५ प्रकृतिका, एकेन्द्रियबादरपर्याप्त आतप व उद्योतसहित २६ प्रकृतिका, तिर्यञ्च व मनुष्यगतिपर्याप्तसहित २९ का, तिर्यञ्चगतिपर्याप्त उद्योतसंयुक्त ३० प्रकृति-का और पर्याप्ततिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियसम्बन्धी नपुंसकवेदमें नरक-देवसहित २८ प्रकृतिका भी बन्धस्थान पाया जाता है। स्त्रीवेदी व पुरुषवेदीतिर्यञ्चमें छह बन्धस्थान जानना चाहिए तथा नपुंसकवेदी लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें एकेन्द्रिय-विकलत्रयके समान पांच बन्धस्थान जानना। तीर्थंकरबिना द्रव्यसे नपुंसक या स्त्री अथवा पुरुषवेदी पर्याप्त-मनुष्य पुरुष-स्त्री-नपुंसकवेदके उदयसे भावसे पुरुष-स्त्री या नपुंसकवेदी होते हैं; द्रव्यसे पुरुषवेदी तथा भावनपुंसकस्त्री तथा पुरुषवेदमें अनिवृत्तिकरणके अपने-अपने सवेदभाग-

---

१. २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ व १ प्रकृतिक आठबन्धस्थान हैं। (पं. सं. पृ. ५०२)।

२. २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान (प. सं. पृ. ५०२)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यन्त गुणस्थान जानना। यहां तीनोंवेदोंमें आठ-आठ बन्धस्थान जानना[1], किन्तु विशेष इतना है कि क्षपकश्रेणीवाले नपुंसकवेदीके देवगति और तीर्थंकरप्रकृतिसहित २९-३१ प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं पाया जाता है, क्योंकि किन्हीं चरमशरीरीके क्षपकश्रेणीमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध सम्भव भी है तथापि वे जीव क्षपकश्रेणीमें पुरुषवेदके उदयसहित ही चढ़ते हैं तथा तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ चरमशरीरी असंयत या देशसंयत-गुणस्थानवर्तीके यदि होता है तो इनके तपकल्याणकादि तीन ही कल्याणक होते हैं और यदि प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होता है तो ज्ञान व निर्वाण ये दो ही कल्याणक होते हैं तथा यदि पूर्वभवमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध किया तो उनके गर्भावतरणादि पांचों कल्याणक होते हैं ऐसा जानना।

कषायमार्गणामें क्रोधादिके अनन्तानुबन्धी आदिके भेदसे चार भेद हैं, तथापि जातिका आश्रयकरके एकत्वपना ही ग्राह्य है, क्योंकि शक्तिकी प्रधानता होनेसे भेद कहनेकी विवक्षा नहीं है। इसीको स्पष्ट करते हैं—अनन्तानुबन्धी आदि बारहकषायके सर्वघातीरूपही स्पर्धक हैं देशघातीरूप नहीं तथा सञ्ज्वलनके स्पर्धक देशघाती एवं सर्वघातीरूप दोनों ही प्रकारके हैं। सम्यक्त्वघाती अनन्तानुबन्धी-क्रोध-मान-माया व लोभमें से किसी एकका उदय होनेपर अप्रत्याख्यानादि तीनोंका भी उदय है। तथैव देशसंयमका घातकरनेवाली अप्रत्याख्यान क्रोधादिकमें से किसी एकका उदय होनेपर प्रत्याख्यानादिका भी उदय है ही। सकलसंयमघाती प्रत्याख्यानक्रोधादिकमें से किसी एकका उदय होनेपर सञ्ज्वलनका भी उदय है तथा यथाख्यातसंयमको घातनेवाली केवल सञ्ज्वलनके उदय होनेपर प्रत्याख्यानादि तीनका उदय नहीं होता है, क्योंकि अन्यकषायोंके स्पर्धक सकलसंयमके विरोधी हैं तथा केवल प्रत्याख्यान-सञ्ज्वलनका उदय होनेपर शेष दोकषायोंका उदय नहीं है। अप्रत्याख्यानादि तीनका उदय होनेपर अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं है। इसप्रकार अनन्तानुबन्धीके उदयके साथ अप्रत्याख्यानादिकमें चारित्रमोहपना होते हुए भी इनमें सम्यक्त्व और संयमका घातपना कहा। अनन्तानुबन्धीके उदयरहित अप्रत्याख्यानादिका उदय देशसंयमको घातता है और अप्रत्याख्यानके उदयरहित प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलनका उदय सकलसंयमको घातता है तथा प्रत्याख्यानके उदयरहित केवल सञ्ज्वलनके देशघातीस्पर्धकोंका उदय यथाख्यातसंयमको घातता है इसप्रकार शक्ति सामान्यकी विवक्षासे सोलहकषायके क्रोधादिक भेदसे चार कषाय ही

१. "त्रिषु वेदेषु प्रत्येकं बंधाष्टकम्" (प्रा. पं. सं. पृ. ५०२)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रहण की हैं। इसकारणसे सम्यक्त्व-देशसंयम और सकलसंयमका असंयत-देशसंयत और प्रमत्तादिकगुणस्थानमें उत्पन्न होना कहा है।

शङ्का—अनन्तानुबन्धोकी तथा अन्यकषायोंकी शक्ति समान कैसे हो सकती है ?

समाधान—चारज्ञानावरण, तीनदर्शनावरण, पांचअन्तराय, चारसञ्ज्वलन और पुरुषवेद ये १७ देशघाती प्रकृतियां तो चार प्रकारके अनुभागरूप परिणमन करती हैं, अवशेष मिश्रमोहनीयबिना केवलज्ञानावरणादिक सर्वघाति २० प्रकृति, ८ नोकषाय और अघातियाकी ७५ प्रकृति ये सर्व प्रकृतियां तीनप्रकारके अनुभागरूप परिणमन करती हैं[1] अनुभागबन्धके कथनमें इसका बर्णन किया गया है इसलिये अनुभागशक्तिकी अपेक्षा-से अनन्तानुबन्धी और अन्यकषायमें समानता सम्भव है।

बारहकषाय और सञ्ज्वलनके देशघातीस्पर्धकोंमें यद्यपि कथंचित् भेद है तथापि सामान्यसंयमको घात करनेकी अपेक्षा समानकार्य करती हैं इसलिए यहां अनंता-नुबन्धीआदि भेद नहीं कहे हैं मात्र क्रोधादि चारकषाय ही कहो हैं। यहां क्रोधमें नाम-कर्मके बन्धस्थान नरकमें तो २९-३० प्रकृतिरूप दो हैं। तिर्यञ्चगतिमें आदिके छह-बन्धस्थान, मनुष्योंमें सर्वबन्धस्थान और देवगतिमें सामान्यसे देवगतिवत् (२५-२६-२९-३० प्रकृतिक) चार ही स्थान हैं। इसीप्रकार मान-माया और लोभमें भी जानने।

ज्ञानमार्गणामें तीन कुज्ञानोंमें आदिके छहस्थान हैं उनमें नारकियोंके तो तिर्यञ्चगति-मनुष्यगतिपर्याप्तसहित २९ प्रकृतिका तथा उद्योतसहित ३० प्रकृतिका स्थान ऐसे दोस्थान हैं। एकेन्द्रिय एवं विकलत्रयके कुमति और कुश्रुतज्ञानमें नरकगति व देवगतिसे संयुक्त २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थानकेबिना तिर्यञ्च-मनुष्यगतियुक्त २३ प्रकृति-के बन्धस्थानको आदि लेकर पांच बन्धस्थान हैं। पचेन्द्रियतिर्यञ्च-मनुष्यअपर्याप्तके कुमति-कुश्रुतसहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें भी पूर्वोक्त पांचस्थान हैं, तीनों कुज्ञानसहित मिथ्यात्व व सासादनगुणस्थानवर्ती पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यंच तथा मनुष्यमें यथायोग्य चतु-र्गतियुक्त छहस्थान हैं तथा कुज्ञानसहित भवनत्रिक व सौधर्मयुगलमें तिर्यंचगतिसंयुक्त २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिके और मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ये चार बन्धस्थान हैं। सनत्कुमारसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त स्वर्गोंमें संज्ञीपचेन्द्रियपर्याप्ततिर्यंच तथा मनुष्यगति-

१. आवरणदेसघादंतराय संजलण पुरिस सत्तरसं।
चउविह भावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८४॥गोम्मटसारकर्मकाण्ड॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहित २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका इसप्रकार दोस्थान हैं। आनतादिसे नवग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ही बन्धस्थान है क्योंकि 'तदो णत्थि सदरचऊ' इस वचनसे यहां तिर्यञ्चगतिसंयुक्त स्थानका अभाव है। इसप्रकार कुज्ञानवाले जीवोंकी अपेक्षा तीन कुज्ञानोंमें छहस्थान कहे।

सरणाणे चरिमपणं, केवलजहखादसंजमे सुराणं।
सुदमिव संजमतिदए, परिहारे णत्थि चरिमपदं ॥५४७॥

अर्थ—मतिज्ञानादि चारसम्यग्ज्ञानोंमें अन्तिम पांच बन्धस्थान हैं। केवलज्ञान और यथाख्यातसंयममें शून्य अर्थात् बन्धस्थानका अभाव है। संयमोंमें श्रुतज्ञानके समान ५ बन्धस्थान हैं, किन्तु परिहारविशुद्धिसंयममें अन्तिमस्थानबिना शेष चारस्थान हैं।

विशेषार्थ—मति-श्रुत-अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें २८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप ५ बन्धस्थान नामकर्मके हैं। मतिआदि तीनज्ञान पर्याप्त व निर्वृत्त्यपर्याप्त-नारकी और सञ्ज्ञीतिर्यञ्च, मनुष्य और देवोंमें पाए जाते हैं। यहां नारकीजीवोंके मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका तथा आदिकी तीनपृथ्वियोंमें मनुष्यगति-तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिका ये दो बन्धस्थान हैं, सौधर्मादि स्वर्गके देवोंमें भी ये ही दो बन्धस्थान हैं। भवनत्रिकदेवोंमें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ही बन्धस्थान है तथा तिर्यञ्चगतिमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थान है। मनुष्योंके देवगतिसहित २८ एवं देवगति-तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिका स्थान है तथा ३०, ३१ व १ प्रकृतिक बन्धस्थान भी हैं। इसप्रकार मतिआदि तीनज्ञानोंमें बन्धस्थान कहे। मनःपर्ययज्ञानसहित चारज्ञानोंमें प्रमत्त-गुणस्थानमें २८ व २९ प्रकृतिक दो स्थान हैं तथा अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त २८ व २९ प्रकृतिक दो एवं देवगति-आहारकद्विकसंयुक्त ३० प्रकृतिक और देवगति, तीर्थङ्कर व आहारकद्विकसंयुक्त ३१ प्रकृतिक ये चारबन्धस्थान हैं। अपूर्वकरण-गुणस्थानके सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त यशस्कीर्तिरूप एक बन्धस्थान है। केवलज्ञानमें नामकर्मके बन्धका अभाव है। सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें श्रुतज्ञानवत् ५ बन्धस्थान हैं, किन्तु परिहारविशुद्धिसंयममें इन ५ में से अन्तिमस्थान नहीं है अतः वहां चार ही बन्धस्थान जानना।

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें प्रमत्तगुणस्थानमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका और देवगति-तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिका ये दो बन्धस्थान हैं। अप्रमत्त व अपूर्वकरण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानके छठेभागपर्यन्त पूर्वोक्त दो और देवगति एवं आहारकद्विकयुत ३० प्रकृतिका, तीर्थङ्कर व आहारकद्विकसहित ३१ प्रकृतिका इसप्रकार चार बन्धस्थान हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागसे अनिवृत्तिगुणस्थानपर्यन्त एकप्रकृतिरूप एक ही बन्ध स्थान है। परिहारविशुद्धिसंयममें सामायिकसंयमवत् प्रमत्तगुणस्थानमें दो एवं अप्रमत्तगुणस्थानमें चार बन्धस्थान हैं, यहां श्रेणीआरोहणका अभाव होनेसे एकप्रकृतिरूप बन्धस्थान नहीं है[1]।

अंतिमठाणं सुहुमे, देसाविरदीसु हारकम्मं वा।
चक्खूजुगले सव्वं, सगसगणाणं व ओहिदुगे ॥५४८॥

अर्थ—सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें अन्तिम एक ही स्थान है[2]। देशसंयतगुणस्थानमें आहारककाययोगके समान २८ और २९ प्रकृतिरूप दो स्थान हैं[3]। असंयतगुणस्थानमें कार्मणकाययोगवत् आदिके ६ स्थान हैं[4]। चक्षु-अचक्षुदर्शनमें सर्वबन्धस्थान हैं[5] और अवधि-केवलदर्शनमें अपने-अपने ज्ञानके समान बन्धस्थान जानना।

विशेषार्थ—देशसंयमसहित तिर्यञ्चमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका ही स्थान है। असंयममें कार्मणकाययोगवत् २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक आदिके छहस्थान हैं यहां मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानवर्ती नारकोके पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च व मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप ये दो स्थान हैं। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका ही स्थान है। घर्मादितीन नरकपृथ्वियोंमें असंयतगुणस्थानवर्ती नारकियोंके मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका और मनुष्यगति व तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिका ये दो स्थान हैं। अवशेष पृथ्वियोंमें मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका स्थान है। तिर्यञ्चगतिमें २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं, किन्तु यहां विशेषता यह है कि पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय तथा विकलत्रयमें एवं अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमें नरकगति या देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थान नहीं है। बादर-सूक्ष्मपर्याप्त-अपर्याप्ततेजकायिक-वातकायिकमें मनुष्यगतिअपर्याप्तसंयुक्त २५ प्रकृतिका और पर्याप्तमनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका ये दोनों स्थान नहीं हैं।

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५०४ व ५०५ गाथा ४४७ व ४४९। २. प्रा० पं० सं० पृ० ५०५ गाथा ४४९। ३. प्रा० पं० सं० पृ० ५०६ गाथा ४५२। ४. प्रा० पं० सं० पृ० ५०६ गाथा ४५३। ५. २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१ ये आठ बन्धस्थान हैं (प्रा० पं० सं० पृ० ५०६-५०७ गाथा ४५३-४५४)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी विराधना करके सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ तिर्यंच, तिर्यञ्चगति व मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका, तिर्यञ्च व उद्योतयुक्त ३० प्रकृतिका तथा देवगतिसहित २८ प्रकृतिका इसप्रकार ३ स्थान बांधता है। मरणकर नरकबिना अन्य गतियोंमें उत्कृष्टसे एक समयकम छहआवली और जघन्यसे एकसमयपर्यन्त अपर्याप्तावस्थामें सासादनगुणस्थान होता है इसलिए सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च हैं सो 'णहि सासणो अपुण्णे साहरण सुहुमगे य तेउ दुगे' इस वचनसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीव ही अपर्याप्तावस्थामें सासादनगुणस्थानवर्ती होते हैं और वे नरकगति या देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिके स्थानको नहीं बांधता हुआ शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके पहले ही सासादनपना छोड़कर नियमसे मिथ्यादृष्टि होकर पर्याप्तावस्थाके अनन्तर ही नरकगति या देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानको बांधता हैं। 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि' इस वचनसे सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञी भी अपर्याप्तावस्थासहित सासादनगुणस्थानमें २८ प्रकृतिरूप स्थान नहीं बांधते हैं तथा मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च संज्ञीपर्याप्त हैं, वे मिश्रगुणस्थानमें तो देवगतियुत २८ प्रकृतिका ही बन्ध करता है, क्योंकि 'उवरिम छण्हं च छिदीसासणसम्मे' इस वचनसे तिर्यञ्च-मनुष्यगतिके बन्धका इसके अभाव है। असंयतगुणस्थानमें भी पूर्वोक्त स्थान बंधते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चजीवके आहारकद्विक व तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं है। मनुष्यगतिमें लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यके तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप पांचस्थान बंधते हैं, किन्तु पर्याप्तमनुष्यके चारोंगतिसहित छहों स्थान पाए जाते हैं। 'चदुगदि मिच्छोसण्णी' इत्यादि लब्धिसार गाथा २ में कथित सामग्रीसहित जीव करणलब्धिके चरमसमयमें दर्शनमोहका उपशम करके प्रथमोपशमसम्यक्त्व प्राप्त किया तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित देशव्रती अथवा महाव्रती होकर इस उपशमसम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्तकालमें एकसमयसे छहआवली कालपर्यंत अनंतानुबन्धीका जो अप्रशस्त उपशम हुआ था उसमेंसे किसी भी एक क्रोधादिकषायका उदय होनेपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वका घातकरके सासादनगुणस्थानवर्ती हुआ उस मनुष्यके एकेन्द्रिय व विकलत्रयका तो मिथ्यात्वावस्थामें ही बन्ध है अतः पञ्चेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंच-मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिके स्थानको, तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक स्थानको एवं देवगतिसहित २८ प्रकृतिके स्थानको बांधता है। मरण होनेपर तिर्यञ्च व मनुष्य अथवा देव अपर्याप्तकालमें यदि सासादनगुणस्थानवर्ती हैं तो तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ व तिर्यञ्च-उद्योतसंयुक्त ३० प्रकृतिरूप दो स्थानोंको बांधते हैं, किन्तु नरकगति या देव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानको नहीं बांधते हैं । सासादनगुणस्थानसम्बन्धी काल पूर्ण होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर यावत्कालपर्यन्त निर्वृ त्त्यपर्याप्तावस्था अवशेष रहती है उसमें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चारस्थानोंको बांधते हैं तथा पर्याप्तअवस्थामें २८ प्रकृतिसहित छह स्थानोंको बांधते हैं । कर्मभूमिज मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्य तथा भोगभूमिज सर्वमनुष्य देवगतियुत २८ प्रकृतिको ही बांधता है, क्योंकि नरक-तिर्यञ्चगतिकी सासादनगुणस्थानमें ही व्युच्छित्ति हो जाती है । असंयतगुणस्थानवर्ती तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला मनुष्य, देवगति व तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिके स्थानको बांधता है । पर्याप्तावस्थामें भवनत्रिक व सौधर्मयुगलवाले मिथ्यादृष्टिदेव एकेन्द्रियपर्याप्त-तिर्यञ्चगतिसहित २५ प्रकृतिका, आतप-उद्योतयुत २६ प्रकृतिका, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त-तिर्यञ्च मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका, तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका इसप्रकार चारस्थानोंका बन्ध करते हैं । सनत्कुमारादि १० स्वर्गवाले मिथ्यादृष्टिदेव मनुष्य व तिर्यञ्चगतिसहित २९ और तिर्यञ्चगति व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं तथा आनतादि ४ स्वर्गवाले एवं नवग्रैवेयकवासीदेव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानको बांधते हैं ।

निर्वृ त्त्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टि भवनत्रिकदेव और कल्पवासिनीदेवी, सौधर्म-ईशान-स्वर्गवाले देव एकेन्द्रियसहित २६ प्रकृतिका, पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका इसप्रकार चारस्थानोंका बन्ध करते हैं । उसीप्रकार सनत्कुमारस्वर्गसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्तके देव पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यंच व मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका बन्ध करते हैं । आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकतकके देव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ही बन्ध करते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चगतिसहित २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थान यहां नहीं हैं । इसप्रकार संक्षेपसे असंयमसहित मिथ्यादृष्टिजीवके देवगतिकी अपेक्षा नामकर्म बन्धस्थानोंका कथन हुआ । यहां जीवसमास, पर्याप्ति, प्राणादिकी विवक्षासे ग्रन्थविस्तारके भयसे कथन नहीं किया है इसका कथन परमागमसे यथायोग्य जानना चाहिए ।

सासादनगुणस्थानवर्ती भवनत्रिकदेव, कल्पवासिनीदेवियां व सौधर्मयुगलवाले देव तो पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगति-मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका अथवा पर्याप्ततिर्यंच-गति-उद्योतसहित ३० प्रकृतिके स्थानको बांधते हैं और सासादनगुणस्थानके कालको व्यतीतकर जब मिथ्यादृष्टि होते हैं तब इनके अपर्याप्तकालमें उपर्युक्त २९-३० प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानोंके अतिरिक्त एकेन्द्रियपर्याप्तयुत २५ प्रकृतिका अथवा उद्योत-आतपसहित २६ प्रकृतिक स्थानका भी बन्ध होता है तथा सनत्कुमारसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गवासी-देव उपर्युक्त २९-३० प्रकृतिरूप दोनों स्थानोंको बांधते हैं। आनतस्वर्गसे नवग्रैवेयक-पर्यन्तके देव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिरूप स्थानका ही बन्ध करते हैं तथा सासादन-काल व्यतीत होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिवत् स्थानोंको बांधते हैं। भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मिश्रगुणस्थानवर्ती और असंयतगुणस्थानवर्ती पर्याप्त-भवनत्रिक, कल्पवासिनीदेवियाँ तो मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिके स्थानको बांधते हैं। वैमानिक (कल्पवासी) देव तीर्थङ्कररहित पूर्वोक्त २९ प्रकृतिके और तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं।

चक्षु-अचक्षुदर्शनमें नामकर्मके सभी बन्धस्थान हैं। चक्षुदर्शनसहित नारकी २९-३० प्रकृतिके दो स्थानोंको बांधते हैं, चतुरिन्द्रियजीव २८ प्रकृतिके स्थानबिना तिर्यञ्च-मनुष्यगतियुत २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप ५ स्थानोंको बांधता है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च २३-२५-२६-२८-२९-३० प्रकृतिरूप छह स्थानोंका बन्ध करता है, मनुष्य सभी स्थानोंको बांधते हैं। देव यथायोग्य २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिके स्थानों-का बन्ध करते हैं। अचक्षुदर्शनसहित नारकी चक्षुदर्शनवत् दो स्थानोंको और एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्तके जीव नरक या देवगतियुत २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष २३-२५-२६-२९-३० प्रकृतिरूप ५ स्थानोंका, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च २८ प्रकृतिक स्थानसहित छह-स्थानोंको, मनुष्य सभी बन्धस्थानोंको एवं देव चक्षुदर्शनवत् यथायोग्य २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप चार स्थानोंका बन्ध करते हैं। अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानवत् अन्तिम ५ बन्धस्थान हैं। असंयत देव-नारकीमें और असंयत-देशसंयतवर्ती सञ्ज्ञीपर्याप्ततिर्यञ्चोंमें, असंयतगुणस्थानसे क्षीणकषायपर्यन्तगुणस्थानवाले मनुष्योंमें देशावधिज्ञान है और प्रमत्तसे क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती चरमशरीरी जीवोंके परमावधि-सर्वावधिज्ञान पाया जाता है। अवधिदर्शनके धारक घर्मादि तीन नरकवाले तीर्थंकर व मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिक स्थानको और तीर्थङ्करके सत्त्वरहित अञ्जनादिपृथ्वीवाले नारकी मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं तथा तिर्यञ्चजीव देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं। मनुष्य भी देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिकस्थानसे १ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त (२८-२९-३०-३१-१) पांच स्थानोंको, सौधर्मादिकस्वर्गके देव तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिरूप और भवनत्रिक आदि सभीदेव तीर्थङ्कररहित मनुष्यगति-युत २९ प्रकृतिरूप स्थानको बांधते हैं। केवलदर्शनमें केवलज्ञानवत् बन्धका अभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम्मं वा किण्हतिये, पणुवीसाछक्कमट्ठवीसचऊ।
कमसो तेऊजुगले, सुक्काए ओहिणाणं वा ॥५४६॥

अर्थ—कृष्णादि तीन अशुभलेश्याओंमें कार्मणकाययोगवत् २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप ६ बन्धस्थान हैं। तेज (पीत) और पद्मलेश्यामें क्रमसे २५-२६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं तथा २८-२९-३०-३१ प्रकृतिरूप चार-स्थान हैं। शुक्ललेश्यामें अवधिज्ञानवत् २८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप पांच बन्ध-स्थान हैं।

विशेषार्थ—वर्णनामा नामकर्मके उदयसे शरीरके वर्णरूप द्रव्यलेश्याको यहां ग्रहण नहीं किया है। मोहनीयकर्मके उदय-उपशम या क्षय अथवा क्षयोपशमसहित जीवकी योगरूप चंचलता भावलेश्या है उसीको यहां ग्रहण किया गया है। कृष्णादिके भेदसे लेश्या ६ प्रकारकी है। नरकोंमें तीन अशुभलेश्या ही हैं। नरकोंमें उत्पन्न हुए जीव शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर अथवा नहीं होनेपर तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ व ३० प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं तथा सासादनगुणस्थानवाले भी इसीप्रकार तिर्यञ्च और मनुष्यगतिसंयुक्त दोनों (२९-३० प्रकृतिक) स्थानोंका बंध करते हैं। मिश्र और असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं।

घर्मापृथ्वीमें निर्वृ त्यपर्याप्तक व पर्याप्तक्षायिक व कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि तीर्थ-ङ्करके सत्त्वरहित तो मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिको और तीर्थङ्करके सत्त्वसहित मनुष्यगति-युत ३० प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं तथा वंशा-मेघापृथ्वीमें तीर्थंकरके सत्त्वसहित जीव पर्याप्ति पूर्ण होनेपर नियमसे मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वीहोकर ३० प्रकृतिका बन्ध करते हैं। तिर्यञ्चगतिमें पर्याप्तादितीन (पर्याप्त, निर्वृ त्यपर्याप्त व लब्ध्यपर्याप्त) में सर्वएकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय तथा लब्ध्यपर्याप्तक-निर्वृ त्यपर्याप्तक असंज्ञीजीवोंके और नरकादिसे आया मिथ्यादृष्टि व सासादनवर्ती अपर्याप्तसञ्ज्ञी इन सभीमें तीन अशुभ-लेश्यायें ही हैं तथा पर्याप्तमिथ्यादृष्टिअसञ्ज्ञीमें कृष्णादि चार लेश्याएं हैं। पर्याप्त सासादन व मिश्रगुणस्थानवर्तीमें एवं असंयतसञ्ज्ञीतिर्यञ्चोंमें छहों लेश्या हैं। भोग-भूमिज निर्वृ त्यपर्याप्तअसंयतमें जघन्यकपोतलेश्या ही है और पर्याप्तावस्थामें मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टिके तीन शुभलेश्याही है, क्योंकि उत्पन्न हुए जीवोंके शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही तीन शुभलेश्याऐं आगममें कही गईं हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्वयुत बादर-सूक्ष्मपृथ्वी, अप्-तेज-वायुकाय-नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितप्रत्येक द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञी-सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय, ये १९ प्रकारके लब्ध्यपर्याप्त व पर्याप्त तिर्यञ्चसे तथा मिथ्यादृष्टि पर्याप्त व अपर्याप्त-कर्मभूमिजमनुष्यसे आकर तीन अशुभलेश्यासहित जो तिर्यञ्चजीवोंमें उत्पन्न होते हैं वे २८ प्रकृतिकस्थानबिना शेष २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप पांचस्थान बांधते हैं और तेजकाय-वायुकायके जीव तिर्यञ्चगतियुत ही इन स्थानोंको बांधते हैं। १९ प्रकारके लब्ध्यपर्याप्त-पर्याप्ततिर्यँच व पर्याप्त-अपर्याप्तमनुष्य मिलकर ४० प्रकारके मिथ्यादृष्टि तीनप्रकारकी अशुभलेश्याओंसे मरणकर पूर्वोक्त १९ प्रकारके मिथ्यादृष्टि पर्याप्ततिर्यँचोंमें भी उत्पन्न होते हैं।

चारों ही गतिसे आकर पूर्वोक्त १९ प्रकारके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टिजीव निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप पांच-स्थानोंको बांधते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९-३० प्रकृतिरूप छहस्थान, सासादनगुणस्थानमें २८-२९-३० प्रकृतिरूप तीनस्थान, मिश्र-असंयत और देशसंयतगुण-स्थानमें एक मात्र २८ प्रकृतिरूप स्थान बंधता है। तथैव दाताके गुणोंसे सहित जिस मनुष्यने पूर्वभवमें दानयोग्य द्रव्य तीनप्रकारके पात्रोंको दान दिया उसके प्रभावसे उस मनुष्यने एवं अनुमोदना व व्रतीतिर्यञ्चोंको दान देनेसे तिर्यञ्चने मिथ्यात्वअवस्थामें तिर्यञ्चायुका बन्धकरके तीन अशुभलेश्यासहित मरणकर भोगभूमिमें मिथ्यादृष्टितिर्यँच हुआ, वहां अपर्याप्तावस्थामें तिर्यञ्चगतिसहित तो २९-३० प्रकृतिक दोस्थान एवं मनुष्य-गतियुक्त २९ प्रकृतिरूप स्थानको बांधता है। जिसके भोगभूमिज तिर्यञ्चायुका बन्ध हुआ ऐसे तिर्यञ्च अथवा मनुष्यने मरणोन्मुखदशामें प्रथमोपशमसम्यक्त्व प्राप्त किया पश्चात् अनन्तानुबन्धीको किसी एक प्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वकी विराधना की तो वह भोगभूमिमें तीन अशुभलेश्यासहित सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च हुए इनके तिर्यञ्च-गतिसहित २९-३० प्रकृतिक तथा मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है, क्योंकि 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि' इस वचनसे देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध अपर्याप्तावस्थामें नहीं है। जिन्होंने पहले तिर्यञ्चायुका बन्ध किया है ऐसे कर्मभूमिज मनुष्य कृतकृत्यवेदक या क्षायिकसम्यग्दृष्टि होकर तीन प्रकारके पात्र-दानसे तीन-दो अथवा एक पल्यप्रमाण आयुवाले होकर कपोतलेश्याके जघन्यअंशोंसे उत्कृष्ट-मध्यम अथवा जघन्य भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं वहां वेदक अर्थात् कृतकृत्यवेदक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या क्षायिकसम्यक्त्वसहित अपर्याप्तावस्थामें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिक स्थानोंको ही बांधते हैं। पर्याप्तावस्थामें मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयतगुणस्थानवर्ती भोगभूमिज तीन शुभलेश्याओंसे संयुक्त हैं यहां मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानवर्ती तो देवगतियुत २८ प्रकृतिकस्थानका बन्ध करते हैं तथा मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती भी २८ प्रकृतिक स्थानका ही बन्ध करते हैं। इसप्रकार लेश्यासहित तिर्यञ्चोंके बन्धस्थानोंका वर्णन हुआ। अब मनुष्योंमें नामकर्मके बन्धस्थान कहते हैं—

लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यमें तीन अशुभलेश्या ही हैं और सम्यग्दृष्टिनिर्वृत्त्यपर्याप्तकके छहों लेश्या हैं। तीन अशुभलेश्यासहित मिथ्यादृष्टिके २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिक स्थान बांधते हैं। सासादनगुणस्थानवर्तीके २९ व ३० प्रकृतिके दो स्थान और असंयतगुणस्थानवर्तीके देवगतियुत २८ प्रकृतिक स्थान तथा देव-तीर्थंकरयुत २९ प्रकृतिरूप स्थान ऐसे दो स्थान बंधते हैं। पर्याप्तावस्थामें छहों लेश्या पाई जाती हैं, अतः यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छह स्थान हैं, सासादनगुणस्थानमें २८, २९ व ३० प्रकृतिक तीन स्थान हैं, इनमें २८ प्रकृतिरूप स्थान तो देवगतिसहित, २९ प्रकृतिका स्थान तिर्यञ्च व मनुष्यगतिसंयुक्त एवं ३० प्रकृतिका स्थान तिर्यञ्चगति और उद्योतसहित बंधता है। मिश्रगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप एक ही स्थान है। असंयतगुणस्थानमें एवं तीन शुभलेश्यासहित देशसंयत व प्रमत्तगुणस्थानमें देवयुत २८ तथा देव-तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिक बन्धस्थान है। अप्रमत्तगुणस्थानमें पूर्वोक्त २८ व २९ प्रकृतिरूप दो स्थान तथा आहारकद्विकसहित ३०-३१ प्रकृतिरूप स्थान ऐसे चारस्थान बन्धते हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें शुक्ललेश्या ही है, यहांपर पूर्वोक्त चारस्थान और अन्तिमभागमें एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान इसप्रकार पांचस्थान बंधते हैं। बादरअनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक प्रकृतिरूप ही बन्धस्थान है। आगे उपशान्तादिगुणस्थानोंमें बन्धका अभाव है। भोगभूमिज मनुष्योंमें भोगभूमिज तिर्यञ्चवत् बन्धस्थानका कथन जानना। अब देवगतिमें बन्धस्थान कहते हैं—

भवनत्रिक निर्वृत्त्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टिदेव तो २८ प्रकृतिक स्थानबिना २५-२६-२९-३० प्रकृतिरूप चार स्थानोंका बन्ध करते हैं। ये चारस्थान एकेन्द्रियपर्याप्तयुत २५ प्रकृतिक, एकेन्द्रियपर्याप्त आतप या उद्योतसहित २६ प्रकृतिक, तिर्यंच-मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक एवं तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप हैं। सासादनगुण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानवर्ती तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुक्त २९ प्रकृतिरूप और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करते हैं। मनुष्य व तिर्यग्लोकसम्बन्धी कर्मभूमिज तिर्यञ्च, नागा, सन्यासी आदि एवं द्रव्यजिनलिङ्गी आदि मिथ्यादृष्टि तेजोलेश्यासे सौधर्मयुगलमें उत्पन्न होते हैं ये निर्वृ त्त्यपर्याप्तावस्थामें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिक स्थानको बांधते हैं तथा देवायुका जिनके बन्ध हुआ है ऐसे असंयत व देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च तो प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी और प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य प्रथमोपशम एवं द्वितीयोपशम-सम्यक्त्वकी विराधना करके तेजोलेश्यासे सहित सौधर्मस्वर्गयुगलमें सासादनगुणस्थानवर्ती होते हैं। इनके निर्वृ त्त्यपर्याप्तावस्थामें मनुष्यगतिसंहित २९ प्रकृतिक तथा तिर्यञ्चगति और उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप इन दो स्थानोंका बन्ध होता है। वेदक-क्षायिकसम्य-ग्दृष्टि सर्वभोगभूमिज और असंयत-देशसंयतगुणस्थानवर्ती-कर्मभूमिज-वेदकसम्यग्दृष्टि-तिर्यञ्च, तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित अथवा उससे रहित अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त देवायु-के बन्धसे संयुक्त मनुष्य सौधर्मस्वर्गयुगलमें तेजोलेश्यासहित उत्पन्न होते हैं। ये जीव असंयतगुणस्थानकी निर्वृ त्त्यपर्याप्तावस्थामें तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित मनुष्यगतिसंयुक्त स्थानका एवं तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वरहित मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिरूप स्थानका बंध करते हैं। पद्म-शुक्ललेश्यासहित असंयतभोगभूमिज, पद्म-शुक्ललेश्यावाले असंयतादि कर्मभूमिज और शुक्ललेश्यावाले अपूर्वकरणादिगुणस्थानवर्ती मरणकालमें तेजोलेश्याको प्राप्त करके ही सौधर्मस्वर्गयुगलमें उत्पन्न होते हैं तथा सनत्कुमारस्वर्गयुगलमें चक्रइन्द्रकसे श्रेणीबद्धपर्यन्त विमानोंमें तेजोलेश्या है, किन्तु यहांपर भोगभूमिजबिना शेष जीवोंकी उत्पत्ति है। इनके निर्वृ त्त्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि व सासादनगुणस्थानवर्ती तो तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसहित २९, तिर्यञ्चगति-उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानोंका बन्ध करते हैं और असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका एवं मनुष्य-तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिका बन्ध करते हैं। आगे आठ स्वर्गोंमें देवायुके बन्धसहित कर्मभूमिज मनुष्य-तिर्यञ्च पद्मलेश्यासहित उत्पन्न होते हैं सो ये मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानवर्ती तो तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसहित दो स्थान और असंयतगुणस्थानवाला मनुष्य-तीर्थंकरसहित दो स्थानोंको बांधते हैं। आनतादि चार स्वर्गवासोदेवोंमें एवं नवग्रैवेयकमें शुक्ललेश्या है, ये मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें मनुष्यगतिसहित २९ तथा आनतादि चारस्वर्गोंके असंयतदेव एवं अनुदिश-अनुत्तरविमानवाले असंयतदेव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिरूप या मनुष्य-तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानको बांधते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव्वे सव्वमभव्वे, किण्हं वा उवसमम्मि खइए य ।
सुक्कं वा पम्मं वा, वेदगसम्मत्तठाणाणि ॥५५०॥

अर्थ—भव्यमार्गणामें भव्योंके सर्व, अभव्यके कृष्णलेश्यावत् आदिके छह, सम्यक्त्वमार्गणामें उपशम व क्षायिकसम्यग्दृष्टिके शुक्ललेश्यावत् २८-२९-३०-३१ व १ ये ५ तथा वेदकसम्यक्त्वमें २८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप ४ बन्धस्थान हैं।

विशेषार्थ—नारकीजीव असंयत ही होते हैं सो घर्मादि तीन नरकवाले मनुष्यगतिसंयुक्त २९ तथा मनुष्यगति व तीर्थंकरयुत ३० प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं । अवशेष पृथ्वियोंके नारकीजीव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको ही बांधते हैं।

शङ्का—"अविरदादि चत्तारि तित्थयरबन्धपारम्भया णरा केवलिदुगंते" इत्यादि गाथा ९३ के अनुसार अविरतादि चारगुणस्थानवाले मनुष्य ही केवली-श्रुतकेवलीके निकट तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करते हैं तो फिर नरकमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध किसप्रकार है ?

समाधान—जिन्होंने पहले नरकायुका बन्ध किया है, ऐसे मनुष्य प्रथमोपशम अथवा वेदक या क्षायिकसम्यक्त्वमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करते हैं। वेदकसम्यग्दृष्टि मरणसमयमें मिथ्यादृष्टि होकर तृतीयपृथ्वीपर्यन्त उत्पन्न होते हैं वहां पर्याप्ति पूर्ण होनेके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके समयप्रबद्धमें तीर्थंकरप्रकृतिका भी बन्ध करते हैं।

प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि असंयत व देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च तो देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानका ही बन्ध करते हैं तथा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिमनुष्य जो असंयत-देशसंयत या प्रमत्तगुणस्थानवर्ती हैं वे देवगतिसंयुक्त २८ एवं देव व तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिका, किन्तु अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती, देव और आहारकद्विकसहित ३०, देव, तीर्थंकर व आहारकद्विकसहित ३१ प्रकृतिक इसप्रकार चारस्थानोंका बन्ध करते हैं। देवगतिमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त ही है अतः मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिरूप स्थानका ही बन्ध करते हैं, तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिक स्थानको नहीं बांधते हैं क्योंकि देवायुके बन्धसहित तीर्थंकरका बन्ध करनेवालोंके सम्यक्त्वसे प्रच्युति नहीं होती और सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए बिना प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती है तथा वेदकसम्यक्त्वी अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती ही तीनकरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणामोंसे सातप्रकृतिका उपशमकरके द्वितीयोपशमसम्यक्त्व ग्रहण करता है इस सम्यक्त्वका काल अन्तर्मुहूर्त है, अन्तर्मुहूर्तके प्रथमसमयमें देवगतिसहित २८-२९-३०-३१ प्रकृतिरूप चारस्थानोंको बांधते हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागके प्रथमसमयसे छठेभाग पर्यन्त २८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप चार बन्धस्थानोंको बांधता हुआ सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त एक-एक प्रकृतिस्थानका ही बन्ध करता है तथा उपशान्तकषायगुणस्थानके अन्तसमयपर्यन्त नामकर्मको नहीं बांधता है। उपशान्तकषायगुणस्थानसे अनुक्रमसे उतरते हुए असंयतगुणस्थानवर्ती होकर प्रमत्तगुणस्थानवत् २८ व २९ प्रकृतिरूप दो स्थानोंका बन्ध करता है। इसप्रकार द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें आठगुणस्थान हैं[1]। देवायुके बन्धसहित श्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणके प्रथमभागबिना अन्यभागोंमें और उतरते हुए सर्वत्र यदि मरण हो जावे तो वैमानिकदेवोंमें यथासम्भव निर्वृत्तिअपर्याप्तावस्थामें मनुष्ययुत २९ व मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। इसप्रकार उपशमसम्यक्त्वमें २९ व ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानरूप नामकर्मकी प्रकृतियोंका जिसके सत्त्व पाया जाता है वह प्रमत्तगुणस्थानसे मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है। तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके सत्त्वसहित असंयतादिक तीनगुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होनेसे तीर्थंकरप्रकृतिकी सत्तावाला सासादनगुणस्थानमें नहीं जाता और इसके सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका भी उदय नहीं होनेसे मिश्रगुणस्थान नहीं होता, क्योंकि एक जीवके तीर्थंकर और आहारकद्विकका सत्त्व होते हुए मिथ्यात्वगुणस्थान नहीं, होता, आहारकद्विकका सत्त्व होते हुए सासादनगुणस्थान नहीं होता और तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिश्रगुणस्थान नहीं होता ऐसा जानना। क्षायिकसम्यग्दृष्टि यथासम्भव २८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप ५ स्थानोंको बांधता है।

असंयतादि तीनगुणस्थानवर्ती वेदक और कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि तो २८ और २९ प्रकृतिरूप दो स्थान तथा अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती २८-२९-३० व ३१ प्रकृतिरूप चार स्थानोंको बांधते हैं। भोगभूमिज वेदक तथा कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानको ही बांधते हैं एवं कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि देव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ एवं मनुष्यगति-तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिरूप दो स्थानोंका बन्ध करता है और

१. किन्तु धवलाकार आदिके मतसे उपशमश्रेणी चढ़नेवालेके चतुर्थगुणस्थानमें भी द्वितीयोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है। (ध० पु० १ पृ० २११)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि देव व देवपर्यायमें ही जिनके वेदकसम्यक्त्व हुआ है ऐसे देव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानका ही बन्ध करते हैं। नारकी और भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त सादिमिथ्यादृष्टिजीव तीनकरणोंको किये बिना यथासम्भव सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे मिथ्यात्वको छोड़कर वेदकसम्यग्दृष्टि होकर मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानका ही बन्ध करते हैं।

अडवीसतिय दु साणे, मिस्से मिच्छे दु किण्हलेस्सं वा।
सण्णीआहारिदरे, सव्वं तेवीसछक्कं तु ॥५५१॥

अर्थ—सासादनसम्यक्त्वमें २८ प्रकृतिरूप स्थानको आदि लेकर २८-२९ व ३० प्रकृतिक ३ बन्धस्थान हैं सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) में २८-२९ प्रकृतिक दो तथा मिथ्यात्वमें कृष्णलेश्यावत् आदिके २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक छहस्थान हैं। सञ्ज्ञीमार्गणामें और आहारमार्गणामें सर्वबन्धस्थान हैं, असञ्ज्ञी एवं अनाहारमार्गणामें २३ प्रकृतिरूप स्थानको आदि लेकर छह बन्धस्थान हैं अर्थात् २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान हैं।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानमें निर्वृत्यपर्याप्तक-बादर-पृथ्वीकाय, अप्काय, प्रत्येकवनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय सैनो-असैनी तिर्यञ्च व मनुष्यमें, पर्याप्तनारकियोंमें और पर्याप्त व अपर्याप्त भवनत्रिकादिसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त देवोंमें २९-३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध होता है तथा पर्याप्तसञ्ज्ञीतिर्यञ्च और मनुष्यमें २८-२९-३० प्रकृतिरूप तीन स्थानोंका बन्ध होता है (यहां देवगतिसहित २८ प्रकृतिक, तिर्यंच-मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक ऐसे तीनस्थान हैं) आनतादिस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त पर्याप्त-अपर्याप्तदेव मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानको ही बांधते हैं तथा अनुदिश व अनुत्तरविमानोंमें सासादनगुणस्थान नहीं होता, क्योंकि उनमें सम्यग्दृष्टिदेव ही उत्पन्न होते हैं। मिश्रगुणस्थानवर्तीके २८-२९ प्रकृतिरूप दो बन्धस्थान हैं यहां पर्याप्तदेव तथा नारकियोंमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक स्थानका एवं तिर्यञ्च व मनुष्योंमें देवगतियुत २८ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। अनुदिश व अनुत्तरविमानोंमें मिश्रगुणस्थान नहीं है। मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीवोंमें कृष्णलेश्यावत् २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छहस्थान हैं। आदिको छह पृथ्वियोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक और पर्याप्तनारकीके तिर्यञ्च तथा मनुष्यगतियुत २९-३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिरूप दो स्थानोंका बन्ध है। सप्तम पृथ्वीमें तिर्यञ्चगतियुत २९-३० प्रकृतिरूप दो स्थान बंधते हैं।

तिर्यञ्चगतिमें लब्ध्यपर्याप्तक-निर्वृत्त्यपर्याप्तक बादर-सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायुकाय साधारण-प्रत्येकवनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी-सैनी तिर्यञ्च और मनुष्यमें २८ प्रकृतिरूप स्थानके बिना २३-२५-२६-२९-३० प्रकृतिक ५ बन्धस्थान हैं।

नोट—तेजकाय और वायुकायमें मनुष्यगतियुत २५ व २९ प्रकृतिके बन्धस्थान नहीं हैं। पर्याप्तअसञ्ज्ञी-सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यके २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छहस्थान बन्धते हैं तथा लब्ध्यपर्याप्तक-निर्वृत्त्यपर्याप्तकमनुष्योंमें २८ प्रकृतिरूप स्थानके बिना शेष २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप ५ स्थान बन्धते हैं। देवगतिमें निर्वृत्त्यपर्याप्त व पर्याप्तावस्थामें भवनत्रिकादिसे ईशानस्वर्गपर्यन्त तो २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चारस्थान बंधते हैं एवं सनत्कुमारस्वर्गसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त २९-३० प्रकृतिक दोस्थान बंधते हैं। आनतादि स्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २९ प्रकृतिरूप एकही बन्धस्थान है, क्योंकि यहां तिर्यञ्चगतिका बन्ध नहीं होता है। अनुदिश व अनुत्तरविमानोंमें मिथ्यादृष्टि नहीं हैं।

सञ्ज्ञी और आहारमार्गणामें नामकर्मके सभी बन्धस्थान हैं। असंज्ञी व अनाहारकमार्गणामें २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छह बन्धस्थान हैं। सञ्ज्ञीनारकीके तो २९-३० प्रकृतिरूप दो स्थान तथा तिर्यञ्चमें तीर्थङ्कर व आहारकयुगलयुत स्थान बिना २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छहस्थान हैं, मनुष्यमें २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिक इसप्रकार सर्वस्थान हैं तथा देवोंमें २८ प्रकृतिक स्थानके बिना २५-२६-२९-३० प्रकृतिके चारस्थान हैं। असञ्ज्ञीमार्गणामें लब्ध्यपर्याप्त-निर्वृत्त्यपर्याप्त-पर्याप्तबादर-सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायुकाय-साधारण-प्रत्येक-वनस्पतिकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तीर्थङ्कर व आहारकयुगलसहित स्थानके बिना २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छहस्थान हैं।

आहारमार्गणामें सानत्कुमारसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्तदेव व नरकमें २९ व ३० प्रकृतिक दो स्थान, तिर्यञ्चमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिरूप छह स्थान हैं, मनुष्यमें २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप सर्वस्थान हैं। भवनत्रिक व सौधर्मयुगलमें २५, २६, २९, ३० प्रकृतिक चारस्थान हैं। अनाहारमार्गणामें विग्रहगतिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव तथा नारकीके २९-३० प्रकृतिके दो स्थान, तिर्यञ्चोंमें २३-२५-२६-२८-२९-३० प्रकृतिरूप छहस्थान हैं, इनमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिरूपस्थान असंयतके ही होता है। मनुष्यके २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छहस्थान हैं। इसप्रकार नामकर्मके बन्धस्थानोंका कथन मार्गणाओंमें किया।

चौदह मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

मार्गणा	मार्गणा के भेद	बंध स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या
गति	१. नरकगति	२	२९ व ३० प्रकृतिक।
	२. तिर्यञ्चगति	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	३. मनुष्यगति	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	४. देवगति	४	२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
इन्द्रिय व काय	१. एकेन्द्रिय (५ स्थावरकाय)	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
	२. विकलत्रय (त्रसकाय)	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
	३. पञ्चेन्द्रिय (त्रसकाय)	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
योग	चार मनोयोग ,, वचनयोग औदारिककाययोग	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	औदारिकमिश्रकाययोग	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	वैक्रियिककाययोग वैक्रियिकमिश्रकाय	४	२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
	आहारककाययोग आहारकमिश्रकाय	२	२८ व २९ प्रकृतिक।
	कार्मणकाययोग	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद	नपुंसक स्त्री व पुरुषवेद	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
कषाय	क्रोध-मान-माया व लोभ	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
ज्ञान	१. कुमति-कुश्रुत व कुअवधिज्ञान	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ।
	२. मति-श्रुत-अवधि एवं मनःपर्ययज्ञान	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
	३. केवलज्ञान	०	०
संयम	१. सामायिक व छेदोपस्थापना	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
	२. परिहारविशुद्धि	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ।
	३. सूक्ष्मसाम्पराय	१	१ प्रकृतिक ।
	४. यथाख्यात	०	०
	५. देशसंयम	२	२८ व २९ प्रकृतिक ।
	६. असंयम	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ।
दर्शन	चक्षु-अचक्षुदर्शन	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
	अवधिदर्शन	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
	केवलदर्शन	०	०
लेश्या	कृष्ण-नील-कपोत	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ।
	तेजलेश्या	६	२५-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ।
	पद्मलेश्या	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ।
	शुक्ललेश्या	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।
भव्य	भव्य	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	अभव्य	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
सम्यक्त्व	उपशम व क्षायिक	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	वेदकसम्यक्त्व	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।
	सम्यग्मिथ्यात्व	२	२८ व २९ प्रकृतिक।
	सासादन	३	२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
सञ्ज्ञी	सञ्ज्ञी	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	असञ्ज्ञी	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
आहार	आहारक	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	अनाहारक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।

अथानन्तर नामकर्मके बन्धस्थानोंमें पुनरुक्त भङ्गोंको कहते हैं—

णिरयादिजुदट्ठाणे, भंगेणप्पप्पणम्मि ठाणम्मि।
ठविदूणमिच्छभंगे, सासणभंगा हु अत्थित्ति ।।५५२।।
अविरदभंगे मिस्सयदेसपमत्ताण सव्वभंगा हु।
अत्थित्ति ते दु अवणिय, मिच्छाविरदापमादेसु ।।५५३।।जुम्मं।।

अर्थ—नरकादिगतिसहित स्थानोंको अपने-अपने भङ्गोंके साथ अपने-अपने गुणस्थानोंमें स्थापित करना इनमें मिथ्यादृष्टिके स्थानोंके भङ्गोंमें मिश्र-देशसंयत व प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी बन्धस्थानोंके भङ्ग गर्भित हैं, क्योंकि इनके भङ्गोंमें परस्पर समानता पाई जाती है इसलिये सासादनगुणस्थानके भङ्गोंको घटाकर और मिश्र, देश-संयत व प्रमत्तगुणस्थानके भङ्ग घटाकर मिथ्यादृष्टि, असंयत तथा प्रमत्तगुणस्थानमें बन्धस्थानोंके भङ्ग होते हैं। यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकयुत २८ प्रकृतिके स्थानमें एक भङ्ग है। तिर्यञ्चगतियुत २३ प्रकृतिके स्थानमें एक, २५ प्रकृतिके स्थानमें आठ, २६ प्रकृतिके स्थानमें आठ, २९ प्रकृतिरूपस्थानमें ४६०८, ३० प्रकृतिरूप स्थानमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६०८, मनुष्ययुत २५ प्रकृतिके स्थानमें एक, २९ प्रकृतिके स्थानमें ४६०८, देवगतियुत २८ प्रकृतिके स्थानमें ८ भङ्ग हैं। सासादनगुणस्थानमें नरकगतियुत स्थान नहीं है। तिर्यञ्चगतियुत २९ प्रकृतिके स्थानमें ३२००, ३० प्रकृतिके स्थानमें ३२००। मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानमें ३२०० एवं देवगतियुत २८ प्रकृतिके स्थानमें ८ भंग हैं। मिश्र और असंयतगुणस्थानमें नरक-तिर्यञ्चगतियुत स्थान नहीं है अतः मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिके स्थानमें आठ भंग हैं। देवगतियुत २८ प्रकृतिके स्थानमें आठ भंग हैं, असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९-३० प्रकृतिके एवं देवयुत २८-२९ प्रकृतिके स्थानोंमें आठ भंग हैं। देवगतियुत २८-२९-३०-३१ प्रकृतिरूप स्थानोंमें एक-एक भंग हैं, क्योंकि इनका बन्ध अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानके छठे-भागपर्यन्त होता है। देशसंयत और प्रमत्तगुणस्थानमें देवगतियुत २८-२९ प्रकृतिरूप स्थानमें आठ-आठ भंग हैं।

गुणस्थान	बन्ध स्थान	भङ्ग	विशेष
मिथ्यात्व	तिर्यञ्चगतियुत २३ प्रकृतिक	१	
„	„ „ २५ „	८	शुभ–स्थिर–यशःकीर्तियुगल
„	मनुष्ययुत २५ „	१	२ × २ × २ = ८
„	तिर्यञ्चयुत २६ „	८	शुभ–स्थिर–यशःकीर्तियुगल
„	नरकयुत २८ „	१	२ × २ × २ = ८
„	देवयुत २८ „	८	शुभ–स्थिर–यशःकीर्तियुगल २ × २ × २ = ८
„	पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचयुत २९ प्र०	४६०८	संहनन-सस्थान-स्थिरादि६युगल-विहायोग. ६ X ६ X ६ X २
„	मनुष्यपर्याप्तयुत २९ प्रकृतिक	४६०८	„ „ „ „
„	पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक	४६०८	„ „ „ „
असंयत-सम्यग्दृष्टि	मनुष्यपर्याप्तयुत २९ „	८	शुभ–स्थिर–यशःकीर्तिगुगल २ X २ X २ = ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	देव-तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यश.कीर्तियुगल २ X २ X २ = ८
	मनुष्य-तीथङ्करयुत ३० ,,	८	,, ,, ,,
	देवगतियुत २८ ,,	८	,, ,, ,,

भुजगारा अप्पदरा, अवट्ठिदावि य सभंगसंजुत्ता ।
सव्वपरट्ठाणेण य, णेदव्वा ठाणबंधम्मि ॥५५४॥

अर्थ—पूर्वोक्त जो बन्धस्थान हैं वे भुजाकार २२, अल्पतर २१, अवस्थित ४६ और च शब्दसे अवक्तव्यके ३ मूलभेदसे चारप्रकारके हैं । वे अपने-अपने भंगों-से सहित नामकर्मके बन्धस्थानोंमें स्वस्थान एवं परस्थान इन दोनोंके साथ अथवा सर्व-परस्थानोंके साथ लगाना चाहिए ।

अब उन स्वस्थानादिकोंका लक्षण कहते हैं—

अप्पपरोभयठाणे, बंधट्ठाणाण जो दु बंधस्स ।
सट्ठाण परट्ठाणं, सव्वपरट्ठाणमिदि सण्णा ॥५५५॥

अर्थ—अपने विवक्षितगुणस्थानमें विचार, अन्यगुणस्थानकी अपेक्षा विचार, अन्यगति और अन्यही गुणस्थानरूप उभयस्थानकी अपेक्षा विचार इन तीनोंमें मिथ्या-दृष्टि, असंयत व अप्रमत्तके बन्धस्थानसम्बन्धी जो भुजाकारादि बन्ध हैं उनमें क्रमसे स्वस्थान भुजाकारादि, परस्थानभुजाकारादि और सर्वपरस्थानभुजाकारादि ये तीन नाम हैं ।

चदुरेक्कदुपण पंच य, छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता ।
तिसु उवसमगे संतेत्ति य, तियतिय दोण्णि गच्छंति ॥५५६॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्तके जीव अपने-अपने गुण-स्थानोंको छोड़कर क्रमसे चार, एक, दो, पांच, पांच, छह और तीन गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानवर्तीजीव उपशमश्रेणीमें पाए जानेवाले तीन-तीन-गुणस्थानोंको तथा उपशान्तकषायगुणस्थानवाले जीव दोगुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किस-किस गुणस्थानवर्तीजीव किस-किस गुणस्थानको प्राप्त होता है—

सासणपमत्तवज्जं, अपमत्तंतं समल्लियइ मिच्छो।
मिच्छत्तं बिदियगुणो, मिस्सो पढमं चउत्थं च ॥५५७॥
अविरदसम्मो देसो, पमत्तपरिहीणमप्पमत्तंतं।
छट्ठाणाणि पमत्तो, छट्ठगुणं अप्पमत्तो दु ॥५५८॥जुम्मं॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानवाला जीव सासादन और प्रमत्तगुणस्थानके बिना मिश्रसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यंन्त चारगुणस्थानोंको प्राप्त होता है। सासादनगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्वको एवं मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थानको प्राप्त होता है। असंयत व देशसंयतगुणस्थानवर्ती प्रमत्तगुणस्थानके बिना अप्रमत्तगुणस्थानपर्यंन्त पांच गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं अर्थात् असंयतसम्यग्दृष्टिजीव मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, देशसंयत और अप्रमत्त इन पांच गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं तथा देशसंयतगुणस्थानवाले मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होते हैं। प्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव मिथ्यात्वसे अप्रमत्तपर्यन्त छहगुणस्थानोंको तथा अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती एक मात्र प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होता है और 'तू' शब्दसे अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती यदि उपशम और क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है तो अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त होता है। अप्रमत्तजीव मरणकरके देवअसंयत होकर चतुर्थगुणस्थानको भी प्राप्त करता है ऐसा समझना।

उवसामगा दु सेढिं, आरोहंति य पडंति य कमेण।
उवसामगेसु मरिदो, देवतमत्तं समल्लियई ॥५५९॥

अर्थ—अपूर्वकरणादि गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवालेजीव उपशमश्रेणीमें आरोहण (चढ़ना) एवं अवरोहण (उतरना) क्रमसे ही करते हैं। अतः आरोहणकी अपेक्षा ऊपरका एकगुणस्थान तथा अवरोहणकी अपेक्षा नीचेका एक गुणस्थान ऐसे दो गुणस्थान और उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षा चतुर्थगुणस्थान भी होता है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें मरणको प्राप्त जीव देव असंयत होते हैं। इसप्रकार उपशमश्रेणिमें होनेवाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीवोंके तीन-तीन गुणस्थान होते हैं। उपश्रमश्रेणी पर आरोहण करनेवाला उपशान्तकषायगुणस्थानसे आगे नहीं बढ़ता अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां गिरनेकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान एवं मरण हो जावे तो देव असंयत होनेसे चतुर्थगुणस्थान इसप्रकार दो गुणस्थान उपशान्तकषायवर्तीजीवके होते हैं ।

विशेषार्थ—यहां गतिकी अपेक्षा नारको मिथ्यादृष्टि तो मिश्र व असंयतगुणस्थानको, सासादनगुणस्थानवाला मिथ्यात्वको; मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व तथा असंयतको, असयतगुणस्थानवाला मिथ्यात्व-सासादन व मिश्रको प्राप्त होता है । तिर्यञ्चमिथ्यादृष्टि मिश्र-असयत और देशसंयतगुणस्थानको; सासादनवर्ती मिथ्यात्वको; मिश्रगुणस्थानवाला मिथ्यात्व एवं असंयतको; असंयतगुणस्थानवर्ती देशसंयतपर्यन्त चारगुणस्थानोंको तथा देशसंयतगुणस्थानवाला चार गुणस्थानोंको प्राप्त होता है । मनुष्य मिथ्यादृष्टि सासादन व प्रमत्तके बिना अप्रमत्तपर्यन्त चार गुणस्थानोंको; सासादनवर्ती मिथ्यात्वको, मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व-असंयतको; असंयतवाला प्रमत्तबिना अप्रमत्तपर्यन्त पांच गुणस्थानोंको; देशसंयतवर्ती प्रमत्तबिना अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त पांच गुणस्थानोंको; प्रमत्तवर्ती अप्रमत्तपर्यन्त छहको; अप्रमत्तवर्ती प्रमत्त व अपूर्वकरणको एवं मरण हो तो देव असंयतको; अपूर्वकरणवाला श्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरणको और उतरते हुए अप्रमत्तको तथा मरण होनेपर देव असंयतको प्राप्त होता है । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवाला श्रेणी चढ़ते हुए सूक्ष्मसाम्परायको और उतरते हुए अपूर्वकरण एवं मरण होनेपर देव असंयतको; सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती चढ़ते हुए उपशान्तकषायको तथा उतरते हुए अनिवृत्तिकरणको, मरण होनेपर देव असंयतको; उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायको, मरण होनेपर देव असंयतको प्राप्त होता है । क्षपकश्रेणीमें चढ़ना ही है उतरना नहीं इसलिए अपूर्वकरणगुणस्थानवाला अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको अनिवृत्तिकरणवाला सूक्ष्मसाम्परायको तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती क्षीणकषायको, क्षीणकषायगुणस्थानवाला सयोगीगुणस्थानको, सयोगी अयोगीगुणस्थानको, अयोगीको, अयोगी सिद्धपदको प्राप्त होते हैं । मिथ्यादृष्टि देव मिश्र व असंयतगुणस्थानको, सासादनवाला मिथ्यात्वको, मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थानको तथा असंयतगुणस्थानवाला मिथ्यात्व-सासादन और मिश्रगुणस्थानको प्राप्त होता है ।

अथानन्तर किस-किसगुणस्थानवाले जीव मरणको प्राप्त नहीं होते यह कहते हैं—

मिस्सा आहारस्स य, खवगा चडमाणपढमपुव्वा य ।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥५६०॥

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणसंजोजिदमिच्छे, मुहुत्तअंतं तु णत्थि मरणं तु ।
किदकरणिज्जं जाव दु, सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥५६१॥ जुम्मं॥

अर्थ—मिश्रगुणस्थानवर्ती, आहारकमिश्रकाययोगी, क्षपकश्रेणीवाले, उपशमश्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागवर्ती, प्रथमोपशमसम्यक्त्वी, सप्तमनरकके द्वितीय, तृतीय और चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव मरणको प्राप्त नहीं होते । अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनकर मिथ्यात्वको प्राप्त जीवका अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मरण नहीं होता तथा दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाला जीव जबतक कृतकृत्यवेदक होता है तबतक मरण नहीं करता । कृतकृत्यता होनेके पश्चात् ही मरण करता है । अथवा जबतक कृतकृत्यवेदक है तबतक मरण नहीं होता ।

आगे बद्धायुष्ककृतकृत्यवेदकके प्रति पूर्वोक्त तीनस्थानोंमें सर्व परस्थानोंके अर्थवान् पदोंको कहते हैं—

देवेसु देवमणुवे सुरणरतिरिये चउग्गईसुं पि ।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमसो अंतोमुहुत्तेण ॥५६२॥

अर्थ—कृतकृत्यवेदकका काल अन्तर्मुहूर्त है इसके चार भाग करना । क्रमसे प्रथमभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरण करनेवाला जीव देवोंमें उत्पन्न होता है । द्वितीयभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरनेवाला देवोंमें या मनुष्योंमें, तृतीयभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरणकर देव, मनुष्य या तिर्यञ्चोंमें तथा चतुर्थभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरणको प्राप्त जीव देव-मनुष्य-तिर्यञ्च या नरकोंमेंसे किसी एकस्थानमें जन्म लेता है ।

विशेषार्थ—बावीसाए विहत्तीओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे समत्ते सेसे[2] । (चूर्णिसूत्र) जइवसहाइरियस्स बे उवएसा । तत्थ कदकरणिज्जो ण मरदि त्ति उवदेसमस्सिदूण एदं सुत्तं कदं, तेण मणुस्सा चेव बावीसविहत्तिया त्ति सिद्धं कदकरणिज्जो मरदि त्ति उवएसो जइवसहाइरियस्स अत्थि त्ति कथं णव्वदे ? 'पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि णियमा देवेसु उववज्जदि । जदि णेरइएसु तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उववज्जदि तो णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो' त्ति जइवसहाइरियपरूविदचुण्णिसुत्तादो ।

१. प्रा० पं० स० पृ० ११७ गाथा १३ (टीकागत) । २. जयधवल पु० २ पृ० २१३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यतिवृषभाचार्यके दो उपदेश हैं। उनमेंसे कृतकृत्यवेदीजीव मरण नहीं करता है इस उपदेशका आश्रय लेकर यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है, इसलिए मनुष्य ही बाईस-प्रकृतिक स्थानके स्वामी होते हैं यह बात सिद्ध होती है।

शङ्का—कृतकृत्यवेदी जीव मरता है यह उपदेश यतिवृषभाचार्यका है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'कृतकृत्यवेदक जीव यदि कृतकृत्य होनेके प्रथमसमयमें मरण करता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है, किन्तु जो कृतकृत्यवेदक जीव नारकी, तिर्यञ्च और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है वह नियमसे अन्तर्मुहूर्तकालतक कृतकृत्यवेदक रहकर ही मरता है' इसप्रकार यतिवृषभाचार्यके द्वारा कहे गए चूर्णिसूत्रसे जाना जाता है कि कृत-कृत्यवेदक जीव मरता है[1]।

अब नामकर्मके बन्धस्थानोंको कहते हैं—

तिविहो दु ठाणबंधो भुजगारप्पदरवट्ठिदो पढमो।
अप्पं बंधंतो बहुबंधे बिदियो दु विवरीयो ॥५६३॥
तदियो सणामसिद्धो सव्वे अविरुद्धठाणबंधभवा।
ताणुप्पत्तिं कमसो भंगेण समं तु वोच्छामि ॥५६४॥जुम्मं॥

अर्थ—नामकर्मके बन्धस्थान तीनप्रकारके हैं, तद्यथा—भुजाकार, अल्पतर और अवस्थित। पूर्वमें अल्पप्रकृतियोंका बन्ध करता था पश्चात् अधिक प्रकृतियोंको बांधने लगे तो यह भुजाकारबन्ध कहलाता है। पहले अधिक प्रकृतियां बांधता था पीछे अल्पप्रकृतियां बांधे तो यह अल्पतरबन्ध है। जितनी प्रकृतियां पूर्वमें बन्धती थीं पश्चात् भी उतनी ही प्रकृतियां बन्धे सो यह अवस्थितबन्ध है। ये भुजकारादिबन्ध अविरुद्ध बन्धस्थानोंसे उत्पन्न होते हैं अतः उनकी उत्पत्तिके क्रमको भङ्गोंसहित आगेकी गाथामें कहेंगे।

भूबादरतेवीसं बंधंतो सव्वमेव पणुवीसं।
बंधदि मिच्छादिट्ठी एवं सेसाणमाणेज्जो ॥५६५॥

---

१. जयधवल पु० २ पृ० २१५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—बादर पृथ्वीकायादि जीव २३ प्रकृतिरूप स्थानके सर्वभंगोंका बन्ध करते हुए २५ प्रकृतिरूप स्थानके सभी भङ्गोंको बांधते हैं सो एक यह भुजगारबन्ध है। इसीप्रकार मिथ्यादृष्टिके नामकर्मसम्बन्धी शेष सभी बन्धस्थानोंमें भी बन्धके भङ्ग जानना चाहिए।

जसकित्ती बंधंतो अडवीसाई हु एक्कतीसंता।
तेवीसाई बंधइ तीसंता हवंति भुजयारा ॥२५८॥
इगितीसंता बंधइ बंधंतो अट्ठवीसाई।

अर्थ—एक यश:कीर्तिका बन्ध करता हुआ अट्ठाईसप्रकृतिको आदि लेकर इकतीसप्रकृतिपर्यन्तके स्थानोंका बन्ध करता है। इसीप्रकार २३ आदि प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध करनेवाला जीव २५ प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर तीसप्रकृतिक स्थान-पर्यन्त स्थानोंको बांधता है तथा २८ आदि प्रकृतिक स्थानोंको बांधता हुआ जीव २९ प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त स्थानोंका बन्ध करता है। इसप्रकार नामकर्मके २२ भुजकारबन्धस्थान होते हैं। भुजकार बन्धस्थानोंकी अङ्क-सन्दृष्टि इसप्रकार है—

स्वस्थान भुजकारबन्धस्थान संख्या	४	५	४	३	३	२	१
	भु०	भु०	भु०	भु०	भु०	भु०	भु०
	१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
	२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
	२९	२६	२८	२९	३०	३१	
	३०	२८	२९	३०	३१		
	३१	२९	३०				
		३०					

इसप्रकार नामकर्मके (४+५+४+३+३+२+१) २२ भुजकारबन्धस्थान होते हैं।

विशेषार्थ—अब पूर्वमें जो बादरपृथ्वीकायादि ४१ पद कहे थे उनमें भङ्ग-सहित स्थानोंका कथन करते हैं—अपर्याप्तपृथ्वी-अप्-तेज-वायु और साधारणवनस्पति-कायके सूक्ष्म-बादर तथा प्रत्येकवनस्पति इसप्रकार अपर्याप्त एकेन्द्रियके ११ भेदोंसहित २३ प्रकृतिका बन्ध करनेवालोंके स्थान ११ प्रकार हैं। यहां भंग एक-एक ही हैं अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन ११ स्थानोंके ११ भंग हैं। २५ प्रकृतिकके बन्धमें बादरपर्याप्त-पृथ्वीकाय-अप्काय-तेजकाय-वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकायरूप पांचभेदोंसहित बंध करनेवाले स्थिर-शुभ और यशस्कीर्तियुगलोंकी प्रकृतियोंकी चालना (परिवर्तन) से आठ-आठ भंग पाए जाते हैं अतः सर्वभंग ४० हुए। पर्याप्तबादर-साधारण और सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायु तथा साधारणवनस्पतिकायरूप छह भेदसहित स्थिर व शुभयुगलोंकी प्रकृतियोंकी चालनासे चार-चार भंगोंकी अपेक्षा २४ भंग तथा अपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असञ्ज्ञी-सञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्य इन छह अपर्याप्तरूप भेदोंमें मात्र अप्रशस्तप्रकृतियोंका ही बन्ध होनेसे ६ भंग हुए। इसप्रकार २५ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके (४०+२४+६) सर्वभंग ७० हुए। २६ प्रकृतिके स्थानमें बादरपृथ्वीकायसहित आतप और उद्योतयुक्त दो स्थान एवं अप्काय और वनस्पतीकायसहित उद्योतयुक्त दो स्थान ऐसे चारस्थानोंमें स्थिर-शुभ और यशस्कीर्तियुगलकी चालना आठ-आठभंगकी अपेक्षा (८×४) ३२ भंग हैं।

देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें स्थिरादि पूर्वोक्त तीनयुगलोंसे आठ-भंग और नरकगतिसहित इसी स्थानमें अप्रशस्तप्रकृतियोंके ही बन्धकी अपेक्षासे एकभंग इसप्रकार २८ प्रकृतिके स्थानमें ९ भंग होते हैं। २९ प्रकृतिके स्थानमें पर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय एवं पञ्चेन्द्रियरूप चार भेदोंसे सहित पूर्वोक्त स्थिरादि तीनयुगलकी अपेक्षा आठ-आठ भंग होनेसे ३२ भंग तथा तिर्यञ्च व मनुष्यगतिसहितस्थानोंमें ६ संस्थान, ६ संहनन व स्थिरसे विहायोगतिपर्यन्त सातयुगलोंकी प्रकृतियोंकी चालना (परिवर्तन) से ४६०८+४६०८=९२१६ भङ्ग हुए। इसप्रकार ९२१६में पूर्वोक्त ३२ भङ्ग मिलानेसे २९ प्रकृतिक स्थानमें सर्वभङ्ग (९२१६+३२=) ९२४८ हैं। ३० प्रकृतिकके स्थानमें उद्योतसहित पर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-त्रींद्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-संयुक्त भेदोंमें स्थिर, शुभ और यशस्कीर्तिरूप तीनयुगलोंकी चालनासे आठ-आठ भंगकी विवक्षा है अतः ८×४=३२ भङ्ग एवं उद्योतयुत सञ्ज्ञी तिर्यञ्चरूप एकस्थानमें ६ संस्थान, ६ संहनन और पूर्वोक्त स्थिरसे विहायोगतिपर्यन्त सातयुगलोंकी अपेक्षा ४६०८ भङ्ग हैं। इसप्रकार ३० प्रकृतिरूप स्थानमें ३२+४६०८=४६४० सर्वभङ्ग जानना। ये सर्वभङ्ग मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी हैं। अब उपर्युक्त भङ्गसम्बन्धी भुजकारादि बन्धोंको नानाकालकी अपेक्षा कहते हैं—

पूर्वमें २३ प्रकृतिक स्थानको बांधता था पश्चात् २५-२८ आदि प्रकृतिको बांधने लगा यही भुजाकार बन्ध है। यहां बादरपृथ्वीकायसहित २३ प्रकृतिरूप स्थानके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक भङ्गको बांधता था पश्चात् २५ प्रकृतिके स्थानको आदि लेकर सर्वस्थानोंके भंगोंको बांधता है तो २३ प्रकृतिक स्थानके ११ भङ्गोंको बांधते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तो २३ प्रकृतिक बन्धस्थानका एक ही भेद, फलराशि अनुक्रमसे २५ प्रकृतिक स्थानके ७०, २६ प्रकृतिक बन्धस्थानके ३२, २८ प्रकृतिक बन्धस्थानके ९, २९ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके ९२४८ और ३० प्रकृतिरूप स्थान-के ४६४० भंग हैं। इच्छाराशि सर्वत्र २३ प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग हैं अतः फल-राशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेसे सर्वभेदोंका प्रमाण आता है। इसप्रकार यहां इच्छाराशिका प्रमाण ११ और फलराशि ७०+३२+९+९२४८+४६४०=१३,९९९ भंग और प्रमाणराशि १। $\frac{१३,९९९\times११}{१}$ = १,५३,९८९ भेद हुए सो ये २३ प्रकृतिरूप स्थानके भुजाकार भंग हुए तथा २५ प्रकृतिका बन्धकर पश्चात् २६ प्रकृतिरूप स्थानसे ३० प्रकृतिक स्थानपर्यंन्त सर्वस्थानोंको बांधता है तब भुजाकार बन्ध होता है। एकभेदरूप २५ प्रकृतिके स्थानका बन्धकर पश्चात् २६ आदि प्रकृतियों-के सर्वभंगोंका बन्ध होता है तो २५ प्रकृतिरूप स्थानके ७० भंगोंको बांधते हुए कितने भंगोंका बन्ध करेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर सर्वत्र प्रमाणराशि २५ प्रकृतिरूप एकस्थान, फलराशि क्रमसे २६ प्रकृतिक स्थानके ३२ भंग, अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके ९, उनतीस प्रकृतिक स्थानके ९२४८ और तीस प्रकृतिक स्थानके ४६४० भंग और इच्छा-राशि पचीसप्रकृतिक स्थानके ७० भंग। सो फलराशि ३२+९+९२४८+४६४०=१३,९२९ को इच्छाराशिके प्रमाण ७० से गुणा करनेपर १३,९२९×७०=९,७५,०३० ये २५ प्रकृतिकस्थानके भंग हुए। प्रमाणराशिका प्रमाण यहां भी एक ही था। २६ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करके २८ आदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है अतः भुजाकारबन्ध है। छव्वीस प्रकृतिरूपस्थानके एक भंगका बन्ध करनेके अनन्तर अट्ठाईस आदि प्रकृतियों-के सर्वभंगोंका बन्ध करे तो २६ प्रकृतिक स्थानके ३२ भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंका बन्ध करेगा ? इसप्रकार यहां त्रैराशिकविधि करना। प्रमाणराशि तो २६ प्रकृतिक स्थानका एक भेद, फलराशि क्रमसे २८ प्रकृतिक स्थानके ९, उनतीस प्रकृतिक स्थानके ९२४८, तीसप्रकृतिक स्थानके ४६४० भंग हैं तथा इच्छाराशि छव्वीसप्रकृतिक स्थानके ३२ भंग हैं। फलराशि ९+९२४८+४६४०=१३,८९७ को इच्छाराशिके प्रमाण ३२ से गुणा करनेपर (१३८९७×३२) ४,४४,७०४ प्रमाण छव्वीस प्रकृतिरूप स्थानके भंग जानने। २८ प्रकृतिका बन्ध करके पश्चात् उनतीस व ३० प्रकृतिका बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है सो यह भुजाकारबन्ध है। अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थानके एक भेदका बन्धकरके २९ व ३० प्रकृतिके सर्वभंगोंका बन्ध करता है तो अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थानके ९ भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक विधि करनेपर यहां प्रमाणराशि २८ प्रकृतिक बन्धस्थानरूप एकभेद, इच्छाराशि २८ प्रकृतिक स्थानके ९ भंग तथा फलराशि क्रमसे उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ और ३० प्रकृतिरूप स्थानके ४६४० भंग हैं। फलराशि ९२४८+४६४०=१३,८८८ को इच्छाराशि ९ से गुणा करनेपर (१३,८८८×९) १,२४,९९२ भंग २८ प्रकृतिक स्थानके जानना। उनतीस प्रकृतिका बन्ध करके अनन्तर तीस प्रकृतियोंके स्थानको बांधता है तो भुजाकारबन्ध होता है। २९ प्रकृतियोंके एक भेदको बांधकर ३० प्रकृतियोंके सर्व ४६४० भंगोंको बांधता है तो २९ प्रकृतियोंके ९२४८ भंगोंको बांधते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिकविधिमें प्रमाणराशि उनतीस प्रकृतिके स्थानका एकभेद, इच्छाराशि उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ भंग फलराशि ३० प्रकृतिक स्थानके ४६४० भंग। फलराशि ४६४० को इच्छाराशि ९२४८ से गुणाकरके प्रमाणराशि १ का भाग देनेपर $\frac{४६४०\times९२४८}{१}$=४,२९,१०.७२० भंग उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके भुजाकार जानना। इस सम्बन्धमें प्राकृत पंचसंग्रह (ज्ञानपीठ) पृ० ३३७ से ३४९ तक भी देखना चाहिए। विस्तारके भयसे यहांपर नहीं लिखा गया है।

तेवीसट्ठाणादो मिच्छत्तीसोत्ति बंधगो मिच्छो।
णवरि हु अट्ठावीसं पंचिंदियपुण्णगो चेव ॥५६६॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धयोग्य २३ प्रकृतिकस्थानसे ३० प्रकृतिरूप स्थानपर्यन्त स्थानोंके भुजाकारोंका बन्ध करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव ही है। यहां विशेषता यह है कि २८ प्रकृतिक स्थानको पञ्चेन्द्रियपर्याप्त ही बांध सकता है।

अथानन्तर भोगभूमिज जीवोंके नामकर्मसम्बन्धी बन्धस्थान कहते हैं—

भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो मिच्छो य मिच्छगअपुण्णे।
तिरिउगतीसं तीसं णरउगुतीसं च बंधदि हु ॥५६७॥

अर्थ—भोगभूमिमें पर्याप्तपञ्चेन्द्रियसम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि और 'च' शब्दसे निर्वृत्त्यपर्याप्तसम्यग्दृष्टि जीव देवगतिसहित २८ प्रकृतियोंको ही बांधते हैं तथा निर्वृत्त्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चगतिसहित २९ व ३० प्रकृतिरूप स्थानको और मनुष्यगति-सहित २९ प्रकृतिक स्थानको बांधता है।

मिच्छस्स ठाणभंगा एयारं सदरि दुगुणसोल णवं।
अडदालं बाणउदी सदाण छादाल चत्तधियं ॥५६८॥

अर्थ—पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टिजीवके बन्धस्थानोंमें २३ प्रकृतिक स्थानके ११२५ प्रकृतिकस्थानके ७०, २६ प्रकृतिक स्थानके ३२, अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानके ९, उनतीस-प्रकृतिक स्थानके ९२४८ और ३० प्रकृतिकस्थानके ४६४० भंग हैं। इसप्रकार स्थान और उनके भंग जानना।

आगे अल्पतर भङ्गोंका कथन करते हैं—

विवरीयेणप्पदरा होंति हु तेरासिएण भंगा हु।
पुव्वपरट्ठाणाणं भंगा इच्छा फलं कमसो ॥५६९॥

अर्थ—भुजाकारबन्धके भंगोंकी संख्या प्राप्त करनेके लिए जिस क्रमसे त्रैराशिक विधिकी थी उससे विपरीत क्रमसे त्रैराशिक विधि करनेपर अल्पतरभंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है। पूर्वस्थानके भंगोंको इच्छाराशि तथा आगे-आगेके स्थानोंके भंगोंको फलराशि माननेपर अनुक्रमसे अल्पतरबन्धके भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—

तीसाइ तेवीसंता तह तीसुगुतीसमेक्कमिगितीसं ॥२५९॥
इक्कं बंधइ णियमा अडवीसुगुतीस बंधंतो।
उवरदबंधो हेट्ठा एक्कं देवेसु तीसमुगुतीसा ॥२६०॥

अर्थ—३० प्रकृतिकस्थानको आदि लेकर २३ प्रकृतिक स्थानपर्यन्तके स्थानोंको बांधनेपर तथा ३१ प्रकृतिक स्थानको बांधकर २९ और एक प्रकृतिक स्थानको बांधनेपर अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक स्थानको बांधनेवाला एक प्रकृतिका बन्ध करता है तो अल्पतरबन्धस्थान होते हैं। अङ्क सन्दृष्टि इसप्रकार है—

स्वस्थान अल्पतरबन्धस्थान संख्या—	५	४	३	२	१	३	१	१	१
अल्पतर	३०	२९	२८	२६	२५	३१	२८	२९	३०
बन्ध-	२९	२८	२६	२५	२३	३०	१	१	१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानोंमें	२८	२६	२५	२३	२९
प्रकृति	२६	२५	२३		१
संख्या	२५	२३			
	२३				

अवक्तव्यबन्धस्थान—उपरत बन्धवाला नीचे उतरकर एक प्रकृतिका बन्ध करता है अथवा मरकर देवोंमें उत्पन्न हो तीस अथवा २९ प्रकृतियोंको बांधता है।

तीन अवक्तव्य बन्धस्थानोंकी अङ्क सन्दृष्टि— ०
१
३०
२९

पूर्वमें तीस प्रकृतियोंका बन्ध करता था पश्चात् उनतीसआदि प्रकृतियोंका बन्ध करे तो यह अल्पतरबन्ध कहलाता है। यहां तीस प्रकृतिरूप स्थानके एकभङ्गका बन्धकरके उनतीसआदि प्रकृतिरूप स्थानोंके सर्वभङ्गोंका बन्ध करे तो तीसप्रकृतिरूप स्थानके ४६४० भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंका बन्ध करेगा ? इसप्रकार त्रैराशिकविधिके होनेपर प्रमाणराशि तो तीसप्रकृतिरूप स्थानका एक भेद है, फलराशि क्रमसे उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८, अट्ठाईसप्रकृतिके ९, छब्बीसप्रकृतिके ३२, पचीसप्रकृतिरूप स्थानके ७० और तेईसप्रकृतिरूप स्थानके ११ भङ्ग हैं इन सभीको परस्परमें जोड़ देनेपर ९२४८+९+३२+७०+११=९३७० फलराशिका प्रमाण हुआ तथा सर्वत्र इच्छाराशिका प्रमाण तीसप्रकृतिके ४६४० भङ्ग हैं। इच्छाराशिसे फलराशिको गुणा करनेपर और प्रमाणराशि एकसे भाग देनेपर $\frac{९३७० \times ४६४०}{१}$ = ४,३४,७६,८०० प्रमाण ३० प्रकृतिरूप स्थानसम्बन्धी अल्पतरके भङ्ग हुए। उनतीसप्रकृतिका पूर्वमें बन्ध करता था अनन्तर २८ आदि प्रकृतियोंका बन्ध करे तब अल्पतरबन्ध होता है। अतः उनतीसप्रकृतिके एकभंगका बन्धकरके २८ आदि प्रकृतियोंके सर्वभंगोंका बन्ध करता है तो उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ भंगका बन्ध करते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर यहां प्रमाणराशि तो उनतीस प्रकृतिके स्थानका एक भेद, फलराशि क्रमसे अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके ९, २६ प्रकृतिक स्थानके ३२, पचीसप्रकृतिके ७० और तेईसप्रकृतिके ११ भंग जानना। इन सबको परस्पर मिला देनेसे ९+३२+७०+११=१२२ यह फलराशिका प्रमाण हुआ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छाराशि उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ भेद (भंग) जानना। फलराशि १२२ को इच्छाराशि ९२४८ से गुणा करनेपर और प्रमाणराशि एक का भाग देनेपर $\frac{१२२ \times ९२४८}{१}$ = ११,२८,२५६ प्रमाण उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानके अल्पतरभंग हैं। २८ प्रकृतिरूप स्थानके १ भेदका बन्ध करके छब्बीसआदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है सो यह अल्पतर बन्ध है। यहां अट्ठाईसप्रकृतिके एक भंगका बन्धकरके छब्बीसआदि प्रकृतियोंके सर्वभंगोंका बन्ध करता है तो अट्ठाईसप्रकृतिके ९ भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तो अट्ठाईसप्रकृतिरूप स्थानका एक भेद, फलराशि छब्बीसप्रकृतिके ३२, पचीसप्रकृतिके ७० तथा तेईसप्रकृतिरूप स्थानके ११ भङ्ग हैं इन सभीको परस्पर जोड़ देनेपर ३२+७०+११= ११३ और इच्छाराशि अट्ठाईसप्रकृतिके ९ भङ्गरूप है। फलराशि ११३ को इच्छाराशि ९ से गुणाकर प्रमाणराशि १ का भाग देनेसे $\frac{११३ \times ९}{१}$ = १०१७ प्रमाण अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थानके अल्पतरभंग हुए।

पूर्वमें २६ प्रकृतिका बन्ध करता था अनन्तर २५ व २३ प्रकृतिका बन्ध करनेसे यहां अल्पतरबन्ध हुआ। छब्बीस प्रकृतिके एक भङ्गका बन्ध करता था तब पचीसआदि प्रकृतिके सर्वभङ्गोंको बांधने लगा तो छब्बीसप्रकृतिके ३२ भंगोंको बांधते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिकविधि करनेपर प्रमाणराशि छब्बीसप्रकृतिरूप स्थानका एक भेद, फलराशि पचीसप्रकृतिरूप स्थानके ७० और २३ प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग जानना। इच्छाराशि २६ प्रकृतिरूप स्थानके ३२ भंग हैं, अतः ७०+११=८१ प्रमाण फलराशिको इच्छाराशि ३२ से गुणा करनेपर और प्रमाणराशि १ से भाग देनेपर $\frac{८१ \times ३२}{१}$ = २५९२ प्रमाण छब्बीसप्रकृतिरूप स्थानके अल्पतरभेद जानना। पुनश्च २५ प्रकृतिका बन्ध करके पश्चात् २३ प्रकृतिका बन्ध करने लगा सो यह अल्पतरबन्ध है। २५ प्रकृतिरूप स्थानके १ भंगका बन्ध करके २३ प्रकृतिके सर्वभंगोंको बांधता है तो २५ प्रकृतिके ७० भंगोंको बांधते हुए कितने भंगोंको बांधेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तो पचीस प्रकृतिका एक भेद, फलराशि २३ प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग तथा इच्छाराशि पचीसप्रकृतिके ७० भंग। यहां फलराशि ११ को इच्छाराशि ७० से गुणाकर प्रमाणराशि १ का भाग देनेसे $\frac{११ \times ७०}{१}$ = ७७० प्रमाण २५ प्रकृतिरूप स्थानके अल्पतर भेद हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब पूर्वमें कथित भेदोंको त्रैराशिकबिना संक्षेपसे जाननेकी विधि कहते हैं--

लघुकरणं इच्छंतो एयारादीहिं उवरिमं जोग्गं ।
संगुणिदे भुजगारा उवरीदो होंति अप्पदरा ।।५७०।।

अर्थ—जो व्यक्ति संक्षेपसे जानना चाहता है उसे समझाना है कि ११ आदि अङ्कोंसे आगेके सर्वभेदोंका जोड़कर गुणा करनेपर तो भुजाकारबन्धके भंगोंका प्रमाण आता है तथा ३० आदि प्रकृतिरूप स्थानोंके भंगोंसे २९ आदि सर्वप्रकृतिरूप बन्धस्थानों के भंगोंको जोड़कर गुणा करनेपर अल्पतरबन्धके भंगोंका प्रमाण निकलता है ।

विशेषार्थ—अल्पतर भंगोंकी तथा भुजाकार भंगोंकी सन्दृष्टि निम्न प्रकार जानना ।

अल्पतरभंगोंकी सन्दृष्टि—

प्रकृतिरूप स्थान	गुण्य	गुणाकार	लब्ध
३०	९३७०	४६४०	४,३४,७६,८००
२९	१२२	९२४८	११,२८,२५६
२८	११३	९	१०१७
२६	८१	३२	२५९२
२५	११	७०	७७०

भुजाकारभंगोंकी सन्दृष्टि—

प्रकृतिरूप स्थान	गुण्य	गुणाकार	लब्ध
२३	११	१३,९९९	१,५३,९८९
२५	७०	१३,९२९	९,७५,०३०
२६	३२	१३,८९७	४,४४,७०४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८	६	१३,८८८	१,२४,६६२
२९	६२४८	४६४०	४,२९,१०,७२०

अब अवस्थितभङ्गोंकी संख्या कितनी होती है सो कहते हैं—

भुजगारप्पदराणं भंगसमासो समो हु मिच्छस्स।
पणतीसं चउणउदी सट्ठी चोदालमंककमे ॥५७१॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें कहे हुए भुजाकार और अल्पतरकी संख्या समान है और वह पैंतीस, चौरानवे, साठ और चवालीसके अङ्कोंको "अङ्कानां वामतो गतिः" के क्रमसे रखनेपर ४,४६,०९,४३५ प्रमाण होती है सो यह भुजाकारोंकी संख्या है, इतनी ही अल्पतरोंकी भी संख्या है और इन दोनों संख्याओंको मिलावेसे ८,९२,१८,८७० प्रमाण अवस्थितभंगोंकी संख्या होती है, क्योंकि भुजाकार व अल्पतर-भंगोंमें जिस-जिस प्रकृतिका बन्ध होवे उसी प्रकृतिका द्वितीयादि समयमें जहां बन्ध होवे वहां अवस्थितबन्ध होता है। यहां परस्पर भंगोंका गुणा करके भुजाकारादिभंग निकालने-का अभिप्राय यही है कि एक-एक भंगसे अन्यभंगोंकी अपेक्षा भुजाकारादि जानना। यहां तक मिथ्यात्व गुणस्थानकी अपेक्षा कथन है।

आगे भुजाकारादिभंगोंको असंयतगुणस्थानमें कहते हैं—

देवट्ठवीस णरदेवुगुतीस मणुस्सतीस बंधयदे।
तिछणवणवदुगभंगा तित्थविहीणा हु पुणरुत्ता ॥५७२॥

अर्थ—असंयतगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिकस्थानमें, मनुष्य या देवगति-सहित २९ प्रकृतिके स्थानमें एवं मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिकस्थानमें ३६ ९९२ भुजा-कारभंग होते हैं। इनमें जो तीर्थङ्करप्रकृति रहित भंग हैं वे पुनरुक्त हैं, क्योंकि वे मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें अन्तर्हित हो जाते हैं।

पुनश्च इसीको स्पष्ट करते हैं—

देवट्ठवीसबंधे देवमुतीससम्मि भंग चउसट्ठी।
देवुगुतीसे बंधे मणुवत्तीसेवि चउसट्ठी ॥५७३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मनुष्य असंयतगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध करके देवगति और तीर्थङ्करसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है तब दोनों स्थानोंके ८-८ भंगोंका परस्परमें गुणा करनेसे ६४ भंग होते हैं। पुनः असंयतमनुष्य तीर्थङ्कर व देवगतिसहित २९ प्रकृतिका बन्धकरके पश्चात् असंयतदेव या नारकी होकर तीर्थङ्कर और मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिको बांधता है तब भी ६४ ही भंग होते हैं।

तित्थयरसत्तणारयमिच्छो णरउणतीसबंधो जो।
सम्मम्मि तीसबंधो तियछक्कडछक्कचउभंगा ॥५७४॥

अर्थ—तीर्थङ्करके सत्त्वसहित द्वितीय-तृतीय नरकके मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानका ४६०८ भंगसे सहित बन्ध करता है पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त करके तीर्थङ्कर व मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिको बांधता है अत: इसके ८ भंगोंका ४६०८ में गुणा करनेपर ४६०८×८ = ३६,८६४ भंग होते हैं इनमें पूर्वगाथामें कथित १२८ भंगोंको जोड़ देनेसे असंयतगुणस्थानमें ३६,९९२ भुजाकार होते हैं।

अथानन्तर असंयतगुणस्थानके अल्पतर भंग कहते हैं—

बावत्तरि अप्पदरा देवुगुतीसा दु णिरयअडवीसं।
बंधंत मिच्छभंगेणवगयतित्था हु पुणरुत्ता ॥५७५॥

अर्थ—जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध किया है ऐसा असंयतमनुष्य तीर्थङ्कर-प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करके तीर्थङ्कर और देवसहित २९ प्रकृतिका ८ भंगसहित बन्ध करता हुआ नरकगतिके सम्मुख होकर अन्तर्मुहूर्तके लिए मिथ्यादृष्टि होता है तब नरक-गतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध करता है उसका एक भंग है इनको परस्परमें गुणा करने पर ८×१=८ भंग जानना। तथा असंयतदेव या नारकी तीर्थङ्कर व मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिक स्थानको बांधता है उसके ८ भंग हैं। पश्चात् वह मरणकर तीर्थङ्कर-प्रकृतिके सत्त्वसहित माताके गर्भमें उत्पन्न हुआ वहां तीर्थङ्कर व देवसहित २९ प्रकृतिके स्थानको बांधता है उसके भी ८ भंग होते हैं इनको परस्परमें गुणा करनेसे ८×८=६४ भंग हुए। इनमें पूर्वोक्त ८ भंग मिलानेसे ६४+८=७२ अल्पतरभंग असंयतसम्बन्धी हैं। तीर्थङ्करसे रहित मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिको बांधकर पीछे देवगतिसहित २८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

प्रकृतिको बांधे तो उसके ६४ अल्पतरभंग होते हैं ये पुनरुक्त भंग भी मिथ्यादृष्टिसंबंधी भंगोंके साथ ही कह आए हैं ।

सन्दृष्टि---

असंयतके भुजाकार			असंयतके अल्पतर			असंयतके भंगोंका योग
६४ ८X८	६४ ८X८	३६,८६४ ८X४६०८	८ ८X१	६४ ८X८	पुनरुक्त ६४ ८X८	भुजाकार ३६,९९२,
देव. २९ ८	मनु. ३० ८	मनु. ३० ८	नरक २८ १	देव. २९ ८	देव. २८ ८	अल्पतर ७२
देव. २८ ८	देव. २९ ८	मनु. २९ ४६०८	देव. २९ ८	मनु. ३० ८	मनु. २९ ८	अवस्थित ३७,०६४

आगे प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें भुजाकारभंगोंको कहते हैं---

देवजुदेक्कट्ठाणे णरतीसे अप्पमत्तभुजयारा ।
पणदालिगिहारुभये भंगा पुणरुत्तगा होंति ॥५७६॥

अर्थ---प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिरूप एकस्थानको बांधता था पश्चात् अप्रमत्त होकर ८ भङ्गसंयुक्त आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिक स्थान का बन्ध करने लगा इसीप्रकार तीर्थङ्करसहित २८ से २९ प्रकृति तथा तीर्थङ्कर और आहारकद्विकसहित २९ से ३१ प्रकृतिरूप एवं ३० से ३१ प्रकृतिरूप अथवा २८ से ३१ प्रकृतिरूप स्थान बांधने लगा अतः इन सर्वस्थानोंके भङ्गोंको मिलानेपर प्रमत्तगुणस्थानमें ४५ भुजाकार भङ्ग होते हैं ।

अब उन ४५ भुजाकारभङ्गोंका विधान कहते हैं---

इगि अड अट्ठिगि अट्ठिगिभेदड अट्ठड दुणव य वीस तीसक्के ।
अडिगिगि अडिगिगि बिहि उणखिगि इगिइगितीस देवचउ कमसो ॥५७७॥

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नीचेकी पंक्तिके १-८-८-१-८-१-१-१-१ और १ रूप भङ्ग सहित २८-२८-२८-२९-२९-३०-१-१-१-१ प्रकृतिरूप स्थानोंमें तथा ऊपरकी पंक्तिके ८-१-१-८-१-१-१-१-१-१ भङ्गोंसे सहित २९-३०-३१-३०-३१-३१-२८-२९-३०-३१ इसप्रकार ४५ भुजाकार भङ्ग जानना।

विशेषार्थ—अप्रमत्तगुणस्थानीय देवगतिसहित २८ प्रकृतिका एक भङ्ग बांधता था पश्चात् प्रमत्तगुणस्थानमें जाकर तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करके तीर्थङ्कर व देवगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानको आठ भङ्गसहित बांधने लगा इन दोनोंके भङ्गोंको परस्परमें गुणा करनेसे ८×१=८ भंग हुए तथा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ८ भंगसहित देव-युक्त २८ प्रकृतिको बांधता था पीछे अप्रमत्त होकर आहारकद्विकसंयुक्त ३० प्रकृतिके स्थानको एकभंगसहित बांधता है इसप्रकार ८×१=८ भंग हुए तथा प्रमत्तगुणस्थानीय ८ भंगसहित २८ प्रकृतिको बांधता था पश्चात् अप्रमत्तमें आकर तीर्थंकर और आहा-रकद्विकसहित ३१ प्रकृतिके स्थानको एकभंगसहित बांधता है इसप्रकार ८×१=८ भंग हुए। अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर व देवायुसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको एकभंग सहित बांधता था मरण करके देव असंयत हुआ वहां ८ भंगसहित मनुष्य व तीर्थंकर-संयुक्त ३० प्रकृतिको बांधने लगा इसप्रकार ये ८×१=८ भंग हुए। प्रमत्तगुणस्थानवर्ती-मनुष्य देवगति एवं तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिक स्थानको ८ भंगसहित बांधता था पुनः अप्रमत्तगुणस्थानमें आकर तीर्थंकर व आहारकद्विकसंयुक्त ३१ प्रकृतिरूप स्थानको एक-भंगसहित बांधने लगा इसप्रकार ८×१=८ भंग हुए।

तथैव अप्रमत्तगुणस्थावर्ती एकभंगसंयुक्त आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करता था पश्चात् उसी गुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करके ३१ प्रकृतिरूप स्थानको बांधने लगा इसप्रकार एकभंग जानना तथा उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागमें एकभंगसहित यशस्कीर्तिप्रकृतिको बांधता था फिर नीचे अपूर्वकरणके छठेभागमें आकर देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिके स्थानको, देव-तीर्थंकरयुत २९ प्रकृतिकस्थान या देव-आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिको अथवा देव-आहारकद्विक-तीर्थंकरसहित ३१ प्रकृतिरूप स्थानको एकभंगसहित बांधे इसप्रकार इनके चार भंग हुए ये सर्व ४५ भुजाकारभंग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्दृष्टि—

प्रमत्त	अप्रमत्त	अप्रमत्त	असंयत-देव	अप्रमत्त	अप्रमत्त	अपू.	अपू.	अपू.	अपू.	
२९ ८	३० १	३१ १	३० ८	३१ १	३१ १	२८ १	२९ १	३० १	३१ १	अप्रमत्त गुणस्थान-वर्तियोंके ४५ भुजा०
अप्रमत्त	प्रमत्त	प्रमत्त	अप्रमत्त	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपू.	अपू.	अपू.	अपू.	
२८ १	२८ ८	२८ ८	२९ १	२९ ८	३० १	१ १	१ १	१ १	१ १	

१×८ ८×१ ८×१ १×८ ८×१ १×१ १×१ १×१ १×१ १×१

८ + ८ + ८ + ८ + ८ + १ + १ + १ + १ + १ = ४५

अथानन्तर अप्रमत्तगुणस्थानके अल्पतरभंगोंको कहते हैं—

इगिविहिगिगिखखतीसे दस णव णवडधियवीसमट्ठविहं ।
देवचउक्केक्केक्के अपमत्तप्पदरछत्तीसा ।।५७८।।

अर्थ—एक-एक भंगसहित एक, एक, शून्य, शून्यसे अधिक ३० अर्थात् ३१-३१, ३० और ३० प्रकृतिक स्थानोंको बांधता हुआ ८-८ भंगोंसे संयुक्त १०-९-९ और ८ से अधिक २० अर्थात् ३०, २९, २९, और २८ प्रकृतिरूप स्थानोंको तथा एक-एक भंगसहित देवगतिसंयुक्त चारस्थानोंको बांधता है। इसप्रकार अप्रमत्तगुणस्थानमें ३६ अल्पतरभङ्ग होते हैं।

विशेषार्थ—अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव देवगति, आहारकद्विक व तीर्थंकरसहित ३१ प्रकृतिकस्थानको एक भंगसंयुक्त बांधता था पुनः मरणकर देवअसंयत हुआ वहां ८ भंगोंसे संयुक्त मनुष्य-तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिको बांधने लगा अतः १×८=८ भंग। अप्रमत्तगुणस्थानमें एक भंगसहित ३१ प्रकृतिका बन्ध करता था पश्चात् प्रमत्तगुण-स्थानमें आकर देव और तीर्थंकरसहित आठ भंगोंसे युक्त २९ प्रकृतिको बांधने लगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः १×८=८ भंग। अप्रमत्तगुणस्थानमें देव और आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिको एकभंगसहित बांधता था वह मरणकर देवअसंयत हुआ और वहां मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिकस्थानको ८ भंगसंयुक्त बांधने लगा इसप्रकार १×८=८ भंग। अप्रमत्तगुणस्थानमें एक भंगसहित आहारक व देवगतियुत ३० प्रकृतिको बांधता था पश्चात् प्रमत्तगुणस्थानमें आकर ८ भंगसहित देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिको बांधने लगा इसप्रकार १×८=८ भंग हुए। अपूर्वकरणगुणस्थानमें चढ़तेसमय छठेभागमें एक-एक भंगसहित देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिको तथा देवगति-तीर्थंकरसहित २९, देव व आहारकद्विकसहित ३० एवं देव-आहारकद्विक और तीर्थंकरयुत ३१ प्रकृतिको बांधता हुआ सप्तमभागमें एकभंगसहित एकप्रकृतिरूप स्थानको बांधता है अतः ये चारभंग हुए इसप्रकार सर्व-अल्पतरभंग ३६ जानना।

सन्दृष्टि—

असंयतदेव	प्रमत्त	असंयतदेव	प्रमत्त	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.
प्रकृ. ३० भङ्ग ८	२९ ८	२९ ८	२८ ८	१ १	१ १	१ १	१ १
अप्रमत्त	अप्रमत्त	अप्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.
प्रकृ. ३१ भङ्ग १	३१ १	३० १	३० १	२८ १	२९ १	३० १	३१ १

१×८= १×८= १×८= १×८= १×१= १×१= १×१= १×१=
८ + ८ + ८ + ८ + १ + १ + १ + १ =३६

अब भुजाकारादि भंगोंको एकत्र करके कहते हैं—

सव्वपरट्ठाणेण य अयदपमत्तिदरसव्वभंगा हु।
मिच्छस्स भङ्गमज्झे मिलिदे सव्वे हवे भंगा ॥५७९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सर्व परस्थानों तथा 'च' शब्दसे स्वस्थान-स्वस्थान और स्व-परस्थानसहित असंयत और अप्रमत्तादिगुणस्थानोंके जो सर्वभुजाकारादि भंग हैं उनको मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें मिलानेपर नामकर्मके भुजाकारादिभंग नियमसे जानना।

आगे उन भङ्गोंकी सिद्धिका उपाय दो गाथाओंसे कहते हैं—

भुजगारा अप्पदरा हवंति पुव्ववरठाणसंताणे।
पयडिसमोऽसंताणोऽपुणरुत्तेत्ति य समुद्दिट्ठो ॥५८०॥

अर्थ—पूर्वमें अल्पप्रकृतियोंको बांधता था, पश्चात् अधिकप्रकृतियोंको बांधने लगा इसप्रकार लगानेपर भुजाकार कहलाता है तथा पूर्वमें अधिकप्रकृतियोंको बांधता था पश्चात् अल्पप्रकृतियोंको बांधने लगा सो यह अल्पतर कहलाता है। प्रकृतियोंकी समान संख्या होनेपर भी प्रकृतिसमुदाय प्रकृतिभेदसहित अर्थात् भिन्नप्रकृतिरूप हो तो वह अपुनरुक्त भंग कहलाता है। जिसप्रकार तीर्थंकरप्रकृतिबिना संहननसहित भी २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध है तथा तीर्थंकरसहित संहननबिना भी २९ प्रकृतिक स्थान है इसप्रकार इनमें २९ प्रकृतिकी समानता होते हुए भी तीर्थंकर और संहननके भेदसे अपुनरुक्तता कही गई है।

अथानन्तर अवक्तव्यभंगोंका कथन करते हैं—

[1]पडिय मरियेक्कमेक्कूणतीस तीसं च बंधगुवसंते।
बंधो दु अवत्तव्वो अवट्ठिदो बिदियसमयादी ॥५८१॥

अर्थ—उपशान्तकषायगुणस्थानमें नामकर्मकी किसी भी प्रकृतिको नहीं बांधता था पश्चात् सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें आकर एकप्रकृतिक स्थानको बांधता है अतः १ भंग तो यह तथा मरणकर देवअसंयत होनेपर आठ-आठ भंगोंसहित मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिरूप स्थानको तथा तीर्थंकर व मनुष्यगतिसंयुक्त ३० प्रकृतिक स्थानको बांधे अतः इन दोनों स्थानसम्बन्धी १६ भंग हुए। इसप्रकार अवक्तव्य बन्धके १+१६=१७ भंग जानना तथा द्वितीयादिक समयमें भी उन्हींके समान बन्ध होता है अतः अवस्थित-बन्ध है।

१. यद्यपि अभी तक मुद्रित गोम्मटसार कर्मकाण्डकी प्रतियोंमें यह गाथा ५८२ नं० पर ही छपी है, किन्तु प्रकरणकी क्रमबद्धताको देखते हुए गाथाओंके क्रममें इस गाथाका पाठ यहीं ५८१ नं० पर उचित प्रतीत होता है इसलिये क्रममें परिवर्तन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवक्तव्यभंगोंकी सन्दृष्टि—

सूक्ष्म सा. गुण.	देवअसंयत गुण.	देवअसंयत गुण.
प्रकृति १	२९	३०
भङ्ग १	८	८
उपशांतकषाय गुणस्थान	उपशांतकषाय गुणस्थान	उपशांतकषाय गुणस्थान
प्रकृति, भङ्ग } ०	०	०

भुजगारे अप्पदरेऽवत्तव्वे ठाइदूण समबंधो ।
होदि अवट्ठिदबंधो तब्भंगा तस्स भंगा हु ॥५८२॥

अर्थ—भुजाकार, अल्पतर और अवक्तव्यभंगोंको स्थापन करके जिन-जिन भंगोंसे सहित प्रकृतियोंका एकसमयमें बन्ध होता है उन्हीं भंगोंके साथ उन प्रकृतियोंका द्वितीयादिक समयमें भी जहां समान बन्ध हो उसे अवस्थित बन्ध कहते हैं अतः भुजाकारादि तीन प्रकारके बन्धोंके जितने भंग हैं उतने ही अवस्थितबन्धके भंग हैं ।

नामकर्मके सर्वप्रकार बन्धस्थानोंके भंगोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	भुजाकारबन्ध	अल्पतरबन्ध	अवस्थितबन्ध	अवक्तव्यबन्ध
मिथ्यात्व	४,४६,०९,४३५	४,४६,०९,४३५	८९२,१८,८७०	०
असंयत	३६,९९२	७२	३७०६४	०
अप्रमत्त	४५	३६	८१	०
उपशांतमोह	०	०	१७	१७
योग	४,४६,४६,४७२	४,४६,०९,५४३	८,९२,५६,०३२	१७

"इति नामकर्मबन्धस्थान प्रकरण"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर नामकर्मके उदयस्थानोंका कथन २२ गाथाओंसे करते हैं—

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते ।
आणावचिपज्जत्ते कमेण पंचोदये काला ॥५८३॥

अर्थ—नामकर्मके उदयस्थान विग्रहगति अथवा कार्मणशरीर, मिश्रशरीर, शरीरपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषापर्याप्तिमें नियतकाल है अर्थात् जिस कालमें उदययोग्य हैं उसी कालमें उदय होते हैं। इसप्रकार इनके पांच काल नियत हैं।

विशेषार्थ—जहां कार्मणशरीर पाया जावे वह कार्मणकाल और जबतक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक शरीरमिश्रकाल है। तथा शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर जबतक श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण नही होती तबतक शरीरपर्याप्तिका काल है। श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर जबतक भाषापर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकाल है और भाषापर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर सम्पूर्ण आयु प्रमाणतक भाषापर्याप्तिकाल है। इसप्रकार नामकर्मके ये पांच उदयस्थान नियतकाल हैं। यहां गाथामें विग्रहगति और कार्मण इसप्रकार इन दोका जो उल्लेख किया है वह "समुद्घातकेवलीके कार्मणशरीरको भी ग्रहण करना चाहिये" इस विशेष अर्थको सूचित करनेके लिये है।

अब इन कालोंका प्रमाण कहते हैं—

एक्कं व दो व तिण्णि व समया अंतोमुहुत्तयं तिसुवि ।
हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥५८४॥

अर्थ—इन पांच उदयस्थानरूप कालोंका प्रमाण क्रमसे विग्रहगतिके कार्मणशरीरमें एक-दो अथवा तीनसमय है। अपर्याप्तरूप मिश्रशरीरमें, शरीरपर्याप्तिमें श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिमें अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल है। भाषापर्याप्तिमें पूर्वोक्त चारकालों का प्रमाण घटानेपर अवशेष सर्व भुज्यमानआयु प्रमाणकाल जानना।

आगे उन पाँच उदयकालोंको जीवसमासोंमें घटित करते हैं—

सव्वापज्जत्ताणं दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे ।
पंचवि होंति तसाणं आहारस्सुवरिमचउक्कं ॥५८५॥

अर्थ—आदिके दोकाल सर्व लब्ध्यपर्याप्तकोंमें, एकेन्द्रियोंमें आदिके चारकाल त्रसोंमें पांचों ही काल तथा आहारकशरीरमें प्रथमकालबिना शेष चारकाल हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सासभास इदि कमसो।
काला हु समुग्घादे उवसंहरमाणगे पंच ॥५८६॥

अर्थ—समुद्घातकेवलीके कार्मण-औदारिकमिश्र-औदारिकशरीरपर्याप्ति-श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषापर्याप्तिकाल इसप्रकार पांचकाल क्रमसे अपने आत्मप्रदेशोंके संकोचके समय ही होते हैं, किन्तु विस्तारके समय तीनकाल ही होते हैं।

अब उन्हीं तीनकालोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु।
पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो ॥५८७॥

अर्थ—दण्डसमुद्घात करने और समेटनेरूप युगलसम्बन्धी दो समयोंमें औदारिकशरीरपर्याप्तिकाल है, कपाटसमुद्घात करने और समेटनेरूप दो समयोंमें औदारिकमिश्रशरीरकाल है, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातमें कार्मणकाल है। इसप्रकार प्रदेशोंके विस्तार करनेमें तीन ही काल हैं, किन्तु श्वासोच्छ्वास और भाषापर्याप्तिकाल प्रदेशोंका संकोच करते समय ही होते हैं, क्योंकि मूलशरीरमें प्रवेश करते समयसे ही सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके समान क्रमसे पर्याप्ति पूर्ण करता है अतएव वहां पांचोंकाल सम्भव हैं।

अथानन्तर नामकर्मके उदयस्थानोंकी उत्पत्तिक्रमका कथन चारगाथाओंमें करते हैं—

णामधुवोदयबारस गइजाईणं च तसतिजुम्माणं।
सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू ॥५८८॥

अर्थ—"तेजदुगं वण्णचऊ" इत्यादि ४०३ गाथामें कथित नामकर्मकी तैजस-कार्मण, वर्णादिचार, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण ये ध्रुवोदयीप्रकृतियां तथा चारगति, पांचजाति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति और चारआनुपूर्वी इन सर्वप्रकृतियोंमेंसे किसी एकप्रकृतिका उदय होनेसे ये ९ तथा उपर्युक्त ध्रुवोदयी १२ इसप्रकार (९+१२) सर्व २१ प्रकृतिरूप स्थानका उदय विग्रहगतिमें ही होता है, क्योंकि इनमें आनुपूर्वी भी कही है। ऋजुगतिवालोंके २१ प्रकृतिकस्थानका उदय नहीं है, उनके तो २४ आदि प्रकृतिक स्थानोंका ही उदय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिस्सम्मि तिअंगाणं संठाणाणं च एगदरगं तु।
पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो ॥५८९॥

अर्थ—उपर्युक्त २१ प्रकृतिरूप उदयस्थानमेंसे आनुपूर्वीके घटानेसे तथा औदारिकादि तीनशरीरोंमेंसे एक, छहसंस्थानोंमेंसे एक, प्रत्येक-साधारणशरीरमेंसे एक और उपघात ये चारप्रकृति मिलानेसे २४ प्रकृतिकस्थान होता है। इस स्थानका मिश्रशरीरके कालमें सभी स्थावरजीवोंके उदय होता है, किन्तु तीनों शरीरोंमेंसे एक औदारिकशरीरका तथा छह संस्थानोंमेंसे एक हुण्डक संस्थावका ही उदय होता है।

तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवंगाणमेगदरगं तु।
छण्हं संहडणाणं एगदरो उदयगो होदि ॥५९०॥
परघादमंगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे।
सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि ॥५९१॥जुम्मं॥

अर्थ—उपर्युक्त चारप्रकृतियां और तीन अङ्गोपाङ्गमें एक, छहसंहननोंमें एक इसप्रकार सर्व ६ प्रकृतियां मिश्रशरीरवाले त्रसजीवके उदययोग्य हैं किन्तु संहनन मनुष्य व तिर्यञ्चोंके ही उदय योग्य हैं। परघातप्रकृति त्रस-स्थावरोंके शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य हैं। स्थावरजीवके पर्याप्तिकालमें आतप-उद्योत तथा त्रसके पर्याप्तिकालमें उद्योत और विहायोगतियुगल ही उदययोग्य होती हैं किन्तु उद्योत तिर्यञ्चोंके ही उदययोग्य है। उच्छ्वासप्रकृति और स्वरयुगल अपनी-अपनी पर्याप्तिकालमें ही उदययोग्य हैं तथा तीर्थङ्करप्रकृति केवलीके ही उदयमें आती है।

आगे नानाजीवोंकी अपेक्षा सम्भव एक-एक जीवके एक-एक समयमें नामकर्मके उदय स्थानोंको कहते हैं—

वीसं इगिचउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं।
उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥५९२॥[1]

अर्थ—नामकर्मके २०-२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० और ३१ तथा ८ व ९ प्रकृतिरूप १२ उदयस्थान हैं।

१. प्रा० पं० स० पृ० ३४९ गाथा ९७ भी देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उपर्युक्त उदयस्थानोंके स्वामियोंका कथन करते हैं—

चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरयएइंदी।
इगिबितिचपसामण्णा विसेससुरणारगेइंदी ॥५९३॥
सामण्णसयलवियलविसेस मणुस्ससुरणारया दोण्हं।
सयलवियलसामण्णा सजोगपंचक्खवियलया सामी ॥५९४॥जुम्मं॥

अर्थ—२१ प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी चारोंगतिके जीव हैं, २४ प्रकृतिक स्थानके स्वामी एकेन्द्रियजीव, २५ प्रकृतिक स्थानके स्वामी विशेषमनुष्य अर्थात् आहारकद्विकवाले मनुष्य तथा देव, नारकी व एकेन्द्रियजीव हैं, २६ प्रकृतिक स्थानके स्वामी एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियसामान्य (उद्योत-तीर्थङ्कर व आहारकद्विकरहित) जीव हैं, २७ प्रकृतिक स्थानके स्वामी (आहारकद्विकसहित) मनुष्य तथा देव, नारकी व एकेन्द्रियजीव हैं, २८ और २९ प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी सामान्यमनुष्य तथा पञ्चेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, विशेषमनुष्य, देव और नारकीजीव हैं तथा ३० प्रकृतिक स्थानके स्वामी मनुष्य व त्रस तिर्यञ्च हैं। ३१ प्रकृतिक स्थानके स्वामी सयोगकेवली तथा पञ्चेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्च जीव हैं, ८ व ९ प्रकृतिरूप स्थानोंके स्वामी अयोगकेवली हैं।

विशेषार्थ—गाथा ५८८ में कथित २१ प्रकृतिरूप स्थानका उदय कार्मणशरीरसहित चारोंगतिसंबंधी विग्रहगतिमें होता है अन्यत्र नहीं तथा गाथा ५८९ में कथित २४ प्रकृतिरूप स्थान एकेंद्रियके अपर्याप्तावस्थामें मिश्रयोग होते ही उदय होता है अन्यत्र नहीं, क्योंकि इनमें अङ्गोपाङ्ग व संहनन नहीं है। इन २४ प्रकृतियोंमें परघातप्रकृति मिलानेपर एकेंद्रियकी शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २५ प्रकृतिका स्थान होता है अथवा आहारक अंगोपांग मिलानेपर विशेषमनुष्यके आहारकशरीरके मिश्रकालमें उदययोग्य २५ प्रकृतिक स्थान है अथवा वैक्रियक अंगोपांग मिलानेसे देव और नारकीके मिश्रकालमें उदययोग्य २५ प्रकृतिकस्थान है इसप्रकार २५ प्रकृतिके तीनस्थान हैं। एकेंद्रियके उदययोग्य २५ प्रकृतिक स्थानमें आतप व उद्योतमेंसेएकप्रकृतिको मिलानेपर एकेंद्रियके शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २६ प्रकृतिका स्थान होता है। उस एकेंद्रियके २५ प्रकृतिकस्थानमें उच्छ्वास मिलानेपर एकेंद्रियके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २६ प्रकृतिकस्थान होता है अथवा २४ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानमें औदारिकअङ्गोपाङ्ग और एक संहनन मिलानेसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सामान्यमनुष्य व निरतिशयकेवलीके कपाटयुगलके औदारिकमिश्रकालमें उदययोग्य २६ प्रकृतिका स्थान है। इसप्रकार २६ प्रकृतिके तीनस्थान जानना। २४ प्रकृतिक स्थानमें आहारकअंगोपांग, परघात और प्रशस्तविहायोगति इन तीनप्रकृतिको मिलानेपर प्रमत्तगुणस्थानमें आहारकशरीरपर्याप्ति होनेपर उदययोग्य २७ प्रकृतिक स्थान है अथवा समुद्घातकेवलीके पूर्वोक्त २६ प्रकृतिक स्थानमें तीर्थङ्करप्रकृतिके मिलानेपर तीर्थङ्कर समुद्घातकेवलीके उदययोग्य २७ प्रकृतिरूप स्थान होता है अथवा पूर्वोक्त २४ प्रकृतिक स्थानमें वैक्रियकअंगोपांग, परघात और नारकीके अप्रशस्तविहायोगति तथा देवके प्रशस्तविहायोगति इसप्रकार तीनप्रकृतिके मिलनेसे देव और नारकोके शरीर-पर्याप्ति होनेपर उदययोग्य २७ प्रकृतिका स्थान है अथवा पूर्वोक्त २४ प्रकृतिकस्थानमें परघात तथा आतप व उद्योतमें से एक और उच्छ्वास ये तीन प्रकृति मिलनेसे एकेंद्रिय के उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २७ प्रकृतिक स्थान है इसप्रकार २७ प्रकृतिक चार-स्थान हैं। २४ प्रकृतियोंमें औदारिकअंगोपांग, एकसंहनन, परघात और यथायोग्य विहायोगति इन चारप्रकृतिके मिलानेपर सामान्यमनुष्य या मूलशरीरमें प्रवेश करते हुए समुद्घातरूप सामान्यकेवली अथवा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चके शरीरपर्याप्तिकालमें उदययोग्य २८ प्रकृतिक स्थान है तथा उपर्युक्त २४ प्रकृतिमें ही आहारकअंगोपांग, परघात, प्रशस्तविहायोगति और उच्छ्वास इन चारको मिलानेपर उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २८ प्रकृतिकस्थान है अथवा २४ प्रकृतियोंमें वैक्रियकअंगोपांग, परघात, यथासम्भव विहायोगति एवं उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर देव और नारकीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २८ प्रकृतिक स्थान है। इसप्रकार २८ प्रकृतिरूप तीनस्थान जानना।

सामान्यमनुष्य या समुद्घातकेवलीके २८ प्रकृतिरूप स्थानमें उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर सामान्यमनुष्य या मूलशरीरमें प्रवेश करते हुए समुद्घातकेवलीके उच्छ्वास-पर्याप्तिमें २९ प्रकृतिकस्थान है अथवा २४ प्रकृतिरूप स्थानमें औदारिकअंगोपांग, एक संहनन, परघात एकविहायोगति एवं उद्योतप्रकृति मिलानेसे द्वीन्द्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें एकअंगोपांग, एकसंहनन, एकविहायोगति, परघात और उच्छ्वासप्रकृति मिलानेसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उच्छ्वासपर्याप्तिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें औदारिकअंगोपांग, संहनन, परघात, प्रशस्तविहायोगति और तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेपर समुद्घाततीर्थङ्कर-केवलीके शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें आहारकअङ्गोपाङ्ग, परघात, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास और सुस्वर मिलानेसे प्रमत्त-गुणस्थानवर्तीके आहारकशरीरसम्बन्धी भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिकस्थान है तथा देव व नारकीके २८ प्रकृतिक स्थानमें देवके सुस्वर और नारकीके दुःस्वरप्रकृति मिलानेपर देव-नारकीके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है। इसप्रकार २९ प्रकृतिके छहस्थान हुए। तथैव २४ प्रकृतिकस्थानमें अंगोपांग, संहनन, परघात, विहायोगति और उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर २९ प्रकृति होती हैं तथा इनमें उद्योतप्रकृति मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदय-योग्य ३० प्रकृतिक स्थान है अथवा इन्हीं २९ प्रकृतिमें दो स्वरमें से एकके मिलानेपर सामान्यमनुष्य, पञ्चेन्द्रिय या विकलत्रयके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिमें औदारिकअंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, प्रशस्त-विहायोगति और उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर २९ प्रकृति होती हैं, इनमें तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेसे समुद्घाततीर्थङ्करकेवलीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है अथवा उपर्युक्त २९ प्रकृतिमें सुस्वर-दुःस्वरमेंसे कोई एक प्रकृति मिलानेपर सामान्य-मनुष्य, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च या विकलत्रयके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिकस्थानमें औदारिकअंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, प्रशस्तविहायोगति और उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर २९ प्रकृतियां होती हैं इनमें तीर्थ-ङ्करप्रकृति मिलानेसे समुद्घाततीर्थङ्करकेवलीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है। इन्हीं उपर्युक्त २९ प्रकृतियोंमें सुस्वर व दुःस्वररूप दोस्वरोंमें से कोई एकस्वर मिलानेपर सामान्यसमुद्घातकेवलीके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है। इसप्रकार ३० प्रकृतिके चारस्थान जानना।

सामान्यसयोगकेवलीकी भाषापर्याप्तिसम्बन्धी ३० प्रकृतियोंमें तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेपर तीर्थङ्करकेवलीके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३१ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें कोई एक अंगोपांग, कोई एक संहनन, परघात, उद्योत, कोई एक-विहायोगति, उच्छ्वास और सुस्वर-दुःस्वरमें से कोई एक इसप्रकार सातप्रकृति मिलाने-पर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३१ प्रकृतियां हैं ऐसे ३१ प्रकृतिरूप दोस्थान जानना। इसप्रकार एक जीवके एककालमें होनेवाले उदयस्थानोंका कथन किया।

एगे इगिवीसपणं इगिछव्वीसट्ठवीसतिरिणि णरे।
सयले वियलेवि तहा इगितीसं चावि वचिठाणे ॥५९५॥
सुरणिरयविसेसणरे इगिपणसगवीसतिरिणि समुग्घादे।
मणुसं वा इगिवीसे वीसं रूवाहियं तित्थं ॥५९६॥
वीसदु चउवीसचऊ पणछव्वीसादिपंचयं दोसु।
उगुतीसति पणकाले गयजोगे होंति णव अट्ट ॥५९७॥विसेसयं॥

अर्थ—पूर्वोक्त पांचकालोंमें यथासम्भव क्रमसे एकेन्द्रियके उदययोग्य स्थान २१-२४-२५-२६-२७ प्रकृतिके पांचस्थान हैं, मनुष्यके उदययोग्य २१-२६ और २८-२९-३० प्रकृतिके पांचस्थान हैं, तथैव पञ्चेन्द्रिय और विकलेन्द्रियतिर्यञ्चोंके उदययोग्य २१-२६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप ऐसे ६ स्थान हैं। देव-नारकी-आहारक और केवलीसहित विशेष मनुष्योंके २१, २५ तथा २७ प्रकृतिके तीनस्थान उदययोग्य हैं। कार्मणकालमें समुद्घातकेवलीके २० प्रकृतिरूप उदयस्थान है, क्योंकि यहां तीर्थङ्कर-प्रकृतिका उदय नहीं है तथा तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके २० प्रकृतिक स्थानमें तीर्थङ्कर-प्रकृतिके मिलनेसे २१ प्रकृतिक स्थान तथा भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेपर ३१ प्रकृतिक स्थान भी उदययोग्य है। विग्रहगतिके कार्मणकालमें २१ प्रकृतिक स्थान होता है, मिश्र-शरीर कालमें २४-२५-२६ व २७ प्रकृतिरूप चारस्थान, शरीर पर्याप्तिकालमें २५-२६-२७-२८ व २९ प्रकृतिक पांचस्थान, श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें २६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक पांचस्थान, भाषापर्याप्तिकालमें २९-३० व ३१ प्रकृतिरूप तीनस्थान उदययोग्य हैं। अयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करकेवलीके ९ प्रकृतिक और सामान्यकेवलीके ८ प्रकृतिक ऐसे दो उदयस्थान हैं।

नामकर्मके उदयस्थान व उनके स्वामीका कथन एक दृष्टिमें—

२० प्रकृतिरूप एकस्थान— समुद्घातकेवलीके कार्मणकालमें उदययोग्य है।

२१ प्रकृतिक दोस्थान— चारोंगतिसम्बन्धी विग्रहगतिमें और तीर्थङ्करकेवलीके कार्मणकालमें उदययोग्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४ प्रकृतिक एकस्थान— एकेन्द्रियके मिश्रशरीरकालमें उदययोग्य है।

२५ प्रकृतिक तीनस्थान— एकेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें, आहारकके शरीरमिश्रकालमें और देव-नारकीके भी शरीरमिश्रकालमें उदययोग्य है।

२६ प्रकृतिक तीनस्थान— एकेंन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें, एकेंद्रियके उच्छवासपर्याप्तिकालमें, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सामान्यमनुष्य और निरतिशयकेवलीके औदारिकमिश्रकालमें उदययोग्य।

२७ प्रकृतिक चारस्थान— आहारकके शरीरपर्याप्तिकालमें, तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके, देव-नारकीके शरीरपर्याप्तिकालमें और एकेन्द्रियके उच्छवासपर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

२८ प्रकृतिक तीनस्थान— सामान्यमनुष्य-सामान्यकेवली-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें तथा देव-नारकी व आहारकशरीरवालेके उच्छवास पर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

२९ प्रकृतिक छहस्थान— समुद्घातकेवलीके उच्छवासपर्याप्तिमें, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियके ही उच्छवासपर्याप्तिकालमें, तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके शरीरपर्याप्तिकालमें, आहारकशरीरके भाषापर्याप्तिकालमें और देव-नारकीके भी भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य हैं।

३० प्रकृतिक चारस्थान— द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय व पञ्चेंद्रियके उच्छवासपर्याप्तिकालमें, सामान्यमनुष्य, पञ्चेंद्रिय और द्वींद्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिंद्रियके भाषापर्याप्तिकालमें, तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके उच्छवासपर्याप्तिकालमें और सामान्यसमुद्घातकेवलीक भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

३१ प्रकृतिक दोस्थान— तीर्थङ्करकेवलीके भाषापर्याप्तिकालमें, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियके भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

९ प्रकृतिक एकस्थान— अयोगीतीर्थङ्करकेवलीके उदययोग्य है।

८ प्रकृतिक एकस्थान— अयोगीसामान्यकेवलीके उदययोग्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थानोंका काल एवं उनके स्वामी सम्बन्धी सन्दृष्टि—

स्वामी	एकेंद्रिय	देव	नारकी	तिर्यंच	मनुष्य सामान्य	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली	विशेष मनुष्य
भाषापर्याप्तिकाल	०	२९	२९	३० ३१	३०	३०	३१	२९
श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिकाल	२७ २६	२८	२८	३० २९	२९	२९	३०	२८
शरीरपर्याप्तिकाल	२६ २५	२७	२७	२९ २८	२८	२८	२९	२७
शरीरमिश्रकाल	२४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
कार्मणकाल	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	•

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"नामकर्मके उदयस्थान"

२०-२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक।

देव-नारकी—२१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक।

तिर्यञ्च—२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।

मनुष्य—२४ प्रकृतिकस्थान बिना शेष सर्वस्थान।

२१ प्रकृतिक उदयस्थान	२४ प्रकृतिक	२५ प्रकृतिक	२६ प्रकृतिक	२७ प्रकृतिक	२८ प्रकृतिक	२९ प्रकृतिक	३० प्रकृ.	३१ प्रकृ.
गति १ आनुपूर्वी १ तैजस-कार्मण २ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघु १ जाति १ त्रस-स्थावर १ बादर-सूक्ष्म १ पर्याप्ति-अपर्याप्ति १ स्थिर-अस्थिर २ शुभ-अशुभ २ सुभग-दुर्भग १ आदेय-अनादेय १ यश.-अयश. १ निर्माण १ २१	२४ प्रकृतिक उदयस्थान २१ प्रकृतिमेंसे आनुपूर्वी कम करके औदारिक-शरीर, हुण्डकसंस्थान, उपघात तथा प्रत्येक व साधारणमेंसे कोई एक इसप्रकार ४ प्रकृति मिलानेसे बनता है।	देव-नारकीके २१-१ आनुपूर्वी=२०+वैक्रि.द्विक+संस्थान+उपघात+प्र शरी.=२५ आहा.शरीरी प्रमत्तसंयतके २०+आहारकद्विक+संस्थान+उपघात+प्र. शरी.=२५ एकेन्द्रियके—शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर २४ + परघात = २५	एकेंद्रियके २५+उच्छ्वास=२६। २४+परघात+आतप या उद्योत=२६। मनुष्य व त्रसतिर्यञ्चके २१—आनुपूर्वी=२०+औदारिकद्विक+संस्थान+उपघात+संहनन+प्रत्येकशरीर = २६	आतप या उद्योतसहित एकेन्द्रियके २६+उच्छ्वास=२७। शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त देव-नारकी व आहारकशरीरीके २५ + विहायोगति + परघात = २७।	देव-नारकी व आहारकशरीरीके २७+उच्छ्वास=२८। मनुष्य व त्रसतिर्यञ्चके २६+परघात+विहायोगति=२८।	शरीरपर्याप्त उद्योतसहित तिर्यंचके २६+परघात+विहायोगति+उद्योत=२९। मनुष्य व त्रस तिर्यञ्चके २८+उच्छ्वास=२९। देव-नारकी व आहारकशरीरीके २८+स्वर=२९।	उद्योतसहित तिर्यञ्चके २९+उच्छ्वास=३०। मनुष्य व त्रसतिर्यञ्चके २९+स्वर=३०।	उद्योतसहित त्रसतिर्यञ्चके ३०+स्वर=३१। तीर्थङ्करसहित मनुष्यके ३०+तीर्थङ्कर=३१।

नोट—यह सन्दृष्टि प्राकृत पंचसंग्रहके आधारसे बनाई गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"केवलीके नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थानोंकी सन्दृष्टि"

प्रतर व लोकपूरणमें २० प्रकृतिक	२१ प्रकृ.	२६ प्रकृतिक	२७ प्रकृतिक	२८ प्रकृतिक	२९ प्रकृतिक	३० प्रकृतिक	३१ प्रकृ.	८ प्रकृतिक	९ प्रकृतिक
मनुष्यगति १ कार्मणशरीर १ पर्याप्त १ तैजसशरीर १ वर्णादि ४ पंचेंद्रियजाति १ अगुरुलघु १ शुभाशुभ २ स्थिरास्थिर २ यशस्कीर्ति १ सुभग १ आदेय १ बादर १ निर्माण १ त्रस १ २०	पूर्वोक्त २० प्रकृतियोंमें तीर्थंङ्करप्रकृति मिलानेसे २१ प्रकृतिक स्थान होता है।	२० प्रकृतियोंमें वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रत्येक, औदारिकद्विक, उपघात, ६ संस्थानोंमें से कोई एकसंस्थान, इन छह प्रकृतियोंके मिलानेसे कपाटसमुद्घातकेवलीके २६ प्रकृतिकस्थान होता है।	२६ प्रकृतिक स्थानमें तीर्थंङ्करप्रकृति मिलानेसे २७ प्रकृतिकस्थान होता है, किन्तु यहाँ पर मात्र समचतुरस्रसंस्थानका उदय है।	२६ प्रकृतियोंमें परघात तथा एक विहायोगति मिलानेसे २८ प्रकृतिका स्थान होता है।	२७ प्रकृतिक स्थानमें परघात तथा प्रशस्त विहायोगति मिलानेसे तीर्थंङ्करके २९ प्रकृतिकस्थान होता है। इसी २८ प्रकृतिकस्थानमें उच्छ्वास मिलानेसे भी सामान्यकेवलीके २९ प्रकृतिक स्थान होता है।	सामान्यकेवलीके २९ प्रकृतिक स्थानमें एक स्वर मिलानेसे ३० प्रकृतिकस्थान होता है। तीर्थंङ्करकेवलीके २९ प्रकृतिक स्थानमें उच्छ्वास मिलानेसे भी ३० प्रकृतिका स्थान होता है।	तीर्थंङ्करकेवलीके २९ प्रकृतिक स्थानमें सुस्वर।	सामान्य अयोगकेवलीके मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय और यशस्कीर्ति।	तीर्थंङ्कर अयोगीके पूर्वोक्त आठप्रकृतिक स्थानमें तीर्थंङ्करप्रकृति मिलानेसे ९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

आगे अयोगीगुणस्थानसम्बन्धी नामकर्मके दो उदयस्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु ।
णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु ॥५९८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अयोगकेवलीके उदययोग्य १२ प्रकृतिमेंसे वेदनीय, आयु और गोत्र ये तीनप्रकृतियां कम करनेपर शेष नामकर्मकी ९ प्रकृतियां उदययोग्य हैं तथा जिसके तीर्थंङ्करप्रकृति भी नहीं हो तो उसके ८ प्रकृति ही उदययोग्य हैं।

आगे नामकर्मके उदयस्थानोंमें भङ्ग कहते हैं—

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे।
अविरुद्धेक्कदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा हु ॥५९९॥

अर्थ—६ संस्थान व ६ संहननमें से कोई एक-एक संस्थान व संहनन, विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पांच युगलोंमेंसे एक-एक प्रकृतिका ग्रहण करनेपर नामकर्मके भङ्ग बनते हैं। इन सभीको परस्परमें गुणा करनेपर (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भङ्ग होते हैं।

अथानन्तर उपर्युक्त भङ्गोंमेंसे नारकादि ४१ जीवपदोंमें पाए जाने वाले भंगोंको तीन गाथाओंसे कहते हैं—

तत्थासत्था णारयसाहारणसुहुमगे अपुण्णे य।
सेसेगविगलऽसण्णीजुदठाणे जसजुगे भंगा ॥६००॥

अर्थ—उन उदयप्रकृतियोंमें से नारकी, साधारणवनस्पतिकाय, सर्वसूक्ष्मजीव और लब्ध्यपर्याप्तकमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका ही उदय है इसकारण उनके पांचोंकाल (जिनका कथन गाथा ५८३ में किया गया है) सम्बन्धी सभी उदयस्थानोंमें एक-एक भंग है शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियमें अयशस्कीर्तिबिना पूर्वकथित अप्रशस्तप्रकृतियोंका उदय तो है ही, किन्तु यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्तिमेंसे किसी एकका उदय होनेसे उदयस्थानोंमें दो-दो भङ्ग हो जाते हैं अर्थात् एक यशस्कीर्तिसहित और दूसरा अयशस्कीर्तिसहित इसप्रकार दो भङ्ग जानना।

सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं।
सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि ॥६०१॥

अर्थ—सञ्ज्ञीजीवोंमें तथा मनुष्यके छहसंस्थान, छहसंहनन और पूर्वोक्त विहायोगतिआदि पांचयुगलोंमें से एक-एक प्रकृतिका उदय पाया जाता है इसलिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्यवत् ११५२ ही भंग होते हैं। केवलज्ञानमें वज्रर्षभनाराचसंहनन, सुभग, आदेय और यशस्कीर्ति इन चारका ही उदय होता है अतः केवलज्ञानसम्बन्धी स्थानोंमें छह-संस्थान तथा स्वर और विहायोगतिरूप दोयुगलोंमें से एक-एक प्रकृतिके उदयापेक्षा २४-२४ ही भंग जानने एवं तीर्थंकरप्रकृतिसहित केवलीके अन्तिम पांचसंस्थान, अप्रशस्त-विहायोगति और दुःस्वर उदय नहीं है, मात्र सर्वप्रशस्तप्रकृतियोंका ही उदयहोनेसे उस-सम्बन्धी उदयस्थानोंमें एक-एक ही भंग है।

देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो।
वोच्छिण्णं जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु ॥६०२॥

अर्थ—चारप्रकारके देवोंमें व आहारकसहित प्रमत्तगुणस्थानमें प्रशस्तप्रकृतियों का ही उदय है इसकारण उनके सर्वकालमें पाए जानेवाले उदयस्थानोंमें एक-एक भंग है। सासादनसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त जिनप्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति हुई है उन प्रकृतियोंको कमकरके अवशेष प्रकृतियोंके भङ्ग यथासम्भव समझ लेना चाहिए।

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो।
एक्कं सट्ठी चेव य सत्तावीसं च उगुवीसं ॥६०३॥
वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहिं संजुत्ता।
एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥६०४॥
ऊणतीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी।
एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भंगा ॥६०५॥

अर्थ—बीस प्रकृतिके स्थानको आदि लेकर स्थानोंके भंग गाथा ५१९-२० में कथित ४१ जीवपदोंकी अपेक्षा यथासम्भव क्रमसे १-६०-२७-१९-६२०-१२-११७५-१७६०-२९२१ और ११६१ होते हैं। तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीका एकभङ्ग है, किन्तु वह पुनरुक्तभंग है अतएव अयोगकेवलीके तीर्थंकरप्रकृतिसहित ९ प्रकृतिका एक और तीर्थंकररहित ८ प्रकृतिका एकभंग, इसप्रकार कुल ७७५८ भंग होते हैं।

विशेषार्थ—२० प्रकृतिका उदय सामान्यसमुद्घातकेवलीके प्रतर-लोकपूरण-सम्बन्धी कार्मणकालमें होता है उसमें एकभंग है। २१ प्रकृतिका उदय देवके विग्रह-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गतिमें है उसका एक ही भंग है, तीर्थंकरके समुद्घातसम्बन्धी कार्मणकालमें एक ही भंग है, मनुष्यके कार्मणकालमें सुभग, आदेय-यशस्कीर्ति इन तीनयुगलोंमें एक-एक प्रकृतिके उदयसे आठभंग हैं, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके कार्मणकालमें भी इसीप्रकार आठभंग हैं, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके कार्मणकालमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (२×४) ८ भंग होते हैं, बादरपर्याप्तपृथ्वी-जल-तेज-वायु और प्रत्येकवनस्पति-कायके कार्मणकालमें भी यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (२×५) १० भंग हैं। सूक्ष्मपृथ्वी-जल-अग्नि (तेज) व वायुकाय और सूक्ष्म-बादर-साधारणवनस्पतिकायसम्बन्धी कार्मण-कालमें एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग हैं। नारकीके कार्मणकालमें एक ही भंग है, लब्ध्यपर्याप्तक-सूक्ष्म-बादरकी अपेक्षा पृथ्वी-जल-तेज-वायुकाय और साधारणवनस्पतिके १०, प्रत्येकवनस्पति, विकलत्रय, सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च व मनुष्य (१०+७) इन १७ प्रकारके जीवोंके कार्मणकालसम्बन्धी एक-एक ही भंग होनेसे १७ भंग है। इसप्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थानके सर्व (१+१+८+८+१०+६+१+१७) ६० भंग हैं।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान शरीरमिश्रकालमें होता है। यहां बादरपृथ्वी-अप्-तेज-वायु और प्रत्येकवनस्पतिकायमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (५×२) १० भंग होते हैं। सूक्ष्मपृथ्वी-जल-तेज-वायुकाय तथा बादर-सूक्ष्मसाधारणकायमें एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग होते हैं एवं ग्यारहप्रकारके एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तजीवोंके शरीरमिश्रकालमें भी इस स्थानका उदय है अतः यहां एक-एक भंगकी अपेक्षा ११ भंग हुए। इसप्रकार २४ प्रकृतिकस्थानमें सर्व (१०+६+११) २७ भंग हुए।

२५ प्रकृतिकस्थानमें देव-आहारक और नारकीके तो एक-एक भंगकी अपेक्षा तीनभंग तथा बादरपृथ्वी-अप्-तेज-वायु एवं प्रत्येकवनस्पतिकायके शरीरपर्याप्तिकालमें दो-दो भंग होनेसे (५×२) १० भंग हैं, सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायुकाय और सूक्ष्म-बादर-साधारणवनस्पतिकायके एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग है। इसप्रकार २५ प्रकृतिक स्थानमें (३+१०+६) १९ भङ्ग हुए।

२६ प्रकृतिक स्थानमें द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके शरीरमिश्रकालमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे (४×२) ८ भंग होते हैं। सञ्ज्ञीतिर्यञ्च और मनुष्यमें ६ संहनन ६ संस्थान तथा सुभग-आदेय और यश-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्कीर्तियुगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२) २८८+२८८=५७६ भंग हैं। तीर्थंकर-प्रकृतिरहित सामान्यसमुद्घातकेवलीके ६ संस्थानोंके परिवर्तनसे छहभंग हैं। लब्ध्य-पर्याप्तकोंके एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग हैं। उद्योतसहित बादरपृथ्वीकायके शरीरपर्याप्ति-कालमें आतप-उद्योतसहित दोस्थानोंमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे २×२=४ भंग हैं तथा उद्योतसहित बादरअप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकायमें यश-स्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भङ्ग होनेसे ४ भङ्ग, बादरपृथ्वी-अप्-तेज-वायु व प्रत्येक वनस्पतिकायके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे ५×२=१० भंग तथा सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज और वायुकाय एवं सूक्ष्म-बादरसाधारण-ववस्पतिकायमें एक-एक भंग होनेसे ६ भंग हैं। इसप्रकार २६ प्रकृतिक स्थानमें सर्व (८+५७६+६+६+४+४+१०+६) ६२० भंग होते हैं।

२७ प्रकृतिक उदयस्थानमें तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके शरीरमिश्रकालमें एक भङ्ग है। देव-नारकी और आहारकके शरीरपर्याप्तिकालमें एक-एक भंगकी अपेक्षा तीन, उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें बादर पृथ्वीकायके आतप-उद्योतसम्बन्धी दो स्थानोंमें यशस्कीर्ति-युगलकी अपेक्षा दो-दो भङ्ग होनेसे चार, बादरअप्काय और प्रत्येकवनस्पतिकायमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भङ्ग होनेसे चार भङ्ग हैं। इसप्रकार २७ प्रकृतिक-स्थानमें सर्व (१+३+४+४) १२ भंग जानना।

२८ प्रकृतिक उदयस्थानके शरीरपर्याप्तिकालमें निरतिशयसमुद्घातकेवलीके विहायोगतियुगल एवं छहसंस्थानकी अपेक्षा ६×२=१२ भंग, मनुष्य और संज्ञीतिर्यञ्चमें विहायोगतिरूपसुभग, आदेय तथा यशस्कीर्ति चारयुगल एवं ६ संस्थान, ६ संहननकी अपेक्षा से (६×६×२×२×२×२) ५७६+५७६=११५२ भंग हैं, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षासे दो-दो भंग हैं अतः ४×२=८ भंग हैं। देवनारकी और आहारकके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें एक-एक भंगकी अपेक्षा ३ भंग हैं। इसप्रकार २८ प्रकृतिकस्थानमें (१२+११५२+८+३) ११७५ भंग जावना।

२९ प्रकृतिक उदयस्थानके शरीरपर्याप्तिकालमें तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके एक भंग है। उद्योतसहित सञ्ज्ञीतिर्यञ्चके पूर्वोक्तप्रकार ६ संस्थान, ६ संहनन, सुभग-आदेय और यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२×२) ५७६ भंग हैं, उद्योतसहित द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकीअपेक्षा दो-दो भंग होनेसे आठ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भंग हैं तथा उच्छ्वासपर्याप्तिमें निरतिशयसमुद्घातकेवलीके ६ संस्थान एवं विहायोगतियुगलकी अपेक्षासे ६×२=१२ भंग होते हैं। मनुष्यमें और सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें पूर्वोक्तप्रकार ६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२) ५७६-५७६ भंग हैं अतः सर्व ११५२ भंग। उद्योतरहित उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे आठभंग हुए तथा भाषापर्याप्तिकालमें देव नारकी और आहारकके एक-एक भंगकी अपेक्षासे ३ भंग हैं। इसप्रकार २९ प्रकृतिक स्थानमें (१+५७६+८+१२+११५२+८+३) १७६० भंग हैं।

३० प्रकृतिक स्थानके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीके एक भंग है, उद्योतसहित सञ्ज्ञीतिर्यञ्चके पूर्वोक्तप्रकार (६×६×२×२×२×२) ५७६ भंग हैं, उद्योतसहित द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो-भंग होनेसे ८ भंग, तथा भाषापर्याप्तिकालमें तीर्थंकररहित सामान्यकेवलीके ६ संस्थान, विहायोगति और स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×२×२) २४ भंग हैं। मनुष्यमें ६ संस्थान-६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर-आदेय और यशस्कीर्तिरूप पांचयुगलकी विवक्षा होनेसे (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भंग, उद्योतरहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें भी इसीप्रकार ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा ११५२ भंग, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे ८ भंग हैं। इसप्रकार ३० प्रकृतिक स्थानमें (१+५७६+८+२४+११५२+११५२+८)=२९२१ भंग हैं तथा तीर्थंकररहित समुद्घातकेवलीके भाषापर्याप्तिकालसम्बन्धी २४ भंग हैं, किन्तु वे पुनरुक्त हैं अतः इनमें कुछ भी विशेषता नहीं है।

३१ प्रकृतिक स्थानके भाषापर्याप्तिकालमें तीर्थंकरकेवलीके एक भंग है एवं उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें पूर्वोक्तप्रकार ६ संस्थान-६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पांचयुगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भंग, उद्योतसहित द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपचेन्द्रियके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे ८ भंग हैं। इसप्रकार ३१ प्रकृतिक स्थानमें (१+११५२+८) ११६१ भंग हैं। तीर्थंकरप्रकृतिसहित समुद्घातकेवलीके एक भंग है, किन्तु वह पुनरुक्त है तथा अयोगकेवलीके तीर्थंकरप्रकृतिसहित ९ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानका एक भंग है एवं तीर्थंकरप्रकृतिरहित ८ प्रकृतिक स्थानका एकभंग, इसप्रकार सर्व (१+६०+२७+१९+६२०+१२+११७६+१७६०+२९२१+११६१+१+१) ७७५८ भंग होते हैं।

पूर्वगाथामें जो पुनरुक्तभङ्ग कहे हैं उनको कहते हैं—

सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा।
तित्थस्सवि सगभंगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो ॥६०६॥

अर्थ—भाषापर्याप्तिकालमें सामान्यकेवलीके तथा सामान्यसमुद्घातकेवलीके ३० प्रकृतिक स्थानमें २४-२४ भंग समान हैं तथा तीर्थंकरकेवली और तीर्थंकरसमुद्घात-केवलीके ३१ प्रकृतिकस्थानमें एक-एक भंग है सो वह भी समान है इसकारण ये २५ भंग पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं किये जाने चाहिए।

अथानन्तर गुणस्थानोंमें उन भङ्गोंको कहते हैं—

णारयसण्णिमणुस्ससुराणं उवरिमगुणाण भंगा जे।
पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भंगेसु ॥६०७॥

अर्थ—नारकी सञ्ज्ञीतिर्यञ्च-मनुष्य और देवोंके ऊपरवर्ती सासादनादिगुण-स्थानोंमें जो भंग हैं वे मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी भंगोंके समान हैं अतः पुनरुक्त हैं सो उन पुनरुक्तभंगोंको घटाकर केवल मिथ्यात्वगुणस्थानके भंगोंमें ही उनको भी कहा गया है।

विशेषार्थ—२१ प्रकृतिक स्थानके ६० भंगोंमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिसम्बन्धी एक भंगको घटानेपर शेष ५९ भंग, २४ प्रकृतिक स्थानके २७ भंग, २५ प्रकृतिक स्थानके १९ भंगोंमेंसे आहारकमिश्रसम्बन्धी एकभंगके बिना शेष १८ भंग हैं, २६ प्रकृतिक स्थानके ६२० भंगोंमेंसे समुद्घातकेवलीके ६ भंगबिना शेष ६१४ भंग हैं, २७ प्रकृतिक स्थानके १२ भंगोंमेंसे आहारक और तीर्थङ्करसम्बन्धी भंगबिना शेष १० भंग हैं। २८ प्रकृतिरूप स्थानके ११७५ भंगोंमेंसे सामान्यसमुद्घातकेवलीके १२ और आहारकका एक इन १३ बिना ११६२ भंग हैं, २९ प्रकृतिक स्थानके १७६० भंगोंमेंसे सामान्य-समुद्घातकेवलीके १२, तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीका एक, आहारकका एक इन १४ बिना शेष १७४६ भंग हैं। ३० प्रकृतिक स्थानके २९२१ भंगोंमें से सामान्यकेवलीके २४,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थङ्करकेवलीका एक इन २५ बिना शेष २८९६ भंग हैं। ३१ प्रकृतिकस्थानके ११६१ भंगोंमें से एक तीर्थंकरकेवलीके एक भङ्गबिना शेष ११६० भंग हैं। इसप्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानसम्बन्धी सर्व (५९+२७+१८+६१४+१०+११६२+१७४६+२८९६+११६०) ७६९२ भंग जानना।

सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक स्थानके बादरपृथ्वी-जल तथा प्रत्येकवनस्पतिकायके यशस्कीर्तियुगलकी ६, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा ८ भंग, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके दुर्भग-अनादेय-अयशस्कीर्तिरूप ३ युगलोंकी अपेक्षा आठभङ्ग, मनुष्यके भी इसीप्रकार ८ भङ्ग और देवका एक भङ्ग ऐसे सर्व (८+८+८+६+१) ३१ भंग हैं। २४ प्रकृतिके स्थानमें बादरपृथ्वी-अप् एवं प्रत्येकवनस्पतिकायके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा ६ भंग हैं। २५ प्रकृतिकस्थानमें देवगतिका एकभंग है। २६ प्रकृतिक स्थानमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा आठभंग, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं सुभग-आदेय और यशस्कीर्तिरूप तीन युगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२) २८८ भंग उसीप्रकार मनुष्यके भी २८८ ऐसे सर्व (६+१+८+२८८+२८८) ५८४ भंग हैं। इस गुणस्थानमें २७-२८ प्रकृतिका उदय नहीं है, क्योंकि शरीरपर्याप्ति आदिकालोंमें एकेन्द्रियादिकके मिथ्यात्व ही है। २९ प्रकृतिक स्थानमें देव-नारकीके दो भंग हैं। ३० प्रकृतिक स्थानके भाषापर्याप्तिकालमें सञ्ज्ञीतिर्यञ्चके ६ संहनन, ६ संस्थान एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पांच युगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भंग तथा मनुष्यके भी ११५२ भंग हैं इसप्रकार मनुष्य-तिर्यञ्चसम्बन्धी २३०४ भंग हैं। ३१ प्रकृतिके उद्योतसहित सञ्ज्ञीके ११५२ भंग हैं। इसप्रकार सासादनगुणस्थानमें सर्व (३१+६+१+५८४+२+२३०४+११५२) ४०८० भंग जानना।

मिश्रगुणस्थानमें २९ प्रकृतिक स्थानमें देव-नारकीके भाषापर्याप्तिकालमें एक-एक भंग होनेसे दो भंग, ३० प्रकृतिक स्थानमें सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्यके मिलकर २३०४ भंग हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चके ११५२ भंग हैं इसप्रकार मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी सर्व (२+२३०४+११५२) ३४५८ भंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानके चारोंगतिसम्बन्धी एक-एक भंगकी अपेक्षा चारभंग हैं। २५ प्रकृतिकस्थानके घर्मानरक और वैमानिकदेवसम्बन्धी एक-एक भंगकी अपेक्षा दो भंग, २६ प्रकृतिक उदयस्थानमें भोगभूमिजतिर्यञ्चके शुभ प्रकृतियोंका ही उदय होनेसे एकभंग और कर्मभूमिजसञ्ज्ञीतिर्यञ्चके ६ संस्थान और ६ संहननकी अपेक्षा (६×६) ३६ भंग, इसप्रकार २६ प्रकृतिकस्थानके ३७ भंग हैं। २७ प्रकृतिकस्थानमें घर्मानरक और वैमानिकदेवोंके एक-एक भंगकी अपेक्षा दो भंग हैं। २८ प्रकृतिकउदयस्थानमें भोगभूमिजतिर्यञ्च, घर्मानारकी और वैमानिकदेवोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालसम्बन्धी एक-एकभंग होनेसे तीनभंग तथा कर्मभूमिजमनुष्यके ६ संस्थान-६ संहनन और विहायोगतियुगलकी अपेक्षा (६×६×२) ७२ भंग इसप्रकार २८ प्रकृतिक स्थानसम्बन्धी (७२+३) ७५ भंग हैं। २९ प्रकृतिकस्थानके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें भोगभूमिजतिर्यञ्च और मनुष्यके प्रशस्तप्रकृतियोंका ही उदय है अतः एक-एक भंग होनेसे दो भंग हैं तथा देव-नारकीके भाषापर्याप्तिकालमें एक-एक भंग होनेसे दो भंग, कर्मभूमिजमनुष्यके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें ६ संस्थान, ६ संहनन और विहायोगतियुगलकी अपेक्षा (६×६×२) ७२ भंग, इसप्रकार २९ प्रकृतिक स्थानमें सर्व (२+२+७२) ७६ भंग हैं। ३० प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित भोगभूमिजतिर्यञ्चके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें एक भंग तथा कर्मभूमिज सञ्ज्ञीतिर्यञ्च-मनुष्यके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और विहायोगतिरूप पांचयुगलकी अपेक्षा पांचयुगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२×२) ११५२+११५२=२३०४ भंग इसप्रकार ३० प्रकृतिक स्थानमें (१+२३०४)२३०५ भंग जानना। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पांचयुगलोंकी अपेक्षा ११५२ भंग हैं। इसप्रकार असंयतगुणस्थानमें सर्व (४+२+३७+२+७५+७६+२३०५+११५२) ३६५३ भंग जानना।

देशसंयतगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदयस्थानमें सञ्ज्ञीतिर्यञ्च और मनुष्यके ६ संस्थान, ६ संहनन तथा विहायोगति और सुस्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४+१४४=२८८ भंग हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति-सुस्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४ भंग हैं। इसप्रकार देशसयतगुणस्थानमें सर्व (२८८+१४४) ३३२ भंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमत्तगुणस्थानके आहारकमिश्रकालमें २५ प्रकृतिक उदयस्थानका एकभंग, शरीरपर्याप्तिकालमें २७ प्रकृतिक उदयस्थानका एकभंग, श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें २८ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें एकभंग, भाषापर्याप्तिकालमें २९ प्रकृतिकस्थानका एक भंग, औदारिकशरीरके भाषापर्याप्तिकालमें ३० प्रकृतिकस्थानके ६ संस्थान, ६ संहनन तथा विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४ भंग हैं। इसप्रकार प्रमत्तगुण-स्थानसम्बन्धी सर्व (१+१+१+१+१४४) १४८ भंग जानना।

अप्रमत्तगुणस्थानमें ३० प्रकृतिरूप उदयस्थानमें ६ संस्थान, ६ संहनन तथा विहायोगति-सुस्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४ भंग हैं। उपशमश्रेणी-सम्बन्धी चारों उपशमकगुणस्थानोंमें प्रत्येकगुणस्थानके ६ संस्थान, ३ संहनन तथा विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×३×२×२) ७२-७२ भंग हैं एवं क्षपकश्रेणी-सम्बन्धी चारगुणस्थानोंमें ६ संस्थान, १ संहनन तथा विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×१×२×२) २४-२४ भंग हैं। इसप्रकार अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी १४४ भंग तथा उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंके सर्व (७२+७२+७२+७२) २८८ भंग, क्षपकश्रेणी-की अपेक्षा चारोंगुणस्थानोंमें सर्व (२४+२४+२४+२४) ९६ भंग हैं।

सयोगीगुणस्थानके समुद्घातरूपकार्मणकालमें २० प्रकृतिक उदयस्थानमें एकभंग है। तीर्थङ्करसहित २१ प्रकृतिका एक भंग है। औदारिकके मिश्रशरीरकालमें २६ प्रकृतिकस्थानके ६ संस्थानोंकी अपेक्षा ६ भंग हैं. तीर्थङ्करसहित २७ प्रकृतिक स्थानमें एक भंग है। मूलशरीरमें प्रवेश करते समय २८ प्रकृतिक स्थानके शरीरपर्याप्तिकालमें ६ सस्थान और विहायोगतियुगलकी अपेक्षा (६×२) १२ भंग हैं, तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिकस्थानका एकभंग और सामान्यकेवलीके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें १२ भंग इसप्रकार २९ प्रकृतिकस्थानके १३ भंग हैं। तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिकस्थानमें एक भंग, भाषापर्याप्तिकालमें सामान्यकेवलीके ६ संस्थान एवं विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा २४, इसप्रकार ३० प्रकृतिक स्थानमें (१+२४) २५ भंग हैं। तीर्थङ्करसहित ३१ प्रकृतिक स्थानमें एक भंग है। सयोगीगुणस्थानमें ऐसे सर्व (१+१+६+१+१२+१३+२५+१) ६० भंग हैं। अयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करसहित ९ प्रकृतिकस्थानका एक भंग एवं तीर्थङ्करप्रकृतिरहित ८ प्रकृतिक स्थानका एकभंग ऐसे दो भंग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानोंमें नामकर्मके उदयस्थानसम्बन्धी भंगोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	उदयस्थान	प्रकृतिरूप स्थानगतभङ्ग	गुणस्थानगत कुल भङ्ग	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	२१ प्रकृतिरूप	५९		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२४ ,,	२७		,, ,, ,, ,,
	२५ ,,	१८		,, ,, ,, ,,
	२६ ,,	६१४		,, ,, ,, ,,
	२७ ,,	१०	७६९२	,, ,, ,, ,,
	२८ ,,	११६२		,, ,, ,, ,,
	२९ ,,	१७४६		,, ,, ,, ,,
	३० ,,	२८९६		,, ,, ,, ,,
	३१ ,,	११६०		,, ,, ,, ,,
सासादन	२१ प्रकृतिरूप	३१		इस गुणस्थानमें २७ व २८ प्रकृतिकस्थान नहीं हैं। शेष सर्वकथन गाथा ६०७ के विशेषार्थसे जानना चाहिए।
	२४ ,,	६		
	२५ ,,	१		
	२६ ,,	५८४	४०८०	
	२९ ,,	२		
	३० ,,	२३०४		
	३१ ,,	११५२		
मिश्र	२९ प्रकृतिक	२		इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन गाथा ६०७ के विशेषार्थके अनुसार जानना।
	३० ,,	२३०४	३४५८	
	३१ ,,	११५२		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयत	२१ प्रकृतिक	४		इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन गाथा ६०७ के विशेषार्थके अनुसार जानना ।
	२५ ,,	२		
	२६ ,,	३७		
	२७ ,,	२		
	२८ ,,	७५	३६५३	
	२९ ,,	७६		
	३० ,,	२३०५		
	३१ ,,	११५२		
देशसंयत	३० प्रकृतिक	२८८	४३२	,, ,, ,,
	३१ ,,	१४४		
प्रमत्तसंयत	२५ प्रकृतिरूप	१		
	२७	१		
	२८	१	१४८	,, ,, ,,
	२९ ,,	१		
	३० ,,	१४४		
अप्रमत्तसंयत	३० प्रकृतिक	१४४	१४४	,, ,, ,,
उपशमक अपूर्व.	३० ,,	७२		
,, अनिवृत्ति.	३० ,,	७२	२८८	,, ,, ,,
,, सूक्ष्मसांप.	३०	७२		
उपशान्तकषाय	३० ,,	७२		
क्षपक अपूर्वकरण	३० प्रकृतिरूप	२४	९६	क्षपकश्रेणीके चारों गुणस्थानोंके कुल भंगोंकी संख्या ९६ है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षपक अनिवृत्ति.	३० प्रकृतिरूप	२४		
,, सूक्ष्मसांप.	३० ,,	२४		
क्षीणकषाय	३० ,,	२४		
सयोगकेवली	२० प्रकृतिक	१		विशेष कथनके लिये गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखना चाहिये।
	२१ ,,	१		
	२६ ,,	६		
	२७ ,,	१		
	२८ ,,	१२	६०	
	२९ ,,	१३		
	३० ,,	२५		
	३१ ,,	१		
अयोगी	९ प्रकृतिक	१	२	गाथा ६०७ के विशेषार्थसे विशेष कथन जानना।
	८ प्रकृतिक	१		
			१९,९५३	इस प्रकार नामकर्म उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग गुणस्थानोंमें १९,९५३ जानना।

अब उपर्युक्त गाथा ६०७ में कथित भंगोंमें से अपुनरुक्त भंग कहते हैं—

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण।
उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥६०८॥

अर्थ—सहायतारहित पराक्रमवाले श्री महावीरस्वामी (तीर्थङ्करदेव) ने नामकर्मसम्बन्धी २० आदि प्रकृतिरूप पूर्वोक्त १२ उदयस्थानोंमें अपुनरुक्त भङ्ग ७७५८ कहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानके ७६९२, प्रमत्तगुणस्थानवर्ती आहारकशरीर-युत मुनिके ४, सयोगकेवलीके ६० और अयोगकेवलीके २ भंग इसप्रकार (७६९२+४+६०+२) सर्व ७७५८ भंग अपुनरुक्त हैं, इनके अतिरिक्त शेष गुणस्थानसम्बन्धी जो भंग कहे गए हैं वे सभी मिथ्यात्वगुणस्थानके भंगोंमें गर्भित हैं ऐसा समझना चाहिए।

"इति नामकर्मउदयस्थान प्रकरण"

अथ नामकर्मसत्त्वस्थान प्रकरण।

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका कथन १९ गाथाओंमें करते हैं—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥[1]

अर्थ—तेरानवे, बानवे-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७-१० और ९ प्रकृतिरूप नामकर्मके १३ सत्त्वस्थान हैं।

उपर्युक्त सत्त्वस्थान किसप्रकार बनते हैं सो कहते हैं—

सव्वं तित्थाहारुभऊणं सुरणिरयणरदुचारिदुगे।
उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दसणवयं ॥६१०॥

अर्थ—नामकर्मकी सर्व ९३ प्रकृतिरूप प्रथमसत्त्वस्थान है उनमेंसे तीर्थङ्कर-प्रकृति कम करनेपर ९२ प्रकृतिक स्थान होता है, आहारकद्विकप्रकृति घटानेसे ९१ प्रकृतिक, आहारकद्विक-तीर्थङ्कर ये तीन प्रकृतियां कम करनेसे ९० प्रकृतिकस्थान होता है। इन्हीं ९० प्रकृतियोंमेंसे उद्वेलनारूप देवगति-देवगत्यानुपूर्वी ये दो प्रकृतियां कम करनेपर ८८ प्रकृतिकस्थान, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअंगो-पांग इन चार उद्वेलनारूप प्रकृतियोंको ८८ प्रकृतिमेंसे घटानेपर ८४ प्रकृतिक स्थान होता है। इन्हीं ८४ प्रकृतियोंमेंसे उद्वेलनारूप मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियोंको कम करनेसे ८२ प्रकृतिक स्थान होता है तथा 'णिरयतिरिक्खदु वियलं'

१. प्रा० पं० सं० पृ० ३८५ गा० २०८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि ३३८वीं गाथामें कथित अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षय होनेवाली १३ प्रकृतियों को ९३ प्रकृतिमेंसे घटानेपर ८० प्रकृतिक तथा ९२ प्रकृतियोंमेंसे इन्हीं १३ प्रकृतियों-को घटानेपर ७९ प्रकृतिक और ९१ प्रकृतियोंमेंसे इन १३ प्रकृतियोंको कमकरनेसे ७८ प्रकृतिक एवं ९० प्रकृतिमेंसे ये ही १३ प्रकृतियां घटानेसे ७७ प्रकृतिक स्थान होता है। अयोगकेवलीके १० और ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है, इसप्रकार नामकर्मके सत्त्व-स्थान जानना।[1]

विशेष—यहां जो ९१ और ९० प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान कहे गये हैं वे आहा-रकद्विककी उद्वेलनाके पश्चात् बनता है, क्योंकि असंयत भी आहारकद्विकको उद्वेलना करता है।

आगे अयोगकेवली गुणस्थानमें १० व ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियों-को कहते हैं—

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु।
दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु॥६११॥

अर्थ—अयोगकेवलीके "उदयगवारणराणू" इत्यादि गाथामें कही हुई १३ सत्त्वप्रकृतियोंमेंसे वेदनीय, मनुष्यायु और उच्चगोत्र ये तीन प्रकृतियां घटानेपर नाम-कर्मकी १० प्रकृतियोंका सत्त्व है तथा इनमेंसे भी तीर्थंकरप्रकृतिको घटानेपर ९ प्रकृति-का सत्त्व है।[2]

विशेषार्थ—अयोगकेवलीके चरमसमयमें नामकर्मकी १० प्रकृतिक सत्त्वस्थान कहा है वे १० प्रकृतियां इस प्रकार हैं—मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, सुभग, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर इन दस प्रकृतियोंमेंसे मनुष्यगत्यानु-पूर्वीके अतिरिक्त शेष ९ प्रकृतियां उदयरूप है जैसे गाथा ५९८ में कहा गया है, किन्तु मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय अयोगकेवलीके नहीं है, क्योंकि यह क्षेत्रविपाकी प्रकृति है और इसका उदय विग्रहगतिमें ही सम्भव है। जो अनुदय प्रकृति होती है वह एक समय पूर्व स्तुविकसंक्रमणसे अन्यप्रकृतिरूप संक्रमण कर जाती है अतः अनुदयरूप ७२ प्रकृतियोंके साथ मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी भी सत्त्वव्युच्छित्ति अयोगकेवलीके द्विचरमसमयमें

१. प्रा० पं० सं० पृ० ३८५-३८७ गाथा २०९-२१४।
२. प्रा० पं० सं० पृ० ३८७-३८८ गाथा २१५-२१६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.

हो जाना चाहिये जैसा कि ध० पु० ६ पृ० ४१७ और ध० पु० १० पृ० ३२६ एवं भगवती आराधना गा० २११७, २११८, २१२० व २१२१ में कहा है—

सो तेण पंचमत्ताकालेण खवेदि चरिम झाणेण ।
अणुदिण्णाओ दुचरिमसमए सव्वाउ पयडीओ ।।२१२०।।भगवती आराधना।।

अथवा इस सम्बन्धमें आचार्योंके दो मत हैं, श्रुतकेवलीके अभावके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसा कथन ठीक है अत: दोनों कथनोंका संग्रह कर देना उचित है ।

नामकर्मसम्बन्धी १३ सत्त्वस्थानोंकी सन्दृष्टि—

क्रमांक	सत्त्वस्थान	विवरण
१	९३	नामकर्मकी सभी प्रकृतियां हैं ।
२	९२	९३–१ तीर्थङ्कर प्रकृति ।
३	९१	९३–२ आहारकद्विक ।
४	९०	९३–३ आहारकद्विक और तीर्थङ्कर ।
५	८८	९३–५ तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और देवद्विक (उद्वेलना होनेपर)
६	८४	८८-४ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअंगोपांग
७	८२	८४–२ मनुष्यद्विककी (उद्वेलना होनेपर)
८	८०	९३-१३ नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, विकलत्रय, उद्योत, आतप, एकेंद्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावरका क्षय अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें होता है ।[1]
९	७९	९२–१३ उपर्युक्त ।
१०	७८	९१–१३ ,,

१. प्रा० पं० सं० पृ० ३८७ गाथा २१४ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११	७७	६०-१३ उपर्युक्त
१२	१०	१० (मनुष्यद्विक, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति और तीर्थङ्कर)
१३	६	६ (१०-१ तीर्थङ्कर)

अथानन्तर उद्वेलनारूप स्थानोंमें जो विशेषता है उसको कहते हैं—

गुणसंजादप्पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्मि ।
सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लदे जीवो ॥६१२॥

अर्थ—सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना मिथ्यात्वगुणस्थानमें होती है और शेष प्रकृतियोंको उद्वेलना वह जीव करता है जिसके उन प्रकृतियोंकी वासना एवं उदय नहीं है ।

विशेषार्थ—असंयतजीवके आहारकद्विकका बन्ध व उदय नहीं है, वह आहारकद्विककी उद्वेलना करता है । एकेन्द्रिय व विकलत्रयके देवद्विक, नरकद्विक व वैक्रियिकद्विकका बन्ध व उदय नहीं है अतः वे जीव वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करते हैं । इसीप्रकार तेजकायिक वायुकायिकजीवके विषयमें भी जानना ।

अब उन प्रकृतियोंका उद्वेलनक्रम कहते हैं—

सत्थत्तादाहारं पुव्वं उव्वेल्लदे तदो सम्मं ।
सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलो य ॥६१३॥

अर्थ—आहारकद्विक प्रशस्तप्रकृति है अतः इन दोनोंकी पहले उद्वेलना होती है तत्पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिकी उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंके होती है ।

नोट—धवलाकार वीरसेनस्वामीके मतानुसार आहारकद्विककी उद्वेलना असंयममें आते ही होती है ।[1]

---

१. सत्कर्मिक संयत असंयमको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तमें उद्वेलना प्रारम्भ करता है जबतक वह असंयत है और जबतक सत्कर्मसे रहित है तबतक उद्वेलना करता है । (ध. पु. १६ पृ. ४१८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे उद्वेलनाके योग्य कालको कहते हैं—

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं ।
सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु ॥६१४॥

अर्थ—वेदकसम्यक्त्वके योग्यकालमें आहारकद्विककी, उपशमकालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है तथा वैक्रियकषट्ककी उद्वेलना एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियपर्यायमें करता है ।

अब उपर्युक्त गाथामें कथित दोनों कालोंका स्वरूप कहते हैं—

उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे ।
जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥६१५॥

अर्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थिति घटकर त्रस जीवके तो जब पृथक्त्वसागरप्रमाण शेष रहे तथा एकेन्द्रियके पल्यके असंख्यातवें भागकम एकसागर प्रमाण शेष रहने तक "वेदक योग्यकाल" है और यदि सत्तारूप स्थिति उससे भी कम हो जावे तो वह उपशम काल होता है ।

आगे तेजकाय-वायुकायकी उद्वेलनप्रकृतियोंको कहते हैं—

तेउदुगे मणुवदुगं उच्चं उव्वेल्लदे जहण्णिदरं ।
पल्लासंखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं ॥६१६॥

अर्थ—तेजकाय और वायुकायके मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र इन तीन प्रकृतियों की उद्वेलना होती है तथा इस उद्वेलनाके कालका प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्टरूपसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इतने कालमें सर्वस्थितिको उद्वेलनारूप करता है ।

उपर्युक्तकथनको स्पष्ट करते हैं—

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण ।
संखेज्जसायरठिदिं पल्लासंखेज्जकालेण ॥६१७॥

अर्थ—पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्थितिकी अन्तर्मुहूर्तकालमें उद्वेलना करता है तो संख्यातसागरप्रमाण मनुष्यद्विकादिकी सत्तारूप स्थितिको कितने कालमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्वेलना करेगा ? इसप्रकार त्रैराशिकविधि करनेपर पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाणकालमें ही कर सकता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण कालके अग्रतनभागमें पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण काण्डक अधस्तनरूप अन्तर्मुहूर्तसे अधिक सो यह तो प्रमाणराशि है तथा उस काण्डकका पड़ने अर्थात् उद्वेलनारूप होनेका काल अन्तर्मुहूर्त है इसको फलराशि मानना तथा सर्वस्थिति संख्यातसागरप्रमाण है सो इच्छाराशि मानना । फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर पल्यका असंख्यातवांभाग ही लब्ध आवेगा । अन्तर्मुहूर्तमें स्थितिके जितने निषेक उद्वेलनारूप किये उसका ही नाम काण्डक है ।

आगे सम्यक्त्वादिकी विराधना कितनीबार होती है सो कहते हैं—

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं ।
पल्लासंखेज्जदिमं बारं पडिवज्जिदे जीवो ॥६१८॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, देशसंयम और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी विधिको यह जीव उत्कृष्टरूपसे अर्थात् अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवेंभागके जितने समय हैं उतनी बार छोड़-छोड़कर पुनः ग्रहण कर सकता है पश्चात् नियमसे सिद्धपदको प्राप्त होता है ।

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो ।
बत्तीसं बाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥६१९॥

अर्थ—उपशमश्रेणीपर अधिकसे अधिक चारबार ही चढ़ सकता है पश्चात् क्षपकश्रेणी चढ़कर मोक्षको ही प्राप्त होता है । सकलसंयमको उत्कृष्टरूपसे ३२ बार ही धारण करता है पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है ।।६१९।।

मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका युगपत् सत्त्व नहीं पाया जाता है एक समयमें तीर्थंकर अथवा आहारकद्विकका सत्त्व रहेगा तथा नानाजीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थानमें इनका युगपत् सत्त्व रहता है । सासादनगुणस्थानमें नानाजीवोंकी अपेक्षाभी आहारकद्विक-तीर्थंकरका सत्त्व नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकरप्रकृतिसहित सत्त्वस्थान नहीं है, किन्तु आहारकद्विकयुत स्थान तो है, क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तासहित जीवोंके मिश्रगुणस्थान, तीर्थंकर-आहारकद्विककी युगपत् सत्तासहित मिथ्यात्वगुणस्थान और तीर्थंकर अथवा आहारकद्विकमेंसे किसी एकका भी सत्त्व होनेपर मिथ्यात्वरहित अनंतानुबंधीका उदय नहीं होनेसे सासादनगुणस्थान नहीं होता, किन्तु आहारकद्विककीसत्ता रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होनेसे मिश्रगुणस्थान होता है।[1]

अथानन्तर चारोंगतियोंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थान कहते हैं—

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि बाणउदी।
सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥६२०॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि देव-मनुष्यके ९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान, चारोंगतिके जीवोंमें सासादनगुणस्थानको छोड़कर अन्यत्र ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान, सम्यग्दृष्टिदेवके तथा सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्य-नारकीके ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।

विशेषार्थ—९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान मनुष्यके चतुर्थगुणस्थानसे ११ वें गुणस्थान तक सम्भव है।

णउदी चदुग्गदिम्मि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे।
अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्मि बासीदी ॥६२१॥

अर्थ—चारोंगतिके जीवोंमें ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है, किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिमें क्षपकअनिवृत्तिकरणके १३ प्रकृतिके क्षयसे पूर्वतक होता है। मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च व मनुष्यके ८८-८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं, क्योंकि 'सपदे उप्पण्णठाणेवि' इस गाथाके अनुसार एकेन्द्रियादिकमें जहां देवद्विककी उद्वेलना होती है वहां भी ऐसी सत्ता पाई जाती है तथा जो जीव मरणकर तिर्यञ्च या मनुष्यमें जहां भी उत्पन्न हो वहां भी इवकी सत्ता पाई जाती है। मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चके ही ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है क्योंकि मनुष्यद्विककी उद्वेलना तेजकाय-वायुकाय जीवोंके होती है वहां भी इसकी सत्ता है तथा वह मरण करके भी तिर्यञ्चोंमें ही उत्पन्न होता

---

१. तित्थाहाराणुभयं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवई ॥३३३॥कर्मकाण्ड॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां भी इसप्रकारकी सत्ता है, क्योंकि यह मरण करके तिर्यञ्चके अतिरिक्त अन्यत्र उत्पन्न नहीं होता है।

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु।
गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥६२२॥

अर्थ—८०-७९-७८ और ७७ प्रकृतिरूप चारसत्त्वस्थान क्षपक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें १३ प्रकृतियोंका जहां क्षय होता है वहांसे अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त पाए जाते हैं और १० व ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके चरमसमय में होता है।

चारोंगतियोंमें नामकर्मसम्बन्धी सत्त्वस्थानोंकी सन्दृष्टि—

सत्त्वस्थान-का क्रमांक	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या	विशेष विवरण
१	९३	असंयतसम्यग्दृष्टि देव एवं चौथे से ११ वें गुणस्थानवर्ती मनुष्यके पाया जाता है।
२	९२	सासादनगुणस्थानको छोड़कर चारोंगतिके जीवोंमें।
३	९१	सम्यग्दृष्टिदेव, सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्य या नारकीके।
४	९०	मनुष्यके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जहां १३ प्रकृतियोंका क्षय होता है उससे पूर्व-पूर्व गुणस्थानोंमें अथवा चारोंगतिमें यह सत्त्वस्थान होता है।
५	८८	मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च अथवा मनुष्यके ये दोसत्त्वस्थान पाये जाते हैं।
६	८४	
७	८२	मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चके।
८	८०	अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जहां १३ प्रकृतियोंका क्षय होता है वहां से अयोगकेवली गुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त ये चारों सत्त्वस्थान पाये जाते हैं।
९	७९	
१०	७८	
११	७७	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२	९	ये दोनों सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके अन्तसमयमें पाए जाते हैं।
१३	१०	

आगे गाथा ५१९ में कहे हुए ४१ जीवपदोंमें सत्त्वस्थानोंको कहते हैं--

णिरये बाइगिणउदी णउदी भूआदिसव्वतिरियेसु।
बाणउदी णउदी अडचउबासीदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

अर्थ—एकजीवापेक्षा नारकीजीवोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थान ९२-९१ और ९० प्रकृतिरूप हैं, तथा पृथ्वीकायादि सर्व तिर्यञ्चोंमें ९२-९०-८८-८४ और ८२ प्रकृतिक पांच-पांच सत्त्वस्थान हैं।

बासीदिं वज्जित्ता बारसठाणाणि होंति मणुवेसु।
सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥६२४॥

अर्थ—मनुष्योंमें पूर्वोक्त १३ सत्त्वस्थानोंमेंसे ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानको छोड़कर शेष १२ स्थान होते हैं, किन्तु क्षीणमोह सयोगकेवलीके ८०-७९-७८ और ७७ प्रकृतिरूप चारस्थान हैं तथा अयोगकेवलीके ८०-७९-७८-७७-१० और ९ प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थान हैं।

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे।
तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु ॥६२५॥

अर्थ—पूर्वगाथामें सयोगकेवलीके ४ तथा अयोगकेवलीके ६ सत्त्वस्थान कहे हैं उनमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिसहित सयोग-अयोगकेवलीके समसंख्यारूप सत्त्वस्थान एवं तीर्थङ्करप्रकृतिरहित सामान्यसयोग-अयोगकेवलीके विषमसंख्यारूप सत्त्वस्थान हैं। अर्थात् तीर्थङ्करप्रकृतिसहित सयोगकेवलीके ८०-७८ प्रकृतिक तथा अयोगीके १० प्रकृतिक इसप्रकार तीन सत्त्वस्थान हैं और तीर्थङ्करप्रकृतिरहित सामान्यसयोगकेवलीके ७९-७७ प्रकृतिरूप तथा अयोगीके ९ प्रकृतिक ऐसे तीन सत्त्वस्थान हैं। आहारकमें ९३-९२ प्रकृतिक दो एवं वैमानिकदेवोंमें ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप चारसत्त्वस्थान हैं।

बाणउदि णउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं।
हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाणं च य सासणे णउदी ॥६२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

अर्थ—भवनत्रिकदेव, भोगभूमिजमनुष्य और सर्वतिर्यञ्चोंके तथा चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठम और सप्तमपृथ्वीके नारकियोंमें ९२ व ९० प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान एवं सासादनगुणस्थानवर्ती सभी जीवोंके एक ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।

चारों गतियोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

नरकगति		तिर्यञ्चगति		मनुष्यगति			देवगति	
गुणस्थान	सत्त्व-स्थान	गुणस्थान	सत्त्व-स्थान	गुणस्थान	सत्त्वस्थान		गुणस्थान	सत्त्व-स्थान
मिथ्यात्व	९२,९१.९०	मिथ्यात्व	९२.९०,८८ ८४ व ८२	मिथ्यात्व	९२-९१-९०-८८ व ८४		मिथ्यात्व	९२, ९०
सास न	९०	सासादन	९०	सासादन	९०		सासादन	९०
मिश्र	९२, ९०	मिश्र	९२, ९०	मिश्र	९२ व ९०		मिश्र	९२, ९०
असंयत	९२,९१,९०	असंयत	९२, ९०	असंयत	९३-९२-९१ व ९०		असंयत	९३, ९२ ९१व ९०
		देशसंयत	९२, ९०	देशसंयत	,, ,, ,, ,,			
				प्रमत्तसंयत	,, ,, ,, ,,			
				अप्रमत्तसंयत	,, ,, ,, ,,			
				अपूर्वकरण	,, ,, ,, ,,			
				अनिवृत्तिकरण	उपशमश्रेणी ९३-९२-९१ व ९०	क्षपकश्रेणी ८०-७९-७८ व ७७		
				सूक्ष्मसाम्पराय	,, ,, ,,	,, ,, ,,		
				उपशान्तमोह	,, ,, ,,	X X X		
				क्षीणमोह	X X X	८०-७९-७८ व ७७		
				सयोगकेवली	X X X	,, ,, ,,		
				अयोगकेवली	द्विचरमसमय ८०-७९-७८ व ७७	चरमसमय १० व ९		

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब प्रकृतियोंके बन्धोदयसत्त्वके त्रिसंयोगी भङ्ग कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं--

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तठाणभंगा हु।
भणिदा हु तिसंजोगे एत्तो भंगे परूवेमो ॥६२७॥

अर्थ—इसप्रकार मूल-उत्तरप्रकृतियोंके बन्धोदयसत्त्वरूप स्थान तथा भङ्ग कहे अब बन्ध-उदय और सत्त्वके त्रिसंयोगी भङ्गोंको कहेंगे ऐसी आचार्यने प्रतिज्ञा की है।

अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि ॥६२८॥[1]

अर्थ—मूलप्रकृतियोंमें ज्ञानावरणादि ८ प्रकारके बन्धवाले अथवा सातप्रकारके बन्धवाले या छहप्रकारके बन्धवाले जीवोंके उदय और सत्त्व आठ-आठ प्रकार ही जानना। जिसके मूलप्रकृतिका बन्ध एकप्रकारका है उसके उदय ७ प्रकार और सत्त्व ८ प्रकार अथवा उदय-सत्त्व दोनों ही सात-सातप्रकार अथवा चार-चारप्रकारके होते हैं तथा जिसके एक भी मूलप्रकृतिका बन्ध नहीं है उसके उदय और सत्त्व चार-चारप्रकारके होनेसे एक ही विकल्प है।

मूलप्रकृतिके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

	बन्ध	उदय	सत्त्व
१	ज्ञानावरणादि आठ मूल-प्रकृतियोंका	आठ मूल-प्रकृतियोंका	आठ मूल-प्रकृतियोंका
२	आयु बिना सात मूलप्रकृतियोंका	आठ मूल-प्रकृतियोंका	आठ मूल-प्रकृतियोंका
३	मोहनीय व आयु बिना छह मूल-प्रकृतियोंका १०वां गुणस्थान	आठ मूल-प्रकृतियोंका	आठ मूल-प्रकृतियोंका
४	मूलप्रकृतिकी एक सातावेदनीय ११वां गुणस्थान	मोहनीयबिना सात मूल-प्रकृतियोंका	आठ मूल-प्रकृतियोंका
५	मूलप्रकृतिकी एक सातावेदनीय १२वां गुणस्थान	मोहनीयबिना सात मूल-प्रकृतियोंका	मोहनीयबिना सात मूल-प्रकृतियोंका
७	मूलप्रकृतिकी एक सातावेदनीय १३वां गुणस्थान	मूलप्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियां	मूल प्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियां
८	मूलप्रकृति बन्ध का अभाव १४वाँ गुणस्थान	मूलकी चार अघातिया प्रकृतियां	मूलप्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियां

1. यही गाथा प्रा० पं० स० पृ० २९६ पर गाथा नं० ४ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे इन त्रिसंयोगी भङ्गोंको गुणस्थानोंमें घटित करते हैं—

मिस्से अपुव्वजुगले बिदियं अपमत्तओत्ति पढमदुगं ।
सुहुमादिसु तदियादी बंधोदयसत्तभंगेसु ॥६२६॥

अर्थ—उन बन्ध-उदय और सत्त्वसम्बन्धी भङ्गोंमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानोंमें दूसरा भङ्ग, मिश्रगुणस्थानबिना अप्रमत्तपर्यन्त शेष पांचगुणस्थानोंमें आठ-आठके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप पहला और सातके बन्ध तथा आठ-आठके उदय और सत्त्वरूप दूसरा भङ्ग है । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें तीसरा, उपशान्तकषायमें ४ था, क्षीणकषायगुणस्थानमें पांचवां, सयोगीगुणस्थानमें सातवां और अयोगीगुणस्थानमें आठवां भङ्ग है ।

विशेषार्थ—बन्ध-उदय-सत्त्वके भङ्गोंमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा मिश्रगुणस्थानमें, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध और आठ प्रकृतियोंका उदय व सत्त्व ऐसा दूसरा भङ्ग तथा मिश्रगुणस्थानबिना शेष मिथ्यादृष्टिआदिसे अप्रमत्तपर्यन्त छह गुणस्थानोंमें आठ-आठका ही बन्ध-उदय व सत्तारूप प्रथमभङ्ग और सातका बन्ध, आठका उदय व सत्त्व ऐसे दूसरा भंग पाया जाता है । सूक्ष्मसाम्परायमें ६ का बन्ध तथा ८ का उदय व सत्त्व, उपशान्तकषायगुणस्थानमें एकका बन्ध और ७ का उदय व ८ का सत्त्व, क्षीणकषायगुणस्थानमें एकका बन्ध व ७ का उदय तथा ७ का सत्त्व, सयोगीगुणस्थानमें एकका बन्ध, ४ का उदय और चारका सत्त्व, अयोगीगुणस्थानमें बन्धशून्य तथा उदय-सत्त्व ४-४ का है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा त्रिसंयोगीभङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसांप.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	सयोग-केवली	अयोगके.
बन्ध	८।७	८.७	७	८।७	८।७	८।७	८।७	७	७	६	१	१	१	०
उदय	८।८	८।८	८	८।८	८।८	८।८	८।८	८	८	८	७	७	४	४
सत्त्व	८।८	८।८	८	८।८	८।८	८।८	८।८	८	८	८	८	७	४	४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—उपर्युक्तसन्दृष्टिमें ८ का अङ्क आयुसहित, ७ का अङ्क आयुरहित, ६ का अङ्क मोहनीय व आयुरहित, ४ का अङ्क घातिया कर्मोंसे रहित तथा १ का अङ्क सातावेदनीयरूप स्थानको सूचित करता है।

अब उत्तरप्रकृतियोंमें बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगी भङ्ग कहते हैं—

बन्धोदयकम्मंसा णाणावरणंतरायिए पंच।
बन्धोवरमे वि तहा उदयंसा होंति पंचेव ॥६३०॥[1]

अर्थ—ज्ञानावरण और अन्तरायमंकी पांच-पांच प्रकृतिरूप बन्ध-उदय-सत्त्व सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यन्त होता है तथा बन्धका अभाव होनेपर भी उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानमें उदय व सत्त्वरूप पांच-पांच प्रकृतियां हैं। यहां अंश सत्त्वका पर्यायवाची जानना। अर्थात् अंश शब्दसे सत्त्व ग्रहण करना चाहिये।

ज्ञानावरण-अन्तरायकर्मकी उत्तरप्रकृतिके बन्ध-उदय-सत्त्वकी गुणस्थानापेक्षा सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्म साम्पराय	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय
बन्ध	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०
उदय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
सत्त्व	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५

बिदियावरणे णवबंधगेसु चदुपंचउदय णवसत्ता।
छब्बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छडंसा य ॥६३१॥
उवरदबंधे चदुपंचउदय णव छच्च सत्त चदु जुगलं।[2]
तदियं गोदं आउं विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥६३२॥जुम्मं॥

१. यह गाथा प्रा० पं० सं० पृ० २९९ गाथा ८ है।
२. प्रा० पं० सं० पृ० ३००-३०२ गाथा १०-१४ भी देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ——दर्शनावरणकर्मकी ९ प्रकृतियोंको बांधनेवाले मिथ्यात्व और सासादन-गुणस्थानमें उदय पांचका अथवा ४ का और सत्त्व ९ प्रकृतिका होता है। इसीप्रकार ६ प्रकृतिका जिनके बन्ध पाया जाता है ऐसे मिश्रसे दोनोंश्रेणिवाले अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त उदय ४ का व पांचका और सत्त्व ९ प्रकृतिका तथा जिनके चार-प्रकृतिका बन्ध है ऐसे अपूर्वकरणके द्वितीयभागसे उपशमकसूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त एवं १६ प्रकृतिका क्षय करनेवाले क्षपक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्त बन्ध ४ प्रकृतिका उदय ४ प्रकृतिका व पांचप्रकृतिका तथा सत्त्व ९ का है। १६ प्रकृतिका क्षय करनेके पश्चात् सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त बन्ध-उदय उसीप्रकार है, किन्तु सत्त्व ६ प्रकृतिका है तथा जिनके बन्धका अभाव हुआ उनके उदय उसीप्रकार चार व पांच प्रकृतिका है, सत्त्व उपशान्तकषायमें ९ का, क्षीणकषायके द्विचरमपर्यन्त ६ प्रकृतिका तथा क्षीणकषाय-गुणस्थानके चरमसमयमें उदव व सत्त्व चार-चार प्रकृतियोंका है। वेदनीय-गोत्र और आयुकर्मके त्रिसंयोगी भंगोंका विभागकरके गुणस्थानोंमें उनका कथनकर आगे मोहनीय-कर्मका भी कथन करूंगा ऐसी आचार्यने प्रतिज्ञा की है।

दर्शनावरणकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके बन्ध-उदय और सत्त्वरूप त्रिसंयोगीभंग-सम्बन्धी सन्दृष्टि——

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण		अनिवृत्ति.		सूक्ष्मसाम्प.		उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	
								उप-शमक	क्षपक	उप-शमक	क्षपक	उप-शमक	क्षपक		द्वि-चरम	चरम समय
बन्ध	९	९	६	६	६	६	६	६।४	६।४	४	४	४	४	०	०	०
उदय	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४
सत्त्व	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९।६	९	६	९	६	४

अथानन्तर वेदनीयकर्मके उत्तरभेदोंमें त्रिसंयोगी भंगोंको कहते हैं—

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे।
दोसत्तं जोगित्तिय चरिमे उदयागदं सत्तं ॥६३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे ।
चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स ॥६३४॥ [1]जुम्मं॥

अर्थ—साता और असातावेदनीयमेंसे किसी एकका ही बन्ध अथवा उदय-योग्यस्थानमें होता है और सयोगीगुणस्थानपर्यन्त सत्त्व साता-असाता दोनोंका है । अयोगीगुणस्थानके अन्तसमयमें जिसका उदय है उसीका सत्त्व है अत: गुणस्थानोंकी अपेक्षा वेदनीयकर्मके भंग प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त तो साताका बन्ध व उदय, सत्त्व दोनोंका अथवा साताका बन्ध, असाताका उदय, सत्त्व दोनोंका अथवा असाताका बन्ध साताका उदय, सत्त्व दोनोंका अथवा असाता ही का बन्ध-उदय और सत्त्व दोनोंका इसप्रकार चारभंग हैं तथा आगे सयोगीपर्यन्त केवल साताका ही बन्ध है इसलिये साता ही का बन्ध या उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा साताका बन्ध असाताका उदय, सत्त्व दोनोंका अयोगकेवलीके बन्धका अभाव है । द्विचरमसमयपर्यन्त उदय साताका सत्त्व दोनोंका अथवा उदय असाताका सत्त्व दोनोंका, किन्तु चरमसमयमें साता ही का उदय साता ही का सत्त्व अथवा असाता ही का उदय असाता ही का सत्त्व इसप्रकार चारभंग हैं ।

गुणस्थानोंकी अपेक्षासे वेदनीयकर्मके भंगोंकी संख्यासम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसांप.	उपशान्त कषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेव.	अयोगकेव.	भङ्गोंका कुल जोड़ ४२
भंग संख्या	४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४	

आगे गोत्रकर्मसम्बन्धीभंग चारगाथाओंसे कहते हैं—

णीचुच्चाणेगदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे ।
दोसत्ताजोगित्ति य चरिमे उच्चं हवे सत्तं ॥६३५॥

अर्थ—नीचगोत्र और उच्चगोत्र इन दोनोंमेंसे एक ही का बन्ध तथा उदय यथायोग्य स्थानोंमें होता है एवं सत्त्व अयोगीके द्विचरमसमयमें दोनोंका ही पाया जाता है, किन्तु अयोगीके चरमसमयमें जाकर उच्चगोत्रका ही सत्त्व पाया जाता है ।

१. प्रा० पं० स० पृ० ३०८ गा० १९-२० भी देखो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्तं तु।
सेसिगिवियल्ले सयले णीचं च दुगं च सत्तं तु ॥६३६॥

अर्थ—जिनके उच्चगोत्रकी उद्वेलना हुई ऐसे तेजकाय और वायुकायजीवोंके नीचगोत्रका ही सत्त्व है और शेष एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय तथा सकलेन्द्रियके नीचगोत्रका अथवा दोनोंका ही सत्त्व है।

इसी बातको अगली गाथामें स्पष्ट करते हैं—

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु।
उप्पण्णपढमकाले णीचं एयं हवे सत्तं ॥६३७॥

अर्थ—उच्चगोत्रकी उद्वेलनासे युक्त तेजकाय-वातकायजीवोंके मात्र नीचगोत्रका ही सत्त्व है और ये दोनों मरणकर एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय अथवा सकलेन्द्रिय-तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं तब अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त एक नीचगोत्रका ही सत्त्व है पश्चात् उच्चगोत्रका बन्ध कर लेनेपर दोनोंका सत्त्व पाया जाता है।

अथानन्तर गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंग कहते हैं—

मिच्छादिगोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु।
एक्केक्का जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण ॥६३८॥[1]

अर्थ—गुणस्थानोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें क्रमसे पांच और चार, मिश्र-असंयत-देशसंयत इन तीन गुणस्थानोंमें दो-दो, प्रमत्तसे सयोगीपर्यन्त आठगुणस्थानोंमें एक-एक और अयोगकेवलीके दो भंग होते हैं ऐसा नियमसे जानना।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें नीचगोत्रका बन्ध और उदय व सत्त्व दोनोंका अथवा नीचगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय एवं सत्त्व दोनोंका अथवा उच्चगोत्रका बन्ध-उदय तथा सत्त्व दोनोंका अथवा उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा नीचगोत्रका बन्ध-उदय एवं सत्त्व इसप्रकार पांच भंग हैं। सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी नीचगोत्रके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप अन्तिमभंगबिना

१. प्रा० पं० सं० पृ० ३०५-३०६ गाथा १७-१८ भी देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

शेष चारभंग हैं, क्योंकि तेजकाय-वायुकाय जीवोंके सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है। मिश्र, असंयत और देशसंयतगुणस्थानमें उच्चगोत्रका बन्ध और उदय एवं सत्त्व दोनोंका अथवा उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय एवं सत्त्व दोनोंका ऐसे दो-दो भंग हैं। प्रमत्तसे सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत पांचगुणस्थानोंमें उच्चगोत्रका बन्ध-उदय एवं सत्त्व दोनोंका ऐसा १-१ भङ्ग है। आगे उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय और सयोगकेवली-गुणस्थानमें बन्धका अभाव, उच्चगोत्रका उदय एवं सत्त्व दोनोंका ऐसा एक-एक ही भंग है। अयोगकेवलीगुणस्थानमें उच्चगोत्रका उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा अन्तसमयमें उच्चगोत्रका उदय और सत्त्वरूप एक ऐसे दो भंग पाये जाते हैं।

गुणस्थानकी अपेक्षा गोत्रकर्मके भंगसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसाम्प	उपशान्त.	क्षीणकषाय	सयोगकेव.	अयोगकेव	कुल भङ्गोंकी संख्या २५
भंग-संख्या	५	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	२	

अब आयुकर्मके भंग १३ गाथाओंसे कहते हैं—

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स।
णरतिरिया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥६३९॥
भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति।
इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं ॥६४०॥जुम्मं॥

अर्थ—भुज्यमानआयुके अधिकसे अधिक छहमहिना अवशेष रहनेपर देव और नारकी मनुष्य अथवा तिर्यञ्चायुका ही बन्ध करते हैं तथा मनुष्य-तिर्यञ्च भुज्यमान-आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर चारों आयुओंमेंसे योग्यतानुसार किसी भी एक आयुका बंध करते हैं। भोगभूमिज जीव अपनी आयुका छहमहिना अवशेष रहनेपर देवायुका ही बन्ध करते हैं, एकेन्द्रिय और विकलत्रयजीव मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुमेंसे किसी एक-का बन्ध करते हैं, किन्तु तेजकाय-वायुकायिक जीव और सप्तमपृथ्वीके नारकीजीव तिर्यञ्चायुका ही बन्ध करते हैं।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसप्रकार आयुकर्मके बन्धका कथन करके उदय और सत्त्वका निरूपण करते हैं–

सगसगगदीणमाउं उदेदि बन्धे उदिण्णगेण समं ।
दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं ॥६४१॥

अर्थ—नारकी आदि जीवोंके अपनी-अपनी गतिसम्बन्धी एक आयुका उदय एवं परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध होते समय अथवा बन्ध हो जानेपर उदयागतआयुसहित (बध्यमान और भुज्यमानरूप) दोका सत्त्व, किन्तु जबतक परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध न हो तबतक एक भुज्यमान आयुकी ही सत्ता रहती है ऐसा जानना ।

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे ।
अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ ॥६४२॥

अर्थ--एकजीव एकभवमें एक ही आयुका बन्ध करता है और वह भी योग्यकालमें तथा वहांपर भी वह सभी स्थानोंपर आयुकी त्रिभागी शेष रहनेपर ही बंधती है ।

इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिी होदि ।
ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ॥६४३॥

अर्थ--पूर्वकथित आठ अपकर्षोंमें (त्रिभागीमें) प्रथमबारके बिना द्वितीयादि बारमें जो पहले आयु बांधी थी उसकी स्थितिकी वृद्धि होती है । कर्मभूमिज मनुष्य-तिर्यञ्चोंकी भुज्यमान आयुका परिणामोंके निमित्तसे अथवा बाह्यनिमित्तसे अपवर्तनघात (कदलीघात) भी होता है ।

विशेषार्थ—पूर्वमें आयुकी स्थिति बांधी थी पश्चात् दूसरी अथवा तीसरीबारमें उससे अधिक या हीन अथवा उतनी ही स्थितिको बांधता है । इनमें जो अधिक स्थिति बांधी उसी की प्रधानता जाननी तथा यदि हानि हो तो पूर्वमें जो अधिकस्थिति थी उसकी प्रधानता जानना । भुज्यमान आयुकी त्रिभागी अवशेष रहनेपर आयुका बन्ध होता ही है ऐसा एकान्तिक नियम नहीं है । प्रत्येक त्रिभागीकालमें यद्यपि आयुबन्धकी योग्यता है तथापि आयुबन्धका नियम नहीं है । अर्थात् बन्धे या नहीं भी बंधे तथा अन्यकालमें आयुका बन्ध होता ही नहीं यह नियम है ।

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु ।
एक्कस्सेक्कम्मि भवे एक्काउं पडि तये णियमा ॥६४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—इसप्रकार बन्ध होने अथवा नहीं होनेपर अथवा उपरतबन्धावस्थामें एक जीवके एक पर्यायमें एक-एक आयुकेप्रति तीन-तीनभङ्ग नियमसे होते हैं।

विशेषार्थ—जहां वर्तमानकालमें परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध हो रहा है वहां बन्ध आगामी आयुका, उदय भुज्यमान आयुका, सत्त्व भुज्यमान व बध्यमान दोनों आयुका पाया जाता है। जहां आगामी आयुका भूतकालमें बन्ध नहीं हुआ हो और वर्तमानकालमें भी नहीं हो रहा हो तो वहां बन्धका अभाव और उदय एवं सत्त्व भुज्यमानआयुका ही पाया जावेगा और जहां आगामी आयुका पहले बन्ध हुआ हो और वर्तमानकालमें बन्ध नहीं हो रहा हो वहां बन्धका अभाव और उदय भुज्यमान आयुका तथा सत्त्व पूर्वबद्ध व भुज्यमान आयु दोनोंका होता है यही उपरतबन्ध कहलाता है, इसप्रकार एक-एक आयुके प्रति तीन-तीन भङ्ग जानना।

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहिं ताडिदे णाणा।
जीवे इगिभवभङ्गा रूऊणगुणूणमसरित्थे ॥६४५॥

अर्थ—उक्त एक-एक आयुके तीन-तीन भंगोंको विवक्षित गतिमें आगामी जितनी आयुका बन्ध सम्भव है उस संख्यासे गुणाकर जो-जो प्रमाण होवे उतने नाना-जीवों की अपेक्षा एक-एक भवसम्बन्धी भंग होते हैं सो नरक व देवगतिमें तो तिर्यञ्च और मनुष्यायुका ही बन्ध सम्भव है अतः दो से उन तीन भंगोंको गुणा करनेपर छह-छह भंग होते हैं तथा मनुष्य व तिर्यञ्चके चारों आयुका बन्ध सम्भव है इसलिये चार से उन तीन भंगोंको गुणा करनेसे १२-१२ भंग होते हैं और अपुनरुक्त भंगोंकी अपेक्षा बध्यमान आयुकी संख्यारूप जो गुणाकार कहा उसमेंसे एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसे पूर्वोक्त भंगोंमेंसे घटावेसे अपुनरुक्तभंग होते हैं सो देव व नारकीके तो पांच-पांच और मनुष्य व तिर्यञ्चोंके नौ-नौ अपुनरुक्त भंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नरकगतिमें आयुकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वसम्बन्धी सन्दृष्टि--

	तिर्यञ्चायु			मनुष्यायु		
	बन्ध	अबन्ध	उपरतबन्ध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबन्ध
बन्ध	१ ति. आयु	०	१ उप.	१ म.	०	१ उप.
उदय	१ न.	१ न.	१ न.	१ न.	१ न.	१ न.
सत्त्व	२ ति. न.	१ न.	२ ति. न.	२ म. न.	१ न.	२ म. न.

मनुष्यगतिमें आयुकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वसम्बन्धी सन्दृष्टि—

	नरकायु			तिर्यंचायु			मनुष्यायु			देवायु		
	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबन्ध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध
बन्ध	१ न.	०	१ उप.	१ ति.	०	१ उप.	१ म.	०	१ उप.	१ देव	०	१ उप.
उदय	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.
सत्त्व	२ न. म.	१ म.	२ न. म.	२ ति. म.	१ म.	२ ति. म.	२ म. म.	१ म.	२ म. म.	२ दे. म.	१ म.	२ दे. म.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोट—मूलगाथाका सारांश यह है कि एक-एक आयुकी अपेक्षासे तीन-तीन भंग होते हैं, जिसगतिमें जितनी आयुका बन्ध हो उस बध्यमान आयुकी संख्याको ३ भंगोंसे गुणा करनेपर सर्वभंगोंकी संख्या निकल जाती है।

जिसगतिमें जितनी आयुका बन्ध हो उसमेंसे १ कम करनेसे शेष पुनरुक्त भंग रह जाते हैं अथवा सर्वभंगोंमेंसे पुनरुक्तभङ्गोंको घटानेपर शेष अपुनरुक्तभंग रहते हैं। जैसे—भुज्यमानदेवायुमें मनुष्य-तिर्यञ्चायुका बन्ध होता है अर्थात् २×३=६ भंग हुए। देवगतिमें २ आयुका बन्ध है उसमेंसे १ कम करनेपर १ पुनरुक्तभंग होता है उसको घटानेसे ६-१=५ अपुनरुक्तभंग जानना।

आगे गुणस्थानोंमें आयुकर्मके अपुनरुक्तभंगोंको कहते हैं—

पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि।
णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव बिदियगुणे ॥६४६॥
सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये।
णरतिरिये तिरियाऊ तिरणाउगबंधभंगूणा ॥६४७॥
देस णरे तिरिये तियतियभङ्गा होंति छट्ठसत्तमगे।
तियभंगा उवसमगे दो दो खवगेसु एक्केक्को ॥६४८॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकगतिके ५, मनुष्यके ९, तिर्यञ्चगतिके ९ और देवगतिके ५ भंग हैं; सासादनगुणस्थानमें आयुबन्धकी अपेक्षा मनुष्य-तिर्यञ्चके जो ४ भंग कहे थे उनमेंसे नरकायुके बन्धबिना बन्धरूप भंग होते हैं अतएव वहां नरकगतिके ५, मनुष्यगतिके ८, तिर्यञ्चगतिके ८ और देवगतिके ५ भंग जानना ॥६४६॥

पूर्वमें आयुबन्धकी अपेक्षा जो भंग कहे थे वे सभी कम करनेपर मिश्रगुणस्थानमें नरकगतिके ३, मनुष्यगतिके ५, तिर्यञ्चगतिके ५ और देवगतिके ३ भंग हैं तथा असंयतगुणस्थानमें देव-नरकगतिमें तिर्यञ्चायुके बन्धरूप भंग न होनेसे चार-चार भंग हैं एवं मनुष्य-तिर्यञ्चगतिमें आयुबन्धकी अपेक्षा नरक-तिर्यञ्च और मनुष्यायुरूप तीन भंग नहीं है, क्योंकि इनके बन्धका व्युच्छेद सासादनगुणस्थानमें ही हो गया है इसलिए यहां मनुष्यगतिके ६ और तिर्यञ्चगतिके भी ६ भंग जानना ॥६४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च-मनुष्यके बन्ध-अबन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा एक देवायुसे तीन-तीन भंग तथा प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानीय मनुष्यके देवायुके बन्धकी अपेक्षा बन्ध-अबन्ध और उपरतबन्ध होनेसे तीन-तीन भंग हैं। उपशमश्रेणीमें देवायुका बन्ध नहीं होनेसे अबन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा दो-दो भंग हैं एवं क्षपकश्रेणीमें उपरतबन्धका भी अभाव होनेसे अबन्धकी अपेक्षा एक-एक ही भंग है ऐसा जानना चाहिये ॥६४८॥

आगे गुणस्थानोंमें सर्वगतिसम्बन्धी आयुकर्मके भंगसम्बन्धी कुल जोड़ कहते हैं—

अडछव्वीसं सोलस वीसं छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं।
असरिसभंगा तत्तो अजोगिअंतेसु एक्केक्को ॥६४९॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८, सासादनगुणस्थानमें २६, मिश्रगुणस्थानमें १६, असंयतगुणस्थानमें २०, देशसंयतगुणस्थानमें ६, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ३-३ भंग, उपशमश्रेणिवाले चारगुणस्थानोंमें दो-दो तथा क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त एक-एकभंग कहा है।

गुणस्थानकी अपेक्षा अपुनरुक्तभंगोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	चतुर्गतिसम्बन्धीभङ्ग				चारोंगतिके सर्वभंगोंकी संख्या	विशेष विवरण
	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव		
मिथ्यात्व	५	९	९	५	२८	
सासादन	५	८	८	५	२६	मनुष्य-तिर्यञ्चगतिमें नरकायुका बंध नहीं है अतः इन दोनोंगतियों में एक-एक भङ्ग कम हुआ।
मिश्र	३	५	५	३	१६	इस गुणस्थानमें आयुबंधका अभाव है अतः बन्ध सम्बन्धी भङ्ग नहीं कहे।
असंयत	४	६	६	४	२०	यहां देव-नरकगतिमें तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता अतः एक-एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

						भङ्ग कम हुआ तथा मनुष्य-तिर्यंच-गतिमें मनुष्य, तिर्यञ्च व नरकायु का बन्ध नहीं होता अतः ३-३ भंग कम किए।
देशसंयत	०	३	३	०	६	तिर्यञ्च-मनुष्यगतिमें एक देवायु का बन्ध होता है अतः बन्ध-अबंध एवं उपरतबन्धकी अपेक्षा ३-३ भङ्ग हैं।
प्रमत्त	०	०	३	०	३	,, ,, ,,
अप्रमत्त	०	०	३	०	३	,, ,, ,,
उपशमक अपूर्वकरण	०	०	२	०	२	२ भङ्ग (देवायुका अबन्ध एवं उपरतबन्धकी अपेक्षा)
क्षपकअपूर्व-करण	०	०	१	०	१	१ (अबन्धकी अपेक्षा)
उपशमक अनिवृत्तिक.	०	०	२	०	२	उपशमक अपूर्वकरणवत्।
क्षपक ,,	०	०	१	०	१	क्षपक ,, ,, ।
उपशमक सूक्ष्मसाम्पराय	०	०	२	०	२	उपशमक ,, ,, ।
क्षपक ,,		०	१	०	१	क्षपक ,, ,, ।
उपशांतकषाय	०	०	२	०	२	उपशमक ,, ,, ।
क्षीणकषाय	०	०	१	०	१	यह भङ्ग अबन्धकी अपेक्षासे है।
सयोगकेवली	०	०	१	०	१	अबन्धकी अपेक्षासे।
अयोगकेवली	०	०	१	०	१	,, ,, ।
					११६	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब वेदनीय-गोत्र-आयु इन तीनोंके मिथ्यात्वादि सर्वगुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या कहते हैं—

बादालं पणुवीसं सोलसअहियं सयं च वेयणिये।
गोदे आउम्मि हवे मिच्छादिअजोगिणो भंगा ॥६५०॥

अर्थ—पूर्वमें जो मिथ्यात्वसे अयोगीपर्यन्त गुणस्थानोंमें भंग कहे हैं वे सभी मिलकर वेदनीयकर्मके ४२, गोत्रकर्मके २५ और आयुकर्मके ११६ भंग होते हैं।

आगे वेदनीय-गोत्र और आयुकर्मके सामान्यरूपसे पूर्वोक्त मूलभंगोंकी संख्या कहते हैं—

वेयणिये अडभंगा गोदे सत्तेव होंति भङ्गा हु।
पण णव णव पण भङ्गा आउचउक्केसु विसरित्था ॥६५१॥

अर्थ—उन पूर्वोक्त भंगोंमें अपुनरुक्त मूलभंग वेदनीयकर्मके ८ और गोत्रके ७ होते हैं तथा चारों आयुओंके क्रमसे ५, ९, ९ एवं ५ भंग होते हैं।

अथानन्तर मोहनीयकर्मके त्रिसंयोगी भंगोंको कहते हैं—

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६५२॥

अर्थ—मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानोंमें सर्वभंग जैसे पूर्वमें पृथक्-पृथक् कहे थे उसीप्रकार बंधादिके संयोगरूप त्रिसंयोगमें भी जानना।

अब गुणस्थानकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान ७ गाथाओंमें कहते हैं—

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदु ति दुसु चउसु चत्तारि।
तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणम तियं ॥६५३॥

अणियट्टीबंधतियं पणदुगएक्कारसुहुमउदयंसा।
इगि चत्तारि य संते सत्तं तिण्णेव मोहस्स ॥६५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बावीसं दसयचऊ अडवीसतियं च मिच्छबंधादी ।
इगिवीसं णवयतियं अट्ठावीसे च बिदियगुणे ॥६५५॥
सत्तरसं णवयतियं अडचउवीसं पुणोवि सत्तरसं ।
णवचउ अडचउवीस य तिवीसतियमंसयं चउसु ॥६५६॥
तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि ।
तो णवगं छादितियं अडचउरिगिवीससयं च बंधातियं ॥६५७॥
पंचादिपंचबंधो णवमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु ।
अट्ठचदुरेक्कवीसं तेरादीअट्ठयं सत्तं ॥६५८॥
लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कयं सत्तं ।
अडचउरिगिवीसंसा संते मोहस्स गुणठाणे ॥६५९॥ विसेसयं॥

अर्थ—मोहनीयकर्मके पूर्वोक्त बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानोंमें यथासम्भव बन्धस्थान मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणपर्यन्त आठगुणस्थानोंमें एक-एक, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें बन्धस्थान ५ हैं तथा सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्तकषायगुणस्थानमें मोहनीयकर्मके बन्धका अभाव है। उदयस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानमें ४, सासादन व मिश्रमें ३-३, असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त चारगुणस्थानोंमें चार-चार, अपूर्वकरणमें ३, अनिवृत्तिकरणमें २, सूक्ष्मसाम्परायमें एक और उपशान्तकषायमें उदयस्थान नहीं है। सत्त्वस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानमें ३, सासादनमें १, मिश्रमें दो, असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त पांच-पांच, अपूर्वकरणमें ३, अनिवृत्तिकरणमें ११, सूक्ष्मसाम्परायमें चार और उपशान्तकषायमें तीन हैं ॥६५३-५४॥

उपर्युक्त कथनका स्पष्टीकरण करते हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धस्थान २२ प्रकृतिक, उदयस्थान १०-८-९ व ७ प्रकृतिक, सत्त्वस्थान २८-२७-२६ प्रकृतिक हैं। सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक बन्धस्थान, ९-८ व ७ प्रकृतिक उदयस्थान एवं २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है, मिश्रगुणस्थानमें १७ प्रकृतिक बन्धस्थान, ९-८ व ७ प्रकृतिक उदयस्थान और २८ व २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है। असंयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतिक बन्धस्थान, ९-८-७ व ६ प्रकृतिक उदयस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान, देशसंयतगुणस्थानमें १३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिक बन्धस्थान, ८-७-६ व ५ प्रकृतिके चार उदयस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान । प्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिक बन्धस्थान, ७-६-५-४ प्रकृतिक चार उदयस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप पांच सत्त्वस्थान हैं । अप्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिरूप एक बन्धस्थान, ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थान और २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पांच सत्त्वस्थान हैं । अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ प्रकृतिरूप बन्धस्थान, ६-५ व ४ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान, एवं २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ५-४-३-२ व १ प्रकृतिक पांच बन्धस्थान, २ व १ प्रकृतिक उदयस्थान एवं २८-२४-२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिरूप ११ सत्त्वस्थान हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धस्थान शून्य, सूक्ष्मलोभरूप एकप्रकृतिक उदयस्थान, सत्त्वस्थान २८-२४ व २१ प्रकृतिक हैं, उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्ध व उदयस्थान नहीं है तथा २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं ।

गुणस्थानकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वके त्रिसंयोगी भंग सम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	बंधस्थान की संख्य	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या	उदय-स्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या	सत्त्व-स्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतियोंकी संख्या
मिथ्यात्व	१	२२ प्रकृतिक	४	१०-९-८ व ७	३	२८-२७ व २६
सासादन	१	२१ ,,	३	९-८ व ७	१	२८ प्रकृतिक
मिश्र	१	१७ ,,	३	९-८ व ७	२	२८-२४ ,,
असंयत	१	१७ ,,	४	९-८-७ व ६	५	२८-२४-२३-२२ व २१
देशसंयत	१	१३ ,,	४	८-७-६-५	५	,, ,, ,,
प्रमत्त	१	९ ,,	४	७-६-५-४	५	,, ,, ,,
अप्रमत्त	१	९ ,,	४	७-६-५-४	५	,, ,, ,,
अपूर्वकरण (उपशमक)	१	९ ,,	३	६-५ व ४	३	२८-२४ व २१
अपूवकरण क्षपक	१	९ ,,	३	६-५ व ४	१	२१ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण (उपशमक)	५	५-४-३-२ व १	२	२ व १ प्रकृतिक	३	२८-२४ व २१
अनिवृत्तिकरण (क्षपक)	५	,, ,,	२	२ व १ ,,	६	२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिक
सूक्ष्मसाम्पराय (उपशमक)	०	०	१	१सूक्ष्मलोभरूप	३	२८-२४ व २१
सूक्ष्मसाम्पराय (क्षपक)	०	०	१	१ ,,	१	१ प्रकृतिक
उपशान्तकषाय	०	०	०	०	३	२८-२४ व २१

नोट—उपर्युक्त सन्दृष्टिमें कथित बन्धस्थानोंके लिए गाथा ४६४, उदयस्थान के लिये ४७६ गाथा एवं सत्त्वस्थानके लिये गाथा ५०८ से ५११ भी देखना चाहिए।

अब मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगीभंगोंमें जो विशेषता है उसको कहते हैं—

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बंध सत्तं च।
सत्ते बंधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगाधेजं ॥६६०॥

अर्थ—बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थान हैं, उदयस्थानमें बन्धस्थान और सत्त्वस्थान तथा सत्त्वस्थानमें बन्ध और उदयस्थान होते हैं। इसप्रकार एक अधिकरण में दो आधेय हैं ऐसा जानना।

अब सर्वप्रथम बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थानको कहते हैं—

बावीसयादिबंधेसुदयंसा चदुतितिगिचऊपंच।
तिसु इगि छद्दो अट्ठ य एक्कं पंचेव तिट्ठाणे ॥६६१॥

दसयचऊ पढमतियं णवतियमडवीसयं णवादिचऊ।
अडचदुतिदुइगिवीसं अडचदु पुव्वं व सत्तं तु ॥६६२॥

सगचउ पुव्वं वंसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतियं।
दुगमेक्कं च य सत्तं पुव्वं वा अत्थि पणगदुगं ॥६६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिसु एक्केक्कं उदओ अडचउरिगिवीससत्तसंजुत्तं ।
चदुतिदयं तिदयदुगं दो एक्कं मोहणीयस्स ॥६६४॥

अर्थ--मिथ्यात्वगुणस्थानके २२ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान पूर्वोक्त ४ एवं सत्त्वस्थान ३ हैं, सासादनगुणस्थानके २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें उदयस्थान ३ एवं सत्त्वस्थान एक है, मिश्र व असंयतगुणस्थानसम्बन्धी १७ प्रकृतिक, देशसंयतगुणस्थानके १३ प्रकृतिक, प्रमत्त-अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी ९ प्रकृतिक इसप्रकार (१७-१३ व ९) तीन बन्धस्थानोंमें उदयस्थानतो चार-चार हैं, किन्तु अपूर्वकरणके ९ प्रकृतिकस्थानमें तीन ही उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान पांच-पांच हैं, परन्तु अपूर्वकरणमें तीन हो सत्त्वस्थान हैं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान एक एवं सत्त्वस्थान (२८-२४-२१-१३-१२ व ११ प्रकृतिरूप) हैं, इसीगुणस्थानके ४ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान २ तथा सत्त्वस्थान उपशमश्रेणीकी अपेक्षा २८-२४ व २१ प्रकृतिक तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा २१-१३-१२-११-५ व ४ प्रकृतिक इसप्रकार आठ हैं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ही ३-२ व १ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें उदयस्थाव तो सर्वत्र एक प्रकृतिरूप ही है, किन्तु सत्त्वस्थान उपशमश्रेणीकी अपेक्षातो २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन हैं तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा ३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ४ व ३ प्रकृतिक, २ प्रकृतिक बंधस्थानमें ३ व २ प्रकृतिक एवं १ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २ व १ प्रकृतिक जानना ।

मोहनीयके बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि--

गुणस्थान	बन्ध-स्थानगत प्रकृति	उदय-स्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या	सत्त्व-स्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्या
मिथ्यात्व	२२	४	१०-९-८ व ७	३	२८-२७ व २६ प्रकृतिक
सासादन	२१	३	९-८ व ७	१	२८ प्रकृतिक
मिश्र	१७	३	,,	२	२८ व २४ ,,
असंयत	१७	४	९-८-७ व ६	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
देशसंयत	१३	४	८-७-६ व ५	५	,, ,, ,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमत्त	९	४	७-६-५ व ४	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
अप्रमत्त	९	४	„	५	„ „ „
अपूर्वकरण	९	३	६-५ व ४	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक
उपशमक-क्षपक अनिवृत्तिकरण	५	१	२ प्रकृतिक	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक
„	४	२	२ व १ „	८	२८-२४-२१-१३ १२-११-५व४ „
„	३	१	१ „	५	२८-२४-२१ ४ व ३ प्रकृतिक
„	२	१	१ „	५	२८-२४-२१ ३ व २ „
„	१	१	१ „	५	२८-२४-२१ २ व १ „

अथानन्तर उदयस्थानको अधिकरण मानकर बन्धस्थान और सत्त्वस्थानके आधेयरूप भङ्गोंको कहते हैं—

दसयादिसु बंधंसा इगितिय तियछक्क चारिसत्तं च ।
पण पण तियपण दुगपण इगितिग दुगछच्चऊणवयं ॥६६५॥

अर्थ—दस आदि (१०-९-८-७-६-५-४-२ व १ प्रकृतिरूप उदयस्थानोंमें बन्धस्थान क्रमसे १-३-४-५-३-२-१-२ व ४ तथा सत्त्वस्थान ३-६-७-५-५-५-३-६ व ९ हैं।

आगे उपर्युक्त कथनका विशेष स्पष्टीकरण तीन गाथाओंसें करते हैं—

पढमं पढमतिचउपणसत्तरतिग चदुसु बंधयं कमसो ।
पढमतिछस्सगमडचउतिदुइगिवीसंसयं दोसु ॥६६६॥
तेरदु पुव्वं वंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो ।
पणदुगमडचउरेक्कावीसं तेरसतियं सत्तं ॥६६७॥
चरिमे चदुतिदुगेक्कं अट्ठयचदुरेक्कसंजुदं वीसं ।
एक्कारादीसव्वं कमेण ते मोहणीयस्स ॥६६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--१० प्रकृतिरूप प्रथम उदयस्थानमें २२ प्रकृतिक एक बन्धस्थान एवं २८-२७ व २६ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं, ९ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें २२-२१ व १७ प्रकृतिरूप तीन बन्धस्थान और २८-२७-२६-२४-२३-२२ प्रकृतिक ६ सत्त्वस्थान[1] हैं, ८ प्रकृतिक उदयस्थानमें २२-२१-१७ व १३ प्रकृतिक चार बन्धस्थान तथा सत्त्वस्थान २८-२७-२६-२४-२३-२२ और २१ प्रकृतिक हैं, ७ प्रकृतिक उदयस्थानमें २२-२१-१७-१३ व ९ प्रकृतिरूप पांच बन्धस्थान एवं २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पांच सत्त्व-स्थान हैं, ६ प्रकृतिक उदयस्थानमें १७-१३ और ९ प्रकृतिक तीन बन्धस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पांच सत्त्वस्थान हैं। ५ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें १३ व ९ प्रकृतिक दो बन्धस्थान एवं सत्त्वस्थान २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पांच हैं, ४ प्रकृतिक उदयस्थानमें ९ प्रकृतिक एक ही बन्धस्थान और २८-२४ व २१ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं, २ प्रकृतिक उदयस्थानमें ५ व ४ प्रकृतिक दो बन्धस्थान एवं २८-२४-२१ प्रकृति सत्त्वस्थान तो उपशमश्रेणीकी अपेक्षा एवं २१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक सत्त्व-स्थान क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा इसप्रकार ६ सत्त्वस्थान हैं। १ प्रकृतिक उदयस्थानमें ४-३-२ व १ प्रकृतिक चार बन्धस्थान एवं उपशमश्रेणीकी अपेक्षा २८-२४ व २१ प्रकृतिक तीन और ११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिक ५ इसप्रकार ८ सत्त्वस्थान जानना।

---

१. सम्यग्दृष्टिके ९ प्रकृतिका उदयस्थान सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसहित ही होता है और २१ प्रकृतिक सत्त्व-स्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका सत्त्व नहीं है अतः ९ प्रकृतिक उदयस्थानमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहनीयकर्मके उदयस्थानमें बन्ध व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

उदय-स्थान	उदयस्थानगत प्रकृति विवरण	बंधस्थान	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण	गुणस्थान	सत्त्वस्थान	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण
	मि.-क.-वे.-यु.-भ.-जु.		मि.-क.-वे.-यु.-भ.-जु.			मि.-स.-मि.-अन.-अप्र.-प्र.-सं.-वे.-नो.
१०	१–४–१–२–१–१	२२	१–१६–१–२–१–१	प्रथम	२८	१–१–१–४–४–४–४–३–६=२८
					२७	१–X–१–४–४–४–४–३–६=२७
					२६	१–X–X–४–४–४–४–३–६=२६
९	१–४–१–२–१–०	२२	१–१६–१–२–१–१	"	२८, २७, २६	उपर्युक्त
९	१–३–१–२–१–१	२२	" "	"	२८	"
९	X–४–१–२–१–१	२१	X " "	द्वितीय	२८	"
९	मिश्र-१-३-१-२-१-१	१७	X–१२–१–२–१–१	तृतीय	२८-२४	१–१–१–X–४–४–४–३–६=२४
९	सम्य.-१-३-१-२-१-१	१७	X " "	चतुर्थ	२८-२४	X–१–१–X–४–४–०–३–६=२३
					२३-२२	X–१–X–X–४–४–४–३–६=२२
८	१, ४, १, २, X, X	२२	१, १६, १, २, १, १	प्रथम	२८, २७, २६	उपर्युक्त
८	१–३–१–२–१–०	२२	" "	"	२८	"
८	X–४–१–२–१–०	२१	X १६, १, २, १, १	द्वितीय	२८	"
८	मिश्र–३–१–२–१–०	१७	X १२, १, २, १, १	तृतीय	२८, २४	"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi .

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८	सम्य. ३, १, २, १, ०	१७	X १२, १, २, १, १,	चतुर्थ	२८, २४, २३	उपर्युक्त
८	X–३–१–२–१–१	१७	,, ,,	,,	२२, २१	X–X–X–X–४–४–४–३–६=२१
८	सम्य. २–१–२–१–१	१३	X–८–१–२–१–१	पञ्चम	,,	उपर्युक्त
७	मि. ३–१–२–X–X	२२	उपर्युक्त	प्रथम	२८	,,
७	X–४–१–२–X–X	२१	,,	द्वितीय	,,	,,
७	मिश्र.–३–१–२–X–X	१७	,,	तृतीय	२८, २४	,,
७	सम्य. ३–१–२–X–X	१७	,,	चतुर्थ	२८, २४, २३, व २२	,,
७	X–३–१–२–१–०	१७	,,	,,	२८, २४, २३, २२ व २१	,,
७	सम्य. २–१–२–१–०	१३	,,	पंचम	२८, २४, २२ व २२	,,
७	X–२–१–२–१–१	१३	,,	,,	२८, २४, २३, २२ व २१	,,
७	सम्य. १–१–२–१–१	९	X–४–१–२–१–१	६ व ७ वां	२८, २४, २३ व २२	,,
६	X–३–१–२–X–X	१७	उपर्युक्त	चतुर्थ	२८, २४, २३, २२ व २१	,,
६	सम्य. २–१–२–X–X	१३	,,	पंचम	२८, २४, २३ व २२	,,
६	X–२–१–२–१–०	१३	,,	,,	२८, २४, २३, २२ व २१	,,
६	सम्य. १–१–२–१–०	९	,,	६-७	२८, २४, २३ व २२	,,
६	X–१–१–२–१–१	९	,,	६-७-८	२८, २४, २३, २२ व २१	,,
५	X–२–१–२–०–०	१३	X–८–१–२–१–१	पंचम	२८, २४, २३, २२ व २१	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

५	X-१-१-२-१-०	६	X-४-१-२-१-१	६-७-८	२८, २४, २१	उपर्युक्त
४	X-१-१-२-०-०	६	,, ,,	,,	,,	,,
२	X-१-१-०-०-०	५	X-४-१-X-X-X	६ वां	२८, २४, २१ व १३	X-X-X-X-X-X-४-३-६=१३
					१२	,, ,, ४-२-६=१२
					११	,, ,, ४-१-६=११
		४	X-४-०-०-०-०	६ वां	२८, २४, २१, १३, १२, ११	उपरोक्त
१	X-१-०-०-०-०	४	०-४-X-X-X-X	,,	५	X-०-०-X-०-X-४-१-० नवकसमय-प्रबद्ध
१	X-१-X-X-X-X	४	X-४-०-०-०-०	,,	४	०-X-०-X-०-X-४-०-०
		३	०-३-X-X-X-X	,,	३	X-०-X-०-X-०-३-X-X
		२	X-२-०-०-०-०	,,	२	X-०-०-X-X-०-२-०-०
		१	X-१-X-X-X-X	,,	१	X-X-X-X-X-X-१-X-X
		०	X-X-X-०-०-०	१० वां	१	,, ,, १-०-०

अब सत्त्वस्थानोंको अधिकरण मानकर बन्ध-उदयको आधेय मानते हुए भंगोंका कथन करते हैं—

सत्तपदे बंधुदया दसणव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु ।
अडसग दुगि दुसु बिबिगिगि दुगि तिसु इगिसुणमेक्कं च ॥६६६॥

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सव्वं सयलं पढमं दसतिय दुसु सत्तरादियं सव्वं ।
णवयप्पहुदीसयलं सत्तरति णवादिपण दुपदे ॥६७०॥

सत्तरसादि अडादीसव्वं पण चारि दोण्णि दुसु तत्तो ।
पंचचउक्क दुगेक्कं चदुरिगि चदुतिण्णि एक्कं च ॥६७१॥

तत्तो तियदुगमेक्कं दुप्पयडीएक्कमेक्कठाणं च ।
इगिणभबंधो चरिमे एउदओ मोहणीयस्स ॥६७२॥

अर्थ—२८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १० तथा उदयस्थान ९ हैं, २७ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ व उदयस्थान ३ हैं। २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ और उदयस्थान ३ हैं, २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्ध व उदयस्थान ८-८ हैं, २३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ३ एवं उदयस्थान ५ हैं, २२ प्रकृतिकरूप सत्त्व-स्थानमें बन्धस्थान ३ तथा उदयस्थान ५ हैं, २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्ध व उदय-स्थान क्रमसे ८ व ७ हैं, १३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २ एवं उदयस्थान १ है, १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २ तथा उदयस्थान १ है। ११ प्रकृतिक सत्त्व-स्थानमें बन्धस्थान-उदयस्थान २-२ हैं, ५ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानमें बन्ध-उदयस्थान १-१ हैं, ४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २ एवं उदयस्थान १ है, ३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २ एवं उदयस्थान १ है, २ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्ध-उदयस्थान क्रमसे २ व १ हैं तथा १ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ तथा उदयस्थान भी एक ही है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंमें बन्ध व उदयस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सत्त्व-स्थान	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण	गुण-स्थान	बंधस्थान	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण	उदयस्थान	उदयस्थानगत प्रकृति विवरण	गुण-स्थान
	मि.-स.-मिश्र -क -वे.नो.			मि. --क. --वे. -- नोक.		मि.-स.-मिश्र.-क.-वे.-यु.-भ.-जु.	
२८	१-१-१-१६-३--६	१ से ११	२२,२१,१७	१-१६-१-४=२२	१०-९-८	१-X-०-४-१-२-१-१=१०	प्रथम
			१३,९,५,४	X-१६-१-४=२१	७-६-५-४	०-०-०-४-१-२-१-१=९	द्वितीय
			३, २, १	X-१२-१-४=१७	२ व १	X-X-२-३-१-२-१-१=९	तृतीय
				X-८-१-४=१३		X-१-X-३-१-२-१-१=९	चतुर्थ
				X-४-१-४=९		X-१-X-२-१-२-१-१=८	पंचम
				X-४-१-X=५		०-१-०-१-१-२-१-१=७	६-७
				X-४-X-X=४		०-०-०-१-१-२-१-१=६	८ वां
				X-३-X-X=३		X-X-X-१-१-२-१-०=५	,,
				X-२-X-X=२		X-X-X-१-१-२-०-०=४	,,
				X-१-X-X=१		०-०-०-१-१-०-०-०=२	९ वां
						X-X-X-१-X-X-X-X=१	,,
		१० वां	०	०-०-०-०=०	१	०-०-०-१-०-०-०-०=१	१० वां
२७	१-०-१-१६-३-६	प्रथम	२२	१-१६-१-४=	१०-९-८	उपर्युक्त	
२६	१-०-०-१-६-३-६	,,	२२	उपर्युक्त	,,	,,	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

२४	१–१–१–१२–३–६	३-४ से ११ तक	१७,१३,९; ५,४,३,२,१	उपर्युक्त	९-८-७-६-५-४-२-१	उपर्युक्त	३ से १०
२३	X–१–१–१२–३–६	४ से ७	१७,९ व १३	,,	९-८-७-६ व ५	X–१–X–३–१–२–१–१=९	चतुर्थ
						X–१–X–२–१–२–१–१=८	पंचम
						X–१–X–१–१–२–१–१=७	६-७ वां
						X–१–X–१–१–२–१–०=६	,,
						X –X–१–१–२–०–०=५	,,
२२	X–१–X–१२–३–६	४ से ७	१७-९-१३	२८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान के समान	,,	उपर्युक्त	
२१	X–X–x–१२–३–६	४ से ११		२४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान के समान	८-७-६-५	X–X–X–३–१–२–१–१=८	चतुर्थ
					४-२ व १	०–०–०–२–१–२–१–१=७	पंचम
						०–०–०–१–१–२–१–१=६	६ से ८
						०–०–०–१–१–२–१–०=५	,,
						x–x–X–१–१–२–०–०=४	,,
						X–X–X–१–१–X–X–X=२	९ वां
						X–X–x–१–x–x–X–x=१	,,
१३	०–०–०–४–३–६	९ वां	५ व ४	X–४–१–X=५ x–४–x–X–=४	२ प्रकृतिक	०–०–०–१–१–०–०–०=२	
१२	x–X–X–४–२–६	,,	,,	,, ,,	,,	,, ,, ,, =२	

११	X-X-X-४-१-६	,,	,,	,,	,,	२	क. १–वे. १
						१	क. १–०
५	क. ४, वे. १	,,	४	क. ४		१	क. १
४	क. ४–०	,,	४	क. ४		१	क. १
३	क. ३–०	,,	३	क. ३		१	क. १
			२	क. २			
२	क. २–०	,,	२	क. २		१	क. १
			१	क. १			
१	क. १	९ वां	१	क. १		१	क. १
		१० वां	०	०			

बन्ध-उदय व सत्त्वमेंसे दो को आधार तथा एकको आधेय बनाकर कथन करते हैं--

बंधुदये सत्तपदं बंधंसे णेयमुदयठाणं च ।
उदयंसे बंधपदं दुट्ठाणाधारमेक्कमाधेज्जं ॥६७३॥

अर्थ—बन्ध-उदयस्थानोंमें सत्त्वस्थान, बन्ध-सत्त्वस्थानोंमें उदयस्थान और उदय-सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान इसप्रकार दो स्थानोंको आधार तथा एक स्थानको आधेय बनाकर तीन प्रकारसे भङ्ग जानना चाहिए ।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब सर्वप्रथम ६ गाथाओंसे बन्ध-सत्त्वस्थानोंमें उदयस्थानोंका कथन करते हैं—

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये ।
अट्ठावीसति सत्तं सत्तुदये अट्ठवीसेव ।।६७४।।

अर्थ—२२ प्रकृतिक बन्धसहित जीवके १०-९-८ व ७ प्रकृतिक चारउदयस्थान हैं उनमें १०-९ व ८ प्रकृतिक तीनस्थानोंमें सत्त्वस्थान २८-२७ व २६ प्रकृतिक तीन हैं और ७ प्रकृतिक उदयस्थानमें २८ प्रकृतिक स्थानका ही सत्त्व है ।

इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव ।
सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेक्कवीसंसा ।।६७५।।

अर्थ—२१ प्रकृतिक बन्धसहित जीवके ९-८-७ प्रकृतिक तीनस्थानोंके उदयहोनेपर २८ प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान है और १७ प्रकृतिक बन्धस्थानसहित जीवके ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चारस्थानोंका उदय होनेपर २८-२४-२३-२२ और २१ प्रकृतिरूप ५ सत्त्वस्थान हैं ।

यहांपर कुछ विशेषता है उसको २ गाथाओंमें कहते हैं—

इगिवीसं ण हि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे ।
अडचउसगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे ।।६७६।।

अर्थ—९ प्रकृतिका उदय होनेपर २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं होता है और ६ प्रकृतिका उदय होनेपर २३ व २२ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान नहीं होता तथा १३ प्रकृतिके बन्धसहित ८-७-६ व ५ प्रकृतिरूप चार उदयस्थानोंके होनेपर तथा ९ प्रकृतिक बन्धस्थानसहित ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थानोंके होनेपर जैसे १७ प्रकृतिके स्थानमें सत्त्वस्थान कहे थे उसीप्रकार यहां भी सत्त्वस्थान जानना अर्थात् १३ व ५ प्रकृतिक उदयस्थानमें और ९ प्रकृतिका बन्ध होते हुए ४ प्रकृतिक उदयस्थानमें २२ व २३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है तथा १३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ८ प्रकृतिक उदयस्थान एवं ९ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ७ प्रकृतिक उदयस्थान होनेपर २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं होता है ।

णवरि य अपुव्वणवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा ।
पणबंधे दो उदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं ।।६७७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यहां इतनी और भी विशेषता है कि अपूर्वकरणगुणस्थानमें ६ प्रकृतिके बन्धसहित ६-५ व ४ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान होनेपर भी २३ और २२ प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता है और पांच प्रकृतिके बन्धसहित दो प्रकृतिके उदय होते हुए २८-२४-२१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक छह सत्त्वस्थान हैं अर्थात् उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ का तथा १३-१२ व ११ प्रकृतिका सत्त्वस्थान क्षपकश्रेणीमें होता है।

चदुबन्धे दो उदये सत्तं पुव्वं व तेण एक्कुदये।
अडचउरेक्कावीसा एयारतिगं च सत्ताणि ॥६७८॥

अर्थ—४ प्रकृतिक बन्धसहित दो प्रकृतिके उदय होनेपर सत्त्वस्थान पूर्वोक्त प्रकार जानना अर्थात् उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ प्रकृतिक तथा क्षपकश्रेणीमें १३-१२ व ११ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है तथा उसी ४ प्रकृतिके बन्धसहित एक प्रकृतिका उदय होनेपर उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ और क्षपकश्रेणीमें ११-५ व ४ प्रकृतिरूप ३-३ सत्त्वस्थान जानने योग्य हैं।

तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतियठाणेण तिदुगठाणेण।
दुगिठाणेण य सहिता अडचउरिगिवीसया सत्ता ॥६७९॥

अर्थ—तीन-दो और एकप्रकृतिके बन्धसहित एकप्रकृतिका उदय होनेपर उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं तथा क्षपकश्रेणीमें तीनप्रकृतिरूप बन्धस्थानमें एकप्रकृतिरूप उदय होनेपर ४ व ३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। २ प्रकृतिक बन्धस्थानमें १ प्रकृतिका उदय होनेपर एवं १ प्रकृतिक बन्धस्थानमें १ प्रकृतिका उदय होनेपर २ व १ प्रकृतिरूप दो-दो सत्त्वस्थान हैं।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मकी सर्वबन्धप्रकृतियोंमें चारोंगतिके मिथ्यादृष्टिजीव २२ प्रकृतिका बन्ध करते हैं उनके मिथ्यात्वसहित और अनन्तानुबन्धीके उदयसहित या रहित आठ कूट कहे हैं उनमें अपुनरुक्त १०-९-८ व ७ प्रकृतिक चार उदयस्थान एक जीवकी अपेक्षा तो अनुक्रमसे और नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् २८-२७ व २६ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं तथा ७ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें २८ प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान है २७ व २६ प्रकृतिरूप स्थान नहीं है क्योंकि असंयतादि चारगुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँ प्रथम समयमें २२ प्रकृतिका बन्ध किया तब अनन्तानुबन्धीका एकसमयप्रबद्ध बांधा उसकी उदीरणा अचलावली कालपर्यंन्त नहीं हो सकती है और अनन्तानुबन्धीके उदयरहित उस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका वेदकसम्यक्त्वयोग्य (जिसका लक्षण गाथा ६१५ में दिया है) काल है, उपशमकाल नहीं है, क्योंकि उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना नहीं हुई है। पहले गाथा नं० ६१५ में वेदकसम्यक्त्वयोग्यकाल और उपशमसम्यक्त्वयोग्यकालकालक्षण तथा वेदकसम्यक्त्वयोग्यकालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी सर्वउद्वेलनाका अभाव कह दिया है।

चारोंगतिसम्बन्धी सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् ९-८ व ७ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं इनमें २८ प्रकृतिरूप एक ही सत्त्वस्थान है २७ व २६ प्रकृतिक नहीं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे गिरकर सासादनगुणस्थानमें आता है। इसका काल एकसमयसे छह आवलीपर्यन्त है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलनाका अवसररूप जो उपशमकाल है वह यहां नहीं है तथा यहां २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी नहीं है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीके उदयबिना सासादनगुणस्थान सम्भव नहीं है। चारोंगतिसम्बन्धी मिश्रगुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है वहां एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नानाजीवोंकी अपेक्षा युगपत् ९-८ व ७ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। यहां २८ व २४ प्रकृतिरूप दो ही सत्त्वस्थान हैं २३ व २२ प्रकृतिक नहीं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं होता है। चारोंगतिके असंयतगुणस्थानवर्ती जीवोंमें मोहनीयकर्मकी १७ प्रकृतियोंका बन्ध है। यहां एकजीवकी अपेक्षा क्रमसे तथा नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं इनमें ९ प्रकृतिका उदय होते हुए वेदकसम्यग्दृष्टिपना ही है। दर्शनमोहनीयकी क्षपणा प्रारम्भ होनेसे पूर्व २८ प्रकृतिक एवं अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो जानेपर २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है, किन्तु क्षपणा करनेवालेके पहले २४ प्रकृतिका तथा मिथ्यात्वका क्षय हो जानेपर २३ प्रकृतिका और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय हो जानेपर २२ प्रकृतिका सत्त्व होता है उस समयतक सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होनेसे ९ प्रकृतिका उदयस्थान होता है एवं क्षायिकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिके सत्त्वस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयाभाव हो जानेसे ९ प्रकृतिकस्थान सम्भव नहीं हैं। ८ व ७ प्रकृतिका उदय होनेपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें २८ प्रकृतिक एवं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्त्वस्थान हैं। वेदकसम्यग्दृष्टिके ८ व ७ प्रकृतिका उदय होते हुए २८-२४ व २३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे तथा नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् होता है। क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक ही सत्त्वस्थान है तथा उदय ८ व ७ प्रकृतिका होता है। ६ प्रकृतिके उदयमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय नहीं होनेसे क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है। उपशमसम्यक्त्वमें ६ प्रकृतिका उदय होनेपर २८ और २४ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान हैं।

१३ प्रकृतिके बन्धसहित देशसंयतगुणस्थानमें तिर्यञ्च व मनुष्यके उपशम या वेदकसम्यक्त्व होता है, क्षायिकसम्यक्त्व मनुष्यके ही होता है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व तो भोगभूमिज तिर्यंचके होता है, किन्तु भोगभूमिज जीवोंके देशसंयम नहीं होता है। ८ प्रकृतिका उदय होनेसे वेदकसम्यक्त्वो तिर्यञ्चके २८-२४ प्रकृतिरूप दो सत्त्वस्थान और मनुष्यके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं। ७ व ६ प्रकृतिका उदय होते हुए तिर्यञ्च व मनुष्यके उपशमसम्यक्त्वमें तो २८ व २४ प्रकृतिरूप दो, वेदकसम्यग्दृष्टि तिर्यंचके २८ व २४ प्रकृतिके दो और वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं। देशसंयतगुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होते हैं इसलिये २१ प्रकृतिका ही सत्त्व है। ५ प्रकृतिका उदय रहते हुए उपशमसम्यक्त्वी मनुष्य व तिर्यंचके २८ व २४ प्रकृतिरूप दो सत्त्वस्थान हैं. किन्तु क्षायिकसम्यक्त्वी मनुष्यके २१ प्रकृतिका ही सत्त्वस्थान है। ९ प्रकृतिके बन्धसहित प्रमत्त-अप्रमत्तके ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं। इनमेंसे सातप्रकृतिका उदय होते हुए वेदकसम्यग्दृष्टि ही है अतः २८-२४-२३ और २२ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं। ६ व ५ प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टिके तो २८ व २४ प्रकृतिका सत्त्व है तथा वेदकसम्यक्त्वीके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं, क्षायिकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक एकही सत्त्वस्थान है। चार प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है।

९ प्रकृतिके बन्धसहित अपूर्वकरणगुणस्थानमें ६-५ व ४ प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टिके २८ व २४ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान हैं और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। ५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २ प्रकृतिक उदयस्थान-सहित उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान है तथा ४ प्रकृतिका बन्ध एव १ प्रकृतिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदय होनेपर उपशमसम्यग्दृष्टिके २८ व २४ प्रकृतिक और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१-११-५ व ४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। ३ प्रकृतिका बन्ध एवं १ प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यक्त्वीके २८ व २४ प्रकृतिक दो तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें २१-४ व ३ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं। २ प्रकृतिका बन्ध और १ प्रकृतिके उदयसहित अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक दो तथा क्षायिकसम्यक्त्व में २१-२ व १ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं। यहां क्षपकअनिवृत्तिकरणके ४-३-२ व १ प्रकृतिका बन्ध होते हुए क्रमसे ५-४-४-३-३-२-२ व १ प्रकृतिका सत्त्व है। यह सत्त्व वेद व कषायोंके नवकसमयप्रबद्ध एवं उच्छिष्टावलीप्रमाण निषेकोंके अवशिष्ट रहनेपर होता है।

बन्ध-उदयस्थानको अधिकरण मानकर आधेयरूप सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

बन्धस्थान	उदयस्थान की संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिविवरण	सत्त्वस्थान की संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण
२२	३	१०-९ व ८	३	२८-२७ व २७ प्रकृतिक
२२	१	७ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक
२१	३	९-८ व ७	१	२८ „
१७	२	८ व ७	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
१७	१	९	४	२८-२४-२३ व २२
१७	१	६	३	२८-२४ व २१
१३	१	८	४	२८-२४-२३ व २२
१३	२	७ व ६	५	२८-२४-२३-२२ व २१
१३	१	५	३	२८-२४ व २१
९ } अप्रमत्त-प्रमत्त	१	७	४	२८-२४-२३ व २२
९	२	६ व ५	५	२८-२४-२३-२२ व २१
९	१	४	३	२८-२४ व २१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ अपूर्व.	३	६-५ व ४	३	२८-२४ व २१
५ } अनिवृत्ति.	१	२	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११
४ }	१	२	६	,, ,, ,,
४	१	१	६	२८-२४-२१-११-५ व ४
३	१	१	५	२८-२४-२१-४ व ३
२	१	१	५	२८-२४-२१-३ व २
१	१	१	५	२८-२४-२१-२ व १

अथानन्तर बंध व सत्त्वको आधार मानकर उदयको आधेय मानते हुए ५ गाथाओंसे भङ्ग कहते हैं—

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे।
छब्वीसे दसयतियं इगिअडवीसे दु णवयतियं ॥६८०॥

अर्थ—२२ प्रकृतिके बन्धसहित चारोंगतिवाले मिथ्यादृष्टिजीवके २८ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए १०-९-८ व ७ प्रकृतिरूप ४ उदयस्थान हैं. क्योंकि यहां अनन्तानुबन्धीरहित भी उदयस्थान है तथा २२ प्रकृतिके बन्धसहित २७ व २६ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए १०-९ व ८ प्रकृतिरूप तीन ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि यहां अनन्तानुबन्धीका अभाव नहीं होता है। २१ प्रकृतिके बन्धसहित चारोंगतिके सासादनगुणस्थानमें २८ प्रकृतिका सत्त्व होता है, मिथ्यात्वके उदयका अभाव होनेसे ९-८ व ७ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं।

सत्तरसे अडचदुवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे।
णो पढमुदओ एवं तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ ॥६८१॥

अर्थ—१७ प्रकृतिके बन्धसहित चारोंगतिके जीवोंमें २८ व २४ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं, क्योंकि मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिसहित तीन ही उदयस्थान हैं, असंयतगुणस्थानमें चार उदयस्थान हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७ प्रकृतिके बन्धसहित २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर चारोंगतिके असंयतजीवोंमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टिके ९ प्रकृतिक उदयस्थानका अभाव होनेसे ८-७ व ६ प्रकृतिक तीन उदय-स्थान हैं तथा १७ प्रकृतिके बन्धसहित २२ व २३ प्रकृतिक सत्त्ववालेके ६ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होनेसे ९-८ व ७ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान हैं।

तेरणवे पुव्वंसे अडादिचउ सगचउरहमुदयाणं।
सत्तरसं व वियारो पणगुवसंते सगेसु दो उदया ॥६८२॥
तेरणवं तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा।
तेणुवसंतंसेयारतिए एक्को हवे उदओ ॥६८३॥

अर्थ—१३ प्रकृतिके बन्धसहित देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च व मनुष्यके और ९ प्रकृतिके बंधसहित प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक चार-सत्त्वस्थान होते हुए देशसंयतगुणस्थानमें ८-७ व ६ प्रकृतिक तीन एवं प्रमत्त-अप्रमत्तगुण-स्थानमें ७-६ व ५ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। १३ प्रकृतिके ही बन्धमें २१ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए ८ प्रकृतिक उदयस्थानबिना ७-६ व ५ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं तथा ९ प्रकृतिका बन्ध होते हुए २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें ७ प्रकृतिक उदयस्थानका अभाव होनेसे ६-५ व ४ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। उपशमकअपूर्वकरणमें ९ प्रकृतिके बन्धमें २८-२४ व २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें ६-५ व ४ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं एवं क्षपक-अपूर्वकरणके २१ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए ६-५ व ४ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान हैं। उपशमकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिका और क्षपकअनिवृत्तिकरणके १३-१२ व ११ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए ५ प्रकृतिके बन्धसहित २ प्रकृतिका एवं ४ प्रकृतिका बन्ध होते हुए २ प्रकृतिका उदय है, किन्तु ११-५ व ४ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए १ प्रकृतिका उदय है।

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतिएण ति दुगेण।
दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदओ ॥६८४॥

अर्थ—३-२ व १ प्रकृतिके बन्धसहित उपशमकअनिवृत्तिकरणके २८-२४ व २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर और क्षपकअनिवृत्तिकरणके ४ व ३ प्रकृतिका, ३ व २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिका अथवा २ व १ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर एक-एक प्रकृतिक ही उदयस्थान होता है। यहां नवकसमयप्रबद्धकी विवक्षासे दो-दो प्रकारके सत्त्व कहे हैं।

अधिकरणरूप बन्ध-सत्त्वस्थानमें आधेयरूप उदयस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

	अधिकरण		आधेय	
बन्धस्थान विवरण	सत्त्व-स्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या	उदय-स्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या विवरण
मिथ्यादृष्टिके २२	१	२८ प्रकृतिक	४	१०-९ व ८ प्रकृतिक अनन्तानुबन्धी सहित एवं ९-८ व ७ प्रकृतिक अनंतानुबन्धी रहित।
२२	२	२७ व २६ ,,	३	१०-९-८ प्रकृतिक। यहां सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना है अतः अनन्तानुबन्धीरहित उपर्युक्त उदय स्थान नहीं हैं।
सासादनमें २१	१	२८ प्रकृतिक	३	९-८ व ७ प्रकृतिक।
मिश्रमें १७	२	२८ व २४ ,,	३	९-८ व ७ प्रकृतिकस्थान (सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति सहित)
असंयतमें १७	२	२८ व २४ ,,	४	९-८-७ व ६ (सम्यक्त्वप्रकृतिसहित तो ९-८-७ तथा सम्यक्त्वप्रकृतिरहित ८-७ व ६)
क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतके १७	१	२१ प्रकृतिक	३	८-७ व ६ प्रकृतिक (सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयरहित)
दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यके असंयत-गुणस्थानमें १७	२	२३ व २२ ,,	३	९-८ व ७ (सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसहित)
देशसंयती तिर्यञ्च व मनुष्यमें १३	२	२८-२४ प्रकृतिक	४	८-७-६ व ५ (सम्यक्त्वसहित तो ८-७ व ६ एवं सम्यक्त्वरहित ७-६ व ५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षायिकसम्यक्त्वसहित देशसंयतीके १३	१	२१ प्रकृतिक	३	७-६ व ५ (सम्यक्त्वरहित)
दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले देशसंयती वेदकसम्यग्दृष्टि-मनुष्यके १३	२	२२ व २३ ,,	३	८-७-६ (सम्यक्त्वसहित)
प्रमत्त-अप्रमत्त व उपशमक अपूर्वकरणमें ६	२	२८ व २४ ,,	४	७-६-५ व ४ (अपूर्वकरणमें ७ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है)
क्षपक-उपशमक अपूर्वकरणके ६	१	२१ प्रकृतिक	३	६-५ व ४ प्रकृतिक (क्षायिकसम्यग्दृष्टिके)
प्रमत्त-अप्रमत्त ६	२	२२ व २३ ,,	३	७-६ व ५ (प्रमत्त-अप्रमत्त वेदकसम्यग्दृष्टिके जो कि दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला है।)
अनिवृत्तिकरणके ५	६	२८-२४-२१ (उपशमकके) १३-१२-११ (क्षपकके)	१	२ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरणमें ४	६	२८-२४ व २१ (उपशमकके) १३-१२ व ११ (क्षपकके)	१	२ ,,
,, ,, ४	६	२८-२४ व २१ (उपशमकके) ११-५ व ४ (क्षपकके)	१	१ ,,
अनिवृत्तिकरणमें ३ (उपशमक व क्षपक)	५	२८-२४ व २१ (उपशमकके) ४ व ३ (क्षपकके)	१	१ ,,
अनिवृत्तिकरणमें २ (उपशमक व क्षपक)	५	२८-२४ व २१ (उपशमकके) २ व १ (क्षपकके)	१	१ ,,
अनिवृत्तिकरणमें १ (उपशमक व क्षपक)	५	२८-२४ व २१ (उपशमकके) २ व १ (क्षपकके)	१	१ ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे उदय-सत्त्वको आधार एवं बन्धको आधेय मानकर सातगाथाओंमें भङ्गों का कथन करते हैं—

दसगुदये अडवीसतितसे बावीसबंध णवअट्ठे ।
अडवीसे बावीसतिचउबंधो सत्तवीसदुगे ॥६८५॥
बावीसबंध चदुतिदुवीसंसे सत्तरसयदद्दुगबंधो ।
अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंधं विसेसं तु ॥जुम्मं॥

अर्थ—१० प्रकृतिके उदयसहित २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २२ प्रकृतिक बन्ध है, ९ व ८ प्रकृतिके उदयसहित २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २२-२१-१७ व १३ प्रकृतिक चारबन्धस्थान हैं। १०-९ व ८ प्रकृतिके उदयसहित २७ व २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २२ प्रकृतिक बन्ध है। मिश्रगुणस्थानमें २४ प्रकृतिक सत्त्वमें और असंयत-गुणस्थानमें २४-२३ व २२ प्रकृतिके सत्त्वमें ९-८ व ७ प्रकृतिका उदय रहते हुए १७ प्रकृतिका बन्ध है। २४ प्रकृतिक सत्त्वमें ८-७ व ६ प्रकृतिका उदय होते हुए देशसंयत-गुणस्थानमें १३ प्रकृतिका बन्ध है, क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतके २१ प्रकृतिके सत्त्वसहित ८-७-६ प्रकृतिके उदयमें १७ प्रकृतिका बन्ध है।

सत्तुदये अडवीसे बंधो बावीसपंचयंतेण ।
चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयदद्दुगबंधो ॥६८७॥

अर्थ—७ प्रकृतिके उदय रहते हुए २८ प्रकृतिके सत्त्वमें २२-२१-१७-१३ व ९ प्रकृतिरूप ५ बन्धस्थान हैं जो क्रमसे मिथ्यात्व-सासादन-असंयत-देशसंयत-प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतके पाए जाते हैं। ७ प्रकृतिके उदयमें २४ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए असंयत-में १७, देशसंयतमें १३ और प्रमत्त-अप्रमत्तमें ९ प्रकृतिका बन्ध होता है, ७ प्रकृतिके ही उदयमें २१ प्रकृतिका सत्त्व रहनेपर असंयतके १७ एवं देशसंयतमें १३ प्रकृतिका बन्ध है।

छप्पणउदये उवसंतंसे अयदतिगदेसदुगबंधो ।
तेण तिदोवीसंसे देसदुणवबंधयं होदि ॥६८८॥

अर्थ—६ प्रकृतिका उदय रहते हुए २८-२४ व २१ प्रकृतिके सत्त्वमें असंयत-गुणस्थानमें १७, देशसंयतमें १३ तथा प्रमत्त-अप्रमत्तके ९ प्रकृतिका बन्ध है, ५ प्रकृतिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयसहित २८-२४ व २१ प्रकृतिके सत्त्वमें देशसंयतके १३ एवं प्रमत्त-अप्रमत्तके ९ प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है। ६ प्रकृतिके उदयमें २३ व २२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए देशसंयतके १३ प्रकृतिका बन्ध है तथा ५ प्रकृतिके उदयमें २३ व २२ के सत्त्वमें प्रमत्त व अप्रमत्तके ९ प्रकृतिका बन्ध है।

चउरुदयुवसंतंसे णवबंधो दोण्णिउदयपुव्वंसे।
तेरसतियसत्ते वि य पण चउ ठाणाणि बंधस्स ॥६८९॥

अर्थ—४ प्रकृतिके उदयसहित दोनोंश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिके सत्त्व होनेपर ९ प्रकृतिका बन्ध है। २ प्रकृतिके उदयसहित सवेदअनिवृत्तिकरणमें १३, १२, ११ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर पुरुषवेदके उदयके चरमसमयपर्यन्त पांचप्रकृतिका बन्ध है। नपुंसक-स्त्रीवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवालेके ४ प्रकृतिका भी बन्ध है तथा क्षपकश्रेणीमें ८ कषाय और नपुंसक व स्त्रीवेदका क्षय होनेपर पुरुषवेदके क्षपणाकालमें २१-१३-१२ व ११ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ५ प्रकृतिका बन्ध है। स्त्रीवेद व नपुंसकवेदके उदयसहित श्रेणीचढ़नेवालेके १३ व १२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ४ प्रकृतिका बन्ध है (देखो गा० ५१५)।

एक्कुदयुवसंतंसे बंधो चदुरादिचारि तेणेव।
एयारदु चदुबंधो चदुरंसे चदुतियं बंधे ॥६९०॥

अर्थ—एक प्रकृतिके उदयसहित उपशमकअनिवृत्तिकरणमें २८-२४ व २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ४-३-२ और १ प्रकृतिक बन्धस्थान हैं तथा १ प्रकृतिके उदयसहित ११ व ५ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ४ प्रकृतिका बन्ध है। १ ही प्रकृतिके उदयसहित ४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके रहते हुए ४ व ३ प्रकृतिका बन्ध है।

तेण तिये तिदुबंधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कयं बंधो।
एक्कंसे इगिबंधो गयणं वा मोहणीयस्स ॥६९१॥

अर्थ—एक प्रकृतिके उदयसहित क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ३ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए ३ व २ प्रकृतिक बन्धस्थान हैं, एक ही प्रकृतिके उदयसहित २ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २ व १ प्रकृतिक बन्धस्थान हैं तथा एक ही प्रकृतिके उदयसहित १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें १ ही प्रकृतिका बन्ध है अथवा बन्धका अभाव है। इसप्रकार मोहनीयकर्मके त्रिसंयोगी भङ्ग जानना।

अधिकरणरूप उदय व सत्त्वस्थानमें आधेयरूप बन्धस्थानकी सन्दृष्टि—

अधिकरण			आधेय	
उदयस्थान	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण
१० प्रकृतिक	३	२८-२७ व २६ (सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना हो जानेपर २७ प्रकृतिका तथा सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना होने पर २६ प्रकृतिका सत्त्व होता है।	१	२२ प्रकृतिक
९ ,,	१	२८ प्रकृतिक	३	२२-२१ व १७ प्रकृतिक
९ ,,	२	२७ व २६ ,,	१	२२ प्रकृतिक
मिश्र व असंयत में ९ प्रकृतिक	३	२४-२३-२२ प्रकृतिक, मिश्रमें २४ प्रकृतिकरूप एवं असंयतमें २४-२२ व २२ प्रकृतिरूप।	१	१७ ,,
८ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक	४	२२-२१-१७ व १३ प्रकृतिक
८ ,,	२	२७ व २६ ,,	१	२२ प्रकृतिक
८ ,,	३	२४-२३ व २२ प्रकृतिक	२	१७ व १३ प्रकृतिक (असंयतके १७ व देशसंयतके १३)
क्षायिक सम्यक्त्वमें असंयती के ८ प्रकृतिक	१	२१ प्रकृतिक	१	१७ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक	५	२२-२१-१७-१३ व ९ प्रकृतिक। ७ प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वमें, भय-जुगुप्सारहित सासादनमें, भय-जुगुप्सामेंसे किसी एक सहित मिश्रमें, वेदक व उपशमसम्यग्दृष्टि असयतमें और वेदक व उपशमसम्यग्दृष्टि देशसंयतमें तथा वेदकसम्यक्त्वी प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें होता है।
७ प्रकृतिक	३	२३-२४ व २२ प्रकृतिक	३	१७-१३ व ९ प्रकृतिकस्थान क्रमसे असंयत, देशसंयत और प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थानमें।
७ ,,	१	२१ प्रकृतिक	२	१७ व १३ प्रकृतिक। क्षायिकसम्यक्त्वी जीवके असयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतिक तथा देशसंयतवर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी मनुष्यके १३ प्रकृतिका बन्ध होता है।
६ ,,	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक	३	१७-१३ व ९ प्रकृतिक। असंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त ६ प्रकृतिका उदय है। असंयतगुणस्थानमें उपशम व क्षायिकसम्यग्दृष्टिके ६ प्रकृतिका उदय है। तथा देशसंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानमें उपशम व क्षायिक-सम्यक्त्वीके ५ प्रकृतिका उदय एवं वेदक-सम्यक्त्वमें मिथ्यात्वका क्षय करके २३ प्रकृतिको सत्ता होनेपर और सम्यग्-मिथ्यात्वका भी क्षय करके २२ की सत्ता होनेपर ६ प्रकृतिका उदय है।
प्रमत्त-अप्रमत्त के ५ प्रकृतिक	२	२३ व २२ प्रकृतिक	१	९ प्रकृतिक
अपूर्वकरणमें ४ प्रकृतिक	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक	१	९ ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण के सवेदभागमें २ प्रकृतिक	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११	२	५ व ४ प्रकृतिक। पुरुषवेदके चरमसमयपर्यन्त ५ प्रकृतिका तथा नपुंसक व स्त्रीवेदसहित श्रेणी चढ़नेवालेके ४ प्रकृतिका बन्ध है।
अनिवृत्तिकरण (उपशमक)	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक	४	४-३-२ व १ प्रकृतिक।
अनिवृत्तिकरण (क्षपक)	२	११ व ५ प्रकृतिक	१	४ प्रकृतिक।
१ प्रकृतिक	१	४ प्रकृतिक	२	४ व ३ प्रकृतिक।
१ ,,	१	३ ,,	२	३ व २ ,,
१ ,,	१	२ ,,	२	२ व १ ,,
१ ,,	१	१ ,,	१	१ प्रकृतिक।
१ ,,	१	१ ,,	०	० (सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें)

अथानन्तर नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानोंके त्रिसंयोगी भङ्गोंको कहते हैं--

णामस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा दु।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६६२॥

अर्थ--नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानोंके सर्वभङ्ग जिसप्रकार पृथक्-पृथक् कहे थे उसीप्रकार त्रिसंयोगमें भी सभी जगह भङ्ग होते हैं ऐसा स्पष्ट जानना।

अब उन्हीं त्रिसंयोगी भङ्गोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

छण्णवछत्तियसगइगि दुगतिगदुग तिण्णिअट्ठचत्तारि।
दुगदुगचदु दुगपणचदु चदुरेयचदू पणेयचदू ॥६६३॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ चदुमट्ठ केवलिजिणाणं।
एगचदुरेगचदुरो दोचदु दोछक्क बंधउदयंसा ॥६६४॥जुम्मं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नामकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान मिथ्यात्वसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यंत क्रमसे बंधस्थान ६-३-२-३-२-२-४-५-१ व १ हैं, उदयस्थान ९-७-३-८-२-५-१-१-१ और १ हैं, सत्त्वस्थान ६-१-२-४-४-४-४-४-८ व ८ हैं। इसके आगे बन्धका अभाव होनेसे उदय-सत्त्वस्थान ही हैं अतः उपशान्तकषायसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त उदयस्थान क्रमसे १-१-२ और २ हैं तथा सत्त्वस्थान ४-४-४ व ६ हैं।

अब उपर्युक्त कथनका ९ गाथाओंमें स्पष्टीकरण करते हैं—

णामस्स य बंधोदयसत्ताणि गुणं पडुच्च उत्ताणि।
पत्तेयादो सव्वं भणिदव्वं अत्थजुत्तीए ॥६९५॥
तेवीसादी बंधा इगिवीसादीणि उदयठाणाणि।
बाणउदादी सत्तं बंधा पुण अट्ठवीसतियं ॥६९६॥
इगिवीसादीएक्कत्तीसंता सत्तअट्ठवीसूणा।
उदया सत्तं णउदी बंधा अट्ठवीसदुगं ॥६९७॥
एगुणतीसत्तिदयं उदयं बाणउदिउदियं सत्तं।
अयदे बंधट्ठाणं अट्ठावीसत्तियं होदि ॥६९८॥
उदया चउवीसूणा इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता।
सत्तं पढमचउक्कं अपुव्वकरणोत्ति णायव्वं ॥६९९॥
अडवीसदुगं बंधो देसे पमदे य तीसदुगमुदओ।
पणवीससत्तवीसप्पहुदीचत्तारि ठाणाणि ॥७००॥
अपमत्ते य अपुव्वे अडवीसादीण बंधमुदओ दु।
तीसमणियट्ठिसुहुमे जसकित्ती एक्कयं बंधो ॥७०१॥
उदओ तीसं सत्तं पढमचउक्कं च सीदिचउ संते।
खीणे उदओ तीसं पढमचउ सीदिचउ सत्तं ॥७०२॥
जोगिम्मि अजोगिम्मि य तीसिगितीसं णवट्ठयं उदओ।
सीदादिचऊछक्कं कमसो सत्तं समुद्दिट्ठं ॥७०३॥कुलयं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान जो गाथा ३९४-९५ में गुणस्थानोंकी अपेक्षा कहे गए हैं उन सभीको अर्थकी युक्तिसे यहां पृथक्-पृथक् कहते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके ६ बन्धस्थान, २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थान तथा ९२ आदि प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थान हैं। सासादनगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप ३ बन्धस्थान, २१ प्रकृतिकस्थानसे ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त २८ व २७ प्रकृतिक स्थानके बिना शेष ७ उदयस्थान, सत्त्वस्थान ९० प्रकृतिक एक ही है। मिश्रगुणस्थानमें बन्धस्थान २८ प्रकृतिकस्थानको आदि करके दो हैं, उदयस्थान २९ प्रकृतिक स्थानको आदि करके ३ हैं तथा सत्त्वस्थान ९२ व ९० प्रकृतिक दो हैं। असंयतगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप तीन बन्धस्थान, २१ से ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त २४ प्रकृतिकस्थानबिना शेष ८ उदयस्थान एवं ९३ आदि प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं। देशसंयतगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप २ बन्धस्थान, ३० आदि प्रकृतिरूप २ उदयस्थान हैं, एवं सत्त्वस्थान असंयतगुणस्थानवत् चार ही हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें बन्धस्थान देशसंयतगुणस्थानवत् २ ही हैं, २५ प्रकृतिक एवं २७ आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार पांच उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान असंयतगुणस्थानवत् ४ ही हैं। अप्रमत्त एवं अपूर्वकरणगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप क्रमसे ४ व ५ बन्धस्थान हैं. दोनों गुणस्थानोंमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक ही है, सत्त्वस्थान असंयतगुणस्थानवत् ४ हो हैं। अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक यशस्कीर्ति नामकर्मका ही बन्धस्थान, उदयस्थान ३० प्रकृतिरूप एक ही है, सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ४ तथा ८० आदि प्रकृतिरूप ४ इसप्रकार ८ हैं। उपशान्तकषाय और क्षीणकषायगुणस्थानमें उदयस्थान तो ३० प्रकृतिरूप एक ही है सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ४ तो उपशान्तकषायमें एवं ८० आदि प्रकृतिरूप ४ क्षीणकषायमें जानना। सयोगकेवलीके उदयस्थान ३० व ३१ प्रकृतिके दो तथा अयोगकेवलीके ९ व ८ प्रकृतिके दो हैं, सत्त्वस्थान सयोगीगुणस्थानमें ८० प्रकृतिक स्थानको आदि करके ४ हैं तथा अयोगीगुणस्थानमें ८० आदि प्रकृतिरूप ४ और १० व ९ ये दो इसप्रकार सर्व ६ सत्त्वस्थान हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानकी अपेक्षा नामकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगी भङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	६	९२-९१-९०-८८-८४ व ८२
सासादन	३	२८-२९ व ३०	७	२१-२४-२५-२६-२९-३० व ३१	१	९० प्रकृतिक
मिश्र	२	२८ व २९	३	२९-३० व ३१	२	९२ व ९० ,,
असंयत	३	२८-२९ व ३०	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ (यहां २४ प्रकृतिकस्थान नहीं कहा, क्योंकि उसका उदय एकेन्द्रियके पाया जाता है)	४	९३-९२-९१ व ९०
देशसंयत	२	२८ व २९ प्रकृति.	२	३० व ३१ प्रकृति.	४	९३-९२-९१ व ९०
प्रमत्त	२	२८ व २९ ,,	५	२५-२७-२८-२९ व ३०	४	,, ,,
अप्रमत्त	४	२८-२९-३० व ३१	१	३० प्रकृतिक	४	,, ,,
अपूर्वकरण	५	२८-२९-३०-३१ व १	१	३० ,,	४	,, ,,
उपशमक-अनिवृत्तिकरण	१	१	१	३० ,,	४	,, ,,
क्षपकअनिवृत्ति.	१	१ यशस्कीर्तिरूप	१	३० ,,	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
उपशमकसूक्ष्म-साम्पराय	१	१ ,,	१	३० ,,	४	९३-९२-९१ व ९०
क्षपकसूक्ष्म ,,	१	१ ,,	१	३० ,,	४	८०-७९-७८ व ७७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशान्तकषाय	०	०	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
क्षीणकषाय	०	०	१	३० ,,	४	८०-७९-७८ व ७७
सयोगकेवली	०	०	२	३० व ३१ प्रकृति.	४	,, ,,
अयोगकेवली	०	०	२	९ व ८ ,,	६	८०-७९-७८-७७ १० व ९

अब १४ जीवसमासोंमें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान ६ गाथाओंमें कहते हैं—

पणदोपणगं पणचदुपणगं बंधुदयसत्त पणगं च।
पणछक्कपणगछछक्कपणगमट्ठट्ठमेयारं ॥७०४॥
सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव।
वियलिंदिया य तिविहा होंति असण्णी कमा सण्णी ॥७०५॥जुम्मं॥

अर्थ—अपर्याप्तसम्बन्धी सात जीवसमासोंमें बन्धस्थान ५, उदयस्थान २ एवं सत्त्वस्थान ५ हैं, सर्व सूक्ष्मजीवोंमें बन्धस्थान ५, उदयस्थान ४ तथा सत्त्वस्थान ५ हैं, एकेन्द्रिय सर्व बादरजीवोंमें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान पांच-पांच हैं, विकलत्रय जीवोंमें बन्धस्थान ५, उदयस्थान ६ और सत्त्वस्थान ५ हैं, असञ्ज्ञी जीवोंमें बन्धस्थान ६, उदयस्थान भी ६ तथा सत्त्वस्थान ५ हैं, सञ्ज्ञीजीवोंमें बन्धस्थान ८, उदयस्थान ८ एवं सत्त्वस्थान ११ जानना।

उपर्युक्त कथनका विशेष स्पष्टीकरण करते हैं—

बंधा तियपणछण्णववीसत्तीसं अपुण्णगे उदओ।
इगिचउवीसं इगिछव्वीसं थावरतसे कमसो ॥७०६॥
बाणउदीणउदिचऊ सत्तं एमेव बंधयं अंसा।
सुहुमिदरे वियलतिये उदया इगिवीसयादिचउपणयं ॥७०७॥
इगिछक्कडणववीसत्तीसिगितीसं च वियलठाणं वा।
बन्धतियं सण्णिदरे भेदो बन्धादि हु अडवीसं ॥७०८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरिणम्मि सव्वबंधो इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता।
चउवीसूणा उदओ दसणवपरिहीणसव्वयं सत्तं ॥७०९॥कुलयं॥

अर्थ—अपर्याप्तसम्बन्धी सात जीवसमासोंमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप पांच हैं, उदयस्थान स्थावरलब्ध्यपर्याप्तकमें २१ व २४ प्रकृतिक तथा त्रसलब्ध्यपर्याप्तमें २१ व २६ प्रकृतिक दो-दो हैं, सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ और ८२ प्रकृतिरूप पांच हैं। सूक्ष्म-बादर एकेन्द्रिय व विकलत्रयमें बन्ध-सत्त्वस्थान तो अपर्याप्तवत् ही जानना, किन्तु उदयस्थान सूक्ष्मजीवोंमें २१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक चार तथा बादरजीवोंमें २१-२४-२५-२६ व २७ प्रकृतिक पांच हैं। विकलत्रयजीवोंमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक पांच, उदयस्थान २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिरूप ६ हैं तथा सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक पांच हैं। असञ्ज्ञीजीवके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान विकलत्रयवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि असञ्ज्ञीजीव २८ प्रकृतिकस्थानको भी बांधते हैं अतः बन्धस्थान तो ६ हैं। सञ्ज्ञीजीवोंमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिरूप आठ हैं, उदयस्थान २१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ८ हैं तथा सत्त्वस्थान १० व ९ प्रकृतिक दो स्थानोंके बिना शेष ९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ और ७७ प्रकृतिरूप ११ हैं।

१४ जीवसमासोंमें नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

जीवसमास	बंधस्थान की संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या	उदय-स्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या	सत्त्व-स्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या
सात अपर्याप्त	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	२	२१-२४ स्थावरके २१-२६ त्रसके	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रिय	५	,, ,,	४	२१-२४-२५ व २६	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
पर्याप्तबादर	५	,, ,,	५	२१-२४-२५-२६ व २७	५	,, ,,
पर्याप्तविकल-त्रय	५	,, ,,	६	२१-२६-२८-२९-३० व ३१	५	,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असञ्ज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्त	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	६	२१-२६-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
पर्याप्तसञ्ज्ञी-पंचेन्द्रिय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ नोट—२५ व २७ प्रकृतिका उदय-स्थान देव-नारकी अपेक्षा है।	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७

नोट—केवली न सञ्ज्ञी हैं न असञ्ज्ञी हैं अतः उनके उदय व सत्त्वस्थान यहां नहीं कहे हैं।

अथानन्तर १४ मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वरूप स्थानोंका वर्णन करनेकी इच्छा रखनेवाले आचार्य सर्वप्रथम क्रमप्राप्त गतिमार्गणामें उनस्थानोंको कहते हैं—

दो छक्कट्ठचउक्कं णिरयादिसु णामबंधठाणाणि।
पणणवएगारपणयं तिपंचबारसचउक्कं च ॥७१०॥

अर्थ—नामकर्मके बन्धस्थान नरकगतिमें २, तिर्यञ्चगतिमें ६, मनुष्यगतिमें ८ और देवगतिमें चार हैं; उदयस्थान क्रमसे ५-९-११ व ५ हैं तथा सत्त्वस्थान ३-५-१२ व ४ यथाक्रमसे जानना।

अब उपर्युक्त कथनको तीनगाथाओंमें स्पष्ट करते हैं—

णिरयादिणामबंधा उगुतीसं तीसमादिमं छक्कं।
सव्वं पणछक्कुत्तरवीसुगुतीसंदुगं होदि ॥७११॥

उदया इगिपणसगअडणववीसं एक्कवीसपहुदिणवं।
चउवीसहीणसव्वं इगिपणसग अट्ठणववीसं ॥७१२॥

सत्ता बाणउदितियं बाणउदीणउदिअट्ठसीदितियं।
बासीदिहीणसव्वं तेणउदिचउक्कयं होदि ॥७१३॥ विसेसयं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नरकगतिमें नामकर्मके बन्धस्थान २९ व ३० प्रकृतिरूप दो, उदयस्थान २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिरूप पांच, सत्त्वस्थान ९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप तीन हैं। तिर्यञ्चगतिमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक छह, उदयस्थान २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ९, सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक पांच हैं। मनुष्यगतिमें बन्धस्थान सभी, उदयस्थान २४ प्रकृतिकस्थानबिना शेष सर्व हैं, ८२ प्रकृतिक स्थानबिना ९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिरूप १२ सत्त्वस्थान हैं। देवगतिमें २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक चार बन्धस्थान, २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक पांच उदयस्थान, ९३-९२-९० व ९१ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं।

गतिमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गति	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण
नरक	२	२९ व ३० प्रकृति.	५	२१-२५-२७-२८ व २९	३	९२-९१ व ९० प्रकृतिक
तिर्यञ्च	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
मनुष्य	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व १ प्रकृति.	१२	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८-७७-१० व ९
देव	४	२५-२६-२९ ३०	५	२१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक

आगे इन्द्रियमार्गणामें नामकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

एगे वियले सयले पण पण अड पंच छक्केगार पणं।
पणतेरं बंधादी सेसादेसेवि इदि णेयं ॥७१४॥

अर्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियमें क्रमसे ५-५ व ८ बन्धस्थान, ५-६ व ११ उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान ५-५ व १३ हैं। इसीप्रकार अवशेष मार्गणाओंमें भी जानना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी उपर्युक्त कथनका दो गाथाओंमें स्पष्टीकरण करते हैं—

इगिविगल बंधठाणं अडवीसूणं तिवीसछक्कं तु।
सयलं सयले उदया एगे इगिवीसपंचयं वियले ॥७१५॥
इगिछक्कडणववीसं तीसदु चउवीसहीणसव्वुदया।
णउदिचऊ बाणउदी एगे वियले य सव्वयं सयले ॥७१६॥जुम्मं॥

अर्थ—एकेन्द्रियमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप पांच बन्धस्थान, २१-२४-२५-२६ व २७ प्रकृतिरूप पांच उदयस्थान एवं ९२-९०-८८-८४-८२ प्रकृतिरूप पांच सत्त्वस्थान हैं। विकलेन्द्रिय जीवोंमें बन्धस्थान एकेन्द्रियवत् पांच, उदयस्थान २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिरूप छह और सत्त्वस्थान एकेन्द्रियवत् पांच हैं। सकलेन्द्रिय जीवोंमें बन्धस्थान सभी हैं, उदयस्थान २०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिरूप ११ एवं सत्त्वस्थान सभी हैं।

इन्द्रियमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

इन्द्रिय-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
एकेन्द्रिय	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	५	२१-२४-२५-२६ व २७	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
विकलेन्द्रिय	५	,, ,,	६	२१-२६-२८-२९-३०व३१ प्रकृतिक	५	,, ,,
सकलेन्द्रिय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक

अब कायमार्गणामें नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी कथन करते हैं—

पुढवीयादीपंचसु तसे कमा बंधउदयसत्ताणि।
एयं वा सयलं वा तेउदुगे णत्थि सगवीसं ॥७१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—कायमार्गणामें पृथ्वीआदि पांच स्थावरकायोंमें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान एकेन्द्रियवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि तेजकाय-वायुकायके जीवोंमें २७ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है, क्योंकि यह उदयस्थान आतप व उद्योतसहित है और इन दोनों प्रकृतिका उदय तेजकायिक-वायुकायिक जीवोंमें नहीं पाया जाता है। त्रसकायमें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानका कथन पञ्चेन्द्रियजीवोंके समान है।

कायमार्गणासम्बन्धी बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानसम्बन्धी—

काय-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
पृथ्वीआदि पांचस्थावर-काय	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक	५	२१-२४-२५-२६ व २७ प्रकृतिक तेजकाय-वायुकायमें २७ प्रकृतिक उदय-स्थान नहीं है)	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
त्रसकाय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	११	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

अब योगमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान कहते हैं—

मणिवचि बंधुदयंसा सव्वं णववीसतीसइगितीसं।
दसणवदुसीदिवज्जिदसव्वं ओरालतम्मिस्से ॥७१८॥

अर्थ—योगमार्गणामें मन-वचन और कायरूप प्रत्येक योगमें बन्धस्थान सर्व, उदयस्थान २९-३० व ३१ प्रकृतिक तीन एवं सत्त्वस्थान १०-९ व ८२ प्रकृतिकबिना शेष सभी हैं।

आगे उपर्युक्त कथनका स्पष्टीकरण तीन गाथाओंसे करते हैं—

सव्वं तिवीसछक्कं पणुवीसादेक्कतीसपेरंतं।
चउछक्कसत्तावीसं दुसु सव्वं दसयणवहीणं ॥७१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेगुव्वे तम्मिस्से बंधंसा सुरगदीव उदयो दु ।
सगवीसतियं पणजुदवीसं आहारतम्मिस्से ॥७२०॥
बंधतियं अडवीसदु वेगुव्वं वा तिणउदिबाणउदी ।
कम्मे वीसदुगुदओ ओरालियमिस्सयं व बंधंसा ॥७२१॥

अर्थ—काययोगके औदारिककाययोगमें बन्धस्थान सर्व, उदयस्थान २५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक सात हैं तथा सत्त्वस्थान १० व ९ प्रकृतिकबिना शेष सभी हैं। औदारिकमिश्रकाययोगमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ६ बन्धस्थान, २४-२६ व २७ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान औदारिककाययोगवत् ही हैं। (२७ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थङ्करकेवलीके कपाटसमुद्घातकी अपेक्षा है।) वैक्रियककाय व वैक्रियकमिश्रकाययोगमें बन्ध व सत्त्वस्थान तो देवगतिके समान ही हैं, किन्तु वैक्रियककाययोगमें उदयस्थान २७-२८ व २९ प्रकृतिक तीन और वैक्रियकमिश्रकाययोगमें एक २५ प्रकृतिक ही है। आहारककाय-आहारकमिश्रकाययोगमें बन्धस्थान २८ व २९ प्रकृतिक दो, उदयस्थान आहारककायमें २७-२८ व २९ प्रकृतिक तीन एवं आहारकमिश्रकायमें २५ प्रकृतिरूप एक है, सत्त्वस्थान दोनोंमें ९३ व ९२ प्रकृतिरूप दो-दो हैं। कार्मणकाययोगमें बन्ध व सत्त्वस्थान औदारिकमिश्रकाययोगवत् है, किन्तु उदयस्थान २० व २१ प्रकृतिक दो हैं।

योगमार्गणासम्बन्धी बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानकी सन्दृष्टि—

योगमार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत-प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
मन-वचनयोग	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	३	२९-३० व ३१	१०	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८ व ७७
औदारिकाय	८	„ „	७	२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
औदारिक-मिश्र	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	३	२४-२६ व २७ प्रकृतिक	११	„ „

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैक्रियककाय	४	२५-२६-२९ व ३०	३	२७-२८ व २९ प्रकृतिक	४	९२-९३-९०व९१
वैक्रियकमिश्र	४	,, ,,	१	२५ प्रकृतिक	४	,, ,,
आहारककाय	२	२८ व २९ प्रकृति.	३	२७-२८ व २९ ,,	२	९३ व ९२ प्रकृति.
आहारकमिश्र	२	२८ व २९ ,,	१	२५ प्रकृतिक	२	,, ,,
कार्मणकाय	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	२	२० व २१ ,,	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

अथानन्तर वेद और कषायमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

वेदकसाये सव्वं इगिवीसणवं तिणउदिएक्कारं ।
थीपुरिसे चउवीसं सीदडसदरी ण थीसंढे ॥७२२॥

अर्थ—वेद और कषायमार्गणामें बन्धस्थान सर्व, २१ प्रकृतिकस्थानको आदि करके उदयस्थान ९, किन्तु स्त्री व पुरुषवेदमें २४ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है, क्योंकि इस स्थानका उदय एकेन्द्रियके ही पाया जाता है । सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ११ हैं, किन्तु स्त्री व नपुंसकवेदमें ८० व ७८ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान नहीं हैं, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला पुरुषवेदसहित ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है ।

वेदमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

वेदमार्गणा	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
स्त्रीवेद	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-७९ व ७७
पुरुषवेद	८	,, ,,	८	,, ,,	११	,, ,,
नपुंसकवेद	८	,, ,,	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	९	,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषायमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

मार्गणा	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण
कषाय-मार्गणा	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

अब ज्ञानमार्गणामें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानोंका कथन करते हैं—

अण्णाणदुगे बंधो आदीछ णउंसयं व उदयो दु।
सत्तं दुणउदिछक्कं विभंगबंधा हु कुमदिं व ॥७२३॥
उदया उणतीसतियं सत्ता णिरयं व मदिसुदोहीए।
अडवीसपंच बंधा उदयो पुरिसं व अट्ठेव ॥७२४॥
पढमचऊ सीदिचऊ सत्तं मणपज्जवम्हि बंधंसा।
ओहिं व तीसमुदयं ण हि बंधो केवलेणाणे ॥७२५॥
उदओ सव्वं चउपणवीसूणं सीदिछक्कयं सत्तं।

अर्थ—ज्ञानमार्गणाके कुमति-कुश्रुतज्ञानमें २३ आदि प्रकृतिरूप छह बन्धस्थान, उदयस्थान नपुंसकवेदवत् ९, सत्त्वस्थान ९२ आदि प्रकृतिरूप छह हैं। विभङ्गज्ञानमें बन्धस्थान तो कुमतिज्ञानवत् ६, उदयस्थान २९ आदि प्रकृतिरूप तीन एवं सत्त्वस्थान नरकगतिके समान हैं। मति-श्रुत-अवधिज्ञानमें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप पांच, उदयस्थान पुरुषवेदके समान आठ और सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार एवं ८० आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार आठ हैं। मनःपर्ययज्ञानमें बन्ध और सत्त्वस्थान तो अवधिज्ञानके समान हैं, किन्तु उदयस्थान ३० प्रकृतिरूप एक ही है। केवलज्ञानमें बन्ध-स्थानका तो अभाव है, उदयस्थान २४ व २५ प्रकृतिक स्थानबिना शेष सभी और सत्त्वस्थान ८० आदि प्रकृतिरूप छह हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

ज्ञानमार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
कुमति व कुश्रुत	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-व ३१ प्रकृतिक	६	९२-९१-९०-८८-८४ व ८२प्रकृतिक
विभङ्ग	६	,, ,,	३	२९-३० व ३१ प्रकृतिक	३	९२-९१ व ९० ,,
मति-श्रुत-अवधि	५	२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
मनःपर्यय	५	,, ,,	१	३० प्रकृतिक	८	,, ,,
केवलज्ञान	०	०	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८	६	८०-७९-७८-७७ १० व ९ प्रकृतिक

आगे संयममार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी कथन करते हैं—

सुदमिव सामायियदुगे उदओ पणुवीससत्तवीसचऊ ॥७२६॥

अर्थ—संयममार्गणाके सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें बन्ध और सत्त्वस्थान तो श्रुतज्ञानवत् हैं एवं उदयस्थान २५ प्रकृतिक एक व २७ आदि प्रकृतिरूप चार इस-प्रकार पांच हैं।

परिहारे बंधतियं अडवीसचऊ य तीसमादिचऊ ।
सुहुमे एक्को बंधो मणं व उदयंसठाणाणि ॥७२७॥

अर्थ—परिहारविशुद्धिसंयममें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप चार हैं, उदय-स्थान ३० प्रकृतिरूप एक ही है तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। सूक्ष्म-साम्परायसंयममें बन्धस्थान एक प्रकृतिरूप और उदय और स्थान मनःपर्ययज्ञानवत् जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहखादे बंधतियं केवलयं वा तिणउदिचउ अत्थि ।
देसे अडवीसदुगं तीसदु तेणउदिचारि बंधतियं ॥७२८॥

अर्थ—यथाख्यातसंयममें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान केवलज्ञानवत् हैं, किन्तु विशेषता यह है कि सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। देशसंयममें २८ आदि प्रकृतिरूप दो, उदयस्थान ३० आदि प्रकृतिरूप दो तथा ९३ को आदि लेकर चारसत्त्व-स्थान हैं।

अविरमणे बंधुदया कुमदिं व तिणउदिसत्तयं सत्तं ।

अर्थ—असंयममें बन्ध और उदयस्थान कुमतिज्ञानवत् हैं तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ७ हैं।

संयममार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

संयममार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत-प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
सामायिक व छेदोपस्थापना	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	५	२५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
परिहारविशुद्धि	४	२८-२९-३० व ३१	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१व९०
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१ प्रकृतिक	१	३० ,,	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८व७७
यथाख्यात	०	०	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१०	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक
देशसंयम	२	२८व २९ प्रकृति.	२	३० व ३१ प्रकृति.	४	९३-९२-९१व९०
असंयम	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब दर्शनमार्गणामें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानोंका कथन करते हैं—

पुरिसं वा चक्खिदरे अत्थि अचक्खुम्मि चउवीसं ॥७२९॥
ओहिदुगे बंधतियं तरणाणं वा किलिट्ठलेस्सतिए ।

अर्थ—दर्शनमार्गणाके चक्षु-अचक्षुदर्शनमें बन्धस्थान-उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् ही हैं, किन्तु विशेषता यह है कि अचक्षुदर्शनमें २४ प्रकृतिका उदयस्थान है। अवधिदर्शन और केवलदर्शनमें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान अवधि व केवलज्ञानवत् जानना चाहिये। ("किलिट्ठलेस्सतिए" इन वचनोंमें कृष्णादि तीन लेश्यासम्बन्धी जो कथन किया है उसे लेश्यामार्गणामें कहा गया है।)

दर्शनमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

दर्शन-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
चक्षुदर्शन	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
अचक्षुदर्शन	८	" "	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	" "
अवधिदर्शन	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
केवलदर्शन	०	०	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	६	८०-७९-७८ व ७७ तथा १० व ९

अथानन्तर लेश्यामार्गणामें बन्ध-उदय एवं सत्त्वस्थानका कथन करते हैं—।

..................................किलिट्ठलेस्सतिये ।
अविरमणं वा सुहुजुगलुदओ पुंवेदयं व हवे ॥७३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अडवीसचऊ बंधा पणछव्वीसं च अत्थि तेउम्मि ।
पढमचउक्कं सत्तं सुक्के ओहिं व वीसयं चुदओ ॥७३१॥

अर्थ——लेश्यामार्गणागत कृष्ण-नील व कपोतरूप अशुभलेश्याओंमें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान असंयमवत् है । पीत (तेजो) लेश्यामें बन्धस्थान २५-२६ व २८ आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार ६ हैं, उदयस्थान पुरुषवेदके समान तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं । पद्मलेश्यामें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप चार हैं, उदयस्थान पुरुषवेदवत् हैं तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं । शुक्ललेश्यामें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान अवधिज्ञानके समान है, किन्तु विशेष यह है कि यहां २० प्रकृतिक उदयस्थान भी पाया जाता है ।

लेश्यामार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

लेश्या-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
कृष्ण-नील व कपोत	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
पीतलेश्या	६	२५-२६-२८-२९-३०व३१ प्रकृतिक	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०व३१ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१व९०
पद्मलेश्या	४	२८-२९-३० व ३१	८	,, ,,	४	,, ,,
शुक्ल	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	९	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८व७७ प्रकृतिक

आगे भव्यमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

भव्वे सव्वमभव्वे बंधुदया अविरदव्व सत्तं तु ।
णउदिचउ हारबंधणदुगहीणं सुदमिवुवसमे बंधो ॥७३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—भव्यमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान सभी हैं। अभव्यमार्गणामें बन्ध-उदयस्थान तो असंयमवत् जानना, किन्तु अभव्यके उद्योतसहित ३० प्रकृतिक स्थान तो है; आहारकद्विक सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं है। "सुदमिवुवसमे" इन वचनों में उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी जो कथन किया गया है वह सम्यक्त्वमार्गणासे जानना चाहिये।

भव्यमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

मार्गणा	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
भव्य	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	११	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-१० व ९ प्रकृतिक	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
अभव्य	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक यहां ३० प्रकृतिक स्थान उद्योत-सहित ही है।	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९०-८८-८४व८२ प्रकृतिक

अब सम्यक्त्वमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

........................सुदमिवुवसमे बंधो ॥७३२॥

उदया इगिपणवीसं णववीसतियं च पढमचउ सत्तं।
उवसम इव बंधंसा वेदगसम्मे ण इगिबंधो ॥७३३॥
उदयामदिं व खइये बंधादी सुदमिवत्थि चरिमदुगं।
उदयंसे वीसं च य साणे अडवीसतियबंधो ॥७३४॥
उदया इगिवीसचऊ णववीसतियं च णउदियं सत्तं।
मिस्से अडवीसदुगं णववीसतियं च बंधुदया ॥७३५॥
बाणउदिणउदिसत्तं मिच्छे कुमदिं व होदि बंधतियं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सम्यक्त्वमार्गणाके उपशमसम्यक्त्वमें बन्धस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं, उदयस्थान २१ व २५ प्रकृतिक तथा २९ आदि प्रकृतिक तीन इसप्रकार पांच तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। वेदक सम्यक्त्वमें बन्धस्थान उपशमसम्यक्त्ववत् हैं, किन्तु विशेषता यह है कि यहां एक प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं है, उदयस्थान मतिज्ञानवत् आठ हैं एवं सत्त्वस्थान उपशमसम्यक्त्ववत् ही जानना। क्षायिकसम्यक्त्वमें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान श्रुतज्ञानवत् क्रमसे ५-८ और ८ हैं, किन्तु विशेष यह है कि उदय व सत्त्वमें अन्तिम दो-दो स्थान एवं उदयमें २० प्रकृतिक स्थान भी पाया जाता है। सासादनसम्यक्त्वमें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप तीन, उदयस्थान २१ आदि प्रकृतिक चार एवं २९ आदि प्रकृतिक तीन इसप्रकार सात हैं। यहां २७ व २८ प्रकृतिक उदय आने तक एकेन्द्रियादिके सासादनपना नहीं होता अतः नहीं कहे, सत्त्वस्थान ९० प्रकृतिरूप एक ही है। सम्यग्मिथ्यात्वमें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप दो, उदयस्थान २९ आदि प्रकृतिक तीन एवं सत्त्वस्थान ९२ व ९० प्रकृतिरूप दो हैं। मिथ्यात्वमें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान कुमतिज्ञानवत् जानना।

सम्यक्त्वमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

सम्यक्त्व मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत-प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
उपशम-सम्यक्त्व	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	५	२१-२५-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१व९०
वेदकसम्यक्त्व	४	२८-२९-३० व ३१	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०व ३१	४	,, ,,
क्षायिक	५	२८-२९-३०-३१ व १	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ तथा ९ व ८ प्रकृतिक	१०	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८-७७ १० व ९ प्रकृतिक
सासादन	३	२८-२९ व ३०	७	२१-२४-२५-२६-२९-३०-३१ नोट—२७ व २८के उदयकाल आनेपर सासादन नहीं होता	१	९० प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र	२	२८ व २९	३	२९-३० व ३१	२	९२ व ९० प्रकृति.
मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	६	९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक

अब सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्ध-उदय एवं सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

पुरिसं वा सण्णीये इदरे कुमदिं व णत्थि इगिणउदी ॥७३६॥

अर्थ—सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानका कथन पुरुषवेदके समान है। असञ्ज्ञीके बन्धादि तीनोंस्थान कुमतिज्ञानवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है।

सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्ध-उदय एवं सत्त्वस्थानोंकी सन्दृष्टि—

मार्गणा	बन्ध-स्थान सख्या		उदय-स्थान संख्या		सत्त्व-स्थान संख्या	
सञ्ज्ञी	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
असञ्ज्ञी	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४-व ८२ प्रकृतिक

आगे आहारमार्गणामें बन्ध उदय और सत्त्वस्थानोंका कथन करते हैं—

आहारे बंधुदया संढं वा णवरि णत्थि इगिवीसं।
पुरिसं वा कम्मंसा इदरे कम्मं व बंधतियं ॥७३७॥

अत्थि णवट्ठ य दुदओ दसणवसत्तं च विज्जदे एत्थ।
इदि बंधुदयप्पहुदीसुदणामे सारमादेसे ॥७३८॥जुम्मं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आहारमार्गणामें बन्ध और उदय तो नपुंसकवेदके समान है, किन्तु विशेष यह है कि २१ प्रकृतिक उदयस्थान यहां नहीं है, सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् हैं। अनाहारमार्गणामें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान कार्मणकाययोगवत् है, किन्तु विशेषता यह है कि अयोगकेवलीके ९ व ८ प्रकृतिरूप दो उदयस्थान तथा १० व ९ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान हैं। इसप्रकार १४ मार्गणाओंमें बन्ध-उदय एवं सत्त्वके त्रिसंयोगका सार स्पष्टरूपसे कहा।

आहारमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

आहारमार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत-प्रकृतिसख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण
आहारक	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	८	२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
अनाहारक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	४	२०-२१-९ व ८ प्रकृतिक यहां ९ व ८ प्रकृतिक स्थान अयोगकेवली की अपेक्षासे है।	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७-१० व ९ यहां १० व ९ प्रकृतिकस्थान अयोगकेवलीकी अपेक्षासे है।

चारु सुदंसणधरणे कुवलयसंतोसणे समत्थेण।
माधवचंदेण महावीरेणत्थेण वित्थरिदो ॥७३९॥

अर्थ—उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करनेमें समर्थ तथा पृथ्वीमण्डलको आनन्द करनेवाले श्री माधवचन्द्र अर्थात् नेमिनाथ तीर्थङ्कर और महावीर तीर्थङ्करने परमार्थसे पूर्वोक्त कथनका विस्तार किया है अथवा माधवचन्द्र और वीरनन्दि आचार्योंने किया ऐसा भी अर्थ निकलता है।

आगे उपर्युक्त त्रिसंयोगमें एकको आधार और दोको आधेय मानकर कथन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करेंगे सो उसमें यहां सर्वप्रथम बन्धको आधार और उदय-सत्त्वको आधेय मानकर दो गाथाओंमें कहते हैं—

णवपंचोदयसत्ता तेवीसे पणुवीस छव्वीसे ।
अट्ठचदुरट्ठवीसे णवसत्तुगुतीसतीसम्मि ॥७४०॥
एगेगं इगितीसे एगे एगुदयमट्ठसत्ताणि ।
उवरदबंधे दस दस उदयंसा होंति णियमेण ॥७४१॥[1] जुम्मं॥

अर्थ—२३-२५ व २६ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ९ तथा सत्त्वस्थान पांच हैं, २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ८ और सत्त्वस्थान चार हैं। २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ९ एवं सत्त्वस्थान सात हैं, ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय-सत्त्वस्थान एक-एक ही हैं तथा एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान एक एवं सत्त्वस्थान ८ हैं। उपरतबन्ध अर्थात् बन्धरहित स्थानमें उदय व सत्त्वस्थान १०-१० हैं ऐसा नियमसे जानना।

अब नामकर्मके उपर्युक्त स्थानोंमें प्रकृतिसंख्या कहते हैं—

तियपणछव्वीसबंधे इगिवीसादेक्कतीसचरिमुदया ।
बाणउदी णउदिचऊ सत्तं अडवीसगे उदया ॥७४२॥
पुव्वं व ण चउवीसं बाणउदि चउक्कसत्तमुगुतीसे ।
तीसे पुव्वं उदया पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४३॥
इगितीसे तीसुदओ तेणउदी सत्तयं हवे एगे ।
तीसुदओ पढमचऊ सीदादि चउक्क मवि सत्तं ॥७४४॥
उवरदबंधेसुदया चउपणवीसूण सव्वयं होदि ।
सत्तं पढमचउक्कं सीदादीछक्कमवि होदि ॥७४५॥

---

१. एगेगं इगितीसे एगेगुदयट्ठ संतम्मि । उवरयबंधे चउदस वेदयदि संतठाणाणि ॥२४९॥
[प्रा० पं० सं० पृ० ४०४]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—२३-२५ व २६ प्रकृतिके बन्धस्थानोंमें २१ से ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यंत ९ उदयस्थान और ९२ प्रकृतिक तथा ९० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे पांच सत्त्वस्थान हैं। २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान तो उपर्युक्त ९ में २४ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ८, सत्त्वस्थान ९२ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान उपर्युक्त ९ हैं और सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप सात हैं। ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक एवं सत्त्वस्थान ९३ प्रकृतिक है। १ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक और सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार व ८० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे आठ हैं। बन्धरहित (उपरतबन्धमें) उदयस्थान २४-२५ प्रकृतिकबिना शेष १० हैं और सत्त्वस्थानभी ९३ आदि प्रकृतिरूप ४ व ८० आदि प्रकृतिरूप ६ ऐसे १० हैं।

विशेषार्थ—बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगमें २३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ९ और सत्त्वस्थान ५ हैं, क्योंकि २३ प्रकृतिका बन्ध एकेन्द्रियअपर्याप्तसहित है अतः इस स्थानको देव-नारकीके बिना अन्य मिथ्यादृष्टि त्रस-स्थावरतिर्यञ्च व मनुष्य ही बांधते हैं। एकेन्द्रियादि सर्व तिर्यञ्चोंके बन्ध एकेन्द्रिय अपर्याप्तसहित २३ प्रकृतिका है तब उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका तथा सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है और कर्मभूमिज मनुष्यके एकेन्द्रिय अपर्याप्तयुत २३ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका पाया जाता है। २५ प्रकृतिक बन्धस्थानको एकेन्द्रियपर्याप्त और त्रस-अपर्याप्तसहित मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च-मनुष्य और देव ही बांधते हैं। सभी तिर्यञ्चोंके एकेन्द्रिय पर्याप्त व त्रस अपर्याप्तयुत २५ प्रकृतिका बन्ध है तब उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है और सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, मनुष्योंके भी इसीप्रकार २५ प्रकृतिक बन्धमें उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। भवनत्रिक-सौधर्मद्विक देवोंमें एकेन्द्रिय-पर्याप्तियुत २५ प्रकृतिका बन्ध रहते हुए उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका तथा सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है।

२६ प्रकृतिक बन्धस्थान एकेन्द्रियपर्याप्तजीव उद्योत या आतपसहित मिथ्यादृष्टि देव, मनुष्य और तिर्यञ्च ही बांधते हैं, इनमें भी तेजकाय-वायुकाय, साधारण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म व अपर्याप्तके २६ प्रकृतिक स्थानका उदय नहीं है तथा तिर्यञ्चोंके एकेन्द्रियपर्याप्त उद्योत व आतपसहित २६ प्रकृतिका बन्ध होता तब उदय २१-२४-२५२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका और सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है। मनुष्योंमें भी इसीप्रकार २६ प्रकृतिका बन्ध होनेपर उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८ और ८४ प्रकृतिका जानना। भवनत्रिक व सौधर्मद्विक स्वर्गके देवोंमें इसीप्रकार २६ प्रकृतिका बन्ध होनेपर उदय २१-२५-२७-२८व २९ प्रकृतिक स्थानोंका एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिक दोस्थानोंका है। तथैव २८ प्रकृतिका बन्ध नरक या देवगतियुत है, इसका बन्ध असञ्ज्ञी व सञ्ज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकालमें करते हैं। तिर्यञ्चोंके मिथ्यात्वावस्थामें नरक या देवगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है और सत्त्व ९२-९०-८८ प्रकृतिका है। सासादनमें देवयुत २८ प्रकृतिका बन्ध होनेपर ३० व ३१ प्रकृतिका उदय एवं सत्त्व ९० प्रकृतिका है। सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिका बन्ध देवगतियुत ही है उस समय उदय ३० व ३१ प्रकृतिका सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें देवयुत बन्ध २८ प्रकृतिका होता है तो उदय २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका और सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका है। देशसंयतगुणस्थानमें देवगतियुत २८ प्रकृतिके बन्धमें ३० व ३१ प्रकृतिका उदय एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। ८२ प्रकृतिके सत्त्वसहित तेजकाय-वायुकायवाले मरणकरके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं उनके विग्रहगतिमें या अपर्याप्तकालमें तिर्यञ्चयुत २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिका बन्ध होता है। ८२ प्रकृतिका सत्त्व होता है मनुष्यद्विकसहित २५ व २९ प्रकृतिका बन्ध होते हुए ८२ प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता है। एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजीव नारकचतुष्ककी उद्वेलना होनेपर मरणकर पञ्चेन्द्रियपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें भी उत्पन्न होते हैं उनके भी पूर्वोक्त अपर्याप्तकालमें ८४ प्रकृतिका सत्त्व सम्भव है इसलिए २८ प्रकृतिके बन्ध होनेके काल में ८२ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व नहीं कहा। मिथ्यादृष्टिमनुष्यके पर्याप्तकालमें नरक या देवसहित २८ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिका है। शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर नारकचतुष्क व देवचतुष्कका बन्ध होता है तो ८८ प्रकृतिका भी सत्त्व पाया जाता है। जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया हो ऐसा असंयत द्वितीय-तृतीय पृथ्वीमें गमनके सम्मुख है वह मिथ्यादृष्टि होकर नरकगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध करता है तो उदय ३० प्रकृतिका व सत्त्व ९१ प्रकृतिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। मनुष्यके सासादनगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध है तो उदय ३० प्रकृतिका और सत्त्व ९० प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें देवयुत बन्ध २८ प्रकृति होते हुए उदय ३० एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका पाया जाता है। असंयतगुणस्थानके देवयुत २८ प्रकृतिके बन्धमें उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है एवं सत्त्व ९० व ९२ प्रकृतिका है, यहां ९१ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, क्योंकि पहले यदि नरकायुका बन्ध नहीं हुआ है तो तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होनेके बाद सम्यक्त्वसे भ्रष्ट नहीं हो सकते तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध निरन्तर है इसलिए देवगति व तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिका बन्ध होता है २८ प्रकृतिका नहीं। देशसंयतके २८ प्रकृतिकबन्धमें उदय ३० एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका पाया जाता है, प्रमत्तगुणस्थानमें देवयुत २८ प्रकृतिरूप बन्धमें २५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय और ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व होता है। अप्रमत्तगुणस्थानमें देवयुत २८ प्रकृतिक बन्ध होनेपर उदय ३० एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, किन्तु २५-२७ व २९ प्रकृतिक उदयमें सत्त्व ९२ प्रकृतिका ही है। अपूर्वकरणगुणस्थानमें देवयुत २८ प्रकृतिका बन्ध होते हुए उदय एवं सत्त्व क्रमशः ३० और ९२ व ९० प्रकृतिका जानना।

२८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थानोंके कथनमें यद्यपि विशेषकथन गर्भित हो जाता है, किन्तु प्राकृतपंचसंग्रहकारने पृ० ३९३ गा० २२६ से पृ० ३७७ गा० २३३ तक २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय तथा सत्त्वकी विशिष्टदशामें स्थानविशेषोंका कथन किया है जो इसप्रकार है—

(१) २८ प्रकृतिका बन्ध करनेवाला क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर भोगभूमिजोंमें उत्पन्न होनेवालेके २१ व २६ प्रकृतिके उदयमें भी २८ प्रकृतिका बन्ध और सत्त्व ९२ या ९० प्रकृतिका होता है।

(२) छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारकशरीरमिश्रकालमें २५ प्रकृतिका उदय होनेपर तथा आहारकशरीरपर्याप्तिकालमें २७ प्रकृतिका उदय होनेपर २८ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है, किन्तु सत्त्व ९२ प्रकृतिका ही है।

(३) आहारकप्रकृतिके सत्त्ववाले असंयतसम्यग्दृष्टिके २९ प्रकृतिका उदय और प्रमत्तसंयतके २८ प्रकृतिके उदयस्थानमें बन्ध २८ प्रकृतिका और सत्त्व ९२ प्रकृतिका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) मिथ्यात्वगुणस्थानसे विरताविरत नामक पंचमगुणस्थानतकके जीवोंके ३० प्रकृतिके उदयस्थानमें और २८ प्रकृतिके बन्धस्थानमें सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका होता है।

(५) जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया हो ऐसा कर्मभूमिज मनुष्य उपशम या वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर केवलिके पादमूलमें तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्धकर दूसरे या तीसरे नरकमें जानेके अभिमुख मिथ्यात्वको प्राप्त हो नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध करता है उससमय ३० प्रकृतिका उदय और ९१ प्रकृतिका सत्त्व।

(६) देवद्विककी उद्वेलना करके मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्यमें उत्पन्न होकर नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेके उदय ३० प्रकृतिका और सत्त्व ८८ प्रकृतिका।

(७) ३१ प्रकृतिके उदयवाला मिथ्यादृष्टिसे विरताविरत पंचमगुणस्थान तक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध होनेपर सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका।

(८) मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध, उदय ३१ प्रकृतिका और सत्त्व ८८ प्रकृतिका, क्योंकि देवद्विकको उद्वेलना वाला है।

२९ प्रकृतिका बन्ध द्वीन्द्रियादिसहित या त्रसपर्याप्तसहित अथवा तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित अथवा देवगति तीर्थङ्करसहित होता है और इस स्थानको चारोंगतिके जीव बांधते हैं। यहां नारकियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च व मनुष्यसहित २९ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका, सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है; ९१ प्रकृतिका सत्त्व घर्मादि तीन नरकोंमें प्रथमतीन अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ही सम्भव है। सासादनगुणस्थानमें पूर्वोक्तप्रकार २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय २९ एवं सत्त्व ९० प्रकृतिका है, मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यसहित ही २९ प्रकृतिक बन्ध है तब उदय भी २९ प्रकृतिक एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें भी मनुष्ययुत ही २९ प्रकृतिरूप बन्ध होता है तब घर्मानरकसम्बन्धी २९ प्रकृतिक बन्धके साथ २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिरूप उदय और ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है; वंशा-मेघादि पृथ्वियोंमें २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय २९ एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२४-२५-२६-२७-२८ २९-३० व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३१ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानके पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यसहित २९ प्रकृतिके बन्धमें २१-२४-२६-३० व ३१ प्रकृतिका तथा सत्त्व ९० प्रकृतिका है; यहां २५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक उदय नहीं पाया जाता है। मिश्र-असंयत और देशसंयत इन तीन गुणस्थानोंमें २९ प्रकृतिक बन्ध नहीं है, क्योंकि तिर्यञ्च व मनुष्यगतिकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें ही हो जाती है। मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय और ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व है। जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसे जीवके तीर्थङ्करप्रकृतिके बन्धसहित नरकगतिको जाते समय मिथ्यात्वावस्थामें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिके बन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक उदयसहित ९१ प्रकृतिका सत्त्व जानना, सासादनगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अथवा मनुष्यसहित २९ प्रकृतिकबन्धमें २१-२६ व ३० प्रकृतिक उदयसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्रगुणस्थानमें २९ प्रकृतिक बन्ध नहीं है। असंयतगुणस्थानमें देव और तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिके उदयसहित सत्त्व ९३ और ९१ प्रकृतिका है, देशसंयतगुणस्थानमें इसीप्रकार २९ प्रकृतिक बन्धमें ३० प्रकृतिका उदय एवं ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व है, प्रमत्तगुणस्थानके इसी २९ प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ २५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक उदय और ९३ व ९१ प्रकृतिक सत्त्व है, अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानमें पूर्वोक्त २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३ व ९१ प्रकृतिका जानना। देवगति भवनत्रिकसे सहस्रारस्वर्गके कल्पवासीदेवोंतक मिथ्यात्वगुणस्थानमें सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च या मनुष्यसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय तथा ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। देव सासादनगुणस्थानमें पूर्ववत् २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२५ और २९ प्रकृतिरूप उदयसहित सत्त्व ९० प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्धमें २९ प्रकृतिका उदय और सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका जानना। असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय भवनत्रिकदेवोंमें २९ प्रकृतिका तथा अन्य देवोंमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है तथा सत्त्व सभीके ९२ व ९० प्रकृतिका पाया जाता है। आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त देवोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्धके साथ २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय और ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। सासादनगुण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानमें २९ प्रकृतिके बन्धमें २१-२५ व २९ प्रकृतिका उदय तथा ९० प्रकृतिका सत्त्व है। मिश्रगुणस्थानमें २९ प्रकृतिक पूर्वोक्त बन्धमें २९ ही प्रकृतिके उदयसहित ९२ व ९० प्रकृतिका होता है, असंयतगुणस्थानमें इसी २९ प्रकृतिरूप बन्धके साथ उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। अनुदिश व अनुत्तर-विमानोंके असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिकबन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है।

३० प्रकृतिका बन्धस्थान त्रसपर्याप्तउद्योत-तिर्यञ्चगतियुत या मनुष्यगति-तीर्थङ्करसहित अथवा देवगति-आहारकद्विकसहित होता है और इसका बन्ध चारोंगतिके जीवोंको होता है। नरकगतिके मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका तथा सासादनगुणस्थानमें उदय २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९० प्रकृतिका है; मिश्रगुणस्थानमें ३० प्रकृतिका बन्ध नहीं है, असंयतगुण-स्थानमें मनुष्य-तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें घर्मानरकमें उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९१ प्रकृतिका है। वशा-मेघानरकमें उदय २९ व सत्त्व ९१ प्रकृतिका है, अञ्जनादिमें इसप्रकारका बन्ध नहीं है। मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चोंके उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धमें उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२४-२६-३० व ३१ प्रकृतिक उदय और ९० प्रकृतिका सत्त्व है। यहां मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें इसप्रकारका बन्ध नहीं है। मिथ्यादृष्टिमनुष्यके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय एवं ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिकबन्धमें २१-२६ व ३० प्रकृतिक उदयसहित सत्त्व ९० प्रकृतिका जानना। मिश्रसे प्रमत्तपर्यन्त च्यारगुणस्थानोंमें ३० प्रकृतिक बन्ध नहीं है, अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानमें देवगति व आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें ३० प्रकृतिक उदयसहित ९२ प्रकृतिका सत्त्व है। भवनत्रिकसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त देवोंमें तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप बन्धमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय और ९० व ९२ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें २१-२५ व २९ प्रकृतिरूप उदय तथा ९० प्रकृतिरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्त्व है । मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती भवनत्रिकदेवोंमें ३० प्रकृतिरूप बन्ध नहीं है वहां तो मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक बन्ध ही पाया जाता है तथा सौधर्मसे सहस्रार-स्वर्गपर्यन्त देवोंके असंयतगुणस्थानमें मनुष्य व तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिका बन्ध है तब उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३ व ९१ प्रकृतिका है आगे आनत-स्वर्गसे उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त मिथ्यात्व-सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानोंमें ३० प्रकृतिका बन्ध नहीं है । आनतस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त असंयतगुणस्थानवर्ती देवोंके ३० प्रकृतिकबन्धमें उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९३ व ९१ प्रकृतिका पाया जाता है ।

देवगति-आहारकद्विक व तीर्थङ्करसहित ३१ प्रकृतिक बन्ध अप्रमत्त व अपूर्व-करणगुणस्थानवर्ती ही करते हैं सो इनके इस बन्धस्थानमें उदय और सत्त्व क्रमशः ३० व ९३ प्रकृतिका पाया जाता है । अपूर्वकरणके सप्तमभागमें तथा अनिवृत्तिकरणगुण-स्थानमें यशस्कीर्तिरूप १ प्रकृतिक बन्धमें उदय ३० प्रकृतिका और सत्त्व ९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है, किन्तु अपूर्वकरणके सप्तमभागमें ८० आदि प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान नहीं हैं । सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें यशस्कीर्तिरूप १ प्रकृतिक बन्धमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है, उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव रहते हुए भी उदय ३० प्रकृतिक एवं सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका है, क्षीणकषायगुणस्थानमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है । सयोगकेवलीके स्वस्थानमें ३० व ३१ प्रकृतिका उदय और सत्त्व ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है तथा समुद्घातकेवलीके २०-२१-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका उदय एवं सत्त्व ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है । अयोगीगुणस्थानमें उदय ९ व ८ प्रकृतिका[1] और सत्त्व ८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिका है ।

१. गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा २७१ व २७६ देखो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकरणरूप बन्धस्थान और आधेयरूप उदय-सत्त्वस्थानके त्रिसंयोगी भङ्ग-सम्बन्धी सन्दृष्टि—

अधिकरण	आधेय			
बंधस्थान	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
२३ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२५ ,,	९	,, ,,	५	,, ,,
२६ ,,	९	,, ,,	५	,, ,,
२८ ,,	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	४	९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिक
२९ ,,	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
३० ,,	९	,, ,,	७	,, ,,
३१	१	३० प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक
१	१	३० ,,	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
उपरतबन्ध	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८	१०	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक

आगे उदयस्थानको आधार और बन्ध-सत्त्वस्थानोंको आधेय मानकर कथन करते हैं—

बीसादिसु बंधंसा णभदु छणणव पणपणं च छसत्तं ।
छणणव छड दुसु छद्दस अट्ठदसं छक्कछक्क णभति दुसु ॥७४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—२० आदि प्रकृतिरूप उदयस्थानोंमें बन्ध व सत्त्वस्थान क्रमसे २० प्रकृतिके उदयस्थानमें बन्धस्थान शून्य व सत्त्वस्थान २, २१ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ व सत्त्वस्थान ६, २४ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ५ और सत्त्वस्थान ६, २५ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ सत्त्वस्थान ७, २६ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थाव ६ और सत्त्वस्थान ६, २७ व २८ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ एवं सत्त्वस्थान ८, २९ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ तथा सत्त्वस्थान १०, तीस प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्ध व सत्त्वस्थान क्रमसे ८ व १० हैं, ३१ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें बन्ध और सत्त्वस्थान ६ व ६ हैं तथा ९ व ८ प्रकृतिक उदयस्थानोंमें बन्धस्थानका अभाव है और सत्त्वस्थान ३ जानना।

अब उपर्युक्त कथनका स्पष्टीकरण ६ गाथाओंमें करते हैं—

बीसुदये बंधो ण हि उणसीदीसत्तसत्तरी सत्तं।
इगिवीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतया बंधा ॥७४७॥

सत्तं तिणउदिपहुदिसीदंता अट्ठसत्तरी य हवे।
चउवीसे पढमतियं णववीसं तीसयं बंधो ॥७४८॥

बाणउदी णउदिचऊ सत्तं पणछस्सगट्ठणववीसे।
बंधा आदिमछक्कं पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४९॥

ते णवसगसदरिजुदा आदिमछस्सीदिअट्ठसदरीहिं।
णवसत्तसत्तरीहिं सीदिचउक्केहिं सहिदाणि ॥७५०॥

तीसे अट्ठवि बंधो ऊणतीसं व होदि सत्तं तु।
इगितीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतयं बंधो ॥७५१॥

सत्तं दुणउदिणउदीतिय सीदडहत्तरी य णवगट्ठे।
बंधो ण सीदिपहुदीसुसमविसमं सत्तमुद्दिट्ठं ॥७५२॥

अर्थ—२० प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धका अभाव है, सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिरूप दो हैं, २१ प्रकृतिक उदयस्थानमें २३ प्रकृतिक स्थानसे ३० प्रकृतिकस्थावपर्यन्त ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धस्थान हैं तथा सत्त्वस्थान ६३ से ८० प्रकृतिक स्थानपर्यन्त एवं ७८ प्रकृतिका ऐसे ६ हैं। यहां २१ प्रकृतिक उदयस्थानके अन्तगत तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके बन्धस्थानका अभाव भी है। २४ प्रकृतिक उदयस्थानमें आदिके तीन और २६ व ३० प्रकृतिक इस प्रकार पांच बन्धस्थान हैं एवं सत्त्वस्थान ६२ प्रकृतिक व ६० आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार पांच जानना। २५-२६-२७-२८ व २६ प्रकृतिक उदयस्थानोंमें २३ आदि प्रकृतिरूप ६ उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान क्रमसे २५ प्रकृतिक स्थानमें आदिके सात, २६ प्रकृतिकस्थानमें आदिके ७ और ७६ व ७७ प्रकृतिरूप दो ऐसे ६, २७ प्रकृतिकस्थानमें आदिके ६ और ८० व ७८ प्रकृतिक ऐसे ८, २८ प्रकृतिकस्थानमें आदिके ६ तथा ७६ व ७७ प्रकृतिक दो इसप्रकार आठ हैं, २६ प्रकृतिक स्थानमें आदिके छह और ८० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे १०, तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ८ एवं सत्त्व २६ प्रकृतिकस्थानके समान १० हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्ध २३ से ३० प्रकृतिक स्थानपर्यन्त ६ व सत्त्वस्थान ६२ प्रकृतिरूप व ६० आदिप्रकृतिरूप ३ और ८०-७८ प्रकृतिक ऐसे ६ हैं। ६ व ८ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थानका अभाव है तथा ८० आदि प्रकृतिरूप ६ स्थानोंमेंसे समसख्यारूप तीनस्थान ६ प्रकृतिक स्थानमें और विषम-संख्यारूप तीनस्थान आठप्रकृतिक स्थानमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—२० प्रकृतिका उदय तीर्थङ्कररहित सामान्यकेवलीके समुद्घातमें होता है, यहां बन्धका अभाव है और सत्त्व ७६ व ७७ प्रकृतिके पाए जाते हैं। २१ प्रकृतिरूप उदयस्थान तीर्थङ्करके प्रतरसमुद्घात करने व समेटनेमें और लोकपूरण-समुद्घातमें होता है। यहां भी बन्ध नहीं पाया जाता, सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिरूप है तथा आनुपूर्वीसहित २१ प्रकृतिका उदय चारोंगतिके विग्रहगतिकालमें होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती घर्मादि तीन पृथ्वियोंके नारकीजीवोंमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानमें पंचेन्द्रियतिर्यंच या मनुष्ययुत २६ अथवा तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ६२-६१ व ६० प्रकृतिका है। सासादन व मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिरूप उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें घर्मानरकमें ही २१ प्रकृतिका उदय है यहां मनुष्ययुत २६ व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिका बंध और ६२ ६१ व ६० प्रकृतिका सत्त्व है। अञ्जनादि तीन नरकोंमें मिथ्यादृष्टिनारकियोंके २१ प्रकृतिक उदयमें बन्ध पंचेन्द्रियतिर्यंच या मनुष्ययुत २६ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ६२ व ६० प्रकृतिका है। अञ्जनादिपृथ्वियोंके सासादनआदि तीनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं है। तिर्यंचोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें पंचेन्द्रियतियँच व मनुष्ययुत २९ एवं तियँच-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बंधके साथ सत्त्व ९० प्रकृतिका है। यहां मिश्र व देशसंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं है। असंयत-गुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें देवयुत २८ प्रकृतिक बंधसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। मनुष्योंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप बंधसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृति बन्धसहित सत्त्व ९० प्रकृतिका है, मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिका उदय नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें देवयुत २८ प्रकृतिक और देव-तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका, देशसयतादिमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं है। देव-गतिमें भवनत्रिकदेवोंमें और कल्पवासिनी देवियोके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, सासादन-गुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें मनुष्ययुत २९ व तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है। मिश्र-असंयतगुणस्थानमें इसप्रकारका उदयस्थान नहीं है। सौधर्मयुगलके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें तिर्यञ्च व मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिरूप बन्धसहित सत्त्व ९० प्रकृतिका है, मिश्रगुणस्थानमें यहां २१ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है। असंयत-गुणस्थानके २१ प्रकृतिक उदयमें मनुष्ययुत २९ और मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिके बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका जानना। आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें मिथ्यात्वगुणस्थानके २१ प्रकृतिरूप स्थानका उदय है तब तिर्यञ्च व मनुष्ययुत २९ एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धके साथ ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है तथा सासादन व असंयतगुणस्थानसम्बन्धी कथन पूर्वोक्त सौधर्मयुगलके कथनवत् जानना। मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं पाया जाता है। आनतस्वर्गसे उप-रिमग्रैवेयकपर्यन्त २१ प्रकृतिक उदयमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध मनुष्ययुत २९ और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिके बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानका अभाव है, असयत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ एवं मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धके साथ ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक सत्त्व पाया जाता है। नवानुदिश और पांच अनुत्तर विमानसम्बन्धी असंयतगुणस्थानमें भी मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक तथा मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९३ आदि प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं।

२४ प्रकृतिरूप उदयस्थान अपर्याप्तएकेन्द्रियमिथ्यादृष्टिजीवके ही है। यहां २४ प्रकृतिक उदयमें लब्ध्यपर्याप्तकके २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बंधसहित सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है तथा निर्वृत्त्यपर्याप्तकमें भी सर्वकथन इसीप्रकार है, किन्तु विशेषता यह है कि अग्निकाय-वायुकायके जीवोंमें मनुष्यगतिसहित होनेवाले सभी बन्धस्थानोंका अभाव है। एवं आतप-उद्योतसहित सर्व सूक्ष्म, अपर्याप्त, तेजकाय-वायुकाय और साधारणका बन्ध नहीं है। २५ प्रकृतिका उदय चारोंगतिके अपर्याप्तकालमें और पर्याप्तएकेन्द्रियके सम्भव है यहां २५ प्रकृतिका उदय रहते हुए सभी नारकियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें तथा घर्मानरकके असंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानवत् बन्ध व सत्त्व जानना। नारकियोंके अपर्याप्तकालमें अन्य गुणस्थान नहीं हैं। एकेन्द्रियजीवोंके परघातयुत २५ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है। त्रसतिर्यञ्चजीवोंके २५ प्रकृतिक उदय नहीं है क्योंकि इनके अङ्गोपाङ्ग व संहननसहित २६ प्रकृतिका ही उदय पाया जाता है तथा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनुष्यके आहारकशरीरमें संहनन नहीं अतः अङ्गोपाङ्गसहित २५ प्रकृतिका उदय है सो इनके देवयुत २८ और देवगति व तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३-९२ प्रकृतिका सत्त्व है। देवोंके २५ प्रकृतिक उदय है जिसप्रकार २१ प्रकृतिक उदयमें बन्ध-सत्त्वका कथन किया गया है उसीप्रकार यहां भी बन्ध और सत्त्व जानना चाहिए। २६ प्रकृतिक उदय लब्ध्यपर्याप्त व निर्वृत्त्यपर्याप्त त्रसतिर्यञ्चोंके संहननसहित है यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिके बन्धसहित सत्त्वस्थान ९२ और ९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक चार हैं। एकेंद्रिय मिथ्यादृष्टिके शरीरपर्याप्तिमें उद्योत, आतप व उच्छ्वाससहित २६ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें २६ प्रकृतिरूप उदय नहीं है, क्योंकि इसस्थानके उदयसे पूर्व ही २४ प्रकृतिक स्थानमें सासादनकाल समाप्त हो जाता है तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके सासादनगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदय है तब २९-३० प्रकृतिके बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। "मिच्छदुगे देवचऊण" इस वचनसे २८ प्रकृतिका बन्ध नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदय नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदयमें देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है, देशसंयतगुणस्थानमें २६ प्रकृतिका उदय नहीं है। मनुष्यके २६ प्रकृतिका उदय होता है यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्रगुणस्थानमें इसप्रकारका उदय नहीं है, असंयतगुणस्थानमें देवगतियुत २८ व देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका बन्ध होता है एवं ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं, देशसयतादि गुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है, तीर्थङ्करबिना सामान्यकेवलीके कपाटसमुद्घातमें २६ प्रकृतिके उदयमें बन्ध नहीं है, किन्तु सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका है।

२७ प्रकृतिका उदय तीनगतिसम्बन्धी शरीरपर्याप्तिमें तथा तिर्यञ्चगतिमें एकेन्द्रियके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें होता है। जहां २७ प्रकृतिका उदय होता है वहां घर्मादि तीन नरकोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ का एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिका तथा सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है, सासादनादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है, किन्तु घर्मानरकमें असंयतगुणस्थान २७ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुन २९ एवं मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है तथा अञ्जनादि तीन नरकोंकी मिथ्यात्वावस्थामें २७ प्रकृतिक उदयमें बन्ध तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका है और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, माघवीपृथ्वीमें तिर्यञ्चगतियुत २९ तथा तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका जानना। यहां सासादनादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। एकेन्द्रियके श्वासोच्छ्वाससहित आतप या उद्योत संयुक्तमें से किसी एकमें २७ प्रकृतिका उदय होता है तब २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। तेजकाय-वायुकायबिना अन्य एकेन्द्रियोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें मनुष्यद्विकका बन्ध होता है तब ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान यथासम्भव नहीं है। आहारकशरीरवालोंके २७ प्रकृतिक उदयमें देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३ व ९२ प्रकृतिका है, तीर्थङ्करके कपाटसमुद्घातमें २७ प्रकृतिक उदयमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धका तो अभाव और सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। भवनत्रिकदेव तथा कल्पवासिनी देवियोंके तो मिथ्यात्वगुणस्थानमें २७ प्रकृतिक उदयमें २५-२६ एवं तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। यहां सासादनादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। सासादनगुणस्थानका अभाव इसलिए कहा, क्योंकि शरीरपर्याप्तिकालमें सासादनगुणस्थानको छोड़कर मिथ्यात्वावस्थाको प्राप्त हो जाता है। मिथ्यात्वसहित सौधर्मयुगलमें २७ प्रकृतिक उदयमें बन्ध व सत्त्वका कथन भवनत्रिकवत् जानना। यहां सासादन व मिश्रगुणस्थान में यह उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २७ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ व मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप है। आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें मिथ्यादृष्टिके २७ प्रकृतिरूप उदयमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। असंयतगुणस्थानके २७ प्रकृतिक उदयमें बन्ध व सत्त्वका सर्वकथन सौधर्मयुगलके समान है। आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थानमें २७ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप बन्धसहित ९२-९० प्रकृतिका सत्त्व होता है, इनके असंयतगुणस्थानमें तथा नवानुदिश व अनुत्तरविमानोंके असंयतोंमें २७ प्रकृतिक उदय रहते हुए मनुष्यगतियुत २९ और मनुष्यगति व तीर्थङ्करसंयुक्त ३० प्रकृतिक बन्धके साथ सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप है।

२८ प्रकृतिका उदय तिर्यञ्च-मनुष्यके शरीरपर्याप्तिकालमें तथा देव और नारकियोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें होता है। जहां २८ प्रकृतिका उदय होता है वहां नारकियोंके घर्मानरकमें मिथ्यात्वसहित तो बन्ध तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका है। यहां ९१ प्रकृतिका सत्त्व नहीं पाया जाता, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला घर्मानरकमें जाकर सम्यक्त्वसे भ्रष्ट नहीं होता है, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ व मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिरूप बन्धसहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका जानना। वंशा-मेघापृथ्वीके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदयमें बन्ध-सत्त्वसम्बन्धी कथन घर्मानरकवत् है किन्तु इनके ९१ प्रकृतिका भी सत्त्व है। सासादन आदि तीन गुणस्थानोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह उदयस्थान नहीं है। आगे अञ्जनादि तीन नरकोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदयमें बन्ध और सत्त्वसम्बन्धी कथन घर्मानरकवत् जानना, किन्तु यहां सासादनादि तीनगुणस्थानोंमें २८ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है। माघवी नामक नरकके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए तिर्यञ्चगतियुत २९ और तिर्यञ्चगति व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है, किन्तु सासादनादि गुणस्थानोंमें २८ प्रकृतिरूप उदय नहीं पाया जाता है। तिर्यञ्चोंके २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्व पाया जाता है, सासादन और मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। भोगभूमिज असंयततिर्यञ्चमें २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है। कर्मभूमिज असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं होता है। मनुष्यके २८ प्रकृतिक उदयमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध-सत्त्वसम्बन्धी सर्वकथन तिर्यञ्चवत् है। यहां सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें इस उदयस्थानके रहते हुए देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप पाए जाते हैं. देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। आहारककाययोगकी उच्छ्वासपर्याप्तिमें २८ प्रकृतिका उदय रहते हुए देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३ व ९२ प्रकृतिक सत्त्व है। तीर्थङ्कररहित दण्डसमुद्घातके औदारिककाययोगमें २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए बन्धका तो अभाव है, किन्तु सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका है। २७ प्रकृतिक उदय रहते हुए देवोंके जो बन्ध व सत्त्वस्थान कहे थे वे ही यहां २८ प्रकृतिक उदयमें भी जानना।

२९ प्रकृतिका उदय नारकियोंके भाषापर्याप्तिकालमें दुःस्वरसहित होता है। २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए सभी नारकियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है। यहां विशेषबात यह है कि माघवीनरकमें मनुष्यगतियुत बन्धस्थान नहीं है तथा द्वितीय-तृतीय नरकके प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें ९१ प्रकृतिका भी सत्त्व है। सासादनगुणस्थानमें २९ प्रकृतिका उदय रहते हुए बन्ध तो मिथ्यात्वगुणस्थानवत् और सत्त्व ९० प्रकृतिका, मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९० प्रकृतिका सत्त्व है, असंयतगुणस्थानमें घर्मा-वंशा-मेघानरकमें मनुष्यगतियुत २९ और मनुष्यगति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९१ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है अञ्जनादि शेष चार नरकोंमें २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्ध और ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है। त्रसतिर्यञ्चोंके शरीरपर्याप्तिकालमें उद्योत-सहित २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८ और ८४ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादन व मिश्रगुण-स्थानमें यह उदयस्थान नहीं है, भोगभूमिज असंयतमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, कर्मभूमिज असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं पाया जाता है। मनुष्योंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें उच्छ्वासयुत २९ प्रकृतिका उदय रहते हुए मिथ्यादृष्टिके बन्ध एवं सत्त्वसम्बन्धी सर्वकथन तिर्यञ्चवत् जानना, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं पाया जाता, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका है, देशसंयतादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। आहारकशरीरकी भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वरसहित २९ प्रकृतिका उदय रहते हुए देवगतियुत २८ व देव-गति व तीर्थंकरयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३ व ९२ प्रकृतिका सत्त्व होता है तीर्थंकर के दण्डसमुद्घातमें २९ प्रकृतिक उदयमें बन्धका तो अभाव एवं सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। तीर्थंकररहित सामान्यकेवलीके मूलशरीरमें प्रवेश करते समय उच्छ्वास-पर्याप्तिकालमें उच्छ्वाससहित २९ प्रकृतिक उदयमें बन्धका अभाव एवं सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका है। देवोंकी भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वरसहित २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें भवनत्रिक एवं कल्पवासिनीदेवियोंके २५ २६-२९ व ३० प्रकृतिक तथा सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसंयुक्त २९ और तिर्यञ्च-गति व उद्योतयुत ३० प्रकृतिक एवं आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्ध है तथा सत्त्व सर्वत्र ९० प्रकृतिका ही है। सासादनगुणस्थानमें भवन-त्रिकसे १२ वें स्वर्गपर्यन्त तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका व तिर्यञ्च-उद्योत सहित ३० प्रकृतिका तथा नवग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका ही है तथा सत्त्व सर्वत्र ९० प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त सर्वत्र मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, असयतगुणस्थानमें भवनत्रिक व कल्पवासिनीदेवियोंके २९ प्रकृतिक उदय रहते हुये मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। सौधर्मस्वर्गसे अनुत्तरविमानपर्यन्त २९ प्रकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयमें मनुष्यगतियुत २९ एवं मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका है।

३० प्रकृतिका उदय तिर्यञ्च व मनुष्योंके ही है, क्योंकि यह स्थान संहनन-सहित है। तिर्यञ्चोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें उद्योतसहित ३० प्रकृतिक उदयमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है, सासादन-मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं पाया जाता, भोगभूमिज असंयततिर्यञ्चोंमें ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, कर्मभूमिज असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। भाषापर्याप्तिकालमें उद्योतरहित और सुस्वर-दुःस्वरमेंसे किसी एक सहित ३० प्रकृति उदय तिर्यञ्चोंके होता है इनके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। यहां ८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्व विकलत्रयकी अपेक्षासे कहा गया है, क्योंकि विकलत्रय जीवोंके सुरद्विक और नारकचतुष्ककी उद्वेलना होनेके पश्चात् बन्धका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदयमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्र-असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्ध और ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। मनुष्योंके तीर्थङ्कर समुद्घातावस्था में मूलशरीरमें प्रवेश करते समय उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें ३० प्रकृतिका उदय है सो यहां बन्ध का तो अभाव और सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। तीर्थङ्करप्रकृतिबिना भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वर या दुःस्वर सहित ३० प्रकृतिका उदय होता है तब बन्धका अभाव और सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका जानना। सामान्यमनुष्यके भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वर या दुःस्वरसहित ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है। यहां ९१ प्रकृतिक सत्त्व दूसरे व तीसरे नरक जानेके सम्मुख तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले जीवकी अपेक्षासे कहा है। सासादनगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदयमें तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ तथा तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका बन्ध एवं ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, असंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है, अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागमें बंध १ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३-९२-९१-९० प्रकृतिरूप है, अनिवृत्ति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें बन्ध एक प्रकृतिका और सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० तथा ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका जानना। आगे उपशान्तकषायादि चार गुणस्थानोंमें बन्धका अभाव है अतः ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए चारोंगुणस्थानोंमें क्रमसे उपशान्तकषायगुणस्थानमें ९३-९२-९१ व ९०, क्षीणकषाय व सयोगकेवली गुणस्थानमें ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका सत्त्व जानना, अयोगकेवलीगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदय नहीं पाया जाता।

३१ प्रकृतिक उदय त्रस-उद्योतसहित भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वर या दुःस्वरयुत तिर्यञ्चोंके होता है। जिसप्रकार ऊपर उद्योतरहित तिर्यञ्चोंके ३० प्रकृतिरूप उदयमें भाषापर्याप्तिकालमें बन्ध-सत्त्वका कथन किया है उसीप्रकार यहां भी जानना। मनुष्योंमें मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ३१ प्रकृतिका उदय ही नहीं पाया जाता है, किन्तु सयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करके इसका उदय है सो यहां बन्धका तो अभाव और सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। ९ प्रकृतिक उदय अयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करके पाया जाता है यहां बन्धका तो अभाव और सत्त्व ८०-७८ व १० प्रकृतिका है तथा सामान्यकेवली की अपेक्षा अयोगीगुणस्थानमें ही ८ प्रकृतिका उदय भी होता है तब बन्धका अभाव एवं सत्त्व ७९-७७ व ९ प्रकृतिका है।

अधिकरणरूप उदयमें आधेयरूप बन्ध-सत्त्वके त्रिसंयोगसम्बन्धी सन्दृष्टि—

अधिकरण	आधेय			
उदयस्थान	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण
२० प्रकृतिक	०	०	२	७९ व ७७ प्रकृतिक
२१ ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० तथा शून्य[1]	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८० व ७८
२४ ,,	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक

१. तीर्थङ्करप्रकृतिके उदयसहित समुद्घातकेवलीके २१ प्रकृतिका उदय होनेपर बन्ध नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२
२६ „	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक, बंधशून्य	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-७९ व ७७ प्रकृतिक
२७ „	६	„ „	८	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८० व ७८ प्रकृतिक
२८ „	६	„ „ व बन्ध शून्य	८	९३-९२-९१-९०-८८-८४-७९ व ७७ प्रकृतिक
२९ „	६	„ „ व बन्ध शून्य	१०	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
३० „	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक, बन्ध शून्य	१०	„ „
३१ „	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक, बन्ध शून्य	६	९२-९०-८८-८४-८० व ७८
९ „	०	०	३	८०-७८ व १० प्रकृतिक
८ „	०	०	३	७९-७७ व ९ „

आगे सत्त्वस्थानको आधार और बन्ध-उदयस्थानको आधेय मानकर निरूपण करते हैं—

सत्ते बंधुदया चदुसग सगणव चदुसगं च सगणवयं ।
छगणव पणणव पणचदु चदुसिगिछक्कं णभेक्क सुण्णेगं ।।७५३।।

अर्थ—९३ आदि प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंमें बन्ध-उदयस्थान क्रमसे ९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान व उदयस्थान क्रमशः ४ और ७ हैं । ९२ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ७ व उदयस्थान ९, ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ४ व उदयस्थान ७, ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ७ व उदयस्थान ९, ८८ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्ध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान ६ व उदयस्थान ९, ८४ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ५ एवं उदयस्थान ९, ८२ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ५ और उदयस्थान ४, ८० प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान १ तथा उदयस्थान ६, ७९ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान १ व उदयस्थान ६, ७८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ और उदयस्थान ६, ७७ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्ध व उदयस्थान क्रमसे १ व ६ हैं, १० प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान शून्य एवं उदयस्थान १ तथा ९ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान शून्य और उदयस्थान १ जानना।

आगे उपर्युक्तकथनका स्पष्टीकरण ६ गाथाओंसे करते हैं—

तेणउदीए बंधो उगुतीसादीचउक्कमुदओ दु।
इगिपणछस्सगअट्ठयणववीसं तीसयं णेयं ॥७५४॥

बाणउदीए बंधा इगितीसूणाणि अट्ठाणाणि।
इगिवीसादीएक्कत्तीसंता उदयठाणाणि ॥७५५॥

इगिणवदीए बंधा अडवीसत्तिदयमेक्कयं चुदओ।
तेणउदिं वा णउदीबंधा बाणउदियं व हवे ॥७५६॥

चरिमदुवीसूणुदओ तिसु दुसु बंधा छ तुरियहीणं च।
बासीदी बंधुदया पुव्वं विगिवीस चत्तारि ॥७५७॥

सीदादिचउसु बंधा जसकित्ती समपदे हवे उदओ।
इगिसगणवधियवीसं तीसेक्कत्तीसणवगं च ॥७५८॥

बीसं छडणववीसं तीसं चट्ठं च विसमठाणुदया।
दसणवगे ण हि बंधो कमेण णवअट्ठयं उदओ ॥७५९॥कुलयं॥

अर्थ—९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २९-३०-३१ व १ प्रकृतिरूप चार और उदयस्थान २१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ७ हैं। ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९-३० व १ प्रकृतिरूप सात एवं उदयस्थान २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिके ९ हैं। ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २८-२९-३० व १ प्रकृतिरूप चार तथा उदयस्थान २१-२५ २६-२७-२८-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९ व ३० प्रकृतिरूप सात हैं। ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९-३० व १ प्रकृतिरूप और उदयस्थान अन्तिम दो एवं २० प्रकृतिकबिना शेष ९ हैं। ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप पांच एवं उदयस्थान ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानके समान ही हैं। ८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक पांच बन्धस्थान एवं ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानके समान ९ उदयस्थान हैं। ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक पांच, उदयस्थान २१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक चार हैं। ८० प्रकृतिक सत्त्वस्थानको आदि करके चार सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान तो एक यशस्कीर्ति प्रकृतिरूप है और उदयस्थान ८० व ७८ प्रकृतिक सत्त्वमें तो २१-२७-२९-३०-३१ व ९ प्रकृतिका तथा ७९ व ७७ प्रकृतिक सत्त्वमें २०-२६-२८-२९-३० व ८ प्रकृतिरूप उदयस्थान हैं। १० व ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थानका अभाव है तथा उदयस्थान क्रमसे ९ व ८ प्रकृतिका पाया जाता है।

विशेषार्थ—९३ प्रकृतिका सत्त्व कर्मभूमिजपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्तमनुष्य और वैमानिकदेवोंके पाया जाता है। "तित्थाहारा जुगवं सव्वं" इत्यादि गाथा ३३३ में मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें ९३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं पाया जाता है, किन्तु मनुष्यके ९३ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है तब असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका और उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है, देशसंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका तथा उदय ३० प्रकृतिक है। प्रमत्तगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृतिका, अप्रमत्तगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ का एवं देवगति आहारक व तीर्थङ्करयुत ३१ का, उदय ३० प्रकृतिक का है, उपशमक अपूर्वकरणमें अप्रमत्तवत् बन्ध-उदय जानना। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्ध एकप्रकृतिका, उदय ३० प्रकृतिका है, उपशान्तमें बन्धका अभाव और उदय ३० प्रकृतिका है, क्षीणकषायादि गुणस्थानोंमें ९३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है क्योंकि इनमें १३ प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे ८० प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है। वैमानिकदेवोंके असंयतगुणस्थानमें ९३ प्रकृतिक सत्त्वमें मनुष्यतीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका होता है। मनुष्यसम्बन्धी असंयतादि गुणस्थानोंमें २८ प्रकृतिक बन्ध नहीं होता, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिके साथ २९ प्रकृतिक बन्ध ही सम्भव है।

९२ प्रकृतिक सत्त्व चारोंगतिमें पाया जाता है। नरकगतिमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वमें घर्मानरकके मिथ्यादृष्टिको तिर्यञ्च या मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३० प्रकृतिक बन्ध तथा २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय होता है। सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्वस्थान नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका बन्ध और २९ प्रकृतिका ही उदय भो पाया जाता है। असंयतगुणस्थानमें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका बन्ध एवं २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय है। वंशासे मघवीपृथ्वीपर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए बन्ध-उदयका कथन घर्मानरकवत् ही जानना। यहां सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्व ही नहीं होता, मिश्रगुणस्थानमें बन्ध व उदय २९-२९ प्रकृतिरूप ही है। असयतगुणस्थानमें मनुष्यगतियुत २९ का बन्ध और २९ प्रकृतिका ही उदय भी पाया जाता है। माघवीपृथ्वीसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए तिर्यञ्चयुत २९ प्रकृतिक एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय घर्मानरकवत् ही जानना। यहां सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं हैं, मिश्र व असंयतगुणस्थानमें बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक तथा उदय भी २९ प्रकृतिका ही है। तिर्यञ्चोंमें ९२ प्रकृतिक सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका उदय है, सासादनमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय ३०-३१ प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका तथा उदय २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है किन्तु २१-२६-२८ व २९ प्रकृतिका उदय भोगभूमिजको अपेक्षा है। देशसंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय ३० व ३१ प्रकृतिका पाया जाता है। मनुष्यके ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय होता है. सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिक बन्ध और उदय ३० प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका एवं उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिरूप है, देशसंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृतिका है, प्रमत्तगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ तथा उदय २५ २७-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है, अप्रमत्तअपूर्वकरणगुणस्थानमें देवगतियुत बन्ध २८ का एवं देव-आहारकयुत ३० प्रकृतिका व उदय ३० प्रकृतिरूप है, अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्ध एक प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृतिका है, उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभाव तथा उदय ३० प्रकृतिका जानना, क्षीणकषायादि गुणस्थानोंमें १३ प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे ९२ प्रकृतिका सत्त्वस्थान नहीं है ७९ प्रकृतिका सत्त्व है। देवोंमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए भवनत्रिक और सौधर्मयुगलवाले मिथ्यादृष्टि देवोंके २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है, सासादन-गुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका और उदय भी २९ प्रकृतिका ही है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक एवं उदय भवनत्रिकके तो २९ का, सौधर्मयुगलमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है। आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें मिथ्यादृष्टिके तिर्यञ्च या मनुष्य-गतियुत २९ का और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० का; आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्ध है, उदय भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है। यहां सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्व नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका बन्ध और उदय भी २९ प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें सनत्कुमारस्वर्गसे अनुत्तरविमानपर्यंत बन्ध मनुष्यगतियुत २९ एवं उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका पाया जाता है।

"तिरियेण तित्थसत्तं" इत्यादि गाथाके वचनानुसार तिर्यञ्चबिना देव-नारकी व मनुष्यके ही ९१ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। यहां घर्मानरकके नारकियोंमें ९१ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए असंयतगुणस्थानमें तीर्थङ्कर व मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका पाया जाता है। वंशा-मेघानरकमें भी सर्वकथन घर्मावत् ही जानना, किन्तु विशेष यह है कि असंयतगुणस्थानमें एक २९ प्रकृतिक ही उदय पाया जाता है। अञ्जनादि पृथ्वियोंमें ९१ प्रकृतिकका सत्त्व नहीं है। मनुष्योंके ९१ प्रकृतिरूप सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध २८ व उदय ३० प्रकृतिका है। असंयतगुणस्थानमें बंध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका तथा उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है। आगे देशसंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यंत बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका, अपूर्वकरणके सप्तमभागसे उपशम सूक्ष्म-साम्परायगुणस्थानपर्यन्त बन्ध एक प्रकृतिका तथा उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव है और उदय देशसंयतगुणस्थानसे उपशान्तकषायपर्यन्त ३० प्रकृतिका ही है। देवगतिमें ९१ प्रकृतिका सत्त्व वैमानिकदेवोंके असंयतगुणस्थानमें ही होता है। वहां मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत बन्ध ३० प्रकृतिका और उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का जानना। ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान चारोंगतिके जीवोंमें पाया जाता है। नरकगतिमें सर्वनारकियोंके ९० प्रकृतिक सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसंयुक्त २९ एवं तिर्यञ्चउद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय पाया जाता है, किन्तु यहां विशेष इतना है कि माघवीपृथ्वीके मिथ्यादृष्टिजीवोंमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्ध नहीं है। ९० प्रकृतिक ही सत्त्व रहते हुए सासादनगुणस्थानमें बन्ध तो मिथ्यात्वगुणस्थानवत् और उदय २९ प्रकृतिरूप है, मिश्रगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्ध और उदय भी २९ प्रकृतिका ही है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध मनुष्ययुत २९ प्रकृतिका है एवं उदय घर्मानरकमें तो २१-२५-२७-२८ व २९ तथा वंशादिपृथ्वियोंमें उदय २९ प्रकृतिका ही है। तिर्यञ्चोंके ९० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है; सासादनगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका, तिर्यञ्च या मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिका है, उदय २१-२४-२६-३० व ३१ प्रकृतिका; मिश्रगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका एवं उदय ३० व ३१ प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है, देशसंयतमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ एवं उदय ३० व ३१ प्रकृतिका है। मनुष्योंमें ९० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका, उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका; सासादनगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८, तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९, तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिका एवं उदय २१-२६ व ३० प्रकृतिका है; मिश्रगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृतिका; असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसहित २८ प्रकृतिका तथा उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है; देशसंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका, अपूर्वकरणके सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त बन्ध १ प्रकृतिका एवं उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव है, उदय देशसंयतसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त ३० प्रकृतिका ही है। देवोंके ९० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें भवनत्रिक और सौधर्मयुगलके देवोंमें बन्ध २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिका, आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक और तिर्यंचगति व उद्योतयुत ३० प्रकृतिक, आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतिसंयुक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९ प्रकृतिका है, उदय भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है; सासादनगुणस्थानमें बन्ध भवनत्रिकसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसंयुक्त २९ अथवा तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिका, आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका, उदय भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१-२५ व २९ प्रकृतिका है, मिश्रगुणस्थानमें भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त बन्ध मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका और उदयभी २९ प्रकृतिका ही है, असंयतगुणस्थानमें भवनत्रिकसे अनुत्तरविमानपर्यन्त बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका है एव उदय भवनत्रिकमें २९ प्रकृतिका और सौधर्मद्विकसे अनुत्तरविमानपर्यन्त २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका रहता है।

८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान देवद्विककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय व विकलत्रयके होता है ये जीव मरणकर मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च व मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उनके २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित तिर्यञ्चके २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृति तथा मनुष्यके २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय पाया जाता है। आगे सासादनादि गुणस्थानोंमें ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है। मिथ्यादृष्टि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यके शरीरपर्याप्तिकालमें जबतक देवगतिका बन्ध नहीं होता तबतक ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है अथवा एकेन्द्रिय व विकलत्रय नारकचतुष्ककी उद्वेलना करके मरणकर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अथवा मनुष्यमें उत्पन्न होता है वहां शरीरपर्याप्तिकालमें देवगतिको बांधनेवाला जबतक नरकगतिको नहीं बांधता तबतक उसके ८८ प्रकृतिका सत्त्व हो सकता है। ८४ प्रकृतिका सत्त्व नारकचतुष्ककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियके होता है ये मरणकरके मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं सो इनके भी जबतक देव या नरकगतिका बन्ध नहीं होता तबतक ८४ प्रकृतिका सत्त्व होता है। यहां पर बन्ध व उदयसम्बन्धी कथन ८८ प्रकृतिक स्थानके समान जानना, विशेष इतना है कि २८ प्रकृतिक बन्धका यहां अभाव है। ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर तेजकाय-वायुकायके जीवों में होता है, ये मरणकरके मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते है सो इनके बन्ध २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक तथा उदय २१-२४-२५ व २६ प्रकृतिका है। यहां तेजकाय-वायुकायके जीवोंमें आतप या उद्योतका उदय नहीं है। जबतक मनुष्यगतिका बन्ध नहीं होता तबतक ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। ८० प्रकृतिक सत्त्व क्षपकश्रेणिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरणसे तीर्थङ्करकेवलीसम्बन्धी अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त होता है। ८० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक प्रकृतिके बन्धसहित उदय ३० प्रकृतिका है। आगे गुणस्थानोंमें बन्धका अभाव है अतः उदय क्षीणकषायगुणस्थानमें ३० प्रकृतिका, सयोगकेवली गुणस्थानमें स्वस्थानकेवलीके ३१ प्रकृतिका, समुद्घातकेवलीके २१-२७-२९-३० व ३१ प्रकृतिका एवं अयोगकेवलीके ९ प्रकृतिका पाया जाता है। ७९ प्रकृतिका सत्त्व तीर्थङ्करप्रकृतिरहित है, ७८ प्रकृतिका सत्त्व तीर्थङ्करप्रकृतिसहित एवं आहारकद्विकप्रकृतिरहित है सो इनतीनों स्थानोंमें बन्ध-उदयका कथन क्षपकअनिवृत्तिकरणसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ८० प्रकृतिक सत्त्व-स्थानवत् है। सयोगकेवलीगुणस्थानमें ७९ व ७७ प्रकृतिके सत्त्वमें स्वस्थानकेवलीके ३० प्रकृतिका, समुद्घातकेवलीके २०-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय है, ७८ प्रकृतिक सत्त्वमें उदय ८० प्रकृतिक स्थानवत् जानना, अयोगीके ७९-७७ के सत्त्वमें बन्धका अभाव तथा उदय ८ प्रकृतिक है। १० व ९ प्रकृतिक सत्त्व अयोगकेवलीगुण-स्थानके चरमसमयमें क्रमशः तीर्थङ्करप्रकृतिसहित व रहित हैं, बन्धका अभाव है, उदय क्रमसे तीर्थङ्करसहितके ९ प्रकृतिका एवं तीर्थङ्कररहितके ८ प्रकृतिका जानना। इस-प्रकार सत्त्वस्थानरूप आधारमें बन्ध-उदयको आधार मानकर कथन किया।

अधिकरणरूप सत्त्वमें आधेयरूप बन्ध-उदयस्थानसम्बन्धी त्रिसंयोगकी सन्दृष्टि—

अधिकरण	आधेय			
सत्त्वस्थान	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण
९३	४	२९-३०-३१ व १प्रकृति.	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
९२	७	२३-२५-२६-२८-२९-३० व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१
९१	४	२८-२९-३० व १प्रकृति.	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९०	७	२३-२५-२६-२८-२९-३० व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
८८	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	९	,, ,,
८४	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक	९	,, ,,
८२	५	,, ,,	४	२१-२४-२५-२६ प्रकृतिक
८०	१	१ यशस्कीर्ति	६	२१-२७-२९-३० व ३१-९ प्रकृतिक
७९	१	,, ,,	६	२०-२६-२८-२९-३० व ८
७८	१	,, ,,	६	२१-२७-२९-३०-३१ व ९
७७	१	,, ,,	६	२०-२६-२८-२९-३० व ८
१०	०	०	१	९ प्रकृतिक
९	०	०	१	८ ,,

आगे बन्ध व उदयस्थानको आधार एवं सत्त्वस्थानोंको आधेय मानकर ९ गाथाओंमें कथन करते हैं—

तेवीसबंधगे इगिवीसणवुदयेसु आदिमचउक्के ।
बाणउदिणउदिअडचउबासीदी सत्तठाणाणि ॥७६०॥
तेणुवरिमपंचुदये ते चेवंसा विवज्ज बासीदिं ।
एवं पणछव्वीसे अडवीसे एक्कवीसुदये ॥७६१॥
बाणउदिणउदिसत्तं एवं पणुवीसयादिपंचुदये ।
पणसगवीसे णउदी विगुव्वणे अत्थि णाहारे ॥७६२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेण णभिगितीसुदये बाणउदिचउक्कमेक्कतीसुदये ।
णवरि ण इगिणउदिपदं णववीसिगिवीसबंधुदये ॥७६३॥
तेणवदिसत्तसत्तं एवं पणछक्कवीसठाणुदये ।
चउवीसे बाणउदी णउदिचउक्कं च सत्तपदं ॥७६४॥
सगवीसचउक्कुदये तेणउदीछक्कमेवमिगितीसे ।
तिगिणउदी ण हि तीसे इगिपणसगअट्ठणवयवीसुदये ॥७६५॥
तेणउदिछक्कसत्तं इगिपणवीसेसु अत्थि बासीदी ।
तेण छचउवीसुदये बाणउदी णउदिचउसत्तं ॥७६६॥
एवं खिगितीसे ण हि बासीदी एक्कतीसबंधेण ।
तीसुदये तेणउदी सत्तपदं एक्कमेव हवे ॥७६७॥
इगिबंधट्ठाणेण दु तीसट्ठाणोदये णिरुंधम्मि ।
पढमचऊसीदिचऊ सत्तट्ठाणाणि णामस्स ॥७६८॥कुलयं॥

अर्थ—२३ प्रकृतिक बन्धमें २१ प्रकृतिरूप स्थानको आदि करके ९ उदयस्थान हैं और इन ९ उदयस्थानोंमेंसे आदिके चारस्थानोंमें सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक पांच हैं तथा शेष २७ आदि प्रकृतिरूप पांच उदयस्थानोंमें ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानबिना उपर्युक्त शेष चार सत्त्वस्थान हैं। २५ व २६ प्रकृतिक बन्धमें उदय-सत्त्वस्थान २३ प्रकृतिक बन्धके समान जानना। २८ प्रकृतिक बन्धमें २१ प्रकृतिक उदयसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं तथा इसी बन्धमें २५ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके पांच उदयस्थानोंमें भी ९२-९० प्रकृतिक दो ही जानना, किन्तु विशेषता यह है कि २५ व २७ प्रकृतिक उदयस्थानमें जो ९० प्रकृतिक सत्त्व कहा है वह आहारककी अपेक्षा न होकर वैक्रियिककी अपेक्षासे है। इसी २८ प्रकृतिक बन्धमें ३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थानसहित ९२ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके चार सत्त्वस्थान हैं, किन्तु विशेषता इतनी है कि ३१ प्रकृतिका उदय होनेपर ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है। २९ प्रकृतिक बन्धमें २१ प्रकृतिका उदय होनेपर ९३ आदि प्रकृतिरूप सात सत्त्वस्थान, २४ प्रकृतिक उदयमें ९२ प्रकृतिक और ९० आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार पांच सत्त्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान, २५ व २६ प्रकृतिरूप उदय होनेपर भी ९३ आदि प्रकृतिरूप सात सत्त्वस्थान, २७ आदि प्रकृतिरूप चार उदयस्थानोंमें ९३ प्रकृतिक स्थानको आदि करके ६ सत्त्वस्थान तथैव ३१ प्रकृतिक उदयमें ९३ आदि प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थानोंमेंसे ९३ व ९१ प्रकृतिक स्थानबिना शेष चार सत्त्वस्थान हैं।

३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिरूप उदय होनेपर ९३ आदि प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थान हैं, किन्तु विशेषता यह है कि ८२ प्रकृतिकस्थानका सत्त्व २१ व २५ प्रकृतिक उदयमें ही पाया जाता है अन्य उदयस्थानोंमें नहीं तथा २४ व २६ प्रकृतिक उदय होनेपर ९२ प्रकृतिक और ९० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे पांच सत्त्वस्थान एवं ३० व ३१ प्रकृतिक उदय होनेपर सत्त्वस्थान २४ प्रकृतिक उदयस्थानमें कहे अनुसार ही जानना, किन्तु इतना विशेष है कि यहां ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है और ३० प्रकृतिक उदयमें ९३ प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान है। १ प्रकृतिक बन्धमें ३० प्रकृतिक उदय होनेपर ९३ आदि प्रकृतिक चार तथा ८० आदि प्रकृतिक चार ऐसे नामकर्मके ८ सत्त्वस्थान कहे गये हैं।

विशेषार्थ—गाथा ७६२ में २८ प्रकृतिक बन्धमें ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व और २५ व २७ प्रकृतिका उदय बतलाते हुए यह कहा गया है कि २५ व २७ प्रकृतिका उदय और ९० प्रकृतिका सत्त्व वैक्रियिकशरीरकी अपेक्षा जानना चाहिए आहारकशरीरकी अपेक्षासे नहीं, क्योंकि जिसके आहारकशरीर होगा उसके ९२ प्रकृतिका सत्त्व होगा, ९० प्रकृतिका सत्त्व सम्भव नहीं है। ९० प्रकृतिका सत्त्व तो आहारकशरीरके सत्त्व बिना होता है।

शङ्का—२५ व २७ प्रकृतिका उदय देव-नारकीके होता है अथवा आहारकशरीरवालेके हो सकता है, क्योंकि इनके संहननका उदय नहीं होता अथवा तीर्थङ्करकेवलीके कपाटसमुद्घातमें होता है। देव-नारकीके २८ प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, क्योंकि २८ प्रकृतिका बन्धस्थान देव-नरकगतिसहित है। आहारकशरीरवालेके २८ प्रकृतिका बन्ध तो सम्भव है, किन्तु ९० प्रकृतिका सत्त्व सम्भव नहीं है। तीर्थङ्करकेवलीके कपाटसमुद्घातमें न तो ९० प्रकृतिका होता और न नामकर्मका बन्ध होता है, अतः ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान सहित २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २५ व २७ प्रकृतिरूप उदयस्थान सम्भव नहीं है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान—उमास्वामि आचार्य विरचित तत्त्वार्थसूत्रकी दूसरी अध्यायमें **"औपपादिकं वैक्रियिकं"** इस सूत्र द्वारा यह अवश्य कहा गया है कि वैक्रियिकशरीर उपपादजन्मवालोंके अर्थात् देव-नारकियोंके होता है, किन्तु **"लब्धिप्रत्ययं च"** सूत्र द्वारा यह भी कहा गया है कि तप आदि लब्धिके कारण औदारिकशरीरियोंके भी वैक्रियिक-शरीर हो जाता है। इसीलिए **"तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्थ्यः"** इस सूत्र द्वारा यह कहा गया है कि एक जीवमें एक साथ चार शरीर हो सकते हैं। श्री वीर-सेनस्वामिने वर्गणाखण्ड सूत्र १३१ की टीकामें चार शरीरवाले जीवोंका कथन करते हुए कहा है—**"चत्तारि सरीराणि जेसिं ते चदु सरीरा। के ते? ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय सरीरेहिं ओरालिय-आहार-तेजा-कम्मइय सरीरेहिं वा वट्टमाणा।"** (ध० पु० १४ पृ० २३८) अर्थात् चार शरीर जिनके होते हैं वे चार शरीरवाले जीव हैं। वे कौन हैं? औदारिक-वैक्रियिक-तैजस और कार्माणशरीरके साथ विद्यमानजीव चार शरीरवाले होते हैं (आगे ध० पु० १४ पृ० ४०२ पर कहा है) **"ण चेदं विउव्वणसरीरं ओरालियं, विप्पडिसेहदो"** "यह विक्रियारूप शरीर भी औदारिक है ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विक्रियारूप शरीरके औदारिकहोनेका निषेध है।" इसी वैक्रियिकशरीर की उदीरणा व उदयकाल एकसमय कहा गया है—**"वेउव्विय सरीरणामाए जहण्णेण एग समओ। कुदो? तिरिक्ख-मणुस्सेसु एगसमयमुत्तरसरीरं विउव्विदूण विदियसमए मुदस्स तदुवलभादो"** (ध० पु० १५ पृ० ६४) अर्थात् वैक्रियिकशरीर नामकर्मका उदीरणाकाल जघन्यसे एक समय है, क्योंकि तिर्यञ्च या मनुष्योंके एकसमय उत्तर-शरीरकी विक्रियाकरके द्वितीयसमयमें मृत्युको प्राप्त हुए जीवके एकसमय काल पाया जाता है। इसप्रकार वैक्रियिकशरीरवाले तिर्यञ्च या मनुष्यके वैक्रियिकशरीरकी अपेक्षा २५ व २७ प्रकृतिके उदयकालमें ९० प्रकृतिका सत्त्व और २८ प्रकृतिका बन्ध सम्भव है। प्राकृत पंचसंग्रहकारका भी यही मत है—

पणुवीसाई पंच य बंधा वेउव्विए भणिदा।
संता पढमा चउरो उदया सत्तट्ठवीस उणतीसा।।४३७।। (प्रा. पं. सं. पृ. ५००)

वैक्रियिककाययोगियोंके २५ प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर पांच बन्धस्थान अर्थात् २५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका बन्ध, २७-२८ व २९ प्रकृतिक ये तीन उदय-स्थान तथा आदिके चार सत्त्व (९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक) स्थान होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैक्रियिक काययोगमें २८ प्रकृतिक बन्धस्थान, वैक्रियिककाययोगवाले मनुष्य या तिर्यंचोंके ही सम्भव है। जिन मनुष्य व तिर्यञ्चोंके वैक्रियिकशरीर होता है उन्हींके वैक्रियिक-काययोग हो सकता है।

अधिकरणरूप बन्ध-उदय और आधेयरूप सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

अधिकरण			आधेय	
बन्धस्थान	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्या विवरण
२३ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२प्रकृति.
२३ ,,	५	२७-२८-२९-३०व३१प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक
२५-२६ ,,	४	२१-२४-२५ व २६ ,,	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ ,,
२५-२६ ,,	५	२७-२८-२९-३० व ३१ ,,	४	९२-९०-८८ व ८४ ,,
२८ ,,	१	२१ प्रकृतिक	२	९२ व ९० प्रकृतिक
२८ ,,	५	२५-२६-२७-२८व२९प्रकृतिक (२५ व २७ प्रकृकिके उदय में ९० प्रकृतिक सत्त्व वैक्रियक शरीरकी अपेक्षा है आहारक-शरीरकी अपेक्षा नहीं।)	२	,, ,,
२८ ,,	१	३० प्रकृतिक	४	९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिक
२८ ,,	१	३१ ,,	३	९२-९० व ८८ ,,
२९ ,,	१	२१ ,,	७	९३-९२-९१-९० व ८८ ,,
२९ ,,	२	२५-२६ प्रकृतिक	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ ,,
२९ ,,	१	२४ ,,	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
२९ ,,	४	२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	६	९३-९२-९१-९० व ८८-८४
२९ ,,	१	३१ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5213

३० प्रकृतिक	२	२१ व २५ प्रकृतिक	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
३० ,,	२	२४ व २६		९२-९०-८८-८४-८२
३० ,,	३	२७-२८ व २९ प्रकृतिक	६	९३-९२-९१-९०-८८ व ८४
३० ,,	२	३० व ३१ ,,	४	९२-९०-८८ व ८४
३१ ,,	१	३० प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक
१ ,,	१	३० ,,	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

अथानन्तर नामकर्मके बन्ध-सत्त्वस्थानको आधार एवं उदयस्थानको आधेय मानकर ६ गाथाओंमें कथन करते हैं—

तेवीसबंधठाणे दुखणउदडचदुरसीदिसत्तपदे ।
इगिवीसादिणउदओ बासीदे एक्कवीसचऊ ॥७६९॥
एवं पणछव्वीसे अडवीसे बंधगे दुणउदंसे ।
इगिवीसादि णवुदया चउवीसट्ठाणपरिहीणा ॥७७०॥
इगिणउदीए तीसं उदओ णउदीए तिरियसणिण वा ।
अडसीदीए तीसदु णववीसे बंधगे तिणउदीए ॥७७१॥
इगिवीसादट्ठुदओ चउवीसूणो दुणउदिणउदितिये ।
इगिवीसणविगिणउदे णिरयं व छव्वीसतीसधिया ॥७७२॥
बासीदे इगिचउपणछव्वीसा तीसबंधतिगिणउदी ।
सुरमिव दुणउदिणउदी चउसुदओ ऊणतीसं वा ॥७७३॥
इगितीसबंधठाणे तेणउदे तीसमेव उदयपदं ।
इगिबंध तिणउदिचऊ सीदिचउक्केवि तीसुदओ ॥७७४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—२३ प्रकृतिक बन्धस्थानसहित ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २१ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके ९ उदयस्थान हैं, २३ प्रकृतिक ही बन्धसहित ८२ प्रकृतिक सत्त्वमें २१ आदि प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं ।।७६९।।

२५-२६ प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें उदयस्थान पूर्वोक्त ही जानना। २८ प्रकृतिरूप बन्धसहित ९२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थानोंमेंसे २४ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ८ स्थान हैं। २८ प्रकृतिक ही बन्धस्थान सहित ९१ प्रकृतिके सत्त्वमें ३० प्रकृतिक उदयस्थान, ९० प्रकृतिक सत्त्वमें सञ्ज्ञीतिर्यञ्चमें कहे हुए २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थान, ८८ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थान हैं ।।७७०-७१।।

२९ प्रकृतिरूप बन्धके रहते हुए ९३ प्रकृतिक सत्त्वमें २१ आदि आठ उदयस्थानोंमें २४ प्रकृतिकस्थान बिना शेष २१ आदि प्रकृतिरूप ७ उदयस्थान हैं, [किन्तु ३१ का भी उदयस्थान नहीं है अतः ७ उदयस्थान है (जैसा सन्दृष्टिमें लिखा है) ३१ प्रकृतिका उदय तिर्यञ्चोंमें है, किन्तु तिर्यञ्चोंमें ९३ का सत्त्व नहीं है। मनुष्योंमें सयोगीगुणस्थानमें ३१ प्रकृतिका उदय व ९३ प्रकृतिका सत्त्व है, किन्तु वहां बन्धका अभाव है] ९२ एवं ९० आदि प्रकृतिरूप तीन ऐसे चार सत्त्वस्थानोंमें २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थान हैं, ९१ प्रकृतिक सत्त्वमें नरकगतिवत् २१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक उदयस्थान, ८२ प्रकृतिक सत्त्व होनेपर २१, २४, २५ व २६ प्रकृतिके उदयस्थान हैं। ३० प्रकृतिका बन्ध तथा ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर देवगतिमें कहे हुए ५ उदयस्थान होते हैं तथा ३० प्रकृतिक बन्धके रहते हुए ९२ और ९० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे पांच सत्त्वस्थान होनेपर २९ प्रकृतिक बन्धस्थानवत् २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थान हैं, तथा ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें ही ८२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ प्रकृतिक बन्धस्थानवत् चार उदयस्थान हैं ।।७७२-७३।।

३१ प्रकृतिक बन्धस्थानके रहते हुए ९३ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ३० प्रकृतिरूप एक ही उदयस्थान है तथा १ प्रकृतिक बन्धस्थानके रहते हुए ९३ आदि प्रकृतिरूपं चार एवं ८० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे आठ सत्त्वस्थानोंमें ३० प्रकृतिक उदयस्थान है। आगे बन्धका अभाव है अतः दो स्थानोंको आधार व १ स्थानको आधेय मानकर कथन सम्भव नहीं है ।।७७४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकरणरूप बन्ध-सत्त्वस्थान और आधेयरूप उदयस्थानके त्रिसंयोगकी संदृष्टि—

अधिकरण			आधेय	
बन्धस्थान	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण
२३ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१
२३ ,,	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृति.
२५-२६ ,,	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
२५-२६ ,,	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ ,,
२८ ,,	१	९२ ,,	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
२८ ,,	१	९१ ,,	१	३० प्रकृतिक
२८ ,,	१	९० ,,	६	२१-२६-२८-२९ व ३०-३१
२८ ,,	१	८८ ,,	२	३०-३१ प्रकृतिक
२९ ,,	१	९३ ,,	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२९ ,,	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
२९ ,,	१	९१ प्रकृतिक	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२९ ,,	१	८२ ,,	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक
३० ,,	२	९३ व ९१ ,,	५	२१-२५-२७-२८ व २९ ,,
३० ,,	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३० प्रकृतिक	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक
३१ ,,	१	६३ ,,	१	३० प्रकृतिक
१ ,,	८	६३-६२-६१-६०-८०-७६-७८ व ७७	१	३० ,,

आगे उदय और सत्त्वस्थानको आधार तथा बन्धस्थानको आधेय मानकर ६ गाथाओंमें कथन करते हैं—

इगिवीसट्ठाणुदये तिगिणउदे णवयवीसदुगबंधे ।
तेण दुखणउदिसत्ते आदिमछक्कं हवे बंधो ॥७७५॥
एवमडसीदितिदए ण हि अडवीसं पुणोवि चउवीसे ।
दुखणउदडसीदितिए सत्ते पुव्वं व बंधपदं ॥७७६॥
पणवीसे तिगिणउदे एगुणतीसं दुगं दुणउदीए ।
आदिमछक्कं बंधो णउदिचउक्केवि अडवीसं ॥७७७॥
छव्वीसे तिगिणउदे उणतीसं बंध दुगखणउदीए ।
आदिमछक्कं एव्वं अडसीदितिए ण अडवीसं ॥७७८॥
सगवीसे तिगिणउदे णववीसदुबंधयं दुणउदीए ।
आदिमछणउदितिए एयं अडवीसयं णत्थि ॥७७९॥
अडवीसे तिगिणउदे उणतीसदु दुजुदणउदिणउदितिए ।
बंधो सगवीसं वा णउदीए अत्थि अडवीसं ॥७८०॥
अडवीसमिवुणतीसे तीसे तेणउदिसत्तगे बंधो ।
णववीसेक्कत्तीसं इगिणउदी अट्ठवीसदुगं ॥७८१॥
तेण दुणउदे णउदे अडसीदे बंधमादिमं छक्कं ।
चुलसीदेवि य एव्वं णवरि ण अडवीसबंधपदं ॥७८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसुदयं विगितीसे सजोग्गबाणउदिणउदितियसत्ते।
उवसंतचउक्कुदये सत्ते बंधस्स ण वियारो ॥७८३॥

अर्थ—२१ प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए ९३-९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ व ३० प्रकृतिरूप दो बन्धस्थान, ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व होनेपर आदिके ६ बन्धस्थान हैं, ८८ आदि प्रकृतिरूप तीन स्थानोंका सत्त्व होनेपर आदिके ६ बन्धस्थानोंमें से २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ५ स्थान हैं तथा २४ प्रकृतिक उदयके रहते हुए ९२ व ९० एवं ८८, ८४ व ८२ प्रकृतिरूप तीन ऐसे ५ सत्त्वस्थानोंमें भी उपर्युक्त ५ बन्धस्थान हैं ।।७७५-७६।।

२५ प्रकृतिक उदयसहित ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ व ३० प्रकृतिक दो बन्धस्थान, ९२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर आदिके ६ बन्धस्थान, ९० आदि (९०-८८-८४-८२) प्रकृतिरूप चारस्थानोंका सत्त्व होनेपर पूर्वोक्त आदिके ६ बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ५ बन्धस्थान हैं ।।७७७।।

(मनुष्यगतियुत) २६ प्रकृतिक स्थानका उदय रहते हुए ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर (देवगति व तीर्थङ्करयुत) २९ प्रकृतिरूप बन्धस्थान, ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २३ आदि प्रकृतिक छह बन्धस्थान, ८८ आदि प्रकृतिरूप तीन स्थानों का सत्त्व होनेपर आदिके छह बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष पांच बन्धस्थान हैं ।।७७८।।

२७ प्रकृतिक स्थानका उदय रहते हुए ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ आदि (२९ व ३०) प्रकृतिरूप दो बन्धस्थान, (मनुष्योंके आहारकसमुद्घातमें २७ प्रकृतिके उदयमें २९ प्रकृतिका बन्ध, देवतथा प्रथमनरकमें ३० का बन्ध है) ९२ प्रकृति का सत्त्व होनेपर आदिके छह बन्धस्थान, (आहारकसमुद्घातमें २७ प्रकृतिके उदयमें २८ प्रकृतिका बन्ध) ९० आदि प्रकृतिरूप तीन स्थानोंका सत्त्व होनेपर आदिके छह बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक स्थानबिना ५ बन्धस्थान हैं ।।७७९।।

२८ प्रकृतिरूप स्थानका उदय रहते हुए ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९-३० प्रकृतिके दो बन्धस्थान, ९२ प्रकृतिक और ९० आदि प्रकृतिरूप तीन ऐसे चार स्थानोंका सत्त्व होनेपर २७ प्रकृतिकउदयस्थानवत् ही यहां भी उदयस्थान जानना, किन्तु इतनी विशेपता है कि ९० प्रकृतिक सत्त्वमें २८ प्रकृतिक बन्धस्थान है ।।७८०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२६ प्रकृतिक उदय रहते हुए ९३-९१ व ९२-९० या ८८-८४ प्रकृतिक सत्त्व होनेपर बन्धस्थान २८ प्रकृतिक उदयस्थानवत् ही जानना तथा ३० प्रकृतिका उदय रहते हुए ९३ प्रकृतिक सत्त्वमें २६ व ३१ प्रकृतिक दो बन्धस्थान हैं, ९१ प्रकृतिके सत्त्वमें नरक जानेके सम्मुख तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले मनुष्यके २८ व २६ प्रकृतिका बन्ध होता है ।।७८१।।

३० प्रकृतिक उदय रहते हुए ९२-९० व ८८ प्रकृतिक सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान, ८४ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर पूर्वोक्त छह बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक बन्धस्थानबिना ५ बन्धस्थान हैं ।।७८२।।

३१ प्रकृतिक उदयके रहते हुए अपने योग्य ९२-९०-८८ या ८४ प्रकृतिक सत्त्व होनेपर ३० प्रकृतिक उदयस्थानके समान आदिके छह बन्धस्थान तथा इन छहमें से २८ प्रकृतिक स्थानबिना ५ बन्धस्थान हैं । उपशान्तकषायादि चारगुणस्थानोंमें उदय व सत्त्वस्थान तो हैं, किन्तु बन्धस्थान नहीं है सो यहां उपशान्तकषायगुणस्थानमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३ आदि प्रकृतिरूप चारस्थानोंका है, क्षीणकषायगुणस्थानमें उदय ३० प्रकृतिका और सत्त्व ८० आदि प्रकृतिरूप चारस्थानोंका है, सयोगीगुणस्थान में उदय ३० प्रकृतिक एवं सत्त्व ८० आदि प्रकृतिरूप चारस्थानका, अयोगीगुणस्थानमें उदय ९ या ८ प्रकृतिका और सत्त्व ८० आदि प्रकृतिरूप चारस्थानोंका अथवा १० व ९ प्रकृतिका है ।

उदय-सत्त्वको अधिकरणरूप मानकर आधेयरूप बन्धस्थानके त्रिसंयोगसम्बन्धी सन्दृष्टि—

अधिकरण			आधेय	
उदयस्थान	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
२१ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२१ ,,	२	९२ व ९० ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० ,,
२१ ,,	३	८८-८४ व ८२ ,,	५	२३-२५-२६-२९ व ३० ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२५ ,,	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२५ ,,	१	९२ ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२५ ,,	४	९०-८८-८४व८२प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२६ ,,	२	९३ व ९१ ,,	१	२९ प्रकृतिक
२६ ,,	२	९२ व ९० ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२६ ,,	३	८८-८४ व ८२ ,,	५	२३-२५-२६-२९व३० प्रकृति.
२७ ,,	२	९३ व ९१ ,,	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२७ ,,	१	९२ ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० ,,
२७ ,,	३	९०-८८ व ८४ ,,	५	२३-२५-२६-२९ व ३० ,,
२८ ,,	२	९३ व ९१ ,,	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२८ ,,	१	९२ ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० ,,
२८ ,,	१	९० ,,	६	,, ,,
२८ ,,	३	८८ व ८४ ,,	५	२३-२५-२६-२९ व ३० ,,
२९ ,,	२	९३ व ९१ ,,	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२९ ,,	२	९२ व ९० ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० ,,
२९ ,,	२	८८ व ८४ ,,	५	२३-२५-२६-२९ व ३० ,,
३० ,,	१	९३ ,,	२	२९ व ३१ प्रकृतिक
३० ,,	१	९१ ,,	२	२८ व २९ प्रकृतिक इनमेंसे २८ का स्थान नरकगमनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

				सम्मुख तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले मनुष्यके पाया जाता है ।
३० प्रकृतिक	३	९२-९० व ८८ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
३० ,,	१	८४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९व३० प्रकृति.
३१ ,,	३	९२-९० व ८८ ,,	६	२३-२५-२६-२८-२९व३० ,,
३१ ,,	१	८४ ,,	५	२३-२५-२६-२९ व ३० ,,
३० ,,	४	९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक	०	० उपशान्तकषायगुणस्थानमें
३० ,	४	८०-७९-७८ व ७७प्रकृति	०	० क्षीण ,, ,,
३०-३१ ,,	४	,, ,,	०	० सयोगीगुणस्थानमें
९-८ ,,	६	८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक	०	० अयोगी ,,

णामस्स य बंधादिसु दुतिसंजोगा परूविदा एवं ।
सुदवणवसंतगुणगणसायरचंदेण सम्मदिणा ॥७८४॥

अर्थ---जो जैनसिद्धान्तरूपी वनको प्रफुल्लित करनेमें वसन्तऋतुके समान तथा गुणोंके समूहरूप सागरको वृद्धिगत करनेके लिए चन्द्रमाके समान हैं ऐसे सम्यग्ज्ञानधारी श्री वर्धमानस्वामीने नामकर्मके बन्ध-उदय एवं सत्त्वमें द्विसंयोगी तथा त्रिसंयोगी भङ्ग (भेद) कहे हैं ।

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी "सिद्धान्तज्ञानदीपिका" नामा हिन्दीटीकामें 'स्थानसमुत्कीर्तन' नामक चतुर्थ अधिकार पूर्ण हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ बन्धप्रत्यय अधिकार ।

आगे प्रत्यय अर्थात् कर्मबन्धके कारणभूत अधिकारको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हुए निर्विघ्नपरिसमाप्तिके लिए आचार्य अपने इष्टगुरुको नमस्कार करते हैं—

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥

अर्थ—मैं (नेमिचन्द्राचार्य) अभयनन्दि मुनीश्वरको, शास्त्रसमुद्रके पारगामी इन्द्रनन्दि गुरुको तथा उत्कृष्ट वीरनन्दिस्वामिको जो कि मेरे गुरु हैं, उनको नमस्कार करके कर्मप्रकृतियोंके प्रत्यय अर्थात् बन्धकारणोंको कहूंगा ।

अब प्रत्ययके भेदोंका कथन करते हैं—

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
पण बारस पणुवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥७८६॥[1]

अर्थ—मिथ्यात्व-अविरति-कषाय और योग, ये चार मूल आस्रव हैं तथा इनके उत्तरभेद क्रमसे ५-१२-२५ और १५ जानने । इसप्रकार आस्रवोंके उत्तरभेद ५७ हैं ।

विशेषार्थ—"प्रत्ययशब्दोऽनेकार्थः । क्वचिज्ज्ञाने वर्तते, यथा अर्थाभिधान प्रत्यया इति । क्वचिच्छपथे वर्तते, यथा परद्रव्यहरणादिषु सत्युपालम्भे प्रत्ययोऽनेन कृत इति । क्वचिद्धेतौ वर्तते यथा अविद्याप्रत्ययाः संस्कारा इतिः ।" प्रत्ययशब्दके अनेक अर्थ हैं । कहीं पर ज्ञानके अर्थमें वर्तता है जैसे अर्थ, शब्द, प्रत्यय (ज्ञान) । कहीं पर शपथके अर्थमें वर्तता है । जैसे—परद्रव्यके चुराये जानेके प्रसंगमें दूसरोंके द्वारा उलाहना मिलने पर उसके द्वारा शपथ खाई गई । कहींपर हेतुके अर्थमें वर्तता है, जैसे—अविद्या के हेतु संस्कार हैं । यहांपर प्रत्यय शब्दका हेतुके अर्थमें प्रयोग हुआ है। (रा.वा.१/२१)

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० १०५ गाथा ७७ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"पच्चओ कारणं णिमित्तमिच्चणत्थंतरं" (ध० पु० १२ पृ० २७६) प्रत्ययका अर्थ आस्रव नहीं हो सकता, क्योंकि आस्रवका लक्षण भिन्न है जो कि इसप्रकार है––"पुण्यपाप-लक्षणस्य कर्मण आगमनद्वारमास्रव इत्युच्यते । आस्रव इवास्रवः । क उपमार्थः ? यथा महोदधेः सलिलमापगामुखैरहरहरापूर्यते तथा मिथ्यादर्शनादिद्वारानुप्रविष्टैः कर्मभिर-निशमात्मा समापूर्यत इति मिथ्यादर्शनादिद्वारमास्रवः ।" (त० रा० वा० १/१४/१६) अर्थात् पुण्य-पापरूप कर्मोंके आगमनके द्वारको आस्रव कहते हैं। जैसे नदियोंके द्वारा समुद्र प्रतिदिन जलसे भरा जाता है वैसे ही मिथ्यादर्शनादि स्रोतोंसे आत्मामें कर्म आते हैं। जैसे आस्रवके द्रव्यास्रव-भावास्रव तथा साम्परायिक ६ व ईर्यापथ आस्रव, ऐसे भेद हैं वैसे प्रत्ययके भेद नहीं हैं। वह प्रत्यय मिथ्यात्वादिके भेदसे चारप्रकारका है। इसके उत्तरभेद क्रमसे मिथ्यात्वके एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञानरूप पांच भेद हैं; अविरतिके ५ इन्द्रिय व मनको वश नहीं करना तथा पंचस्थावर व त्रसकायिक जीवोंकी रक्षा नहीं करना (दया नहीं पालना) ऐसे ६+६=१२ भेद; कषायके अनन्तानु-बन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलनरूप क्रोध-मान-माया व लोभ ये १६ कषाय तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय व जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और पुरुष-वेद ये ९ नोकषाय इसप्रकार २५ भेद; योगके ४ मनोयोग (सत्य-असत्य-उभय-अनुभय-रूप), ४ वचनयोग (सत्य-असत्य-उभय-अनुभयरूप), ७ काययोग (औदारिक-औदारिक-मिश्र, वैक्रियक-वैक्रियकमिश्र, आहारक-आहारकमिश्र और कार्मणरूप) ऐसे ५+१२+२५+१५=५७ भेद प्रत्ययके जानना।

अथानन्तर मूलप्रत्ययोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

चदुपच्चइगो बंधो पढमे णंतरतिगे तिपच्चइगो।
मिस्सगबिदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥७८७॥
उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं ॥७८८॥[1]

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें चारों प्रत्ययोंसे बन्ध होता है अनन्तर सासादन-मिश्र व असंयत इन तीनगुणस्थानोंमें मिथ्यात्वबिना तीनप्रत्ययोंसे बन्ध होता है, (देश

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० १०५ गाथा ७८-७९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् किंचित् असंयम जहां है उसको दिशति-त्यागे ऐसे) देशसंयतगुणस्थानमें अढाई प्रत्यय हैं। (यहां विशेषता यह है कि अविरतिप्रत्यय विरतिसे मिश्रित हुआ है शेष दो प्रत्यय पूर्ण), आगें प्रमत्तसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त पांचगुणस्थानोंमें योग व कषाय-रूप दो ही प्रत्यय हैं तथा उपशान्तकषायसे सयोगीगुणस्थानपर्यन्त एक योगप्रत्यय ही है। इसप्रकार सामान्यसे आठकर्मोंके प्रत्यय गुणस्थानोंमें जानना चाहिए।

गुणस्थानकी अपेक्षा चार मूलप्रत्ययसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	प्रत्यय संख्या	प्रत्ययोंका विशेष स्पष्टीकरण
मिथ्यात्व	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग।
सासादन	३	अविरति, कषाय और योग।
मिश्र	३	,, ,, ,,
असंयत	३	,, ,, ,,
देशसंयत	२½	½ ,, ,, (क्योंकि यहां अविरति-विरति का मिश्रितरूप है)
प्रमत्त	२	कषाय और योग
अप्रमत्त	२	,, ,,
अपूर्वकरण	२	,, ,,
अनिवृत्तिकरण	२	,, ,,
सूक्ष्मसाम्पराय	२	,, ,,
उपशांतकषाय	१	योग
क्षीणकषाय	१	,,
सयोगकेवली	१	,,
अयोगकेवली	०	०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उत्तरप्रत्ययोंको गुणस्थानमें कहते हैं—

पणवण्णा पण्णासा तिदाल छादाल सत्ततीसा य ।
चदुवीसा बावीसा बावीसमपुव्वकरणोत्ति ॥७८९॥
थूले सोलसपहुदी एगूणं जाव होदि दसठाणं ।
सुहुमादिसु दस णवयं णवयं जोगिम्मि सत्तेव ॥७९०॥[1]

अर्थ—मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें क्रमसे ५५-५०-४३-४६-३७-२४-२२ व २२ आगे अनिवृत्तिकरणमें १६-१५-१४-१३-१२-११ व १०, सूक्ष्मसाम्परायमें १०, उपशांत-कषायमें ९, क्षीणकषायगुणस्थानमें ९ और सयोगकेवलीके ७ प्रत्यय हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोग नहीं होनेसे ५५, सासादनगुणस्थानमें ५ मिथ्यात्व भी कम हो जानेसे (५५–५) ५०; मिश्रगुण-स्थानमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग और अनन्तानुबन्धीचतुष्क का अभाव होनेसे (५०–७) ४३; असंयतगुणस्थानमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग ये तीन योग मिलानेसे (४३+३) ४६ एवं औदारिकमिश्र, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र, कार्मण, अप्रत्याख्यानकषायचार तथा त्रसहिंसारूप अविरति इन ९ बिना (४६–९) ३७ प्रत्यय देशसंयत गुणस्थानमें हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें ११ अविरति और प्रत्याख्यानकषाय ४ इन १५ बिना (३७-१५) २२ तथा इनमें आहारकद्विक मिलनेसे २४ प्रत्यय; अप्रमत्तगुणस्थानमें और अपूर्वकरणगुणस्थानमें आहारकद्विकका अभाव है अतः (२४–२) २२ प्रत्यय; अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें हास्यादि ६ नोकषाय कम होनेसे (२२–६) १६, नपुंसकवेदको कम करनेपर (१६–१) १५, स्त्रीवेद भी नहीं होनेपर (१५–१) १४, पुरुषवेदका अभाव हो जानेपर (१४–१) १३, सञ्ज्वलनक्रोध कम हो जानेसे (१३–१) १२, सञ्ज्वलनमान कम होनेसे (१२–१) ११ तथा सञ्ज्वलनमाया कम करनेपर (११–१) १० प्रत्यय हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें भी १० ही प्रत्यय हैं, क्योंकि यहां अभी सूक्ष्मलोभ विद्यमान है, उपशान्त व क्षीणकषायगुणस्थानोंमें सूक्ष्म-लोभका भी अभाव हो गया अतः (१०–१) ९ प्रत्यय एवं सयोगकेवलीके सत्य व अनुभयमन, सत्य व अनुभयवचन, औदारिक-औदारिकमिश्र तथा कामणकाययोग ये ७ प्रत्यय हैं, अयोगकेवलीके प्रत्ययोंका अभाव है।

१. प्रा० पं० स० पृ० १०६ गाथा ८०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उपर्युक्त प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति तथा अनुदयका कथन करनेके लिए अन्य ग्रन्थकी ७ गाथाएं यहां उद्धृत करते हुए सर्वप्रथम व्युच्छित्तिका कथन किया जाता है—

पण चदु सुण्णं णवयं पण्णारस दोण्णि सुण्ण छक्कं च।
एक्केक्कं दस जाव य एक्कं सुण्णं च चारि सग सुण्णं ॥१॥
दोण्णि य सत्त य चोद्दसणुदयेवि एयार वीस तेतीसं ।
पणतीस दुसिगिदालं सत्तेत्तालट्ठदाल दुसु पण्णं ॥२॥

अर्थ— मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे ५-चार-शून्य-९-१५-२-शून्य और ६ तथा आगे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें १६ से १० प्रत्यय स्थानतक क्रमसे १-१ प्रत्ययकी व्युच्छित्ति एव सूक्ष्मसाम्परायसे सयोगीगुणस्थानतक १-शून्य-४ व शून्य-रूप प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति होती है।

मिच्छे पणमिच्छत्तं पढमकसायं तु सासणे मिस्से ।
सुण्णं अविरदसम्मे बिदियकसायं विगुव्वदुग कम्मं ॥३॥
ओरालमिस्स तसवह णवयं देसम्मि अविरदेक्कारा ।
तदियकसायं पण्णार पमत्तविरदम्मि हारदुगछेदो ॥४॥
सुण्णं पमादरहिदेऽपुव्वे छण्णोकसायवोच्छेदो ।
अणियट्टिम्मि य कमसो एक्केक्कं वेदतियकसायतियं ॥५॥
सुहुमे सुहुमो लोहो सुण्णं उवसंतगेसु खीणेसु ।
अलीयुभयवयणमण चउ जोगिम्मि य सुणह वोच्छामि ॥६॥
सच्चाणुभयं वयणं मणं च ओरालकायजोगं च ।
ओरालमिस्स कम्मं उवयारेणेव सब्भावो ॥७॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें ५ मिथ्यात्वरूप प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति होती है, सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्करूप चार प्रत्ययोंकी, मिश्रगुणस्थानमें प्रत्ययव्युच्छित्तिका अभाव है, असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषायचतुष्ककी तथा वैक्रियिककाय-वैक्रियिकमिश्रकाय, औदारिककाय-औदारिकमिश्रकाय व कार्मणकाययोग,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रसहिंसा इन ६ प्रत्ययोंकी, देशसंयतगुणस्थानमें ११ अविरति व प्रत्याख्यानावरणकषाय चार इसप्रकार १५ प्रत्ययोंकी, प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें आहारकद्विकरूप प्रत्ययकी, अप्रमत्त-गुणस्थानमें शून्य, अपूर्वकरणमें हास्यादि ६ नोकषाय, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्रमसे एक-एक करके तीनवेद और तीन सञ्ज्वलनकषायोंकी (बादर लोभ), सूक्ष्मसाम्पराय-गुणस्थानमें सूक्ष्मलोभकी, उपशान्तकषायमें शून्य, क्षीणकषायगुणस्थानमें असत्य व उभय-वचनयोग और दो मनोयोग ऐसे चार प्रत्ययोंकी तथा सयोगकेवलीके सत्य व अनुभय वचन-योग, सत्य व अनुभय मनोयोग, औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग इन सात प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति होती है।

गुणस्थानकी अपेक्षा ५७ उत्तरप्रत्ययोंके उदय-अनुदय-व्युच्छित्तिसम्बन्धी संदृष्टि—

गुणस्थान	उदयागत प्रत्यय-संख्या	अनुदयरूप प्रत्यय-संख्या	अनुदयरूप प्रत्यय संख्याका विशेष विवरण	व्युच्छित्ति रूप प्रत्यय संख्या	व्युच्छित्तिरूप प्रत्ययसंख्या का विवरण
मिथ्यात्व	५५	२	आहारक-आहा. मिश्रकाययोग	५	५ (मिथ्यात्व)
सासादन	५०	७	उपर्युक्त २ योग एवं ५ मिथ्यात्व	४	४ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय)
मिश्र	४३	१४	उपर्युक्त ७+४ अनंतानुबन्धी कषाय+औदा. मिश्र+वैक्रि मि.+कार्मणकाययोग	०	
असंयत	४६	११	पूर्वोक्त ७+४ अनन्तानुबंधी-कषाय	९	४ अप्रत्याख्यानकषाय+वैक्रियिक+वैक्रि. मिश्र+औदा.+औदा. मिश्र+कार्मण+त्रसहिंसा अविरति
देशसंयत	३७	२०	उपर्युक्त ११+४ अप्रत्याख्यान कषाय+औदा. मिश्र+वैक्रि. काय+वैक्रि. मिश्र+कार्मण+त्रसहिंसा अविरति	१५	११ अविरति+४ प्रत्याख्यान-कषाय
प्रमत्त	२४	३३	उपर्युक्त २०+११ अविरति+४ प्रत्याख्यान-आहारक एवं आहारक मिश्रकाय	२	आहारककाय+आहारक-मिश्रकाययोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रमत्त	२२	३५	उपर्युक्त ३३+आहारक+ आहारकमिश्र	०	
अपूर्वकरण	२२	३५	,, ,,	६	हास्यादि नोकषाय।
अनिवृत्तिकरण भाग १	१६	४१	उपर्युक्त ३५+६ हास्यादि	१	१ (नपुंसकवेद)
,, २रा भाग	१५	४२	,, ४१+१ नपुंसकवेद	१	१ स्त्रीवेद
,, ३रा ,,	१४	४३	,, ४२+१ स्त्रीवेद	१	१ पुरुषवेद
,, ४था ,,	१३	४४	,, ४३+१ पुरुषवेद	१	संज्वलनक्रोध
,, ५वां ,,	१२	४५	,, ४४+१ संज्व.क्रोध	१	,, मान
,, ६ठा ,,	११	४६	,, ४५+१ ,, मान	१	,, माया
,, ७वां ,,	१०	४७	,, ४६+१ ,, माया	१	स्थूललोभ (किन्तु सूक्ष्मलोभ अभी शेष है)
सूक्ष्मसाम्पराय	१०	४७	उपर्युक्त	१	सूक्ष्मलोभकी
उपशांतकषाय	९	४८	उपर्युक्त ४७+सूक्ष्मलोभ	०	
क्षीणकषाय	९	४८	,, ,,	४	२ (सत्य व उभय मनोयोग)+ २ (सत्य व उभय वचनयोग)
सयोगकेवली	७	५०	उपर्युक्त ४८+४ सत्य व उभय मनोयोग व वचनयोग= ५२ ५२-२ औदारिकमिश्र व कार्मण	७	७ (सत्य व अनुभयरूप २ मनोयोग+सत्य व अनुभयरूप २ वचनयोग+औदारिक+ औदारिकमिश्र+कार्मण-काययोग

यहां प्रकरणप्राप्त चतुर्दशमार्गणाओंमें बन्धप्रत्ययोंके उत्तरभेदोंका प्राकृतपंच-संग्रहके 'शतक' अधिकारसे १७ गाथाएं उद्धृत करके निरूपण करते हैं—

सर्वप्रथम गतिमार्गणामें बन्धप्रत्ययका कथन करते हैं—

ओरालिय-आहारदुगूणा हेऊ हवंति सुर-णिरए।
आहारय-वेउव्वदुगूणा सव्वे वि तिरिएसु ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेउव्वजुयलहीणा मणुए पणवण्ण पच्चया होंति ।
गइचउरएसु एवं सेसासु वि ते मुणेदव्वा ।। २ ।।

अर्थ—नरकगतिमें औदारिकद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छहबिना शेष (५७–६) ५१ बन्ध प्रत्यय; देवगतिमें उपर्युक्त छहमें से स्त्री व पुरुषवेद को कम करके और नंपुसकवेद मिलानेपर इन पांचबिना (५७–५) ५२ बन्धप्रत्यय; तिर्यञ्चगतिमें वैक्रयिकद्विक और आहारकद्विकबिना शेष सभी (अर्थात् ५७–४) ५३ बन्धप्रत्यय तथा मनुष्यगतिमें वैक्रियिकद्विकबिना (५७–२) ५५ प्रत्यय होते हैं।

इन्द्रियमार्गणा व कायमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं—

मिच्छत्ताइचउट्ठय बारह-जोगूणिगिंदिए मोत्तुं ।
कम्मोरालदुअं खलु व्यणंतजुआ दु ते वियले ।।३।।
तस पंचक्खे सव्वे थावरकाए इगिंदिए जेम ।

अर्थ—इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यात्वादि चार मूलप्रत्ययोंके ५७ भेदोंमेंसे औदारिकद्विक (औदारिक-औदारिकमिश्र) एव कार्मणकाययोगबिना शेष १२ योगोंको और (उपलक्षणसे ग्रहण किये गए) रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र व मनसम्बन्धी अविरति तथा स्त्री-पुरुषवेद कमकरके [५७–१९ (१२+५+२)=३८] बन्धप्रत्यय एकेन्द्रियोंमें होते हैं। द्वीन्द्रियोंमें रसनेन्द्रिय अविरति व अनुभयवचनयोगको इन ३८ प्रत्ययोंमें मिलानेपर ४० प्रत्यय होते हैं, त्रीन्द्रियजीवोंमें घ्राणेन्द्रियसम्बन्धी अविरतिको मिलानेसे ४१ प्रत्यय तथा चतुरिन्द्रियजीवोंमें चक्षुरिन्द्रियकी अविरति मिलानेपर ४२ प्रत्यय हैं, पञ्चेन्द्रिय और त्रसजीवोंमें सर्व (५७) प्रत्यय एवं स्थावरकायिकजीवोंमें एकेन्द्रियवत् ३८ बन्धप्रत्यय हैं।

विशेषार्थ—शङ्का—एकेन्द्रियजीव त्रसहिंसा कैसे कर सकते हैं ?

समाधान—मनुष्योंकी हिंसा करनेवाले वृक्ष तथा मच्छर आदिकी हिंसा करनेवाले पुष्प पाए जाते हैं। अतः एकेन्द्रियजीवोंके द्वारा त्रसहिंसा संभव है।

योग-वेद और कषायमार्गणामें बन्धप्रत्ययोंका कथन करते हैं—

चोद्दस जोग विहीणा तेरस जोएसु ते णियं मोत्तुं ।।४।।
संजलण णोकसाया संढित्थी वज्ज सत्त णिय जोगा ।
आहारदुगे हेदू पुरिसे सव्वे वि णादव्वा ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्थि णउंसयवेदे आहारदुगूणया होंति ।
कोहाइकसाएसुं कोहाइ इयर-दुबालस-विहीणा ॥६॥

अर्थ—आहारक व आहारकमिश्रकाययोगको छोड़कर शेष १३ योगोंमें निज-निज योगके बिना शेष १४ योगोंसे रहित (५७–१४) ४३ बन्धप्रत्यय होते हैं [मिथ्यात्व ५, अविरति १२, कषाय २५ और १ स्वकीय योग ये ४३]। आहारक-आहारकमिश्र-काययोगमें चारों सञ्ज्वलनकषाय, नपुंसक व स्त्रीवेद बिना ७ नोकषाय एवं स्वकीय-योग (४+७+१) ऐसे १२ प्रत्यय होते हैं। पुरुषवेदीजावोंमें सभी (५७), स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोगबिना शेष (५७–२) ५५ प्रत्यय होते हैं। विवक्षित क्रोधादिकषायोंमें अपनी चार कषायके अतिरिक्त अन्य १२ कषायोंको कम करनेपर शेष (५७–१२) ४५ प्रत्यय होते हैं।

अब ज्ञानामार्गणामें बन्ध प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

मदि सुअअण्णाणेसु आहारदुगूणया मुणेदव्वा ।
मिस्सतियाहारदुअं वज्जित्ता सेसया दु वेभंगे ॥७॥
मदि-सुअ-ओहिदुगेसुं अणचदु-मिच्छत्तपंचहि विहीणा ।
हस्सादि छक्क पुरिसो संजलण मण-वचि चउर उरालं ॥८॥
मणपज्जे केवलदुवे मण-वचि पढमंत कम्म उरालदुगं ।

अर्थ—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोगके बिना शेष (५७–२) ५५ प्रत्यय; विभङ्गज्ञानियोंमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र व कार्मणकाययोगबिना शेष (५५–३) ५२ प्रत्यय; मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी व अवधिदर्शनी जीवोंमें अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क और पांच मिथ्यात्व इन ९ बिना (५७–९) ४८ प्रत्यय; मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें हास्यादि ६ नोकषाय, पुरुषवेद, संज्वलन-कषाय ४, मनोयोग ४, वचनयोग ४ और औदारिककाययोग (६+१+४+४+४+१) ये २० बन्धप्रत्यय हैं तथा केवलज्ञानी व केवलदर्शनी जीवोंमें आदि व अन्तिम मनोयोग और वचनयोग (सत्य-अनुभय मन व वचनयोग), औदारिक-औदारिकमिश्र व कार्मण-काययोग इसप्रकार (२+२+३) ७ योगरूप बन्धप्रत्यय हैं।

आगे संयममार्गणासम्बन्धी बन्धप्रत्यय कहते हैं—

संजलण णोकसाया मण-वचि ओराल आहारदुगं ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामाइय छेएसुं आहारदुगूणया दु परिहारे ।
मण-वचि-अट्ठोरालं सुहुमे संजलण लोहंते ॥१०॥

कम्मोरालदुगाइं मणवचि चउरा य होंति जहखाए ।
असंजम्मि सव्वे आहारदुगूणया णेया ॥११॥

अणमिच्छ बिदिय तसवह वेउव्वाहार जुयलाइं ।
ओराल मिस्सकम्मा तेहिं विहीणा दु होंति देसम्मि ॥१२॥

अर्थ—सामायिक-छेदोपस्थापना संयमीजीवोंमें चार सञ्ज्वलनकषाय, ९ नोकषाय, ४ मनोयोग, ४ वचनयोग औदारिककाययोग, आहारक व आहारकमिश्रकाययोग ये (४+९+४+४+३) २४ बन्धप्रत्यय हैं। आहारक-आहारकमिश्रकाययोगबिना शेष (२४-२) २२ प्रत्यय परिहारविशुद्धिसंयमीके होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयममें मनोयोग ४, वचनयोग ४, सञ्ज्वलनसूक्ष्मलोभ, औदारिककाययोग (४+४+१+१) ये १० बन्धप्रत्यय हैं; यथाख्यातसंयममें मनोयोग ४, वचनयोग ४, औदारिक-औदारिक-मिश्र व कार्मणकाययोग (४+४+३) ये ११ बन्धप्रत्यय होते हैं। असंयमी जीवोंमें आहारक व आहारकमिश्रकाययोगबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय होते हैं; देशसयमीजीवोंमें (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिथ्यात्व ५, त्रस अविरति, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र, आहारक व आहारकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग, अप्रत्याख्यानकषाय ४ इन) २० के बिना शेष (५७-२०) ३७ बन्धप्रत्यय हैं।

अब लेश्या-भव्य एवं दर्शनमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं—

तेज-तिय चक्खुजुगले सव्वे हेऊ हवंति भव्वे य ।
किण्हदितियाऽभव्वे आहारदुगूणया णेया ॥१३॥

अर्थ—तेज त्रिक (पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्यामें सभी (५७) प्रत्यय हैं, कृष्ण आदि तीन अशुभलेश्या (कृष्ण-नील-कपोत) में आहारक-आहारकमिश्रकाययोगबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय हैं। चक्षु व अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें भी सभी (५७) प्रत्यय हैं, अवधिदर्शन व केवलदर्शनका कथन ज्ञानमार्गणामें क्रमसे अवधिज्ञान व केवलज्ञानके साथ कर चुके हैं। भव्यजीवोंमें सभी (५७) प्रत्यय, अभव्यजीवोंके आहारक-आहारकमिश्र-बिना (५७-२) ५५ प्रत्यय हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे सम्यक्त्वमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं—

अणमिच्छाहारदुगूणा सव्वे उवसमे णेया ।
आहारजुगल जुत्ता वेदय खइयम्मि ते होंति ।।१४।।
मिच्छाहारदुगूणा साए मिच्छम्मि आहारदुगूणा ।
अण-मिच्छ-मिस्से जोगाहारदुगूणा हवंति मिस्सम्मि ।।१५।।

अर्थ—औपशमिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिथ्यात्व ५, आहारक-आहारकमिश्रकाययोग इन (५+४+२) ११ के बिना शेष (५७−११) ४६ प्रत्यय हैं, वेदकसम्यग्दृष्टिके और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके आहारकद्विक (आहारक-आहारक-मिश्रकाय) योग होता है अतः इन दोनोंमें पूर्वोक्त ४६ में दो मिलानेसे (४६+२) ४८ प्रत्यय होते हैं। सासादनजीवोंमें मिथ्यात्व ५ और आहारक-आहारकमिश्रयोगबिना (५७−७) ५० बन्धप्रत्यय होते हैं, मिथ्यादृष्टिजीवोंमें आहारक-आहारकमिश्रयोगबिना (५७−२) ५५ प्रत्यय; सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिथ्यात्व ५, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण, आहारक-आहारकमिश्रकाययोग इन १४ बिना (५७−१४) ४३ प्रत्यय होते हैं।

आगे सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्धप्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

मिच्छादिचउक्केयार जोगूणा असण्णिए मोत्तुं ।
भासंतोरालदुअं कम्मं सण्णिम्मि सव्वे वि ।।१६।।

अर्थ—असञ्ज्ञीजीवोंमें चार मूलप्रत्ययके ५७ भेदोंमें से ११ योग (मनोयोग ४, ३ वचनयोग, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारक-आहारकमिश्रकाययोग तथा (उपलक्षणसे ग्रहणकर) मन अविरतिको कम करनेपर (५७−१२) ४५ बन्धप्रत्यय होते हैं। सञ्ज्ञीजीवोंके सभी (५७) प्रत्यय हैं।

आगे आहारमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं—

आहारे कम्मूणा इयरे कम्मूण जोय रहिया ते ।
एवं तु मग्गणासुं उत्तरहेदू जिणेहिं णिद्दिट्ठा ।।१७।।

अर्थ—आहारकजीवोंमें कार्मणकाययोगबिना शेष (५७−१) ५६ बन्धप्रत्यय, अनाहारकजीवोंमें कार्मणकाययोगके बिना शेष १४ योगोंको कम करनेपर (५७−१४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३ बन्धप्रत्यय होते हैं। इसप्रकार श्रीजिनेन्द्रभगवान द्वारा मार्गणाओंमें उत्तरप्रत्ययोंका निर्देश किया गया है।[1]

अथानन्तर प्रत्ययोंको विशेषतासे कहनेके लिए स्वयं नेमिचन्द्र आचार्य इस अधिकारके गाथासूत्र कहते हैं—

अवरादीणं ठाणं ठाणपयारा पयारकूडा य।
कूडुच्चारणभंगा पंचविहा होंति इगिसमये।।७६१।।

अर्थ—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टस्थान, स्थानोंके प्रकार, कूटप्रकार, कूटोच्चारण और भङ्ग इसप्रकार एक समयमें प्रत्ययोंके पांचप्रकार होते हैं।

आगे गुणस्थानोंमें प्रत्ययस्थानोंको कहते हैं—

दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हं पि।
अट्ठ य चोद्दस पणयं सत्त तिये दुति दुगेगमेगमदो।।७६२।।[2]

अर्थ—एक जीवके एककालमें होनेवाले प्रत्ययोंकी संख्याको स्थान कहते हैं ये स्थान मिथ्यादृष्टिआदि गुणस्थानोंमें क्रमके इसप्रकार हैं—मिथ्यादृष्टिके जघन्यस्थान १० प्रत्ययका, मध्यमस्थान एक-एक प्रत्यय अधिक करके १८ प्रत्ययरूप उत्कृष्टके बीचके स्थान तथा १८ प्रत्ययका उत्कृष्टस्थान है। अर्थात् मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक जीवके एक ही समयमें ५७ प्रत्ययोंमेंसे जघन्यस्थानतो १० प्रत्ययरूप, मध्यमस्थान ११-१२-१३-१४-१५-१६ या १७ प्रत्ययोंका तथा उत्कृष्टस्थान १८ प्रत्ययका है। सासादनगुणस्थानमें जघन्यस्थान १० प्रत्ययरूप मध्यमस्थान इसीप्रकार एक-एक प्रत्यय अधिकरूप १६ प्रत्ययपर्यन्त एवं १७ प्रत्ययका स्थान उत्कृष्ट है। मिश्रगुणस्थानमें जघन्यस्थान ९ प्रत्ययका, मध्यमस्थान ९ से एक-एक प्रत्यय अधिक १५ प्रत्ययपर्यन्त और उत्कृष्टस्थान १६ प्रत्ययका है। 'द्वयोरपि च' इस वचनसे असंयतगुणस्थानमें भी मिश्रगुणस्थानवत्

---

१. गाथा ७९० के बाद मार्गणाओंमें बन्धप्रत्ययोंका निरूपण करनेके लिए जो १७ गाथाएं कहीं गईं हैं वे पञ्चसंग्रह (प्राकृत) के शतक अधिकारकी ८४-१०० पर्यन्तकी गाथाएं हैं प्रकरणवश उन्हें यहां उद्धृत किया गया है।

२. यह गाथा प्रा० पं० सं० पृ० ११३ पर भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही कथन है। देशसंयतगुणस्थानमें जघन्यस्थान आठ प्रत्ययका मध्यमस्थान एक-एक प्रत्यय अधिक १३ प्रत्ययपर्यन्त तथा उत्कृष्टस्थान १४ प्रत्ययका है। प्रमत्त-अप्रमत्त और अपूर्वकरण, इन तीनगुणस्थानोंमें प्रत्येकके जघन्यस्थान ५ प्रत्ययका, मध्यमस्थान ६ प्रत्ययका और उत्कृष्टस्थान ७ प्रत्ययका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जघन्यस्थान २ प्रत्ययका, मध्यमस्थान नहीं है, उत्कृष्टस्थान ३ प्रत्ययका है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें जघन्यादि भेदबिना २ प्रत्ययका एक ही स्थान है, उपशान्तकषायादिगुणस्थानोंमें जघन्यादि भेदबिना एक-एक ही स्थान है एवं अयोगीगुणस्थानमें शून्य है।

गुणस्थानोंकी अपेक्षा जघन्य-मध्यम व उत्कृष्टस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसा.म्प.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेव.	अयोगकेव.
बन्धप्रत्ययके जघन्यस्थान	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	०	०	०	०	०
बंधप्रत्ययोंके मध्यमस्थान	११ से १७	११ से १६	१० से १५	१० से १५	९ से १३	६	६	६	०	०	०	०	०	०
बंधप्रत्ययोंके उत्कृष्ट-स्थान	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

अब उपर्युक्त प्रत्ययस्थानोंके प्रकारोंका कथन करते हैं—

एक्कं च तिण्णि पंच य हेट्ठुवरीदो दु मज्झिमे छक्कं।
मिच्छेठाणपयारा इगिदुगमिदरेसु तिण्णि देसोत्ति ॥७९३॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानके ९ स्थानोंमेंसे १०-११ व १२ प्रत्ययरूप कूट तीन अधस्तन और १८-१७ व १६ प्रत्ययरूप कूट तीन उपरितनस्थानोंमें तो क्रमसे १-३ व ५ कूट भेद हैं तथा १३-१४ व १५ प्रत्ययरूप कूट मध्यवर्ती तीनस्थानोंके ६-६ भेद हैं; सासादनसे देशसंयतगुणस्थानपर्यन्त प्रथम व अन्तिमस्थान कूट १-१ प्रकार, द्वितीय कूट और द्विचरमस्थान कूट २-२ प्रकार तथा द्वितीय व द्विचरमस्थानके मध्यवर्ती जो स्थान कूट हैं वे तीन-तीन प्रकारके हैं; प्रमत्तसे सयोगीगुणस्थानपर्यन्त सभीस्थान कूट एक-एक प्रकारके ही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्ययस्थानोंके प्रकारसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान		प्रत्ययरूप स्थान संख्या गुणस्थानमें									कुलजोड़
मिथ्यात्व	स्थान	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	९
कूट	प्रकार	१	३	५	६	६	६	५	३	१	३६
सासादन	स्थान	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	०	८
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	×	१८
मिश्र	स्थान	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०	८
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	×	१८
असंयत	स्थान	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०	८
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	×	१८
देशसंयत	स्थान	८	९	१०	११	१२	१३	१४	०	०	७
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	२	१	×	×	१५
प्रमत्त	स्थान	५	६	७	×	×	०	०	०	०	३
कूट	प्रकार	१	१	१	०	०	×	×	०	×	३
अप्रमत्त	स्थान	५	६	७	×	×	०	०	×	०	३
कूट	प्रकार	१	१	१	०	०	×	×	०	०	३
अपूर्वकरण	स्थान	५	६	७	×	०	०	०	×	×	३
कूट	प्रकार	१	१	१	०	×	०	०	०	०	३
अनिवृत्तिकरण	स्थान	२	३	०	०	०	×	×	×	०	२
कूट	प्रकार	१	१	०	×	०	०	०	०	०	२
सूक्ष्मसाम्पराय	स्थान	२	०	×	०	×	०	०	०	×	१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कूट	प्रकार	१	०	०	०	०	×	०	×	०	१
उपशांतकषाय	स्थान	१	×	०	×	×	०	×	०	×	१
कूट	प्रकार	१	०	×	०	०	×	०	×	०	१
क्षीणकषाय	स्थान	१	०	०	०	×	०	०	०	०	१
कूट	प्रकार	१	×	०	×	०	×	×	०	×	१
सयोगकेवली	स्थान	१	०	×	०	×	०	०	×	०	१
कूट	प्रकार	१	०	०	×	०	०	०	०	×	१

नोट—उपर्युक्त सन्दृष्टिमें स्थान तो ५५ और उनके कूट प्रकार १२० बताये गये हैं।

अब उपर्युक्त स्थानप्रकारको जाननेके लिए कूटप्रकारोंका कथन करते हैं—

भयदुगरहियं पढमं एक्कदरजुदं दुसहियमिदि तिरहं।
सामण्णा तियकूडा मिच्छा अणहीणतिरिण्णवि य ॥७६४॥

अर्थ—भय-जुगुप्सारहित प्रथम, भय-जुगुप्सामेंसे किसी एकसहित द्वितीय अथवा भय-जुगुप्सासहित तृतीय इसप्रकार ३ कूट तो सामान्य हैं तथा अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाले मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीकषायरहित ३ कूट और भी जानना।

विशेषार्थ—पांच मिथ्यात्वमेंसे एक जीवके एक कालमें एक ही मिथ्यात्व होता है अतः नीचे पांच मिथ्यात्व स्थापन करना इनकी सहनानीरूपसे पांचस्थानोंपर १-१ लिखना तथा उनके ऊपर पांचइन्द्रिय एकमन इन छहों इन्द्रियोंमेंसे एक जीवके एककालमें एक ही विषयकी प्रवृत्ति होती है अतः इनकी सहनानी छहस्थानोंपर तिर्यग्-रूपसे एक-एक लिखना एवं ६ कायकी हिंसामें एक जीवके एक कालमें एक कायकी हिंसा होती है या दो कायकी हिंसा होती है अथवा तीन कायकी या चारकी अथवा पांचकी या ६ कायकी हिंसा होती है अतः इनकी सहनानी एक-दो-तीन-चार-पांच व छहके अङ्क क्रमसे तिर्यग्रूप ही लिखना। इनके ऊपर १६ कषायोंमें एक जीवके एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालमें अनन्तानुबन्धी आदि चार क्रोधका, चार मानका, चार मायाका अथवा चार लोभमेंसे किन्हीं एक कषायके चार भेदोंका उदय पाया जाता है अत: इनको तिर्यग्रूप से चारजगह चार-चारके अङ्क लिखना। इनके ऊपर तीन वेदोंमेंसे एक जीवके एक कालमें एक ही वेदका उदय होता है अतः तीन जगह एक-एकका अङ्क लिखना तथा इसके ऊपर हास्य-रति या अरति-शोकमेंसे एक जीवके किसी एकयुगलका उदय होता है अत: दो स्थानोंमें २ का अङ्क लिखना, इसके ऊपर १५ योगोंमेंसे आहारकद्विक (आहारक-आहारकमिश्र) बिना १३ योगोंमें एक जीवके एक कालमें एक ही योग होता है अत: १३ जगह एकका अङ्क लिखना इसप्रकार तीनकूट करना चाहिये। इनमें प्रथम कूट भय-जुगुप्सा इन दोनोंसे रहित होनेसे सबसे ऊपर शून्य लिखना दूसराकूट भय-जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदयसहित है अत: सबसे ऊपर दो जगह एकका अङ्क लिखना तृतीयकूट भय-जुगुप्सा इन दोनोंसे सहित हैं इसलिए सबसे ऊपर दोका अङ्क एक जगह लिखना। इसप्रकार ये तीनकूट बनाए सो ये तीनों कूट तो मूलकूट हैं तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाले मिथ्यादृष्टिके आवलीकालपर्यन्त अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता अत: तीनकूट अनन्तानुबन्धीरहित बनाना, किन्तु जहां चार-चार कषायरूप ४ का अङ्क लिखा गया है उसके स्थानपर चार जगह ३ का ही अङ्क लिखना, अनन्तानुबन्धी-कषायकी विसंयोजना करनेवाला पर्याप्त ही है अत: अपर्याप्तसम्बन्धी औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग नहीं होनेसे १३ योगोंके स्थानपर १० ही योग लिखना इसप्रकार अनन्तानुबन्धीसहित और रहित ३-३ कूट मिलकर मिथ्यात्वगुणस्थान-सम्बन्धी ६ कूट हुए। सासादनगुणस्थानमें सामान्यरूप तीन कूटोंमें जहां पहले पांच मिथ्यात्व लिखे थे उसके स्थानपर शून्य लिखनेपर तीन कूट होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषाय नहीं है अत: चारकषायके स्थानपर ३-३ कषाय ही लिखना तथा औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगका अभाव होनेसे १३ योगोंके स्थानपर १० ही योग लिखना ऐसे मिश्रगुणस्थानमें तीनकूट होते हैं। असंयतगुणस्थानमें पुनः औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र और कार्मण इन तीन योगोंके मिल जानेसे १३ योग लिखना इसप्रकार यहां भी तीनकूट बनेंगे। देशसंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषाय-चतुष्कका अभाव होनेसे कषायके स्थानमें दो-दो कषाय चार स्थानोंपर लिखना और त्रसहिंसा भी नहीं है अत: कायवधके स्थानपर ६ का अङ्क नहीं लिखना तथा औदारिक-मिश्र, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र एवं कार्मणकाययोगबिना १३ मेंसे ९ योग ही हैं अत:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगोंके स्थानपर ९ ही लिखना इसप्रकार इसगुणस्थानमें भी तीन कूट होते हैं। प्रमत्त-गुणस्थान में १२ अविरति नहीं है अतः इन्द्रिय व कायवधके स्थानमें सर्वत्र शून्य ही लिखना प्रत्याख्यानकषायका भी अभाव है इसलिए कषायके स्थानमें एकका अङ्क लिखना और देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी ९ योगोंमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोग मिलने पर ११ योग हो जानेसे योगस्थानमें ११ लिखना ऐसे यहां भी तीनकूट बनेंगे। अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानमें आहारक-आहारकमिश्रकाय इन दो योगोंके बिना पूर्वोक्त ९ योग ही हैं अतः इन दोनों गुणस्थानोंमें योगस्थानमें ९ का अङ्क लिखकर तीन-तीन कूट बनेंगे। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके जिस-जिस भागमें वेद, कषाय और हास्यादि छह कषायका अभाव हुआ है उस-उस भागमें शून्य लिखकर एक-एक ही कूट बनेगा, क्योंकि अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सभी भागोंके कूटोंमें भय-जुगुप्साका अभाव है। सूक्ष्मसाम्प-रायगुणस्थानमें सर्वकषायोंके स्थानपर तीन शून्य और एक जगह एक लिखना इसप्रकार यहां एक कूट बनेगा। उपशान्त व क्षीणकषायगुणस्थानमें सूक्ष्मलोभ भी नहीं अतः कषायोंके स्थानमें शून्य लिखना इसप्रकार एककूट बनेगा तथा सयोगीगुणस्थानमें असत्य व उभयरूप मन-वचनयोग नहीं है इसलिए योगस्थानमें सातयोग लिखकर एककूट बनना चाहिए।

उपर्युक्त कूटोंमें अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्रथमकूट पांच मिथ्यात्वोंमेंसे एक और इन्द्रिय व षट्काय हिंसामेंसे एक इन्द्रिय व पृथ्वीकायकी हिंसा, अनन्तानुबन्धीबिना क्रोधादि चार कषायके त्रिकमेंसे एक त्रिक, वेदोंमें एक वेद, हास्य-रति व अरति-शोकमेंसे एकयुगल, पर्याप्त होनेसे १० ही योगोंमेंसे एक योग इसप्रकार सर्व मिलकर १+१+१+३+१+२+१=१० बन्धप्रत्ययरूप प्रथमकूट हैं तथा इनमेंसे पृथ्वीकायकी हिंसा घटाकर पृथ्वी आदि दोकायोंकी हिंसा मिलानेसे ११ प्रत्ययरूप कूट है। दो कायकी हिंसामें तीन कायकी हिंसा मिलानेसे १२ प्रत्ययरूप कूट है, तीन काय की हिंसामें चारकायकी हिंसा मिलानेपर १३ प्रत्ययरूपकूट है। चारकायकी हिंसामें ५ कायकी हिंसा और मिलानेसे १४ प्रत्ययरूप कूट होता है तथा ५ कायकी हिंसाके स्थान-पर ६ कायकी हिंसा मिलानेपर १५ प्रत्ययरूप कूट होता है इसप्रकार अनन्तानुबन्धी-रहित प्रथमकूटमें १० आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, दूसरेकूटमें भय-जुगुप्सामेंसे एकके मिलानेसे ११ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, तीसरेकूटमें भय व जुगुप्साके मिलनेसे १२ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान, अनन्तानुबन्धीसहित तीनकूटोंमेंसे एक अनन्तानुबन्धीकषाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलनेसे प्रथमकूटमें ११ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, दूसरेकूटमें १२ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, तृतीयकूटमें १३ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं इसमें अन्तिमस्थान १८ प्रत्ययरूप है यहां १० और १८ के स्थानमें एक-एक प्रकार ही है अतः १० प्रत्ययका आस्रव तो अनन्तानुबन्धीरहित प्रथमकूटमें ही है और १८ प्रत्ययका आस्रव अनन्तानुबन्धीसहित अन्तिम कूटमें ही है अन्यत्र नहीं। इसप्रकार कूटोंमें ११ से १७ प्रत्ययरूप स्थानपर्यन्त कूटके तीन-तीन प्रकार हैं, १२ से १६ पर्यन्त पांच-पांच प्रकार, १३-१४-१५ के छह-छह प्रकार हैं इसीप्रकार सासादनादिगुणस्थानोंके जो कूट कहे हैं उनका विचार करके बन्धप्रत्ययोंके स्थान व उनस्थानोंके प्रकार जानना।

प्रत्ययस्थान व उनके प्रकारोंकी गुणस्थानापेक्षा कूट रचनासम्बन्धी सन्दृष्टि—

मिथ्यात्वगुणस्थानके अनन्तानुबन्धीकषायसहित तीन कूट—

	भय-जुगुप्सारहित प्रथमकूट	भय अथवा जुगुप्सासहित २ रा कूट	भय-जुगुप्सासहित ३रा कूट
२ भय-जुगुप्सा	०	१-१	२
१३ योग	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई भी एक	१३ में से कोई भी एक
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-न सकवेद
१६ कषाय	४ क्रोध-४ मान-४ माया-४ लोभ	४ क्रोध-४ मान-४ माया-४ लोभ	४ क्रोध-४ मान-४ माया-४ लोभ
पृथ्वीकायादि ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
मिथ्यात्व ५	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
५५ बन्धप्रत्यय	११-१२-१३-१४-१५-१६	१२-१३-१४-१५-१६-१७	१३-१४-१५-१६-१७-१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्वगुणस्थानके अनन्तानुबन्धीरहित ३ कूट—

भय-जुगुप्सारहित प्रथमकूट		भय अथवा जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित कूट
भय-जुगुप्सा	०	१-१	२
योग १०	१० में से कोई एक योग	१० में से कोई एक योग	१० में से कोई एक योग
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद
कषाय १२	३ क्रोध, ३ मान, ३ माया, ३ लोभ	३ क्रोध, ३ मान, ३ माया, ३ लोभ	३ क्रोध, ३ मान, ३ माया, ३ लोभ
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
मिथ्यात्व ५	१-१-१-१-१	१-१-१-१-१	१-५-१-१-१
बन्धप्रत्यय ४८	१०-११-१२-१३-१४-१५	११-१२-१३-१४-१५-१६	१२-१३-१४-१५-१६-१७

सासादनगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट—

भय-जुगुप्सारहित		भय या जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग १३	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय १६	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, ४ लोभ	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, ४ लोभ	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, ४ लोभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ५०	१०-११-१२-१३-१४-१५	११-१२-१३-१४-१५-१६	१२-१३-१४-१५-१६-१७

मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट—

	भय-जुगुप्सारहित	भय या जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा	०	१-१	२
योग १०	१० में से कोई एक	१० में से एक	१० में से कोई एक
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय १२	३-३-३-३	३-३-३-३	३-३-३-३
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ४३	९-१०-११-१२-१३-१४	१०-११-१२-१३-१४-१५	११-१२-१३-१४-१५-१६

असंयतगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट—

	भय-जुगुप्सारहित	भय या जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग १३	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय १२	३-३-३-३	३-३-३-३	३-३-३-३
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ४६	९-१०-११-१२-१३-१४	१०-११-१२-१३-१४-१५	११-१२-१३-१४-१५-१६

देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट—

	भय-जुगुप्सारहित	भय या जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग ९	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय ८	२-२-२-२	२-२-२-२	२-२-२-२
काय ५	१-२-३-४-५	१-२-३-४-५	१-२-३-४-५
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ३७	८-९-१०-११-१२	९-१०-११-१२-१३	१०-११-१२-१३-१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट—

	भय-जुगुप्सारहित	भय या जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग ११	११ में से कोई एक	११ में से कोई एक	११ में से कोई एक
हास्य-रति अरति-शोक	२ २	२ २	२ २
वेद ३	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय ४	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १
बन्धप्रत्यय २४	५	६	७

अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट--

	भय-जुगुप्सारहित	भय या जुगुप्सारहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१	२
योग ९	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक योग	९ में से कोई एक योग
हास्य-रति अरति-शोक	२ २	२ २	२ २
वेद ३	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय ४	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १
बन्धप्रत्यय २२	५	६	७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी ७ कूट—

कूट	१ला कूट	२रा कूट	३रा कूट	४था कूट	५वां कूट	६ठा कूट	७वां कूट
	३ वेदसहित	२ वेदसहित	१ पुरुषवेद सहित	४ कषाय सहित	३ कषाय सहित	२ कषाय सहित	१ वादर-लोभ कषाय सहिन
योग ९	९ में से १ योग	९ में से १	९ में से १ योग	९ में से १	९ में से १	९ में से १	९ में से १
वेद ३	१ १ १	१ १	१	०	०	०	०
कषाय ४	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १	१ १	१
बन्धप्रत्यय १६	३	३	३	२	२	२	२

सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय व सयोगकेवलीसम्बन्धी कूट—

गुणस्थान	सूक्ष्मसाम्पराय	उपशान्तकषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेवली
योग ९ } सयोगके ७ }	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक	७ में से कोई एक
कषाय १	१	०	०	०
बन्धप्रत्यय	२	१	१	१

जो स्थान व प्रकार पूर्वमें कहें हैं उनके बोलनेका विधान बतानेके लिये कूटोच्चारण कहते हैं—

मिच्छत्तणाणदरं एक्केणक्खेण एक्ककायादी।
तत्तो कसायवेददुजुगलाणेक्कं च जोगाणं ॥७९५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—५ मिथ्यात्वोंमें से एकभेद ६ इन्द्रियोंमेंसे एकभेद और इनके साथ कायोंमें से एक-दोआदि कायको हिंसा इसके पश्चात् कषायोंमेंसे एककषाय, वेदोंमेंसे एक-वेद, हास्यादि दोयुगलोंमें से एकयुगल 'च' से भय-जुगुप्सामें से एक भी नहीं या एक या दो और योगोंमेंसे १ भेद कहना चाहिए। इसप्रकार कूटोच्चारणका विधान कहा है।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धीकषायरहित कूटमें एकान्तमिथ्यात्व, स्पर्शनेन्द्रिय, पृथ्वीकायका वध तीनप्रकार क्रोध, नपुंसकवेद, हास्य-रतिका युगल और सत्यमनोयोग इनमें अक्षसंचार करनेपर एकान्तमिथ्यादृष्टि, स्पर्शनेन्द्रियके वशीभूत, पृथ्वीकायका हिंसक तीनप्रकारके क्रोधका धारक, नपुंसकवेदी, हास्यरति संयुक्त सत्यमनोयोगीके प्रत्यय (आस्रव) का एक भेद हुआ तथा पृथ्वीकायहिंसकके स्थानपर अप्काय अथवा तेजकाय अथवा वायुकाय अथवा वनस्पतिकाय या त्रसकाय क्रमसे लिखनेसे प्रत्येकके १-१ भङ्ग होते हैं। इसप्रकार पांच तो ये और पृथ्वीकायसम्बन्धी एक ऐसे (५+१) ६ भङ्ग होते हैं। पृथ्वी-अप्, पृथ्वी-अग्नि इत्यादिरूप दो के संयोगसे होनेवाले १५ भेदोंमें एक-एकका हिंसक कहनेपर द्विसंयोगी भङ्ग १५ होते हैं तथा पृथ्वी-अप्-तेज या पृथ्वी-जल-वायुकाय-रूप त्रिसंयोगी २० भेदोंमें से एक-एक का हिंसक कहनेपर त्रिसंयोगी भङ्ग २० हुए। पृथ्वी-अप्-तेज-वायु अथवा पृथ्वी-अप्-अग्नि-वनस्पति इत्यादि चतुस्संयोगी १५ भेदोंमें एक-एकका हिंसक कहनेपर चतुःसंयोगी भङ्ग १५ होते हैं तथा पृथ्वी-अप्-तेज-वायु-वनस्पति या पृथ्वी-अप्-तेज-वायु-त्रस अथवा अप्-तेज-वायु-वनस्पति-त्रसरूप पंचसंयोगी भेदोंमें एक-एकका हिसक कहनेपर पंचसंयोगो भङ्ग ६ हैं। पृथ्वी-अप्-अग्नि-वायु-वनस्पति-त्रस इन छहोंके संयोगरूप एकभेदका हिंसक कहनेपर छहसंयोगी एक भङ्ग होता है इसप्रकार सर्व मिलकर ६+१५+२०+१५+६+१=६३ भङ्ग जानना। इसके आगे जहां एकान्तमिथ्यात्व कहा था उसके स्थानपर विपरीतमिथ्यात्व कहनेपर पूर्वोक्तप्रकार ही ६३ भङ्ग होते हैं इसप्रकार ५ मिथ्यात्वकी अपेक्षा सर्वभङ्ग (६३×५) ३१५ जानना तथा इन सभी भङ्गोंमें स्पर्शनेन्द्रियके स्थानपर रसनेन्द्रियादि इन्द्रियसंचार से भी ३१५ ही भङ्ग होते हैं अतः ३१५×६ (पांचइन्द्रिय व मन) से गुणा करनेपर १८९० भङ्ग होते हैं। इन १८९० भंगोंमें ४ कषायका संचार करनेपर १८९०×४= ७५६० भंग होते हैं, इन ७५६० भङ्गोंमें तोन वेदोंके परिवर्तनसे (७५६०×३) २२,६८० भंग, इन सर्व २२,६८० भेदोंमें हास्य-रतिके स्थानपर अरति-शोकरूप युगलका संचार होनेसे (२२,६८०×२) ४५,३६० भंग, (इन कूटोंमें भय-जुगुप्साका अभाव होगा।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५.३६० भेदोंमें १० योगोंका संचार होनेसे (४५,३६०×१०) ४,५३,६०० भंग होते हैं। इसीप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी अवशेषकूट और सासादनगुणस्थानके कूटोंमें भी भंग जानना चाहिए।

अब उपर्युक्त भङ्गोंका प्रमाण प्राप्त करनेके लिए विधान बताते हैं--

अणरहिदसहिदकूडे बावत्तरिसय सयाण तेणउदी।
सट्ठी धुवा हु मिच्छे भयदुगसंजोगजा अधुवा ॥७९९॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यादृष्टिजीवके अनन्तानुबन्धीकषायरहित कूटोंमें तो भङ्गोंका प्रमाण ७२०० होता है तथा अनन्तानुबन्धीकषायसहित कूटोंमें ९३६० भङ्ग होते हैं इनको परस्परमें मिलानेसे ये ध्रुव भङ्ग होते हैं तथा भय-जुगुप्साके संबंध से अध्रुव भंग होते हैं ऐसा जानना।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, इन्द्रियादिका परस्परमें गुणाकरनेपर भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है अतः मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीरहितकूटमें तो पांच मिथ्यात्व, पांचइन्द्रिय व मन, तीन-तीनकषाय चारस्थानोंपर, तोनवेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल और १० योगोंका परस्परमें गुणा करनेपर ५×६×४×३×२×१०=७२०० भंग हुए तथा अनन्तानुबन्धीसहितकूटमें ५ मिथ्यात्व, ५ इन्द्रिय व मन, ४ कषाय, तोनवेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, १३ योग इन सभीका परस्परमें गुणा करनेपर ५×६×४×३×२×१३=९३६० होते हैं। इनमें पूर्वोक्त ७२०० भंग जोड़ देनेपर ७२००+९३६०=१६,५६० यह राशि ध्रुवगुण्य है एवं भय-जुगुप्सा सहित, भय-जुगुप्सा रहित, भय अथवा जुगुप्सासहित ऐसे चारभंग अध्रुवगुणाकार हैं। कायहिंसाके ६३ भंग हैं अत: ४ और ६३ अध्रुवगुणकार हैं सो उस ध्रुवगुण्यको (१६५६० को) ४ तथा ६३ से गुणा करनेपर सर्व १६५६०×६३×४=४१७३१२० भंगरूप बन्धप्रत्यय होते हैं। सासादनगुणस्थानमें ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दो युगल, वैक्रियिकमिश्रकाययोगबिना १२ योग इनको परस्पर गुणा करनेपर ६×४×३×२×१२=१७२८ और वैक्रियिकमिश्रयोगमें नपुंसकवेद नहीं है इसलिए ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, २ वेद हास्य-रति व अरति-शोकरूप २ युगल एवं एक योग इनको परस्परमें गुणा करनेपर ६×४×२×२×१=९६ इनको पूर्वोक्त १७२८ में मिलानेसे १७२८+९६=१८२४ ध्रुवभग हैं सो अध्रुवगुणकार ४ व ६३ से गुणा करनेपर १८२४×४×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६३=४,५९.६४८, सर्वभंग हैं । मिश्रगुणस्थानमें ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप २ युगल और १० योगकी अपेक्षा (६×४×३×२×१०) १४४० ध्रुवभंगोंको ४ व ६३ रूप अध्रुवगुणाकारसे गुणाकरनेपर १४४०×४×६३=३६२८८० भंग होते हैं; असंयतगुणस्थानमें ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल और पर्याप्तसम्बन्धी १० योगकी अपेक्षा (६×४×३×२×१०) १४४० तथा वैक्रियिकमिश्र व कार्मणकाययोगमें स्त्रीवेद नहीं है अतः ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, २ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, २ योग इनकी अपेक्षा (६×४×२×२×२) १९२ भंग होते हैं इन भंगोंको उपर्युक्त १४४० में जोड़नेपर तथा औदारिकमिश्रकाय-योगमें एक पुरुषवेद ही होनेसे ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, १ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल एवं १ योगकी अपेक्षा (६×४×१×२×१) ४८ भंग और मिलानेसे १४४०+१९२+४८=१६८० ध्रुवगुण्य हुए इनको ४ व ६३ रूप अध्रुवगुणकारसे गुणाकरनेपर १६८०×४×६३=सर्वभंग ४२३३६० होते हैं । देशसंयतगुणस्थानमें वैक्रियिककाययोग भी नहीं है इसलिये ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, ९ योग इनको परस्परमें गुणा करनेपर ६×४×३×२×९=१२९६ भंग होते हैं इनको भय-जुगुप्साकी अपेक्षा ४ और इस गुणस्थानमें त्रसवध नहीं होनेसे पंचस्थावरकायवधकी अपेक्षा ३१ कायवधसम्बन्धी अध्रुवगुणकारसे गुणा करनेपर १२९६×४×३१=१,६०,७०४ भंग होते हैं । प्रमत्तगुणस्थानमें चारकषाय, तीनवेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल और ९ योगोंकी अपेक्षा (४×३×२×९) २१६ भंग, आहारककाययोग ४ कषाय, १ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, २ योग की अपेक्षा ४×१×२×२=१६ इसमें पूर्वोक्त २१६ भंग मिलानेसे २१६+१६=२३२ होते हैं इनको भय-जुगुप्सासंबंधी ४ अध्रुवगुणकारसे गुणाकरनेपर २३२×४=सर्वभंग ९२८ होते हैं । अप्रमत्तगुणस्थानमें ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल एवं ९ योगकी अपेक्षा ४×३×२×९=२१६ इनको भय-जुगुप्सासंबंधी अध्रुवगुण ४से गुणाकरनेपर २१६×४=८६४ भंग होते हैं तथा अपूर्वकरणगुणस्थानमें भी इसीप्रकार ८६४ भंग हैं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके वेदसहित भागमें ४ कषाय ३ वेद और ९ योगका परस्परमें गुणाकरनेपर ४×३×९=१०८ भंग, इनमें अध्रुवगुणकार (भय-जुगुप्साकी अपेक्षा होने-वाले ४ भंग) से गुणा नहीं किया, क्योंकि उनका यहां अभाव पाया जाता है । वेद-सहितभागमें ही ४ कषाय, २ वेद और ९ योगकी अपेक्षा ४×२×९=७२ भग होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदरहित भागमें ४ कषाय व ९ योगका परस्परमें गुणाकरनेपर ३६ भंग, क्रोधरहित भागमें ३ कषाय व ९ योगकी अपेक्षा (९×३) २७ भंग, मानरहित भागमें २ कषाय और ९ योगकी अपेक्षा (९×२) १८ भंग, मायारहित भागमें १ कषाय और ९ योगकी अपेक्षा (१×९) ९ भंग इसप्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी १०८+७२+३६+२७+१८+९=२७० भंग होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें १ कषाय व ९ योगसे गुणा करनेपर १×९=९ भंग होते हैं, उपशान्तकषायगुणस्थान् ९ योग ही है अतः ९ ही भंग हैं, क्षीणकषायगुणस्थानमें भी ९ योगोंकी अपेक्षा ही ९ भंग हैं। सयोगकेवलीगुणस्थानमें ७ योग हैं इसलिये ७ ही भंग होते हैं।

नोट—यद्यपि संस्कृतटीकाकारने अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें एकवेदसहित भाग के (अनिवृत्तिकरणमें) भंग नहीं बनाए, वहां उनका होना आवश्यक है अतः १ वेद, ४ कषाय व ९ योगको परस्परमें गुणा करनेसे १×४×९=३६ भंग हैं इनको अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी पूर्वोक्त २७० भंगोंमें मिलानेसे २७०+३६=३०६ भंग होते हैं[1]।

आगे पूर्वोक्तभंगोंकी संख्या कहते हैं—

चउवीसट्ठारसयं तालं चोद्दस असीदि सोलसयं।
छण्णउदी बारसयं बत्तीसं बिसद सोल बिसदं च ॥७९७॥
सोलस बिसदं कमसो धुवगुणगारा अपुव्वकरणोत्ति।
अद्धुवगुणिदे भंगा धुवभंगाणं ण भेदादो ॥७९८॥जुम्मं।

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत क्रमसे ध्रुवगुण्य मिथ्यात्वगुणस्थानमें १६५६०, सासादनमें १८२४, मिश्रमें १४४०, असंयतगुणस्थानमें १६८०, देशसंयतगुणस्थानमें १२९६, प्रमत्तमें २३२, अप्रमत्तमें २१६ और अपूर्वकरणगुणस्थानमें भी २१६ भंग हैं इन ध्रुवगुण्योंका अपने-अपने अध्रुवगुणकारसे गुणा करनेपर उस-उस

---

१. संजलण-तिवेदाणं णव जोगाणं च होइ एयदरं।
संढ्ढणदुवेदाणं एयदरं पुरिसवेदो य ॥२०१॥
चदु संजलण णवण्हं जोगाण होइ एयदरं दो ते।
कोहूणमाणवज्ज मायारहियाण एगदरगं वा ॥२०२॥ (प्रा. पं. सं. पृ. १६५-१६६ शतक अधिकार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानके भंग होते हैं इससे आगे केवल ध्रुव भंगोंका ही भेद है, क्योंकि वहां भय-जुगुप्सा और अविरतियोंका अभाव होनेसे अध्रुवगुणकार नहीं है।

अब कायबन्धमें पूर्वोक्त द्विसंयोगी आदि भङ्गोंको निकालनेका विधान कहते हैं—

छप्पंचादेयंतं रूवुत्तरभाजिदे कमेण हदे।
लद्धं मिच्छचउक्के देसे संजोगगुणगारा ॥७९९॥

अर्थ— ६-५-४-३-२-१ और इसके नीचे प्रत्येकरूपमें क्रमसे १-२-३-४-५-६ लिखना एवं इनको गुणा करने और भाग देनेपर प्रथम चार गुणस्थानोंमें व पंचमगुणस्थानमें कायहिंसासम्बन्धी भङ्ग प्राप्त होते हैं।

विशेषार्थ—पहले अपने अंश ६ को हर १ से भाग देनेपर ६ लब्ध आया सो प्रत्येक भंग तो छह हैं तथा पूर्ववर्ती ६ से आगेके ५ को गुणा करनेपर ६×५=३० अंशरूप राशि प्राप्त हुई सो इसमें पूर्ववर्ती एकसे दो को गुणा करनेपर जो हर रूप २ राशि प्राप्त हुई उसका भाग देनेसे ३०÷२=१५ आया ये द्विसंयोगी भंग हैं। ३० प्रमाणराशि से अगले ४ को गुणा करके ३०×४=१२० अंश आये सो पूर्ववर्ती २ से अगले ३ को गुणा किया तो ६ लब्ध आया इस हररूप ६ से अंशराशि १२० में भाग दिया तो २० लब्ध जो त्रिसंयोगी भगोंकी संख्या है। १२० रूप अशराशिसे आगेके ३ को गुणा करने से ३६० अंशराशि हुई सो इसको पूर्ववर्ती ६ में अगले ४ का गुणाकरनेसे २४ भागहर आया इससे भाग देनेपर ३६०÷२४+१५ लब्ध आया, यह चतुस्संयोगी भंगका प्रमाण है। उपर्युक्त ३६० रूप अंशराशिको अगले दो से गुणा करने से ३६०×२=७२० अंश होते हैं सो इसमें उपर्युक्त २४ प्रमाण राशिको अगले ५ का गुणाकरके २४×५=१२० रूप भागहर आया इसका भाग देनेपर ६ लब्ध आता है। सो इतने पंचसंयोगी भंग हैं। ७२० अंशराशिको आगेके १ से गुणा करनेपर ७२०×१=७२०, सो उपर्युक्त १२० को आगेके ६ से गुणा किया तो १२०×६=७२० भागहर प्राप्त हुआ इससे अंशराशि रूप ७२० में भाग देनेसे १ लब्ध आया यह छह संयोगी भंगका प्रमाण है। इसप्रकार सर्वभग ६+१५+२०+१५+६+१=६३ हैं। देशसंयतगुणस्थानमें त्रसहिंसा नहीं है पांच स्थावरोंकी ही हिंसा है इसलिए ५-४-३-२ व १ अंशरूपसे क्रमशः लिखने तथा इनके नीचे हररूपसे १-२-३-४ व ५ लिखना। यहां पूर्वोक्त प्रकार ५ को १ का भाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देनेपर ५ आये सो ये तो प्रत्येक भंग जानना। ५ को अंशरूप ४ से गुणाकरके ५×४=२० लब्ध आया इसको १×२=२ रूप हरसे भाग दिया तो २०÷२=१० आया इतने प्रमाण यहां द्विसंयोगी भंग हैं। २० को ३ रूप अंशराशिसे गुणाकरनेसे २०×३=६० अंशराशि प्राप्त हुई तथा २ को ३ भागहरराशिसे गुणा किया तो ६ लब्ध आया सो इससे अंशराशि ६० को भाग देनेसे ६०÷६=१० प्राप्त हुआ इतने प्रमाणत्रिसंयोगी भंग जानना। अंशराशि पूर्वोक्त ६० को अंशरूप २ से गुणाकरके ६०×२=१२० प्रमाण अंशराशि प्राप्त हुई इसमें उपर्युक्त भागहर ६ में हररूप ४ का गुणा किया तो ६×४=२४ भागहर आया सो इससे अंशराशि १२० को भाग देनेपर १२०÷२४=५ लब्ध आया यह चतुस्संयोगी भंगोंका प्रमाण है। पूर्वोक्त १२० रूप अंशराशिको अंश १ का गुणा करनेपर १२० लब्ध आया और उपर्युक्त भागहर राशि २४ में हर ५ का गुणा करनेसे २४×५=१२० ही प्रमाण आया सो इससे अंशराशि १२०में भाग देकर १२०÷१२०=१ लब्ध आया यह पंचसंयोगी भंगका प्रमाण है। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानमें कायवध-सम्बन्धी सर्व ५+१०+१०+५+१=३१ भंग हैं। अथवा ६ काय जीवोंकी हिंसाके ६ स्थान हैं अतः ६ बार दो-दोका अङ्क लिखकर परस्पर गुणाकरनेसे (२×२×२×२×२×२) ६४ प्राप्त होते हैं इसमेंसे १ कम करनेसे (६४−१) ६३ भंग संख्या प्राप्त हो जाती है। इसीप्रकार पांचस्थावरोंकी हिंसाके पांचस्थानके भंग ३१ होते हैं।

अथानन्तर प्रत्ययोंके उदयमें कार्यभूत जीवपरिणामोंमें ज्ञानावरणादिके अनुभाग-बन्धका कारणपना बताते हैं—

[1]पडिणीगमंतराए उवघादो तप्पदोसणिण्हवणे।
आवरणदुगं भूयो बंधदि अच्चासणाएवि ॥८००॥

अर्थ—प्रत्यनीक, अन्तराय, उपघात, तत्प्रदोष, निन्हव और अत्यन्त आसादना इन कार्योंसे जीव पुनः-पुनः ज्ञावावरण और दर्शनावरणकर्मका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—शास्त्र व शास्त्रज्ञातामें अविनयरूप प्रवृत्तिकरना—प्रतिकूलताका होना प्रत्यनीक कहलाता है, ज्ञानका विच्छेद (स्वाध्यायमें विघ्न) करना अन्तराय है,

१. तत्प्रदोषनिन्हवमात्सर्यान्तरायसादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।" [तत्त्वा. सूत्र अ. ६ सूत्र १०] पं० सं० पृ० ५९३ गाथा १९ व पृ० १६७ गाथा २०४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन या वचनसे प्रशस्तज्ञानमें दोष लगाना अथवा ज्ञानीजीवोंको क्षुद्र (भूख-प्यासआदिकी) बाधाएं उपस्थित करना उपघात है, तत्त्वज्ञानमें हर्षका नहीं होना अथवा मोक्षके लिए साधनभूत तत्त्वज्ञानके उपदेशमें रुचि नहीं होना या अन्तरंगमें उसके प्रति द्वेष करना प्रदोष है, यद्यपि स्वयं जानता है तथापि किसी कारणसे "यह ऐसा नहीं या मैं नहीं जानता" इसप्रकार कहना अथवा किन्हीं अप्रसिद्धगुरुसे ज्ञान प्राप्तकर उनका नाम छिपाते हुए अन्य तीर्थङ्करादि प्रसिद्ध पुरुषोंका नाम बताना निन्हव है और किसीके प्रशंसायोग्य ज्ञान-उपदेशादिकी मन-वचन-कायसे अनुमोदनादि नहीं करना अथवा उसका वर्जन करना आसादना है। इन ६ कार्योंसे जीव ज्ञानावरण व दर्शनावरणकर्मका अनुभागाधिक्यसहित बन्ध करता है इसीप्रकार अन्यकर्मोंमें भी जानना। ये ही ६ कारण यदि ज्ञानके विषयमें हों तो ज्ञानावरणकी और यदि दर्शनके विषयमें हों तो दर्शनावरणके अनुभागवृद्धिमें कारण होते हैं। [1]यद्यपि तत्प्रदोषादिसे ज्ञानावरणादि सर्व कर्मप्रकृतियोंका प्रदेशबन्ध होता है ऐसा नियम नहीं है तो भी वे प्रतिनियत अनुभागबन्धके हेतु हैं अतः तत्प्रदोष, निन्हवादिका पृथक्-पृथक् कथन किया है।

[2]पडिणीयाइ हेऊ जे अणुभायं पडुच्च ते भणिया।
णियमा पदेसबंधं पडुच्च वहिचारिणो सव्वे ॥२१६॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि कर्मोंके प्रत्यनीक आदि अर्थात् विशेषबन्ध हेतु (गाथा ८०० से ८१० तक) कहे गए हैं वे सब अनुभागबन्धकी अपेक्षासे जानना चाहिए, क्योंकि प्रदेशबन्धकी अपेक्षा वे सब नियम व्यभिचारी हैं।

अब वेदनीयकर्मके बन्धके कारण कहते हैं—

[3]भूदाणुकंपवदजोग जुंजिदो खंतिदाणगुरुभत्तो।
बन्धदि भूयो सादं विवरीयो बंधदे इदरं[4] ॥८०१॥

अर्थ—भूतानुकम्पा (गति-गतिमें कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले प्राणियोंमें दया करना) व्रत (हिंसादिका त्यागरूप) योग (समाधिपरिणामरूप), क्षमा (क्रोधके

---

१. स० सि० अ० ६ सू० २७। २. प्रा० पं० सं० पृ० १७४। ३. प्रा० पं० सं० पृ० १६८ गाथा २०५, किन्तु गाथामें कुछ पाठभेद है। "भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य" (त० सू० अ० ६ सू० १२)। ४. "दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य" (त० सू० अ० ६।११)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्यागरूप), दान (आहारादिके भेदसे चार प्रकारका) और पञ्चपरमेष्ठीकी भक्तिमें अनुरक्ति इन कारणोंसे सातावेदनीय तथा इनसे विपरीत कारणोंसे असातावेदनीयकर्म प्रचुरअनुभागसहित बंधते हैं।

विशेषार्थ—गतिनामकर्मोदयसे जो होते हैं वे भूत अर्थात् प्राणी हैं, उनपर उल्लासयुक्त चित्तसे अनुग्रह (दया) करना अथवा परपीड़ाको अपनी पीड़ा समझकर कांप जाना या किसी दूसरे पीड़ित व्यक्तिको देखकर उसके प्रति करुणायुक्त होना अनुकम्पा है। हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म व परिग्रहसे विरति अथवा इन्द्रियोंको वशकरना या सरागसंयमादि व्रत है। क्रोधादि कषायोंसे निवृत्ति क्षमा है। उत्तमादि पात्रों को आहार, औषधि, अभय और ज्ञान ये चारदान देना दान है। प्रसन्नचित्तसे अन्तरंग-परिणामोंके द्वारा पञ्चगुरु (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) की वन्दना, दर्शनादि करना गुरुभक्ति है। समाधि, धर्मध्यान और शुक्लध्यान योग है। इन प्रत्ययों से अर्थात् इन कार्योंको जो जीव करता है उसके सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है।

पीड़ारूप परिणाम दुःख, इष्टवियोगरूप शोक, अपवाद आदिके निमित्तसे चित्तमें पीड़ाका होना परिताप, प्रचुर आंसु गिरनेके साथ विलापकरना आक्रन्दन, संक्लेशरूप परिणामके अवलम्बनसे स्व और परके उपकारकी अभिलाषासे करुणा जनक रोना परिवेदन है। इसप्रकारके दुःख, शोक, परिताप, आक्रन्दन और परिदेवनरूप परिणामोंसे असातावेदनीयकर्मका बन्ध होता है अर्थात् ये असातावेदनीयकर्मके बंधका कारण है।[1]

आगे दर्शनमोहनीयकर्मके बन्धके कारणोंको कहते हैं—

[2]अरहंतसिद्धचेदियतवसुदगुरुधम्मसंघपडिणीगो।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥८०२॥

अर्थ—जो जीव अरहन्त, सिद्ध और उनके चैत्य (प्रतिमा), तपश्चरणयुत निर्ग्रन्थगुरु निर्दोषशास्त्र (श्रुत), वीतरागदेव प्रणीत धर्म तथा (ऋषि-यति-मुनि-अनगार के समूहरूप) संघके प्रतिकूल हो अर्थात् उनका अवर्णवाद करनेवाला है उसके दर्शनमोह

---

१. प्रा० पंचसं० पृ० १६८ गाथा २०५ व पृ० ५९४ गाथा २० के अनुसार।
२. "केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य". (त० सू० अ० ६/१३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मिथ्यात्व) का तीव्र अनुभागबन्ध होता है एवं उसीके उदयसे वह अनन्तसंसारमें परिभ्रमण करता है।

विशेषार्थ—अरहन्त अर्थात् केवलज्ञानीमें असद्भूतदोष लगाना जैसे अरहन्त भगवान कवलाहार करते हैं। सिद्धोंमें यद्यपि अनुपमसुख, किन्तु उनका इसप्रकार अवर्णवाद करना कि स्त्रीसुखादिके बिना सिद्धोंको सुख कहां हो सकता है। चैत्य अर्थात् जिनमें अरहन्त व सिद्धोंके गुणोंका आरोपण किया गया है ऐसे जिनबिम्बोंकी आसादना करना कि वे तो अचेतन हैं निर्गुण हैं इन प्रतिबिम्बोंसे क्या लाभ, ये तो व्यर्थ हैं। तप अर्थात् अनशनादि ६ प्रकारका बाह्य एवं प्रायश्चित्तादि ६ प्रकारका अभ्यन्तर इन १२ प्रकारके तपोंकी आसादना करना कि अनशन आदि तपसे आत्माको संक्लेश होता है और उससे कर्मबन्ध होता है। गुरु अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे गुरु (बड़े) हैं वे गुरु हैं उनके प्रति यह कहना कि इनमें तो ज्ञानादिगुण हैं ये तो अश्रुत हैं। श्रुत अर्थात् अरहन्तभगवानके द्वारा उपदिष्ट द्वादशांग (यद्यपि द्वादशांगकी रचना तो गणधरदेव करते हैं तथापि निमित्तकी अपेक्षा उपचारसे अरहन्तभगवानको द्वादशांगका उपदेशक कहा गया, किन्तु वास्तवमें अरहन्तभगवानकी दिव्यध्वनिके आधारसे द्वादशांगकी रचना होती है) रूप श्रुतमें यह दूषण देना कि "मांस आदिका भक्षण निरवद्य है" ऐसा श्रुतमें कहा गया है। धर्म अर्थात् जो चतुर्गतिके दुःखोंमें पड़ते हुए प्राणोको निकालकर उत्तमसुखमें धरता है वह धर्म है उसके विषयमें यह कहना कि जिनेन्द्रभगवानके द्वारा उपदेशित धर्म निर्गुण है जो भी उसका आचरण करता है वह असुर होगा। ऋषि, यति, मुनि और अनगारके समूहरूप संघका अवर्णवाद करना कि वे अशुचिशरीरवाले हैं, विरूप और निर्गुण हैं। इसप्रकार उपर्युक्त प्रत्ययोंसे अनन्तसंसारके कारणभूत दर्शनमोहनीयकर्मका बन्ध होता है।[1]

अब चारित्रमोहनीयकर्मबन्धके कारण बताते हैं—

[2]तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणदो रागदोससंतत्तो।
बंधदि चरित्तमोहं दुविहं वि चरित्तगुणघादी ॥८०३॥

---

१. प्रा० पंचसंग्रह पृ० १६९ गाथा २०६ व पृ० ५९४ गाथा २१ के अनुसार।

२. "कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य" (त० सू० अ० ६/१४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो जीव तीव्रकषाय (एवं हास्यादि नोकषाय) सहित हो, अत्यधिक मोहरूप परिणमन करता हो, रागद्वेषमें अत्यन्तलीन हो और चारित्रगुणका नाशकरनेवाला हो वह कषाय और नोकषायरूप भेदसहित चारित्रमोहनीयकर्मके तीव्रअनुभागका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—पवित्र तपस्वियोंके चारित्रमें दूषण लगाना, संक्लेशोत्पादक वेष व व्रतोंको धारण करना, धर्मका उपहास करना, बहुत प्रलाप करना तीव्रकषाय है। इन कारणोंसे तो क्रोधादि कषायोंका बन्ध होता है। दूसरोंकी हंसी करनेसे हास्यकर्मका, नानाक्रीड़ाओंसे दूसरेके चित्तको आकर्षित करनेवाले स्वभावमें रुचिसे रतिकर्मका बन्ध होता है। रति-विनाश, पापशील व्यक्तियोंकी संगति इत्यादिसे अरतिकर्मका बन्ध होता है। स्वयं भयभीत रहना और दूसरोंको भय उत्पन्नकरनेसे भयकर्मका बन्ध होता है। अकुशलक्रियारूप परिणतिसे जुगुप्साकर्मका बन्ध होता है। मिथ्याभाषण, छल-कपट, प्रपंचमें तत्परता, तीव्रराग इनसे स्त्रीवेदकर्मका बन्ध होता है। मन्दक्रोध, कुटिलता न होना, स्वदारामें संतोष इत्यादिसे पुरुषवेदका तथा प्रचुरकषाय, गुप्तेन्द्रियोंका विनाश, अनङ्गक्रीड़ाका व्यसन इनसे नपुंसकवेदका बन्ध होता है। इसप्रकार अनेकप्रकारके मिथ्यात्वसे परिणत तथा "राग दोस संतत्तो" अर्थात् अपवित्र स्नेहरूप राग और रत्नत्रयमें दूषण लगानेंरूप द्वेषसे युक्त और उपर्युक्त लक्षण तीव्रकषायसहित जीवके पंचाणुव्रतरूप देशचारित्र और महाव्रतरूप सकलचारित्र इन दोनों चारित्रको घातनेवाले चारित्र मोहनीयकर्मके तीव्र अनुभागको बांधता है। अतः उपर्युक्त कारण चारित्रमोहनीयकर्मके बन्धमें विशेषप्रत्यय है।[1]

अथानन्तर नरकायुके बन्धके कारण कहते हैं—

[2]मिच्छो हु महारम्भो णिस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो।
णिरयाउगं णिबंधदि पावमदी रुद्दपरिणामी ॥८०४॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि (तत्त्वार्थश्रद्धानसे रहित) हो, बहुत आरम्भी व अपरिमित परिग्रही हो, शीलरहित हो, तीव्र लोभी हो, रौद्रपरिणामी अर्थात् हिंसादी पापकर्मोंमें

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५९४ गाथा २२ के आधार से।

२. "बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः" (त० सू० अ० ६/१५) एवं प्रा० पं० सं० पृ० २०८ गाथा १७० व पृ० ५९४ गाथा २३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आनन्द माननेवाला हो, पाप करनेमें ही जिसकी मति (बुद्धि) हो वह जीव नरकायुका तीव्र अनुभागसहित बन्ध करता है।

विशेषार्थ—प्राणियोंको दुःख पहुंचानेवाली प्रवृत्ति करना आरम्भ है, यह वस्तु मेरी है इसप्रकारका संकल्प रखना परिग्रह है। जिसके बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह हो वह बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रहवाला कहलाता है और उसका भाव बह्वारम्भपरिग्रहत्व है। हिंसादि क्रूर कार्योंमें निरन्तर प्रवृत्ति, दूसरेके धनका अपहरण, इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति तथा मरनेके समय कृष्णलेश्या और रौद्रध्यानादिका होना नरकायु बन्धमें विशेष प्रत्यय हैं।[1]

अब तिर्यञ्चायुके बन्धके कारण कहते हैं—

[2]उम्मगदेसगो मग्गणासगो गूढहियय मादिल्लो।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधदे जीवो ॥८०५॥

अर्थ—जो जीव विपरीतमार्गका उपदेश करनेवाला हो, सच्चेमार्गका नाश करनेवाला हो, गूढ़ अर्थात् मायाचारी हो, जिसका विपरीत स्वभाव हो, मिथ्या आदि तीनशल्योंसे संयुक्त हो वह जीव तिर्यञ्चायुका तीव्र अनुभाग बांधता है।

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे जो आत्मामें कुटिलभाव उत्पन्न होता है वह माया है, इसका दूसरा नाम निकृति है। इसे तिर्यञ्चायुके बन्धका प्रत्यय जानना। इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—धर्मोपदेशमें मिथ्या बातोंको मिलाकर उनका प्रचार करना, शीलरहित जीवन बिताना, अतिसंधानप्रियता तथा मरणके समय नील व कपोतलेश्या और आर्तध्यानका होना आदि तिर्यञ्चायुके बन्धके विशेष प्रत्यय हैं।[3]

अथानन्तर मनुष्यायुके बन्धके कारण कहते हैं—

[4]पयडीए तणुकसाओ दाणरदी सीलसंजमविहीणो।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुवाउं बंधदे जीवो ॥८०६॥

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. ६ सूत्र १५ की टीका। २. "माया तैर्यग्योनस्य" (त. सू. अ. ६/१६) एवं प्रा० पं० सं० पृ० १७० गाथा २०८ और पृ० ५९४ गाथा २४। ३. सर्वार्थसिद्धि अ० ६ सूत्र १६ की टीका। ४. "अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य" "स्वभावमार्दवं च" (त० सू० अ० ६ सूत्र १७-१८) प्रा० पं० सं० पृ० १७१ गाथा २१० एवं पृ० ५९५ गाथा २५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--जो जीव स्वभावसे ही मन्दकषायी अर्थात् मृदुस्वभावी हो, पात्रदानमें प्रीतियुक्त हो, शील व संयमसे अर्थात् इन्द्रियसंयम व प्राणिसंयमसे रहित हो, मध्यम-गुणों (परिणामों) से सहित हो ऐसा जीव मनुष्यायुको तीव्र अनुभागसहित बांधता है।

विशेषार्थ—स्वभावका विनम्र होना, भद्रप्रकृतिका होना, सरलव्यवहार करना, अल्पकषायका होना तथा मरणके समय संक्लेशपरिणामि नहीं होना इत्यादि मनुष्यायुके तीव्रअनुभागबन्धके विशेषप्रत्यय हैं।[1]

आगे देवायुके बन्धके कारण कहते हैं—

[2]अणुवद्‌महव्वदेहिं य बालतवाकामणिज्जराए य।
देवाउगं णिबंधदि सम्मादिट्ठी य जो जीवो ॥८०७॥

अर्थ--जो जीव सम्यग्दृष्टि है वह केवल सम्यक्त्वसे एवं साक्षात् अणुव्रत-महाव्रतोंसे देवायुको बांधता है तथा जो मिथ्यादृष्टि है वह अज्ञानरूप बालतपश्चरणसे एवं बिना इच्छाके बन्ध आदिसे हुई अकामनिर्जरासे देवायुका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—अकामनिर्जरा, बालतप, मन्दकषायता, समीचीनधर्मका सुनना, दानदेना, देव-गुरु व धर्म तथा इनके सेवक इन छह आयतनोंकी सेवा करना, सराग-संयम, सम्यक्त्व और देशसंयम ये सब देवायुके बन्धप्रत्यय हैं।[3]

आगे नामकर्मके बन्धके कारणोंको कहते हैं—

[4]मणवयणकायवक्को माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं ॥८०८॥

अर्थ—जो जीव मन-वचन-कायसे कुटिल हो, कपट करनेवाला हो, तीनप्रकारके गारवसे युक्तहो (दुरभिमानी हो) वह नरकगति, तिर्यंचगति आदि अशुभ (अप्रशस्त) नामकर्म-

१. सर्वार्थसिद्धि अ० ६ सूत्र १७ की टीका। २. "सरागसंयमसंयमासंयमकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य" "सम्यक्त्वं च" (त. सू. अ. ६ सूत्र २०-२१) प्रा. पं. सं. पृ. १७१ गाथा २११ व पृ० ५९५ गाथा २६। ३. तत्त्वार्थसार अ० ४ श्लोक ४२-४३। ४. "योगवक्रता विसवादनं चाशुभस्य नाम्नः" "तद्वीपरीतं शुभस्य" (त० सू० अ० ६ सूत्र २२ व २३)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बन्ध करता है तथा इसके विपरीत स्वभाववाला अर्थात् सरलयोगवाला, निष्कपट, प्रशंसा न चाहनेवाला शुभ (प्रशस्त) नामकर्मका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—'मण-वयण-काय वक्को' मन-वचन और कायकी कुटिलता अर्थात् अन्यथाप्रवृत्ति। 'माइल्लो' अर्थात् मायाचारी मिथ्यात्वरूप प्रवृत्ति, झूठी चुगली करना, माण अर्थात् तोलनेके बांट व मापनेके गज (मीटर) आदि हीन या अधिक रखना, तोलनेकी तराजू (कांटा) झूठा (ठीक नहीं) रखना, स्वात्मप्रशसा, परात्मनिंदा आदिरूप मायासे। 'गारवेहिं' इष्ट द्रव्यका लाभ (ऋद्धिगारव), मिष्टभोजनादिकी प्राप्ति (रस गारव), सुखद शयनादि स्थानका मिलना (सादगारव) इन सबसे 'पडिबद्ध' अर्थात् इनमें दृढचित्त होनेवाला अशुभनामकर्मको बांधता है तथा 'तप्पडिवक्खेहिं' अर्थात् इससे विपरीत यानि योगकी सरलता, रस व सात आदि गारवोंसे रहित, धार्मिक व्यक्तियोंके प्रति आदरभाव, संसारके कारणभूत भावोंसे भीरूता, अप्रमादादि प्रत्ययोंसे शुभनामकर्म का बन्ध होता है।[1]

आगे गोत्रकर्मके बन्धके कारणोंको कहते हैं—

[2]अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुइ [3]पढणुमाणगुणपेही।
बंधदि उच्चं गोदं विवरीदो बंधदे इदरं ॥८०९॥

अर्थ—जो जीव अरहन्तादि पञ्चपरमेष्ठियोंमें भक्तियुक्त हो, अध्ययनादिके लिए विचारशील एवं विनयादि गुणोंका धारक हो वह जीव तो उच्चगोत्रका और इससे विपरीत कारणोंसे नीचगोत्रका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—पंचगुरु (अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) में अतिभक्ति, जिनोक्त श्रुतमें अन्तरंगपरिणामोंसे रुचि, आगम अभ्यासी (पढणुपाठापेक्षा) अथवा अल्पमानी (पदणुपाठापेक्षा), गुणोंका प्रेक्षक, अपनी निन्दा, परकी प्रशंसा तथा उनके गुणोंको प्रकट करना, अपने गुणोंका आच्छादन (ढकना), गुणोंमें जो उत्कृष्ट हैं उनके प्रति विनम्रवृत्ति, अपनेमें ज्ञान-ऐश्वर्य-तपादिकी विशेषता होनेपर भी मद या अहंकार

---

१. प्रा. पं. स पृ. ५९५ गाथा २७ के आधारसे। २. परात्मनिंदाप्रशसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य" "तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य" (त० सू० अ० ६ सूत्र २५-२६) ३. 'पदणुमाण' इत्यपि पाठो प्रा० पं० संग्रहे पृ० ५९५ गाथा २८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव न होना, उद्धततारहित प्रवृत्ति आदि इन सबसे उच्चगोत्रका बन्ध होता है। इससे विपरीत अर्थात् अपनी प्रशंसा व अपने असद्गुणोंका उद्भावन (प्रकट करना), परकी निन्दा और उनमें विद्यमानगुणोंका आच्छादन, अरहंतादिमें भक्तिका न होना इन सब प्रत्ययोंसे नीचगोत्रका बन्ध होता है।[1]

[2]पाणवधादीसु रदो जिणपूजामोक्खमग्गविग्घयरो।
अज्जेदि अंतरायं ण लहदि जं इच्छियं जेण ॥८१०॥

अर्थ—जो जीव अपने व दूसरोंके प्राणोंका हरण करनेमें लीन हो और जिनेंद्र-पूजा व रत्नत्रयकी प्राप्तिरूप मोक्षमार्गमें विघ्न डालनेवाला है वह अन्तरायकर्मका उपार्जन करता है तथा उसके उदयकालमें वह अभिलषित (इच्छित) वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकता है।

विशेषार्थ—प्राणिवधादिमें रत, जिनपूजा व मोक्षमार्गमें विघ्न करनेवाला पांच-प्रकारके अन्तरायकर्मको अर्जित करता है। जीवोंको अभयदान देनेमें जो विघ्न करता है उसे दानान्तरायकर्मका बन्ध होता है जिससे सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रत ग्रहण करनेके भाव नहीं होते यदि भाव होते भी हैं तो स्थिर नहीं होते। अथवा सुवर्णादि वस्तुओंके दान करनेमें विघ्न करनेसे सुवर्णादि वस्तुओंको प्राप्ति नहीं होती। लाभान्त-रायकर्मसे निरन्तर भोजन करते हुए भी तृप्ति नहीं होती शरीरको ढकनेके लिए वस्त्रादि अन्य वस्तुओंका लाभ भी नहीं होता। भोगान्तरायकर्मसे भोगोंमें अर्थात् अशन (अशन, पान, लेह्य और पेय) चारप्रकारके आहार देनेमें विघ्न करनेसे स्वयंको पेटभर भोजन भी नहीं मिलता अथवा यदि भरपेट भोजन मिल भी जावे तो वमनआदि हो जाता है। इसीप्रकार पंचेन्द्रियसम्बन्धी सम्पूर्ण विषयभोगोंके सम्बन्धमें आगमसे जानना चाहिए। उपभोगान्तरायकर्मसे वत्स (पुत्र), स्त्री, पालकी, मकान (वास्तु), खेत (क्षेत्र), आभूषणादि पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। वीर्यान्तरायकर्मसे बल-वीर्य आहार ग्रहण करने-पर भी सहज ही उत्पन्न नहीं होते और यदि उत्पन्न होते भी हैं तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। दान देनेवाले दाता और पात्रके मध्य जो स्थित हो जावे वह अन्तरायकर्म है। इसप्रकार पांचप्रकारके अन्तरायकर्मसम्बन्धी जो सामान्य प्रत्यय कहे गये हैं उनके

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५९५ गाथा २८ के आधारसे।
२. "विघ्नकरणमन्तरायस्य" (त० सू० अ० ६ सूत्र २७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण मनोभिलषित पदार्थोंकी प्राप्तिमें विघ्न उपस्थित होता है अतः इन्हें अन्तरायकर्म बन्धके प्रत्यय कहा गया है।

उपसंहार—द्वादशांगमें बन्धप्रत्ययोंका जो कथन है वह आचार्यपरम्परासे द्वादशांगसूत्ररूपसे (एकदेशरूपसे) श्री धरसेनाचार्यको प्राप्त हुए। श्री धरसेनाचार्यने उन सूत्रोंको श्री पुष्पदंत भूतबली आचार्योंको पढ़ाया। पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्यद्वयने उन सूत्रोंको लिपिबद्ध करके ग्रन्थरूपमें उनका नाम षट्खण्डागम रखा। उस षट्खण्डागमके 'महाबन्ध' नामक छठे खण्डमें प्रत्ययोंका कथन इसप्रकार है—

पच्चयपरूवणादाए पंचणा. छदंसणा.-आसादा. अट्ठ क. पुरिस. हस्स-रदि-अरदि-सोग-सोग-भय-दुगुं. देवाउ-देवगदि-पंचिंदि.-वेउव्वि.-तेजा.-क.-समचदु.-वेउव्विय अंगो.-पसत्थापसत्थवण्ण. ४-देवाणुपु.-अगु. ४-पसत्थवि.-तस ४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे.-जस.-अजस.-णिमि.-उच्चागो.-पंचंत. ५ एत्तो एक्केक्कस्स पगदीओ मिच्छत्त-पच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं। सादावे. मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसाय-पच्चयं जोगपच्चयं। मिच्छ.-णवुस.-णिरयाउग-चदुजादि-हुंड.-असंप.-णिरयाणु.-आदाव. थावरादि. ४ मिच्छत्तपच्चयं। थीणगिद्धि. ३-अट्ठकसा.-इत्थि. तिरिक्खा.-मणुसायु.-तिरिक्ख-मणुसग.-ओरालि.-चदुसंठा.-ओरालि. अंगो.-पंचसंघ.-दो आणु.-उज्जो. अप्प-सत्थ. दुब्भग-दुस्सर-अणादे.-णीचा.-मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं। आहारदुगं संजम-पच्चयं। तित्थयरं सम्मत्तपच्चयं।"

अर्थ—प्रत्यय प्ररूपणाकी अपेक्षा पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता-वेदनीय, आठकषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-अंगोपांग, प्रशस्त व अप्रशस्त वर्णादि ४, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायो-गति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, अयश-स्कीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय इन ६५ प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येक प्रकृतिका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषायप्रत्यय और योगप्रत्यय है। मिथ्यात्व, नपुंसक-वेद, नरकायु, नरकगति, चारजाति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरक-गत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावरादि ४ का बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय होता है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन, आठकषाय, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, पांच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय और असंयमप्रत्यय होता है। आहारकद्विकका बन्ध संयमप्रत्यय होता है। तीर्थङ्कर-प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वप्रत्यय होता है। इतनी विशेषता है कि द्वादशांगसे सम्बन्धित इन सूत्रोंमें मिथ्यात्व-असंयम-कषाय और योगके अतिरिक्त संयम और सम्यक्त्वको भी बन्धप्रत्ययोंमें सम्मिलित किया है। इसीलिये श्री कुन्दकुन्दाचार्यने पञ्चास्तिकायग्रन्थमें कहा है—

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बन्ध मोक्खो वा ॥१६४॥ पंचास्तिकाय

अर्थ—साधु पुरुषोंने कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है इसलिए वे सेवने योग्य हैं, किन्तु उनसे बन्ध भी होता है और मोक्ष भी होता है अर्थात् यद्यपि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है ऐसा सभी आचार्योंने कहा है तथापि वे बन्धके हेतु (प्रत्यय) भी है और मोक्षके हेतु भी हैं।

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि एक ही कारणसे दो विपरीतकार्य कैसे हो सकते हैं तो आचार्योंने दीपकका दृष्टान्त देते हुए कहा है कि इसमें सर्वथा कोई विरोध नहीं है जैसे एक ही दीपक प्रकाशको भी कारण है और धूमरूप अन्धकारको भी कारण है उसीप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके द्वारा कर्मनिर्जरा भी होती है और तीर्थङ्कर-प्रकृति व आहारकद्विकका बन्ध भी होता है, किन्तु यह पुण्यबन्ध मोक्षका ही कारण है न कि संसारका। जैसे व्यापारी अपने व्यापारके विज्ञापनआदिमें व्यय करता है, किन्तु वह व्यय आयका ही कारण है हानिका कारण नहीं है। समयसारके टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यने भी "तत्त्वार्थसार" ग्रन्थके चतुर्थअधिकारमें सम्यग्दर्शनको देवायुके बन्धका कारण कहा है—

सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः।
इति देवायुषो ह्येते भवन्त्यास्रवहेतवः ॥४३॥ तत्त्वार्थसार अ०४॥

अर्थात् सरागसंयम, सम्यक्त्व और देशसंयम ये देवायुके आस्रवमें कारण हैं।

यद्यपि षट्खण्डागमके 'वेदना' नामक चतुर्थखण्डमें "वेदणापच्चयविहाणाणि योगद्दारं" नामक आठवां अधिकार (ध०पु० १२ पृ० २७५) है, किन्तु उसमें उत्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतियोंके प्रत्ययोंका कथन नहीं है तथा मूलप्रकृतियोंके सामान्य प्रत्ययोंका कथन नयों की अपेक्षासे है अतः वेदनाखण्डके "वेदणापच्चयविहाणाणियोगद्दारं" का यहां विचार नहीं किया गया।

❖

अथ भावचूलिकाधिकार।

अब भावचूलिकाधिकारको प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम निर्विघ्नतया कार्यपरि-समाप्तिके लिए अपने इष्टदेवको नमस्कार करते हैं—

गोम्मटजिणिंद्‌चंद्‌ं पणमिय गोम्मटपयत्थसंजुत्तं।
गोम्मटसंगहविसयं भावगदं चूलियं वोच्छं॥८११॥

अर्थ—गोम्मटजिनेंद्र वे ही हुए चन्द्रमा सो उनको (गोम्मटजिनेंद्रको) नमस्कार करके समीचीन अर्थ और पदोंसे अथवा उत्तम पदार्थोंके वर्णनसे सहित गोम्मटसारग्रन्थमें क्रमप्राप्त भावोंका कथन करनेवाले अधिकारको कहूंगा।

विशेष—उपर्युक्त मंगलाचरणगाथामें 'गोम्मटजिणिंदचंदं' पदमें संस्कृत टीका-कारने 'वर्धमान अथवा नेमिनाथस्वामी' ऐसा अर्थ प्रगट किया है, किन्तु ऊपर गाथाके अर्थमें 'गोम्मटजिनेन्द्र' ऐसा ही रखा गया है, क्योंकि गोम्मटजिणिंदसे गोम्मटेश्वर (बाहुबली) ऐसा प्रगट अभिप्राय आचार्यका रहा हो।

जेहि दु लक्खिज्जंते उवसमआदीसु जणिदभावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं॥८१२॥

अर्थ—अपने प्रतिपक्षीभूत कर्मोंके उपशमादि होनेपर उत्पन्न हुए जिन औप-शमिकादिभावोंसे जीव पहिचाने जाते हैं वे भाव 'गुण' संज्ञाको प्राप्त होते हैं ऐसा सर्व-दर्शियों (सर्वज्ञ) ने कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे उन भावोंके नाम व उनके भेदोंका कथन करते हैं—

[1]उवसम खइओ मिस्सो ओदयिगो पारिणामिगो भावो।
भेदा दुग णव तत्तो दुगणिगिवीसं तियं कमसो ॥८१३॥

अर्थ—वह भाव औपशमिक, क्षायिक, मिश्र (क्षायोपशमिक), औदयिक और पारिणामिकके भेदसे ५ प्रकारका है तथा इन पांचोंके भेद क्रमसे २-९-१८-२१ और ३।

विशेषार्थ—भगवान् कुन्दकुन्ददेवाचार्यने भी पंचास्तिकायसंग्रह गाथा ५६ में इन पांचभावोंका कथन जीवगुणरूपसे किया है—

[1]उदयेण उवसमेण य खएण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा ॥५६॥

उपर्युक्तगाथाकी अमृतचन्द्राचार्यकृत संस्कृतटीका इसप्रकार है—

कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः, अनुद्भूतिरुपशमः, उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः, अत्यन्तविश्लेषः क्षयः, द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः। तत्रोदयेन युक्त औदयिकः; उपशमेन युक्तः औपशमिकः, क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः, क्षयेण युक्तः क्षायिकः; परिणामेन युक्तः पारिणामिकः। त एते पञ्च जीवगुणाः। तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबन्धनाश्चत्वारः, स्वभावनिबन्धन एकः। एते चोपाधिभेदात्स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यंत इति। अर्थात्

गाथार्थ—उदयसे युक्त, उपशमसे युक्त, दोनों मिश्रित अर्थात् क्षयोपशमसे युक्त और परिणामसे युक्त ऐसे ये जीवगुण हैं और बहुत प्रकारसे विस्तृत हैं।

टीकार्थ—कर्मोंका फलदानसमर्थरूपसे उद्भव सो उदय है, अनुद्भव सो उपशम है, उद्भव तथा अनुद्भव सो क्षयोपशम है, अत्यन्तविश्लेष सो क्षय है, द्रव्यका आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है वह परिणाम है। वहां उदयसे युक्त वह औदयिक; उपशमसे युक्त वह औपशमिक, क्षयोपशमसे युक्त वह क्षायोपशमिक, क्षयसे युक्त वह क्षायिक तथा परिणामसे युक्त है वह पारिणामिक है। ऐसे ये पांच जीवगुण हैं, उनमें

---

१. पंचास्तिकाय गाथा ५६। 'औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च। जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च" [त० सू० अ० २ सू० १] "द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्" [त० सू० अ० २/२]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपाधिका चतुर्विधपना (कर्मोंकी चारप्रकारकी दशा) जिनका कारण (निमित्त) है ऐसे चार हैं तथा स्वभाव जिसका कारण है ऐसा एक है। उपाधिके भेदसे और स्वरूपके भेदसे भेदकरनेपर उन्हें अनेक प्रकारोंसे विस्तृत किया जाता है।

[1]जैसे कतक आदि द्रव्यके सम्बन्धसे जलमें कीचड़का उपशम हो जाता है उसीप्रकार आत्मामें कर्मकी निजशक्तिका कारणवशसे प्रगट न होना उपशम है। जैसे उसी जलको दूसरे स्वच्छ बर्तनमें बदल देनेपर कीचड़का अत्यन्त अभाव हो जाता है वैसे ही कर्मोंका आत्मासे सर्वथा दूर हो जाना क्षय है। जिसप्रकार उसी जलमें कतकादि द्रव्यके सम्बन्धसे कुछ कीचड़का अभाव हो जाता है और कुछ बना रहता है उसीप्रकार उभय-रूप भाव क्षयोपशम (मिश्र) है। द्रव्यादि निमित्तके वशसे कर्मोंके फलका प्राप्त होना उदय है और जिसके होनेमें द्रव्यका स्वरूपलाभमात्र कारण है वह परिणाम है। जिस भावका प्रयोजन अर्थात् कारण उपशम है वह औपशमिकभाव है। इसीप्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भावोंकी भी व्युत्पत्ति कहनी चाहिये।

[2]औपशमिकादिभाव जीवके स्वतत्त्व इसलिए कहे जाते हैं कि ये जीवको छोड़कर अन्य द्रव्योंमें नहीं पाए जाते, किन्तु स्वतत्त्व होने मात्रसे ये जीवके लक्षण नहीं हो सकते, क्योंकि लक्षण वही हो सकता है जो समस्त लक्ष्यमें पाया जावे तथा असम्भव दोषसे रहित हो। औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिकभाव सब जीवोंमें नहीं पाए जाते, मात्र पारिणामिक भावोंमें जीवत्व नामका पारिणामिकभाव सब जीवोंमें पाया जाता है।

अब उन भावोंकी उत्पत्तिका विधान दो गाथाओंसे कहते हैं—

कम्मुवसमम्मि उवसमभावो खीणम्मि खइयभावो दु।
उदयो जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भावो ॥८१४॥

अर्थ—प्रतिपक्षी कर्मके उपशमसे औपशमिकभाव, प्रतिपक्षी कर्मोंके सर्वथा क्षयसे क्षायिकभाव, प्रतिपक्षी कर्मोंके देशघाति स्पर्धकोंका उदय होनेपर भी जीवका गुण प्रगट हो वह मिश्र (क्षायोपशमिक) भाव है।

१. सर्वार्थसिद्धि अ० २ सू० १ की टीका। २. तत्त्वार्थसार अ० २ श्लो० २ का अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम्मुदयजकम्मिगुणो ओदयिगो तत्थ होदि भावो दु।
कारणणिरवेक्खभवो सभाविगो होदि परिणामो ॥८१५॥

अर्थ—कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ जीवका भाव औदयिकभाव है एवं कर्मके उपक्षम-क्षय-क्षयोपशम और उदयकी अपेक्षाबिना जीवका जो भाव है वह पारिणामिक-भाव है।[1]

अथानन्तर इन पांच भावोंके भेदरूप उत्तरभावोंको ४ गाथाओंमें कहते हैं—

उवसमभावो उवसम-सम्मं चरणं च तारिसं खइगो।
खाइग णाणं दंसण सम्मचरित्तं च दाणादी ॥८१६॥

अर्थ—औपशमिकभावके उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्ररूप दो भेद हैं। उसीप्रकार क्षायिकभावके भी क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिक-चारित्र, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग और क्षायिकवीर्यरूप ९ भेद है।[2]

विशेषार्थ—उपशान्तक्रोध, उपशान्तमान, उपशान्तमाया, उपशान्तलोभ, उप-शान्तराग, उपशान्तदोष, उपशान्तमोह, उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, औपशमिक-सम्यक्त्व, औपशमिकचारित्र ये सब औपशमिकभाव हैं। ये पूर्वोक्तभाव और दूसरे भी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय और उपशान्तकषायगुणस्थानोंमें प्रत्येकसमयमें उत्पन्न होनेवाले जो जीवके भाव हैं वे सब औपशमिकजीव भाव हैं।[3]

क्षीणक्रोध, क्षीणमान, क्षीणमाया, क्षीणलोभ, क्षीणराग, क्षीणदोष, क्षीणमोह, क्षीणकषाय, वीतरागछद्मस्थ क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान-क्षायिकलाभ-क्षायिकभोग-क्षायिकपरिभोग और क्षायिकवीर्य ये पांच क्षायिकलब्धियां, केवलज्ञान, केवलदर्शन, सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वृत्त, सर्वदुःख-अन्तकृत, इसीप्रकार अन्यभी क्षायिकभाव जो (अपूर्वकरणगुणस्थान, अनिवृत्तिकरणगुणस्थान, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान और क्षीण-मोह गुणस्थानमें) प्रतिसमय उत्पन्न होते हैं वे सब क्षायिकभाव हैं।[4]

---

१. देखो गाथा ८१३ का विशेषार्थ। २. "सम्यक्त्वचारित्रे" (त० सू० अ० २/३) "ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च" (त. सू० अ० २-४) ३. ध० पु० १४ पृ० १४। ४. ध० पु० १४ पृ० १५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाओवसमिगभावो, चउणाण तिदंसणं तिअण्णाणं।
दाणादिपंच वेदगसरागचारित्तदेसजमं ॥८१७॥

अर्थ—क्षायोपशमिकभावके मतिज्ञानादि ४ ज्ञान, चक्षुआदि ३ दर्शन, कुमति-आदि ३ अज्ञान, क्षायोपशमिकदान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य, वेदकसम्यक्त्व, सराग-चारित्र और देशसंयम ये १८ भेद हैं।[1]

विशेषार्थ—क्षायोपशमिकएकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकद्वीन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकत्रीन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकचतुरिन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकपञ्चेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक मत्यज्ञानी, क्षायोपशमिकश्रुताज्ञानी, क्षायोपशमिक विभंगज्ञानी, क्षायोपशमिक अभिनिबोधिकज्ञानी, क्षायोपशमिक श्रुतज्ञानी, क्षायोपशमिक अवधिज्ञानी, क्षायोपशमिक चक्षुदर्शनी, क्षायोपशमिक अचक्षुदर्शनी, क्षायोपशमिक अवधिदर्शनी, क्षायोपशमिक सम्यग्मिथ्यात्वलब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, क्षायोपशमिकसंयमासंयमलब्धि, क्षायोपशमिक दानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि, क्षायोपशमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक परिभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि, क्षायोपशमिक आचारधर, क्षायोपशमिक सूत्रकृद्धर, क्षायोपशमिक स्थानधर, क्षायोपशमिक समवायधर, क्षायोपशमिक व्याख्याप्रज्ञप्तिधर, क्षायोपशमिक नाथधर्मधर, क्षायोपशमिक उपासकाध्ययनधर, क्षायोपशमिक अन्तकृद्धर, क्षायोपशमिक अनुत्तरोपपादिकदशधर, क्षायोपशमिक प्रश्नव्याकरणधर, क्षायोपशमिक विपाकसूत्रधर, क्षायोपशमिक दृष्टिवादधर, क्षायोपशमिकगणी, क्षायोपशमिक वाचक, क्षायोपशमिक दशपूर्वधर, क्षायोपशमिक चतुर्दशपूर्वधर; ये तथा इसीप्रकारके और भी अन्य क्षायोपशमिकभाव हैं।

ओदयिगा पुण भावा, गदिलिंगकसाय तह य मिच्छत्तं।
लेस्सासिद्धासंजमअण्णाणं होंति इगिवीसं ॥८१८॥

अर्थ—औदयिकभावके ४ गति, ३ वेद, ४ कषाय, एकमिथ्यात्व, ६ लेश्या, १ असिद्धत्व, असंयम, अज्ञान इसप्रकार २१ भेद हैं।[2]

---

१. "ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च" (त. सू. अ. २-५)
२. "गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः" [त. सू. अ. २-६]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तादी हवंति परिणामा।
इदि मूलुत्तरभावा भंगवियप्पे बहू जाणे ॥८१९॥

अर्थ—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ये तीन पारिणामिकभाव हैं इसप्रकार मूलभाव ५ और उत्तरभाव ५३ हैं और इनके भी द्विसंयोगादि भङ्ग किये जावें तो बहुत हो सकते हैं ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—आयु आदि प्राणोंका धारण करना जीवन है। वह अयोगीके अन्तिमसमयसे आगे नहीं पाया जाता, क्योंकि सिद्धोंके प्राणोंके कारणभूत आठों कर्मोंका अभाव है। इसलिए सिद्ध, जीव नहीं हैं, अधिकसे अधिक वे जीवितपूर्व कहे जा सकते हैं।

शङ्का—सिद्धोंके भी जीवत्व क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सिद्धोंमें जीवत्व उपचारसे है और उपचारको सत्य मानना ठीक नहीं है।

सिद्धोंमें प्राणोंका अभाव अन्यथा बन नहीं सकता इससे ज्ञात होता है कि जीवत्व पारिणामिक नहीं है, किन्तु वह कर्मके विपाकसे उत्पन्न होता है, क्योंकि 'जो जिसके सद्भाव और असद्भावका अविनाभावी होता है वह उसका है ऐसा कार्य-कारणभावके ज्ञाता कहते हैं' ऐसा न्याय है। इसलिये जीवत्वभाव औदयिक है, यह सिद्ध होता है। तत्त्वार्थसूत्रमें जीवत्वको जो पारिणामिक कहा है वह प्राणोंको धारण करनेकी अपेक्षासे नहीं कहा है, किन्तु चैतन्यगुणकी अपेक्षासे वहां वैसा कथन किया है, इसलिये वह कथन भी विरोधको प्राप्त नहीं होता।

चार अघातियाकर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुआ असिद्धभाव है। वह दो प्रकारका है—अनादि-अनन्त और सादि-सान्त। इनमेंसे जिनके असिद्धभाव अनादि-अनन्त है वे अभव्यजीव हैं और जिनके दूसरे प्रकारका है वे भव्य जीव हैं। इसलिये भव्यत्व और अभव्यत्व ये भी विपाकप्रत्ययिक ही हैं।

शङ्का—तत्त्वार्थसूत्रमें इन्हें पारिणामिक कहा है, इसलिये इस कथनका उसके साथ विरोध कैसे नहीं होगा ?

---

१. "जीवभव्याभव्यत्वानि च" [त० सू० अ० २-७]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान—नहीं, क्योंकि असिद्धत्वका अनादि-अनन्तपना और अनादि-सान्तपना निष्कारण है, यह समझकर उन्हें वहां पारिणामिक स्वीकार किया गया है।[१]

"दशसु प्राणेसु यथोपात्तप्राणपर्यायेण त्रिषु कालेषु जीवनानुभवनात् जीवति, अजीवीत्, जीविष्यति" इति वा जीवः। तथा सति सिद्धानामपि जीवत्वं सिद्धं जीवितपूर्वत्वात्। संप्रति न जीवन्ति सिद्धाः; भूतपूर्वगत्या जीवत्वमेषाम् इत्यौपचारिकत्वं स्यात्, मुख्यं चेष्यते; नैष दोषः; भावप्राणज्ञानदर्शनानुभवनात् साम्प्रतिकमपि जीवत्वमस्ति[२]।"

अर्थात् प्राण पर्यायके द्वारा भूत, भविष्यत-वर्तमान इन तीनों कालोंमें दशप्राणोंमें जीवनका अनुभव करनेसे जीता है, जीता था और जीवेगा वह जीव है। जीवका इसप्रकार लक्षण होनेपर सिद्ध भी जीव हैं, क्योंकि वे पूर्वमें अर्थात् भूतकालमें दशों प्राणके द्वारा जीते थे, किन्तु वर्तमानकालमें सिद्ध भगवान दश प्राणोंके द्वारा नहीं जीते हैं भूतपूर्व नयकी अपेक्षा वे दशों प्राण द्वारा जीते थे इसलिए उनके जीवत्व उपचारसे है। मुख्यनयसे भी सिद्ध भगवान जीव हैं इसमें भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि-ज्ञान-दर्शनरूप भाव प्राणोंका अनुभव करनेसे वर्तमानमें भी जीव हैं।

शङ्का—औपशमिकादि भाव नहीं बन सकते, क्योंकि आत्मा अमूर्त है। ये औपशमिकादिभाव कर्मबन्धकी अपेक्षा होते हैं, किन्तु अमूर्त आत्माके कर्मोंका बन्ध संभव नहीं है?

समाधान—आत्माके अमूर्तत्वके विषयमें अनेकान्त है। यह कोई एकान्त नहीं कि आत्मा अमूर्त ही है। कर्मबन्धरूप पर्यायकी अपेक्षा उससे युक्त होनेके कारण कथंचित् मूर्त है और शुद्धस्वरूपकी अपेक्षा कथंचित् अमूर्त है।[३]

शङ्का—यदि ऐसा है तो कर्मबन्धके आवेशसे आत्माका एक्य हो जानेपर आत्माका कर्मोंसे भेद नहीं रहता?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, यद्यपि बन्धकी अपेक्षा अभेद है तो भी लक्षणके भेदसे आत्माका भेद जाना जाता है। कहा भी है—

---

१. ध० पु० १४ पृ० १३-१४। २. राजवार्तिक १-४-७। ३. सर्वार्थसिद्धि अ० २-७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो हवदि तस्स णाणत्तं ।
तम्हा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होदि जीवस्स ॥

अर्थात् आत्मा और कर्मबन्धकी अपेक्षा एक हैं तो भी लक्षणकी अपेक्षा भिन्न हैं। इसलिए जीवका अमूर्तत्व अनेकान्तरूप है अर्थात् एक अपेक्षासे अमूर्त और दूसरी अपेक्षासे अमूर्त नहीं है, किन्तु मूर्त है।

औपशमिकादि पांच भावोंके उत्तरभेदसम्बन्धी सन्दृष्टि—

भावोंके नाम	उत्तर-भेदोंकी सख्या	उत्तरभेदोंके नाम
औपशमिक	२	उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्र ।
क्षायिक	९	क्षायिकज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य एवं क्षायिक-सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ।
क्षायोपशमिक	१८	मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययरूप ४ ज्ञान, चक्षु-अचक्षु-अवधिरूप ३ दर्शन कुमति-कुश्रुत-कुअवधि (विभंग) रूप ३ अज्ञान, क्षायोप-शमिकदान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य, वेदकसम्यक्त्व, सराग-चारित्र तथा देशसंयम ।
औदयिक	२१	नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य व देवरूप ४ गति, स्त्री-पुरुष व नपुंसकरूप ३ वेद, क्रोध-मान-माया व लोभरूप ४ कषाय, मिथ्यात्व, कृष्ण-नील-कपोत-पीत-पद्म व शुक्लरूप ६ लेश्या, असिद्धत्व, असंयम और अज्ञान ।
पारिणामिक	३	जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ।
	५३	

अब भावोंके स्व-परसंयोगी भङ्गोंको प्राप्त करनेकी विधि कहते हैं—

ओघादेसे संभवभावं मूलुत्तरं ठवेदूण ।
पत्तेये अविरुद्धे परसगजोगेवि भंगा हु ॥८२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—गुणस्थान और मार्गणामें होनेवाले मूल और उत्तरभावोंको स्थापन करके प्रत्येक भंग और विरोधरहित स्वसंयोगी और परसंयोगी भंगोंको प्राप्त करना चाहिये।

विशेषार्थ—एकभंगको प्रत्येक भंग और जिनमें संयोग पाया जावे उनको संयोगी भंग कहते हैं। संयोग दो प्रकारके हैं (१) स्वसंयोग (२) परसंयोग। जहां अपने ही किसी एक उत्तरभेदके साथ संयोग हो उसे स्वसंयोग कहते हैं जैसे—औपशमिक-सम्यक्त्वका औपशमिकचारित्रके साथ अथवा गतिरूप औदयिकभावका दूसरी जातिरूप औदयिकभावके साथ संयोग होना। जहां अन्य भावके किसी भेदके साथ संयोग कहा जावे वह परसंयोगी है जैसे—औपशमिकभावके भेदका औदयिकभावके भेदके साथ अथवा औदयिकका क्षायिकभावके साथ संयोग होना।

अब गुणस्थानोंमें मूलभाव और स्व-पर संयोगरूप भङ्गोंकी संख्या कहते हैं—

मिच्छतिये तिचउक्के दो सुवि सिद्धे वि मूलभावा हु।
तिग पण पणगं चउरो तिग दोण्णि य संभवा होंति ॥८२१॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें ३-३ मूलभाव, असंयतादि चार गुणस्थानोंमें ५-५, उपशमश्रेणोसम्बन्धी चार गुणस्थानोंमें ५-५, क्षपकश्रेणि तथा क्षीणकषायगुणस्थानमें ४, सयोगी व अयोगी गुणस्थानमें ३-३ तथा सिद्धोंमें २ मूलभाव पाए जाते हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, सासादन व मिश्र गुणस्थानमें क्षायोपशमिक, औदयिक व पारिणामिकरूप तीन-तीन मूलभाव, असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त तथा अपूर्वकरण से उपशान्तकषायगुणस्थावपर्यन्त उपशमश्रेणिमें ५, क्षपकश्रेणि तथा क्षीणकषायगुणस्थानमें औपशमिकभावबिना शेष चार, सयोग व अयोगकेवलीगुणस्थानमें औदयिक, क्षायिक व पारिणामिकरूप तीन-तीन तथा सिद्धोंके क्षायिक व पारिणामिकरूप दो मूलभाव जानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानकी अपेक्षा मूलभावसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मूल-भावोंकी संख्या	मूलभावोंके नाम
मिथ्यात्व	३	औदयिक-मिश्र व पारिणामिक
सासादन	३	" " "
मिश्र	३	" " "
असंयत	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
देशसंयत	५	" " " " "
प्रमत्त	५	" " " " "
अप्रमत्त	५	" " " " "
उपशमक अपूर्व.	५	" " " " "
" अनिवृ.	५	" " " " "
" सूक्ष्मसा.	५	" " " " "
उपशान्तकषाय	५	" " " " "
क्षपक अपूर्वकरण से क्षीणकषायपर्यंत	४	" " " " "
सयोगकेवली	३	औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक
अयोगकेवली	३	" " "
सिद्ध	२	क्षायिक-पारिणामिक

प्रकरणप्राप्त उत्तरभावोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें औदयिकभावके २१; क्षायोपशमिकके ३ अज्ञान, २ दर्शन, पांचलब्धि ये १० और पारिणामिकके ३ इसप्रकार (२१+१०+३) ३४ भाव हैं। सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वकेबिना औदयिकभावके २०; क्षायोपशमिकभावके ३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञान, दो दर्शन और पांचलब्धि ये १० और जीवत्व-भव्यत्वरूप दो पारिणामिक इसप्रकार (२०+१०+२) ३२ भाव हैं। मिश्रगुणस्थानमें मिथ्यात्वबिना औदयिकके २०; क्षायोपशमिक उपर्युक्त १०; पारिणामिकके जीवत्व और भव्यत्व ये दो ऐसे सर्व (२०+१०+२) ३२ भाव हैं। असंयतगुणस्थानमें मिथ्यात्वबिना २० औदयिकभाव; मत्यादि तीनज्ञान, तीनदर्शन, पांचलब्धि और सम्यक्त्व ये १२ मिश्र (क्षायोपशमिक) के; औपशमिकका उपशमसम्यक्त्व, क्षायिकका क्षायिकसम्यक्त्व एवं पारिणामिक भावके जीवत्व और इसप्रकार (२०+१२+१+१+२) ३६ भाव पाये जाते हैं। देशसंयतगुणस्थानमें मनुष्य-तिर्यञ्चगति, चारकषाय, तीनलिङ्ग, तीनशुभलेश्या, असिद्धत्व और अज्ञान ये १४ औदयिकभाव; तीन ज्ञान, तीन दर्शन व ५ लब्धि, वेदकसम्यक्त्व एवं देशसंयम ये १३ क्षायोपशमिकभाव, औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, जीवत्व-भव्यत्व इसप्रकार सर्व (१४+१३+१+१+२) ३१ भाव हैं। इन ३१ भावोंमेंसे तिर्यंचगति व देशसंयम कमकरके मनःपर्ययज्ञान व सरागसंयम मिलानेसे प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें भी ३१-३१ भाव हैं तथा इन्हीं ३१ भावोंमेंसे पीत-पद्मलेश्या, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व तथा सरागचारित्र इन चारको कमकरके औपशमिक व क्षायिकचारित्र मिलानेसे अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २९-२९ भाव हैं। इन २९ भावोंमेंसे लोभबिना शेष ३ कषाय और ३ लिङ्ग घटाकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें २३ भाव, इन्हीं २३ भावोंमेंसे लोभकषाय और क्षायिकचारित्र कमकरके उपशान्तकषायगुणस्थानमें २१ भाव हैं इनमेंसे औपशमिकके दो भावोंको कमकरके तथा क्षायिकचारित्र मिलानेपर क्षीणकषायगुणस्थानमें २० भाव हैं। मनुष्यगति, शुक्ललेश्या और असिद्धत्व ये तीन औदयिकभाव, क्षायिकके ९, जीवत्व-भव्यत्व ये दो पारिणामिकभाव इसप्रकार (९+३+२) १४ भाव सयोगीगुणस्थानमें पाए जाते हैं तथा इन्हीं १४ में से शुक्ललेश्या कम करनेपर अयोगीगुणस्थानमें १३ भाव हैं। सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य एवं चारित्ररूप ५ क्षायिक तथा जीवत्वरूप एक पारिणामिक इसप्रकार ६ भाव सिद्धोंमें पाए जाते हैं। यह कथन नानाजीवोंके नानाकालकी अपेक्षासे है अब एक जीवके एक कालमें जितने भाव सम्भव हैं उनकी अपेक्षा आगे कथन करेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानकी अपेक्षा उत्तरभावसम्बन्धी सन्दृष्टि---

गुणस्थान	औपशमिक-भावके २ भेदोंमें से	क्षायिक-भावके ९ भेदोंमें से	मिश्र (क्षायोपशम) भावके १८ भेदोंमेंसे	औदयिकभावके २१ भेदोंमेंसे	पारिणामिक-भावके ३ भेदोंमेंसे	भावोंकी कुल संख्या
मिथ्यात्व	०	०	१० (३ अज्ञान, २ दर्शन व ५ लब्धि)	२१	३	३४
सासादन	०	०	१० (उपर्युक्त)	उपर्युक्त २१ में से मिथ्यात्वके बिना शेष २०	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३२
मिश्र	०	०	१० (३ मिश्रज्ञान २ दर्शन व ५ लब्धि)	"	२ "	३२
असंयत	उपशम-सम्यक्त्व	क्षायिक-सम्यक्त्व	१२ (३ मति आदि ज्ञान, ३ दर्शन, ५ लब्धि व वेदकसम्यक्त्व)	"	२ "	३६
देशसंयत	१ "	१ "	उपर्युक्त १२ व १ देश-संयम (१३)	१४ (तिर्यञ्च व मनुष्यगति, ४ कषाय, ३ वेद, शुभलेश्या ३, असिद्धत्व और अज्ञान)	२ "	३१
प्रमत्त	१ "	१ "	१२ चतुर्थगुणस्थान-सम्बन्धी तथा मनः-पर्ययज्ञान, सराग-चारित्र (१४)	१३ (उपर्युक्त १४में से एक तिर्यञ्चगति कम करनेसे)	२ "	३१
अप्रमत्त	१ "	१ "	१४ "	१३ "	२ "	३१
अपूर्वकरण	उपशम सम्यक्त्व उपशम चारित्र	क्षायिक-सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र	१२ (उपर्युक्त १४में से वेदकसम्यक्त्व और सरागचारित्र कमकिया)	११ (उपर्युक्त १३में से पीत व पद्म लेश्या कमकी)	२ "	२९
अनिवृत्तिक.	२ "	२ "	१२ "	११ "	२ "	२९
सूक्ष्मसाम्प.	२ "	२ "	१२ "	५ (मनुष्यगति, लोभ, अज्ञान, असिद्धत्व और शुभलेश्या १)	२ "	२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशान्त-कषाय	२ ,,	क्षायिक-सम्यक्त्व	१२ ,,	४ (उपर्युक्त ५में से १ लोभको कम किया)	२ ,,	२१
क्षीणकषाय	०	क्षायिक-सम्यक्त्व क्षायिक-चारित्र	१२ ,,	४ ,,	२ ,,	२०
सयोगी	०	९ (सभी)	०	३ (मनुष्यगति, असिद्धत्व और शुक्ल-लेश्या)	२(अभव्यत्व बिना शेष)	१४
अयोगी	०	९ ,,	०	२ (मनुष्यगति व असिद्धत्व)	२ ,,	१३
सिद्ध	०	५(सम्यक्त्व दर्शन, ज्ञान चारित्र व वीर्य)	०	०	१ जीवत्व	६,

तत्थेव मूलभंगा दस छव्वीसं कमेण पणतीसं।
उगुवीसं दस पणगं ठाणं पडि उत्तरं वोच्छं ॥८२२॥

अर्थ—पूर्वोक्त गाथामें कथित (मिथ्यात्वादि ३ गुणस्थान, असंयतादि चारगुण-स्थान, उपशमश्रेणीके चारगुणस्थान, क्षपकश्रेणीके चारगुणस्थान, सयोगी-अयोगीगुण-स्थान और सिद्ध इन) छह स्थानोंमें क्रमसे मूलभङ्ग १०-२६-३५-१९-१० व ५ हैं। इसके अनन्तर उत्तरभावोंको कहेंगे।

विशेषार्थ—अब एक जीवके एककालमें जितने भाव सम्भव हैं उसकी अपेक्षा कथन करते हैं—मिथ्यात्वादि तीनगुणस्थानोंमें मूलभाव तीन हैं इनमें प्रत्येक भंग तो औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पृथक्-पृथक् जानना द्विसंयोगीभंग भी औदयिक-मिश्र (क्षायोपशमिक), औदयिक-पारिणामिक एवं क्षायोपशमिक-पारिणामिक-रूप तीन ही हैं। औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकरूप त्रिसंयोगीभंग एक ही है तथा औदयिकमें औदयिक, क्षायोपशमिकमें क्षायोपशमिक और पारिणामिकमें पारि-णामिकरूप तीन स्वसंयोगीभङ्ग, इसप्रकार सर्व (३+३+१+३) १० भङ्ग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक, द्विसंयोगी व त्रिसंयोगी आदि भङ्गोंकी संख्या प्राप्त करनेका विधान जिसप्रकार बन्धप्रत्ययअधिकार गाथा ७६९ में कहा उसीप्रकार जानना। विवक्षितसंख्याके प्रमाण-रूप अङ्कसे लेकर एक-एक सख्यारूप अङ्क लिखनेपर अंशराशि समझना तथा उसके नीचे एकसे लेकर एक-एक अधिकरूप अङ्क लिखनेसे हरराशिका प्रमाण होता है। प्रथम अंशसे अगली अंशराशिको और प्रथम हरराशिको अगली हरराशिको गुणाकरके जो हरराशि प्राप्त हुई उससे अंशराशिके प्रमाणमें भाग देनेपर प्रत्येक, द्विसंयोगादि भङ्गोंका प्रमाण आता है। यहां मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें मूलभाव तीन हैं अतः ३-२-१ इसप्रकार क्रमसे अङ्क लिखे और इनके नीचे १-२-३ अङ्क लिखनेसे अंश और हरराशि हुई। प्रथम तीनके अङ्कको एकका भाग देनेपर (३ ÷ १) लब्ध ३ आया सो यह प्रत्येक भङ्गका प्रमाण है तथा ३ से दो को गुणाकर उसमें एक गुणा दो अर्थात् २ का भाग देनेसे (६ ÷ २) लब्ध ३ आया जो कि द्विसयोगीभङ्गका प्रमाण है। पुनः ६ से एकको गुणाकरके ६×१=६ आये इसमें २ गुणा तीन अर्थात् ६ का भाग देनेपर एक लब्ध आया सो यह त्रिसंयोगी भङ्गका प्रमाण है। इसी विधिसे आगे मूल व उत्तरभावोंके कथनमें भी प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भङ्गोंका विधान जानना चाहिये। आगे असंयत, देशसयत, प्रमत्त व अप्रमत्त इन चारगुणस्थानोंमें मूलभाव पांच-पांच हैं। पूर्वोक्त विधानसे परसंयोगीमें प्रत्येक भङ्ग ५ और द्विसयोगीभङ्ग १० हैं, किन्तु यहां औपशमिक-क्षायिकका संयोगरूप एक भङ्ग नहीं होनेसे ९ ही भङ्ग हैं, क्योंकि यहां औपशमिक और क्षायिकका कोई भेद परस्परमें नहीं मिलता तथा त्रिसंयोगी भङ्ग भी १० ही हैं, किन्तु उनमें औपशमिक-क्षायिक-औदयिक, औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक, औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकरूप तीन त्रिसंयोगी भङ्ग नहीं होनेसे यहां ७ ही त्रिसंयोगी भङ्ग हैं। चतुःसयोगीभंग पांच हैं, किन्तु औपशमिक-क्षायिक औदयिक क्षायोपशमिक, औपश-मिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक, औपशमिक-क्षायिक-औदयिक-पारिणामिकरूप तीन चतुःसयोगीभंग नहीं होनेसे यहां २ ही हैं। उपशम व क्षायिक एक साथ नहीं होते इसलिए पांचसंयोगी भंगोंका अभाव है तथा मिश्रमें मिश्र (क्षायोपशमिकमें क्षायोपशमिक), औदयिकमें औदयिक और पारिणामिकमें पारिणामिकरूप स्वसंयोगी भंग तीन हैं। उपशमसम्यक्त्वमें उपशमचारित्र और क्षायिकसम्यक्त्वमें क्षायिकचारित्रादि नहीं होते अतः औपशमिकमें औपशमिक और क्षायिकमें क्षायिकभावरूप दो भंग नहीं कहे हैं इस प्रकार (५+९+७+२+०+१+१+१) सर्व २६ भंग जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगें उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें भी मूलभाव पांच-पांच ही हैं। इनमें परसंयोगी भंगोंमें प्रत्येक भंग ५, द्विसंयोगी भंग १०, त्रिसंयोगीभंग १०, चतु:संयोगी-भंग ५ और पञ्चसंयोगी एक भंग है। यहां क्षायिकसम्यक्त्वके होनेपर उपशमचारित्र हो सकता है अतः उपशम और क्षायिकभावका भी संयोग जानना, किन्तु क्षायिकमें क्षायिकभावरूप स्वसंयोगी भंग नहीं है इसलिए यहां क्षायिकसम्यक्त्वमें अन्य कोई क्षायिकभावका चारित्रादि भेद नहीं होता इसप्रकार शेष चारभंग जानना (५+१०+१०+५+१+१+१+१+१+०) ये सर्व ३५ भंग हुए तथा क्षपकश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक व पारिणामिकरूप चार-चार भाव हैं। यहां परसंयोगमें प्रत्येकभंग चार, द्विसंयोगीभंग छह, त्रिसंयोगीभंग चार और चतु:संयोगी भंग १ है तथा स्वसंयोगमें क्षायिकसम्यक्त्वमें क्षायिकचारित्र भी सम्भव है अत: चारों भावोंकी अपेक्षा चार भंग हैं इसप्रकार (४+६+६+४+१+४) सर्व १९ भंग जानना। सयोग व अयोगकेवलीगुणस्थानमें क्षायिक पारिणामिक और औदयिक ये तीन भाव हैं। पर-संयोगमें प्रत्येकभंग तीन, द्विसंयोगीभंग तीन और त्रिसंयोगीभंग एक तथा स्वसंयोगमें उपर्युक्त तीन भावोंकी अपेक्षा तीन भंग इसप्रकार (३+३+१+३) मिलकर दशभंग हुए। सिद्धोंके क्षायिक व पारिणामिक ये दो मूलभाव हैं यहां प्रत्येकभंग २, द्विसंयोगी-भंग एक तथा स्वसंयोगी भंग दो इसप्रकार सर्व पांचभंग हुए। (जीवत्व-अस्तित्व, वस्तुत्व आदि पारिणामिक स्वसंयोगी भंग सिद्धोंमें भी सम्भव है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानकी अपेक्षा मूलभावसम्बन्धी प्रत्येक, परसंयोगी व स्वसंयोगी भंगोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	मूलभाव	प्रत्येकभङ्ग	परसंयोगीभङ्ग				स्वसंयोगी-भङ्ग	सर्वभंगोंकी कुलसंख्या	विशेष
			द्विसंयोगीभङ्ग	त्रिसयोगीभङ्ग	चतु:संयोगीभङ्ग	पंचसंयोगी भङ्ग			
१. मिथ्या	मिश्र, औदयिक पारिणामि. (३)	३	मिश्र-औद. मिश्र-पारिणा. औद -पारिणा (३)	मिश्र-औदयिक व पारिणामिकरूप (१)	०	०	मिश्र-मिश्र औद.-औद. पारि.-पारि. (३)	१०	औपशमिक व क्षायिकका कोई भी भेद परस्परमें नहीं मिलता अत: इन दोनोंके संयोगरूप भङ्ग सन्दृष्टिमें नहीं आया।
२. सासादन	३ ,,	३	३ ,,	१ ,,	०	०	३ ,,	१०	
३. मिश्र	३ ,,	३	३ ,,	१ ,,	०	०	३ ,,	१०	
४ असंयत	औप. क्षायि. मिश्र. औद. पारि. (५)	५	औप.-मिश्र औप -पारि. क्षायि -औद. क्षायि.-मिश्र औद.-पारि. मिश्र.-पारि. औप.-औद. क्षायि.-पारि. मिश्र-औद. (६)	औप -मिश्र-औद. क्षा.-मिश्र-औद. मिश्र-औद.-पारि. क्षा.-मिश्र-पारि. औप.-मिश्र-पारि. औप.-औद -पारि. क्षा.-औद.-पारि. (७)	औप -मिश्र-औद. व पारिणामिक क्षायि.-मिश्र औद.-पारि. (२)	०	३ ,,	२६	
देशसंयत	५ ,,	५	६ ,,	७ ,,	२ ,,	०	३ ,,	२६	
प्रमत्त	५ ,,	५	६ ,,	७ ,,	२ ,,	०	३ ,,	२६	
अप्रमत्त	५ ,,	५	६ ,,	७ ,,	२ ,,	०	३ ,,	२६	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

अपूर्वकरण (उपशमक)	५ ,,	५	औप.-मिश्र ,, - औद. ,, - पारि. क्षायि.-मिश्र ,, - औद. ,, - पारि. मिश्र-औद. मिश्र-पारि. औद.-पारि. औप.-क्षायि. (१०)	औप.-क्षायि.-मिश्र ,, ,, औद. ,, औद.-पारि. ,, मिश्र-औद. क्षायि. ,, ,, ,, ,, पारि. ,, औद. ,, मिश्र-औद.-पारि. औप.-मिश्र ,, ,, क्षायि. ,, (१०)	औप.-क्षा.-मिश्र व पारिणामिक औप.-क्षा.-मिश्र व औदयिक औप.-मिश्र-औद. व पारिणामिक औप.-क्षा.-औद. व पारिणामिक क्षा -मिश्र-औद. व पारिणामिक (५)	औप. क्षायि. मिश्र औद. व पारि (१)	औद.-औद मिश्र-मिश्र औप.-औप पारि.-पारि (४)	३५	क्षायिक × क्षायिकरूप स्वसंयोगी भङ्ग नहीं होता, क्योंकि उपशमश्रेणीमें क्षायिकसम्यक्त्वके अतिरिक्त अन्य कोई भी क्षायिकभाव नहीं होता है।
अनिवृत्ति. (उपशमक)	५	५ ,,	१० ,,	१० ,,	५ ,,	१ ,,	४ ,,	३५	
सूक्ष्मसाम्प. (उपशमक)	५	५ ,,	१० ,,	१० ,,	५ ,,	१ ,,	४ ,,	३५	
उपशांतक.	५	५ ,,	१० ,,	१० ,,	५ ,,	१ ,,	४ ,,	३५	
अपूर्वकरण (क्षपक)	क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामि. (४)	४	क्षायि.-मिश्र ,, औद. ,, पारि. मिश्र-औद. ,, पारि. औद.-पारि. (६)	क्षा -मिश्र-औद ,, ,, पारि. ,, औद. ,, मिश्र ,, ,, (४)	क्षा.-मिश्र-औद. व पारिणामिक (१)	०	क्षा.-क्षा. मिश्र-मिश्र. औद.-औद. पारि.-पारि. (४)	१९	
अनिवृत्ति. (क्षपक)	४ ,,	४	६ ,,	४ ,,	१ ,,	०	४ ,,	१९	
सूक्ष्मसाम्प. (क्षपक)	४ ,,	४	६ ,,	४ ,,	१ ,,	०	४ ,,	१९	

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

क्षीणकषाय	४ ,,	४	६ ,,	४ ,,	१ ,,	०	४ ,,	१९	
सयोगी	क्षायिक औदयिक पारिणा. (३)	३	क्षायि -औद. क्षायि.-पारि औद -पारि. (३)	क्षा.-औद.-पारि. (१)	०	०	क्षा -क्षा. औद -औद. पारि -पारि (३)	१०	
अयोगी	३ ,,	३	३ ,,	१ ,,	०	०	३ ,,	१०	
सिद्ध	क्षायिक पारिणा. (२)	२	क्षा.-पारि. (१)	०	०	०	क्षा.-पारि पारि.-पारि. (२)	५	

नोट—सिद्धोंमें एक जीवत्वरूप ही पारिणामिकभाव है भव्यत्वभाव नहीं रहता अतः पारिणामिक-पारिणामिकरूप स्वसंयोगीभङ्ग नहीं होता ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु अस्तित्व आदिके साथ स्वसंयोगीभङ्ग बन जाता है।

अब उत्तरभावोंके भेद दूसरे प्रकारसे कहते हैं—

उत्तरभंगा दुविहा, ठाणगदा पदगदात्ति पढमम्हि ।
सगजोगेण य भंगाणयणं णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥८२३॥

अर्थ—उत्तरभावोंके भंग स्थानगत और पदगतके भेदसे दो प्रकारके हैं। एक जीवके एक कालमें जितने भाव पाये जाते हैं उनके समूहका स्थान है उसकी अपेक्षा जो भंग होते हैं वे स्थानगतभंग हैं तथा एक जीवके एक कालमें जो भाव पाए जाते हैं उनकी एक जातिके या पृथक्-पृथक् जो नामपद है उसकी

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षा भंग होते हैं वे पदगतभंग हैं। एक जीवके एक कालमें एक स्थानमें कोई अन्य-स्थान सम्भव नहीं है इसलिये स्थानगत भंगोंमें स्वसंयोगी भंग नहीं पाये जाते हैं ऐसा कहा है।

अब गुणस्थानकी अपेक्षा भावोंके स्थान और उनमें पाए जानेवाले भावोंकी संख्या ३ गाथाओंमें बताते हैं—

मिच्छदुगे मिस्सतिये, पमत्तसत्ते य मिस्सठाणाणि।
तिग दुग चउरो एक्कं, ठाणं सव्वत्थ ओदयिगं॥८२४॥

तत्थावरणजभावा, पणछस्सत्तेव दाणपंचेव।
अयदचउक्के वेदगसम्मं देसम्मि देसजमं॥८२५॥

रागजमं तु पमत्ते, इदरे मिच्छादिजेट्ठठाणाणि।
वेभंगेण विहीणं, चक्खुविहीणं च मिच्छदुगे॥८२६॥

अवहिदुगेण विहीणं, मिस्सतिये होदि अण्णठाणं तु।
मणणाणेणवहिदुगे णुभयेणूणं तदो अण्णे॥८२७॥

अर्थ—मिथ्यात्वादि दो, मिश्रादि तीन, और प्रमत्तादि सातगुणस्थानोंमें क्रमसे क्षायोपशमिक भावोंके स्थान ३-२ व ४ जानना तथा औदयिकभावका उपर्युक्त सभी गुणस्थानोंमें एक-एक ही भेद पाया जाता है। उपर्युक्त मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंके ३-२ व ४ रूप स्थानोंमें क्षायोपशमिक ज्ञानावरण और दर्शनावरणके निमित्तसे उत्पन्न हुए क्षायोपशमिकभाव मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें ३ अज्ञान व २ दर्शनरूप ५ हैं, मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें आदिके ३ ज्ञान व ३ दर्शनरूप ६ हैं तथा क्षायोपशमिकरूप दानादि पांचों लब्धियां मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त पायी जाती हैं। असंयतादि चार गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्व एवं देशसंयतगुणस्थानमें देशसंयम पाया जाता है, किन्तु सरागसंयम प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें होता है। इसप्रकार यथासम्भव भाव मिलानेसे क्षायोपशमिकभावके उत्कृष्टस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानसे क्षीणकषायपर्यन्त क्रमशः १०-१०-११-१२-१३-१४-१४-१२-१२-१२-१२ व १२ भावरूप जानना। (अर्थात् मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें ३ अज्ञान, दो दर्शन और पांच दानादिलब्धिकी अपेक्षा १०-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० भावरूप; मिश्रगुणस्थानमें ३ मिश्रज्ञान, ३ दर्शन व ५ दानादिलब्धिकी अपेक्षा ११ भावरूप और इन्हीं ११में वेदकसम्यक्त्व मिलनेपर असंयतगुणस्थानमें १२ भावरूप; इन्हीं १२में देशसंयम मिलानेसे देशसंयतगुणस्थानमें १३; प्रमत्त व अप्रमत्तमें देशसंयम कमकरके सरागसंयम और मनःपर्ययज्ञान मिलानेसे १४-१४ भावरूप तथा अपूर्वकरणसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त चार ज्ञान, ३ दर्शन व ५ दानादि लब्धियोंकी अपेक्षा १२-१२ भावरूप उत्कृष्टस्थान हैं ।)

मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानोंमें विभंगज्ञानरहित ९ का, चक्षुदर्शनसे रहित ८का और उपर्युक्त १० का इसप्रकार ३ स्थान होते हैं, मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें एक तो अपना-अपना उत्कृष्टस्थान तथा अवधिज्ञान व दर्शनरहित मिश्रमें ९ का, असंयतमें १० का एवं देशसंयतमें ११ का इसप्रकार दो-दो स्थान हैं । प्रमत्तादि सात गुणस्थानोंमें एक-एक तो अपना उत्कृष्टस्थान है एवं एक एक मनःपर्ययज्ञानरहित, एक-एक अवधिज्ञान व अवधिदर्शनरहित तथा एक-एक अवधि व मनःपर्ययज्ञान और अवधिदर्शनरहित (अर्थात् प्रमत्त-अप्रमत्तमें १३-१२ व ११ का और एक-एक अपना उत्कृष्ट ऐसे ४-४ स्थान, अपूर्वकरणादि पांच गुणस्थानोंमें ११-१० व ९के तथा एक-एक अपना उत्कृष्ट ऐसे ४-४ स्थान जानना ।)

औदयिकभावके २१ भेदोंमें से एक जीव और एक कालकी अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थानमें ४ गति, ३ वेद, ४ कषाय व ६ लेश्यामेंसे एक-एक तथा मिथ्यात्व, असिद्धत्व, असंयम और अज्ञानरूप ८ भाव, सासादनादि तीनगुणस्थानोंमें मिथ्यात्वबिना सात-सात भाव, देशसंयतसे अनिवृत्तिकरणके सवेदभागपर्यन्त मिथ्यात्व-असंयमबिना ६-६ भाव, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके अवेदभागमें और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम व वेद बिना पांच-पांच भाव, उपशान्तकषाय व क्षीणकषायगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयमवेद और कषायबिना चार-चार भाव, सयोगीगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम-वेद कषाय व अज्ञानबिना ३ भाव, अयोगीगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम-वेद-कषाय-अज्ञान व लेश्याबिना मनुष्यगति-असिद्धत्वरूप दो भाव पाये जाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानकी अपेक्षा १८ मिश्र (क्षायोपशमिक) भावोंमें स्थानगत भावसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	स्थान-संख्या	भावसंख्या	भावोंका विशेष स्पष्टीकरण
मिथ्यात्व	१	१०	३ अज्ञान, २ दर्शन और ५ दानादि लब्धियां।
	१	९	२ अज्ञान [कुमति-कुश्रुत] २ दर्शन, ५ लब्धि।
	१	८	२ ,, ,, १ अचक्षुदर्शन, ५ लब्धि।
सासादन	३	१०-९ व ८	पूर्वोक्तानुसार।
मिश्र	१	११	३ मिश्रज्ञान, ३ दर्शन, ५ लब्धि।
	१	९	२ ,, २ ,, [चक्षु-अचक्षु] ५ लब्धि।
असंयत	१	१२	३ ज्ञान, ३ दर्शन, १ वेदकसम्यक्त्व, ५ लब्धि।
	१	१०	२ ,, [मति-श्रुत] २ दर्शन [चक्षु-अचक्षु] ५ लब्धि, १ वेदकसम्यक्त्व।
देशसंयत	१	१३	३ ज्ञान, ३ दर्शन, १ वेदकसम्यक्त्व, ५ लब्धि, १ देशसंयम
	१	११	उपर्युक्त १३ में से अवधिज्ञान व अवधिदर्शन कम करनेसे (१३–२=११)
प्रमत्त	१	१४	४ ज्ञान, ३ दर्शन, १ वेदकसम्यक्त्व, १ सरागसंयम, ५ लब्धि।
	१	१३	उपर्युक्त १४ में से १ मनःपर्ययज्ञान कम करनेसे (१४–१=१३)
	१	१२	उपर्युक्त १४ में से अवधिज्ञान व अवधिदर्शन कम करनेसे (१४–२=१२)
	१	११	उपर्युक्त १४ मेंसे अवधि-मनःपर्ययज्ञान व अवधिदर्शन कम करनेसे (१४–३=११)
अप्रमत्त	४	१४-१३-१२ व ११	प्रमत्तगुणस्थानवत्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपूर्वकरण	१	१२	४ ज्ञान, ३ दर्शन और ५ लब्धि ।
	१	११	उपर्युक्त १२-१ (मनःपर्ययज्ञान)
	१	१०	„ १२-२ (अवधिज्ञान-अवधिदर्शन)
	१	९	„ १२-३ (अवधि-मनःपर्ययज्ञान व अवधिदर्शन)
अनिवृत्तिकरण	४	१२-११-१० व ९	अपूर्वकरण गुणस्थानवत् ।
सूक्ष्मसाम्पराय	४	„	„ „
उपशान्तकषाय	४	„	„ „
क्षीणकषाय	४	„	„ „

गुणस्थानकी अपेक्षा २१ औदयिक भावोंमें स्थानगतभावोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	स्थान-संख्या	भाव-संख्या	भावोंका विशेष स्पष्टीकरण
मिथ्यात्व	१	८	चारगतिमेंसे १, तीनवेदोंमेंसे १, चारकषायोंमेंसे १, छह-लेश्यामेंसे १; १ मिथ्यात्व; १ अज्ञान, १ असंयम, १ असिद्धत्व ।
सासादन	१	७	पूर्वोक्त ८-१ मिथ्यात्व ।
मिश्र	१	७	„ „
असंयत	१	७	„ „
देशसंयत	१	६	„ ७-१ असंयम ।
प्रमत्त	१	६	„ „
अप्रमत्त	१	६	„ „
अपूर्वकरण	१	६	„ „
अनिवृत्तिकरण (सवेदभाग)	१	६	पूर्वोक्त ८-२ मिथ्यात्व-असंयम ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण (अवेदभाग)	१	५	पूर्वोक्त ६ में से वेदके बिना ५।
सूक्ष्मसाम्पराय	१	५	" "
उपशांतकषाय	१	४	पूर्वोक्त ५-१ कषाय।
क्षीणकषाय	१	४	" "
सयोगकेवली	१	३	" ४-१ अज्ञान।
अयोगकेवली	१	२	" ४-२ (अज्ञान व लेश्या) अर्थात् मनुष्यगति व असिद्धत्व शेष रहा।

पूर्वोक्त गाथामें कथित औदयिकभावके स्थानोंमें भावोंके बदलनेसे जो भंग बनते हैं उनको गुणस्थानोंमें कहते हैं--

लिंगकसाया लेस्सा संगुणिदा चदुगदीसु अविरुद्धा।
बारस बावत्तरियं तत्तियमेत्तं च अडदालं ॥८२८॥
णवरि विसेसं जाणे सुर मिस्से अविरदे य सुहलेस्सा।
चदुवीस तत्थ भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८२९॥जुम्मं॥

अर्थ--नरकादि चारगतियोंमें विरोधरहित यथासम्भव लिंग, कषाय और लेश्याका परस्परमें गुणा करनेपर क्रमसे १२-७२-७२ व ४८ भंग होते हैं, किन्तु इतना विशेष है कि देवगतिसम्बन्धी मिश्र व असंयतगुणस्थानमें तीन शुभलेश्याएं हैं, क्योंकि भवनत्रिकदेवोंकी अपर्याप्तावस्थामें तृतीय-चतुर्थगुणस्थान सम्भव नहीं है। अतः स्त्री-पुरुषवेद, चारकषाय व ३ शुभलेश्याकी अपेक्षा परस्परगुणा करनेपर २४ भंग होते हैं। ऐसा असहायपराक्रमी (वर्धमानस्वामी) जिनेन्द्रने कहा है।

विशेषार्थ—नरकगतिमें नपुंसकवेद, चारकषाय और ३ अशुभलेश्याका परस्परमें गुणाकरनेसे (१×४×३) १२ भंग हैं, तिर्यंच व मनुष्यगतिमें तीनवेद, चारकषाय व ६ लेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (३×४×६) ७२-७२ भंग, देवगतिमें स्त्री व पुरुषवेद, चारकषाय व ६ लेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (२×४×६) ४८ भंग हैं। यहां देवगतिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ लेश्यासे गुणा करनेका कारण यह है कि भवनत्रिकदेवोंके अपर्याप्तावस्थामें तीन अशुभलेश्या होती हैं। इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी सर्व (१२+७२+७२+४८) २०४ भंग मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानसम्बन्धी गुण्य (जिसमें गुणा किया जावे) राशि है, किन्तु देवगतिसम्बन्धी मिश्र व असंयतगुणस्थानमें स्त्री व पुरुषवेद, चारकषाय व ३ शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (२×४×३) २४ भंग होते हैं। यहां ३ शुभलेश्या का ही गुणा करनेका कारण यह है कि भवनत्रिककी अपर्याप्तावस्थामें तृतीय व चतुर्थ गुणस्थान नहीं है। इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी मिश्र व असंयतगुणस्थानमें क्रमसे १२+७२+७२+२४ भंग मिलकर सर्व १८० हैं। तिर्यञ्च व मनुष्यगतिके देशसंयतगुणस्थानमें तीन लिंग. चारकषाय व तीन शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (३×४×३) ३६-३६ भंग तथा इन दोनोंको मिलानेसे (३६+३६) देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी सर्व ७२ भंग हैं। मनुष्यगतिमें प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ३ लिंग, ४ कषाय व ३ शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (३×४×३) ३६ भंग हैं, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण के सवेदभागमें ३ लिंग, ४ कषाय व १ शुक्ललेश्याको परस्पर गुणा करनेसे १२ भंग हैं। तथा अवेदभागमें ४ कषाय व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा चारभंग हैं, अनिवृत्तिकरणके मानकषायवाले भागमें ३ कषाय व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा ३ भंग, मायावाले भागमें दो कषाय व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा २ भंग, लोभकषायवाले भागमें बादरलोभ व शुक्ललेश्या की अपेक्षा एक ही भंग है। इसीप्रकार सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सूक्ष्मलोभ व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा एक ही भंग है, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय व सयोगकेवलीगुणस्थानमें शुक्ललेश्याकी अपेक्षा एक-एक ही भंग है। इसप्रकार यहां अक्षसंचारसे भावोंके परिवर्तन होनेपर जितने भंग होते हैं उतने ही परस्पर गुणाकरनेसे भी भंग होते हैं सो इन भंगोंको गुण्यरूपसे स्थापन करना चाहिये।

चक्खूणा मिच्छसासणसम्मा तेरिच्छगा हवंति सदा।
चारिकसायतिलेस्साणब्भासे भंगा हु ॥८३०॥

अर्थ—चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्व-सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च ही होते हैं अतः तिर्यञ्चगतिमें नपुंसकवेद, चारकषाय व ३ अशुभलेश्याको परस्पर गुणाकरनेपर (१×४×३) १२ भंग होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाइयअविरदसम्मे चदु सोल बहत्तरी य बारं च।
तद्देसो मणुसेव य छत्तीसा तब्भवा भंगा ॥८३१॥

अर्थ—असंयतक्षायिकसम्यग्दृष्टिके नरकगतिमें तो नपुंसकवेद, चारकषाय व कपोतलेश्याको परस्पर गुणाकरनेसे चार ही भंग हैं; तिर्यञ्चगतिमें पुरुषवेद, चारकषाय और चारलेश्याको परस्परमें गुणाकरनेपर १६ भंग; मनुष्यगतिमें तीनवेद, चारकषाय व ६ लेश्याको परस्परमें गुणाकरनेपर (३×४×६) ७२ भंग; देवगतिमें पुरुषवेद, चारकषाय व तीन शुभलेश्याकी अपेक्षा (१×३×४) १२ भंग हैं। इसप्रकार सर्व ४+१६+७२+१२=१०४ भंग होते हैं तथा देशसंयती क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होते हैं अतः वहां तीनवेद, चारकषाय व ३ शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेसे ३६ भंग हैं।

परिणामो दुट्ठाणो मिच्छे सेसेसु एक्कठाणो दु।
सम्मे अण्णं सम्मं चारित्ते णत्थि चारित्तं ॥८३२॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें पारिणामिकभावके दो स्थान हैं। जीवत्व-भव्यत्व अथवा जीवत्व- अभव्यत्व तथा अवशेषगुणस्थानोंमें जीवत्व-भव्यत्व ऐसा एक ही स्थान है। आगेके गुणस्थानोंमें प्रत्येक, द्विसंयोगी आदि भेद कहनेके लिए कहते हैं कि सम्यक्त्व-सहित स्थानमें अन्य सम्यक्त्व नहीं है तथा चारित्रसहित स्थानमें अन्य चारित्र नहीं है अर्थात् जहां उपशमसम्यक्त्व है वहां वेदक और क्षायिकसम्यक्त्व नहीं है इसीप्रकार अन्यत्र भी जानना।

मिच्छदुगयदचउक्के अट्ठठाणेण खयियठाणेण।
जुद परजोगजभंगा पुध आणिय मेलिदव्वा हु ॥८३३॥

अर्थ—मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानमें चक्षुदर्शनरहित क्षायोपशमिकसम्बन्धी ८ भावोंके स्थानोंमें पूर्वकथित औदयिकभंगसहित तथा असंयतादि चारगुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके स्थानमें पूर्वकथित औदयिकभंगसहित परसंयोगसे उत्पन्न हुए भंगोंको पृथक् करके अपनी-अपनी राशिमें मिलाना चाहिए।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानमें औदयिकभावके २०४ भंगोंमें अचक्षुदर्शनसम्बन्धी २४ भंग (गाथा ८३०) मिलावेसे सर्व (२०४+२४) २२८ भंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र व असंयतगुणस्थानमें औदयिकभावोंके १८० भंगोंमें (गाथा ८२९) क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी १०४ भंग (गा० ८३१) मिलानेसे सर्व (१८०+१०४) २८४ भंग हैं। देशसयतगुणस्थानमें औदयिकभावके ७२ भंगोंमें (गा० ८२९) क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी ३६ भंगों (गा० ८३१) को मिलानेसे सर्व (७२+३६) १०८ भंग हैं। प्रमत्तगुणस्थान में औदयिकभावके ३६ भंगोंमें क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी ३६ भंग मिलानेसे सर्व (३६+३६) ७२ भंग होते हैं तथा अप्रमत्तगुणस्थानमें औदयिकभावके ३६ भगोंमें क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी ३६ भंगोंको मिलानेसे सर्व (३६+३६) ७२ भंग जानना चाहिए।

अब पूर्वगाथाओंमें कथित स्थानगत भंगोंके सम्बन्धमें विशेष कथन १० गाथाओं में करते हैं—

उदयेणक्खे चडिदे, गुणगारा एव होंति सव्वत्थ।
अवसेसभावठाणेणक्खे संचारिदेखेवा ॥८३४॥

दुसु दुसु देसे दोसुवि, चउरुत्तरदुसदगसिदिसहिदसदं।
बावत्तरि छत्तीसा, बारमपुव्वे गुणिज्जपमा ॥८३५॥

बारचउतिदुगमेक्कं, थूले तो इगि हवे अजोगित्ति।
पुण बार बार सुण्णं, चउसद छत्तीस देसोत्ति ॥८३६॥

वामे दुसु दुसु दुसु तिसु, खीणे दोसुवि कमेण गुणगारा।
णव छब्बारस तीसं, वीसं वीसं चउक्कं च ॥८३७॥

पुणरवि देसोत्ति गुणो, तिदुणभछक्कयं पुणो खेवा।
पुव्वपदे अड पंचयमेगारमुगुतीसमुगुवीसं ॥८३८॥

उगुवीस तियं तत्तो, तिदुणभछक्कयं च देसोत्ति।
चदुसुवसमगेसु गणा, तालं रूऊणया खेवा ॥८३९॥

मिच्छादिठाणभंगा, अट्ठारसया हवंति तेसीदा।
बारसयं पणवण्णा, सहस्ससहिदा हु पणसीदा ॥८४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूवहियडवीससया, सगणउदा दससया णवेणहिया ।
एक्कारसया दोण्हं, खवगेसु जहाकमं वोच्छं ८
पुव्वे पंचणियट्टीसुहुमे खीणे दहाण छव्वीसा ।
तत्तियमेत्ता दसअडछच्चदुचदुचदुय एगूणं ॥८४२॥
उवसामगेसु दुगुणं, रूवहियं होदि सत्त जोगिम्हि ।
सत्तेव अजोगिम्हि य, सिद्धे तिण्णेव भंगा हु ॥८४३॥कुलयं॥

अर्थ—औदयिकभावके स्थानमें अक्ष (भेदों) का संचार (परिवर्तन) होनेसे सर्वत्र जो भंग हों वे गुणकार और औदयिकभावके अतिरिक्त शेषभावोंके स्थानमें अक्षसंचारसे जो भंग होते हैं उन्हें क्षेप जानना ।

औदयिकभावके गुण्यरूप प्रत्येकभंग मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानोंमें २०४ हैं, मिश्र व असंयतगुणस्थानमें १८०-१८०, देशसंयतगुणस्थानमें ७२, प्रमत्तादि दोगुणस्थानों में ३६-३६, अपूर्वकरणमें १२, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानोंके पांच भागोंमें क्रमशः १२-४-३-२ व १ तथा इसके आगे अयोगोगुणस्थानपर्यन्त एक-एक हैं । चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्व से मिश्रगुणस्थानपर्यन्त १२-१२ व शून्य तथा आगे क्षायिकसम्यक्त्वसहित असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें १०४ व ३६ गुण्यरूप भंग हैं ।

उपर्युक्त गुण्यराशिमें (जिनसे गुणा जाय ऐसे) गुणकार क्रमसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ९, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें ६-६, असंयत-देशसंयतगुणस्थानमें १२-१२, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ३०-३०, अपूर्वकरणादि तीन और क्षीणकषायगुणस्थानमें २०-२० तथा सयोगी व अयोगी गुणस्थानमें चार-चार हैं, किन्तु चक्षुदर्शनरहित और क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा मिथ्यात्वसे देशसंयतगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे गुणकार ३-२-शून्य-६ व ६ जानना तथा (गुण्यको गुणकारसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें जो राशि मिलाई जावे ऐसे) क्षेप पूर्वोक्त स्थानोंमें क्रमशः मिथ्यात्वगुणस्थानमें ८, सासादनादि दो गुणस्थानोंमें ५-५, असंयतादि दो गुणस्थानोंमें ११-११, प्रमत्तादि दो गुणस्थानोंमें २९-२९, अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें १९-१९ क्षेप हैं । आगे क्षीणकषायगुणस्थानमें भी १९, सयोगी व अयोगी गुणस्थानमें ३-३ तथा चक्षुदर्शनरहित और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा (यथायोग्य) मिथ्यात्वादि पांचगुणस्थानोंमें क्रमसे ३-२-शून्य-६ व ६ क्षेप हैं। (मिथ्यात्वमें ३, सासादनमें २, मिश्रमें शून्य, असंयतमें ६ व देशसंयतमें ६) उपशमश्रेणीसम्बन्धी अपूर्वकरणादि चारगुणस्थानोंमें गुणकार ४० तथा क्षेप एक कम अर्थात् ३९ है।

उपर्युक्त गुण्यराशिको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपरूपराशि मिलानेसे भंगोंकी संख्या क्रमसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें १८८३, सासादनगुणस्थानमें १२५५, मिश्रगुणस्थानमें १०८५, असंयतगुणस्थानमें २८०१. देशसंयतगुणस्थानमें १०९७, प्रमत्तादि दोगुणस्थानों में ११०९-११०९ भंग हैं। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके पांच भाग, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषायगुणस्थान इन ८ क्षपकस्थानोंमें क्रमसे अपूर्वकरणमें १ कम दसगुने छब्बीस (२५९, ९९, ७९, ५९, ३९, ३९, व ३९ सयोगकेवलीके ७, अयोगीके ७, तथा सिद्धोंके ३ भंग जानना चाहिए। उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें एक अधिक क्षपकश्रेणीसे दुगुणे भंग हैं। अर्थात् अपूर्वकरण और सवेदअनिवृत्तिकरणमें (२५९×२+१)=५१९ भंग हैं। इसीप्रकार १९९, १५९, ११९, ७९, ७९, ७९ भंग जानने ।।८३४-८४३।।

विशेषार्थ—जिससे गुणा किया जावे उसको गुणकार और जिसको मिलाया जावे उसे क्षेप कहते हैं। भावोंके जो स्थान कहे हैं वे पृथक्-पृथक् रूपमें प्रत्येकभंग होते हैं। यहां औदयिकभावके स्थानरूप जो प्रत्येक भंग हैं वे तो गुणकार तथा शेषभावोंके स्थानरूप प्रत्येकभंग क्षेपरूप जानना। इसीप्रकार द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंगोंमें भी औदयिकभावके संयोगसे जो द्विसंयोगी भंग बने हैं वे गुणकार रूप हैं और जहां औदयिक भावका तो संयोग नहीं है अन्यभावोंके संयोगसे ही द्विसयोगी आदि भंग होते हैं वे भंग क्षेपरूप जानना। गुणकार (औदयिकभावके प्रत्येक या द्विसंयोगादि) से गुण्यराशिको गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उसमें क्षेपरूप भंगोंकी संख्या मिलानेसे भंगोंका जितना प्रमाण प्राप्त हो उतने ही भंग यथासम्भव भावोंके बदलनेसे भी होते हैं।

यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षयोपशमभावके १० व ९ भावरूप दोस्थान, औदयिकके ८ भावरूप एकस्थान, पारिणामिकके जीवत्वसहित भव्य और अभव्यरूप दो स्थान इसप्रकार सर्व (२+१+२) ५ स्थान हुए इनके प्रत्येकभंग ५ हैं। यहां औदयिक का ८ भावरूप एकस्थान तो प्रत्येक भंगोंमें गुणकार है एवं मिश्रके (क्षायोपशमिक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावके) २ व पारिणामिकभावके दोस्थान ये (२+२) ४ भंग क्षेपरूप जानना। द्विसंयोगीभंगोंमें औदयिकके ८ भावरूप स्थानसहित क्षायोपशमिकके १० व ९ भावके स्थानरूप दोभंग और पारिणामिकके भव्य या अभव्यरूप स्थानके दोभंग ऐसे ४ भंग तो गुणकार एवं क्षायोपशमिकके १० भावरूप स्थानसहित पारिणामिकके भव्य-अभव्य-रूप दोस्थानोंके २ भंग तथैव क्षायोपशमिकके ९ भावरूप स्थानसहित उन्हीं पारिणामिक के दोस्थानोंके संयोगरूप दोभंग इसप्रकार चारभंग क्षेपरूप जानना। तथैव त्रिसंयोगी-भंगोंमें भी औदयिकभावके ८ भावरूप एकस्थान और क्षायोपशमिकभावके १० भेदरूप स्थानसहित पारिणामिकभावके दो स्थानोंकी अपेक्षा दो भंग हैं और क्षायोपशमिकके ९ भावरूप स्थानके साथ पारिणामिकभावके दोभङ्ग हैं इसप्रकार सर्व मिलकर (प्रत्येक भङ्ग १, द्विसंयोगीके ४ भंग और त्रिसंयोगी भङ्ग ४) ९ भङ्ग गुणकाररूप तथा प्रत्येक भंग ४ और द्विसंयोगीभंग ४ ये मिलकर ८ भंग क्षेपरूप हैं। पहले औदयिकभावके भंगोंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें २०४ भंगरूप गुण्य कहे थे उनको गुणकार ९ से गुणाकरने-पर (२०४×९) १८३६ हुए इनमें क्षेपरूप ८ भंग मिलानेसे (१८३६+८) १८४४ भंग होते हैं।

चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान, औदयिकके ८ भावरूप एकस्थान तथा पारिणामिकके भव्य व अभव्यरूप दोस्थान इस-प्रकार सर्व ४ स्थान हैं। यहां प्रत्येकभंग चार हैं उनमेंसे क्षायोपशमिकका ८ भावरूप एकस्थान ही ग्रहण करना, क्योंकि शेष ३ प्रत्येकभंग पुनरुक्त हैं। चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें पूर्वमें जो भंग कहे थे वे ही हैं अतः एक ही ग्रहण किया है सो वह क्षेपरूप है। द्विसंयोगी भंगोंमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान और औदयिकके ८ भावरूपस्थानके संयोगरूप एकभंग गुणकाररूप है। औदयिकके स्थान और पारि-णामिकके भव्य-अभव्यत्वरूप स्थानके संयोगसे जो द्विसंयोगीभंग होते हैं वे पुनरुक्त हैं अतः ग्रहण नहीं किये तथा क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकके भव्य-अभव्यरूप दो स्थानोंके संयोगसे द्विसंयोगी जो दोभंग होते हैं वे क्षेपरूप जानना। त्रिसंयोगीभंगोंमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूपस्थान, औदयिकके ८ भावरूप स्थानके भव्य-अभव्यरूप दोस्थानोंके संयोगसे दोभंग हुए वे गुणकाररूप हैं। इसप्रकार चक्षुदर्शन-रहित मिथ्यादृष्टिके पूर्वमें जो १२ भंग गुण्यरूप कहे थे उनके मिलकर ३ गुणकाररूप और ३ क्षेपरूप भंग हैं। गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपको मिलानेसे (१२×३+३) ३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भंग होते हैं। इसप्रकार चक्षुदर्शनसहित व रहित मिथ्यादृष्टिके सर्व भङ्ग मिलानेपर (१८४४+३९) १८८३ भंग जानना।

इसीप्रकार सासादनगुणस्थानमें भी भावोंके जितने स्थान पाए जाते हैं उतने तो प्रत्येक भंग जानना। औदयिकभावका जो स्थान है वह तो गुणकार और जो अन्य भावोंके स्थान हैं वे क्षेपरूप जानना तथा दो व तीन आदि भावोंके संयोगसे होते हैं वे द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग जानना। यहां औदयिकभाव और अन्य किसी भावके संयोगसे जो द्विसंयोगी आदि भङ्ग होते हैं वे तो गुणकाररूप हैं और औदयिकभावबिना अन्य भावके संयोगसे जो द्विसंयोगी आदि भङ्ग होते हैं वे क्षेपरूप जानना। जिन भङ्गों को पहले कह आये हैं पश्चात् भी उन्हींके समान जो भङ्ग हैं वे पुनरुक्त हैं अतः उनका ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसप्रकार उपर्युक्त सर्व (सासादनगुणस्थानसम्बन्धी) गुणकार भङ्गोंको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे पूर्वमें जो गुण्यरूप भंग कह आये हैं उसमें गुणाकरके लब्धराशिमें क्षेपरूप भङ्गोंको जोड़नेसे जो-जो राशि प्राप्त होती जावे उन सभी का जोड़ कर देनेपर भंगोंका प्रमाण होता है भङ्ग प्राप्त करनेका यह नियम सभी गुणस्थानोंमें जानना। अतः सासादनगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके १० व ९ भेदरूप दो स्थान हैं, औदयिकका ७ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकस्थान ऐसे चारस्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ३; द्विसंयोगीभङ्गोंमें गुणकार ३ व क्षेप २; त्रिसंयोगी भंगोंमें गुणकार २ हैं। इसप्रकार गुणकार तो (१+३+२) ६ और क्षेप (३+२) ५ हैं। इसलिए सासादनगुणस्थानसम्बन्धी पूर्वोक्त गुण्यराशि २०४ को गुणकार ६ से गुणाकरके तथा क्षेपरूप राशि ५ मिलानेसे (२०४×६+५) १२२९ भंग हुए तथा चक्षुदर्शनरहित सासादनगुणस्थानमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान, औदयिकके ७ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकस्थान ऐसे तीनस्थानों के प्रत्येकभङ्गमें क्षेप एक अन्य सब पुनरुक्त हैं, द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार एक और क्षेप एक, त्रिसंयोगीभङ्गोंमें गुणकार एक इसप्रकार यहां सर्व मिलकर गुणकाररूप भङ्ग २ और क्षेपरूप भङ्ग भी दो हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्यराशि १२ को गुणकार २ से गुणाकरके क्षेपरूप दोभङ्ग मिलानेसे (१२×२+२) २६ भङ्ग हुए और चक्षुदर्शनसहित व रहित भङ्गोंको परस्परमें जोड़नेसे सासादनगुणस्थानसम्बन्धी सर्व भङ्ग (१२२९+२६) १२५५ होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिकके ११ व ९ भावरूप दो स्थान, औदयिकके ७ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकस्थान ऐसे ४ स्थानोंके प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप ३; द्विसंयोगी भंगोंमें गुणकार ३ व क्षेप २; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार २ इसप्रकार यहां सर्व गुणकार तो (१+३+२) ६ और क्षेप (३+२) ५ जानना। पूर्वोक्त गुण्य १८० में गुणकार ६ का गुणाकरके और क्षेपरूप ५ भंग जोड़नेसे सर्व (१८०×६+५) १०८५ भंग होते हैं। असंयतगुणस्थानमें औपशमिकका उपशम-सम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिकके १२ व १० भावरूप २, औदयिकके ७ भावरूप एक और पारिणामिकका भव्यत्वरूप १ ऐसे ५ स्थान हैं उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप ४; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार व क्षेप ५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ५ और क्षेप २, चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार २ इसप्रकार सर्व गुणकार (१+४+५+२) १२ और क्षेप (४+५+२) ११ हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्यराशि १८० में गुणकार १२का गुणाकरके क्षेपरूप ११ भंग जोड़नेपर (१८०×१२+११) २१७१ भंग होते हैं। क्षायिक-सम्यग्दृष्टिके क्षायिकभावका क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिकके १२ व १० भावरूप दो, औदयिकके ७ भावरूप एक, पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक ऐसे ५ स्थानोंके प्रत्येक-भंगोंमें क्षेप एक; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ३; त्रिसंयोगीभगोंमें गुणकार ३, क्षेप दो, चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार दो हैं, अवशेष गुणकार व क्षेप पुनरुक्त हैं। इसप्रकार यहां सर्व गुणकार (१+३+२) ६ और क्षेप भी (१+३+२) ६ ही हैं अतः पूर्वोक्त गुण्य १०४ में गुणकार ६ का गुणाकरके क्षेपरूप ६ मिलानेसे सर्व (१०४×६+६) ६३० भंग होते हैं। इन ६३० भंगोंमें उपर्युक्त २१७१ भंग मिलानेसे असंयतगुणस्थानसम्बन्धी (२१७१+६३०) २८०१ भंग होते हैं।

देशसंयतगुणस्थानमें उपशमभावका उपशमसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिकके १३ व ११ भावरूप दो, औदयिकके ६ भावरूप एक, पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक इसप्रकार पांचस्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ४; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार, क्षेप ५, त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ५, क्षेप २; चतुःसंयोगीमें गुणकार दो ऐसे सर्व मिलकर गुणकार (१+४+५+३) १२ और क्षेप (४+५+२) ११ हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्य ७२ में गुणकार १२ से गुणाकरके क्षेपरूप ११ भंग जोड़नेसे (७२×१२+११) ८७५ भंग होते हैं तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें उपशमसम्यक्त्वका स्थान नहीं है, क्षायिकका ही स्थान है अन्य कथन पूर्ववत् जानना। यहां प्रत्येकभंगोंमें क्षेप एक;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विसंयोगी भंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ३; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ व क्षेप २, चतुःसयोगीमें गुणकार दो हैं अवशेष गुणकार व क्षेप पुनरुक्त होनेसे यहां ग्रहण नहीं किये हैं। इसप्रकार सर्व गुणकार (१+३+२) ६ और क्षेप भी (१+३+२) ६ ही हैं। यहां पूर्वोक्त गुण्य ३६ को गुणकार ६ से गुणाकरके क्षेपराशि ६ जोड़नेसे (३६×६+६) सर्वभंग २२२ होते हैं। इनमें उपर्युक्त ८७५ भंग जोड़नेपर (२२२+८७५) १०९७ भंग देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी जानना।

प्रमत्तगुणस्थानमें उपशमभावका उपशमसम्यक्त्वरूप एक, क्षायिकभावका क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिक भावके १४-१३-१२ व ११ भावरूप ४, औदयिकभावके ६ भावरूप एक और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक ऐसे ८ स्थान हैं उनके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगी भंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १४; त्रिसंयोगी भङ्गोंमें गुणकार १४, क्षेप ८; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार ८ ये सर्व मिलकर गुणकार तो (१+७+१४+८) ३० और क्षेप (७+१४+८) २९ हैं। यहां पूर्वोक्त गुण्यराशि ३६ में गुणकार ३० का गुणाकरके क्षेपराशि २९ मिलानेसे (३६×३०+२९) सर्व भंग ११०९ होते हैं। इसीप्रकार अप्रमत्तगुणस्थानमें भी स्थान ८, गुणकार ३० व क्षेप २९ तथा गुण्यराशि पूर्वोक्त ३६ में गुणकार ३० का गुणाकरके क्षेपराशि जोड़नेसे (३६×३०+२९) सर्वभंग ११०९ हैं।

उपशमश्रेणीमें अपूर्वकरणसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त उपशमभावके सम्यक्त्व और चारित्ररूप एकस्थान, क्षायिकभावका सम्यक्त्वरूप एकस्थान, क्षायोपशमिकभावके १२-११-१० व ९ भावरूप चारस्थान, औदयिकभावके अपूर्वकरण व सवेद अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ६ भावरूप और अवेदभागसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त ५ भावरूप एकस्थान तथा पारिणामिकभावका भव्यत्वरूप एकस्थान इसप्रकार (१+१+४+१+१) ८-८ स्थान हैं। इनस्थानोंके प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १५, क्षेप १३; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार १३, क्षेप ४ तथा पञ्चसंयोगीभंगोंमें गुणकार ४ हैं ये सर्व मिलकर (१+७+१५+१३+४) ४० तो गुणकार एवं (७+१५+१३+४) ३९ क्षेप हैं। अपूर्वकरणमें गुण्यराशि १२ हैं उसमें गुणकार ४० से गुणाकरके क्षेपराशि ३९ जोड़नेसे (१२×४०+३९) ५१९, सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें भी गुण्य १२ ही हैं अतः (१२×४०+३९) ५१९ ही भंग। वेदरहितअनिवृत्तिकरणमें गुण्य ४ है इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणकारराशि ४० से गुणाकर क्षेपराशि ३९ जोड़नेसे (४×४०+३९) १९९ भंग होते हैं। क्रोधरहित भागमें गुण्य तीन है अतः (३×४०+३९) १५९ भंग, मानरहित भाग में गुण्यराशि २ है अतः (२×४०+३९) ११९ भंग, मायारहितभागमें गुण्य एक ही है और आगे सूक्ष्मसाम्पराय व उपशान्तकषायगुणस्थानमें भी गुण्यराशि एक ही है अतः (१×४०+३९) तीनों गुणस्थानोंमें ७९-७९ भंग होंगे।

क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें क्षायिकभावका सम्यक्त्व-चारित्ररूप एक-स्थान, क्षयोपशमभावके १२-११-१० व ९ भावरूप चारस्थान, औदयिकभावके ६ भाव-रूप एकस्थान, पारिणामिकभावके भव्यत्वभावरूप एकस्थान इसप्रकार ७ स्थान हैं, इन-स्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ६; द्विसंयोगीभगोंमें गुणकार ६, क्षेप ९; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ९, क्षेप ४; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार ४ इसप्रकार सर्व मिलकर गुणकार (१+६+९+४) २० एवं क्षेप (६+९+४) १९ हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्य १२ में गुणकार २० का गुणाकरके क्षेपराशि मिलानेसे सर्व (१२×२०+१९) २५९ होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें अपूर्वकरणगुणस्थानवत् चारभावोंके ७ स्थान हैं, गुणकार २०, क्षेप १९ और गुण्य पूर्वोक्त १२ यहां गुण्य १२ में गुणकार २० का गुणा करनेसे और क्षेपराशि १९ जोड़नेपर सर्वभंग (१२×२०+१९) २५९ होते हैं तथा वेदरहितभागमें भी पूर्ववत् चारभावके ७ स्थान हैं, किन्तु विशेष इतना है कि यहां औदयिकका ५ भावरूप स्थान है। यहां अपूर्वकरणगुणस्थानवत् गुणकार २०, क्षेप १९ हैं और पूर्वोक्त गुण्य ४ में गुणकार २० का गुणाकरके क्षेप मिलानेसे सर्वभंग (४×२०+१९) ९९ हैं। क्रोधरहितभागमें भी वेदरहित भागवत् ही सर्वकथन जानना। यहां भी गुणकार २०, क्षेप १९ पूर्वोक्त गुण्य ३ है। यहां गुण्यमें गुणकार २० से गुणा-करके क्षेपराशि १९ जोड़नेसे सर्वभङ्ग (३×२०+१९) ७९ हैं। मानरहित भागमें भी स्थान ७. गुणकार, २० और क्षेपराशि १९ हैं यहां गुण्यराशि पूर्वोक्त २ में गुणकार २० का गुणाकरके क्षेप १९ जोड़नेसे सर्वभंगोंकी संख्या (२×२०+१९) ५९ हैं। मायारहित-भागमें स्थान पूर्ववत् ७, गुणकार २० व क्षेप १९. यहां गुण्यराशि पूर्वोक्त १ में गुणकार २० से गुणाकरके और १९ क्षेपराशि जोड़नेसे सर्वभंग (१×२०+१९) ३९ जानना। इसीप्रकार सूक्ष्मसाम्पराय व क्षीणकषाय गुणस्थानमें भी ३९-३९ ही भङ्ग जानना।

सयोगकेवलीगुणस्थानमें क्षायिकभावका एक, औदयिकके ३ भावरूप एक, पारिणामिकभावका एक ऐसे तीनस्थान हैं इनमें प्रत्येक भङ्गोंमें गुणकार एक, क्षेप २,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विसंयोगीमें गुणकार २, क्षेप १, त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १ इसप्रकार गुणकार (१+२+१) ४, क्षेप (२+१) ३ हैं, गुण्य १ है। यहां गुण्य १ में गुणकार ४ का गुणा-करके क्षेप ३ जोड़नेसे (१×४+३) सर्वभङ्ग ७ हैं। अयोगकेवलीगुणस्थानमें क्षायिक-भावका एक, औदयिकके दो भावरूप एक, पारिणामिकका एक इसप्रकार ३ स्थान हैं। यहां सयोगकेवली गुणस्थानवत् गुणकार ४ व क्षेप ३ हैं और गुण्य १ में गुणकार ४ का गुणा करके क्षेपराशि ३ को जोड़नेसे (१×४+३) सर्वभंग ७ हैं। सिद्धोंमें क्षायिक-भावका एक और पारिणामिकका जीवत्वरूप एक इसप्रकार २ स्थान हैं। यहां प्रत्येक-भंगमें क्षेप २, द्विसंयोगीमें क्षेप एक है इनको जोड़नेसे (२+१) ३ भंग होते हैं। इस-प्रकार स्थानगत भंगोंका कथन किया।

अथानन्तर पदगत भङ्गोंका कथन करते हैं—

दुविहा पुण पदभंगा, जादिगपदसव्वपदभवात्ति हवे।
जातिपदखइगमिस्से, पिंडेव य होदि समजोगो॥८४४॥

अर्थ—जातिपद और सर्वपदभंगके भेदसे पदगतभंग २ प्रकारके हैं। जहां एक जातिका ग्रहण किया जावे वहां जातिपद समझना जैसे—क्षायोपशमिकज्ञानके चारभेद होनेपर भी एक ज्ञानजातिका ही ग्रहण करना तथा जहां पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण-भावोंका ग्रहण किया जावे उनको सर्वपदभंग समझना चाहिए। इनमें जातिपदरूप क्षायिक और क्षायोपशमिकभावके पिण्डपदस्वरूप भावोंमें स्वसंयोगीभंग भी पाये जाते हैं। (क्षायिकभावोंमें लब्धिके पांच भेद हैं और क्षायोपशमिकमें ज्ञान-अज्ञान-दर्शन और लब्धि ये पिण्डपदरूप हैं, क्योंकि इनके अनेक भेद हैं जैसे—जहां दान होते हुए लाभ पाया जाता है वहां स्वसंयोगीभंग है।

अयदुवसमगचउक्के एक्कं दो उवसमस्स जादिपदो।
खइगपदं तत्थेक्कं खवगे जिणसिद्धगेसु दु पण चदु॥८४५॥

अर्थ—औपशमिकभावके जातिपद असंयतादि चारगुणस्थानोंमें सम्यक्त्वरूप एकही है। उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारगुणस्थानोंमें सम्यक्त्व और चारित्ररूप दो जाति-पद हैं। क्षायिकभावके जातिपद असंयतादि चारगुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक तथा क्षपकश्रेणिके चारगुणस्थानोंमें सम्यक्त्व और चारित्ररूप दो जातिपद हैं। सयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व अयोगकेवलीगुणस्थानोंमें सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और लब्धि ये ५ तथा सिद्धों मे इन्हीं पांचमेंसे चारित्रबिना शेष चार जातिपद जानना।

विशेष—यहां सिद्धोंमें चारित्रबिना जो ४ जातिपद कहे हैं उसका अभिप्राय यह है कि सामायिकादि पांचों चारित्रोंमेंसे कोई भी चारित्र नहीं है। अथवा क्षायिक यथाख्यातचारित्र नहीं है।

मिच्छतिये मिस्सपदा, तिण्णि य अयदम्हि होंति चत्तारि।
देसतिये पंचपदा, तत्तो खीणोत्ति तिण्णिपदा ॥८४६॥

अर्थ—क्षायोपशमिकभावके जातिपद मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानमें अज्ञान-दर्शन और लब्धिरूप ३, मिश्रगुणस्थानमें मिश्रज्ञान, दर्शन और लब्धिरूप ३, असंयत-गुणस्थानमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि और सम्यक्त्वरूप ४ एवं देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्त इन तीनों गुणस्थानमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व ये चार तो हैं, किन्तु देशसंयतगुणस्थान में देशसंयमरूप एक तथा प्रमत्त-अप्रमत्तमें सरागसंयम होनेसे एक ऐसे पांच-पांच जाति-पद हैं। आगे अपूर्वकरणसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ज्ञान, दर्शन और लब्धिरूप तीन जातिपद हैं।

मिच्छे अट्ठुदयपदा, ते तिसु सत्तेव तो सवेदोत्ति।
छस्सुहमोत्ति य पणगं, खीणोत्ति जिणेसु चदुतिदुगं ॥८४७॥

अर्थ—औदयिकभावके जातिपद मिथ्यात्वगुणस्थानमें गति, कषाय, लिंग, लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और असिद्धत्वरूप ८ हैं, सासादन-मिश्र-असंयत इन तीनगुणस्थानोंमें मिथ्यात्वबिना सात आगे देशसंयतसे अनिवृत्तिकरणके सवेदभागपर्यन्त असंयमबिना शेष ६, अवेदभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त वेदबिना शेष ५, आगे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त कषायबिना शेष ४ सयोगीगुणस्थानमें अज्ञानबिना शेष तीन और अयोगीगुणस्थानमें लेश्याबिना दो हैं।

मिच्छे परिणामपदा दोण्णि य सेसेसु होदि एक्कं तु।
जातिपदं पडि वोच्छं मिच्छादिसु भंगपिंड तु ॥८४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—पारिणामिकभावके जातिपद मिथ्यात्वगुणस्थानमें जीवत्व और भव्यत्व अथवा जीवत्व और अभव्यत्वरूप दो ही हैं शेष गुणस्थानोंमें जीवत्व-भव्यत्वरूप एकही जातिपद है तथा आगे जातिपदकी अपेक्षा भंगोंका समुदाय कहूँगा।

विशेषार्थ—औपशमिकभावके दो, क्षायिकभावके पांच, क्षायोपशमिकभावके सात, औदयिकभावके आठ और पारिणामिकभावके तीन जातिपद हैं। यहां यथासंभव औदयिकभावके जितने जातिपद पाए जाते हैं वे तो गुण्यरूप जानना। गुण्यराशिके गुणकार और क्षेप जाननेके लिये प्रत्येक भंगादि करनेमें क्षायोपशमिकादि भावोंके जितने पद हों उतने भेद ग्रहण करना एवं औदयिकभावके जातिपदोंका समूहरूप एक ही भेद ग्रहण करना इसप्रकार प्रत्येकभंगमें औदयिकभावका भेद तो गुणकाररूप जानना और अन्य भावोंके भेद क्षेपरूप जानना। द्विसंयोगीआदि भंगोंमें औदयिक भावका भेद और अन्य भावोंके भेदसहित जो भंग हों वे गुणकाररूप जानना। औदयिकभावबिना अन्य भावोंके ही संयोगसे जो द्विसंयोगादि भंग हों वे क्षेपरूप जानने तथा क्षायिक व क्षायोपशमिक सम्बन्धी एक जातिपदके भेदमें उसीके अन्यभेद जहां सम्भव हो वहां स्वसंयोगी भंग होते हैं वे क्षेपरूप जानने सो गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपको मिलानेपर जितना प्रमाण हो उतने वहां भंग जानना।

पांचमूलभावोंके ५३ उत्तरभावोंमेंसे जातिपदरूपभावोंकी गुणस्थानापेक्षा सन्दृष्टि—

मूलभाव	जातिपद भावोंकी संख्या	जातिपद भाव	गुणस्थान
औपशमिक	१	उपशम सम्यक्त्व	असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त
,,	२	उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्र	उपशमश्रेणीमें ८वेंसे ११ ,,
क्षायिक	१	क्षायिकसम्यक्त्व	असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त
,,	२	क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र	८-९-१० व १२वां गुणस्थान क्षपक श्रेणीमें
,,	५	क्षा. सम्य., क्षा. ज्ञान. क्षा. दर्शन, क्षा. चा. और क्षायिकलब्धि।	१३ वें और १४ वें गुणस्थानमें
,,	४	उपर्युक्त ५ में से क्षा.चा. कम किया	सिद्धोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षायोपशमिक	३	अज्ञान, दर्शन और लब्धि	प्रथम व द्वितीयगुणस्थानमें
,,	३	ज्ञान, ,, ,,	तृतीयगुणस्थानमें
,,	४	ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व	चतुर्थगुणस्थानमें
,,	५	,, ,, ,, देशसंयम	पंचमगुणस्थानमें
,,	५	,, ,, ,, सरागसंयम	६-७ वें गुणस्थानमें
,,	३	,, ,, — —	८ वें से १२ वें गुणस्थानपर्यन्त
औदयिक	८	गति, कषाय, लिंग, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम. लेश्या और असि.	मिथ्यात्वगुणस्थानमें
,,	७	उपर्युक्त ८ मेंसे १मिथ्यात्व कम किया	२-३-४ था ,,
,,	६	,, ७ ,, असंयम ,,	५-६-७-८ व ९वें के सवेदभागतक
,,	५	,, ६ ,, वेद ,,	९वें के अवेदभागसे सूक्ष्मसाम्प.तक
,,	४	,, ५ ,, कषाय ,,	११वें १२वें गुणस्थानपर्यन्त
,,	३	गति, लेश्या व असिद्धत्व	१३वें गुणस्थानतक
,,	२	गति व ,,	१४वें ,,
पारिणामिक	२	भव्यत्व-अभव्यत्व	प्रथमगुणस्थानमें
,,	१	भव्यत्व	२रे से १४ वें गुणस्थानपर्यन्त
,,	१	जीवत्व	सद्धोंमें

औपशमिक	२	सम्यक्त्व-चारित्र	जातिपदरूप सर्व कितने हैं यह जाननेके लिये यह सन्दृष्टि बनायी है, किन्तु गुणस्थानोंमें ये जातिपदरूप भाव कहां-कहां पाये जाते हैं इसे उपर्युक्त सन्दृष्टि में बताया गया है।
क्षायिक	५	ज्ञान-दर्शन-लब्धि-सम्य. और चा.	
क्षायोपशमिक	७	ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, देशसंयम, सरागचारित्र।	
औदयिक	८	गति, कषाय, लिङ्ग, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और लेश्या।	
पारिणामिक	३	भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे गुण्य-गुणकार व क्षेप तथा इन तीनोंकी अपेक्षा होनेवाले भङ्गोंको ७ गाथाओंमें कहते हैं--

अट्ठ गुणिज्जा वामे, तिसु सग छच्चदुसु छक्क पणगं च।
थूले सुहुमे पणगं, दुसु चदुतियदुगमदो सुण्णं ॥८४९॥
बारट्ठट्ठछवीसं तिसु तिसु बत्तीसयं च चदुवीसं।
तो तालं चदुवीसं, गुणगारा बार बार णभं ॥८५०॥
वामे चदुदस दुसु दस, अडवीसं तिसु हवंति चोत्तीसं।
तिसु छव्वीस दुदालं, खेवा छव्वीस बार बार णवं ॥८५१॥
एक्कारं दसगुणिदं, दुसु छावट्ठी दसाहियं बिसदं।
तिसु छव्वीस बिसदं, वेदुवसामोत्ति दुसय बासीदि ॥८५२॥
बादालं बेण्णिसया, तत्तो सुहुमोत्ति दुसय दोसहिदं।
उवसंतम्मि य भंगा, खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८५३॥
सत्तरसं दसगुणिदं, वेदित्ति सयाहियं तु छादालं।
सुहुमोत्ति खीणमोहे, बावीससयं हवे भंगा ॥८५४॥
अडदालं छत्तीसं, जिणेसु सिद्धेसु होंति णव भंगा।
एत्तो सव्वपदं पडि, मिच्छादिसु सुणह वोच्छामि ॥८५५॥

अर्थ--जिनको गुणा जावे ऐसे गुण्य मिथ्यात्वगुणस्थानमें ८, सासादनादि तीनगुणस्थानोंमें ७-७, देशसंयतादि तीन गुणस्थानोंमें ६-६, उपशमक-क्षपक अपूर्वकरणमें ६, अनिवृत्तिकरणमें ६ व ५, सूक्ष्मसांपरायमें ५, उपशांतकषाय व क्षीणकषायमें चार, सयोग-केवलीके ३, अयोगकेवलीके २ तथा सिद्धोंमें शून्य जानना तथा जिनसे गुणा किया जावे गुणकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें १२, सासादन व मिश्रमें ८-८, असंयतगुणस्थानमें २६, देशसंयतादि-तीनगुणस्थानोंमें ३२-३२, उपशमक अपूर्वकरणादि चारगुणस्थानोंमें ४०-४०, क्षपक अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानोंमें २४-२४, क्षीणकषायगुणस्थानमें २४, सयोगी व अयोगी-गुणस्थानमें १२-१२ तथा सिद्धोंमें गुणकारका अभाव है और जिनको मिलाया जावे ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेप मिथ्यात्वगुणस्थानमें १४, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें १०-१०, असंयतगुणस्थानमें २८, देशसंयतमें ३४, प्रमत्त व अप्रमत्तमें भी ३४-३४, उपशमक अपूर्वकरणादि चार गुणस्थानोंमें ४२-४२, क्षपक अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानमें २६-२६. क्षीणकषायमें २६, सयोगी-अयोगीमें १२-१२ और सिद्धोंमें ६ जानना ।।८४९-५०-५१।।

इसप्रकार उपर्युक्त गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपराशि जोड़नेपर जो भंग हुए वे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११०, सासादन व मिश्रमें ६६-६६, असंयतमें २१०, देश-संयतादि तीनगुणस्थानोंमें २२६-२२६, उपशमक अपूर्वकरणसे अनिवृत्तिकरणके सवेद-भागपर्यन्त २८२-२८२ आगे उपशमक अनिवृत्तिकरणके अवेदभागसे सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत २४२-२४२, उपशान्तकषायमें २०२ भंग हैं। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्रमसे अपूर्वकरण व सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें १७०-१७०, अवेदअनिवृत्तिकरणसे सूक्ष्मसाम्परायपर्यन्त १४६-१४६, क्षीणकषायगुणस्थानमें १२२, सयोगकेवलीके ४८, अयोगकेवलीके ३६ और सिद्धोंके ६ भंग हैं। इसप्रकार जातिपदभंगोंका कथनकरके सर्वपदभंगोंका कथन आगे करेंगे ऐसा जानना ।।८५२-५३-५४-५५।।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके अज्ञान-दर्शन व लब्धि ये तीन, औदयिकभावके आठ और पारिणामिकभावके भव्य-अभव्यरूप दो जातिपद हैं। यहां औदयिकभावके ८ जातिपद तो गुण्यरूप जानना तथा प्रत्येकभंगमें औदयिकभावोंके आठका समूहरूप एक तो गुणकार और क्षायोपशमिकभावके तीन तथा पारिणामिकभावके दो ये पांच जातिपद क्षेपरूप जानना। द्विसंयोगीभंगमें औदयिकभावके आठका समूह-रूप एक, क्षायोपशमिकभावोंके तीन तथा पारिणामिकभावोंके दो ये पांच गुणकाररूप और क्षायोपशमिकभावके तीनके सयोगसहित पारिणामिकभावके दो भेदरूप (३×२) ६ क्षेपरूप जानना। त्रिसंयोगीभंगोंमें औदयिकभावोंके आठका समूहरूप एक, अभव्यरूप पारिणामिकभावके संयोगसहित क्षायोपशमिकभावके तीन और औदयिकभावके आठका समूहरूप एक, भव्यपारिणामिकभावके संयोगसहित क्षायोपशमिकभावके तीन इसप्रकार (३+३) ६ भंग गुणकाररूप जानने तथा सर्वसंयोगीभंगोंमें एक अज्ञान होते हुए अन्य अज्ञान पाए जाते हैं जैसे—कुमतिके होते हुए कुश्रुतादि पाए जाते हैं तथा एकदर्शनके होनेपर अन्यदर्शन पाये जाते हैं जैसे—चक्षुदर्शन होनेपर अन्यदर्शन पाये जाते हैं। एक लब्धि होनेपर अन्य लब्धियां पायी जाती है इसप्रकार ये तीन भंग क्षेपरूप जानने ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व मिलकर गुण्य आठ अर्थात् औदयिकके आठ भेद, गुणकार (प्रत्येकभंगमें औदयिक का समूहरूप एक, द्विसंयोगीके ५, त्रिसंयोगीके ६ इसप्रकार १+५+६) १२, क्षेप (एकसंयोगीमें क्षायोपशमिकके ३ व पारिणामिकके २, द्विसंयोगीमें ६, क्षायोपशमिकके स्वसंयोगीके ३ इसप्रकार ५+६+३) १४ है। यहां गुण्यको गुणकारसे गुणाकरने और क्षेपरूप भंग मिलानेसे (१२×८+१४) ११० भंग होते हैं।

इसीप्रकार सासादनगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके अज्ञान, दर्शन और लब्धि ये ३; औदयिकके ७ तथा पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक जातिपद है। यहां गुण्य तो ७ है एवं प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसयोगीभगोंमें गुणकार चार (औदयिकभावोंका समूहरूप १×३ क्षायोपशमिक=३ तथा १ औदयिकका व १ पारिणामिक का अतः १×१=१ और ३ इनको जोड़नेपर ३+१=४), क्षेप ३ (क्षायोपशमिकके ३×१ पारिणामिकका=३); त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ (औदयिकका समूहरूप १× पारिणामिकका१×क्षायोपशमिकके ३); स्वसंयोगीमें क्षेप उपर्युक्त ३ इसप्रकार गुण्यराशि ७ में गुणकार ८ (प्रत्येकभंगका १+द्विसंयोगीके ४ त्रिसंयोगीके ३) क्षेप १० (प्रत्येकभगके ४+द्विसंयोगीके ३+स्वसंयोगीके ३) अतः ७×८+१०=६६ भंग हैं। मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके ज्ञान, दर्शन और लब्धि ये ३; औदयिकके ७ और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकजातिपद है। यहां गुण्य तो ७ है, प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार, क्षेप ३; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३. स्वसंयोगीभंगमें क्षेप ३। ये सर्व मिलकर गुणकार ८ व क्षेप १० होते हैं अतः गुण्य ७ को गुणकार आठसे गुणाकरके क्षेपराशि १० मिलानेसे (७×८+१०) ६६ भंग होते हैं। यहां गुणकार व क्षेपको प्राप्त करनेका विधान सासादनगुणस्थानवत् ही जानना।

असंयतगुणस्थानमें औपशमिकका एकउपशमसम्यक्त्व, क्षायिकका एकसम्यक्त्व क्षायोपशमिकके ज्ञान-दर्शन-लब्धि और वेदकसम्यक्त्वरूप चार, औदयिकके सात और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकजातिपद है। यहां गुण्य सात और प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप सात; द्विसंयोगीभंगोंके गुणकार सात, क्षेप १२; त्रिसंयोगीमें गुणकार १२, क्षेप ६; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार ६, पंचसंयोगीभंगोंका अभाव है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व और उपशमसम्यक्त्वका संयोग नहीं है। स्वसंयोगीभंगोंमें क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार २६ और शेष २८ हैं, यहां गुण्य ७ में गुणकार २६ से गुणाकरके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेपराशि २८ जोड़नेसे (७×२६+२८) २१० भंग होते हैं। आगे देशसंयत प्रमत्त व अप्रमत्त इन तीन गुणस्थानोंमें औपशमिकभावका एक सम्यक्त्व, क्षायिकभावका एक सम्यक्त्व; क्षायोपशमिकके ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व व चारित्र ये ५; औदयिकके ६ और पारिणामिकका एक भव्यत्व ये जातिपद हैं। यहां गुण्य ६ तथा प्रत्येकभंगमें गुणकार एक क्षेप ८; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ८ व क्षेप १५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १५ व क्षेप ८, चतु:संयोगीभंगोंमें गुणकार ८; स्वसंयोगीभगोंमें क्षेप ३। ये सर्व मिलकर गुणकार (१+८+१५+८) ३२ और क्षेप (८+१५+८+३) ३४ हैं अतः गुण्य ६ को गुणकार ३२ से गुणाकरके क्षेपराशि ३४ मिलानेसे (६×३२+३४) २२६-२२६ भंग होते हैं।

उपशमश्रेणीके अपूर्वकरण और सवेदअनिवृत्तिकरणमें औपशमिकके दो (सम्यक्त्वचारित्र), क्षायिकका एकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभावके ज्ञान-दर्शन-लब्धि ये तीन, औदयिकके छह और पारिणामिकका एकभव्यत्वरूप जातिपद है। यहां गुण्यछह प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसयोगीभंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १६. त्रिसयोगी भंगोंमें गुणकार १६, क्षेप १३; चतु:संयोगीभंगोंमें गुणकार १३, क्षेप ३, पंचसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ यहां क्षायिकसम्यक्त्व होनेपर उपशमचारित्र पाया जाता है इसलिए पंचसंयोगीभंग भी है। स्वसयोगीभंगोंमें क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार (१+७+१६+१३+३) ४० और क्षेप (७+१६+१३+३+३) ४२ हैं अतः गुण्य ६ को गुणकार ४० से गुणाकरके क्षेपराशि ४२ जोड़नेसे (६×४०+४२) २८२-२८२ भंग हैं। वेदरहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें औपशमिकभावोंके सम्यक्त्व और चारित्र, क्षायिक का एक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिकके ज्ञान-दर्शन और लब्धि ये तीन, औदयिकभावोके पांच और पारिणामिकका एक भव्यत्वरूप जातिपद हैं यहां गुण्य पांच तथा प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १६; त्रिसंयोगोभंगोंमें गुणकार १६, क्षेप १३; चतु:संयोगीभंगोंमें गुणकार १३, क्षेप ३; पंचसंयोगीभगोंमें गुणकार ३, स्वसंयोगीभंगोंमें क्षेप ३ ये सवं मिलकर गुणकार (१+७+१६+१३+३) ४० और क्षेप (७+१६+१३+३+३) ४२ हैं अतः गुण्य ५में गुणकार ४० से गुणा करके क्षेपराशि ४२ जोड़नेपर (५×४०+४२) २४२ भंग हैं। यहां कषायका एकजातिपद ही ग्राह्य है अतः कषायभागोंका विशेष कथन नहीं किया। उपशान्तकषायगुणस्थानमें औपशमिकभावके सम्यक्त्व-चारित्र, क्षायिकका सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकके ज्ञान-दर्शन व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लब्धि ये ३, औदयिकके चार और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकजातिपद है। यहां गुण्य ४, प्रत्येकभंगमें गुणकार १, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगमें गुणकार ७, क्षेप १६; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १६ व क्षेप १३; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार १३ व क्षेप ३; पंचसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३, स्वसंयोगीमें क्षेप ३ इसप्रकार सर्वमिलकर गुणकार (१+७+१६+१३+३) ४० एवं क्षेप (७+१६+१३+३+३) ४२ हैं। गुण्य ४ को गुणकार ४० से गुणाकरके क्षेपराशि ४२ मिलानेसे (४×४०+४२) २०२ भङ्ग होते हैं।

क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षायिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, क्षायोपशमिकभावके ज्ञान-दर्शन व लब्धि ये ३, औदयिकके ६ एवं पारिणामिकका एक भव्यत्वरूप जातिपद है। यहां गुण्य ६, प्रत्येकभंगमें गुणकार १, क्षेप ६; द्विसंयोगीभंगमें गुणकार ६, क्षेप ११; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ११, क्षेप ६; चतुःसंयोगीमें गुणकार ६, पचसंयोगीभंग नहीं हैं। स्वसंयोगीमें क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार (१+६+११+६) २४ और क्षेप (६+११+६+३) २६ हैं। यहां गुण्य ६ को गुणकार २४ से गुणाकरके क्षेपराशि २६ मिलानेसे (६×२४+२६) १७० भङ्ग हुए। अवेदअनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें भी जातिपद अपूर्वकरणगुणस्थानवत् ही जानना, किन्तु यहां विशेषता यह है कि औदयिकभावके ५ जातिपद हैं शेष सर्वकथन पूर्ववत् हो जानना। यहां गुण्य ५, प्रत्येकभङ्गमें गुणकार १, क्षेप ६; द्विसंयोगीभङ्गमें गुणकार ६, क्षेप ११; त्रिसंयोगीभङ्गमें गुणकार ११ व क्षेप ६; चतुसंयोगीभंगोंमें गुणकार ६, स्वसंयोगीभगमें क्षेप ३ इसप्रकार सर्व मिलकर गुणकार (१+६+११+६) २४ और क्षेप (६+११+६+३) २६ हैं। यहां गुण्य ५ को गुणकार २४ से गुणाकरके क्षेपराशि २६ जोड़नेसे (५×२४+२६) १४६ भंग हैं। क्षीणकषायगुणस्थानमें भी जातिपद पूर्वोक्त ही हैं। किन्तु विशेषता यह है कि औदयिकके ४ ही हैं अतः यहां गुण्य ४ गुणकार पूर्वोक्त २४ और क्षेप भी पूर्वोक्त २६ हैं। गुण्य ४ को गुणकार २४ से गुणाकरके क्षेपराशि २६ मिलानेसे (४×२४+२६) १२२ भङ्ग होते हैं।

सयोगकेवली गुणस्थानमें क्षायिकभावके ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र व लब्धि ये ५, औदयिकके ३ और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक ये जातिपद हैं। यहां गुण्य ३, प्रत्येकभंगमें गुणकार १ व क्षेप ६, द्विसंयोगीभंगमें गुणकार ६ व क्षेप ५,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिसंयोगी भङ्गमें गुणकार ५ एवं स्वसंयोगीमें क्षायिकलब्धिरूप क्षेप १, क्योंकि किसी एक क्षायिकलब्धिमें अन्य क्षायिकलब्धि पाई जाती है। इसप्रकार सर्व मिलकर गुणकार (१+६+५) १२ और क्षेप (६+५+१) १२ हैं अतः यहां गुण्य ३ को गुणकार १२ से गुणाकरके क्षेपराशि १२ मिलानेसे (३×१२+१२) ४८ भङ्ग। अयोगकेवलीगुणस्थानमें जातिपद सयोगकेवलीगुणस्थानवत् ही है, किन्तु विशेषता यह है कि यहां औदयिकके २ ही जातिपद हैं अतः गुण्य २ को गुणकार पूर्वोक्त १२ से गुणा करके क्षेपराशि भी पूर्वोक्त १२ मिलानेसे (२×१२+१२) ३६ भंग होते हैं।

सिद्धोंके क्षायिकभावके सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, लब्धि ये चार और पारिणामिकभावका जीवत्वरूप एक इसप्रकार जातिपद ५ हैं। यहां प्रत्येकभङ्गके क्षेप ५ एवं द्विसंयोगीभङ्गके क्षेप ४ मिलकर (५+४) ९ भङ्ग जानना।

गुणस्थान	गुण्य	गुणकार	क्षेप	भङ्गसंख्या
मिथ्यात्व	८	१२	१४	११०
सासादन	७	८	१०	६६
सम्यग्मिथ्यात्व मिश्र	७	८	१०	६६
असंयत	७	२६	२८	२१०
देशसंयत	६	३२	३४	२२६
प्रमत्तसंयत	६	३२	३४	२२६
अप्रमत्तसयत	६	३२	३४	२२६
अपूर्वकरण (उपशमक)	६	४०	४२	२८२
सवेदअनिवृत्तिकरण ,,	६	४०	४२	२८२
अवेद ,, ,,	५	४०	४२	२४२
सूक्ष्मसाम्पराय ,,	५	४०	४२	२४२
उपशान्तमोह	४	४०	४२	२०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपूर्वकरण (क्षपक)	६	२४	२६	१७०
सवेदअनिवृत्ति. ,,	६	२४	२६	१७०
अवेद ,, ,,	५	२४	२६	१४६
सूक्ष्मसाम्पराय ,,	५	२४	२६	१४६
क्षीणमोह	४	२४	२६	१२२
सयोगकेवली	३	१२	१२	४८
अयोगकेवली	२	१२	१२	३६
सिद्ध	०	०	६	६

जातिपद भङ्गोंका कथन करके अब सर्वपदके भेदोंको कहते हैं—

भव्विदराणण्णदरं, गदीण लिंगाण कोह पहुदीणं ।
इगि समये लेस्साणं, सम्मत्ताणं च णियमेण ॥८५६॥

अर्थ—पिण्डपद और प्रत्येकपदके भेदसे सर्वपद दो प्रकारके हैं। यहां जो भावसमूह एक जीवके एक कालमें एक-एकही होता है सभी नहीं होते जैसे—चारों गतिमें एकजीवके एककालमें एक ही गति सम्भव है चारों नहीं पाई जाती है। इसीप्रकार लिंग, कषाय, लेश्या और सम्यक्त्वमें अपने-अपने भेदोंमें से एकसमयमें एक-एक ही सम्भव हैं अतः इन भावसमूहोंको पिण्डपद कहते हैं सो ये गुणस्थानोंमें यथा-योग्य एक जीवके एक कालमें एक-एक ही नियमसे पाए जाते हैं। (तथा जो भाव एक जीवके एककालमे युगपत् भी संभव हैं उन्हें प्रत्येकपद कहते हैं।

अथानन्तर उन प्रत्येकपदोंको कहते हैं—

पत्तेयपदा मिच्छे, पणणरसा पंच चेव उवजोगा ।
दाणादी ओदइये, चत्तारि य जीवभावो य ॥८५७॥

अर्थ—एकसमयमें युगपत् पाए जावें ऐसे प्रत्येकपद मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीन अज्ञान व दो दर्शन ये पांच उपयोग, दानादि पांच क्षायोपशमिकलब्धि, औदयिकभावके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और असिद्धत्व ये चार तथा जीवत्वरूप पारिणामिकभाव इसप्रकार (५+५+४+१) १५ जानना।

पिंडपदा पंचेव य, भव्विदरदुगं गदी य लिंगं च।
कोहादी लेस्साविय, इदि बीसपदा हु उड्ढेण ॥८५८॥

अर्थ—उपर्युक्त १५ प्रत्येकपदोंके आगे मिथ्यात्वगुणस्थानमें पिंडपद पांच हैं। भव्यत्व-अभव्यत्व, गति, लिंग, क्रोधादि चारकषाय, लेश्या इन पांच पिण्डपदोंको मिलाकर (१५+५) २० पद होते हैं सो इनको ऊपर-ऊपर स्थापित करना चाहिए।

पत्तेयाणं उवरिं, भव्विदरदुगस्स होदि गदिलिंगे।
कोहादिलेस्ससम्मत्ताणं रयणा तिरिच्छेण ॥८५९॥

अर्थ—प्रत्येक पदोंके ऊपर स्थापित किये गये जो भव्य-अभव्यरूप युगल, गति, लिंग, क्रोधादिचारकषाय लेश्या और सम्यक्त्वकी रचना तिर्यग्रूपसे करना चाहिए।

एक्कादी दुगुणकमा, एक्केक्कं रूं धिदूण हेट्ठम्मि।
प॰संजोगे भंगा, गच्छं पडि होंति उवरुवरिं ॥८६०॥

अर्थ—एकसे लेकर दूने दूनेरूप क्रमसे एक-एक पदका आश्रय करके नीचे-नीचे के पदोंके संयोगसे गच्छ जितनेवां पद होवे उतने प्रमाणरूप ऊपर-ऊपरके भग होते हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें सबसे नीचे कुमतिरूप प्रत्येकपदका स्थापन किया सो इसमें प्रत्येकभंग एक ही है, उसके ऊपर स्थापित कुश्रुतमें प्रत्येकभंग एक है तथा अधस्तनवर्ती कुमतिके संयोगसे द्विसंयोगीभंग एक ऐसे दोभग हुए। इसके ऊपर स्थापित विभङ्गज्ञानमें भी प्रत्येकभग तो एक ही है तथा अधस्तनवर्ती कुश्रुत व कुमतिज्ञानके संयोगसे द्विसंयोगीभंग दो और तीनोंके संयोगसे त्रिसंयोगीभंग एक इसप्रकार ४ भङ्ग हुए। विभङ्गज्ञानके ऊपर स्थापित चक्षुदर्शनमें प्रत्येकभंग एक तथा अधस्तनवर्ती विभङ्ग-कुश्रुत व कुमतिज्ञानके संयोगसे द्विसंयोगीभग ३, चक्षुदर्शन-कुमति-कुश्रुत या चक्षुदर्शन-कुमति-विभङ्ग अथवा चक्षुदर्शन-कुश्रुत-विभङ्गके संयोगरूप त्रिसंयोगीभङ्ग भी तीन हैं एवं चारोंके सयोगरूप एक चतुःसंयोगीभगको मिलाकर सर्व (१+३+३+१) ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भङ्ग हुए । चक्षुदर्शनके ऊपर स्थापित अचक्षुदर्शनमें प्रत्येकभंग एक तथा अधस्तनवर्ती चक्षुदर्शन-विभंग-कुश्रुत व कुमतिज्ञानके संयोगसे द्विसंयोगीभंग ४, अचक्षुदर्शन, चक्षुदर्शन व कुमतिज्ञान या अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन व कुश्रुतज्ञान अथवा अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन व विभंगज्ञान या अचक्षुदर्शन व कुमति-कुश्रुतज्ञान या अचक्षुदर्शन व कुमति-विभंगज्ञान, अथवा अचक्षुदर्शन व कुश्रुत-विभंगज्ञानके संयोगसे त्रिसंयोगीभंग ६ हैं एवं अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन, कुमति-कुश्रुतज्ञान अथवा अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन, कुमति-विभङ्गज्ञान या अचक्षु व चक्षुदर्शन, कुश्रुत व विभंगज्ञान या अचक्षुदर्शन व कुमति-कुश्रुत व विभंगज्ञानके संयोगसे चतुःसंयोगीभङ्ग चार तथा अचक्षु व चक्षुदर्शन, विभङ्ग-कुश्रुत व कुमतिज्ञान इन पांचके संयोगसे पंचसंयोगीभंग एक है इसप्रकार ये सर्वमिलकर (१+४+६+४+१) १६ भंग हैं । अचक्षुदर्शनके ऊपर दानलब्धिको स्थापित् किया इसमें प्रत्येकभंग एक और अधस्तनवर्ती अचक्षुदर्शन आदिके संयोगसे द्विसंयोगीभंग ५, त्रिसंयोगीभंग १०, चतुःसंयोगीभंग १०, पंचसंयोगीभंग ५, छहसंयोगीभंग एक ये सर्वमिलकर (१+५+१०+१०+५+१) ३२ हुए । इसीप्रकार एक-एक पदके प्रति दूने-दूने भंग होते हैं सो उनमें प्रत्येकभंग तो सर्वत्र एक-एक ही है, किन्तु द्वि-त्रि-चतुःसंयोगी आदि भंग अधस्तनवर्ती भावोंके संयोगके बदलनेसे जितने-जितने हों उतने जानवा । तद्यथा—

लाभलब्धिमें ६४, भोगलब्धिमें १२८, उपभोगलब्धिमें २५६, वीर्यलब्धिमें ५१२, मिथ्यात्वमें १०२४, अज्ञानमें २०४८, असंयममें ४०९६, असिद्धत्वमें ८१९२, जीवत्वमें १६,३८४ भंग होते हैं । यहां १५वें जीवपदमें इतने भंग किसप्रकार होते हैं सो कहते हैं—प्रत्येकभंग १, द्विसयोगी और चौदह संयोगीभंग १४-१४, तीनसंयोगी व १३ संयोगीभंग दो कम गच्छप्रमाणका एकबार संकलनमात्र अर्थात् ९१-९१ हैं । चतुःसंयोगी व १२ संयोगीभंग तीन कम गच्छ (१५−३=१२) का दोबार संकलनमात्र अर्थात् ($\frac{12 \times 13 \times 14}{1 \times 2 \times 3}$ =३६४) ३६४-३६४ हैं । पंचसंयोगी और ११ संयोगीभंग चार कम गच्छ (१५−४=११) का तीनबार संकलनमात्र ($\frac{11 \times 12 \times 13 \times 14}{1 \times 2 \times 3 \times 4}$) अर्थात् १००१-१००१; ६ संयोगी व १० संयोगीभंग ५ कम गच्छ (१५−५=१०) का चारबार संकलनमात्र ($\frac{10 \times 11 \times 12 \times 13 \times 14}{1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5}$) २००२-२००२ हैं । सातसंयोगी व नौसंयोगीभंग ६ कम गच्छका ५ बार सकलनमात्र अर्थात् ३००३-३००३ प्रमाण, आठसंयोगी भंग ७ कम गच्छ (१५−७=८) का छहबार संकलनमात्र अर्थात् ३४३२ प्रमाण हैं । इसप्रकार १५वें जोवपदमें १६३८४ भंग जानना सो यह प्रमाण "पण्णट्ठो"का चतुर्थांश जानना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि पण्णट्ठी संज्ञा ६५,५३६ रूप संख्याकी है । यहां एकबार, दोबारादि संकलनका तथा भंग निकालनेका विधान जिसप्रकार गोम्मटसारजीवकाण्डके 'ज्ञानाधिकार' में श्रुतज्ञानके अक्षरोंका वर्णन करते समय "पत्तेयभंगमेगं"[1] इत्यादि गाथामें कहा है उसीप्रकार यहां भी जानना।

यहां जीवपद १५वां है अतः गच्छका प्रमाण १५ जानना। २ कम गच्छका एकबार संकलन करनेके लिए पूर्वोक्त सूत्रानुसार १३ व १४ का परस्पर गुणाकरके दो व एकको परस्पर गुणनेसे जो लब्ध आवे उससे भाग देनेपर १३×१४=१८२÷२×१=९१ लब्धराशि हुई सो यह २ कम गच्छका एकबार संकलनका प्रमाण है। इसीप्रकार तीनकम गच्छका दो बार संकलन करनेके लिए १२-१३ व १४का परस्पर गुणाकरके ३-२ व १ का गुणाकरनेसे प्राप्तराशिका भाग देनेसे (१२×१३×१४=२१८४÷३×२×१) ३६४ हुए। चारकम गच्छका तीनबार संकलन करनेके लिए ११-१२-१३ व १४ का परस्परमें गुणाकरके उसमें ४×३×२×१ को परस्परमें गुणनेसे प्राप्तराशि द्वारा भागदेनेपर (११×१२×१३×१४=२४०२४÷४×३×२×१) १००१ लब्ध आया। पांचकम गच्छका चारबार संकलन करनेके लिये १०-११-१२-१३ व १४ को परस्पर गुणाकरनेपर तथा लब्धराशिमें ५-४-३-२ व १ का परस्परमें गुणाकरके प्राप्त गुणनफलका भाग देनेसे (१०×११×१२×१३×१४=२,४०,२४०÷५×४×३×२×१) २००२ होते हैं। ६ कम गच्छका पांचबार सकलन करनेके लिए ९-१०-११-१२-१३ व १४ का परस्परगुणा करनेसे तथा लब्धराशिमें ६×५×४×३×२×१ का परस्परमें गुणाकरनेसे प्राप्त गुणनफलका भागदेनेसे(९×१०×११×१२×१३×१४=२१,६२,१६०÷७२०) ३००३ होते हैं। ७ कम गच्छका छहबार संकलन करनेके लिए ८-९-१०-११-१२-१३ व १४ को परस्पर गुणाकरके लब्धमें ७-६-५-४-३-२ व १ का परस्पर गुणाकरके प्राप्त गुणनफलसे भागदेनेपर [८×९×१०×११×१२×१३×१४=१,७२९७,२८० ÷७×६×५×४×३×२×१ (५०४०)]=३४३२ होते हैं। इसप्रकार १५वें जीवपदमें पाए जानेवाले भग निकालनेका विधान कहा।

---

१. "पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं। तियसंजोगादिपया रूवाहियवार हीणपद संकलिद।"
(गो० जी० गा० ३५४ की बड़ी टीका पृ० ७५२ पर उद्धृत)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे भङ्गोंको मिलानेके लिये गाथासूत्र कहते हैं—

इट्ठपदे रूऊणे, दुगसंवग्गम्मि होदि इट्ठधणं।
असरित्थाणंतधणं दुगुणेगूणे सगीयसव्वधणं ॥८६१॥

अर्थ—विवक्षितपदमें एक कम करनेसे जो शेष रहे उतने दो-दोके अङ्क लिखकर परस्परसंवर्ग करनेसे (आपसमें गुणाकरनेसे) विवक्षित पदमें भंगोंका प्रमाणरूप इष्टधन होता है उस इष्टधनको दूना करके उसमें १ घटानेसे जो प्रमाण हो उतना प्रथमपदसे लेकर विवक्षित पदतक सर्वपदोंके भंगोंका जोड़रूप सर्वधन होता है।

विशेषार्थ—जितनेवां विवक्षित पद हो उसमेंसे एक घटाकर जितने शेष बचें उतनी बार दोका अङ्क लिखकर परस्पर गुणाकरके विवक्षितपदमें भंगोंका प्रमाणरूप इष्टधन होता है। जैसे यहां विवक्षित १५वां जीवपद है उसमेंसे एक कम किया तो (१५–१) १४ हुए सो १४ स्थानोंपर २ का अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करनेपर १६,३८४ हुए सो इतना ही १५वें जोवपदमें भंगोंका प्रमाण है तथा उस इष्टधनको दूना करके उसमेंसे एक कमकरके जो प्रमाण हो उतना प्रथमपदसे लेकर विवक्षितपद पर्यन्त सर्वपदोंके भंगोंका जोड़रूप सर्वधन होता है।

अब प्रत्येक व पिंडपदोंकी भङ्गसंख्या तथा प्रत्येकपदभङ्ग व पिण्डपदभंगोंको मिलाकर सर्वपदसंख्या बताते हैं—

तेरिच्छा हु सरित्था, अविरददेसाण खयियसम्मत्तं।
मोत्तूण संभवं पडि, खयिगस्सवि आणए भंगे ॥८६२॥

उङ्कतिरिच्छपदाणं, दव्वसमासेण होदि सव्वधणं।
सव्वपदाणं भंगे, मिच्छादिगुणेसु णियमेण ॥८६३॥

मिच्छादीण दुति दुसु, अपुव्वअणियट्टिखवगसमगेसु।
सुहुमुवसमगे संते, सेसे पत्तेयपदसंखा ॥८६४॥

पणणर सोलट्ठारस, वीसुगुवीसं च वीसमुगुवीसं।
इगिवीस वीसचदुदसतेरसपणगं जहाकमसो ॥८६५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिच्छादिट्ठिप्पहुदिं, खीणकसाओत्ति सव्वपदभंगा ।
पणट्ठि च सहस्सा, पंचसया होंति छत्तीसा ॥८६६॥

तग्गुणगारा कमसो, पण णउदेयत्तरीसयाण दलं ।
ऊणट्ठारसयाणं, दलं तु सत्तहियसोलसयं ॥८६७॥

तेवत्तरिं सयाइं, सत्तावट्ठी य अविरदे सम्मे ।
सोलस चेव सयाइं, चउसट्ठी खयियसम्मस्स ॥८६८॥

ऊणत्तीससयाइं, एक्काणउदी य देसविरदम्मि ।
छावत्तरि पंचसया, खइयणरे णत्थि तिरियम्मि ॥८६९॥

इगिदालं च सयाइं, चउदालं च य पमत्त इदरे य ।
पुव्वुवसमगे वेदाणियट्टि भागे सहस्समट्ठूणं ॥८७०॥

अडसट्ठी एक्कसयं, कसायभागम्मि सुहुमगे संते ।
अडदालं चउवीसं, खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८७१॥

अडदालं चारिसयापुव्वे अणियट्टिवेदभागे य ।
सीदी कसायभागे, तत्तो बत्तीस सोलं तु ॥८७२॥

जोगिम्मि अजोगिम्मि य, बेसदछप्पणयाण गुणगारा ।
चउसट्ठी बत्तीसा, गुणगुणिदेक्कूणया सव्वे ॥८७३॥

सिद्धेसु सुद्धभंगा, एक्कत्तीसा हवंति णियमेण ।
सव्वपदं पडि भंगा, असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८७४॥

अर्थ—पिंडपदरूप भावोंकी तिर्यक् (बराबर) रचनाकर असंयत तथा देशसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्यभावोंमें गुणस्थानोंका आश्रयकरके यथासम्भव भंग जानना चाहिए। यहां क्षायिकसम्यक्त्व इसलिए छोड़ दिया गया है कि उसका कथन पृथक् करेंगे तथा सर्वपदोंके भंग जाननेके लिए मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उर्ध्वरचनावाले प्रत्येकपद और तिर्यक् रचनावाले पिंडपदके भंगरूप धनको मिलानेसे उस-उस गुणस्थानके सर्वपदोंका भंगरूप सर्वधन नियमसे होता है ।।८६२-६३।।

प्रत्येकपद क्रमसे मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानोंमें १५, मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें १६, प्रमत्तादि दो गुणस्थानोंमें १८, दोनों (उपशमक-क्षपक) श्रेणियोंके अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २०-१९, उपशमकसूक्ष्मसाम्परायमें २०, उपशान्तकषायगुण-स्थानमें १९, क्षपकसूक्ष्मसाम्परायमें २१, क्षीणकषायमें २०, सयोगकेवलीमें १४, अयोग-केवलीमें १३ और सिद्धोंमें ५ जानना चाहिए ।।८६४-६५।।

मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त सर्वपदभंगोंका प्रमाण प्राप्त करनेके लिए यहां पण्णट्ठी (६५५३६) को गुण्य समझना चाहिए और इस गुण्यका आगे बताये गए गुणकारोंसे गुणा करना चाहिए तथा उसमेंसे एक कम करनेसे तद्-तद् स्थानोंके सर्वपद-भंगोंका प्रमाण होता है ।।८६६।।

उपर्युक्त गुण्यके गुणकार क्रमसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ७१९५ का आधा प्रमाण, सासादनगुणस्थानमें एककम १८०० का आधा प्रमाण, मिश्रगुणस्थानमें १६०७ है । असंयतगुणस्थानमें ७३६७ एवं इसीगुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वके गुणकार १६६४, देश-संयतगुणस्थानमें २९९१ और इसीगुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वमें मनुष्यके ही ५७६ गुणकार हैं ये तिर्यञ्चके नहीं है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्वी तिर्यञ्च देशव्रती नहीं होता। प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ४१४४ गुणकार है, उपशमश्रेणीके अपूर्वकरण तथा सवेद-अनिवृत्तिकरणमें ८ कम एकहजार अर्थात् ९९२ हैं । कषायसहित और अवेदअनिवृत्ति-करणके भागमें १६८ गुणकार, सूक्ष्मसाम्परायमें ४८, उपशान्तकषायमें २४ गुणकार हैं। क्षपक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें ४४८, अनिवृत्तिकरणके कषाय-सहित व वेदरहितभागमें ८० उससे आगे सूक्ष्मसाम्परायमें ३२ और क्षीणकषायमें १६ गुणकार हैं ।।८६७ से ८७२।।

इससे आगे सयोगी व अयोगीगुणस्थानके २५६ गुण्य तथा गुणकार सयोगी गुणस्थानमें ६४ और अयोगीगुणस्थानमें ३२ इसप्रकार गुण्यमें गुणकारोंके साथ गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उस-उसमें एककम करनेसे सर्वपदभंगोंका प्रमाण होता है । सिद्धोंमें गुण्य-गुणकारके भेदरहित शुद्ध ३१ सर्वपदरूप भंग नियमसे होते हैं । इसप्रकार सहायतारहित पराक्रमवाले श्रीवर्धमानतीर्थङ्करने कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—यहां विवक्षित १५वें जीवपदके भंगोंके प्रमाणरूप इष्टधन १६ ३८४ है जो कि 'पण्णट्ठी' का चतुर्थांश है इसको दूना करके उसमेंसे एक कम करनेपर प्रथम-पदसे १५वें पदपर्यन्त सर्वपदोंके भंगोंका जोड़रूप प्रमाण ३२७६७ होता है तथा विवक्षित जीवपदमें इष्टधनका दूना ३२७६८ अर्थात् आधा 'पण्णट्ठी' प्रमाण है सो यह भव्यत्व-रूप भावोंके भंग होते हैं और उतने ही अभव्यभावके भी भंग होते हैं तथा भव्यत्व और अभव्यत्वभावके मिलकर 'पण्णट्ठी' प्रमाण भंग होते हैं तथा इनको दूना करनेपर दो पण्णट्ठीप्रमाण भंग एक-एकगतिके होते हैं अर्थात् नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य व देवगतिमें प्रत्येकके दो पण्णट्ठीप्रमाण ही भंग जानना। इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धीभंग (दो पण्णट्ठी×४) आठगुणी पण्णट्ठी प्रमाण हैं। एक लिंगसम्बन्धीभंग उपर्युक्त एकगति-सम्बन्धी भंगोंसे दुगुणे अर्थात् चारपण्णट्ठी प्रमाण हैं। यहां चारोंगतिमें पाये जानेवाले लिंगोंकी संख्या (नरकगतिमें १, तिर्यञ्चगतिमें ३, मनुष्यगतिमें ३ और देवगतिमें २) ९ है अतः (९×४ पण्णट्ठी) ३६ गुणो पण्णट्ठीप्रमाण लिंगसम्बन्धी सर्वभंग हैं। उपर्युक्त एकलिंगसम्बन्धी चौगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंको दूना करनेपर एककषायसम्बन्धी आठ-गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं सो इसको नरकगतिमें एकलिंगसहित चारकषाय (१×४) अर्थात् ४ से गुणा करे, तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय (३×४) अर्थात् १२ से गुणाकरे, मनुष्यगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय (३×४) से गुणाकरे तथा देवगतिमें दो लिंगसहित चारकषाय (२×४) अर्थात् ८ से गुणाकरे तो भंगोंकी सख्या प्राप्त होती है सो चारोंगतियोंमें लिंग व कषायके संयोगसे सर्वमिलकर आठगुणी ३६ पण्णट्ठीप्रमाण भंग जानना जो कि पण्णट्ठीसे २८८ गुणे होते हैं। एककषायके आठगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंको दूना करनेपर एकलेश्यासम्बन्धी भंग होते हैं जो १६ गुणो पण्णट्ठीप्रमाण हैं इनको नरकगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्या (१×४×३) अर्थात् १२ से गुणा करे, तिर्यञ्चगतिमें ३ लिंग व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ से, मनुष्यगतिमें भी इसीप्रकार ३ लिंग व ४ कषायसहित ६ लेश्या अर्थात् ७२ से गुणा करे, देवगतिमें दोलिंग व ४ कषायसहित ६ लेश्या अर्थात् (२×४×६) ४८ से गुणा-करे तो भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है सो ये सर्व मिलकर (१२+७२+७२+४८) २०४×१६=३२६४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण है। इसप्रकार गत्यादि सबपिण्डपदोंके भङ्ग (१+८+३६+२८८+३२६४) ३५९७ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण हैं तथा इनमें अध-स्तनवर्ती प्रत्येकपदोंके भंग (जो कि एककम पण्णट्ठीके आधेप्रमाण कहे थे) उनको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलानेसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें सर्वपदभंग (३५९७ + $\frac{१}{२}$) $\frac{७१९५}{२}$ अर्थात् पण्णट्ठीको ७१९५ के आधेप्रमाणसे गुणाकरके उसमें एककम करनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण जानना।

इनकी उर्ध्व-तिर्यग्रूप रचना कहते हैं—कुमति आदिरूप प्रत्येकपद तो नीचे और उनके ऊपर भव्यत्व-अभव्यत्व तिर्यग्रूपसे लिखना। उसके ऊपर चारगति एवं उसके ऊपर यथासम्भव लिंग बराबर-बराबर लिखना तथा उनके ऊपर चारकषाय और उनके ऊपर यथासम्भव लेश्या तिर्यग्रूपसे लिखना चाहिए। इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में भंग व उनके लिखनेका विधान जानना।

सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वरूप प्रत्येकपदका तो अभाव है और भव्यत्व-अभव्यत्वरूप जो पिंडपद कहा था उसमें से यहां अभव्यत्वका भी अभाव है अतः प्रतिपक्षी के अभावसे भव्यत्वको भी प्रत्येकपद जानना सो यहां प्रत्येकपद १५ और पिण्डपद चार हैं। यहां पूर्वोक्त प्रकार कुमतिके १, कुश्रुतके २, विभंगके ४, चक्षुदर्शनके ८, अचक्षुदर्शनके १६, दानके ३२, लाभके ६४, भोगके १२८, उपभोगके २५६, वीर्यके ५१२, अज्ञानके १०२४, असंयमके २०४८, असिद्धत्वके ४०९६, जीवत्वके ८१९२ और भव्यत्वके १६,३८४ इस प्रकार दूने-दूने क्रमसे भङ्ग जानना सो भव्यत्वभावके भंगोंका प्रमाण पण्णट्ठीके चतुर्थांश के बराबर है। भव्यत्वके भगोंको दूना करनेपर अर्थात् पण्णट्ठीके आधेप्रमाण एकगति-सम्बन्धी, इनको चौगुना करनेपर चारोंगति सम्बन्धी भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है जो कि दोगुणी पण्णट्ठीके बराबर है। एकगतिसम्बन्धी भंगोंको दूना करनेपर पण्णट्ठीप्रमाण एकलिंगसम्बन्धी भंग हैं उनको (नरकगतिका १, तिर्यञ्चगतिके ३, मनुष्यगतिके ३, देवगतिके २) ९ लिंगोंसे गुणाकरनेपर नौगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एकलिंग-सम्बन्धी भङ्गोंसे दूने अर्थात् दोगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग एककषायसम्बन्धी हैं इनको नरकगतिमें एकवेदसहित चारकषायसे, तिर्यञ्चगतिमें तीनवेदसहित चारकषायसे, मनुष्य-गतिमें तीनवेदसहित चारकषायसे और देवगतिमें दो वेद सहित चारकषायसे गुणाकरने-पर अर्थात् (४+१२+१२+८) ३६ गुणी दो पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एककषाय-सम्बन्धी भङ्गसे दूने अर्थात् चौगुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग एकलेश्याके होते हैं इनको नरक-गतिमें एकलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्या (१×४×३) अर्थात् १२ से, तिर्यञ्च-गतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ से, मनुष्यगतिमें भी इन्हीं ७२ से और देवगति दो वेद (लिंग) व चारकषायसहित ६ लेश्या (२×४×६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् ४८ से गुणाकरनेपर (१२+७२+७२+४८) चारोंगतिसम्बन्धी सर्वभङ्ग २०४× ४=८१६ गुणो पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं। इसप्रकार प्रत्येकपद व पिण्डपदोंके मिलकर (८१६+७२+९+२+½ = १७९९/२) १७९९ के आधेप्रमाणसे गुणित पण्णट्ठीप्रमाण सर्व पदके भंग सासादनगुणस्थानमें जानना।

मिश्रगुणस्थानमें प्रत्येकपद मिश्ररूप मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञान ४ तथा चक्षुदर्शनके ८, अचक्षुदर्शनके १६, अवधिदर्शनके ३२, दानके ६४, लाभके १२८, भोगके २५६, उपभोगके ५१२ एवं वीर्यलब्धिके १०२४, अज्ञानके २०४८, असंयमके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, जीवत्वके १६३८४ व भव्यत्वके ३२७६८। यहां पिण्डपद गति-लिंग व लेश्यारूप तीन हैं। भव्यत्वके जो पण्णट्ठीसे आधे भंग हैं उनको दूने करने पर अर्थात् पण्णट्ठीप्रमाण एकगतिसम्बन्धी भंग हैं तो चारोंगतिसम्बन्धी चारपण्णट्ठी-प्रमाण सर्वभंग हैं। एकगतिके भंगोंसे दूने अर्थात् दोगुणीपण्णट्ठीप्रमाण एकलिंगसम्बन्धी भंग हैं इनमें (नरकगतिका एक, तिर्यञ्चगतिके ३, मनुष्यगतिके ३ और देवगतिके २) ९ लिंगोंसे गुणाकरनेपर लिंगरूप पिण्डपदके सर्वभंग ९ से गुणित दो पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं। एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् ४ पण्णट्ठीप्रमाण भंग एककषायसम्बन्धी जानना, इनको नरकगतिमें १ वेद (लिंग) सहित चारकषाय अर्थात् (१×४) ४ से तिर्यञ्च-गतिमें तीनवेदसहित ४ कषाय अर्थात् (३×४) १२ से, मनुष्यगतिमें ३ वेदसहित ४ कषाय अर्थात् (३×४) १२ से, देवगतिमें २ वेदसहित चारकषाय अर्थात् (२×४) ८ से इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी सर्व (४+१२+१२+८) ३६ से गुणित चार पण्णट्ठी-प्रमाण भंग होते हैं। एककषायसम्बन्धी उपर्युक्त (४ पण्णट्ठीप्रमाण) भंगोंसे दूने अर्थात् ८ पण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको नरकमें एकवेद व चारकषायसहित तीनलेश्या (१×४×३) अर्थात् १२, तिर्यञ्चगतिमें तीनवेद व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२, मनुष्यगतिमें तीनवेद व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ और देवोंमें दो वेद व चारकषायसहित ३ लेश्यासे (२×४×३) अर्थात् २४ इनसे गुणा करनेपर चारोंगति सम्बन्धी (१२+७२+७२+२४) १८०×८=१४४० से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण यहां भंग जानना। यहां प्रत्येक व पिण्डपदसम्बन्धी सर्वभङ्ग मिल-कर (४+१८+१४४+१४४०+१) १६०७ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें एक कम करनेपर जो लब्ध उतनेप्रमाण सर्वपदभंग मिश्रगुणस्थानमें होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[नोट—मिश्रगुणस्थान पर्याप्तअवस्थामें ही होता है, देवोंमें पर्याप्तअवस्थामें तीन शुभलेश्या ही होती है। देवगति मिश्रगुणस्थानमें इसीलिए तीन लेश्यासे गुणा किया गया है।]

असंयतगुणस्थानमें प्रत्येक द १६, मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, चक्षुदर्शन ८, अचक्षुदर्शनके १६, अवधिदर्शनके ३२, दानलब्धिके ६४, लाभके १२८, भोगके २५६, उपभोगके ५१२, वीर्यके १०२४, अज्ञानके २०४८, असंयमके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, जीवत्वके १६,३८४ और भव्यत्वके ३२,७६८ हैं तथा गति-लिंग-कषाय व लेश्यारूप पूर्वोक्त चार व एक सम्यक्त्व ऐसे ५ पिण्डपद हैं। यहां भव्यत्वभाव-सम्बन्धी भंगोंका प्रमाण पण्णट्ठीका आधा है उसे दूना करनेपर पण्णट्ठीप्रमाणभंग एक-गतिसम्बन्धी हैं तो चारोंगतिसम्बन्धी सर्वभङ्ग चारगुणी पण्णट्ठीप्रमाण जानना। एक-गतिसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् दो पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग एकलिंगसम्बन्धी होते हैं सो इनको चारोंगतिसम्बन्धी (नरकगतिका १, तिर्यञ्चगतिके ३, मनुष्यगतिके ३ और देवगतिके २) ९ लिंगोंसे गुणा करनेपर (२×९) १८ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एकलिंगके भंगोंसे दुगने एककषायसम्बन्धी भङ्ग हैं जो कि ४ पण्णट्ठीप्रमाण हैं सो इनको नरकमें एकलिंगसहित चारकषायसे अर्थात् (४×१) ४ से तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय अर्थात् (४×३) १२ से, मनुष्यगतिमें तीन लिंगसहित चारकषायसे अर्थात् (४×३) १२ से एवं देवगतिमें दोलिंगसहित चारकषाय अर्थात् (४×२) ८ से गुणा-करे इसप्रकार चारोंगति सम्बन्धी (४+१२+१२+८) ३६ से गुणित पण्णट्ठीको ४ से गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतनेप्रमाण भंग हैं। एककषायसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् ८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको नरकगतिमें एकलिंग व चार-कषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (१×४×३) १२ से, तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंग व चार कषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ से, मनुष्योंमें तीनलिंग व चारकषाय-सहित ६ लेश्यासे अर्थात् (३×४×६) ७२ से, देवगतिमें दोलिंग व चारकषायसहित ३ शुभलेश्या अर्थात् (२×४×३) २४ से गुणाकरे तो चारोंगतिसम्बन्धी (१२+७२+७२+२४) १८०×८=१४४० से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। आगे एकलेश्या-सम्बन्धी भङ्गोंसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एक सम्यक्त्वके भंग हैं सो इनको नरकगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (१×४×३) १२ से, तिर्यञ्चगतिमें ३ तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्यासे अर्थात् (३×४×६) ७२से,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्या अर्थात् (३×४×६) ७२से, देवगतिमें दो लिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (२×४×३) २४ से इसप्रकार चारोंगति-सम्बन्धी (१२+७२+७२+२४) १८०×१६=२८८० से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग जानना सो ये उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी भंग हैं इतने ही (२८८०) प्रमाण क्षायोपशम-सम्यक्त्वके भी भंग होते हैं। इसप्रकार दोनों सम्यक्त्वसम्बन्धीभंग (२८८०+२८८०) ५७६० होते हैं। क्षायिकसम्यक्त्वसम्बन्धी कथन पृथक्रूपसे करते हैं—

उपर्युक्त १ लेश्यासम्बन्धी भङ्गोंसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण क्षायिकसम्यक्त्वके भंग हैं इनको नरकगतिमें एकलिंग व ४ कषायसहित एक लेश्यासे अर्थात् (१×४×१) ४ से, तिर्यञ्चगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित ४ लेश्यासे अर्थात् (१×४×४) १६ से, मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्यासे अर्थात् (३×४×६) ७२से, देवोंमें एकलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्यासे अर्थात् (१×४×३) १२ से इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी (४+१६+७२+१२) १०४×१६=१६६४ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग हैं। इसप्रकार दो सम्यक्त्वसम्बन्धी पूर्वोक्त प्रत्येकपद व पिण्डपदोंके भङ्ग जोड़नेपर (१+४+१८+१४४+१४४०+५७६०) ७३६७ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण सर्वपदके भङ्ग और क्षायिकसम्यक्त्वके १६६४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग असंयतगुणस्थानमें होते है।

देशसंयतगुणस्थानमें असंयमके स्थानपर देशसंयम तथा देव-नरकगतिका अभाव हुआ। यहां प्रत्येकपद १६, मतिज्ञानके १. श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, चक्षुदर्शनके ८, अचक्षुदर्शनके १६, अवधिदर्शनके ३२, दानके ६४, लाभके १२८, भोगके २५६, उपभोगके ५१२, वीर्यके १०२४, अज्ञानके २०४८, देशसयमके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, जीवत्वके १६,३८४ एवं भव्यत्वके ३२.७६८ हैं। यहां भव्यत्वके जो ३२७६८ भंग हैं वे पण्णट्ठीका आधाप्रमाण है इनके दूने अर्थात् पण्णट्ठीप्रमाण एकगतिसम्बन्धी भंग हैं इनको तिर्यञ्च व मनुष्य इन दो गतिसे गुणाकरनेपर दोपण्णट्ठीप्रमाण भंग दो गतिसम्बन्धी जानना। एकगतिसम्बन्धी भंगोंसे दोगुणे अर्थात् २ पण्णट्ठीप्रमाण भंग एक लिंगके हैं इनको तिर्यञ्चके ३ व मनुष्यके ३ इसप्रकार ६ लिंगसे गुणा करें तो ६×२=१२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् ४ पण्णट्ठीप्रमाण एककषायके भग हैं इनको तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय अर्थात् (३×४) १२ से, मनुष्यगतिमें तीनलिंगसहित चारकषायसे अर्थात् (३×४) १२ से इसप्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२+१२) २४×४ गुणी पण्णट्ठी=९६ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एककषायके भंगोंसे दूने अर्थात् आठगुणीपण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको तिर्यञ्चगति में तीनलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्या, मनुष्यगतिमें ३ वेद व चारकषायसहित तीनलेश्यासे अर्थात् दोनों गतिकी अपेक्षा (३६+३६) ७२से गुणा करनेपर ७२×८×पण्णट्ठी=५७६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। आगे एक लेश्याके भंगोंसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग एक सम्यक्त्वसम्बन्धी जानना इनको तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्या अर्थात् (३×४×३) ३६से, मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे गुणाकरे इसप्रकार दोनोंगतिसम्बन्धी (३६+३६) ७२×१६=११५२ गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी हैं तथा इतने ही (११५२) क्षायोपशमसम्यक्त्वमें भी जानना। क्षायिकसम्यक्त्वमें एकलेश्यासम्बन्धी उपर्युक्त भंगों से दूने अर्थात् १६ गुणे पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग हैं उनको मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (३×४×३) ३६से गुणाकरे तो ३६×१६×पण्णट्ठी=५७६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानमें दो सम्यक्त्वसम्बन्धी सर्वमिलकर (२+१२+९६+५७६+११५२+११५२+१) २९९१ से गुणित तथा क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा ५७६ गुणे इन दोनोंको जोड़नेपर (२९९१+५७६) ३५६७ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें से एककम करनेपर जो लब्ध आवे उतनेप्रमाण भंग जानना चाहिए।

प्रमत्तगुणस्थानमें मन:पर्ययज्ञानरूप प्रत्येकपद है तथा देशसंयमके स्थानपर सरागसंयम, अन्यगतियोंके अभावसे एक मनुष्यगतिरूप भी प्रत्येकपद जानना शेष प्रत्येक पद पूर्वोक्त ही होनेसे यहां १८ प्रत्येकपद, मतिज्ञानका १, श्रुतज्ञानका २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, सकलसंयमके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके पण्णट्ठीप्रमाण और मनुष्यगतिके २×पण्णट्ठीप्रमाणभङ्ग जानना। यहां पिंडपद लिंग, कषाय, लेश्या व सम्यक्त्वरूप हैं। मनुष्यगतिसम्बन्धी २ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दुगने अर्थात् चारपण्णट्ठीप्रमाण एक लिंगसम्बन्धी भंग हैं उनको मनुष्यगतिसम्बन्धी ३ वेदोंसे गुणा करनेपर ४×३=१२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण हुआ तथा एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दुगने अर्थात् आठगुणी पण्णट्ठीप्रमाण एककषायके भंग हैं इनको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ वेदसहित ४ कषायसे अर्थात् (३×४) १२से गुणा करनेपर (८×पण्णट्ठी×१२) ९६ गुणो पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एककषायके भंगोंसे दूने अर्थात् १६ पण्णट्ठीप्रमाण एक-लेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको तीनलिंग व ४ कषायसहित तीनलेश्यासे गुणा करनेपर (३×४×३=३६×१६×पण्णट्ठी) ५७६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एक लेश्यासम्बन्धी भंगोंसे दुगने अर्थात् ३२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण सम्यक्त्वके भंग जानना इनको तीनलिंग (वेद) ४ कषाय व तीन लेश्यासहित ३ सम्यक्त्वसे गुणा करे तो (३×४×३×३=१०८×३२×पण्णट्ठी) ३४५६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार प्रमत्तगुणस्थानमें सर्व मिलकर (१+२+१२+९६+५७६+३४५६+१) ४१४४से गुणित पण्णट्ठी-प्रमाणमें से एककम करनेपर जो लब्ध आया उतने प्रमाण सर्वपदके भग जानना। अप्रमत्तगुणस्थानमें भी प्रमत्तगुणस्थानवत् एककम ४१४४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण ही भंग हैं।

उपशमश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें अन्य लेश्याओंके अभावसे एक शुक्ल-लेश्यारूप भी प्रत्येकपद है शेष प्रत्येकपद पूर्ववत् हैं। यहां मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मनःपर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधि-दर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके पण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके दोगुणोपण्णट्ठी और शुक्ललेश्याके चारगुणी पण्णट्ठीप्रमाण प्रत्येकपद हैं तथा पिंडपदलिंग, कषाय व सम्यक्त्वरूप हैं। शुक्ललेश्याके भंग पण्णट्ठीसे चारगुणे हैं इनसे दुगने एकलिंगके भंग पण्णट्ठीसे आठगुणे जानना इनको तीनलिंगसे गुणाकरे तो पण्णट्ठीसे २४ गुणा अर्थात् २४ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। एक लिंगके भगसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एककषायसंबन्धी भंग हैं इनको तीनवेदसहित चारकषायसे गुणाकरनेपर (३×४=१२×१६×पण्णट्ठी) १९२ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं तथा एककषायके भंगोंसे दोगुणे अर्थात् ३२ पण्णट्ठीप्रमाण भंग एकसम्यक्त्वके हैं इनको ३ वेद व ४ कषायसहित २ सम्यक्त्वसे गुणा करनेपर (३×४×२=२४×३२×पण्णट्ठी) ७६८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार सर्वमिलकर (८+२४+१९२+७६८) ९९२ गुणी पण्णट्ठीमें से एक कम करदेनेसे जो लब्ध आया उतनेप्रमाण भंग उपशमक अपूर्वकरणगुणस्थानमें सर्वपदके जानना। इसीप्रकार सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें अपूर्वकरणवत् ९९२ गुणी पण्णट्ठीमें से एककमप्रमाण सर्वपदके भंग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदरहित अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रत्येकपद १६ हैं। मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मनःपर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४ जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी और शुक्ललेश्याके ४ पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग हैं तथा पिंडपदमें शुक्ललेश्याके ४ गुणी पण्णट्ठीसे दूने अर्थात् ८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एककषायसम्बन्धी भङ्ग हैं इनको ४ कषायसे गुणाकरनेपर चारोंकषायसम्बन्धी (८×४) ३२ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग होते हैं। एककषायके भङ्गोंसे दूने अर्थात् १६ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण एकसम्यक्त्वके हैं इनको चारकषायसहित दोसम्यक्त्वसे गुणाकरे तो (४×२=८×१६×पण्णट्ठी) १२८ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग होते हैं इसप्रकार अवेदअनिवृत्तिकरणमें प्रत्येकपद व पिण्डपदसम्बन्धी भंग मिलकर (८+३२+१२८) १६८ गुणे भंग सर्वपदसम्बन्धी जानना।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें प्रत्येकपदमें मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मनःपर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभके २५६, भोगके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठीप्रमाण, शुक्ललेश्याके ४ पण्णट्ठीप्रमाण तथा सूक्ष्मलोभके ८ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। पिंडपदमें सूक्ष्मलोभसम्बन्धी ८ गुणी पण्णट्ठीसे दूने अर्थात् १६ पण्णट्ठीप्रमाण एकसम्यक्त्वसम्बन्धी भंग हैं इनको उपशम व क्षायिकरूप दोसम्यक्त्वोंसे गुणाकरनेपर (२×१६=३२×पण्णट्ठी) ३२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। इसप्रकार प्रत्येकपद व पिंडपदके भंग मिलकर (प्रत्येकपदके १६+पदपिंडके ३२) ४८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण सर्वपदके भंग सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें हैं।

उपशान्तकषायगुणस्थानमें प्रत्येकपद मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मनःपर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९३, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके दोपण्णट्ठीप्रमाण, शुक्ललेश्याके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४ पण्णट्ठीप्रमाण है। पिंडपदमें शुक्ललेश्यासंबन्धी चारगुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दूने अर्थात् ८ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भंग एकसम्यक्त्वके हैं इनको उपशम व क्षायिक-सम्यक्त्वसे गुणा करनेपर (८×२) १६ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए तथा प्रत्येकपदके ८ व पिंडपदके १६ भंग मिलकर २४ गुणी पण्णट्ठीमें एककम प्रमाण सर्वपदसंबन्धी भङ्ग यहां जानना।

क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें प्रत्येकपद मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, क्षायिकचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी-प्रमाण, शुक्ललेश्याके चारपण्णट्ठीप्रमाण और क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठीप्रमाण हैं। क्षायिकसम्यक्त्वके आठपण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दूने अर्थात् १६ पण्णट्ठीप्रमाण एकलिंग-संबंधी भंग हैं इनको तीनवेदसे गुणा करनेपर (१६×३) ४८ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दूने ३२ पण्णट्ठीप्रमाण एक कषायके भंग हैं इनको ३ वेद-सहित चारकषायोंसे गुणा करे तो (३×४=१२×३२×पण्णट्ठी) ३८४ गुणी पण्णट्ठी-प्रमाण भंग हुए। इसप्रकार प्रत्येकपद १६ व पिंडपदके ४३२ भंगोंको मिलानेसे ४४८ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें एककम अपूर्वकरणगुणस्थानके क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा सर्वपद भंग जानना। सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें भी अपूर्वकरणगुणस्थानवत् उपर्युक्त ४४८ पण्णट्ठीप्रमाणमें से एककम भङ्ग हैं।

अवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रत्येकपद २० हैं। मतिज्ञानका १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधि-दर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, क्षायिकचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठी, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी, शुक्ल-लेश्याके ४ पण्णट्ठी और क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठीप्रमाण भग हैं। पिंडपदोंमें एककषाय-संबंधीभंग क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दूने अर्थात् १६ गुणे पण्णट्ठी-प्रमाण भंग हैं इनको चारकषायसे गुणा करनेपर (१६×४) ६४ पण्णट्ठीप्रमाण भंग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इसप्रकार प्रत्येकपदके १६ व पिंडपदके ६४ भंग मिलकर सर्वपदसंबंधीभंग ८० गुणीपण्णट्ठीमें से एककम प्रमाण जानना।

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें प्रत्येकपद ही हैं पिंडपद नहीं हैं। यहां मतिज्ञानका १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धि के १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, क्षायिकसंयमके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठी, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी, शुक्ल-लेश्याके ४ पण्णट्ठी, क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठी एवं सूक्ष्मलोभके १६ पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंको मिलानेपर यहां ३२ पण्णट्ठीमें से १ कम प्रमाण सर्वपदसंबन्धी भंग जानना।

क्षीणकषायगुणस्थानमें भी प्रत्येकपद ही हैं, पिंडपद नहीं हैं। यहां मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, दानलब्धि, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यलब्धि, अज्ञान, असिद्धत्व, संयम, जीवत्व, भव्यत्व, मनुष्यगति, शुक्ललेश्या और क्षायिकसम्यक्त्वरूप २० प्रत्येकपदोंके परस्परमें दूने-दूने भंग हैं अर्थात् क्रमसे १-२-४-८-१६-३२-६४–१२८–२५६–५१२–१०२४–२०४८–४०९६–८१९२–१६३८४–३२७६८, एकपण्णट्ठी, २ पण्णट्ठी, ४ पण्णट्ठी और ८ पण्णट्ठीप्रमाण हैं ये मिलकर १६ गुणी पण्णट्ठीमें से एककम सर्वपदसंबंधी भंग होते हैं।

सयोगकेवलीगुणस्थानमें केवलज्ञानके १, केवलदर्शनके २, क्षायिकसम्यक्त्वके ४, यथाख्यातचारित्रके ८, क्षायिकदानलब्धिके १६, लाभलब्धिके ३२, भोगलब्धिके ६४, उपभोगलब्धिके १२८, वीर्यलब्धिके २५६, असिद्धत्वके ५१२, जीवत्वके १०६४, भव्यत्वके २०४८, मनुष्यगतिके ४०९६, शुक्ललेश्याके ८१९२ भंग हैं इसप्रकार सर्व-मिलकर २५६ से गुणित ६४ प्रमाणमें एककम करनेसे जो लब्ध आवे उतनेप्रमाण सर्व-पदके भंग जानना।

अयोगकेवलीगुणस्थानमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यात-चारित्रके ८, दानलब्धिके १६, लाभलब्धिके ३२, भोगके ६४, उपभोगके १२८, वीर्यके २५६, असिद्धत्वके ५१२, जीवत्वके १०२४, भव्यत्वके २०४८, मनुष्यगतिके ४०९६, भंग हैं सो ये सर्व मिलकर २५६ से गुणित ३२में से एककम (२५६×३२–१) प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भङ्ग यहां सर्वपदसम्बन्धी होते हैं। सिद्धोंमें केवलज्ञानके १, केवलदर्शनके २, क्षायिकसम्यक्त्वके ४, अनन्तवीर्यके ८ और जीवत्वके १६ ये सर्व मिलकर ३१ भंग होते हैं।

इसप्रकार प्रत्येकपद व पिंडपदोंके द्वारा भंगोंका वर्णन किया। यहां प्रत्येकपदका नाम असदृशपद भी है, क्योंकि इनमें प्रतिपक्षीसे समानता नहीं हैं तथा पिंडपदका नाम सदृशपद भी है, क्योंकि इनमें प्रतिपक्षीसे समानता पाई जाती है।

गुणस्थानकी अपेक्षा उर्ध्व-तिर्यक्पदसम्बन्धी गुण्यमें गुणकारोंसे गुणाकर ऋणरूप धन घटानेपर होनेवाले सर्वपदके भंगोंकी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	उर्ध्वपद	तिर्यग्पद	गुण्य	गुणकार	ऋणधन	सर्वपदोंकी भङ्गसंख्या
मिथ्यात्व	१५	५	६५५३६ (पण्णट्ठी)	७१९५	१	६५५३६ × ७१९५−१ = ४७१५३१५१९
सासादन	१५	४	,,	१७९९	१	६५५३६ × १७९९−१ = ११७८९९२६३
मिश्र	१६	४	,,	१६०७	१	६५५३६ × १६०७−१ = १०५३१६३५१
असंयत (क्षा.व उप.सम्य.)	१६	५	,,	७३६७	१	६५५३६ × ७३६७−१ = ४८२७९३७११
क्षायिकसम्यक्त्व	१६	५	,,	१६६४	१	६५५३६ × १६६४−१ = १०९०५१९०३
देशसंयत (क्षायो.व उप.सम्य)	१६	५	,,	२९९१	१	६५५३६ × २९९१−१ = १९६०१८१७५
क्षायिकसम्यक्त्व	१६	५	,,	५७६	१	६५५३६ × ५७६ −१ = ३७७४७७३५
प्रमत्त	१८	४	,,	४१४४	,,	६५५३६ × ४१४४−१ = २७१५८११८३
अप्रमत्त	१८	४	६५५३६	,,	,,	६५५३६ × ४१४४−१ = २७१५८११८३
अपूर्वकरण (उपशमक)	१९	३	६५५३६	९९२	,,	६५५३६ × ९९२ −१ = ६५०११७११
क्षपक	२०	२	,,	४४८	,,	६५५३६ × ४४८ −१ = २९३६०१२७
अनिवृत्तिकरण (उपशमक)	१९	३	,,	९९२	१	६५५३६ × ९९२ −१ = ६५०११७११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद व कषायरहित (उपशमक)	१९	२	६५५३६	१६८	१	६५५३६ × १६८–१ = ११०००४७
सवेदक्षपक	२०	२	,,	४४८	१	६५५३६ × ४४८–१ = २९३६०१२७
अवेदक्षपक (कषायसहित)	२०	१	,,	८०	१	६५५३६ × ८०–१ = ५२४२८७९
सूक्ष्मसाम्पराय (उपशमक)	२०	१	,,	४८	१	६५५३६ × ४८–१ = ३१४५७२७
क्षपक	२१	०	,,	३२	१	६५५३६ × ३२–१ = २०९७१५१
उपशान्तकषाय	१९	१	,,	२४	१	६५५३६ × २४–१ = १५७२८६३
क्षीणकषाय	२०	०	,,	१६	१	६५५३६ × १६–१ = १०४७५७५
सयोगकेवली	१४	०	२५६	६४	१	२५६ × ६४–१ = ०१८४३०३
अयोगकेवली	१३	०	,,	३२	१	२५६ × ३२–१ = २०९७१५१
सिद्ध	५	०	०	०	०	शुद्धभंग ३१

अब गुणस्थानवत् मार्गणाओंमें भी भावोंके स्थान व पदरूप भंगोंको कहते हैं---

आदेसेवि य एवं, संभवभावेहिं ठाणभंगाणि ।
पद्भंगाणि य कमसो, अव्वामोहेण आणेज्जो ॥८७५॥

अर्थ—आदेशमें (मार्गणाओंमें) भी गुणस्थानवत् यथासम्भव भावोंसे होनेवाले स्थान व पदभंगोंको क्रमसे मोहरहित होकर जानना चाहिए ।

आगे जिनमें सर्वथा एक ही नयका ग्रहण किया जाता ऐसे एकान्तमतोंके भेदोंको कहते हैं---

असिदिसदं किरियाणं, अक्किरियाणं च आहु चुलसीदी ।
सत्तट्ठण्णाणीणं, वेणयियाणं तु बत्तीसं ॥८७६॥[1]

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५४५ गाथा २२ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—क्रियावादियोंके १८०, अक्रियावादियोंके ८४, अज्ञानवादियोंके ६७ और वैनयिकवादियोंके ३२ भेद हैं इसप्रकार एकान्तवादियोंके भेद जानना।

सर्वप्रथम क्रियावादियोंके मूल भङ्गोंको कहते हैं—

अत्थि सदो परदोवि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
कालीसरप्पणियदिसहावेहि य ते हि भंगा हु ॥८७७॥

अर्थ—सर्वप्रथम 'अस्ति' ऐसा पद लिखना उसके ऊपर 'स्वसे, परसे, नित्यपनेसे, अनित्यपनेसे' ये चारपद लिखना उनके ऊपर जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये पदार्थ तथा उनके ऊपर काल, ईश्वर, आत्मा, नियति व स्वभावरूप ५ पद लिखना। इसप्रकार १×४×९×५=१८० क्रियावादियोंके भेद होते हैं।

विशेषार्थ—स्वत: जीव कालसे अस्ति किया जाता है, परसे जीव कालसे अस्ति किया जाता है, नित्यत्वसे जीव कालसे अस्ति किया जाता है, अनित्यपनेसे जीव कालसे अस्ति किया जाता है इसप्रकार चारभंग हुए तथा जीवके स्थानपर क्रमसे अजीवादिककी अपेक्षा चार-चार भंग होनेसे ९ पदार्थोंके परिवर्तनमें (९×४) ३६ भग कालसे हुए। कालके स्थानपर क्रमसे 'ईश्वरादि' कहने पर ३६-३६ भंग होते हैं इसप्रकार आत्मा, नियति व स्वभावके बदलनेसे सर्व (३६×५) १८० भंग होते हैं।

[1]	काल	ईश्वर	आत्मा	नियति	स्वभाव
	जीव-अजीव	पुण्य-पाप	आस्रव-बन्ध	संवर-निर्जरा	मोक्ष
	स्व	पर		नित्य	अनित्य

अत्थि सदो परदोवि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
एसिं अत्था सुगमा, कालादीणं तु वोच्छामि ॥८७८॥

अर्थ—अस्ति स्वत: या परत:, नित्यपनेसे या अनित्यपनेसे इन पांच पदोंका तथा नौ पदार्थोंका अर्थ सुगम है तथा कालवादादि का अर्थ कहूँगा।

विशेषार्थ—अस्तिका अर्थ 'है' ऐसा होता है सो क्रियावादी वस्तुको अस्तिरूप ही मानकर क्रियाका स्थापन करते हैं। अपने स्वरूप चतुष्टयसे अस्ति मानते हैं और

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५४५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परचतुष्टयसे भी अस्तिरूप ही मानते हैं, नित्यपनेसे शाश्वत अस्तिरूप मानते हैं अनित्यपनेसे क्षणिक अस्तिरूप मानते हैं। इसप्रकार जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नौ पदार्थोंको मानते हैं सो इन १४का अर्थ तो सुगम है अतः इनका विशेष व्याख्यान नहीं किया।

कालवादादिका अर्थ क्रमसे कहते हैं—

कालो सव्वं जणयदि, कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि, ण सक्कदे वंचिदुं कालो ॥८७९॥[1]

अर्थ—काल ही सबको उत्पन्न करता है, काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियोंको काल ही जगाता है सो ऐसे कालको ठगनेमें कौन समर्थ हो सकता है? इसप्रकार कालसे ही सब कार्य मानना कालवाद कहलाता है।

अण्णाणी हु अणीसो, अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च।
सग्गं णिरयं गमणं, सव्वं ईसरकदं होदि ॥८८०॥[2]

अर्थ—आत्मा अज्ञानी-ज्ञानरहित है, अनाथ है अर्थात् कुछ भी करनेको समर्थ नहीं है उस आत्माका सुख-दुःख स्वर्ग तथा नरकमें गमनआदि सब ईश्वरकृत है इसप्रकार ईश्वरका किया सर्वकार्य मानना ईश्वरवाद है।

एक्को चेव महप्पा, पुरिसो देवो य सव्ववावी य।
सव्वंगणिगूढोवि य, सचेदणो णिग्गुणो परमो ॥८८१॥[3]

अर्थ—संसारमें एक ही महान् आत्मा है, वही पुरुष है, वही देव है, और वही सभीमें व्यापक है, सर्वाङ्गपनेसे अगम्य है, चेतनासहित है, निर्गुणी एवं उत्कृष्ट है इसप्रकार आत्मस्वरूपसे ही सभीको मानना आत्मवादका अर्थ है।

जत्तु जदा जेण जहा, जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तहा तस्स हवे, इदि वादो णियदिवादो दु ॥८८२॥[4]

१. प्रा० पंचसंग्रह पृ० ५४७ श्लोक २५। २. प्रा० पं० सं० पृ० ५४७ श्लोक २६। ३. प्रा० पं० सं० पृ० ५४७ श्लोक २८। ४. प्रा० पं० सं० पृ० ५४७; ध० पु० १ पृ० १११।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो जिससमय जिससे जैसे जिसको नियमसे होता है वह उससमय उससे वैसे उसके ही होता है ऐसा नियमसे सभी वस्तुको मानना नियतिवाद कहलाता है।

को करदि कंटयाणं, तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं।
विविहत्तं तु सहाओ, इदि सव्वं पि सहाओत्ति ॥८८३॥[1]

अर्थ—कांटा आदि जो तीक्ष्ण वस्तु हैं उनको कौन करता है? मृग व पक्षी आदिकोंमें जो अनेक प्रकारपना पाया जाता है उनको कौन करता है? इसप्रकार प्रश्न होनेपर यही उत्तर मिलता है कि सभीमें स्वभाव ही है ऐसे सबको स्वभावसे ही मानना स्वभाववाद है। इसप्रकार कालादिकी अपेक्षा एकान्तपक्षके ग्रहण करलेनेसे क्रियावाद होता है।

आगे अक्रियावादके भङ्ग दोगाथाओंमें कहते हैं—

णत्थि सदो परदोवि य, सत्तपयत्था य पुण्णपाऊणा।
कालादियादिभंगा, सत्तरि चदुपंतिसंजादा ॥८८४॥

णत्थि य सत्तपदत्था, णियदीदो कालदो तिपंतिभवा।
चोद्दस इदि णत्थित्ते अक्किरियाणं च चुलसीदी ॥८८५॥ जुम्मं॥

अर्थ—सर्वप्रथम 'नास्ति' पद लिखना उसके ऊपर 'स्वसे' व 'परसे' ये दो पद लिखना चाहिए उनके ऊपर पुण्य-पापके बिना सातपदार्थ लिखना इनके ऊपर कालादि ५ पद लिखना चाहिए। इसप्रकार चारपंक्तियोंका परस्पर गुणा करनेपर १×२×७×५=७० भंग तथा एकबार पुनः 'नास्ति' पद लिखना उसके ऊपर सातपदार्थ लिखने उनके ऊपर नियति व काल ये दोपद लिखना इसप्रकार तीनपंक्तियोंका गुणा करनेसे (१×७×२) १४ भंग होते हैं सो इनको उपर्युक्त ७० भगोंमें जोड़नेसे (७०+१४) ८४ भंग अक्रियावादियोंके होते हैं।

"७० भङ्गकी रचना"

स्वभाव नियति काल ईश्वर आत्मकृति

जीव – अजीव – आस्रव – संवर – निर्जरा – बन्ध – मोक्ष

नास्ति

---

१. प्रा० पं० सं० पृ० ५४७ श्लोक २४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४ भङ्गकी रचना

जीव-अजीव-आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्ष

नियति काल

नास्ति

विशेषार्थ—जीव स्वतः कालसे नास्ति किया जाता है, जीव परतः कालसे नास्ति किया जाता है इसीप्रकार जीवके स्थानपर अजीवादि कहनेपर १४ भंग एक कालमें हुए तथा कालके स्थानपर ईश्वरादि कहनेपर ७० भंग होते हैं तथा जीव-नियति से नास्ति किया जाता है, जीव कालसे नास्ति किया जाता है एवं जीवके स्थानपर अजीवादि कहनेपर १४ भेद होते हैं इसप्रकार सर्वमिलकर (७०+१४) ८४ भंग अक्रियावादियोंके होते हैं। अक्रियावादी वस्तुको नास्तिरूप मानकर क्रियाका स्थापन नहीं करता है।

अथानन्तर अज्ञानवादके भङ्ग कहते हैं—

को जाणदि णवभावे, सत्तमसत्तं दयं अवच्चमिदि।
अवयणजुद सत्तसयं, इदि भंगा होंति तेसट्ठी ॥८८६॥
को जाणदि सत्तचदू, भावं सुद्धं खु दोण्णिपंतिभवा।
चत्तारि होंति एवं, अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी ॥८८७॥जुम्मं॥

अर्थ—जीवादि ९ पदार्थोंमें से एक-एकको सप्तभगसे जानना जैसे कि 'जीव' अस्तिस्वरूप है ऐसा कौन जानता है तथा जीव 'नास्ति' स्वरूप है ऐसा कौन जानता है, जीव अस्ति-नास्तिरूप है ऐसा कौन जानता है अथवा अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है और शेष तीनभंग मिले हुए इसप्रकार जीव इन ७ भंगरूप है ऐसा कौन जानता है इन ७ नयोंसे गुणा करनेपर (७×९) ६३ भंग होते हैं तथा पहले 'शुद्धपदार्थ' ऐसा लिखना उसके ऊपर अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति और अवक्तव्य ये चार लिखना सो इन दोनों पंक्तियोंसे चारभंग उत्पन्न होते हैं जैसे—शुद्धपदार्थ अस्तिरूप हैं ऐसे कौन जानता है, शुद्धपदार्थ नास्तिरूप हैं ऐसा कौन जानता है, शुद्धपदार्थ अस्तिनास्तिरूप है ऐसा कौन जानता है, शुद्धपदार्थ अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है? इसप्रकार इनको उपर्युक्त ६३ भंगोंमें मिलानेसे (६३+४) ६७ भंग अज्ञानवादियोंके होते हैं। अज्ञानवादी वस्तु को नहीं जानना ही मानते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"६३ भंगोंकी रचना"

जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप

सत् असत् सदसत् अवाच्य सदवाच्य असदवाच्य सदसदवाच्य

"४ भंगोंकी रचना"

सत् – असत् -- सदसत् -- अवाच्य

शुद्धपदार्थ

अथानन्तर वैनयिकवादके मूलभंग कहते हैं—

मणवयणकायदाणगविणवो सुरणिवइणाणिजदिवुड्ढे ।
बाले मादुपिदुम्मि य, कादव्वो चेदि अट्ठचऊ ॥८८८॥

अर्थ—देव, राजा, ज्ञानी, बूढ़ा, बालक, माता और पिता इन आठकी मन-वचन-काय तथा दानदेकर विनय करना चाहिए इसप्रकार वैनयिकवादके ८×४=३२ भेद हैं। (विनयवादी गुण-अगुणकी परीक्षारहित विनयसे ही सिद्धि मानते हैं।

"३२ भंगोंकी रचना"

सुर-नृपति-यति-ज्ञानी-वृद्ध-बाल-माता-पिता

मन वचन काय दान

सच्छंददिट्ठीहिं वियप्पियाणि, तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि ।
पाखंडिणं वाउलकारणाणि, अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि ॥८८९॥[1]

अर्थ—इसप्रकार स्वच्छंद अर्थात् अपने मनमाना जिनका श्रद्धान है ऐसे पुरुषोंने ये ३६३ भेद कल्पित किये हैं जो कि पाखण्डी जीवोंको व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली और अज्ञानीजीवोंके चित्तका हरण करनेवाली है।

आगे अन्य भी एकान्तवादोंका कथन करते हैं—

आलसड्ढो णिरुच्छाहो, फलं किंचि ण भुंजदे ।
थणक्खीरादिपाणं वा, पउरुसेण विणा ण हि ॥८९०॥[2]

---

१. प्रा० प० सं० पृ० ५४६ श्लोक २३। २. प्रा० पं० सं० पृ० ५४७ श्लोक २९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो आलस्यसहित हो तथा उत्साह व उद्यमरहित हो वह कुछ भी फल नहीं भोग सकता। जैसे—स्तनोंका दूध पीना पुरुषार्थके बिना नहीं बन सकता उसीप्रकार पुरुषार्थसे ही सबकार्य सिद्ध होते हैं ऐसा मानना पौरुषवाद है।

दइवमेव परं मण्णे, धिप्पउरुसमणत्थयं।
एसो सालसमुत्तुंगो, कण्णो हण्णादि संगरे ॥८९१॥[1]

अर्थ—मैं केवल दैव (भाग्य) को उत्तम मानता हूँ निरर्थक पुरुषार्थको धिक्कार हो। देखो किलेके समान ऊंचा कर्णराजा युद्धमें मारा गया। इसप्रकार दैववादसे ही सिद्धि माननेवाला दैववादी है।

संजोगमेवेति वदंति तण्णा, णेवेक्कचक्केण रहो पयादि।
अंधो य पंगू य वणं पविट्ठा, ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा ॥८९२॥[2]

अर्थ—यथार्थज्ञानी दोके संयोगसे हो कार्यसिद्धि मानते हैं, क्योंकि जैसे--एक पहियेसे रथ नहीं चल सकता तथा एक अन्धा और दूसरा पंगु वनमें प्रविष्ट हुए वन में आग लग जानेसे अन्धा व पंगु दोनों मिलकर अर्थात् अंधेके कन्धेपर पंगु चढ़कर अपने नगरमें प्रवेश कर गये। इसप्रकार संयोगसे ही कार्यसिद्धि माननेवाला संयोगवादी है।

सइउट्ठिया पसिद्धी, दुव्वारा मेलिदेहिं वि सुरेहिं।
मज्झिमपण्डवखित्ता, माला पञ्चसुवि खित्तेव ॥८९३॥

अर्थ—एक ही बार उठी हुई लोकप्रसिद्धि देवोंसे भी मिलकर दूर नहीं हो सकती अन्यकी तो बात ही क्या ? जैसे द्रोपदीने केवल मध्यवर्ती पांडव अर्थात् अर्जुनको माला डाली, किन्तु "पांचों पांडवोंको डाली" ऐसी प्रसिद्धि हो गई। इसप्रकार लोकवादी लोकप्रवृत्तिको ही सर्वस्व मानते हैं।

अब नेमिचन्द्राचार्य उपर्युक्त सभीमतोंका विवाद मिटानेका विधान बताते हैं—

जावदिया वयणवहा, तावदिया चेव होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा, तावदिया चेव होंति परसमया ॥८९४॥[3]

---

१. प्रा. प. सं. पृ. ५४७ श्लोक ३०। २. प्रा. पं. सं. पृ ५४७ श्लोक ३२।
३. प्रवचनसार परिशिष्ट; जयधवल पु० १ पृ० २४५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जितने वचनके मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं और जितने नयवाद हैं उतने ही पर समय हैं।

विशेषार्थ—जो कुछ भी वचन बोले जाते हैं वे किसी अपेक्षा से कहे जाते हैं अतः जहां जो अपेक्षा है वही नय है, किन्तु जहां जिसको अन्य अपेक्षासे रहित ग्रहण करे वही मिथ्यामत हो जाता है इसलिए जितने वचनके प्रकार हैं उतने नय और जितने नय उतने मिथ्यामत हैं।

"एते सर्वेऽपि नयाः एकान्तावधारणगर्भा मिथ्यादृष्टयः; एतैरध्यवसितवस्त्वभावात्। (ज० ध० पु० १ पृ० २४५)। मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्ख पडिबद्धा। अर्थात् ये सभी नय यदि परस्पर निरपेक्ष होकर वस्तुका निश्चय कराते हैं तो मिथ्या हैं, क्योंकि एक दूसरे नयकी अपेक्षाके बिना ये नय जिसप्रकारकी वस्तुका निश्चय कराते है, वस्तु वैसी नहीं है। अतः "मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्ख पडिबद्धा" इत्यादि ज० ध० गाथा १०२ के इस पूर्वार्धं में कहा है--केवल अपने-अपने पक्षसे प्रतिबद्ध ये सभी-नय मिथ्या हैं।

आगे परसमयवाले मिथ्यामती वचन किसप्रकार मिथ्या हैं उसका कारण बताते हैं—

परसमयाणं वयणं, मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा।
जेणाणं पुण वयणं, सम्मं खु कहंचिवयणादो ॥८९५॥[1]

अर्थ—परमतके वचन 'सर्वथा' रूप कहनेसे नियमसे असत्य होते हैं और जैनमतके वचन 'कथंचित्' बोलनेसे सत्य हैं।

विशेषार्थ—जैनमत स्याद्वादरूप है वह अनन्तधर्मस्वरूप वस्तुको 'कथंचित्' वचनसे कहता है इसलिए सत्य है, क्योंकि एकवचनसे वस्तुका एकधर्म ही कहा जाता है यदि कोई सर्वथा कहे कि यही वस्तुका स्वरूप है तो शेष धर्मोंके अभावका प्रसंग होने से वह भी असत्य कहलावेगा। अन्यवादी वस्तुके एकधर्मको लेकर यही है ऐसे 'सर्वथा' रूप वचनसे वस्तुका स्वरूप कहते हैं सो पूर्वोक्त हेतुसे असत्य हैं। जैसे—वस्तु द्रव्यकी अपेक्षा नित्य है पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है अतः जैनमत सत्य है। जितने वचनके मार्ग हैं

---

१. प्रवचनसार परिशिष्ट, ज. ध. पु. १ पृ. २४५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उतने नय हैं इनको प्रतिपक्षीकी अपेक्षासे रहित एकान्तरूपसे ग्रहण करनेसे मिथ्यात्वरूप हैं तथा प्रतिपक्षीकी अपेक्षा लेनेपर स्याद्वादरूपसे ग्रहण करनेपर सम्यक्रूप हैं[1]। इस-प्रकार अन्यमतोंका विवाद एक स्याद्वादसे ही मिट सकता है ऐसा समझना चाहिए।

इति श्रीनेमिचन्द्राचार्य विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामा हिन्दीटीकामें भावचूलिका नामक सप्तम अधिकार पूर्ण हुआ।

❖

अथ त्रिकरणचूलिकाधिकार।

अथानन्तर त्रिकरणचूलिकाको कहनेकी इच्छावाले आचार्य गुरुको नमस्कार करते हुए श्रोताओंको भी सावधान करनेकी इच्छासे उसप्रकार करनेका उपदेश करते हैं—

णमह गुणरयणभूसण, सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं।
वरवीरणंदिचंदं, णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं॥८९६॥

अर्थ—हे गुणरूपी रत्नके आभूषण चामुण्डराय! तुम सिद्धान्तशास्त्ररूपी अमृतमय महासमुद्रमें उत्पन्न हुए ऐसे उत्कृष्ट वीरनंदि नामा आचार्यरूपी चन्द्रमाको नमस्कार करो तथा निर्मल गुणोंवाले इन्द्रनन्दि नामक गुरुको नमस्कार करो।

यद्यपि अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण इन तीनोंका विस्तारपूर्वक कथन तो इसी ग्रन्थमालासे प्रकाशित लब्धिसारग्रन्थके उपशमसम्यक्त्वप्रकरणमें किया गया है अतः वहींसे देखना चाहिए; तथापि आचार्य यहांपर तीनकरणोंका स्वरूप कहते हैं—

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं।
पढमं अधापवत्तं, करणं तु करेदि अप्पमत्तो॥८९७॥

---

१. मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्ख पडिबद्धा। अण्णोण्ण णिस्सिवा उण लहंति सम्मत्त सब्भावं॥१०२॥ (ज० ध० पु० १ पृ० २४९)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके क्षय करनेके लिए अथवा उपशम करनेके लिये अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण ये विशुद्धिरूप तीनकरण होते हैं उनमेंसे प्रथम अधःप्रवृत्तकरणको सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव करता है। यहां करणनाम परिणामका है।[1]

आगे अधःप्रवृत्तकरणका शब्दार्थसे सिद्ध हुआ लक्षण कहते हैं--

जम्हा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति।
तम्हा पढमं करणं, अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥८९८॥

अर्थ—जिसकारण इस प्रथमकरणमें उपरितन समयवर्तीभाव (परिणाम) अधस्तनसमय सम्बन्धी भावोंके समान होते हैं इसलिए प्रथमकरणका "अधःप्रवृत्तकरण" ऐसा अन्वर्थ (अर्थके अनुसार) नाम कहा गया है।[2]

अंतोमुहुत्तमेत्तो, तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखपमा, उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥८९९॥

अर्थ—उस अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है उस कालमें जीवके असंख्यात-लोकप्रमाण परिणाम होते हैं और वे परिणाम प्रथमसमयसे लेकर आगे-आगेके समयोंमें समानवृद्धि (चय) रूपसे अन्तसमयपर्यंन्त बढ़ते हैं।

विशेषार्थ—अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयोंकी पंक्तिको ऊर्ध्व आकारसे स्थापित करके उन समयोंके प्रायोग्यपरिणामोंका प्ररूपण करते हैं--अध.प्रवृत्तकरणमें प्रथमसमयवर्ती जीवोंके योग्यपरिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं। द्वितीय समयवर्ती जीवोंके योग्यपरिणाम भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं। इसप्रकार समय-समयके प्रति अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामोंके प्रमाणका निरूपण अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिमसमयतक करना चाहिए। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी परिणामोंसे द्वितीयसमयके योग्यपरिणाम विशेष-अधिक होते हैं। वह विशेष अन्तर्मुहूर्त-प्रतिभागी है, अर्थात् प्रथमसमयसम्बन्धी परि-णामोंमें प्रमाणमें अंतर्मुहूर्तका भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है, उतने प्रमाणसे अधिक हैं।

१. "असि-वासीए व साहयतमभावविवक्खाए परिणामाण करणत्तुवलभादो।" (धवल पु० ६ पृ० २१७) तलवार और वसूलाके समान साधकतमभावकी विवक्षामें परिणामोंके कारणपना पाया जाता है।

२. लब्धिसार गाथा २५; धवल पु० ६ पृ० २१७; जयधवल पु० १२ पृ० २३३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीयसमयसम्बन्धी परिणामोंसे तृतीयसमयके परिणाम विशेषअधिक होते हैं। इसप्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिमसमयतक लेजाना चाहिये।[1]

अथानन्तर अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंकी संख्याको समझानेके लिये अंकसंदृष्टि द्वारा कथन करते हैं—

बावत्तरितिसहस्सा, सोलस चउ चारि एक्कयं चेव।
धणअद्धाणविसेसे, तियसंखा होदि संखेज्जे ।।६००।।

अर्थ—यहां अङ्कसन्दृष्टिमें सर्वधन ३०७२, अधःप्रवृत्तकरणकालका प्रमाण १६, तिर्यग्गच्छ (अनुकृष्टिखण्ड) ४, उर्ध्वरूप वृद्धिका प्रमाण विशेष ४, तिर्यग्रूप अनुकृष्टिमें वृद्धिका प्रमाण १ और वृद्धि अर्थात् चयको सिद्धकरनेके लिये संख्यातकी सहनानी ३ का अंक समझना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां करणके सर्वसमयसम्बन्धी परिणामोंका समूह तो सर्वधन (३०७२) है तथा करणकालके जितने समय हों उनको ऊपर-ऊपर लिखना सो उसकालके जितने समय हों वही उर्ध्वगच्छ अथवा पद है एव एकसमयमें किसी जीवके कितने परिणाम पाये जाते हैं, अन्यजीवके कितने परिणाम पाए जाते हैं? इसप्रकारसे एक समयमें जितने खण्ड हों उनकी विवक्षित समयकी रचनाके बराबर रचना करनेपर उन खण्डोंका जो प्रमाण हो वह अनुकृष्टिके तिर्यग्गच्छ या पदका परिमाण है तथा प्रतिसमय जितने परिणाम क्रमसे बढ़ते हैं वह उर्ध्व (चय-प्रचय-उत्तर या विशेष) है। प्रत्येकखण्डमें जितनी वृद्धि होती है वह तिर्यग्रूप अनुकृष्टिका विशेष-चय-प्रचय या विशेष है तथा चयका प्रमाण जाननेके लिये जिस संख्यातका भाग दिया जाता है उसकी सहनानी अंकसन्दृष्टिमें ३ है।

आदिधणादो सव्वं, पचयधणं संखभागपरिमाणं।
करणे अधापवत्ते, होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६०१।।

अर्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें सर्व प्रचयधन आदिधनके संख्यातवेंभागप्रमाण है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।

---

१. धवल पु० ६ पृ० २१४-२१५; जयधवल पु० १२ पृ० २३५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—सर्वसमयसम्बन्धी चयको जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो सो प्रचयधन है, प्रचयधनको उत्तरधन भी कहते हैं तथा चयरहित सर्वसमयसम्बन्धी धन आदिधन है सो **"पदकृत्या संख्यातेन सर्वधने भक्ते उर्ध्वचयप्रमाणं स्यात्"** अर्थात् पदकी कृति (वर्ग) और संख्यातका भाग सर्वधनमें देनेपर उर्ध्वचयका प्रमाण होता है अतः पद (गच्छ) १६ की कृति (वर्ग) १६×१६=२५६ और संख्यातकी सहनानी ३ सो इसका भाग सर्वधन ३०७२ में देनेपर $\frac{३०७२}{२५६\times३}$=४ लब्ध आया सो यह उर्ध्वप्रचयका प्रमाण है तथा **"व्येकपदार्धघ्न चयगुणो गच्छ उत्तरधनं"** इस कारणसूत्रके अनुसार एककम पदके आधे को चयसे और गच्छसे गुणा करनेपर प्रचयधन होता है अतः एककम गच्छ (१५) का आधा ७$\frac{१}{२}$, इसको चय (४) से गुणा किया तो ($\frac{१५}{२}$×४) ३० आया पुनः गच्छ (१६) से गुणनेसे (३०×१६) ४८० लब्ध आया सो यह उत्तरधन है। इस उत्तरधनको सर्वधन (३०७२) में से घटानेपर (३०७२−४८०) २५९२ शेष रहे सो यह आदिधन है तथा प्रमाणराशि ४८०, इच्छाराशि एकशलाका और फलराशि २५९२। यहां फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर ($\frac{२५९२\times१}{४८०}$) $\frac{२७}{५}$ शलाका हुईं। पुनश्च प्रमाणराशि $\frac{२७}{५}$ शलाका, फलराशि २५९२ (आदिधन) और इच्छाराशि एक शलाका है। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेपर ($\frac{२५९२\times१}{१}\times\frac{५}{२७}$) ४८० चयधन प्राप्त हुआ और यह आदिधनके संख्यातवेंभागप्रमाण है इसे उत्तरधन भी कहते हैं।

उभयधणे संमिलिदे, पदकदिगुणसंखरूवहदपचयं।
सव्वधणं तं तम्हा, पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं॥६०२॥

अर्थ—आदिधन और प्रचयधनको मिलानेपर (२५९२+४८०) सर्वधन होता है अथवा गच्छके वर्गको संख्यातसे गुणाकर पुनः चयसे गुणा करनेपर ($१६^२$×३×४) अर्थात् (२५६×३×४) सर्वधनका प्रमाण (३०७२) प्राप्त होता है तथा सर्वधनको गच्छ (१६) के वर्ग अर्थात् २५६ व संख्यातकी सहनानी ३ से भाग देनेपर ($\frac{३०७२}{२५६\times३}$) ४ लब्ध आया सो यह प्रचयका प्रमाण है।

चयधणहीणं दव्वं, पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं।
आदिम्हि चये उड्ढे, पडिसमयधणं तु भावाणं॥६०३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सर्वधनमें से चयधनको घटानेपर आदिधन प्राप्त होता है उसको पद (गच्छ) का भाग देनेपर प्रथमसमयसम्बन्धी विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण प्राप्त होता है इसको आदिप्रमाण भी कहा है। उस प्रथमसमयके प्रमाणमें चय-चयकी वृद्धि करनेपर प्रत्येकसमयसम्बन्धी धन अर्थात् द्वितीयादि समयोंके परिणामोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—अङ्कसन्दृष्टिमें सर्वधन ३०७२ में से चयधन ४८० घटानेपर २५९२ आदिधन होता है इसमें पद (गच्छ) १६ का भाग देनेपर १६२ आया सो यह प्रथमसमयके विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण जानना। इसमें एक चयका प्रमाण ४ मिलानेसे (१६२+४) १६६ हुए सो ये द्वितीयसमयके विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण है। इसमें एक चय और मिलानेसे (१६६+४) १७० हुए सो तृतीयसमयके विशुद्धपरिणाम हैं। इस-प्रकार आगे-आगे एक-एक चय बढ़ानेपर समय-समयप्रति अधःप्रवृत्तकरणके विशुद्धपरि-णामोंका प्रमाण प्राप्त होता है। अधःप्रवृत्ताकरणपरिणामोंका प्रमाण इसप्रकार है—१६२।१६६।१७०।१७४।१७८।१८२।१८६।१९०।१९४।१९८।२०२।२०६।२१०।२१४।२१८।२२२।

पचयधणस्साणयणे, पचयं पभवं तु पचयमेव हवे।
रूऊणपदं तु पदं, सव्वत्थवि होदि णियमेण ॥९०४॥

अर्थ—प्रचयधन प्राप्त करनेमें जो वृद्धि हुई है वह प्रचय है। एककमपद (गच्छ) सो यहां पदका प्रमाण है। आदिप्रमाणमें जो वृद्धि हुई वह चय है।

विशेषार्थ—प्रथमस्थानमें चयका अभाव है अतः यहां गच्छका प्रमाण विवक्षित गच्छके प्रमाणसे एककम (१६-१) जानना। उर्ध्वरचनामें चयका प्रमाण चार है अतः उत्तर चयका प्रमाण ४ गच्छके प्रमाण १६में से एककम करनेसे गच्छ १५। यहां—

[1]पदमेगेण विहीणं. दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं।
पभवजुदं पदगुणिदं पदगुणिदं होदि सव्वत्थ ॥१६४॥

इसकारणसूत्रसे प्रचयधन प्राप्त करते हैं। तद्यथा—एककमपदको २ से भाग-देकर चयसे गुणा करे तथा आदिधन मिलानेसे एवं गच्छसे गुणा करनेपर प्राप्तधन गच्छ में चयधनका जोड़ होता है। अङ्कसन्दृष्टिमें-गच्छ १५में से एककम कर (१५-१)

१. त्रिलोकसार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद १४ को २ से भाग देनेपर (१४÷२) ७ आया इसको चय (४) से गुणा किया तो (७×४) २८ हुआ इसमें आदिचय ४ मिलानेसे (२८+४) ३२ लब्ध आया इसको गच्छके प्रमाण १५से गुणा करनेपर (३२×१५) ४८०, सो यह प्रचयधनका प्रमाण है।

अब अनुकृष्टिके प्रथमखण्डका प्रमाण कहते हैं—

पडिसमयधणेत्ति पदं, पचयं पभवं च होदि तेरिच्छे।
अणुकट्टिपदं सव्वद्धाणस्स य संखभागो हु ॥९०५॥

अर्थ—प्रत्येकसमयके धनमें अनुकृष्टिके गच्छ व चय आदि सभीकी रचना तिर्यग्रूपसे होती है और अनुकृष्टिका गच्छ, सर्वअध्वान अर्थात् उर्ध्व गच्छके संख्यातवें-भागप्रमाण निश्चयसे होता है।

विशेषार्थ—परिपाटीक्रमसे विरचित इन परिणामोंसे पुनरुक्त और अपुनरुक्त-भावका अनुसन्धान करना अनुकृष्टि है। अथवा 'अनुकर्षणमनुकृष्टि' परिणामोंकी परस्पर समानताका विचार करना वह अनुकृष्टिका एकार्थ है।[1] अनुकृष्टिका काल अन्तर्मुहूर्त-मात्र अवस्थित स्वरूप है, क्योंकि यह काल अधःप्रवृत्ताकरणकालके संख्यातवेंभागप्रमाण है।[2] अङ्कसन्दृष्टिसे उर्ध्वगच्छ १६ में संख्यातरूप ४का भाग देनेसे अनुकृष्टिके गच्छका प्रमाण (१६÷४) ४ प्राप्त हुआ।

अणुकट्टिपदेण हदे, पचये पचयो दु होदि तेरिच्छे।
पचयधणूणं दव्वं, सगपदभाजिदं हवे आदी ॥९०६॥

अर्थ—अनुकृष्टिके गच्छका भाग उर्ध्वचयमें देनेसे जो प्रमाण हो वह अनुकृष्टिका चय होता है और प्रत्येक समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके सर्वधनमें से प्रचयधन कम करनेपर जो प्रमाण आवे उसमें अपने-अपने गच्छका भाग देनेसे अनुकृष्टिके प्रथमखण्डका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—यहां अनुकृष्टि गच्छ ४का उर्ध्वचय ४में भाग देनेपर ($\frac{४}{४}$) एक प्राप्त हुआ सो अनुकृष्टिका चय जानना तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छं उत्तरधनं' इस करणसूत्रसे एककम गच्छ (४−१) ३ इसका आधा १½ इसको चय १से गुणाकरे तो

१. ज. ध. पु. १२ पृ. २३५। २. ज. ध. पु. १२ पृ. २३६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

($1\frac{1}{2} \times 1 = 1\frac{1}{2}$) और गच्छसे गुणा करे तो ($1\frac{1}{2} \times 4$) ६ हुए सो अनुकृष्टिमें प्रचयधन जानना। प्रथमसमय सम्बन्धी जो १६२ परिणाम वे ही प्रथमसमयसम्बन्धी अनुकृष्टि का सर्वधन है उसमें प्रचयधन ६ घटाकर (१६२–६) १५६ रहे उसको अनुकृष्टिगच्छ (४) का भाग देनेपर १५६ ÷ ४ = ३९ आये सो यह प्रथमसमयकी अनुकृष्टिके प्रथम-खण्डके परिणामोंकी संख्याका प्रमाण जानना।

आदिम्हि कमे वड्ढदि, अणुकट्ठिस्स य चयं तु तेरिच्छे।
इदि उड्ढतिरियरयणा, अधापवत्तम्हि करणम्हि ॥९०७॥

अर्थ—प्रथमखण्डसे आगे द्वितीयादि खण्डोंमें तिर्यग्रूप अनुकृष्टिका एक-एक चय क्रमसे बढ़ता है तब द्वितीयादि खण्डोंका प्रमाण होता है। इसप्रकार उर्ध्वरूप और तिर्यग्रूप दोनों ही रचना अधःप्रवृत्तकरणमें जाननी चाहिये।

विशेषार्थ—उस आदिखण्डसे द्वितीयादि खण्डमें क्रमसे तिर्यग्रूप एक-एक अनुकृष्टिका चय बढ़ना सो अनुकृष्टिका चय एक-एक बढ़नेसे ३९।४०।४१।४२, द्वितीय-समयमें ४०।४१।४२।४३। प्रमाण जानना सो द्वितीयसमयके और प्रथमसमयसम्बन्धी ४०।४१।४२। परिणाम समान हैं। इसीप्रकार तृतीयादि समयमें अनुकृष्टिरचना करके खण्डमें परिणामोंका प्रमाण व अधःस्तन समयसम्बन्धी परिणामोंसे समानता जानना चाहिए। ऐसे उर्ध्व व तिर्यगप्रचयरूप दोनों रचना अधःप्रवृत्ताकरणमें है। जैसे—अंकोंकी सहनानीसे दृष्टांतरूप कथन किया उसीप्रकार अर्थसन्दृष्टिके द्वारा यथार्थ कथन जानना। प्रथमसमयका प्रथमखण्ड और अन्तिमसमयके अन्तिमखण्डबिना उपरितन सर्वखण्ड-सम्बन्धी परिणामोके अधस्तनखण्डसम्बन्धी परिणामोंसे यथासम्भव समानता है सो इस-कारणका नाम अधःप्रवृत्ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

	चतुर्थ निर्वर्गणाकाण्डक				तृतीय निर्वर्गणाकाण्डक				द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डक				प्रथम निर्वर्गणाकाण्डक			
१६ समयवर्ती परिणाम सं०	२२२	२१८	२१४	२१०	२०६	२०२	१९८	१९४	१९०	१८६	१८२	१७८	१७४	१७०	१६६	१६२
प्रथमखण्ड	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९
द्वितीयखण्ड	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०
तृतीयखण्ड	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१
चतुर्थखण्ड	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२

अध:प्रवृत्ताकरणके प्रथमसमयसे लेकर यथाक्रम विशेष अधिकके क्रमसे रचना करके प्रथमसमयके परिणामोंके (अध:प्रवृत्ताकरणकालके संख्यातवेंभागप्रमाण) अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हैं, मात्र उतने खण्ड करना चाहिये सो एक निर्वर्गणाकाण्डकका उतना ही प्रमाण है। विवक्षित समयके परिणामोंकी अनुकृष्टिका विच्छेद जितने स्थान ऊपर जाकर होता है वह निर्वर्गणाकाण्डक कहा जाता है[1]। प्रथमसमयके परिणाम-सम्बन्धी वे खण्ड परस्पर सदृश नहीं होते; विसदृश होते हैं, क्योंकि विशेष अधिक क्रमसे अवस्थित हैं। प्रथमसमयसम्बन्धी परिणामोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो वह विशेषअधिकका प्रमाण है।

१. ज० ध०, पु० १२ पृ० २५४; ११४।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनः प्रथमखण्डको छोड़कर इन्हीं परिणामखण्डोंको परिपाटीका उल्लंघनकरके दूसरे समयमें स्थापित करना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि इस द्वितीयसमयमें असंख्यात-लोकप्रमाण अन्य अपूर्वपरिणाम भी होते हैं जो विशेष होते हैं, जैसे उपर्युक्तसन्दृष्टिमें जो ४३ हैं उन्हें यहां अन्तिमखण्डरूपसे स्थापित करना चाहिए। इसप्रकार स्थापित करनेपर दूसरे समयमें भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण परिणामखण्ड प्राप्त होते हैं; तथैव तृतीयादि समयोंमें भी परिणामखण्डोंकी रचना अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयतक यथाक्रम करना चाहिए। इनको सन्दृष्टि निम्न प्रकार भी की गई है—

१00000000000,	१000000000000,	१0000000000000,	१00000000000000
१0000000000,	१00000000000,	१000000000000,	१0000000000000
१000000000,	१0000000000,	१00000000000,	१000000000000
१00000000,	१000000000,	१0000000000,	१00000000000
१0000000,	१00000000,	१000000000,	१0000000000
१000000,	१0000000,	१00000000,	१000000000
१00000,	१000000,	१0000000,	१00000000
१0000,	१00000,	१000000,	१0000000

सन्दृष्टिके अनुसार अनुकृष्टिकी प्ररूपणा इसप्रकार है—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी प्रथमखण्डके परिणाम उपरिमसमयसम्बन्धी परिणामोंमें से किन्हीं भी परिणामोंके समान नहीं होते, वहींपर दूसरे खण्डके परिणाम (४०) दूसरे समयके प्रथमखण्ड (४०) के परिणामोंके समान होते हैं। इसीप्रकार प्रथमसमयके तृतीयादि खण्डोंके परिणामोंका भी तृतीयादि समयोंके प्रथमखण्डके परिणामोंके साथ क्रमसे पुनरुक्तपना तबतक जानना चाहिए जबतक प्रथमसमयसम्बन्धी अन्तिमखण्डके परिणाम (४३) प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिमसमयके प्रथमखण्डके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं।

इसीप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीयादि समयोंके परिणामखण्डोंको भी पृथक्-पृथक् विवक्षित करके वहांके द्वितीयादि खण्डगत परिणामोंका विवक्षित समयसे लेकर ऊपर एकसमयकम निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण समयपंक्तियोंके प्रथमखण्डके परिणामोंके साथ पुनरुक्तपनेका कथन करना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र प्रथमखण्ड-सम्बन्धी परिणाम अपुनरुक्तपनेसे अवशिष्ट रहते हैं अर्थात् प्रत्येक समयके प्रथमखण्ड-सम्बन्धी परिणाम अगले समयोंके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं होते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीप्रकार द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डक परिणामखण्डोंका तृतीयनिर्वर्गणाकाण्डकके परिणामखण्डोंके साथ पुनरुक्तपना जानना चाहिए, किन्तु वहांपर भी प्रथमखण्डके परिणाम अपुनरुक्तरूपसे अवशिष्ट रहते हैं। इसी क्रमसे तृतीय-चतुर्थ-पंचमादि निर्वर्गणाकाण्डकों के भी अनन्तर उपरिमनिर्वर्गणाकाण्डकोंके साथ पुनरुक्तपना वहां पर्यन्त ले जाना चाहिए जबतक द्विचरमनिर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमादि समयोंके सर्व परिणामखण्ड, प्रथमखण्डको छोड़कर अन्तिमनिर्वर्गणाकाण्डक परिणामोंके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं। अंतिमनिर्वर्गणाकाण्डकके स्वस्थानमें पुनरुक्त-अपुनरुक्तपनेका अनुसन्धान परमागमके अविरोधपूर्वक करना चाहिये।

अथवा यहांपर इसप्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए—प्रथमसमयमें जो प्रथमखंड (३९) है वह ऊपर किसीके साथ भी सदृश नहीं है। पुन: प्रथमसमयसम्बन्धी द्वितीयखण्ड (४०) तथा द्वितीयसमयका प्रथमखण्ड (४०) दोनों ही सदृश हैं। तथैव प्रथमसमयका तृतीयखण्ड (४१) और द्वितीयसमयका द्वितीयखण्ड (४१) ये दोनों भी सदृश हैं। इसीप्रकार आगे चलकर प्रथमसमयवर्ती अन्तिमखण्ड तथा द्वितीयसमयका द्विचरमखण्ड ये दोनों सदृश हैं। तथैव द्वितीयसमयसम्बन्धी परिणामखण्डोंका और तृतीयसमय के परिणामखण्डोंका सन्निकर्ष करना चाहिए। इसीप्रकार ऊपर भी तदनन्तर पिछले (पूर्व) के साथ सन्निकर्षविधि जानकर कथन करना चाहिए।

परस्थान अल्पबहुत्वका कथन इसप्रकार है—अध:प्रवृत्तकरणके प्रथमसमयमें जघन्य विशुद्धि (१) सबसे स्तोक है, क्योंकि अध:प्रवृत्तकरणमें इससे अल्प अन्यस्थान नहीं पाया जाता है। उससे द्वितीयसमयमें जघन्यविशुद्धि (४०) अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथमसमयके जघन्यविशुद्धिस्थानसे षट्स्थानक्रम द्वारा असंख्यातलोकमात्र विशुद्धिस्थानों को उल्लंघनकर स्थित हुए द्वितीयखण्डके जघन्यविशुद्धिस्थानका द्वितीय समयमें जघन्यपना देखा जाता है इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त (प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्त) तक जघन्य विशुद्धिका ही प्रतिसमय अनन्तगुणित क्रमसे कथन करना चाहिए उससे (प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डक) प्रथमसमयमें उत्कृष्टविशुद्धि (१६२) अनन्तगुणी है, क्योंकि इससे अनन्तरपूर्व जो जघन्यविशुद्धिक्रम प्राप्त है वह तो अध:प्रवृत्तकरणके प्रथमसमयके विशुद्धस्थानोंके अन्तिमखण्डकी आदि-विशुद्धि है और उसी अन्तिमखण्डकी उत्कृष्टविशुद्धि उक्त आदि विशुद्धिसे छहस्थान क्रमसे वृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण परिणामस्थानोंको उल्लंघकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्थित है। प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (१६२) से द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डककी जघन्यविशुद्धि (१६३) अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि द्वितीयसमयके द्विचरमखण्डके अन्तिमपरिणामके सदृश होकर उर्वंकपनेसे अवस्थित है और द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डककी जघन्यविशुद्धि अष्टांकरूपसे अवस्थित है इसलिए अनन्तगुणी है, इससे द्वितीयसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (२०५) अनन्तगुणी है, क्योंकि पूर्वं की जघन्यविशुद्धि (१६३) अधःप्रवृत्तकरणके दूसरे समयके अन्तिमखण्डके जघन्यपरिणाम स्वरूप है और उससे असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर स्थित यह द्वितीयसमयके अन्तिमखण्डकी उत्कृष्टविशुद्धि है इसलिए यह उससे अनन्तगुणी है। इस पद्धतिसे अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण एक निर्वर्गणाकाण्डकको अवस्थितकर उपरिम और अधस्तन जघन्य और उत्कृष्टपरिणामोंका अल्पबहुत्व करना चाहिए। यह सब अल्पबहुत्व निर्वर्गणाकाण्डकोंको क्रमसे उल्लंघनकर पुनः द्विचरमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (६९०) से अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयकी जघन्यविशुद्धि (६९१) अनन्तगुणी है; उससे अन्तिमनिर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (७४४) अनन्तगुणी है। अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयपर्यंन्त इसप्रकार प्रकृत अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनी चाहिए। इसकी सन्दृष्टि इसप्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

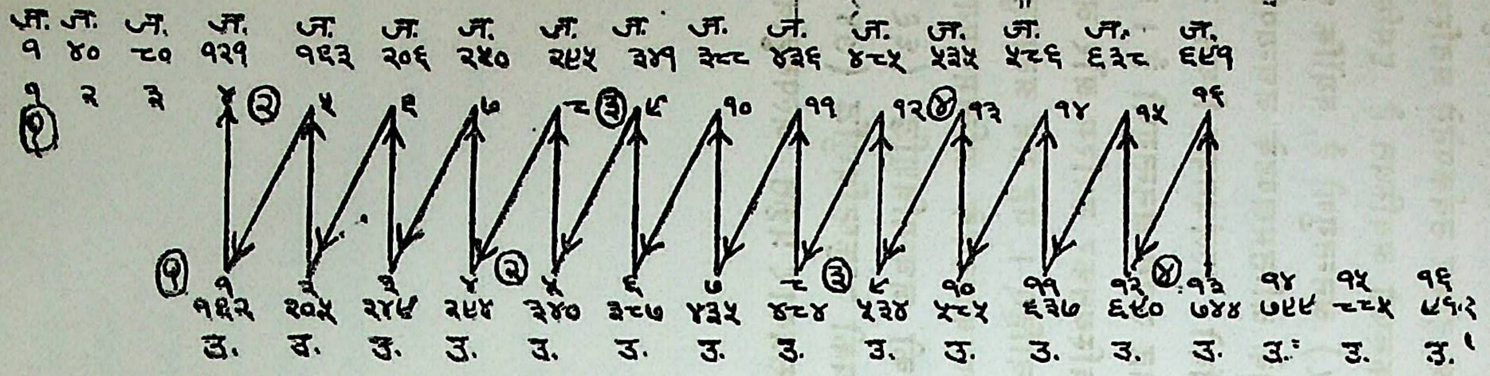

उपर्युक्त सन्दृष्टिमें—१ से १६ तककी संख्या अध:प्रवृत्तकरणके समयोंकी सूचक है।

कोष्ठकके भीतरकी संख्या निर्वर्गणाकाण्डककी सूचक है। प्रत्येक निर्वर्गणाकाण्डक चार समयोंका है। १–४० आदि संख्या उस-उस समयके जघन्यपरिणामकी विशुद्धिसंख्या सूचक है। १६२–२०५ आदि संख्या उस-उस समयके उत्कृष्टपरिणामकी विशुद्धिसंख्या सूचक है। जघन्यसे जघन्य, जघन्यसे उत्कृष्ट, उत्कृष्टसे जघन्य और उत्कृष्टसे उत्कृष्ट प्रत्येक अनन्तगुणीविशुद्धिसे वृद्धिगत है।

अध:प्रवृत्तकरणमें केवल प्रतिसमय अनन्तगुणीविशुद्धिसे विशुद्ध होता है, किन्तु उन विशुद्धियोंमें स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रम करनेकी समर्थता नहीं है। जो अप्रशस्त कर्मप्रकृतियां बंधती हैं वे समय समयमें द्विस्थानीय अनन्तगुणीहीन शक्तिसे युक्त बंधती है और जो प्रशस्त प्रकृतियां बंधती है वे समय-समयमें चतु:स्थानीय अनन्तगुणी अनुभागशक्तिसे युक्त बन्धती हैं। एक-एक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवेंभागसे हीन अन्य-अन्य स्थितिबन्धको बांधना आरम्भ करता है। अध:प्रवृत्तकरणके प्रथमसमयमें ही उससे अनन्तरपूर्व अधस्तनसमयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्त:कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवेंभागहीन अन्य स्थितिबन्धको प्रारम्भ करता है पुनः इस स्थितिबन्धको अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थितरूपसे बांधनेवालेके उसका बन्धकाल क्षीण हो जाता है। पुनः उससे

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पल्योपमके संख्यातवेंभागप्रमाण न्यून अन्य स्थितिबन्धका आरम्भकर उसे भी अन्तर्मुहूर्तकालतक अवस्थितरूपसे बांधता है। इक्रमसे स्थितिबन्धके पुनः पुनः पूर्ण होनेपर पल्योपमका संख्यातवांभागप्रमाण हीन बन्ध करता हुआ अधःप्रवृत्तकरणकालके भीतर संख्यातहजार स्थितिबन्धापसरण करता है।

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तु।
पडिसमयं सुज्झंता, अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥९०८॥

अर्थ—सातिशयअप्रमत्तसंयमी समय-समयप्रति अनन्तगुणीविशुद्धतासे बढ़ता हुआ अन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्त अधःकरणको करता है पुनः उसको समाप्त करके अपूर्वकरण को प्राप्त होता है।

आगे अङ्कसन्दृष्टि द्वारा अपूर्वकरणपरिणामोंका कथन करते हैं—

छण्णउदिचउसहस्सा, अट्ठ य सोलस धणं तदद्धाणं।
परिणामविसेसोवि य, चउ संखापुव्वकरणसंदिट्ठी ॥९०९॥

अर्थ—अपूर्वकरणमें सर्वधन ४०९६ और गच्छ ८, परिणामविशेष १६ एवं संख्यातका प्रमाण ४ है सो यह अङ्कसन्दृष्टिमें कथन किया है।

विशेषार्थ—यहां अपूर्वकरणके सर्वस्थानोंका प्रमाण सर्वधन, अपूर्वकरणकालसम्बन्धी समयोंका प्रमाण गच्छ, प्रतिसमय बढ़ते हुए परिणाम विशेष अर्थात् चय तथा चयको प्राप्त करनेके लिये सख्यातका प्रमाण ४ है।

अंतोमुहुत्तमेत्ते, पडिसमयमसंखलोगपरिणामा।
कमउड्ढापुव्वगुणे, अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥९१०॥

अर्थ—अपूर्वकरणका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है इसमें समय-समयप्रति असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम पाए जाते हैं और वे प्रथमसमयसे अन्तिमसमयपर्यन्त समान चयरूप बढ़ते हैं। इसमें अनुकृष्टिरचना नहीं होती है।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणमें उपरितन समयवर्ती परिणाम अधस्तन समयवर्ती परिणामोंके सदृश नहीं होते। किसी जीवका प्रथमसमयमें उत्कृष्टपरिणाम होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी जीवका द्वितीयसमयमें जघन्य परिणाम होता है तथापि प्रथमसमयवर्ती जीवके परिणामोंसे द्वितीयसमयवर्ती जीवके परिणामोमें अधिकता पाई जाती है। अत: जिनके अपूर्वकरणका प्रथमसमय है उन अनेक जीवोंके परिणामोंकी समानता भी होती है और असमानता भी होती है, किन्तु द्वितीयादिसमयवर्ती जीवोंके परिणामोंसे कदाचित् भी समानता नहीं होती इसप्रकार जिनके अपूर्वकरणको प्राप्त किये हुए द्वितीयादि समय हो गये हैं उनके परिणामोंकी परस्परमें समानता व असमानता और उपरितन व अधस्तन समयवर्ती परिणामोंसे असमानता ही है इसीलिए इसका नाम अपूर्वकरण है। यहां सर्वधन ४०९६, गच्छ ८, इसकावर्ग ६४, संख्यातको सहनानी ४ "**पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं**" गाथा ९०२ के इस सूत्रानुसार पद (गच्छ) के वर्ग ६४ को संख्यात (४) से गुणाकरके उसराशिसे सर्वधनमें भाग देनेपर ($\frac{४०९६}{६४×४}$) १६ आया सो यह चयका प्रमाण जानना तथा "**व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं**" इससूत्रसे एककम गच्छके आधे ३½ को चय १६ से गुणाकरके ($\frac{७}{२}$×१६) लब्ध ५६में गच्छ ८से गुणा करनेसे ४४८ होते हैं सो यह प्रचयधन है। "**चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिधणं**" इस सूत्रसे चयधन ४४८ को सर्वधन ४०९६में से घटानेपर (४०९६–४४८) ३६४८ शेष रहे इसमें गच्छ ८का भाग देनेसे (३६४८÷८) ४५६ आये सो प्रथमसमयसम्बन्धी भावोंका प्रमाण है तथा "**आदम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं**" इस सूत्रसे आदिधनके प्रमाणमें एक-एक चयका प्रमाण (१६) क्रमसे मिलानेपर समय-समयसम्बन्धी भावोंका प्रमाण होता है। प्रथमसमयसम्बन्धी ४५६में एक चय मिलने पर (४५६+१६) ४७२ द्वितीयसमयसम्बन्धी परिणाम होते हैं पुन: इनमें एकचय मिलानेसे (४७२+१६) ४८८ तृतीयसमयसम्बन्धी परिणाम होते हैं सो इसीप्रकार अन्तिमसमयपर्यन्त भावों (परिणामों) का प्रमाण जानना।

अङ्कसंदृष्टिकी अपेक्षा अपूर्वकरण का यन्त्र

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६
आठसमयवर्ती सब परिणामोंका कुलयोग ४०९६

इस दृष्टांतका ऐसा अर्थ जानना कि अध:प्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं इनको असंख्यातलोकसे गुणा करे तो अपूर्वकरणसम्बन्धी सर्वधन होता है, अपूर्वकरणकालके समयोंका प्रमाण गच्छ कहलाता है तथा गच्छके वर्गको संख्यातगुणा करके इसका भाग सर्वधनमें देनेपर चयका प्रमाण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां यह अर्थ भी है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण है। द्वितीयादि समयमें भी असंख्यातलोकप्रमाण ही हैं तथापि चयप्रमाणरूप ही बढ़ते-बढ़ते हुए हैं। यहां प्रथमसमयसम्बन्धी जघन्यविशुद्धिपरिणाम भी अध:प्रवृत्तकरण के अन्तिमसमयवर्ती अन्तिमअनुकृष्टिखण्डके विशुद्धपरिणामसे अनन्तगुणे विशुद्ध हैं उससे प्रथमसमयसम्बन्धी उत्कृष्टपरिणाम अनन्तगुणे विशुद्ध हैं इसलिये यहां भी असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धि सम्भव है इससे द्वितीयसमयवर्ती जघन्यपरिणाम अनन्तगुणे हैं इसप्रकार अन्तिमसमयपर्यन्त जानना तथा उपरितनसमयवर्ती परिणाम अधस्तनसमयवर्ती परिणामोंके समान कभी भी नहीं होते अत: अपूर्वकरण ऐसा नाम कहा है।

अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें जघन्यरूपसे तो पल्योपमके संख्यातवेंभागप्रमाण आयामवाला जघन्यस्थितिकाण्डकघात होता है, क्योंकि सबसे जघन्य अन्त:कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ आए हुए जीवके यह स्थितिकाण्डकघात होता है, परन्तु सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण आयामवाला प्रथम उत्कृष्टस्थितिकाण्डकघात होता है, क्योंकि जघन्यस्थितिसत्कर्मसे संख्यातगुणे स्थितिसत्कर्मके साथ आकर अपूर्वकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके प्रथमसमयमें उक्त स्थितिकाण्डकघात होता है। अध:प्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयके स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवेंभागहीन अपूर्वस्थितिबन्धको अपूर्वकरणके प्रथमसमय में प्रारम्भ करता है। अनुभागकाण्डकघात अप्रशस्तकर्मोंका ही होता है, क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्तकर्मोंकी अनुभागवृद्धिको छोड़कर उसका घात नहीं हो सकता। उस अनुभागकाण्डकका प्रमाण तत्कालभावी द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मके अनन्तबहुभागप्रमाण है, क्योंकि करणपरिणामोंके द्वारा घाते जानेवाले अनुभागकाण्डकके अन्य विकल्पोंका होना असम्भव है। एकप्रदेशगुणहानि स्थानान्तरके भीतर अनुभागसम्बन्धी स्पर्धक अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवेंभाग प्रमाण होकर भी आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोक हैं। उपरिम अनुभागसम्बन्धी स्पर्धकोंका अपकर्षण करते हुए जितने अनुभागस्पर्धकोंको जघन्यरूपसे अतिस्थापित करके उनसे अधस्तनवर्ती स्पर्धक निक्षेपरूप से स्थापित करता है वे जघन्यअतिस्थापनाविषयकस्पर्धक एकप्रदेशगुणहानि स्थानान्तरके स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं, उससे निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं, उससे काण्डकरूपसे ग्रहण किये गये स्पर्धक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक अनुभागकाण्डकघातमें अनुभागसत्कर्मके अनन्तवेंभागको छोड़कर शेष अनन्तबहुभागको काण्डकरूपसे ग्रहण किया जाता है। अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें हो आयुकर्मके अतिरिक्त शेषकर्मोंका गुण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेणीनिक्षेप होता है उसका काल अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणके समुदितकाल (अन्तर्मुहूर्त) से अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातवेंभाग विशेष अधिक है। गुणश्रेणिकी रचनाका क्रम इसप्रकार है—अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें डेढ़गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्धों को अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजितकर वहां लब्धरूपसे प्राप्त एकखण्डप्रमाण द्रव्य का अपकर्षणकरके उसमें असंख्यातलोकका भाग देनेपर, एकभाग द्रव्यको उदयावलिके भीतर गोपुच्छाकाररूपसे निक्षिप्तकर पुनः शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता हुआ उदयावलिके बाहर अनन्तरस्थितिमें असंख्यातसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्यको निक्षिप्त करता है। उससे उपरिमस्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। इसप्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिककालमें गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तरस्थितिमें असंख्यातगुणाहीन द्रव्य देकर उसके ऊपर गोपुच्छाकारसे द्रव्य दिया जाता है। इसीप्रकार अपूर्वकरणके द्वितीयादि समयोंमें भी गुणश्रेणिनिक्षेप होता है। स्थितिकाण्डकका काल और स्थितिबन्धका काल तुल्य है, किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथमस्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल और प्रथम स्थितिबन्धकालसे द्वितीयादि स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल और द्वितीयादि स्थितिबन्धोंका काल यथाक्रम विशेषहीन-विशेषहीन होता है। एक स्थितिकाण्डकमें हजारों अनुभागकाण्डक होते हैं। इसप्रकार बहुतहजारस्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणकाकाल समाप्त होता है। अपूर्वकरणके प्रथमसमयके स्थितिसत्कर्मसे अन्तिमसमयमें सत्कर्म संख्यातगुणा हीन हैं।

अथानन्तर अनिवृत्तिकरणका स्वरूप कहते हैं—

एकम्हि कालसमए, संठाणादीहिं जहा णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहंवि य, परिणामेहिं मिहो जे हु॥६११॥
होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जस्सिमेक्कपरिणामो।
विमलयरझाणहुदवहसिहाहि णिद्दड्ढकम्मवणा ॥६१२॥

अर्थ—जो जीव अनिवृत्तिकरणकालके विवक्षित एकसमयमें जैसे शरीरके आकार व वर्णादिसे भेदरूप हो जाते हैं उसप्रकार परिणामोंसे भेदरूप नहीं होते तथा जिसकरणमें प्रतिसमय जीवोंके एकरूप ही परिणाम हैं वे परिणाम अतिशय निर्मलध्यानरूप अग्निकी शिखासे जलाए हैं कर्मरूपी वन जिन्होंने ऐसे अनिवृत्तिरूप होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—इसकरणमें समानसमयवर्ती जीवोंके परिणाम एक समान ही होते हैं अन्यरूप सर्वथा नहीं होते इसीप्रकार द्वितीयादि समयवर्ती जीवोंके परस्पर समानता जानना। अनिवृत्तिकरणकालप्रमाणरूप गच्छ सो अङ्कसन्दृष्टिमें ४ रूप हैं और अर्थसन्दृष्टिमें वही काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है।

अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट होनेके प्रथमसमयसे ही अपूर्वकरणके अन्तिम स्थितिकाण्डकसे विशेषहीन अन्य स्थितिकाण्डकका आरम्भ होता है। पूर्वके स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवेंभागप्रमाणहीन अन्य स्थितिबन्धका भी आरम्भ होता है तथा घात करनेसे शेष रहे अनुभागके अनन्तबहुभागप्रमाण अनुभागकाण्डकका भी वहीं पर ग्रहण होता है, किन्तु गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्वका ही रहता है। इसप्रकार हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातबहुभाग अन्तर किया जाता है। विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरितन स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणाम विशेषके कारण अभाव होनेको अन्तरकरण कहते हैं। उससमय जितना स्थितिबन्ध काल या स्थितिकाण्डकोत्कीर्णकाल है उतने कालके द्वारा अन्तर हो जाता है अर्थात् गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्र (गुणश्रेणिशीर्ष) से लेकर नीचे गुणश्रेणिआयामके संख्यातवेंभागप्रमाण स्थितिनिषेकोंका खण्डन (अभाव) हो जाता है। अन्तरसे नीचेकी कर्मस्थिति अर्थात् प्रथमस्थितिसे और द्वितीयस्थिति (अन्तरसे ऊपरकी कर्मस्थिति) से तबतक आगाल प्रत्यागाल होता रहता है जबतक प्रथमस्थितिमें आवलिप्रत्यावलि शेष रहती है। द्वितीयस्थितिके कर्मपरमाणुओंका प्रथमस्थितिमें अपकर्षणवश आना आगाल है। प्रथमस्थितिके कर्मपरमाणुओंका द्वितीयस्थितिमें उत्कर्षणवश जाना प्रत्यागाल है। प्रथमस्थितिमें आवलि और प्रत्यावलि शेष रहनेपर विवक्षित कर्मोंकी गुणश्रेणि, आगाल व प्रत्यागाल नहीं होता, किन्तु प्रत्यावलिमें से ही उदीरणा होती है। आवलिप्रमाण प्रथमस्थितिके शेष रहनेपर उदीरणा भी नहीं होती, किन्तु प्रथमस्थितिके अन्तिमसमयतक स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात सम्भव है, क्योंकि वहांपर अन्तिमस्थितिबन्धके साथ उनकी परिसमाप्ति देखी जाती है। इसप्रकार प्रथमस्थिति की समाप्तिके साथ-साथ अनिवृत्तिकरणकाल समाप्त हो जाता है।

नोट—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणका विस्तारपूर्वक कथन लब्धिसारग्रन्थके उपशमसम्यक्त्व नामक प्रकरणमें किया गया है। अतः इन तीनों करणोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषस्वरूप जाननेके लिए लब्धिसारग्रन्थसे, जो कि आचार्य शिवसागरग्रन्थमालासे ही प्रकाशित हुआ है, उसे देखना चाहिए।

इति श्रीआचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी "सिद्धान्तज्ञानदीपिका" नामा हिन्दी टीकामें "त्रिकरणचूलिका" नामक आठवां अधिकार पूर्ण हुआ।

—❖—

अथ कर्मस्थितिरचनासद्भावाधिकार।

अब आचार्य सिद्धोंको नमस्कार करते हुए कर्मस्थितिकी रचनाका सद्भाव कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

सिद्धे विसुद्धणिलये, पणट्ठकम्मे विणट्ठसंसारे।
पणमिय सिरसा वोच्छं, कम्मट्ठिदिरयणसब्भावं ॥९१३॥

अर्थ—प्रकृष्टरूपसे नष्ट हुए हैं घाति-अघातिकर्म जिनके, विशेषरूपसे किया है चतुर्गतिभ्रमणरूप संसार जिन्होंने इसलिए जिनका आत्मप्रदेशोंमें स्थान है ऐसे सिद्धपरमेष्ठीको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करके कर्मस्थिति रचनाका सत्तारूप कथन करता हूँ। यह कथन प्रसंगवश गोम्मटसार जीवकाण्डके योगाधिकारमें एवं पहले कर्मकाण्डके बन्ध-उदय-सत्त्वाधिकारमें कहा है।

कम्मसरूवेणागददव्वं, ण य एदि उदयरूवेण।
रूवेणुदीरणस्स य, आबाहा जाव ताव हवे ॥९१४॥

अर्थ—कर्मस्वरूपसे परिणत हुआ जो कार्मणद्रव्य वह जबतक उदय या उदीरणारूप नहीं होता तबतकका काल आबाधा कहलाता है।

विशेष—कर्मबन्ध होनेके पश्चात् जितने कालतक उदय व उदीरणारूप नहीं हो सके उसकालको आबाधाकाल कहते हैं। अर्थात् वह आबाधाकाल दो प्रकारका है—
१. उदयआबाधाकाल २. उदीरणाआबाधाकाल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयं पडि सत्तण्हं, आबाहा कोडिकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥६१५॥

अर्थ—उदयकी अपेक्षा आयुबिना शेष सात मूलप्रकृतियोंकी एक कोड़ाकोड़ी-सागरस्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है। शेष स्थितियोंकी आबाधा भी इसी प्रतिभागसे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—एककोड़ाकोड़ीसागरस्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय व अन्तरायसम्बन्धी ३० कोड़ाकोड़ीसागरस्थितिकी कितनी आबाधा होगी ? इसप्रकार यहां प्रमाणराशि १ कोड़ाकोड़ीसागर, फलराशि १०० वर्ष और इच्छाराशि ३० कोडाकोड़ीसागर है सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेपर $\frac{\text{३० कोड़ाकोड़ीसागर} \times \text{१००}}{\text{१ कोड़ाकोड़ीसागर}}$ = ३००० वर्षकी आबाधा होती है। इसीप्रकार मोहनीयकर्मकी ७० कोड़ाकोड़ीसागरस्थितिसम्बन्धी आबाधा ७००० वर्ष होती है। नाम व गोत्रकर्मकी २० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी आबाधा २००० वर्ष होती है।

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाधा ।
संखेज्जगुणविहीणं, सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥६१६॥

अर्थ—अन्तःकोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी आबाधा अन्तर्मुहूर्तमात्र है तथा जघन्यस्थितिकी आबाधा अन्तर्मुहूर्तके संख्यातवेंभाग है।

आगे आयुकर्मसम्बन्धी आबाधा कहते हैं—

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेपअद्ध वोत्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा, ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥६१७॥

अर्थ—आयुकर्मकी आबाधा कोटिपूर्ववर्षके तृतीयभागसे असंक्षेपाद्धापर्यंन्त जानना। आयुकर्मकी आबाधा आयुके प्रतिभागरूप नहीं होती।

विशेषार्थ—कोटिपूर्ववर्षकी आबाधा जिसका त्रिभाग है तो तीन पल्यकी स्थितिकी आबाधा कितनी होगी ? इसप्रकार स्थितिका प्रतिभागकरके आयुकर्मकी आबाधाका प्रमाण सिद्ध नहीं होता अतः जितनी भुज्यमान आयु अवशेष रहनेपर पर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवकी आयु बन्धे उतनी ही बध्यमान आयुकी आबाधाका प्रमाण है। कर्मभूमिमें आयु का त्रिभाग अवशेष रहनेपर, भोगभूमि व देव-नारकियोंमें छहमास[1] अवशेष रहनेपर आयुबन्धकी योग्यता होती है अतः उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटिवर्षका तृतीयभाग जानना और जघन्य आबाधा असंक्षेपाद्धा (क्षुद्रभवका संख्यातवांभाग)[2] अर्थात् जिससे थोड़ा-काल कोई न हो उतने प्रमाण है। [क्षुद्रभव आयुवाला अपनी आयुके अन्तिम अपकर्षमें आयुका बन्ध करता है उसकी आबाधा क्षुद्रभवके असंख्यातवेंभागप्रमाण होती है।] इसप्रकार उदयकी अपेक्षा आबाधा कही।

आगे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधाका कथन करते हैं—

आवलियं आबाहा, उदिरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभवियआउगस्स य, उदीरणा णत्थि णियमेण ॥९१८॥[3]

अर्थ—उदीरणाका आश्रयकर आयुके बिना सातकर्मोंकी आबाधा आवलीमात्र है तथा परभवसम्बन्धी आयु बंधनेके पश्चात् उसकी उदीरणा नहीं होती है।

विशेषार्थ—बन्ध होनेके पश्चात् आयुबिना शेष कर्मोंकी उदीरणा आवलीकाल व्यतीत होनेपर ही होती है। देव, नारकी, चरमोत्तमशरीरी और असंख्यातवर्षकी आयु-वाले भोगभूमिजजीवोंके बिना अन्यत्र अर्थात् कर्मभूमिज तिर्यञ्च व मनुष्यके उदयागत भुज्यमानआयुकी उदीरणा होतो है।

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण, सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥९१९॥

---

१. यद्यपि कर्मकाण्डमें भोगभूमिमें नवमास आयु शेष रहनेपर आयुबन्धकी योग्यता आती है ऐसा लिखा है, किन्तु 'असंखेज्जवस्साऊ तिरिक्ख-मणुसा अत्थित्ति चे ण, तेसिं देवणेरइयाणं व भुंजमाणाउए छम्मासो अहिए संते परभवि आउस्स बंधाभावा'' ध० पु० ६ पृ० १७० के इन वचनोंके अनुसार यहां भोगभूमि-की भी ६ माह आयु शेष रहनेपर ही आयुबन्धकी योग्यता आती है ऐसा कहा है। इसीलिये कर्मकाण्डके इस प्रकरणमें ऊपर भी ६ मास ही दिया गया है।

२. इसप्रसंगमें ध० पु० ११ पृ० २७५ भी देखना चाहिए।

३. ध० पु० १० पृ० २३७ पर भी यह प्रकरण दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आबाधाकालसे हीन स्थितिप्रमाण बन्धके समय सातकर्मोंकी निषेक रचना होती है, किन्तु आयुकर्मकी जितनी स्थिति बन्धती है उतने प्रमाण निषेकरचना होती है।

विशेषार्थ—आयुकर्मबिना सातकर्मोंकी जितनी स्थिति बंधती है उसमेंसे आबाधाकालको घटाकर शेषकालके जितने समय होवें उतने निषेकोंकी रचना होती है। आयुकर्मकी आबाधा पूर्वभवमें ही व्यतीत हो जाती है अतः आयुकर्ममें निषेकरचना अपनी स्थितिप्रमाण होती है।

आबाहं वोलाविय, पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं, बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥९२०॥
बिदिये बिदियणिसेगे, हाणी पुव्विल्लहाणि अद्धं तु।
एवं गुणहाणिं पडि, हाणी अद्धद्धयं होदि ॥९२१॥जुम्मं॥

अर्थ—ज्ञानावरणादिकर्मके स्थितिबन्धमें आबाधाकालके पश्चात् प्रथमसमयकी प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकमें बहुत द्रव्य देता है और उसके ऊपर द्वितीयगुणहानिके प्रथमनिषेकपर्यन्त एक-एक चयरूपसे हीन-हीनद्रव्य दिया जाता है तथा द्वितीयगुणहानिके दूसरेनिषेकमें द्वितीयगुणहानिके ही प्रथमनिषेकसे एकचयकमप्रमाण द्रव्य जानना सो प्रथमगुणहानिमें निषेक-निषेक प्रतिहानिरूप चयका प्रमाण था उससे द्वितीयगुणहानिमें हानिरूप चयका प्रमाण आधा-आधा जानना चाहिए।[1]

दव्वं ठिदिगुणहाणीणद्धाणं दलसला णिसेयछिदी।
अण्णोण्णगुणसलावि य, जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे।।९२२॥

अर्थ—सर्वकर्मोंकी स्थितिरचनामें द्रव्य, स्थितिआयाम, गुणहानिआयाम, दलशलाका अर्थात् नानागुणहानि, निषेकच्छेद अर्थात् दोगुणहानि और अन्योन्याभ्यस्त ये छहराशि जानना।

विशेषार्थ—कर्मरूपसे परिणत पुद्गलपरमाणुका प्रमाण सो द्रव्यराशि, पूर्वोक्तप्रकार कर्मस्थितिके समयोंका प्रमाण स्थितिराशि, जबतक दूना-दूना हीन द्रव्य न दिया

---

१. गाथा ९१४ स ९२१ तक पुनरुक्त हैं ये आठ गाथाएं वे ही हैं जो गाथा १५५ से १६२ तक हैं प्रकरण मिलानेके लिए पुनः यहांपर लिख दी गई हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जावे तबतक एक गुणहानि रहती है ऐसी गुणहानियोंमें समयोंका प्रमाण सो गुणहानि-आयामराशि, सर्वस्थितिमें जितनी गुणहानि पाई जावे उनका प्रमाण नानागुणहानिराशि, गुणहानिआयामके प्रमाणको दूना करनेपर जो प्रमाण हो वह दोगुणहानिराशि जानना तथा नानागुणहानिका जितना प्रमाण हो उतने प्रमाण दोके अंक लिखकर परस्परमें गुणाकरके जो प्रमाण हो सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जाननी चाहिए।

निषेक	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पञ्चम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
अष्टम	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठम	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
पंचम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
गुणहानि द्रव्य	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

कुलद्रव्य ६३००, एकगुणहानिआयाम ८, नानागुणहानि ६, प्रथमगुणहानिमें चय ३२, दोगुणहानि ८×२=१६, अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२×२=६४।

अब उपर्युक्त कथनका अङ्कसन्दृष्टि द्वारा आचार्य स्वयं कथन करते हैं—

तेवट्ठिं च सयाइं, अडदाला अट्ठ छक्क सोलसयं।
चउसट्ठिं च विजाणे, दव्वादीणं च संदिट्ठा॥६२३॥

अर्थ—अङ्कसन्दृष्टिमें द्रव्य ६३००, स्थिति ४८, गुणहानिआयाम ८, नानागुणहानि ६, दोगुणहानि १६ और अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४ जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दव्वं समयपबद्धं, उत्तपमाणं तु होदि तस्सेव ।
जीवसहत्थणकालो, ठिदिअद्धा संखपल्लमिदा ॥९२४॥

अर्थ—अर्थसन्दृष्टिमें दृष्टांतरूप यथार्थ कथनकरके द्रव्य तो पूर्वोक्त प्रमाण समयप्रबद्ध जानना । एकसमयमें जितने परमाणु बंधते हैं उनका कथन पहले प्रदेशबन्ध अधिकारमें कह आए हैं सो उनका प्रमाणरूप तो द्रव्यराशि है तथा जो बंधा हुआ समयप्रबद्ध वह जबतक जीवके साथ अवस्थानरूप रहे सो स्थितिका अद्धा (काल) आयाम है, स्थिति संख्यातपल्यप्रमाण है सो उसके समयोंका प्रमाण स्थितिराशि है ।

मिच्छे वग्गसलायप्पहुदिं पल्लस्स पढममूलोत्ति ।
वग्गहदी चरिमो तच्छिदिसंकलिदं चउत्थो य ॥९२५॥

अर्थ—मिथ्यात्वकर्ममें पल्यकी वर्गशलाकाको आदि लेकर पल्यके प्रथममूलपर्यन्त उन वर्गोंका परस्पर गुणा करनेसे चरमराशि अर्थात् अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है और उनकी अर्धच्छेदराशियोंको संकलित करनेसे चतुर्थराशि अर्थात् नानागुणहानिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—सातकर्मोंमें द्रव्य, स्थिति, गुणहानिआयाम और दो गुणहानिकी सहनानी तो समान है । यहां द्रव्यस्थिति यद्यपि हीनाधिक है तथापि सामान्यरूपसे द्रव्य समयप्रबद्धप्रमाण, स्थिति संख्यातपल्य कहनेसे समानता जानना तथा नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि समान नहीं है अतः इनको विशेषरूपसे कहा जाता है । ७० कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थितिवाले मिथ्यात्वकर्मका सर्वप्रथम कथन करते हैं—

पल्यकी वर्गशलाकासे पल्यके प्रथममूलपर्यन्त द्विरूपवर्गधाराके स्थानोंको, उन्हींके अर्धच्छेदोंको तथा उन्हींकी वर्गशलाकाको स्थापनकर तीनपंक्ति करना । प्रथमपंक्तिमें तो पल्यकी वर्गशलाकाका प्रमाण नीचे लिखना एवं इसका वर्ग उसके ऊपर लिखना इसप्रकार क्रमसे प्रथममूलपर्यन्त वर्गस्थान लिखना । दूसरी पंक्तिमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे लेकर दूने-दूने पल्यके प्रथमवर्गमूलके अर्धच्छेदपर्यन्त लिखना । तृतीयपंक्तिमें पल्यकी वर्गशलाकाकी शलाकासे लेकर एक-एक अधिकप्रमाण लिये पल्यके प्रथममूलकी वर्गशलाकापर्यन्त लिखना । यहां प्रथमपंक्तिकी राशिको परस्पर गुणाकरके पल्यकी वर्ग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शलाकाका भाग पल्यमें देना जो प्रमाण आवे उतना अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना। द्वितीयपंक्तिका जोड़ देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंके प्रमाणको पल्यके अर्धच्छेदोंमें से घटानेपर जो प्रमाण होता है उसको बताते हैं—

द्विरूप वर्गधारामें प्रत्येकस्थानके अर्धच्छेद दूने कहे थे सो उनको "अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरपदभजियं" इस सूत्रके अनुसार पल्यके अर्धच्छेदोंसे आधे पल्यके प्रथममूलके अर्धच्छेदरूप अन्तधनको गुणकार दोसे गुणा करनेपर पल्यके अर्धच्छेदका प्रमाण हुआ उसमेंसे पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंका प्रमाण घटानेपर जो प्रमाण आया उसको एककम गुणकार दो से (गुणकार दोमें एक घटानेपर एक रहा) भाग देनेपर उतने ही रहे सो यह चतुर्थराशि नानागुणहानिका प्रमाण जानना। अब इस कथनको अङ्कसन्दृष्टिसे कहते हैं—

७० कोड़ाकोड़ीसागरको एकपल्य व पल्यको पण्णट्ठी (६५५३६) मानलें तब पहलेके समान ही गणित करनेपर नानागुणहानि व अन्योभ्यस्तराशिका प्रमाण निकल आवेगा।

वर्गशलाका—किसी विशिष्ट संख्याका वर्गमूल जितनीबार निकाला जा सके उतनी संख्याको वर्गशलाका कहते हैं सो यहां ६५५३६ की वर्गशलाका ४ हैं।

अर्धच्छेद—२के अङ्कको २से गुणा करनेपर विशिष्टसंख्या (४) प्राप्त हुई उस संख्याके जितने २के अङ्क लिखे जाते हैं वे अर्धच्छेद कहलाते हैं जैसे—४के अर्धच्छेद २ हैं एवं १६के अर्धच्छेद ४ हैं।

प्रथमपंक्ति—पल्यका प्रमाण पण्णट्ठी (६५५३६) की वर्गशलाका	४
वर्गशलाकाका वर्ग	१६
६५५३६का प्रथमवर्गमूल	२५६
द्वितीयपंक्ति—वर्गशलाकाके अर्धच्छेद	२
१६ [वर्गशलाकाके वर्ग] के अर्धच्छेद	४
२५६के अर्धच्छेद	८
तृतीयपंक्ति—उपरितन वर्गशलाका ४की वर्गशलाका	१
" " १६की "	२
" " २५६की "	३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमपंक्तिमें स्थित अंकोंका (४×१६×२५६) परस्पर गुणा करनेपर १६,३८४ प्राप्त होते हैं सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि समझना। पल्यकी वर्गशलाकासे पल्यकी संख्या को भाग देनेपर भी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण निकलता है। यहां पल्यका प्रमाण ६५५३६ माना है इसकी वर्गशलाका ४ है अतः ६५५३६ ÷ ४ = १६३८४ (अन्योन्याभ्यस्तराशि)।

द्वितीयपंक्तिके अंकोंका जोड़ करनेपर नानागुणहानिकी संख्या निकलती है (२+४+८) = १४ सो यह नानागुणहानिकी संख्या निकलेगी जैसे—

पल्यके अर्धच्छेद १६

पल्यकी वर्गशलाका ४के अर्धच्छेद $\frac{-२}{१४}$ नाना गुणहानी

इसप्रकार मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्टस्थितिको एकपल्य मानली एवं पल्यकी संख्या ६५५३६ मानली है तो नानागुणहानि १४ और अन्योन्याभ्यस्तराशि १६३८४ होगी। तृतीयपंक्तिके अंकोंका यहां प्रयोजन नहीं है।

वग्गसलायेणवहिद्पल्लं अण्णोण्णगुणिदरासी हु।
णाणागुणहाणिसला, वग्गसलच्छेदणूणपल्लछिदी ॥६२६॥

अर्थ—पल्यकी वर्गशलाकाका भाग पल्यमें देनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है तथा पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें से घटानेपर जो प्रमाण हो उतनी नानागुणहानीराशि जानना चाहिए।

अब नानागुणहानिआयामका प्रमाण कहते हैं—

सव्वसलायाणं जदि, पयदणिसेये लहेज्ज एक्कस्स।
किं होदित्ति णिसेये, सलाहिदे होदि गुणहाणी ॥६२७॥

अर्थ—सर्व नानागुणहानिशलाकाओंके यदि पूर्वोक्त स्थितिके सर्वनिषेक होते हैं तो एकगुणहानिशलाकाके कितने निषेक होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक विधिके अनुसार निषेकोंमें शलाकाओंका भाग देनेसे जो प्रमाण हो वह एकगुणहानिआयामका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—यहां प्रमाणराशि नानागुणहानिका प्रमाण अर्थात् पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद (पल्यके अर्धच्छेद–पल्यकी वर्गशलाकाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्धच्छेद) और फलराशि सर्वस्थितिके निषेक सो वे संख्यातपल्यप्रमाण हैं, इच्छाराशि १ शलाकाप्रमाण है। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे वह गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। जैसे—अङ्कसन्दृष्टिसे प्रमाण-राशि (नानागुणहानि) ६, फलराशि (स्थिति) ४८, इच्छाराशि १ गुणहानि है अतः $\frac{४८\times१}{६}$=८ लब्ध आया सो इतने निषेक एकगुणहानि सम्बन्धी जानना।

आगे दोगुणहानिका प्रमाण और उसके माननेका प्रयोजन बताते हैं—

दोगुणहाणिपमाणं, णिसेगहारो दु होदि तेण हिदे।
इट्ठे पढमणिसेगे, विसेसमागच्छदे तत्थ ॥६२८॥

अर्थ—गुणहानिआयामके प्रमाणको दूना करनेपर दो गुणहानि होती है इसी का नाम निषेकहार है। इसका प्रयोजन यह है कि निषेकहारका भाग विवक्षित गुण-हानिके प्रथमनिषेकमें देनेसे जो प्रमाण आवे वह उस गुणहानिमें विशेष (चय) का प्रमाण है प्रत्येकनिषेकमें अर्थात् आदिनिषेकसे अन्तनिषेकपर्यन्त जितने-जितने निषेक घटते जावें उतने प्रमाणको विशेष (चय) कहते हैं।

इसप्रकार द्रव्यादिका प्रमाण कहकर अब अन्य कार्य बताते हैं—

रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं च चरिमगुणदव्वं।
होदि तदो दुगुणकमो, आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ॥६२९॥

अर्थ—एककम अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग सर्वद्रव्योंमें देनेसे जो प्रमाण आवे वह अन्तगुणहानिका द्रव्य जानना और इससे दूना-दूना द्रव्य प्रथमगुणहानिके द्रव्यपर्यन्त जानना।

विशेषार्थ—अङ्कसन्दृष्टिमें मिथ्यात्वके सर्वद्रव्य ६३०० में एककम अन्योन्या-भ्यस्तराशि (६४–१) ६३का भाग देनेपर (६३००÷६३) १०० आये, सो यह अन्तिम-गुणहानिका द्रव्य जानना इससे पंचमादि गुणहानिमें दूना-दूना द्रव्य प्रथमगुणहानिपर्यन्त जानना। तद्यथा—१००।२००।४००।८००।१६००।३२००।

अब नानागुणहानिके द्रव्यको जानकर क्या करना सो कहते हैं—

रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेगभागहारेण।
हदगुणहाणिविभजिदे, सगसगदव्वे विसेसा हु ॥६३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—एककम गुणहानिआयामके प्रमाणको आधाकरके निषेकभागहार अर्थात् दो गुणहानिआयामको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसका भाग अपने-अपने द्रव्यमें देने से जो प्रमाण आवे वह (चय) का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—अङ्कसन्दृष्टिमें गुणहानिआयामके प्रमाण ८में से एककम किया तो (८–१) ७ रहे इसके आधे ३½ को निषेकभागहार १६में से घटानेपर (१६–३½) १२½ रहे उसको गुणहानिआयामकी संख्या ८से गुणाकरे तो (१२½×८) १०० लब्ध आया सो इससे प्रथमगुणहानिके द्रव्य ३२००में भाग देनेसे (३२००÷१००) ३२ आया सो यह प्रथमगुणहानिका चय जानना। इसीप्रकार द्वितीयगुणहानिका द्रव्य १६०० है इसमें १०० का भाग देनेपर (१६००÷१००) १६ आये यह द्वितीयगुणहानिका चय जानना। इसीप्रकार तृतीयादिगुणहानिके सर्वद्रव्यमें भाग देनेपर क्रमसे ८-४-२ और १ लब्ध आता है जो कि तृतीयादिगुणहानिके चयोंका प्रमाण है।

अथानन्तर प्रथमनिषेकको प्राप्त करनेका विधान कहते हैं—

पचयस्स य संकलणं, सगसगगुणहाणिदव्वमज्झम्हि।
अवणिय गुणहाणिहिदे, आदिपमाणं तु सव्वत्थ ॥९३१॥

अर्थ—सर्व चयधनको अपने-अपने गुणहानिके सर्वद्रव्यमेंसे कमकरके जो प्रमाण हो उसमें गुणहानिआयामका भाग देनेसे जो संख्या आवे वह आदिधन अर्थात् अन्तिम-निषेकका प्रमाण सर्वत्र जानना।

विशेषार्थ—अङ्कसन्दृष्टिसे प्रथमगुणहानिमें "व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं" इस करणसूत्रसे एककम गच्छ (८–१) ७ का आधा ३½ को चयके प्रमाण ३२से गुणा करनेपर ३½×३२=११२ हुए पुनः इसको गच्छ (८)से गुणाकरनेसे ११२×८=८९६ होते हैं यह प्रथमगुणहानिका प्रचयधन जानना इसको सर्वद्रव्य ३२००में से घटानेपर ३२००–८९६=२३०४ रहे इसमें गुणहानि आयाम ८का भाग देनेसे २३०४÷८=२८८ हुए यह अन्तिमनिषेकका प्रमाण है इसमें एक-एक चय (३२) बढ़ानेसे द्विचरमादिनिषेकोंका प्रमाण होता है। इसीप्रकार द्वितीयादि गुणहानिके चयका प्रमाण आधा-आधा है अतः प्रचयधन भी आधा-आधा जानना और इनका सर्वधन भी आधा-आधा ही है। इसप्रकार अङ्कसन्दृष्टिका कथन किया सो ऐसा ही यथार्थ कथन भी जानना, किन्तु विशेष इतना है कि यहां प्रमाण जैसा कहा वैसा ही जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सव्वासिं पयडीणं, णिसेयहारो य एयगुणहाणी ।
सरिसा हवंति णाणागुणहाणिसलाउ वोच्छामि ॥६३२॥

अर्थ—सर्व मूल प्रकृतियोंका निषेकहार दोगुणहानि और एकगुणहानिआयाम ये दोनों तो समान हैं तथा नानागुणहानि शलाकाएं स्थितिके अनुसार हैं अतः समान नहीं है सो उन नानागुणहानि शलाकाओंको आगे कहते हैं ।

मिच्छत्तस्स य उत्ता, उवरीदो तिण्णि तिण्णि संमिलिदा ।
अट्ठगुणेणूणकमा, सत्तसु रइदा तिरिच्छेण ॥६३३॥

अर्थ—मिथ्यात्वप्रकृतिसम्बन्धी पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदको आदिकरके पल्यके प्रथममूलके अर्धच्छेदपर्यन्त जो दूने-दूने अर्धच्छेद एक-एकवर्गमें कहे गये हैं उनका स्थापन करके उपरितन पल्यके प्रथममूलसे लेकर तीन-तीन वर्गस्थानोंके अर्धच्छेद मिलाने से वे ८-८ गुणेकम अनुक्रमसे होते हैं और उनकी सातस्थानोंमें पृथक्-पृथक् तिर्यग्रूप रचना होती है ।

विशेषार्थ—पल्य (६५५३६) के प्रथमवर्गमूल (२५६)के अर्धच्छेद ८, पल्य के द्वितीयवर्गमूल (१६) के अर्धच्छेद ४ और पल्यके तृतीयवर्गमूलके अर्धच्छेद २ इन तीनोंको जोड़नेसे अर्धच्छेदोंका प्रमाण १४ होता है । "अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं" इस सूत्रसे अन्तधन जो पल्यके अर्धच्छेदोंसे आधे प्रथमवर्गमूलके अर्धच्छेद, उनको गुणकार दोसे गुणा किया तो पल्यके अर्द्धच्छेदका प्रमाण होता है । इसमें से आदिधन पल्यके तृतीयवर्गमूलके अर्धच्छेदोंको अर्थात् पल्यके अर्धच्छेदोंके आठवेंभागको घटानेसे सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंका आठवां भाग आता है सो इसमें एककम गुणकार दो अर्थात् १का भाग देनेपर उतना ही लब्ध आया यही उपर्युक्त तीनराशियोंका जोड़ है । १४=पल्यके अर्धच्छेद $\frac{१६\times७}{८}$ अर्थात् $\frac{७छे.}{८}$ =१४ । इसीप्रकार चतुर्थ, पंचम व छठे वर्गमूलके अर्धच्छेद कहते हैं—

पल्यके चतुर्थ वर्गमूलके अर्धच्छेद = $\frac{छे}{१६}$

पल्यके पंचम वर्गमूलके अर्धच्छेद = $\frac{छे}{३२}$

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पल्यके षष्ठम वर्गमूलके अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{६४}$

इन तीनों राशियोंका जोड़करनेसे सातगुणें पल्यके अर्धच्छेदोंका ६४वां भाग $\left(\frac{\text{छेद}}{१६}+\frac{\text{छेद}}{३२}+\frac{\text{छेद}}{६४}=\frac{७\text{छेद}}{६४}\right)$ प्राप्त हुआ। यह पूर्वोक्त तीनराशियोंके जोड़से ८ गुणा कम है। इसीप्रकार पहले-पहलेसे आधे-आधे सातवें, आठवें, नवमें पल्यके वर्गमूलों के अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर $\frac{७\text{छे}}{५१२}$ प्रमाण होता है। तद्यथा—

पल्यके सप्तमवर्गमूलसम्बन्धी अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{१२८}$

" अष्टम " " $= \frac{\text{छे}}{२५६}$

" नवम " " $= \frac{\text{छे}}{५१२}$

इन तीनों राशियोंको जोड़नेपर सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंका ५१२वां भाग अर्थात् पूर्वोक्त $\frac{७\text{छे}}{५१२}$ प्रमाण होता है। यह प्रमाण चतुर्थादि तीनवर्गमूलोंके जोड़से ८ गुणा कम है। इसप्रकार नीचे-नीचे तीन-तीन वर्गस्थानोंके अर्धच्छेद जोड़नेपर आठ-आठ गुणे कम होते जाते हैं। तथैव पल्यकी वर्गशलाकाके आठवें, सातवें और छठेवर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे २५६, १२८ और ६४ गुणे हैं सो इन तीनों राशियों को जोड़नेसे (२५६+१२८+६४) ४४८ गुणे अर्धच्छेद होते हैं तथा पल्यकी वर्गशलाकाके पांचवें, चौथे व तीसरे वर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे ३२, १६ व ८ गुणे हैं सो इन तीन राशियोंको जोड़नेसे (३२+१६+८) ५६ गुणे होते हैं यह राशि पल्यकी वर्गशलाकासे ५६ गुणी है तथापि पूर्वोक्तराशिसे ८ गुणीकम है तथा पल्यकी वर्गशलाकाके दूसरे, पहले वर्ग और वर्गशलाका इन तीनोंके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे चारगुणे, दोगुणे और १ गुणे हैं इन तीनोंराशियोंको जोड़नेसे (४+२+१) पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे ७ गुणे हुए, किन्तु यह भी पूर्ववर्ती-राशिसे ८ गुणा कम ही है। इसप्रकार ८-८ गुणीहीन राशि हुई। यहां पल्यका वर्गमूल सो प्रथममूल, प्रथममूलका वर्गमूल सो द्वितीयमूल, दूसरे मूलका वर्गमूल सो तृतीयमूल है इसीप्रकार चतुर्थादिमूल भी जानना तथा पल्यकी वर्गशलाकाका वर्ग करनेसे प्रथम-वर्ग, प्रथमवर्गका वर्गकरनेसे द्वितीयवर्ग, द्वितीयवर्गका वर्गकरनेसे तृतीयवर्ग होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीप्रकार आगें चतुर्थादि वर्ग जानना। इसप्रकार पल्यके प्रथम, द्वितीय व तृतीयमूलके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर जो राशि हो उससे लेकर तीन-तीन स्थानोंके अर्धच्छेदोंको जोड़ते-जोड़ते पल्यकी वर्गशलाकाके द्वितीय, प्रथमवर्ग और पल्यकी वर्गशलाकारूप तीनराशियों के अर्धच्छेदोंको जोड़नेतक जो-जो राशि हों वहांतक सर्व जोड़ी हुई असंख्यातराशि पृथक्-पृथक् सातस्थानोंमें आगे-आगे रचनारूप करनी। इसप्रकार पल्यके तीन-तीन वर्ग-मूलोंके अर्धच्छेद आठ-आठ गुणे कम-कम होते जाते हैं।

नोट—'छे' यह चिन्ह पल्यके अर्धच्छेदका है।

पल्य [६५५३६] की वर्गशलाका ४ है इसके ८वें वर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद (२) से २५६ गुणे हैं अतः २×२५६। पल्यकी वर्गशलाकाके सातवें वर्गके अर्धच्छेद २×१२८ और पल्यकी वर्गशलाकाके छठे वर्गके अर्धच्छेद २×६४ हैं। इन तीनोंको जोड़नेपर २×४४८ योगफल होता है। इसीप्रकार पल्यकी वर्ग-शलाकाके ५वें वर्गके अर्धच्छेद २×३२, ४थे वर्गके अर्धच्छेद २×१६, ३रे वर्गके अर्ध-च्छेद २×८ हैं यहां भी तीनों राशियोंको जोड़नेसे २×५६ योगफल हुआ। तथैव पल्य की वर्गशलाकाके द्वितीय वर्गके अर्धच्छेद २×४, प्रथमवर्गके अर्धच्छद २×२ और पल्य की वर्गशलाकाके अर्धच्छेद २×१ हैं इन तीनोंको जोड़नेपर २×७ योगफल होता है। इस-प्रकार उपर्युक्त कथनका यह अभिप्राय है कि वर्गशलाकाके वर्गोंके अर्धच्छेदकी तीन-तीन राशियां परस्परमें एक दूसरेसे आगे-आगे आठ-आठ गुणी होती जाती हैं।

तत्थंतिमच्छिदिस्स य, अट्ठमभागो सलायछेदा हु।
आदिमरासिपमाणं, दसकोडाकोडिपडिबद्धे ॥६३४॥

अर्थ—१० कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थितिमें नानागुणहानिशलाकासम्बन्धी अन्त-धन तो पल्यके अर्धच्छेदका आठवां भाग है और वर्गशलाकाके अर्धच्छेद आदिधन है।

विशेषार्थ—उपर्युक्त सातपंक्तियोंमें से प्रथमपंक्तिमें तीनराशियों (पल्यके प्रथम, द्वितीय व तृतीयवर्गमूल) को जोड़नेपर जो लब्ध प० छे० ७/८ आया उन सभीको पृथक्-पृथक् फलराशि और सभीमें दसकोड़ाकोड़ीसागरको इच्छाराशि एवं ७० कोड़ाकोड़ी-सागरको प्रमाणराशि मानना। इसप्रकार त्रैराशिककरके फलराशिको इच्छा-राशिसे गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो प्रमाण पृथक्-पृथक् प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो उनको परस्परमें जोड़नेसे $\frac{\text{प.छे.}}{८}$ प्रमाण आवे वह दसकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थिति-सम्बन्धी नानागुणहानिशलाका जानना। तद्यथा—

"अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुउणुत्तरभजियं" इस सूत्रसे (पल्यके प्रथम, द्वितीय और तृतीयवर्गमूलके अर्धच्छेद मिलकर सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंके आठवें भाग हैं उनको १० कोड़ाकोड़ीसागरसे गुणा करनेपर और ७० कोड़ाकोड़ीसागरका भाग देनेसे पल्यके अर्धच्छेदोंके आठवेंभागप्रमाण होता है। सो यह अंतधन जानना) अंतधन को प्रत्येक जोड़के प्रति गुणकार ८से गुणा करनेपर पल्यके अर्धच्छेदप्रमाण हो जाता है। इसमेंसे आदिधन घटाया सो (पल्यकी वर्गशलाकाके द्वितीय व प्रथमवर्गके और पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद मिलनेसे सातगुणे पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद होते हैं। इनको १० कोड़ाकोड़ीसागरसे गुणाकरके ७० कोड़ाकोड़ीसागरका भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदप्रमाण आदिधन प्राप्त हुआ) आदिधन घटानेपर जो अवशेष बचे उनको गुणकार आठमेंसे एककम अर्थात् ७ का भाग देनेसे पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंका ७ वां भाग प्रमाण हुआ ($\frac{\text{पल्यके छेद-पल्यकी वर्गशलाकाकेछेद}}{७}$) सो १० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिसम्बन्धी नानागुणहानि-शलाकाका प्रमाण जानना। नानागुणहानिप्रमाण दो-दो के अंक लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है। अन्योन्याभ्यस्तराशि प्राप्त करनेका विधान इसप्रकार है—

उपर्युक्त नानागुणहानिमें ऋणरूप पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंका ७ वां भाग कहा सो इसको पृथक् रखा और अवशेष पल्यके अर्धच्छेदोंका ७वां भाग रहा सो इसकी सहनानीके लिए आठ ही गुणकार और आठ ही भागहार करना यहां गुणकारमें से एककम करके (८—१) ७ गुणकार रहा और पहले भागहार ७ कहा था सो दोनों को समान जानकर अपवर्तन करनेपर इसप्रकार पल्यके अर्धच्छेदोंका आठवांभाग शेष रहा। अतः इतने प्रमाण दोके अंक लिखकर परस्पर गुणाकरनेसे तृतीयवर्गमूल होता है। इसप्रकार भागहारके जितने अर्धच्छेद हों उतने वर्गस्थान भाज्यराशिसे नीचे जानेपर उत्पन्नराशिका प्रमाण होता है। यहां भागहार तो आठ है सो उसके अर्धच्छेद तीन, सो पल्यके नीचे तृतीयवर्गस्थान पल्यका तृतीयमूल है तथा पहले गुणकार ८में से १ पृथक् रखा था वह पल्यके अर्धच्छेदका ५६वां भाग गुणकार था अतः पल्यके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्धच्छेदका ५६वां भाग प्रमाण रहा इसमेंसे ऋणरूप पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदों का ७वां भाग घटानेसे जो शेष रहें उतने प्रमाण दोके अंक लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे असंख्यातगुणा पल्यका ६ठा वर्गमूल मात्रअसंख्यातप्रमाण जानना।

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणगारो लद्धरासिस्स ॥[१]

इस सूत्रके अनुसार अधिकराशिका परस्पर गुणाकरनेसे जो राशि हुई वह गुणकाररूप है अतः उस असंख्यातसे पल्यके तृतीयवर्गमूलको गुणा करनेसे जो प्रमाण होवे उतना दसकोड़ाकोड़ीसागरस्थितिसम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना।

त्रैराशिकद्वारा दशकोड़ाकोड़ीसागरके अन्तधन आदि सम्बन्धी सन्दृष्टि—

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध	
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यके प्रथम, द्वितीय, तृतीय वर्ग-मूलके अर्धच्छेदोंका जोड़ प.छे. $\frac{७}{८}$	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	प छे $\frac{१}{८}$	अन्तधन
७० ,,	पल्यके पंचम, छठा, ७वां वर्गमूलके अर्धच्छेदोंका जोड़ प.छे. $\frac{७}{८×८}$	१० ,,	प. छे. $\frac{१}{८×८}$	
७० ,,	पल्यके ८वें, ९वें, १०वें वर्गमूलोंके अर्धच्छेदोंका जोड़ प.छे $\frac{७}{८×८×८}$	१० ,,	प. अर्धच्छेद $\frac{१}{८×८×८}$	
७० ,,	पल्यकी वर्गशलाकाके प्रथमवर्गके, द्वितीयवर्गके अर्धच्छेदोंका जोड़ व. छे ८×८×७	१० ,,	पल्यकी वर्ग-शलाकाके अर्ध. व छे. १×८×८	
७० ,,	पल्यकी वर्गशलाकाके ३रे, ४थे, ५वें वर्गोंके अर्धच्छेदोंका जोड़ व. छे ७×८	१० ,,	पल्यकी व.श. के अर्ध = व छे. १×८	
७० ,,	पल्यकी वर्गशलाकाके ६ठे, ७वें, ८वें वर्गोंके अर्धच्छेदोंका जोड़ व. छे. ×७	१० ,,	पल्यकी वर्ग श०के अधच्छेद	आदिधन

१. त्रिलोकसार गाथा नं० ११०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर २० कोड़ाकोड़ीआदि स्थितिसम्बन्धी नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते हैं—

इगिपंतिगदं पुध पुध, अप्पिट्ठेण य हदे हवे णियमा।
अप्पिट्ठस्स य पंती, णाणागुणहाणिपडिबद्धा ॥९३५॥

अर्थ—शेष ६ पंक्तियोंमें एक-एक पंक्तिमें पृथक्-पृथक् अपने इष्टका भाग देनेपर नियमसे अपनी-अपनी इष्टराशि जो बीसकोड़ाकोड़ीसागरादि है उसकी नानागुणहानिशलाकाकी पंक्तियां होती हैं।

विशेषार्थ—पूर्वोक्तगाथा (९३४) में जिसप्रकार १० कोड़ाकोड़ीसागरकी प्रथमपंक्ति सभी तीन स्थानोंकी जोड़रूपराशि पृथक्-पृथक् फलराशि मानी थी उसी प्रकार अवशिष्ट छहों पंक्तियोंमें भी फलराशि मानना तथा जैसे प्रथमपक्तिमें १० कोड़ाकोड़ीसागरको इच्छाराशि माना था वैसे ही यहां छहों पंक्तियोंमें अपने-अपने इष्टरूप २० कोड़ाकोड़ीसागरादि राशियोंको अर्थात् इन छहमें से प्रथमपंक्तिमें २०, द्वितीयपंक्तिमें ३०, तृतीयपंक्तिमें ४०, चतुर्थपंक्तिमें ५०, पंचमपंक्तिमें ६० और षष्ठमपंक्तिमें ७० कोड़ाकोड़ीसागर इच्छाराशि मानना। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशि से भाग देना सो प्रमाणराशि सर्वत्र (छहों पंक्तियोंमें) ७० कोड़ाकोड़ीसागर ही जानना। इसप्रकार त्रैराशिक विधिसे जो-जो प्रमाण आवे वह-वह अपने इष्टरूप २०-३०-४० आदि कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थितिसम्बन्धी नानागुणहानिकी पंक्ति होती है।

अप्पिट्ठपंति चरिमो, जेत्तियमेत्ताण वग्गमूलाणं।
छिदि णिवहोत्ति णिहाणिय, सेसं च य मेलिदे इट्ठा ॥९३६॥
इट्ठसलायपमाणे, दुगसंवग्गे कदे दु इट्ठस्स।
पयडिस्स य अण्णोण्णाभत्थपमाणं हवे णियमा ॥९३७॥

अर्थ—अपनी-अपनी इष्ट पंक्तियोंमें जितने अन्तस्थान हों उतने वर्गमूलोंके अर्धच्छेदोंका समूहरूप ऐसा निर्धारणकर और शेषको मिलानेसे अपने-अपने विवक्षितकर्मकी स्थितिसम्बन्धी नानागुणहानि होती है तथा अपनी-अपनी नानागुणहानिशलाकाप्रमाण दोके अंक लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे अपनी इष्ट कर्मप्रकृतिसम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—"अन्तधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं" इस सूत्रके अनुसार १० कोड़ाकोड़ीसागरसम्बन्धी पंक्तिमें जिसप्रकार कथन किया था वैसे ही यहां भी जानना, किन्तु विशेष इतना है कि अन्त व आदिधनका प्रमाण इन छहों पंक्तियोंमें क्रमसे दूना, तिगुना, चौगुना, पञ्चगुना, छहगुना और सातगुना है। अतः इच्छाराशि के दोगुणे, तिगुनेआदिरूप होनेसे पंक्तिमें सभी दूने तिगुने हो जाते हैं।

यहां २० कोड़ाकोड़ीसागरकी पंक्तिमें पल्यके अर्धच्छेदोंके चतुर्थभागरूप अन्त-धनको ८से गुणा करनेपर पल्यके अर्धच्छेदोंसे दूना प्रमाण होता है सो इसमेंसे आदिधन का प्रमाण पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे १४ गुणे कमकरना सो इस प्रमाणको स्तोक जानकर इसमें कुछ कम करना तथा इसमें एककम गुणकार (८–१) ७ का भाग देना इसप्रकारसे कुछकम दूना पल्यके अर्धच्छेदोंका सातवांभागप्रमाण लब्ध आया यह नाना-गुणहानिरूप राशि जानना तथा इस प्रमाणको पूर्वोक्तप्रकार सहनानीके लिये आठसे गुणा करे और आठ ही का भाग देवे। यहां गुणकारमेंसे एक पृथक् रखा तो अवशेष गुणकार ७ रहा और पहले भागहार भी ७ कहा था उनको समान जानकर अपवर्तन किया। $\frac{\text{किंचित् ऊन पल्यके दूने अर्धच्छेद}}{७} = \frac{\text{किंचित् ऊन प० अ०}}{७} \times \frac{८}{८} = \frac{\text{किंचित् ऊन प०अ०} \times ७}{७\times८} + \frac{\text{किंचित् ऊन प० अ०}}{७\times८}$। अवशेष किंचित्कम पल्यके अर्धच्छेदोंमें गुणकार दो और भागहार आठ रहा इनका अपवर्तन करनेसे कुछकम पल्यके अर्धच्छेदोंका चतुर्थभाग रहा $\left(\frac{\text{किंचित् ऊन प० के २ अ० छेद}}{८}\right)$ सो इतनीबार दोके अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेसे कुछकम पल्यका द्वितीयवर्गमूल हुआ तथा जो एकगुणकार पृथक् रखा था वह गुणकार कुछकम पल्यके दूने अर्धच्छेदोंके ५६वां भाग था $\left(\frac{\text{किंचित् ऊन प० के २ अ० छेद}}{५६}\right)$ अतः इतनीबार दोके अंक लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे यथायोग्य असंख्यात प्राप्त हुआ इससे गुणा करनेपर असंख्यातगुणा कुछकम पल्यका द्वितीयवर्गमूलप्रमाण इसकी अन्यो-न्याभ्यस्तराशि हुई।

३० कोड़ाकोड़ीसागरकी पंक्तिमें पूर्वोक्तप्रकार जोड़नेसे कुछकम तिगुने पल्यके अर्धच्छेदोंका सातवांभागप्रमाण हुआ सो यह नानागुणहानिराशिका प्रमाण है। इसकी सहनानीके लिये गुणकार आठसे गुणा करना और आठका ही भाग देना तथा गुणकार में से एक पृथक् रखा तो अवशेष गुणकार ७ रहा और पहले भागहार भी सात कहा था इन दोनोंका अपवर्तन करनेसे कुछकम तिगुना पल्यके अर्धच्छेदोंका आठवांभाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ इसमें पल्यके अर्धच्छेदोंके ८वां भागप्रमाण दोके अंक लिखकर परस्परमें गुणाकरे सो यह पल्यका तृतीयवर्गमूल हुआ और शेष दोगुणे प्रमाण दोके अङ्क लिखकर उनका परस्परमें गुणा करनेपर पल्यका द्वितीयवर्गमूल होता है इनको परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके तृतीयवर्गमूलसे गुणित पल्यका दूसरावर्गमूल प्राप्त होता है सो इसमें कुछकम करना तथा जो एक गुणकार पृथक् रखा था वह गुणकार कुछकम तिगुना पल्यके अर्धच्छेदोंके ५६वां भाग प्रमाण था अतः उतनी बार दोके अङ्क लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे यथायोग्य असंख्यात प्राप्त हुआ इससे गुणा करे तो असंख्यातगुणा कुछकम पल्यके तृतीयवर्गमूलसे गुणित पल्यका दूसरा वर्गमूल प्राप्त होता है। सो इतने प्रमाण ३० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिमें अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है। इसीप्रकार ४० कोड़ाकोड़ी आदि स्थितियोंमें अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना चाहिए। तथा—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्ण हवी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥[1]

इस सूत्रके अनुसार जितने हीनरूप (ऋणरूप) थे उतनेंप्रमाण परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि हो वह उत्पन्नराशिका भागहार होता है अतः पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करनेसे पल्यकी वर्गशलाका होती है सो इस पल्यकी वर्गशलाकासे हीन पल्यप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है। इसप्रकार स्थितिकी अपेक्षा नानागुणहानि व अन्योन्याभ्यस्तराशि कही सो जिस कर्मकी जितनी स्थिति हो उससम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशि यथायोग्य जानना।

आगे स्वयं आचार्य ज्ञानावरणादि मूलकर्मप्रकृतियोंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिको बताते हैं—

आवरणवेदणीये, विग्घे पल्लस्स बिदियतदियपदं।
णामागोदे बिदियं, संखातीदं हवंतित्ति ॥९३८॥
आउस्स य संखेज्जा, तप्पडिभागा हवंति णियमेण।
इदि अत्थपदं जाणिय, इट्ठठिदिस्साणए मदिमं॥९३९॥

---

१. त्रिलोकसार गाथा नं० १११।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मकी उत्कृष्टस्थिति ३० कोड़ाकोड़ीसागरकी है अतः इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातपल्यके द्वितीयवर्गमूलसे गुणित तृतीयवर्गमूल प्रमाण है तथा नाम व गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति २० कोड़ाकोड़ीसागर है अतः इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातपल्यके द्वितीयवर्गमूलप्रमाण है। आयुकर्ममें संख्यातप्रतिभाग नियमसे होते हैं अतएव बुद्धिमान मनुष्यको विवक्षित स्थानोंको जानकर विवक्षित स्थितिकी नानागुणहानि शलाकाको जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आयुकर्मके स्थितिभेद विलक्षण ही हैं अतः उसकी नानागुणहानि-शलाका स्थितिके बटवारेके अनुसार है। ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी नाना-गुणहानिशलाका पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदप्रमाण होती है तो ३३ सागरस्थितिकी कितनी नानागुणहानिशलाका होगी? इसप्रकार त्रैराशिक-विधिसे जो लब्ध आवे उतनी नानागुणहानिशलाका जानना। इस विधिसे विवक्षित स्थानको जानकर बुद्धिमान जीव विवक्षित आयुकर्मकी स्थितिकी नानागुणहानिशलाका-का प्रमाण प्राप्त करे। इसप्रकार एकगुणहानिआयाम व नानागुणहानिशलाका अथवा निषेकभागहार तथा अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। इसीको कहते हैं—

उक्कस्सट्ठिदिबंधे, सयलाबाहा हु सव्वठिदिरयणा।
तक्काले दीसदि तोधोधो बंधट्ठिदीणं च ॥९४०॥

अर्थ—विवक्षित प्रकृतिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध होनेपर उसीसमय उत्कृष्ट-आबाधा और सर्वस्थितिनिषेकोंकी रचना भी होती है। इसीकारण उस स्थितिके अंतिमनिषेकसे नीचे-नीचे प्रथमनिषेकपर्यन्त स्थितिबन्धरूप निषेकोंकी एक-एक समयहीन स्थिति होती है।

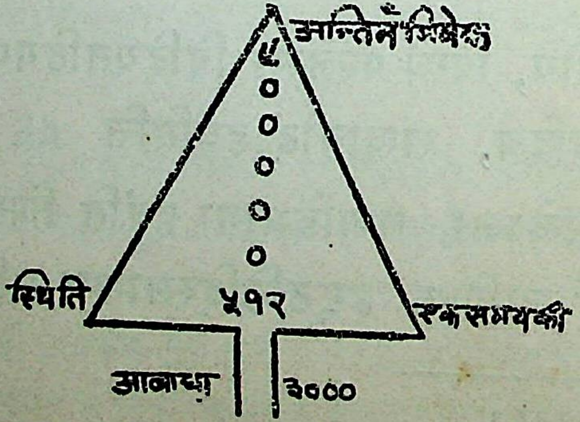

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब आबाधाकालके व्यतीत होनेकी विधि बताते हैं—

आबाधाणं बिदियो, तिदियो कमसो हि चरमसमयो दु ।
पढमो बिदियो तिदियो, कमसो चरिमो णिसेओ दु ॥९४१॥

अर्थ—बन्ध होनेके अनन्तर आबाधाकालका द्वितीयसमय होता है इसप्रकार एक-एक समय व्यतीत होनेपर आबाधाका अन्तिमसमय प्राप्त होता है तथा आबाधाकाल समाप्त होनेके पश्चात् प्रथम-द्वितीय-तृतीयादिसे चरमनिषेकपर्यंन्त क्रमसे निषेक निर्जीर्ण होते हैं ।

विशेषार्थ—प्रथमसमयमें पहला, द्वितीयसमयमें दूसरा, तृतीयसमयमें तीसरा निषेक तथा आगे इसी क्रमसे स्थितिके अन्तसमयमें अन्तिमनिषेक होता है सो उस उदयरूप समयके अनन्तर वे परमाणु कर्मस्वभावको छोड़ देते हैं ऐसा अर्थ जानना चाहिए इसप्रकार प्रथमनिषेकसे द्वितीयनिषेककी एकसमयअधिक स्थिति दूसरेसे तीसरे की एकसमयअधिक स्थिति है सो यह एक-एकसमयअधिकरूप स्थिति चरमनिषेकपर्यंन्त जानना ।

एकसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य ही बंधता है और उतना ही एकसमयमें निर्जीर्ण होता है सो आगे इसीको कहते हैं—

समयपबद्धपमाणं, होदि तिरिच्छेण वट्टमाणम्मि ।
पडिसमयं बंधुदओ, एक्को समयप्पबद्धो दु ॥९४२॥

अर्थ—वर्तमानसमयमें विवक्षितकर्मकी आबाधारहित उत्कृष्टस्थितिमात्र गलितावशेष प्रथमनिषेकसे चरमनिषेकपर्यंन्त तिर्यग्रूपसे स्थिति सम्पूर्ण समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य उदयमें आता है और प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य बंधता है ।

विशेषार्थ—त्रिकोणरचनामें विवक्षित वर्तमानसमयमें विवक्षितकर्मकी आबाधारहित उत्कृष्टस्थितिमात्र कालके प्रमाणमें प्रतिसमयमें बंधे हुए समयप्रबद्धमें जिन निषेकों की निर्जरा हो गई उनसे बचे हुए अवशेषनिषेकोंमें प्रथमसमयप्रबद्धके अन्तिमनिषेकसे अन्तिमसमयप्रबद्धके प्रथमनिषेकपर्यंन्त तिर्यग्रचनारूप एक-एक निषेक मिलकर सम्पूर्ण एकसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य होता है । प्रत्येकसमयमें एकसमयप्रबद्धका उदय होता है और प्रतिसमय एकसमयप्रबद्धका बन्ध होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब सत्तारूप कर्मोंके द्रव्यका प्रमाण कहते हैं--

सत्तं समयपबद्धं, दिवड्ढगुणहाणिताडियं ऊणं।
तियकोणसरूवट्ठिददव्वे मिलिदे हवे णियमा ॥९४३॥

अर्थ--सत्तारूप द्रव्य कुछकम डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है और त्रिकोणरचनाके सर्वद्रव्यका जोड़देनेसे भी इतना ही प्रमाण नियमसे होता है।

विशेषार्थ--प्रतिसमय एकसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य उदय होकर भी कुछकम डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्त्वमें कैसे रहता है सो इस गाथामें बताया गया है उसे साथमें संलग्न त्रिकोणयन्त्रसे जानना चाहिए।

आगे इस सत्तारूप त्रिकोणके जोड़नेकी विधि बताते हैं--

उवरिमगुणहाणीणं, धणमंतिमहीणपढमदलमेत्तं।
पढमे समयपबद्धं, ऊणकमेणट्ठिया तिरिया ॥९४४॥

अर्थ--त्रिकोणरचनामें विवक्षित वर्तमानसमयमें प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेक में तिर्यग्रूपसे लिखे निषेकोंका समुदाय समयप्रबद्धप्रमाण होता है और उसके ऊपर द्वितीयनिषेकसे अन्तिमगुणहानिके अन्तिमनिषेकपर्यन्त क्रमसे चयप्रमाणकम होती हुई तिर्यग्रचनारूप द्वितीयादि गुणहानियोंका जोड़ अन्तिमगुणहानिके जोड़मेंसे घटाकर जो प्रमाण हो उसका आधा होता है और प्रथमगुणहानिका जोड़ गुणहानिके प्रमाणसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण (गुणहानि×समयप्रबद्ध) होता है।

विशेषार्थ--यहां त्रिकोणरचनामें नीचे प्रथमपंक्तिमें तिर्यग्रूपसे जो लिखा गया है उसको प्रथमगुणहानिका प्रथमनिषेक कहते हैं इसके ऊपरकी पंक्तियोंमें जो प्रमाण लिखा गया उनको प्रथमगुणहानिका द्वितीयआदिनिषेक कहते हैं तथा गुणहानि-आयामप्रमाण पंक्तिपूर्ण होनेके पश्चात् इसके ऊपर जो पंक्ति है वह द्वितीयगुणहानि का प्रथमनिषेक है और उससे ऊपरकी पंक्तिमें द्वितीयनिषेक है। इसप्रकार गुणहानि-प्रमाण पंक्तियां पूर्ण होनेपर उसके ऊपरकी पंक्तिको तृतीयगुणहानिका प्रथम निषेक कहते हैं सो यह क्रम अन्तिमगुणहानिपर्यन्त जानना। इस अर्थका विशेष स्पष्टीकरण पूर्वगाथाके साथ संलग्न अङ्कसन्दृष्टिरूप त्रिकोणरचनासे स्पष्ट होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथानन्तर स्थितिके भेदोंको कहते हैं--

अंतोकोडाकोडीट्ठिदित्ति सव्वे णिरंतरट्ठाणा।
उक्कस्सट्ठाणादो, सण्णिस्स य होंति णियमेण ॥९४५॥

अर्थ--संज्ञीपञ्चेन्द्रियजीवोंके आयुकर्मबिना शेष सातकर्मोंकी उत्कृष्टस्थितिसे लेकर अन्त:कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण जघन्यस्थितिपर्यन्त एक-एक समयकम क्रम लिये हुए जो निरन्तर स्थितिके भेद हैं वे संख्यातपल्यप्रमाण हैं।

विशेषार्थ--यहां २० कोड़ाकोड़ीसागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मोंकी जघन्यस्थिति अन्त:कोटाकोटीसागरप्रमाण होती है तो ३० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिवाले कर्मोंकी जघन्यस्थिति कितनी होगी? इसप्रकार त्रैराशिक करनेसे डेढ़ अन्त:कोटाकोटी होती है।

स्थितिके भेदोंमें निरन्तरस्थितिको कहकर सान्तरस्थितिका कथन करते हैं--

संखेज्जसहस्साणिवि, सेढीरूढम्मि सांतरा होंति।
सगसगअवरोत्ति हवे, उक्कसादो दु सेसाणं ॥९४६॥

अर्थ--सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम, उपशम अथवा क्षपकश्रेणीके सम्मुख हुए ऐसे मिथ्यात्व, असंयत, देशसंयत, अप्रमत्त और अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानवर्ती, उपशम या क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीवोंके सान्तर (अर्थात् एक-एककम होनेका नियम नहीं है, क्योंकि स्थितिकाण्डक व बंधापसरणके द्वारा एकसाथ स्थितिका घात व अल्पस्थितिका बन्ध होनेसे) स्थितिके भेद संख्यातहजार हैं तथा शेष जीवोंके अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थितिसे जघन्यस्थितिपर्यन्त एक-एकसमयकम क्रममें निरन्तरस्थितिके भेद हैं।

विशेषार्थ--अध:प्रवृत्तकरणमें प्रथमसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तपर्यंत ज्ञानावरणादि प्रकृतिको अपने योग्य अन्त:कोटाकोटीप्रमाण स्थिति बांधता है इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् पल्यका असंख्यतवांभागप्रमाणकम बांधता है, इसकेअन्तर्मुहूर्त बाद उससे भी पल्यका असंख्यतवांभागप्रमाणकम बांधता है। इसप्रकार संख्यातहजारबार (स्थितिबन्धापसरण) करके उस करणको पूर्णकर अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायमें भी अपने-अपने स्थितिबन्धको अल्पकरके उतनी-उतनीबार घटाकर वेदनीयकर्मको १२ मुहूर्त, नाम व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोत्रकी आठमुहूर्त और शेषकर्मोंकी एकमुहूर्तप्रमाण स्थिति बांधता है। इसप्रकार सान्तर-स्थितिके संख्यातहजार भेद जानना तथा पर्याप्त-अपर्याप्तबिना अवशेष १२ जीवसमासोंके "एयं पण कदि पण्णं" इत्यादि १४४वें गाथा सूत्रसे "बासूप" इत्यादि १४८वें गाथासूत्र-पर्यन्त पूर्वमें स्थितिबन्धके कथनमें जघन्यस्थिति व उत्कृष्टस्थिति कही है सो उत्कृष्ट-स्थितिसे जघन्यस्थितिपर्यन्त एक-एकसमयकम क्रमसे निरन्तर स्थितिके भेद जानने।

आगे स्थितिभेदोंके कारणरूप स्थितिबंधाध्यवसायस्थान मूलप्रकृतियोंके कितने होते हैं सो कहते हैं—

आउट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा।
णामागोदे सरिसं, आवरण दु तदियविग्धे य ॥९४७॥
सव्वुवरि मोहणीये, असंखगुणिदक्कमा हु गुणगारो।
पल्लासंखेज्जदिमो, पयडिसमाहारमासेज्ज ॥९४८॥जुम्मं॥

अर्थ—आयुकर्म स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सबसे स्तोक होनेपर भी यथायोग्य असंख्यातलोकप्रमाण हैं उनसे पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे नाम व गोत्रकर्मके इनसे पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चारकर्मोंके तथा इनसे पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे, किन्तु सबसे अधिक मोहनीयकर्मके स्थितिबंधा-ध्यवसायस्थान हैं। इसप्रकार प्रकृतियोंके भेदोंकी अपेक्षा तीनों जगह क्रमसे असंख्यात-गुणे स्थितिबंधाध्यवसायस्थान जानना चाहिए ॥९४७-४८॥

यहां प्रसंगप्राप्त सिद्धान्तवचन कहते हैं—

ण य सव्वमूलपयडीणं समाणाणं कसायोदयट्ठाणाणमेत्थगहणं कषायोदयट्ठाणेण विणा मूलपयडि बंधाभावेण सव्वपयडिट्ठिदि बंधज्झवसाणट्ठाणाणं समाणप्पसंगादो तम्हा सव्व-मूलपयडीणं सगसगउदयादो समुप्पण्णपरिणामाणं सगसगट्ठिदिबंधकारणत्तेण ठिदिबंध-ज्झवसाणट्ठाण सण्णिदाणमुत्तरपच्चयाणमेत्थगहणं। पयडिसमाहारमासेज्ज णाणावरणा-दीणं पयडीणं सगसगट्ठिदिबंधकारणज्झवसाणट्ठाणाणि सव्वाणि एगत्त कादूण पमाणं परूविद। ण ट्ठिदि पडि एसा परूवणा होदि उवरिम सुत्तेहि ट्ठिदिपडि अज्झवसाण-पमाणस्स परूविज्जमाणत्तादो हेट्ठिमेहिंतो उवरिमाणि किमट्ठमसंखेज्जगुणाणि साहावियादो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिच्छत्तासंजमकषायपच्चयेहिं सव्वाणि कम्माणि सरसाणि तेण एदेसिं कम्माणमज्झव-साणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणहाणित्ति ण घडदे हेट्ठिमाणं ठिदि बंधट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं ठिदिबंधट्ठाणाणि अहियाणित्ति असंखेज्जगुणत्तं ण जुज्जदे हेट्ठिमहे-ट्ठिमकम्माणं ठिदिबंधट्ठाणपाओग्ग कसायेहिंतो उवरिमउवरिमाणं कम्माणमहियट्ठिदि-बंधट्ठाणपाउग्गकसायउदयट्ठाणाणं असमाणाणमणुवलंभेण असंखेज्जगुणत्ताणुववत्तीदो। ण एस दोसो हेट्ठिमाणं उदयट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं उदयट्ठाणेण बहुत्तेण असंखेज्जगुणत्तविरोहादो[1]।

अर्थात् सभी मूलप्रकृतियोंके समान नहीं पाए जानेवाले कषायोदयस्थानोंका यहां ग्रहण है, क्योंकि कषायोदयस्थानबिना मूलप्रकृतियोंके बन्धका अभाव होनेसे सभी प्रकृतियोंके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान समान हो जावेंगे इसलिए सर्वमूलप्रकृतियोंके अपने-अपने उदयसे उत्पन्न आत्माके परिणाम अपने-अपने स्थितिबन्धके कारण होनेसे जिनका स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान नाम है ऐसे उत्तरप्रत्यय यानि आस्रवके भेदोंका यहां ग्रहण है। प्रकृतिसमुदायका आश्रय करके ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके अपनी-अपनी स्थिति के कारणभूत सभी अध्यवसायस्थानोंको इकट्ठे करके प्रमाणकी प्ररूपणाकी गई है स्थिति की अपेक्षा ऐसी प्ररूपण नहीं है, क्योंकि आगेके सूत्रोंसे स्थितिकी अपेक्षा अध्यवसायके प्रमाणका निरूपण किया गया है।

शङ्का—"अधस्तनेभ्यः" अर्थात् पहले कही हुई आयुको आदिकरके कर्मके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान और बादमें कहे हुए कर्मोंके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थाव असंख्यातगुणे क्यों हैं?

समाधान—स्वभावसे ही असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्व, असंयम व कषायरूप प्रत्ययों से सर्वकर्म समान हैं अतः इन कर्मोंके अध्यवसायस्थान असंख्यातगुणे हैं यह घटि तनहीं होता, तथा पहले कहे हुए आयुआदि कर्मोंके स्थितिबंधस्थानोंसे इनके पश्चात् कहे हुए कर्मोंके स्थिति-बंधस्थान अधिक हैं अतः असंख्यातगुणेरूप हैं यह बातभी सिद्ध नहीं है, क्योंकि अधस्तन-अधस्तन कर्मोंका स्थितिबंधस्थानके योग्य कषायोंसे उपरितन २ कर्मोंके अधिक बंधस्थानके योग्य असदृशकषायोदयस्थानोंकी अनुपलब्धि होनेसे असंख्यातगुणत्वकी अनुपपत्ति है। यह कोई

१. यह कथन ध० पु० ११ पृ० ३१० पर भी पाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोष नहीं है, क्योंकि अधस्तनउदयस्थानोंसे उपरितनकर्मोंका उदयस्थान बहुत होनेसे असंख्येयगुणपनेका विरोध नहीं है।

आगे जघन्यादिस्थितिकी अपेक्षा स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा।
अहियकमा उक्कस्सट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९४९॥

अर्थ—जघन्यस्थितिके बन्धाध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं जो उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त क्रमसे अधिक-अधिक होते गए हैं।

विशेषार्थ—संज्ञोपञ्चेन्द्रियके विवक्षित मोहनीयकर्मकी स्थिति जघन्य तो अन्तःकोटाकोटीसागर अर्थात् संख्यातपल्य है और उत्कृष्टस्थिति ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है। जघन्यस्थितिसे उत्कृष्टस्थिति संख्यातगुणी हैं। उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने स्थितिके भेद हैं इन भेदोंमें सबसे जघन्यस्थितिबन्धके कारण जो अध्यवसायस्थान (परिणामोंके स्थान) हैं वे असंख्यातलोकप्रमाण हैं इससे आगे उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त एक-एक चय क्रमसे अधिक-अधिक नियमसे जानने चाहिए।

अहियागमणणिमित्तं, गुणहाणी होदि भागहारो दु।
दुगुणं दुगुणं वड्ढी, गुणहाणिं पडि कमेण हवे ॥९५०॥

अर्थ—विवक्षित गुणहानिमें अधिकरूप चयका प्रमाण लानेके लिए अन्तिमनिषेकमें दोगुणहानिका भाग दिया जाता है और 'तू' शब्दसे (अथवा प्रथमनिषेकमें) एकअधिक गुणहानिका भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है तथा प्रत्येकगुणहानिमें चयका प्रमाण दुगुना-दुगुना जानना।

विशेषार्थ—अङ्कसन्दृष्टिसे अन्तगुणहानिमें अन्तिम अध्यवसायस्थानोंका प्रमाण १६ इसमें दोगुणहानिके प्रमाण १६का भाग देनेपर एक आया अथवा प्रथमअध्यवसायस्थानोंके प्रमाण ९में एकअधिक गुणहानिप्रमाण ९का भाग देनेपर भी एक आया सो यह उस गुणहानिमें चयका प्रमाण जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठिदिगुणहाणिपमाणं, अज्झवसाणम्मि होदि गुणहाणी ।
णाणागुणहाणिसला, असंखभागो ठिदिस्स हवे ॥९५१॥

अर्थ—पहले बन्धका कथन करते समय कर्मस्थितिकी रचनामें गुणहानिका जैसा प्रमाण कहा है वैसा ही यहां अध्यवसायस्थानोंमें भी गुणहानिका प्रमाण जानना तथा नानागुणीहानियोंका जो प्रमाण पूर्वमें बन्धकथनमें कहा है उसके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण यहां अध्यवसायस्थानोंमें नानागुणहानिका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—जिसप्रकार पहले गाथा ९१४से ९२१में कहा था कि स्थितिके प्रमाणको नानागुणहानिशलाका प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह गुणहानिका प्रमाण है सो उसीप्रकार यहां भी जानना चाहिए। यहां जघन्यस्थितिसे लेकर उत्कृष्टस्थिति-पर्यन्त जितने स्थितिभेद हैं वही स्थितिअध्यवसायस्थानोंके भेदोंका प्रमाण जानना इसमें नानागुणहानिशलाकाके प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह एकगुणहानिआयाम-का प्रमाण जानना और इसको दुगुना करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण होता है तथा नानागुणहानिका प्रमाण स्थितिरचनामें जो नानागुणहानिशलाकाका प्रमाण कहा था उसके असंख्यातवेंभाग जानना। विवक्षित मोहनीयकर्मकी स्थितिरचनामें नानागुणहानि-शलाकाका प्रमाण पल्यके अर्धच्छेदोंमेंसे पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद कमकरके जो संख्या आवे उतने कहे हैं। (गाथा ९२५-२६ देखो) इसप्रकार इसप्रमाणमें असंख्यात का भागदेनेपर जो प्रमाण आवे वह यहां स्थितिबंधाध्यवसायरचनामें नानागुणहानिका प्रमाण जानना। सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थान ६३००को "रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिदव्वं" एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि ६३का भाग देनेसे १०० लब्ध आया सो प्रथमगुणहानिका द्रव्य जानना। इसे गच्छका भाग देनेसे ४थे ५वें मिले हुए निषेकोंका आधाप्रमाण १२½ मध्यधन जानना। इसमें एककम गच्छ ७ का आधा ३½ सो दोगुणहानि १६में से घटानेपर (१६−३½) १२½ शेष रहे उसका भाग देनेपर एक लब्ध आया सो चयका प्रमाण जानना। इसको एकअधिक गुणहानिके प्रमाण ९से गुणा करनेपर लब्ध ९ आया सो प्रथमनिषेक जानना। द्वितीयादि निषेकोंमें एक-एकचय अधिक होकर एककम गुणहानि का प्रमाण ७ सो इतने चय मिलनेसे (९+७) १६ हुए सो यह अन्तिमनिषेक जानना। इसप्रकार द्वितीयादि गुणहानिमें द्रव्य, चय और निषेक दूना-दूना होता है। अन्तिमगुण-हानिमें प्रथमगुणहानिके द्रव्य १००को अन्योन्याभ्यस्तराशिके आधे ३२ से गुणा करनेपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२०० तो द्रव्य जानना, इसको गच्छके प्रमाण ८ का भाग देनेपर मध्यधन ४०० आया। इसे एककम गुणहानिके आधेसे हीन दोगुणहानिके प्रमाण १२½ से भाग देनेपर ३२ आया सो चय जानना। इसको एकअधिक गुणहानिके प्रमाण ९ से गुणा करनेपर २८८ हुआ सो प्रथमनिषेक जानना। द्वितीयादि निषेकोंमें एक-एक चय मिलकर एक-कम गुणहानिप्रमाण सात चय मिलनेसे ५१२ हुआ, इसे अन्तिमनिषेक जानना। इस-प्रकार अंकसहनानी द्वारा कथन किया। यहां भी प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेक अध्यव-सायस्थान जघन्यस्थितिको कारण हैं और द्वितीयादिनिषेकप्रमाण जो अध्यवसायस्थान हैं वे एक-एकसमयअधिक स्थितिके लिये कारण जानना। इसीप्रकार अन्तिमगुणहानिके अन्तिमनिषेकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसायस्थान उत्कृष्टस्थितिके लिये कारण जानना।

आगे जघन्यचयका कथन करते हैं—

लोगाणमसंखपमा, जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा।
ठिदि बंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं ॥९५२॥

अर्थ—आयुकर्मके बिना शेष सातकर्मोंके स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंके जघन्य-स्थानके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण छहस्थानपतित वृद्धि होती है।

विशेषार्थ—अनन्तवेंभागवृद्धि, असंख्यातवेंभागवृद्धि, संख्यातवेंभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, ये छह वृद्धियां, छहस्थानपतितवृद्धियां होती हैं। स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंके जघन्यस्थानके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण षट्-स्थानपतितवृद्धि हो जानेपर दूसरा स्थान होता है। यह वृद्धिका कथन अविभागोंके प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा है, क्योंकि संख्याकी अपेक्षा अनन्तवेंभाग व अनन्तगुणीवृद्धि सम्भव नहीं है।

आगे आयुकर्मके स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंमें विशेषता बताते हैं—

आउस्स जहण्णट्ठिदिबंधणजोग्गा असंखलोगमिदा।
आवलिअसंखभागेणुवरुवरिं होंति गुणिदकमा ॥९५३॥

अर्थ—आयुकर्मके सर्वजघन्यस्थितिबन्धके योग्य अध्यवसायस्थान असंख्यात-लोकप्रमाण है उससे आगे-आगे उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त क्रमसे आवलीके असंख्यातवें-असंख्यातवेंभागसे गुणित स्थान जानना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—अङ्कसन्दृष्टिद्वारा कथन करते हैं—

आयुकर्मकी स्थितिके संख्यातपल्यप्रमाण जितने भेद हैं उसकी सहनानी १६ है, जघन्यस्थितिके योग्य असंख्यातलोकप्रमाण अध्यवसायस्थानोंकी सहनानी २२, द्वितीयादि स्थितिमें आवलीके असंख्यातवेंभागप्रमाण गुणकारकी सहनानी ४ है। नाना-जीवोंकी अपेक्षा अधस्तनस्थितिके बन्धमें कारणरूप अध्यवसायस्थान और उपरितन-स्थितिके बन्धमें कारणरूप अध्यवसायस्थानोंमें समानता भी है अतः यहां अनुकृष्टि-विधान सम्भव है, क्योंकि उपरितन व अधस्तन स्थितिके बन्धमें कारणरूप अध्यवसाय-स्थानादिकी समानता ही यहां अनुकृष्टि कहलाती है। इसलिये यहां अनुकृष्टिके गच्छ का प्रमाण अंकसन्दृष्टिमें ४ है सो स्थितिकी रचना तो ऊपर-ऊपर तथा एक-एकस्थिति-रचनाके बराबर अनुकृष्टिरचना जानना। जघन्यस्थितिकी अनुकृष्टिमें चयका प्रमाण १ और सर्वचयका जोड़रूप चयधन ६ है। इस चयधन ६ को प्रथमस्थितिसम्बन्धी द्रव्य २२ में से घटानेपर (२२−६) १६ शेष रहे इसको अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर (१६÷४) लब्ध ४ आए सो यह जघन्यस्थितिमें जघन्यअनुकृष्टिका खण्ड जानना। इससे आगे उत्कृष्टखण्डपर्यन्त एक-एकचय अधिक जानना। अर्थात् द्वितीय-तृतीय-चतुर्थखण्डका प्रमाण क्रमशः ५-६ व ७ जानना इसप्रकार चारों खण्डोंका जोड़ (४+५+६+७) २२ होता है। द्वितीयस्थिति भेदमें द्रव्य (२२) के चौगुणे (८८) अध्यवसाय हैं इनमेंसे एकभाग (२२) को पृथक् ग्रहणकर प्रथम, द्वितीय व तृतीय अनुकृष्टिखण्डोंमें क्रमसे ५-६ व ७ देनेसे शेष जो चार रहे वे तथा बहुभागरूप २२ के तिगुने (६६) उत्कृष्ट (चतुर्थ) खण्डमें देनेसे अन्तिमखण्डमें द्रव्य (६६+४) ७० हुआ। तृतीयस्थितिभेदमें २२ के दोबार चौगुणे अर्थात् २२×४=८८×४=३५२ अध्यवसाय हैं। ३५२ में से २२ के चौगुने (८८) रूप एकभाग पृथक् ग्रहणकर अवशेष २२के चौगुनेके तिगुने अर्थात् २६४ अन्तिम (चतुर्थ) खण्डमें देना तथा पृथक् ग्रहण किये हुए चारगुणे २२ (८८) में से २२ पृथक् ग्रहणकरके अवशेष २२ का तिगुना (६६) रहा सो यह द्रव्य उपान्तखण्ड (तृतीयखण्ड) में देना तथा जो २२ पृथक् रखे थे उनमेंसे प्रथम व द्वितीय खण्डमें तो ६ व ७ एवं तृतीय व चतुर्थखण्डमें पूर्वोक्त ६६ व २६४ में क्रमशः ४ व ५ मिलानेसे ७० व २६९ हुए। (चारोंखण्डोंमें क्रमसे ६।७।७०। २६९ रूप द्रव्य जानना) चतुर्थ स्थितिभेदमें २२ को तीनबार चौगुणा करनेपर (२२×४=८८×४=३५२×४=१४०८) द्रव्य है। यहां २२ का दोबार चौगुणा (३५२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथक् ग्रहणकर अवशेष २२ के दोबार चौगुणेको तिगुना करनेसे (२२×४=८८×४=३५२×३) १०५६ हुए सो यह चतुर्थखण्डमें देना तथा २२ का दोबार चौगुणा (३५२) पृथक् रखा था उसमेंसे एकभाग २२ से चारगुना (८८) पृथक् ग्रहणकर अवशेष चारगुणे २२ के तिगुने (२६४) उपान्त (तृतीय) खण्डमें देना तथा चारगुणा २२ (८८) पृथक् रखे थे उसमें एकभागरूप २२ पृथक् रखकर अवशेष तिगुना २२ (६६) द्वितीयखण्डमें देना एवं जो २२ पृथक् ग्रहण किये थे उनमेंसे सात प्रथमखण्डमें तथा ४-५ व ६ क्रमसे द्वितीय-तृतीय व चतुर्थखण्डके प्रमाणमें मिलानेपर चारोंखण्डसम्बन्धी सर्वद्रव्य क्रमसे ७।७०।२६९।१०६२। जानना। इसी क्रमसे ५वें, ६ठे, ७वां, ८वां आदि उपान्त व अन्तिमस्थितिभेदमें अनुकृष्टिरचना जानना। सर्वत्र अधस्तनस्थितिभेदका द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ अनुकृष्टिखण्डमें जो द्रव्य होवे सो उपरितनस्थितिभेदके प्रथम, द्वितीय व तृतीय अनुकृष्टिखण्डमें लिखना तथा उपरितनस्थितिभेदके सर्वद्रव्यमेंसे तीनों खण्डोंका प्रमाण जोड़कर घटानेसे जो अवशेष सो चतुर्थखण्डमें प्रमाण लिखना। इसप्रकार अधस्तनस्थितिके उपरितनस्थितिके अध्यवसायोंकी समानता पाई जाती है।

किसी जीवके जितने अध्यवसायोंसे अधस्तनस्थिति बंधती है उतने ही परिणामोंसे किसी जीवके उपरितनस्थिति भी बंधती है। इसप्रकार समानता होनेसे अनुकृष्टिरचना कही। यहां अधस्तनस्थितिका जघन्यखण्ड उपरितनस्थितिके खण्डोंसे तथा उपरितनस्थितिका उत्कृष्टखण्ड अधस्तनखंडोंके समान नहीं है ऐसा जानना। इसप्रकार आयुकर्मके स्थितिबंधाध्यवसायस्थान कहे।

नानाजीवोंकी अपेक्षा स्तोकस्थितिके कारणभूत जो स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं तथा उससे अधिक स्थितिके कारणभूत जो बन्धाध्यवसायस्थान हैं इन दोनोंमें समानता भी होती है अतः यहां गाथा ९०७ में दिये हुए अधःकरणसम्बन्धी कोष्ठक (सन्दृष्टि) के अनुसार अनुकृष्टिविधान सम्भव है, किन्तु उस संदृष्टिकी अपेक्षा यहां कुछ अंतर है। अतः अनुकृष्टिके गच्छ या खण्ड ४ माननेपर निम्नानुसार सन्दृष्टि बनेगी। तद्यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिति	अध्यवसाय-स्थान	अनुकृष्टिखण्ड			
जघन्य	२२	४	५	६	७
जघन्य+१समय	८८	५	६	७	७०
जघन्य+२समय	३५२	६	७	७०	२६६
जघन्य+३समय	१४०८	७	७०	२६६	१०६२

अथानन्तर यहां प्रत्येक स्थिति भेदसम्बन्धी अध्यवसायोंमें नानाजीवोंकी अपेक्षा खण्ड पाए जाते हैं। किसी जीवके जितने अध्यवसायस्थानोंसे अधस्तनस्थिति बंधती है तथा अन्य किसीके उतने ही स्थानोंसे उपरितनस्थिति भी बंधती है इसप्रकार ऊपर व नीचे समानता समझकर अनुकृष्टि विधान कहते हैं—

पल्लासंखेज्जदिमा, अणुकट्ठी तत्तियाणि खंडाणि।
अहियकमाणि तिरिच्छे चरिमं खंडं च अहियं तु ॥९५४॥

अर्थ—स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंकी अनुकृष्टिरचनामें पल्यके असंख्यातवेंभाग अनुकृष्टिपदोंका (गच्छका) प्रमाण है और उतने ही अनुकृष्टिखण्ड होते हैं। ये खण्ड तिर्यक् (बराबर) रचना किये गए क्रमसे अनुकृष्टिके चयसे अधिक-अधिक हैं, किन्तु जघन्यखण्डसे अन्तिमखण्ड कुछ ही विशेष अधिक है दूना-तिगुना नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

"प्रथमादि स्थितिबन्धस्थानोंमें स्थितिबन्धाध्यवसाय परिणामोंकी अनुकृष्टि रचना"

स्पष्टीकरण→

प्रत्येक स्थितिबन्धस्थानके लिये असंख्यात लोक-प्रमाण स्थितिबंधाध्यवसाय परिणाम हैं। इनमें से कुछ परिणाम तो अनन्तर पूर्व स्थितिबंधाध्यवसायमें से लिये जाते हैं और कुछ नवीन परिणाम होते हैं, क्योंकि प्रत्येक स्थितिबंधके स्थितिबंधाध्यवसायकी अनुकृष्टि रचना होती है।

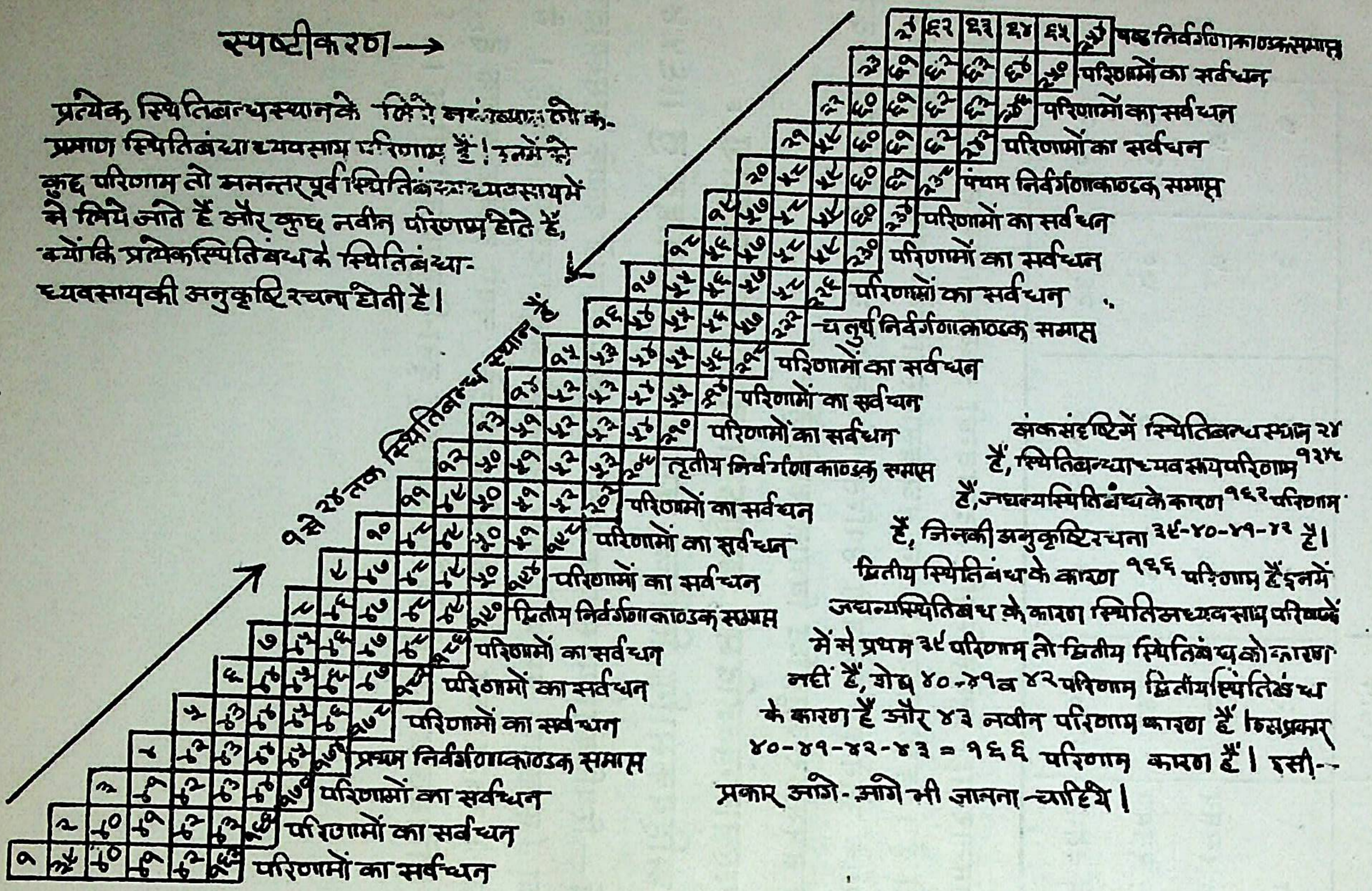

अंकसंदृष्टिमें स्थितिबन्धस्थान २४ हैं, स्थितिबन्धाध्यवसायपरिणाम १२५८ हैं, जघन्यस्थितिबंधके कारण १६२ परिणाम हैं, जिनकी अनुकृष्टिरचना ३९-४०-४१-४२ है। द्वितीय स्थितिबंधके कारण १६६ परिणाम हैं इनमें जघन्यस्थितिबंध के कारण स्थितिबन्धाध्यवसाय परिणामों में से प्रथम ३९ परिणाम तो द्वितीय स्थितिबंधको कारण नहीं हैं, शेष ४०-४१ व ४२ परिणाम द्वितीय स्थितिबंधके कारण हैं और ४३ नवीन परिणाम कारण हैं इसप्रकार ४०-४१-४२-४३ = १६६ परिणाम कारण हैं। इसी प्रकार आगे-आगे भी जानना चाहिये।

आगे विशेषका प्रमाण कहते हैं—

लोगाणमसंखमिदा, अहियपमाणा हवंति पत्तेयं।
समुदायेण वि तच्चिय, ण हि अणुकिट्टिम्मि गुणहाणी ॥९५५॥

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—प्रत्येकगुणहानिमें पूर्व-पूर्व गुणहानिसे अनुकृष्टिके चयका प्रमाण दूना-दूना है तथापि सामान्यसे असंख्यातलोकमात्र ही है और सर्वचय समूहोंको मिलानेसे भी असंख्यातलोकप्रमाण ही होता है। अनुकृष्टिमें गुणहानिकी रचना नहीं है।

विशेषार्थ--विवक्षित गुणहानिकी रचनामें चयका जो प्रमाण है उसमें अनुकृष्टिगच्छका भाग देनेपर अनुकृष्टिचयका प्रमाण प्राप्त होता है इसप्रकार स्थूलरूपसे वह असंख्यातलोकप्रमाण ही है। यहां प्रथमखण्डसे एक-एकचय अधिक द्वितीयआदि खण्ड हैं तथापि उन सभीका प्रमाण असंख्यातलोकप्रमाण ही कहा है इसप्रकार असंख्यात-लोकके भेद असंख्यातलोकप्रमाण हैं तथा अनुकृष्टिके गच्छमें गुणहानिकी रचना नहीं है अतः सर्वउत्कृष्टखण्डोंके अपने-अपने जघन्यखण्डसे एककम गुणहानिके गच्छप्रमाण चयों की अधिकता पाई जाती है इसप्रकार अनुकृष्टिके गच्छ और चयका प्रमाण बताकर उस अनुकृष्टिखण्डोंमें स्थितिबन्धाध्यवसायोंका प्रमाण कहते हैं—

जघन्यस्थितिबन्धके योग्य अध्यवसाय परिणाम तो द्रव्य जानना तथा प्रथम-गुणहानिमें जो चयका प्रमाण है उसमें अनुकृष्टिगच्छ (पल्यके असंख्यातवेंभागका) भाग देनेपर अनुकृष्टिचयका प्रमाण होता है तथा **"व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं"** एककम अनुकृष्टिगच्छके आधेको अनुकृष्टिचयसे गुणे और अनुकृष्टिगच्छसे गुणे, जो प्रमाण हो वह यहां चयधन जानना।

प्रथमगुणहानिमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायोंके प्रमाणमें से चय-धनका प्रमाण घटानेसे अवशेषमें अनुकृष्टिगच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह प्रथमगुणहानिमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी अनुकृष्टिका प्रथमखण्ड जानना। द्वितीयादिखण्ड एक-एक अनुकृष्टिचयसे अधिक होते हैं। एककम अनुकृष्टिके गच्छप्रमाणचय जघन्यखंडमें अधिक होनेपर उत्कृष्टअन्तिमखण्ड होता है। यहां **"पदहतमुखमादिधनं"** अनुकृष्टिगच्छ-रूप पदसे प्रथमखण्डरूप मुखको गुणा करनेपर आदिधन प्राप्त होता है। इसप्रकार आदि-धन और चयधन मिलानेसे जघन्यस्थितिसम्बन्धी अध्यवसायोंका प्रमाणरूप सर्वधन होता है इसीप्रकार द्वितीयादिस्थानोंमें अनुकृष्टिरचना अनुक्रमसे प्रथमगुणहानिके अन्त तक जानना। अब इस अनुकृष्टिके कथनको अंकसन्दृष्टिके द्वारा कहते हैं--

प्रथमगुणहानिके प्रथमस्थान ९ है। अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग उर्ध्वचयमें देनेपर अनुकृष्टि चतुर्थांश वहां **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं"** इस सूत्रसे चय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

धनके प्रमाण १$\frac{१}{२}$ को सर्वधन ९मैं से घटानेपर ७$\frac{१}{२}$ शेष रहे इसको अनुकृष्टिगच्छ चार का भाग देनेपर प्रथमखण्डका प्रमाण अष्टमांशकम दो ($\frac{१५}{८}$) होता है। इसमें चतुर्थांश-प्रमाण अनुकृष्टिका एक-एकचय मिलानेपर द्वितीयादिखण्ड होते हैं ($\frac{१५}{८}+\frac{१७}{८}+\frac{१९}{८}+\frac{२१}{८}$) इन चारों खण्डोंका जोड़ करनेपर ($\frac{७२}{८}$)९ होता है। इसीप्रकार अन्तिमनिषेकके द्रव्य १६ में से चयधन १$\frac{१}{२}$ घटावेसे (१६−१$\frac{१}{२}$) १४$\frac{१}{२}$ को अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर अष्टमांशअधिक ३$\frac{१}{२}$ तीन लब्ध आया सो यह तो प्रथमखण्ड और इसमें चतुर्थांशमात्र एक-एकचय अधिक होनेसे द्वितीयादिखण्ड होते हैं तथा चारों खण्डोंका जोड़ १६ हुआ।

यहां आधा चौथाई कहनेका अभिप्राय यह है कि अङ्कसन्दृष्टि द्वारा समझमें आ जावे, किन्तु महत्प्रमाणरूप अर्थसन्दृष्टिमें अध्यवसायोंमें आधा-चौथाई नहीं है। अथवा अपनी इच्छानुसार अंकसन्दृष्टि करना हो तो त्रिकरणचूलिका अधिकारमें अधः-प्रवृत्तकरणरचनामें जो अङ्कसन्दृष्टिद्वारा कथन किया है वैसा करना। यहां प्रथमगुण-हानिमें अध्यवसाय ३०७२, गुणहानिआयाम १६, जघन्यस्थितिसम्बन्धी प्रथमनिषेक १६२, प्रत्येकनिषेकमें चयका प्रमाण ४ है। यहां प्रथमनिषेकमें द्रव्य १६२ इसमें चय-धन ६ घटानेपर (१६२−६) १५६ हुआ इसमें अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर ३९ आया यह प्रथमखण्ड तथा द्वितीयादि खण्डमें अनुकृष्टिचयका प्रमाण एक सो एकचय अधिक जानना। इसप्रकार चारोंखण्डोंका जोड़ करनेपर १६२ होते हैं। इसीप्रकार द्वितीयादि निषेकोंकी रचनाकर अन्तिमनिषेकमें द्रव्य २२२ है इसमेंसे चयधन ६ घटाने-पर (२२२−६) २१६ रहे इसमें अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर ५४ लब्ध आया सो यह प्रथमखण्ड जानना तथा द्वितीयादिखण्डोंमें एक-एकचय अधिक जानना इसप्रकार चारोंखण्डोंका जोड़करनेसे २२२ होता है। इसीप्रकार अङ्कसन्दृष्टिद्वारा पूर्वोक्त अर्थ जानना। अत्यन्तपरोक्ष अर्थको जाननेका यह भी उपाय है तथा ऐसे ही द्वितीयादि गुणहानिमें भी अनुकृष्टिका विधान करना। प्रथमगुणहानिके अनुकृष्टिचय, द्रव्य और खण्डोंसे द्वितीयादि गुणहानिमें अनुकृष्टिचयादिका प्रमाण दूना-दूना जानना।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्कसन्दृष्टिकी अपेक्षा स्थितिबंधाध्यवसायकी रचना—

जघन्यादि स्थिति-बंधकी उर्ध्वरचना	प्रथमखंड	द्वितीयखंड	तृतीयखंड	चतुर्थखण्ड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

पढमं पढमं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिदूण विसरित्थं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादो णंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५६॥

अर्थ—इसप्रकार अनुकृष्टिरचनामें प्रथमादि गुणहानियोंमें अनुकृष्टिका प्रथम-प्रथमखण्ड परस्परमें विसदृश (असमान) हैं इसलिए तिर्यक्रूप रचनामें ऊपर-ऊपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचनारूप प्रथम-प्रथमखण्ड अन्तिमनिषेकके प्रथमखण्डपर्यन्त एक-एकचयप्रमाण अधिक है इसीप्रकार शक्तिकी अपेक्षा भी अपने-अपनेसे अधस्तनखण्डकी अपेक्षा अनन्तगुणे हैं ।

विदियं विदियं खंडं, अणणोरणं पेक्खिदूण विसरित्थं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहरणं ॥९५७॥

अर्थ—गुणहानियोंमें प्रथमादि निषेकोंका द्वितीय-द्वितीयखंड गुणहानिके अंतिम-निषेकके द्वितीयखण्डपर्यन्त निरन्तर एक-एकचयप्रमाण अधिक है इसलिए समान नहीं है, क्योंकि अधस्तनद्वितीयखण्डके उत्कृष्टस्थानसे उपरितनद्वितीयखण्डके जघन्यस्थान चयअधिक और शक्तिकी अपेक्षा अनन्तगुणा है तथा ऐसे ही तृतीय-तृतीयआदि खण्डोंमें असमानता जान लेना । इसप्रकार एककम अनुकृष्टिप्रमाण खण्डोंकी असमानता होती है ।

अब अन्तिमखण्डोंकी परस्परमें असमानता बताते हैं--

चरिमं चरिमं खंडं, अणणोरणं पेक्खिदूण विसरित्थं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहरणं ॥९५८॥

अर्थ—गुणहानिके प्रथमादिनिषेकोंका अन्तिमखण्ड अन्तिमनिषेकोंके अंतिम-खण्डपर्यन्त निरन्तर एक-एकचय अधिक होनेसे परस्परमें असदृश हैं और शक्तिकी अपेक्षा अपनेसे अधस्तनअन्तिमखण्डके उत्कृष्टस्थानसे उपरितनअन्तिमखण्डका जघन्यस्थान अनन्तगुणा है ।

आगे उसीका कारण कहते हैं--

हेट्ठिमखंडुक्कस्सं, उव्वंकं होदि उवरिमजहरणं ।
अट्ठंकं होदि तदोणंतगुणं उवरिमजहरणं ॥९५९॥

अर्थ—जिसकारण तिर्यग्रूप रचनामें ऊपर-ऊपर लिखे हुए खण्डोंमें अपनेसे अधस्तनखण्डका उत्कृष्टअध्यवसायस्थान पूर्वस्थानसे 'ऊर्वङ्क'—अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए है तथा अधस्तनखंडके उत्कृष्टसे उपरितनखंडका जघन्यअध्यवसायस्थान 'अष्टाङ्क'—अनन्तगुणवृद्धिको लिये हैं । इसकारणसे अधस्तनखंडके उत्कृष्टसे उपरितनखण्डका जघन्यस्थान अनन्तगुणा कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवरुक्कस्सठिदीणं, जहण्णमुक्कस्सयं च णिव्वग्गं ।
सेसा सव्वे खंडा, सरिसा खलु होंति उड्ढेण ॥९६०॥

अर्थ—जघन्यस्थितिके कारणरूप अध्यवसायस्थानोंके प्रथमखण्ड और उत्कृष्टस्थितिके कारणरूप अध्यवसायस्थानोंके अन्तिमखंड ये दोनों तो निर्वर्ग हैं अर्थात् किसी भी खण्डसे सर्वथा समान नहीं हैं और शेष सर्वखण्ड उर्ध्वरचनाके द्वारा अन्यखण्डोंके समान हैं।

अट्ठण्हंपि य एवं, आउजहण्णट्ठिदिस्स वरखंडं ।
जावय तावय खंडा, अणुकट्टिपदे विसेसहिया ॥९६१॥
तत्तो उवरिमखंडा, सगसगउक्कस्सगोत्ति सेसाणं ।
सव्वे ठिदियणखंडाऽसंखेज्जगुणक्कमा तिरिये ॥९६२॥जुम्मं॥

अर्थ—आठों कर्मोंकी अनुकृष्टिरचना समान है अर्थात् जैसी मोहनीयकर्मकी अनुकृष्टिरचना कही गई है वैसी ज्ञानावरणादिकर्मोंकी भी जानना, किन्तु आयुकर्मकी तिर्यग्रचनामें जघन्यस्थितिबन्धके कारणभूत अध्यवसायस्थानोंकी अनुकृष्टिरचनामें प्रत्येकखण्ड चयकरि विशेष अधिक हैं। जघन्यस्थितिको कारणभूत परिणामोंके अपने-अपने उत्कृष्टखंड अपनेसे अधस्तन सर्वस्थितिखंडोंसे असंख्यातगुणा क्रम लिये हुए हैं।

आगे अनुभाग बंधाध्यवसायस्थानोंको कहते हुए उसमें जघन्यस्थितिके अध्यवसायस्थानोंमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी अनुभागाध्यवसायस्थानोंको कहते हैं—

रसबन्धज्झवसाणट्ठाणाणि असंखलोगमेत्ताणि ।
अवरट्ठिदिस्स अवरट्ठिदिपरिणामम्हि थोवाणि ॥९६३॥

अर्थ—अनुभागबंधाध्यवसायस्थान (असंख्यातलोक×असंख्यातलोक) असंख्यातलोकप्रमाण हैं इसमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंमें जघन्य अध्यवसायोंके प्रमाणसे असंख्यातलोकगुणे अनुभागबंधाध्यवसायस्थान तत्सम्बन्धी हैं तथापि अन्य स्थितिबंधाध्यवसायसंबंधी अनुभागाध्यवसाय परिणामोंकी अपेक्षा स्तोक हैं।

विशेषार्थ—जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंके प्रमाणसे असंख्यातलोकगुणे तत्स्थितिसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायोंका प्रमाण है सो ही यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यका प्रमाण जानना। जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंका प्रमाण सो यहां स्थितिका प्रमाण जानना। आवलीको दोबार असंख्यातका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो नानागुणहानिशलाका प्रमाण है। उपर्युक्त स्थितिके प्रमाणको नानागुणहानिका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे सो गुणहानिआयामका प्रमाण है। गुणहानिआयामके प्रमाण को दोगुणा करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण है। आवलीके असंख्यातवांभाग सो अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना। यहां द्रव्यके प्रमाणमें एककम अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतना प्रथमगुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण है और आगें इससे दूना-दूना द्वितीयादि गुणहानियोंमें द्रव्य जानना। प्रथमगुणहानिके द्रव्यको गुणहानिआयामका भाग देनेपर मध्यमधनका प्रमाण प्राप्त होता है। एककम गुणहानिआयामके आधेसे हीन दो गुणहानिआयामका भाग मध्यमधनमें देनेसे चयका प्रमाण प्राप्त होता है और चयको एकअधिक गुणहानिआयामका गुणा करनेसे प्रथमनिषेकका प्रमाण होता है।

तत्तो कमेण वड्ढदि, पडिभागेण य असंखलोगेण।
अवरट्ठिदिस्स जेट्ठट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९६४॥

अर्थ—इसके पश्चात् क्रमसे जघन्यस्थितिके जघन्यपरिणामसम्बन्धी प्रथमनिषेकरूप अनुभागाध्यवसायस्थानसे उत्कृष्टस्थितिके उत्कृष्ट अनुभागाध्यवसायस्थानपर्यंत असंख्यातलोकरूप प्रतिभागहारसे (असंख्यातवेंभागसे) बढ़ते-बढ़ते अनुभागाध्यवसायस्थान नियमसे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उसके पश्चात् जघन्यस्थितिके जघन्यपरिणामसम्बन्धी प्रथमनिषेकरूप अनुभागाध्यवसायस्थान प्रथमगुणहानिके अन्तिमनिषेकरूप अन्तिमअनुभागाध्यवसायपरिणामपर्यन्त असंख्यातलोकमात्रका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर जो चयका प्रमाण आया उससे एक-एकचयप्रमाण निरन्तर बढ़ते-बढ़ते जानने। इससे आगे गुणहानि-गुणहानिप्रति चयका प्रमाण दूना-दूना जानना। इसप्रकार द्वितीयादि स्थितियोग्य द्वितीयादि निषेकसे उत्कृष्टस्थितिरूप अन्तिमनिषेकपर्यंन्त रचना जाननी।

यहां जघन्यस्थितिसम्बन्धी जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंसे असंख्यातगुणे प्रथमनिषेकप्रमाण अनुभागाध्यवसायस्थान जानना तथा उसीके दूसरे स्थानमें द्वितीयनिषेकप्रमाण जानना ऐसा क्रम है एवं अनुभागबन्धाध्यवसायोंकी नानागुणहानिशलाकाओं के विषयमें आचार्योंके दो मत हैं। एकमतानुसार नानागुणहानि है दूसरे मतानुसार नानागुणहानि नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे ग्रन्थकर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य ग्रन्थ रचनेकी प्रतिज्ञा पूर्णकरके प्रशस्तिरूप आठ गाथाएं कहते हैं—

गोम्मटसंगहसुत्तं, गोम्मटदेवेण गोम्मटं रयिदं ।
कम्माण णिज्जरट्ठं, तच्चट्ठवधारणट्ठं च ॥९६५॥

अर्थ—गोम्मटदेव–वर्धमानतीर्थंकरदेवने संग्रहरूप इस गोम्मटसारग्रन्थका विषय प्रमाण और नयके गोचर कहा है । अतः इस ग्रन्थकी स्वाध्यायसे ज्ञानावरणादिकर्मोंकी निर्जरा और तत्त्वोंके स्वरूपका निश्चय होता है ऐसा जानना चाहिए ।

जम्हि गुणा विस्संता, गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं ।
सो अजिदसेणणाहो, जस्स गुरू जयदु सो राम्रो ॥९६६॥

अर्थ—बुद्धि आदि ऋद्धि प्राप्त गणधरदेवादिके समान जिनमें गुण हैं ऐसे अजितसेनमुनिनाथ जिसके व्रत (दीक्षा) देवेवाले गुरु हैं वह राजाचामुण्डराय सर्वोत्कृष्ट-रूपसे जयशील होवो ।

सिद्धंतुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया ।
गुणरयणभुसणंबुहिमइबेला भरउ भुवणयलं ॥९६७॥

अर्थ—सिद्धान्तरूप उदयाचलपर जिनका ज्ञान उदयको प्राप्त हुआ है ऐसे चन्द्रमाके समान नेमिचन्द्राचार्यकी वचनरूपी किरणोंसे सम्बन्धित गुणरूपी रत्नोंसे शोभित चामुण्डरायकी बुद्धिरूप बेला समस्त जगतमें अतिशयसे विस्तार प्राप्त करे ।

गोम्मटसंगहसुत्तं, गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य ।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कुडजिणो जयदु ॥९६८॥

अर्थ—गोम्मटशिखरपर चामुण्डरायराजाने जो जिनमन्दिर बनवाया उसमें विराजमान एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणिमय नेमिनाथ तीर्थङ्करदेवका प्रतिबिम्ब विराजमान किया तथा भारतके दक्षिणप्रान्तमें श्रवणबेलगोलाके पर्वतपर निर्मापित बाहुबली-स्वामीकी प्रतिमा विराजमानकी वह प्रतिबिम्ब तथा गोम्मटसारसंग्रहग्रन्थ जयवंत होओ ।

जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं ।
सव्वपरमोहिजोगिहिं, दिट्ठं सो गोम्मटो जयदु ॥९६९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वज्जयणं जिणभवणं, ईसिपब्भारं सुवण्णकलसं तु ।
तिहुवणपडिमाणिक्कं, जेण कदं जयदु सो राओ ॥९७०॥
जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया ।
सिद्धाण सुद्धपाया, सो राओ गोम्मटो जयदु ॥९७१॥
गोम्मटसुत्तल्लिहणे, गोम्मटरायेण जा कदा देसी ।
सो राओ चिरकालं, णामेण य वीरमत्तंडी ॥९७२॥

अर्थ—जिस प्रतिमाको चामुण्डरायने बनवाया उस प्रतिमाके मुखको सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंने तथा सर्वावधि व परमावधिज्ञानधारी मुनियोंने देखा है वह चामुण्डराय सर्वोत्कृष्टपनेको प्राप्त होवे ॥९६९॥

जिस मन्दिरका अवनितल अर्थात् पीठबन्ध वज्र सदृश है, जिसका ईषत्प्राग्भार नाम है, जिसके ऊपर स्वर्णमयी कलश हैं तथा जो अनुपम है ऐसे जिनमन्दिरको बनवानेवाला चामुण्डराय जयवन्त प्रवर्तो ॥९७०॥

जिसने चैत्यालयके खम्भोंपर यक्षके आकारवालीमूर्तिके मुकुटाग्रभागकी किरणोंरूप जलसे सिद्धपरमेष्ठी के आत्मप्रदेशोंके आकाररूप शुद्धचरण धोए हैं ऐसा चामुण्डराय जयशील होवे । [यद्यपि सिद्धिस्थानपर्यन्त यक्षके मुकुट किरण कैसे प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु उपमालङ्कारके द्वारा कहनेमें दोष नहीं है । यहां इतना अर्थ जानना कि चैत्यालयमें स्तम्भ बहुत ऊंचा बना है उसके ऊपर यक्षकी मूर्ति है उसके मुकुटमें प्रकाशवन्त रत्न लगें हैं ।] ॥९७१॥

गोम्मटसार ग्रन्थके गाथासूत्र लिखते समय जिस गोम्मटरायने कर्नाटकवृत्ति बनाई है वह "वीरमार्तण्ड" नामसे प्रसिद्ध चामुण्डराय दीर्घकालपर्यन्त जयवंत वर्तो ॥

॥इति प्रशस्तिः॥

इसप्रकार नेमिचन्द्राचार्य विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डग्रन्थकी "सिद्धान्तज्ञान-दीपिका" नामक हिन्दी टीकामें 'कर्मरचनासद्भाव' नामक नवमअध्याय पूर्ण हुआ ।

5213

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"गाथानुक्रम"

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
"अ"		
अक्खाणं अणुभवणं	१४	९
अजहण्णट्ठिदि बंधो	१५२	१२५
अट्ठगुणिज्जा वामे	८४९	७८५
अट्ठण्हंवि य एवं	९९१	८६९
अट्ठत्तरीहि सहिया	५०६	५१२
अट्ठत्तीस सहस्सा	५०५	५११
अट्ठ य सत्त य छक्क य	५०८	५१४
अट्ठविहसत्तछव्वं	६२८	६०८
अट्ठसमयस्स थोवा	२४३	२०३
अट्ठसु एक्को बंधो	६५३	६२१
अट्ठारस चउअट्ठं	३९३	४१८
अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य	४५४	४६८
अट्ठेव सहस्साइं	५०७	५१३
अडचउरेक्कावीसं	५११	५१५
अडछव्वीसं सोलस	६४९	६१९
अडदालं चारिसया	८७२	७९६
अडदालं छत्तीसं	८५५	७८५
अडवण्णा सत्तसया	६०८	५९७
अडवीसचऊ बंधा	७३१	६६४
अडवीसतिय दु साणे	५५१	५४८
अडवीस दु हारदुगे	५४६	५३३
अडवीस दुगं बधो	७००	६४९
अडवीसमिवुणतीसे	७८१	७०४
अडवीसे तिगिणउदे	७८०	७०४
अडसट्ठी एक्कसयं	८७१	७९६
अण्णत्थ ठियस्सुदये	४३९	४५४
अण्णदर आउसहिया	३७८	३९१
अण्णाणदुगे बंधो	७२३	६६०
अण्णाणो हु अणीसो	८८०	८११
अण्णोण्ण गुणिदरासी	२४९	२११
अण्णोण्णब्भत्थं पुण	४३३	४५०
अणणोकम्मं मिच्छं	७५	४५
अणथीणतियं	१७१	१३८
अणरहिदसहिद कूडे	७९६	७३३
अणसंजोजिद मिच्छे	५६१	५५७
अणसंजोजिद सम्मे	४७८	४८८
अणियट्टिकरणपढमा	४८३	४९३
अणियट्टिगुणट्ठाणे	३९२	४१८
अणियट्टिचरिमठाणा	३९९	४१९
अणियट्टीबंधतियं	६५४	६२१
अणुकट्ठिपदेण हदे	९०६	८२२
अणुदय तदियं णीचं	३४१	२३०
अणुभयवचि वियल	३११	२७६
अणुभागाणं बंधं	२६०	२२५
अणुवदमहव्वदेहिं य	८०७	७४३
अत्थि णवट्ठ य दुदओ	७३८	६६७
अत्थि सदो परदोवि य	८७७	८१०
अत्थि सदो परदोवि य	८७८	८१०
अत्थं देक्खिय जाणदि	१५	९
अप्पदरा पुण तीसं	४७३	४८२
अप्पपरोभयठाणे	५५५	५५४
अप्पिट्ठपंतिचरिमो	९३६	८४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
अप्पोवयारवेक्खं	६१	४०
अप्पं बंधंतो बहु	४६६	४७६
अपमत्ते य अपुव्वे	७०१	६४६
अपमत्ते सम्मत्तं	२६८	२३६
अब्भरहिदादुपुव्वं	१६	६
अभव्वसिद्धे णत्थि हु	३५५	३५५
अयदापुण्णे ण हि थी	२८७	२४६
अयदुवसमग चउक्के	८४५	७८१
अयदे बिदियकसाया	६७	५५
अयदे बिदियकसाया	२६६	२३६
अवधिदुगेण विहीणं	८२७	७६६
अविभागपडिच्छेदो	२२३	१८७
अवणिदतिप्पयडीणं	२८०	२४४
अवरट्ठिदिबंधज्झव	६४६	८५८
अवरादीणं ठाणं	७६१	७२०
अवरुक्कस्सठिदीणं	६६०	८६६
अवरुक्कस्सेण हवे	२४२	२०३
अवरो भिण्णमुहुत्तो	१२६	१०३
अवसेसा पयडीओ	१८३	१४५
अविरदठाणं एक्कं	३०५	२६४
अविरदभंगे मिस्स य	५५३	५५२
अविरदसम्मो देसो	५५८	५५५
अविरमणे बंधुदया	७२६	६६२
अरदी सोगे संढे	१३०	१०४
अरहंतसिद्धचेदिय	८०२	७३६
अरहंतादिसु भत्तो	८०६	७४४
असहायजिणवरिंदे	३६८	४२१
असिदि सदं किरियाणं	८७६	८०६
अहिया गमणणिमित्तं	६५०	८५८

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
"आ"		
आउक्कस्स पदेसं	२११	१७७
आउगबंधाबंधण	३५६	३६०
आउगभागो थोवो	१६२	१५१
आउट्ठिदि बंधज्झव	६४७	८५६
आउदुगहाररतित्थं	३६७	३६७
आउबलेण अवट्ठिदि	१८	१०
आउस्स जहण्णट्ठिदि	६५३	८६०
आउस्स य संखेज्जा	६३६	८५१
आऊणि भवविवाई	४८	३६
आदाओ उज्जोओ	१६५	१३५
आदिधणादो सव्वं	६०१	८१६
आदिम्मि कमे वड्ढदि	६०७	८२३
आदिमपंचट्ठाणे	३७६	३६१
आदिमसत्तेव तदो	४४२	४६२
आदिल्लदससुसरिसा	३८१	३६१
आदी अंते सुद्धे	२५४	२१५
आदेसेवि य एवं	८७५	८०६
आबाधाणं बिदियो	६४१	८५३
आबाहूणियकम्म	१६०	१३१
आबाहूणिय कम्मट्ठिदि	६१६	८३६
आबाहं बोलाविय	१६१	१३२
आबाहं बोलाविय	६२०	८३७
आयदणाणायदणं	७४	४५
आवरणदेसघादं	१८२	१४५
आवरणमोहविग्घं	६	६
आवरणवेदणीये	६३८	८५१
आवलियं आबाहा	१५६	१३०
आवलियं आबाहा	६१८	८३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varaṇasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
आलसड्ढो णिरुच्छाहो	८९०	८१४
आहारगा दु देवे	५४२	५३१
आहारदुगं सम्मं	४१५	४३६
आहारमप्पमत्ते	१७२	१३९
आहारे बंधुदया	७३७	६६७
आहारं तु पमत्ते	२६१	२३३
"इ"		
इगि अड अट्ठिगि	५७७	५६९
इगिछक्कडणववीस	७०८	६५२
इगिछक्कडणक. तीसदु.	७१६	६५६
इगिठाणफड्डयाओ	२२७	१८९
इगिठाणफड्डयाओ सम.	२५०	२१३
इगिणउदीए तीसं	७७१	७०१
इगिणवदीए बंधा	७५६	६८९
इगितीसबंधठाणे	७७४	७०१
इगितीसे तीसुदओ	७४४	६६९
इगिदालं च सयाइं	८७०	७९६
इगिपंचेंदिय थावर	१३१	१०४
इगिपंतिगदं पुध पुध	९३५	८४९
इगिबंधट्ठाणेण दु	७६८	६९७
इगिबारं वज्जित्ता	६४३	६१५
इगिविगलथावरचऊ	२८८	२४७
इगिविगलबंधठाणं	७१५	६५६
इगिविहि गि गि ख	५७८	५७१
इगिवीसट्ठाणुदये	७७५	७०४
इगिवीसमोहखवणुव	८९७	८१७
इगिवीसादट्ठुदओ	७७२	७०१
इगिवीसादी एक्कत्ती	६९७	६४९
इगिवीसेण णिरुद्धे	६७५	६३५

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
इगिवीसं ण हि पढमे	६७६	६३५
इट्ठपदे रुऊणे	८६१	७९५
इट्ठसलायपमाणं	९३७	८४९
इट्ठाणिट्ठवियोगं	७७	४५
इत्थीवेदेवि तहा	३२१	२८७
इदि चदुबंधक्खवगे	५१५	५१८
"उ"		
उक्कडजोगो सण्णी	२१०	१७७
उक्कस्सट्ठिदिबंधो	९४०	८५२
उगुदालतीस सत्त य	४१८	४३७
उगुवीसतियं तत्तो	८३९	७७३
उगुवीसं अट्ठारस	४६५	४७२
उच्चव्वेल्लिदतेऊव्वाऊ	६३७	६१३
उच्चसुच्चं देहं	८४	४७
उच्चुव्वेल्लिदतेऊ	६३६	६१३
उज्जोवो तमतमगे	१६९	१३६
उड्ढतिरिच्छपदाणं	८६३	७९५
उत्तरपयडीसु पुणो	१९६	१५४
उत्तरभंगा दुविहा	८२३	७६५
उदओ तीसं सत्तं	७०२	६०९
उदओ सव्वं चउपण	७२६	६६०
उदधि पुधत्तं तु तसे	६१५	६०२
उदयट्ठाणं दोण्हं	४८२	४९२
उदयट्ठाणं पयडिं	४९०	४९७
उदयस्सुदीरणस्स य	२७८	२४३
उदया इगिपणवीसं	७३३	६६५
उदया इगिपण सग अड	७१२	६५४
उदया इगिवीसचऊ	७३५	६६५
उदया उणतीसतियं	७२४	६६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
उदया चउवीसूणा	६९९	६४९
उदया मदि व खइये	७३४	६६५
उदयेणक्खे चढिदे	८३४	७७३
उदये संकमसुदये	४५०	४६५
उदये संकममुदये	४४०	४५४
उदयं पडि सत्तण्हं	१५६	१२८
उदयं पडि सत्तण्हं	९१५	८३५
उभयधणे संमिलिदे	९०२	८२०
उम्मग्गदेसगो मग्ग	८०५	७४२
उवघादमसग्गमणं	४४	३४
उवघादहीणतीसे	१६७	१३६
उवरदबंधे चदुपं.	६३२	६१०
उवरदबंधेसुदया	७४५	६६९
उवरिमगुणहाणीणं	९४४	८५४
उवरिल्लपंचये पुण	७८८	७१०
उववादजोगठाणा	२१९	१८४
उवसमखइयो मिस्सो	८१३	७४९
उससमभावो उवसम	८१६	७५१
उवसामगा दु सेढिं	५५९	५५५
उवसामगेसु दुगुणं	८४३	७७४
उवसंतखीणमोहे	१०२	५६
उवसंतोत्ति सुराऊ	४४६	४६४
उव्वेलणपयडीणं	४१३	४३५
उव्वेलण विज्झादो	४०९	४३२
उव्वेल्लिददेवदुगे	३६८	३७२
"ऊ"		
ऊणत्तीससयाइं	८९९	७९६
ऊणतीससयाहिय	९०५	५८७
"ए"		
एइंदियमादीणं	८०	४६
एक्क य छक्केयारं एया	४८१	४९१
एक्क य छक्केयारं दस	४८८	४९५
एक्काउस्स तिभंगा	६४५	६१६
एक्कादी दुगुणकमा	८६०	७५२
एक्कारं दसगुणियं	८५२	७८५
एक्कुदयुवसंतंसे	६९०	६४५
एक्के एक्कं आऊ	६४२	६१५
एक्केक्के पुण वग्गे	२२६	१८८
एक्को चेव महप्पा	८८१	८११
एक्कं च तिण्णि पंच य	७९३	७२१
एक्कं व दो व तिण्णि व	५८४	५७५
एकम्हि कालसमये	९११	८३२
एकावण्णसहस्सं	४९३	५०१
एगुणतीसत्तिदयं	६९८	६४९
एगे इगिवीसपणं	५९५	५८१
एगेगं इगितीसे	७४१	६६९
एगेगमट्ठ एगे	६९४	६४८
एगे वियले सयले	७१४	६५५
एदेण कारणेण दु	२७५	२४१
एदे सत्तट्ठाणा	३८६	४१३
एदेसिं ठाणाओ	२४१	२०३
एदेसिं ठाणाणं	२३२	१९८
एयक्ख अपज्जत्त	५३०	५२४
एयक्खेत्तोगाढं	१८५	१४७
एयसरीरोगाहिय	१८६	१४७
एयाणेयक्खेत्तट्ठिय	१८७	१४८
एयंतवड्ढिठाणा	२२२	१८६
एयं पणकदि	१४४	११२
एयं वा पणकाये	३०९	२६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ सं०
एवमडसीदितिदये	७७६	७०४
एवमबंधे बंधे	६४४	६१५
एवं खिगितीसे ण हि	७६७	६९७
एवं तिसु उवसमगे	३८५	४१२
एवं पण छव्वीसे	७७०	७०१
एवं पंचतिरिक्खे	३४७	३३६
एवं माणादितिए	३२३	२९४
एवं सत्तट्ठाणं	३९५	४२०
"ओ"		
ओक्कट्टणकरणं पुण	४४५	४६३
ओघादेसे संभव	८२०	७५५
ओघं कम्मे सरगदि	३१८	२८३
ओघं तसे ण थावर	३१०	२७१
ओघं देवे ण हि णिर	३४८	३४१
ओघं पंचक्खतसे	३४९	३४३
ओघं वा णेरइये	३४६	३३६
ओघे वा आदेसे	१०५	६०
ओदयिया पुण भावा	८१८	७५२
ओराल दुगे वज्जे	४२५	४४५
ओराल मिस्सजोगे	३५३	३५१
ओरालमिस्स तसत्रह	क्षेपक४	७१३
ओरालियवेगुव्विय	८१	४६
ओराले वा मिस्से	११६	७९
ओरालं दंडदुगे	५८७	५७६
ओहिदुगे बंधतियं	७३०	६६३
ओहिं मणपज्जवाणं	७१	४४
ओही केवलदंसण	७३	४४
"अं"		
अंगुलअसंखभागप्प	२३०	१९६
अंगुलअसंखभागं वि	४३४	४५१

गाथा	गा० सं०	पृ सं०
अंतरगातद्दसंखे	२५५	२१५
अंतरमुवरीवि पुणो	२३९	१९९
अंतिमठाणं सुहुमे	५४८	५३८
अंतिमतिय संहडणं	३२	२०
अंतोकोडाकोडी ठिदित्ति	९४५	८५५
अंतोकोडाकोडी ठिदिस्स	१५७	१२८
अंतोकोडाकोडी ठिदिस्स	९१६	८३५
अंतोमुहुत्तकालं	९०८	८२९
अंतोमुहुत्तपंक्ख	४६	३५
अंतोमुहुत्तमेत्ते	९१०	८२९
अंतोमुहुत्तमेत्तो	८९९	८१८
"क"		
कदलीघादसमेदं	५८	३९
कप्पित्थीसु ण तित्थं	११२	७०
कम्मकय मोहवड्ढिय	११	६
कम्मत्तणेण एक्कं	६	५
कम्मद्व्वादण्णं	६४	४१
कम्मसरूवेणागय	१५५	१२७
कम्मसरूवेणागद दव्वं	९१४	८३४
कम्मागमपरिजाणग	६५	४१
कम्माणं संबंधो	४३८	४५४
कम्मुदयज कम्मिगुणो	८१५	७५१
कम्मुवसमम्मि उवसम	८१४	७५०
कम्मे उरालमिस्सं	११९	८२
कम्मे वअणा. उदय	३३२	३१९
कम्मे वाणाहारे. सत्त.	३५६	३५८
कम्मोरालियमिस्सं	५८६	५७६
कम्मं वा किण्हतिए	५४९	५४२
कालो सव्वं जणयदि	८७९	८११
किं बंधो उदयादो	३९९	४२२
केवलणाणावरणं	३९	३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
केवलणाणं दंसण	१०	६
को करइ कंटयाणं	८८३	८१२
को जाणइ णवभावे	८८६	८१३
को जाणइ सत्ताचऊ	८८७	८१३
कोहस्स य माणस्स य	४८६	४६४
"ख"		
खवणं वा उवसमणे	३४३	३३४
खाइय अविरदसम्मे	८३१	७७२
खाइयसम्मो देसे	३२९	३१०
खाओवसमियभावो	८१७	७५२
खिव तस दुग्गदि दुस्सर	३०८	२६५
खीणकसाय दुचरिमे	२७०	२३९
खीणोत्ति चारि उदया	४६१	४७१
"ग"		
गदि आदि जीवभेदं	१२	७
गदिआणुआउ उदओ	२८५	२४६
गदिजादी उस्सासं	५१	३७
गदियादिसु जोग्गाणं	२८४	२४५
गयजोगस्स दु तेरे	६११	५९९
गयजोगस्स य बारे	५९८	५८५
गुडखंडसक्करामिय	१८४	१४६
गुणसंजादप्पयडि	६१२	६०१
गुणहाणि अणंतगुणं	४३५	४५१
गोम्मटजिणिंदचंदं	८११	७४८
गोम्मटसुत्तल्लिहणे	९७२	८७२
गोम्मटसंगहसुत्तं कम्मा.	९६५	८७१
गोम्मटसंगह सुत्तं	९६८	८७१
"घ"		
घम्मे तित्थं बंधदि	१०६	६०

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
घाईतिय उज्जोवं	३६०क	३६१
घादितिमिच्छकसाया	१२४	१०२
घादितियाणं सगसग	२०१	१६२
घादिं व वेदणीयं	१९	१०
घादोणीचमसादं	४३	३४
घादीणं अजहण्णो	१७८	१४१
घादीणं छदुमट्ठा	४५५	४६९
घादीवि अघादिं वा	१७	१०
घोडणजोगोडसण्णी	२१६	१८१
"च"		
चउछक्कदि चउअट्ठं	३६३	३६४
चउवीसट्ठारसयं	७९७	७३५
चउरुदयुवसंतंसे	६८९	६४५
चक्खुम्मि ण साहारण	३२५	२९५
चक्खूण मिच्छसासण	८३०	७७१
चत्तारि तिण्णि कमसो	२४६	२०५
चत्तारि तिण्णि तिय चउ	४५३	४६७
चत्तारि वारमुवसम	६१९	६०३
चत्तारिवि खेत्ताइं	३३४	३२२
चदुगदिमिच्छे चउरो	३५१	३४६
चदुगदिया एइंदी	५९३	५७८
चदुपच्चइगो बंधो	७८७	७१०
चदु बंधे दो उदये	६७८	६३६
चदुरेक्क दु पण पंच य	५५६	५५४
चरिम अपुण्णभवत्थो	२१७	१८२
चरिमदु वीसूणुदयो	७५७	६८९
चरिमे चदु तिदुगेक्कं	६६८	६२६
चरिमं चरिमं खंडं	९५८	८६८
चय धणहीणं दव्वं	९०३	८२०
चारुसुदंसणधरणे	७३९	६६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
"छ"		
छट्ठे अथिरं असुहं	६८	५५
छट्ठोत्ति चारि भंगा	६३४	६१२
छण्णउदि चउसहस्सा	६०६	८२६
छण्णवछत्तियसगइगि	६६३	६४८
छण्णोकसायणिद्दा	२१३	१७८
छण्हं पि अणुक्कस्सो	२०७	१७४
छप्पण उदये उवसं	६८८	६४४
छप्पंचादेयंतं	७६६	७३६
छब्बावीसे चदु इगि	४६७	४७४
छब्वीसे तिगिणाउ	७७८	७०४
छसुसगविहमट्ठविहं	४५२	४६७
"ज"		
जत्थ वरणेमिचंदो	४०८	४३२
जत्तु जदा जेण जहा	८८२	८११
जदि सत्तरिस्स एत्तिग	१४५	११३
जम्हा उवरिमभावा	८६८	८१८
जम्हि गुणा विस्संता	६६६	८७१
जस्स य पाय पसाये	४३६	४५४
जहखादे बंधतियं	७२८	६६२
जह चक्केण य चक्की	३९७	४२०
जाणुगसरीर भवियं	५५	३८
जावदिया वयणवहा	८९४	८१५
जीवत्तं भव्वत्तम	८१६	७५३
जीरदि समयपबद्धं	५	४
जुगवं संजोगित्ता	३३६	३२३
जेट्ठाबाहोवट्टिय	१४७	११५
जेट्ठे समयपबद्धे	१८८	१४८
जेण विणिम्मि य पडिमा	६६६	८७१
जेणुब्भिय थंभुवरिम	६७१	८७२
जेहिं दु लक्खिज्जंते	८१२	७४८
जोगट्ठाणा तिविहा	२१८	१८४
जोगा पयडि पदेसा	२५७	२१६
जोगिम्मि अजोगिम्मि य	७०३	६४६
जोगिम्मि अजोगिम्मि य	८७३	७९६
जंतेण कोद्दवं वा	२६	१४
"ठ"		
ठाणमपुण्णेण जुदं	५२२	५२२
ठिदि अणुभागपदेसा	६१	५१
ठिदि अणुभागाणं पुण	४२६	४५०
ठिदि गुणहाणिपमाणं	६५१	८५६
"ण"		
णउदी चदुग्गदिम्मि य	६२१	६०४
णट्ठा य रायदोसा	२७३	२४१
णत्थि अणं उवसमगे	३९१	४१७
णत्थि णउंसयवेदो	४९७	५०७
णत्थि य सत्तपदत्था	८८५	८१२
णत्थि सदो परदोवि य	८८४	८१२
णभ चउवीसं बारस	४७२	४७८
णभ तिगि णभ इगि	३४२	३३१
णमह गुणरयणभूसण	८९६	८१७
णमिऊण अभयणंदि	७८५	७०९
णमिऊण णेमिचंदं	८७	४६
णमिऊण णेमिणाहं	४५१	४६६
णमिऊण वड्ढमाणं	३५८	३६०
णवगेविज्जाणुद्दिस	३०	२०
णव छक्क चदुक्कं च य	४५९	४७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
णवणउदि सगसयाहिय	४९२	५०१
णवपंचोदय सत्ता	७४०	६६९
णवरि य अपुव्वणवगे	६७७	६३५
णवरि य सव्वुवसम्मे	१२०	९१
णवरि विसेसं जाणे	४४३	४६३
णवरि विसेसं जाणे	८२९	७७०
णवसय सत्तत्तरिहिं	४८९	४९७
णवसासणोत्ति बंधो	४६०	४७१
णरगइणामरगइणा	५२५	५२३
णरतिरिया सेसाउं	१३७	१०६
णलया बाहू य तहा	२८	१९
णं हि सासणो अपुण्णे	११५	७७
णाणस्स दंसणस्स य	८	६
णाणस्स. पढिदमिदि	२०	११
णाणगुणहाणिसला	२४८	२११
णाणावरणचउक्कं	४०	३२
णाणंतरायदसयं	२०९	१७६
णामधुवोदयबारस	५८८	५७६
णामस्स णवधुवाणि य	५२६	५२३
णामस्स बंधठाणा	५४४	५३१
णामस्स य बंधादिसु	७८४	७०८
णामस्स य बंधोदय	६९२	६४८
णामस्स य बंधोदय गु.	६९५	६४९
णामं ठवणा दवियं	५२	३७
णारकछक्कुव्वेल्ले	३७०	३७४
णारयसण्णिमणुस्स	६०७	५९१
णिव्वत्ति सुहुमजेट्ठं	२३४	१९९
णिरयगदिं आउणीचं	३१६	२८२
णिरयतिरयाणुणेरइ	३६४ख	३६६

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
णिरयतिरिक्ख दुवियलं	३३८	३३०
णिरयतिरिक्खसुरा	३३५	३२३
णिरयतिरियाउ दोण्णिवि	३८४	४०७
णिरयाऊ तिरियाऊ	३७०क	३७५
णिरयदुगं तिरियदुगं	३८६क	४१३
णिरयादि जुदट्ठाणे	५५२	५५२
णिरयादि णामबंधा	७११	६५४
णिरयादिसु पयडिट्ठिदि	३४४	३३५
णिरयादिसु भुज्जेगं	३६४क	३६६
णिरयादीण गदीणं	७९	४६
णिरयापुण्णा पण्हं	५१९	५२१
णिरयायुस्स अणिट्ठा	७८	४६
णिरये वा इगि णउदी	६२३	६०६
णिरयेण विणा तिण्हं	५२३	५२३
णिरयेव होदि देवे	१११	६९
णिरयं सासणसम्मो	२६२	२३३
णोचुच्चाणेक्कदरं	६३५	६१२
णेरयियाणं गमणं	५३८	५२९
णोआगमभावो पुण	६६	४२
णोआगमभावो पुण सग	८६	४७
"त"		
तग्गुणगारा कमसो	८६७	७९६
तट्ठाणे एक्कारस	५१४	५१७
तण्णोकसाय भागो	२०४	१७०
तत्तो उवरिमखडा	९९२	८६९
तत्तो कमेण वड्ढदि	९६४	८७०
तत्तो तियट्ठगमेक्कं	६७२	६३१
तत्तो पल्लसलाय	४३२	४५०
तत्थतणऽविरदसम्मो	५३९	५३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
तत्थावरणजभावा	८२५	७६६
तत्थासत्था णारय	६००	५८६
तत्थासत्थो णारय	५३३	५२७
तत्थासत्थं एदि हु	५३४	५२७
तत्थेव मूलभंगा	८२२	७६०
तत्थंतिमच्छि दिस्सय	९३४	८४६
तदियेक्कवज्जणिमिणं	२७१	२३९
तदियेक्कं मणुवगदी	२७२	२३९
तदियो सणामसिद्धो	५६४	५५८
तम्मिस्से पुण्णजुदा	३१२	२७९
तव्वदिरित्तं दुविहं	६३	४१
तस्से वा बंधाउग	३७५ख	३८५
तस बंधेण हि संहदि	५२७	५२४
तसमिस्से ताणि पुणो	५९०	५७७
तह य असण्णी सण्णी	२३६	१९९
तह सुहुम सुहुम जेट्ठं	२३८	१९९
तिण्णि दस अट्ठठाणा	४५८	४७०
तिण्णेणेगे एगेगं	५०९	५१४
तिण्णेव दु बावीसे	५१६	५१९
तित्थयरमाणमाया	३२२	२९१
तित्थण्णदराउदुगं	३७४	३८४
तित्थयरसत्तणारय	५७४	५६८
तित्थसमे णिधि मिच्छेव	३६३क	३६५
तित्थाहारचउक्कं	३७३	३८४
तित्थाह्मरा जुगवं	३३३	३२२
तित्थाहाराणंतो	१४१	१०८
तित्थाहारे सहियं	३७७	३९१
तित्थेणाहारदुगं	५२९	५२४
तित्थयरं उस्सासं	५०	३६
तिदु इगि णउदी णउदी	६०९	५९८
तिदु इगि बंधे अडचउ	६८४	६४१
तिदु इगि बंधेक्कुदये	६७९	६३६
तियउणवीसं छत्तिय	१०४	५९
तिय पणछव्वीसबंधे	७४२	६६९
तिव्वकसाओ बहुमो	८०३	७४०
तिविहो दु ठाणबंधो	५६३	५५८
तिरिय अपुण्णं वेगे	३०६	२६५
तिरिय दु जादि चउक्कं	४१४	४३५
तिरिये ओघो तित्था	१०८	६४
तिरिये ओघो सुरणर	२९४	२५०
तिरियाउग देवाउग	३६६	३६७
तिरिये ण तित्थसत्तं	३४५	३३५
तिरिये यारुव्वेल्लण	४१७	४३७
तिरियेयारं तीसे	४२१	४३८
तिरिये व णरे णवरि हु	११०	६६
तिसु एक्केक्कं उदओ	६६४	६२५
तिसु तेरं दस मिस्से	४९४	५०२
तीसण्हमणुक्कस्सो	२०८	१७६
तीसुदयं विगितीसे	७८३	७०५
तीसे अट्ठवि बंधो	७५१	
तीसं कोडाकोडी तिघादी	१२७	१३०
तीसं बारस उदयु	२७९	२४४
तेउतिगूणतिरिक्खे	२८९	२४७
तेउतिये सुगुणोघं	३२७	३०६
तेउदुगे मणुवदुगं	६१६	६०२
तेउदुगं तेरिच्छे	५४०	५३०
ते चोद्दस परिहीणा	३९०	४१६
तेजदुगं वण्णचऊ	४०३	४२४
तेजदुहारदुसमचऊ	१००	५५
तेजाकम्मेहिं तिये	२७	१८
तेणउदिछक्कसत्तं	७६६	६९७
तेणदीए बंधा	७५४	६८९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
तेरा णभिगि तीसुदये	७६३	६६७
तेराातिये तिदुबंधे	६६१	६४५
तेरा दु णउदे णउदे	७८२	७०४
तेराावदि सत्तसयं	७६४	६६७
तेणवसगसदरिजुदा	७५०	६७८
तेणुवरिमपंचुदये	७६१	६६६
तेणेवं तेरतिये	६८३	६४१
तेवट्ठिं च सायाइं	६२३	८३८
तेवण्णणवसयाहिय	४६८	५०८
तेवण्णा तिसदसहिय	५०२	५१०
तेवत्तरिं सयाइं	८६८	७६६
तेवीसट्ठाणादो	५६६	५६२
तेवीसबंधगेइगि	७६०	६६६
तेवीस बंधठाणे	७६६	७०१
तेवीसादिबंधा	६६६	६४६
तेवीसं पणवीसं	५२१	५२२
तेरट्ठचऊ देसे	६५७	६२२
तेरणवे पुव्वंसे	६८२	६४१
तेरदु पुव्वं वंसा	६६७	६२६
तेरस बारेयारं	५१२	५१६
तेरस सयाणि सत्तरि	५०१	५०६
तेरिच्छा हु सरित्था	८६२	७६५
तेहि असंखेज्जगुणा	२५६	२२२
तं पुण अट्ठविहं वा	७	५
"थ"		
थावरदुग साहारण	२६५	२५१
थिरजुम्मस्स थिराथिर	८३	४७
थिरसुहजससादद्दुगं	१७७	१४०
थीणति थीपुरिसूणा	२६०	२४७
थीणुदयेणुट्ठविदे	२३	१३
थीपुरिसोदयचडिदे	३८८	४१५
थीपुंसंढसरीरं	७६	४५
थूले सोलसपहुदी	७६०	७१२
"द"		
दइवमेव परं मण्णे	८६१	८१५
दव्वतियं हेट्ठुवरिम	२४५	२०५
दव्वे कम्मं दुविहं	५४	३८
दव्वं ठिदिगुणहाराी	६२२	८३७
दव्वं समयपबद्धं	६२४	८३६
दस अट्ठारस दसयं	७६२	७२०
दसगुदये अडवीसति	६८५	६४४
दसचउरिगि सत्तरसं	२६३	२३४
दस णव अट्ठ य सत्त य	४७५	४८४
दस णव णवादि चउतिय	४८०	४६०
दस णव पण्णरसाइं	५१८	५२१
दसय चऊ पढमतियं	६६२	६२४
दसयादिसु बंधंसा	६६५	६२६
दसवीसं एक्कारस	४६८	४७५
दुक्खतिघादीणोघं	१२८	१०४
दुग्गदि दुस्सरसंहदि	३१७	२८२
दुगमणादावदुगं	४०५	४२५
दुगछक्कतिण्णि वग्गे	३८३	४०७
दुग छक्क सत्त अट्ठं	३७६	३६०
दुतिछस्सट्ठणवेक्कार	३६५	३६७
दुविहा पुण पदभंगा	८४४	७८१
दुसु दुसु देसे दोसुवि	८३५	७७३
देवचउक्काहारदु	४००	४२३
देवचउक्कं वज्ज	२१४	१७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
देव जुदेक्कट्ठाणे	५७६	५६६
देवट्ठवोसणरदे	५७२	५६७
देवट्ठवीसबंधे	५७३	५६७
देवाउगं पमत्तो	१३६	१०६
देवा पुरण एइंदिय	१३८	१०७
देवाहारे सत्थं	६०२	५८७
देवे वा वेगुव्वे	११८	८०
देवेसु देवमणुवे	५६२	५५७
देवोघं वेगुव्वे	३१४	२८१
देसरारे तिरिये	६४८	६१८
देसतिये सुवि एवं	३८२	४०५
देसावरणण्णोण्ण	१९८	१५७
देसे तदियकसाया णीचं	३००	२५५
देसे तदियकसाया	२६७	२३९
देसोत्ति हवे सम्मं	१८१	१४४
देहादी फस्संता	३४०	३३०
देहादी फासंता	४७	३५
देहे अविणाभावी	३४	३०
देहोदयेरण सहिओ	३	४
दोगुणहाणीपमाणं	९२८	८४२
दोछक्कट्ठचउक्कं	७१०	६५४
दोण्णि य सत्त य चोद्दस	क्षेपक २	७१३
"ध"		
धुववड्ढी वड्ढंतो	२५३	२१५
"प"		
पचयधरणस्साणयणे	९०४	८२१
पचयस्स य संकलणं	९३१	८४३
पज्जत्तगबितिचपमणु	५३१	५२५
पडपडिहार सिमज्जा	२१	११

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
पडपडि. आहारं देह	६९	४३
पडवीस पहुदी दव्वं	७०	४४
पडिणीगमंतराए	८००	७३७
पडिय मरियेक्कमेक्कू	५८१	५७३
पडिसमयघणेवि पदं	९०५	८२२
पढमकसायाणं च वि	४४८	४६५
पढमचऊसीदिचऊ	७२५	६६०
पढमतियं च य पढमं	५१०	५१४
पढमादिया कसाया	४५	३४
पढमुवसमिये सम्मे	९३	५२
पढमं पढमं खंडे	९५६	८६७
पढमं पढमति चउपण	६६६	६२६
पण्णारकसायभयदुग	४०१	४२३
पण्णरसोलट्ठारस	८६५	७९५
पण्णारसमुणतीसं	११७	७९
पण्णास बार छक्क.	३६४	३६५
पण्णेक्कारं छक्कदि	३९४	४१९
पराचदु सुण्णं णवयं	क्षेपक १	७१३
परा राव इगि सत्तरसं	२६४	२३७
पण राव इगि सत्त	२८१	२४४
पण णव पण भंगा	६४६	६१८
परादाल छस्सयाहिय	५००	५०८
पणदो परागं पणचदु	७०४	६५२
पण बंधगम्मि बारस	४८५	४९४
परामिय सिरसा णेमिं	१	१
पणवण्णा पण्णासा	७८९	७१२
पराविग्घे विवरीयं	२०६	१७२
पणवीसे तिगिराउदे	७७७	७०४
पत्तेग्रपदा मिच्छे	८५७	७६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
पत्तेयाणं उवरिं	८५९	७९२
पयडिट्ठिदि अणुभाग	८९	५०
पयडीएपणुकसाओ	८०६	७४२
पयडी सोल सहावो	२	२
पयलापयलुदयेण य	२४	१४
पयलुदयेण य जीवो	२५	१४
परघाददुगं तेज दु	१७५	१४०
परघादमंगपुण्णो	५९१	५७७
परसमयाणं वयणं	८९५	८१६
परिणामजोगठाणा	२२०	१८५
परिणामो दुट्ठाणो	८३२	७७२
परिहारे बंधतियं	७२७	६६१
पल्लासंखेज्जदिमा	२२४	१८७
पल्लासंखेज्जदिमा	९५४	८६३
पल्लासंखेज्जदिमं	६१७	६०२
पाणवधादीसु रदो	८१०	७४५
पिंडपदा पंचेव य	८५८	७९२
पुढवी आऊ तेऊ	५३५	५२७
पुढवीयादी पंचसु	७१७	६५६
पुण्णतसजोगठाणं	२४७	२०९
पुण्णिदरं विगिविगले	११३	७४
पुण्णेक्कारसजोगे	३५२	३४९
पुण्णेण समं सव्वे	५२८	५२४
पुणरवि देसोत्ति गुणो	८३८	७७३
पुव्वाणं कोडितिभा	१५८	१२९
पुव्वाणं कोडितिभादा	९१७	८३५
पुव्विल्लेसुवि मिलिदे	४७९	४८९
पुव्वं पंचणियट्ठी	८४२	७७४
पुव्वुत्तपणपणाउग	३८०क	३९१
पुव्वं ण चउवीसं	७४३	६६९
पुरिसोदयेण चढिदे अंति	५१३	५१७
पुरिसोदयेण चढिदे बं.	४८४	४५३
पुरिसं चदुसंजलणं	१०१	५६
पंचक्खतसे सव्वं	५४५	५३३
पंचण्हं णिद्दाणं	७२	४४
पंचणव दोण्णि अट्ठा	२२	१३
पंचणव. उदयपयडीओ	३६	३१
पंचणवदोण्णि छव्वी.	३५	३०
पंचणव. सत्तपयडीओ	३८	३१
पंचविध चदु विधेसु य	५१७	५१९
पंचसहस्सा बेसय	५०४	५११
पंचादि पंचबंधो	६५८	६२२
पंचिंदिएसु ओघं	११४	७६
पंचेक्कारस. इगिणवदालं	२८३	२४४
पंचेक्कारसबावीस	२७७	२४३
पुंसंढूणित्थिजुदा	२९६	२५३
पुंबंधद्धा अंतो	२०५	१७१
"फ"		
फड्डयगे एक्केक्के	२२५	१८८
फड्डयसंखाहि गुणं	२२९	१९१
"ब"		
बहुभागे समभागो	१९५	१५३
बहुभागे सम. बंधा	२००	१६२
बाणउदि णउदि सत्ता	६२६	६०९
बाणउदि णउदि सत्तं	७६२	६९६
बाणउदि णउदि सत्तं	७३६	६६५
बाणउदीए बंधा	७५५	६८९
बाणउदि णउदिचऊ	७०७	६५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
बाणउदी एउदिचऊ	७४६	६७८
बादरणिव्वत्तिवरं	२३५	१९९
बादालं तु पसत्था	१६४	१३५
बादालं पणुवीसं	६५०	६२१
बादालं बेण्णिसया	८५३	७८५
बावत्तरि अप्पदरा	५७५	५६८
बावत्तरि तिसहस्सा	९००	८१९
बावीसबंध चदुतिदु	६८६	६४४
बावीसमेक्कवीसं	४६४	४७२
बावीसमेक्कवीसं	४६३	४७२
बावीसयादिबंधे	६६१	६२४
बावीसे अडवोसे	६८०	६४०
बावीसेण णिरुद्धे	६७४	६३५
बावीसं दयचऊ	६५५	६२२
बारचउ ति दुगमेक्कं	८३६	७७३
बारट्ठट्ठछत्तीसं	८५०	७८५
बारस य वेदणीये	१३९	१०८
बारस सय तेसीदी	४८७	४९४
बीसीदिं वज्जित्ता	६२४	६०६
बासीदे इगिचउपण	७७३	७०१
बासूप बासूअ वरट्ठिदीओ	१४८	११७
बिगूण णव चारि अट्ठं	३६२	३६४
बिदियगुणे अणथीणति	९६	५४
बिदियस्सवि पणठाणे	३८०	३९१
बिदियादिसु छसु पुढ	२९३	२४९
बिदियावरणे णवबंध	६३१	६१०
बिदिये तुरिये पणगे	३७१	३७५
बिदिये बिदिय णिसेगे	१६२	१३२
बिदिये बिदिय णिसेगे	९२१	८३७
बिदिये बिगिपणगयदे	४९९	५०८
बिदियं बिदियं खंडं	९५७	८६८
बीइंदियपज्जत्त	२५१	२१४
बंधतियं अडवीस दु	७२१	६५८
बंधपदे उदयंसा	६६०	६२४
बंधण पहुदि समण्णिय	८२	४७
बंधातिय पण छण्णव	७०६	६५२
बंधुक्कट्टणकरणं	४४४	४६३
बंधुक्कट्टणकरणं	४३७	४५४
बंधुदये सत्तपदं	६७३	६३४
बंधे अधापवत्तो	४१६	४३६
बंधे संकामिज्जदि	४१०	४३४
बंधोदयकम्मंसा	६३०	६१०
बंधंदेवाउगुवसम	३७५ क	३८५
"भ"		
भत्तपइण्णाइविही	६०	४०
भत्तपइण्णाइंगिणी	५९	४०
भयदुगरहियं पढमं	७२४	७२३
भयसहियं य जुगुञ्छा	४७७	४८४
भव्विदराणाण्णदरं	८५६	७९१
भव्विदरुवसमवेदग	३२८	३१०
भव्वे सव्वमभव्वे	५५०	५४६
भव्वे सव्वमभव्वे	७३२	६६४
भवणतियाणं एवं	५४३	५३१
भवियंति भवियकाले	६२	४०
भिण्ण मुहुत्तो णर	१४२	१०८
भुजगारप्पदराणं	५७१	५६७
भुजगाराअप्पदरा	५५४	५५४
भुजगाराअप्पदरा	५८०	५७३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
भुजगारे अप्पदरे	५८२	५७४
भूदाणुकंपवदजो	८०१	७३८
भूबादरतेवीसं	५६५	५५८
भूबादरपज्जत्ते	५२४	५२३
भूदं तु चुदं चइदं	५६	३९
भेदे छादालसयं	३७	३१
भेदेण अवत्तव्वा	४७४	४८३
भोगभुमा देवाउं	६४०	६१४
भोगे सुरट्ठवीसं	५६७	५६२
भोगं व सुरेणरचउ	३०४	२६२
भंगा एक्केक्का पुण	३८७	४१४
"म"		
मज्झडकसायसंठं	३८६ख	४१३
मज्झे जीवा बहुगा	२४४	२०५
मज्झे थोवसलागा	१४९	१२२
मणवयणकायदाणग	८८८	८१४
मणवयणकायवक्को	८०८	७४३
मणिवचिबंधुदयंसा	७१८	६५७
मणुओरालदुवज्जं	१६६	१२५
मणुवणिरयाउगे	३७९क	३९१
मणुवे ओघो थावर	२९८	२५४
मणुसिणिएत्थीसहिदा	३०१	२५९
मणुसोघं वा भोगे	३०२	२६०
मरणूणम्मि णियट्टी	९९	५५
मिच्छ चउक्के छक्कं	५०३	५११
मिच्छत्तस्स य उत्ता	९३३	८४४
मिच्छत्त हुंडसंढा	९५	५४
मिच्छत्ताणण्णदरं	७९५	७३१
मिच्छतियसोलसाणं	४४७	४६४
मिच्छतिये तिचउक्के	८२१	७५६
मिच्छतिये मिस्सपदा	८४६	७८२
मिच्छत्तं अविरमणं	७८६	७०९
मिच्छदुगयदचउक्के	८३३	७७२
मिच्छदुगे मिस्सतिये	८२४	७६६
मिच्छदुगे मिस्सतिये	४९१	४९७
मिच्छमणंतं मिस्सं	२९२	२४८
मिच्छमपुण्णं छदो	२९९	२५५
मिच्छस्सठाणभंगा	५६८	५६३
मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य	४४९	४६५
मिच्छस्संतिमणवयं	१६८	१३६
मिच्छाइट्ठिप्पहुदिं	८६६	७९६
मिच्छादि गोदभंगा	६३८	६१३
मिच्छादि ठाणभंगा	८४०	७७३
मिच्छादीणं दुतिदुसु	८६४	७९५
मिच्छादुवसतोत्ति य	४६२	४७२
मिच्छूणिगिवीससयं	४२७	४४६
मिच्छे अट्ठुदयपदा	८४७	७८२
मिच्छे पण मिच्छत्तं	क्षेपक ३	७१३
मिच्छे परिणामपदा	८४८	७८२
मिच्छे वग्गसलाय	९२५	८३९
मिच्छे मिच्छादावं	२६५	२३९
मिच्छे सम्मिस्साणं	४१२	४३५
मिच्छे सासणअयदे	४९५	५०४
मिच्छो हु महारम्भो	८०४	७४१
मिच्छं मिस्सं सगुणे	४७६	४८४
मिस्सम्मि तिअंगाणं	५८९	५७७
मिस्साविरदमणुसट्ठा	५३७	५२८
मिस्साविरदे उच्चं	१०७	६०
मिस्साहारस्सयया क्षेपक.	५६०	५५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
मिस्सूणपमतंते	४५६	४६६
मिस्से अपुव्वजुगले	६२९	६०९
मूलुत्तरपयडीणं	६७	४२
मूलुत्तर. णामादिचउ	६८	४३
मूलुत्तरपयडीणं बंधो	६२७	६०८
मूलोघं पुंवेदे	३२०	२८६
मूलुण्हपहाअग्गी	३३	२१
मोहस्स य बंधोदय	६५२	६२१
मोहे मिच्छत्तादि	२०२	१६७
"व"		
वग्गसलायेणवहिद	९२६	८४१
वज्जयणं जिणभवणं	९७०	८७२
वज्जं पुंसंजलणंति	४२८	४४६
वण्णचउक्कमसत्थं	१७०	१३८
वरइंदणंदिगुरुणो	३९६	४२०
वामे चउदस दुसु दस	८५१	७८५
वामे दुसु दुसु दुसु तिसु	८३७	७७३
विग्गहकम्मसरीरे	५८३	५७५
विदियं तेरस बारस ठाणं	३९०क	४१७
विवरीयेणप्पदरा	५६९	५६३
विरियस्स य णोकम्मं	८५	४७
विसवेयणरत्तक्खय	५७	३९
वीसं इगिचउवीसं	५९२	५७७
वीसण्हं विज्झादं	४२३	४३८
वीसदु'चउवीसचऊ	५९७	५८१
वीसादिसु बंधंसा	७४६	६७७
वीसादीणं भंगा	६०३	५८७
वीसुत्तर छच्च सया	६०४	५८७
वीसुदये बंधो ण हि	७४७	६७८
वीसं छडणववीसं	७५९	६८९
वेगुव्वअट्ठरहिदे	३६९	३७२
वेगुव्वछपणसंहदि	३३१	३१५
वेगुव्वतेजथिरसुह	२९१	२४७
वेगुव्वे तम्मिस्से	७२०	६५८
वेगुव्वं वा मिस्से	३१५	२८२
वेदकसाये सव्वं	७२२	६५९
वेदगजोग्गे काले	६१४	६०२
वेदणिये अडभंगा	६५१	६२१
वेदणियगोदघादीणे	४९	३६
वेदतिय कोहमाणं	२६९	२३९
वेदादाहारोत्ति य	३५४	३५२
"र"		
रसबंधज्झवसाण	९६३	८६९
रागजमं तु पमत्ते	८२६	७६६
रिणमंगोवंगतसं	३०७	२६५
रूऊणद्धाणद्धे	९३०	८४२
रूऊणण्णोण्णब्भ	९२९	८४२
रूवहियडवीससया	८४१	७७४
"ल"		
लघुकरणं इच्छंतो	५७०	५६६
लद्धीणिव्वत्तीणं	२४०	२००
लिंगकसाया लेस्सा	८२८	७७०
लोगाणमसंखपमा	९५२	८६०
लोगाणसंखसिदा	९५५	८६४
लोहस्स सुहुमसत्तरसा	१४०	१०८
लोहेक्कुदओ सुहुमे	६५९	६२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
"स"		
सइउड्ढिया पसिद्धी	८६३	८१५
सगपज्जत्ती पुण्णे	२२१	१८६
सगवीसचउक्कुदये	७६५	६९७
सगवीसे तिगिणउदे	७७९	७०४
सगसगखेत्तगयस्स य	१८९	१४९
सगसगगदीणमाउं	६४१	६१५
सगसगसादिविहीणे	१९०	१५०
सगसंभवधुवबंधे	४६६	४७३
सच्चाणुभयं वयणं	क्षेपक ७	७१३
सच्छदिट्ठीहिंवियप्पियाणि	८८९	८१४
सगचउपुव्वंवंसा	६६३	६२४
सण्णाणपंचयादी	३२४	२९५
सण्णाणे चरिमपणं	५४७	५३७
सण्णि असण्णि चउक्के	१४६	११४
सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य	६०१	५८६
सण्णिम्मि सव्वबंधो	७०९	६५३
सण्णिस्स दु हेट्ठादो	१५०	१२३
सण्णिस्स मणुस्स य	५३६	५२८
सण्णिस्सुववादवरं	२३७	१९९
सण्णी छस्संहडणो	३१	२०
सण्णीवि तहा सेसे	५४१	५३०
सत्तण्ह गुणसंकम	४२२	४३८
सत्ततिगं आसाणे	३७२	३८३
सत्तपदे बंधुदया	६६९	६३०
सत्तरस पंचतित्था	१५१	१२५
सत्तरसादि अडादी	६७१	६३१
सत्तरसुहुमसरागे	२१२	१७८
सत्तरसे अडचदुवी	६८१	६४०
सत्तरसेकग्गसयं	१०३	५८
सत्तरसेक्कारखचदु	२७६	२४३

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
सत्तरसेक्कार खतिय	२८२	२४४
सत्तरसंणवयतियं	६५६	६२२
सत्तरसं दसगुणिदं	८५४	७८५
सत्ताबाणऊदितियं	७१३	६५४
सत्तावीसहियसयं	४७१	४७८
सत्ती य लदा दारू	१८०	१४३
सत्तुदये अडवीसे	६८७	६४४
सत्तेताल धुवावि य	४०४	२२५
सत्तेव अपज्जत्ता	७०५	६५२
सत्ते बंधुदयाचदु	७५३	६८८
सत्तं तिणउदी पहुदी	७४८	६७८
सत्तं दु णउदी णउदी	७५२	६७८
सत्तं समयपबद्धं	९४३	८५४
सत्थगदीतसदसयं	४२०	४३८
सत्थत्तादाहारं	६१३	६०१
सत्थाणं धुवियाणग	१७९	१४२
सम्मत्तूणुव्वेल्लण	४२६	४४५
सम्मत्तं देसजमं	६१८	६०३
सम्मविहीणुव्वेल्ले	४२४	४४३
सम्मेव तित्थबंधं	९२	५१
सम्मो वा मिच्छो वा	१७६	१४०
सम्मं मिच्छं मिस्सं	४११	४३४
समचउरवज्जरिसहं	४२	३३
समयट्ठिदिगो बंधो	२७४	२४१
समविसमट्ठाणाणि य	६२५	६०६
समयपबद्धपमाणं	९४२	८५३
सयलरसरूवगंधे	१९१	१५१
सयलंगेक्कंगेक्कं	८८	४९
सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ	१३४	१०५
सव्वपरट्ठाणेण य	५७९	५७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०	गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
सव्वस्सेक्कंरूवं	४३०	४५०	सामण्ण तित्थकेवलि	५२०	५२१
सव्वसलायाणं	६२७	८४१	सामण्ण तिरिय पंचि	१०६	६४
सव्वाउबंधभंगे	६४७	६१८	सामण्ण सयल वियलवि	५६४	५७८
सव्वाओ दु ठिदीओ	१५४	१२७	सासण अयदपमत्ते	४६६	५०५
सव्वापज्जत्ताणं	५८५	५७५	सासण पमत्तवज्जं	५५७	५५५
सव्वावरणं दव्वं	१६७	१५६	सासण मिस्से देसे	३६१	३६२
सव्वावरणं दव्वं	१६६	१६२	सिद्धतुदयतड्डुगय	९६७	८७१
सव्वासिं पयडीणं	९३२	८४४	सिद्धाणंतिम भागं	४	४
सव्वुक्कस्सठिदीणं	१३५	१०६	सिद्धे विसुद्ध णिलये	९१३	८३४
सव्वुवरिमोहणीये	६४८	८५६	सिद्धेसु सुद्धभंगा	८७४	७९६
सव्वे जीवपदेसे	२२८	१९०	सीदादि चउट्ठाणा	६२२	६०५
सव्वं तिगेग सव्वं	३६०	३६१	सीदादि चउसुबंधा	७५८	६८९
सव्वं तित्थाहारूं भऊण	६१०	५९८	सुक्के सदरचउक्कं	१२१	९१
सव्वं तिवीसछक्कं	७१९	६५७	सुण्णं पमादरहिदे	क्षेपक ५	७१३
सव्वं सयलं पढमं	६७०	६३१	सुरणरतिरियोरालिय	४०६	४२६
सरगदि दु जसादेज्जं	२९७	२५३	सुरणरसम्मे पढमो	६२०	६०४
सरिसायामेणुवरिं	२३१	१९७	सुरणिरय विसेसणरे	५९६	५८१
सरिसासरिसे दव्वे	५३	३७	सुरणिरयाऊणोघं	१३३	१०४
साणे तेसिं छेदो	३१३	२७९	सुरणिरयाऊ तित्थं	४०२	४२४
साणे थीवेद छिदो	३१९	२८३	सुरणिरयाणरतिरियं	६३९	६१४
साणे पण इगिभंगा	३७५	३८५	सुरणिरये उज्जोवो	१७३	१३९
साणे सुराउ सुरगदि	३२६	३०४	सुहुमगलद्धिजहण्णं	२३३	१९९
सादासादेक्कदरं	६३३	६११	सुहुमणिगोद अपज्जत्त	२१५	१८१
सादि अणादी धुव.	१२२	१००	सुहुमणिगोद अप. पज्जत्त	२५६	२१६
सादि अणादी धुव.	९०	५०	सुहदुक्खणिमित्तादो	१९३	१५२
सादी अबंधबंधे	१२३	१०१	सुहपयडीण विसोही	१६३	१३४
सादं तिण्णेवाऊ	४१	३३	सुहमस्स बंधघादी	४१६	४३८
सामण्ण अवत्तव्वो	४७०	४७६	सुहुमे सुहमो लोहो	क्षेपक ६	७१३
सामण्ण केवलिस्स	६०६	५९१	सेवट्टेण य गमइ	२९	२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा	गा० सं०	पृ० सं०
सेढि असंखेज्जदिमो	२५८	२१७
सेढिय संखेज्जदिमा	२५२	२१४
सेसे तित्थाहारं	१२५	१०२
सेसाणं पज्जत्तो	१४३	१०८
सेसाणं सगुणोघं	३३०	३१५
सोमे तिहुवणमहियो	३५७	३५९
सोलट्ठेक्किगिछक्कं	३३७	३२४
सोलसपणवीसणभं	९४	५३
सोलस बिसदं कमसो	७९८	७३५
सोहम्मोत्ति य तावं	१७४	१३९
संकमणाकरणूणा	४४१	४६२
संखाउगणरतिरिये	२८६	२४६
संखेज्जसहस्साणिव	९४६	८५५
संजलण भाग बहुभाग	२०३	१६८
संजलण सुहुमचोद्दस	१५३	१२६
संजोगमेवेतिवदंति	८९२	८१५
संठाण संहदीणं	१२९	१०४
संठाणे संहडणे	५३२	५२७
संठाणे संहडणे	५९९	५८६
संढित्थि छक्कसाया	३३९	३३०
संतोत्ति अट्ठसत्ता	४५७	४६९
संताणकमेणागय	१३	७
"ह"		
हस्सरदि उच्चपुरिसे	१३२	१०४
हस्सरदि पुरिसगोददु	४०७	४२६
हारदु सम्मं मिस्सं	३५०	३४६
हारदु हीणा एवं	३०३	२९१
हारं अधापवत्तं	४३१	४५०
हेट्ठिमखंडुक्कस्स	९५९	८६८
होंति अणियट्टिणो ते	९१२	८३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"टीकायामुद्धृत गाथासूचि"

पृ० सं०	गाथानुक्रम	अन्यत्र कहां है
७१८	अणमिच्छ विदिय	प्रा. पं. सं. शतक गा. ९५ पृ. ११०
७१९	अणमिच्छाहार दुगूणा	प्रा. पं सं. शतक गा. ९७ पृ. ११२
७१९	आहारे कम्मूणा	प्रा. पं. सं. शतक गा. १०० पृ. ११२
५६३	इक्कं बंधइ णियमा	प्रा. पं. सं. पृ. १९८
५५९	इगितीसंता बंधइ	प्रा. पं. सं. पृ. १९६
५६३		१९८
७१७	इत्थि णउंसयवेदे	प्रा. पं सं. शतक गा. ८९ पृ० १०९
७४९	उदयेण उवसमेण	पंचास्तिकाय गा. ५६
७१५	ओरालिय आहारदुगूण	प्रा. पं. सं. शतक गा. ८४ पृ. १०८
७१८	कम्मोराल दुगाइं	प्रा. पं. सं. शतक गा. ९४ पृ ११०
५५९	जस कित्ती बंधंतो	प्रा. पं. सं. पृ. १९६
७१६	तस पंचक्खे सव्वे	प्रा. पं. सं. शतक गा. ८७ पृ. १०९
७१८	तेजतिय चक्खुजुगले	प्रा. पं. सं. शतक गा. ९६ पृ. १११
७४७	दंसणणाण चरित्ताणि	पंचास्तिकाय गा. १६४
७३८	पडिणायाइ हेऊ	प्रा पं. सं गा. २१६ पृ. १७४
६९९	पणुवीसाई पंच य	प्रा. पं. सं गा. ४३७ पृ. ५००
८२१	पदमेगेण विहीणं	त्रिलोकसार गा. १६४
३	बंधं पडि एयत्तं	सर्वार्थसिद्धि अ. २ सू. ७ टीका
४५६	बन्धं प्रति भवत्यैक्य	तत्त्वार्थसार अ. ५ श्लोक १८
७१७	मणपज्जे केवल दुवे	प्रा. पं. सं. शतक गा. ९२ पृ. ११०
७१७	मदि-सुअ-अण्णाणे	प्रा. पं सं. शतक गा. ९० पृ. ११०
७१७	मदि-सुअ-ओहि	प्रा पं सं. शतक गा. ९१ पृ ११०
७१६	मिच्छत्ताइचउट्ठय	प्रा पं सं. शतक गा ८६ पृ. १०९
७१९	मिच्छादि चउक्केयार	प्रा पं सं. शतक गा. ९९ पृ. ११२
७१९	मिच्छाहारदुगुणा	प्रा पं. सं. शतक गा. ९८ पृ ११२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ० सं०	गाथानुक्रम	अन्यत्र कहां है
२२१	मुखमर्द्धं शरीरस्य	
२८	रसा द्रवतं ततो मांसं	धवल पु. ६ पृ. ६३
२८	वात पित्तं तथा श्लेष्मा	
८४८	विरलदरासीदोपुण	त्रिलोकसार गा. ११०
८५१	विरलदरासीदोपुण	त्रिलोकसार गा. १११
७१६	वेउव्वजुयलहीणा मणुए	प्रा. पं. सं. गा. ८५ पृ. १०८
८	शूरोडसि कृत विद्यो	
७४७	सरागसंयमश्चैव	तत्त्वार्थसार अ ४ गा. ४३
७१८	सामाइय छेएसु	प्रा. प. सं गा ८३ पृ ११०
६००	सो तेण पंचमत्ताकालेण	भगवतीआराधना गा. २१२०
७१६	संजलणणोकसाया	प्रा. पं. सं. गा. ८८ पृ १०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"विशिष्ट शब्दसूचि"

"अ"

अकालमरण २८
अक्रियावादी ८१२
अघातिकर्म ६
अङ्गोपाङ्ग
अधःकरण ८२१, ८२८
अधःप्रवृत्तभागहार ४३२, ४३३
अध्रुव ५०,५१,१०१,१०३, १४२,१४३,१७४
अनन्तानुबन्धी २४,३४,३५,१६९, १७०
अनादि ५०.५१,१००–१०३, १४१–१४३, १७४
अनिवृत्तिकरण ४६५, ८३२, ८३३
अनुकृष्टि ८२२, ८२९
अनुत्पादानुच्छेद ५३
अनुभाग १३४
अनुभागकाण्डक ८३१
अनुभागबंधाध्यवसायस्थान २२५
अन्तराय ६, १०, ११, १२, १३
अन्योन्याभ्यस्तराशि ८३७
अप्रतिपक्षप्रकृति १०२
अपरिवर्तमानमध्यमपरिणाम १४१
अपूर्वकरण ८२९
अभयनन्दि आचार्य ४५४
अभव्य २२, ७५३, ७५४
अमूर्त ७५४, ७५५
अल्पतरबन्ध ४६७, ४७६, ५५४, ५५८
अवक्तव्यबन्ध ४६८, ४७६, ५५४, ५५८
अवलम्बनकरण ४, १३०, ६४०
अवस्थितबन्ध ४६७, ४७६, ५५४, ५५८
अविभागप्रतिच्छेद १८८, १८९, १९१–१९३
असंक्षेपाद्धा १२९
असातावेदनीय ९, १४
अस्थिर अनुभाग १४३, १४४, १४५
अज्ञानवाद ८१२

"आ"

आत्मवाद मिथ्यात्व ८११
आतप २१
आयु ६, ७, १०-१२, १६, १७, ६१४
आबाधा ११४, ११७, १२१, १२४, १२७-१३०, ८३४, ८३५
आबाधाकाल ८३४, ८३५

"इ"

इतरेतराश्रय २
इंगिनीमरण ४०

"ई"

ईश्वरवादमिथ्यात्व ८११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"उ"

उच्चगोत्र ८, २४६
उत्कर्षण-अपकर्षण भागाहार ४५१
उत्पन्नस्थान सत्त्व ३५१
उत्पादानुच्छेद ५३
उदय २३३-२४३, ४५९, ४६०
उदयआबाधाकाल ८३५
उद्वेलना ३४६, ३४९, ६०१, ६०२, ६०३
उद्वेलनभागाहार ४३२, ४३३
उद्योत २१
उदीरणा २४३-२४५, ४६०
उदीरणाआबाधाकाल १३०, ८३६
उपघातु २८
उपपादयोग १८४, १८५, १८७, १८८, २०३
उपशम ३२५-३२७, ३३४, ३३५
उपशामनाकरण ४६०, ४६२
उपशमसम्यक्त्व ६०२

"ए"

एकक्षेत्र १४७
एकान्तानुवृद्धियोग १८६, १८७, २०३

"औ"

औदयिक भाव ७४८
औपशमिकभाव ७४८

"क"

कदलीघातमरण ३९
कनकनन्दि आचार्य ३१७, ३२०
करणसूत्र (गणित) ७३६
कर्मपद ५२१
कालवाद मिथ्यात्व ८११
क्रियावादीमिथ्यात्व ८१०
केवलीसमुद्घात ५७६

"ग"

गति आगति ५२९-५३१
गुणश्रेणि ८३२
गुणसंक्रमण भागाहार ४३२, ४३३
गुणस्थानसंक्रमण ५५४, ५५५, ५५६
गुणहानि १८९, १९०, १९१, १९४, १९५
गुणहानि आयाम ८३७
गोत्रकर्म ६, ७, ८, १०, ११, १२, ६१२, ६१३

"घ"

घातियाकर्म ६

"च"

चय १३२, १३३
चूलिका ४२१
च्यावित ३९
च्युत ३९

"ज"

जातिपदभंग ७८१
जीवत्व ७५३, ७५४, ७५५
जीवपद ५२१

"त"

तद्व्यतिरिक्त ४१
त्यक्त-त्यक्त ३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर (तीनकल्याणक) ३९३
तीर्थंकर (उदय) ५७७
तिर्यंगेकादशप्रकृति ४३५

"द"

दर्शनावरणकर्म ६, ११, १२, १३, ४७०, ४७१, ४७२
द्रव्यकर्म ५
दसशलाका ८३७
दारु १४३, १४४, १४५
देशघाति ३२, १४३, १४४
दैववादमिथ्यात्व ८१५
दो गुणहानि ८३७

"ध"

धर्मकथा ४९
धातु (सात) २८
ध्रुवबन्ध ५०, ५१, १००-१०३, १४१-१४३, १७४
ध्रुवबंधप्रकृति (नामकर्म) ५२४

"न"

नवकबन्ध ३३४
नानागुणहानि ८३७
नामकर्म ६, ७, १०, ११, १२ १६, १७
नामकर्मध्रुवप्रकृति ५२४
नामनिक्षेप ३७
निकाचित ४६२
निद्रा १४
निद्रानिद्रा १३
निधत्ति ४६१, ४६२
नियतिवादमिथ्यात्व ८११
निर्जरा ४, ५
निरंतर बन्ध ४२२, ४२३
निवृत्तिगुणस्थान ५६
निषेक १३१-१३४, २२८
निषेकरचना १३१-१३४, ८३६-८५२
निषेकहार (छेद) ८४२
निक्षेप ३७
नीचगोत्र ८

"प"

पंचभागाहार ४३२
परिवर्त्तमान मध्यमपरिणाम १४१
परिणामयोग १८४, १८५
प्रकृति २, २१७-२२२
प्रचला १४
प्रचला प्रचला १४
प्रत्यय ७०९
प्रदेशबन्ध १४७
प्रायोग्यमरण ४०
पाप ३४
पारिणामिकभाव ७४८
पुण्य ३३
पुरुषार्थवाद मिथ्यात्व ८१५

"फ"

फालि ४३५

"भ"

भक्तप्रत्याख्यान ४०
भव्यत्वभाव ७५३, ७५४
भावकर्म ५
भावनिक्षेप ४१, ४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुजाकार ४६७, ४७६, ५५४, ५५८

"म"

मरण ५५६, ५५७
मिथ्यात्व १४, १५, २३
मूर्तिक ३, ७५४, ७५५
मोहनीय ६, ११, १२, १६ व ४७२-५२१

"य"

योगस्थान १९१-२०३, २१४-२१७

"व"

वर्ग १८८, १८९, १९१, १९२, १९३
वर्गणा १८८, १८९, १९१ १९२, १९३, १९४, १९५
वस्तु ४९
व्युच्छित्ति ४२४
विध्यातसंक्रमभागहार ४३२, ४३३
विशुद्ध १३४
विसयोजना ३२४, ६०३, ६०४
वीरनंदि आचार्य ४२०
वेदकसम्यक्त्वकाल ६०२
वेदनीय ६, ९, १०, ११ १२
वैनयिकमिथ्यात्व ८१४

'ल'

लता अनुभाग १४३, १४४, १४५
लेश्या ५११
लोकवादमिथ्यात्व ८१५

"श"

शैल अनुभाग १४३, १४४, १४५

"स"

सत्ता (कर्म) ४, ५, ३२२-३५७ ८५४
सत्त्वस्थान व भंग ३६०-४२०
सप्रतिपक्ष प्रकृति १०२
समयप्रबद्ध ४, १५१, २१४, २२६ २२९, ८५३
सम्यक्त्वप्रकृति १४, १५, २३
सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति १४, १५, २३
सर्वघाति ३१, १४३, १४४, १४५
सर्वपदभंग ७८१
सर्वसंक्रमण भागाहार ४३२, ४३३
संक्रमण ४३२
संक्लेश १३४
संयोगवादमिथ्यात्व ८१५
संहनन १९, २०
स्तव ४९
स्तुति ४९
स्त्यानगृद्धि १३
स्थान ४६६
स्थापनानिक्षेप ३८
स्थितिआयाम ८३७
स्थितिकाण्डक ८३१
स्थितिबन्ध १०३ - १२६, १२७ २२२, ८३४-८७०
स्थितिबंधाध्यवसायस्थान २२२, ८५५
स्पर्धक १८८, १८९, १९१-१९५, २१४
स्वभाववादमिथ्यात्व ८१२
स्वस्थानसत्त्व ३५१
सातावेदनीय ९, १४, ४६७
सादि ५०, ५१, १००-१०३, १४१ से १४३, १४८-१५०, १७४
सादिबंध ५०, ५१, १००-१०३
सान्तरबन्ध ४२२-४२३
सिद्ध ७५३, ७५४
सिद्धान्त चक्रवर्ती ४२०

"क्ष"

क्षयदेश ४६४
क्षायिकभाव ७४८
क्षायोपशमिकभाव ७४८

'त्र'

त्रिकोणयंत्र २२९-२३२, ८५४

"ज्ञ"

ज्ञानावरणकर्म ६, ११, १२, १३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"लक्षणावलि"

पृष्ठ	गाथा		
१	९ टीका	अघातिया—	जीवके देवत्वगुणको नहीं घातनेवाले कर्म अघातियां हैं (ज० ध० पु० १ पृ० ६७)
५०,१०३	९०,१०३ टीका	अध्रुवबन्ध—	जिस बन्ध का अभाव हो जावेगा वह अध्रुवबन्ध है।
८१८	८९८ टीका	अध:प्रवृत्तकरण—	उपरितनसमयवर्ती भाव (परिणाम) अधस्तनसमयसम्बन्धी भावोंके समान होते हैं इसलिए अध:प्रवृत्तकरण नाम अन्वर्थ है।
४३३	४०९ टीका	अध:प्रवृत्तसंक्रमण-भागहार	बन्धप्रकृतियोंका अपने बन्धके सम्भव विषयमें जो प्रदेशसंक्रम होता है उसे अध:प्रवृत्तसंक्रम कहते हैं। उसका प्रतिभाग पल्यका असंख्यातवांभाग है।
२४	३३ टीका	अनन्तानुबन्धी	अनन्तसंसारका कारण होनेसे मिथ्यात्व अनन्त है, उस मिथ्यात्वकी जो चिरसङ्गिनी (अनुबन्धिनी) है वह अनन्तानुबन्धीकषाय है।
५०,१०१	९०,१२३ टीका	अनादिबन्ध	अनादिकालसे संततिरूप जिस बन्धका अभाव नहीं हुआ है, वह अनादिबन्ध है।
८२२	९०५ टीका	अनुकृष्टि	'अनुकर्षणमनुकृष्टि:' परिणामोंकी परस्पर समानता का विचार करना, यह अनुकृष्टिका एक अर्थ है।
५३	९४ टीका	अनुत्पादानुच्छेद	यह पर्यायार्थिकनयका विषय है। जहां सत्त्व नहीं वहां अभाव है। भावकी उपलब्धि होनेपर अभाव का विरोध है, क्योंकि सद्भावके निषेधबिना अभाव नहीं हो सकता।
१४१	१७७ टीका	अपरिवर्तमान-मध्यमपरिणाम	जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धिसे प्रतिसमय बढ़ते ही जावें या घटते ही जावें पुन: पूर्वावस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

			को प्राप्त न हो उन्हें अपरिवर्तमानपरिणाम कहते हैं।
४७६	४७० टीका	अवक्तव्यबन्ध	पूर्वमें विवक्षितकर्मका बन्ध नहीं होता था, किन्तु बादमें होने लगा वह अवक्तव्यबन्ध है। जैसे उपशान्तमोह गुणस्थानमें मोहनीयकर्मका बन्ध नहीं होता था वहां से गिरनेपर मोहनीयकर्मका बन्ध होने लगा वह अवक्तव्यबन्ध है।
१३०	१५६ टीका	अवलम्बनकरण	परभवसम्बन्धी आयुकी उपरिमस्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षणद्वारा नीचे (आबाधाकालके बाहर) पतन करना अवलम्बनकरण है। (ध० पु० १० पृ० ३३०-३१)
४६४	४४६ टीका	अवलम्बनाकरण	परभवसम्बन्धी आयुका अपकर्षण होनेपर भी उसका पतन आबाधाकालके भीतर न होकर आबाधासे ऊपर स्थित स्थिति-निषेकोंमें ही होता है अतः अपकर्षणसे भिन्न अवलम्बनाकरण है।
४७६,५५८	४६९,५६४	अवस्थितबन्ध	भुजाकार या अल्पतरबन्ध होनेपर जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है पश्चात् उतनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होवे वह अवस्थितबन्ध है।
४७६,५५८	४६९,५६३	अल्पतरबन्ध	अधिक प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला पश्चात् अल्प प्रकृतियोंका बन्ध करने लगे वह अल्पतरबन्ध है।
२१	३३	आतप	केवल जिसकी प्रभा अर्थात् किरणोंमें उष्णपना हो।
१२७	१५५	आबाधा	पुद्गलद्रव्यकर्म जबतक उदयरूप नहीं होता तबतक उदय आबाधा और जबतक उदीरणारूप नहीं होता तबतक उदीरणाआबाधा है।
८३४	९१४	आबाधाकाल	कर्मस्वरूपसे परिणत कार्मणद्रव्य जबतक उदय या उदीरणारूप नहीं होता तबतक का काल आबाधा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६	११	आयु	गतिमें जीवका अवस्थान करानेवाला आयुकर्म है।
४०	६१	इंगिनिमरण	संन्यासमरणके समय अपने शरीरका उपचार (सेवा) स्वयं करे अन्यसे न करावे ।
५३	६४	उत्पादानुच्छेद	यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है । जहां अस्तित्व है वहीं विनाश है जहां अस्तित्व ही नहीं वहां बुद्धीमें आ ही नहीं सकता, क्योंकि अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है । प्रमाण सत्‌रूप वस्तुको ही जानता है । असत्‌में प्रमाणका व्यापार ही नहीं है । यदि असत् में प्रमाण का व्यापार माना जावेगा तो गधेके सींगमें प्रमाणके विषयकी प्रवृत्ति मानी जावेगी, किन्तु ऐसा नहीं है ।
३४७	३५१	उत्पन्नस्थानसत्त्व	पूर्वपर्यायमें उद्वेलन या उद्वेलनके बिना जो सत्त्व है उसके साथ उत्तर पर्यायमें उत्पन्न होते समय उस उत्तरपर्यायमें जो सत्त्व है उसे उत्पन्न-स्थान सत्त्व कहते हैं ।
२१	३३	उद्योत	जिसकी प्रभा (किरणें) भी उष्णतारहित हों ।
		उद्वेलनसंक्रमण-भागहार	करणपरिणामोंके बिना रस्सीको उकेलनेके समान कर्मप्रदेशोंका परप्रकृतिरूपसे संक्रान्त होना उद्वे-लना संक्रम है, इसका भागहार अंगुलके असंख्यातवें-भागप्रमाण है (ज० ध० पु० ९ पृ० १७०-१७१)
३४६	३४९	उद्वेलना	जिसप्रकार रस्सीको बलदेकर बटा था पुन: बट को खोल दिया उसीप्रकार जिनप्रकृतियोंका बन्ध किया था पश्चात् उसको उद्वेलनभागाहारसे अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप प्राप्त कराकर नाशकरना उद्वेलना कहलाता है ।
३२५	३३७	उपशम-	उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृति-संक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकांडक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

			घातके बिना ही कर्मोंके सत्तामें रहनेको उपशम कहते हैं।
८३५	९१५-९१६	उदयआबाधा	आयुके बिना शेष सात मूलप्रकृतियोंकी बन्धके समय एककोडाकोडीसागर स्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है, किन्तु अन्तःकोडाकोडीकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त है।
८३६	९१८	उदीरणाआबाधा	आयुकर्मके बिना शेष कर्मोंकी उदीरणा बन्धावली व्यतीत होनेपर होती है अतः उदीरणा आबाधा-काल एकआवलीप्रमाण है।
७५१	८१५	औदयिकभाव	कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ जीवका भाव औद-यिकभाव है।
७५०	८१४	औपशमिकभाव	प्रतिपक्षी कर्मके उपशमसे औपशमिकभाव होता है।
३९	५७	कदलीघातमरण या अकालमरण	विष खानेसे, रक्तक्षयसे, शस्त्रघातसे, संक्लेश, श्वास रुकनेसे, आहार न मिलनेसे जो मरण होता है वह कदलीघातमरण अथवा अकालमरण है। हिम, अग्नि व पानी इत्यादिसे भी अकाल-मरण होता है।
५२१	५१९-२०	कर्मपद	नामकर्मके बन्धस्थानोंकी विवक्षासे होनेवाले जीवोंके भेदोंको कर्मपद कहते हैं।
४३५	४१२	काण्डक	अनेक समय समूहमें संक्रमण होनेको काण्डक कहते हैं।
२५	३३	गतिनामकर्म	जिसके उदयसे आत्मा पर्यायसे पर्यायान्तरको प्राप्त हो अथवा जिसके उदयसे उस उस गतिरूप क्रिया व भाव हों वह गति नामकर्म है।
४३४	४०९	गुणसंक्रमभागहार	प्रत्येकसमयमें असंख्यातगुणित श्रेणीरूपसे प्रदेश-संक्रमण होता है वह गुणसंक्रम है। इसका भाग-हार भी पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण है, किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

			अध:प्रवृत्तसंक्रमभागहारसे असंख्यातगुणा हीन है (जयधवल पु० ९ पृ० १७२)
७	१३	गोत्रकर्म	संतानक्रमसे चले आए जीवके आचरणको गोत्र कहते हैं जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है तथा साधुआचार वालोंके साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित कर लिया है जो 'आर्य' इसप्रकारके ज्ञान और वचनव्यवहारके निमित्त हैं उन पुरुषोंकी परम्पराको उच्चगोत्र कहा जाता है उससे विपरीत कर्म नीचगोत्र है (धवल पु० १३ पृ० ३८९)
६	९	घातिया	जीवके देवत्वगुणको घातनेवाले कर्म घातिया हैं। (जयधवल पु० १ पृ० ६७)
२३	३३	चारित्रमोहनीय	आचरण करना अथवा जिसके द्वारा आचरण किया जावे अथवा आचरणमात्रको चारित्र कहते हैं। इस चारित्रको जो मोहे या जिसके द्वारा यह चारित्र मोहा जावे वह चारित्र-मोहनीय है।
४३१	३९८	चूलिका	जिसमें कथित या अकथित अथवा विशेषतापूर्वक नहीं कहे हुए अर्थका चिन्तवन किया जाता है वह चूलिका है। सूत्रद्वारा सूचित अर्थका विशेष वर्णन करना चूलिका है। जिससे अर्थ प्ररूपणा किये जानेपर पूर्वमें वर्णित पदार्थके विषयमें शिष्योंको निश्चय उत्पन्न हो वह चूलिका है। (धवल पु० ११ पृ० १४०) सूत्रमें सूचित अर्थको प्रकाशित करना चूलिका है। (धवल पु० १० पृ० ३९५) अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेष प्ररूपणाकरना चूलिका है (धवल पु० ७ पृ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

			५७५)। किसी पदार्थके विशेष व्याख्यानको कथित विषयमें जो अनुक्त विषय है उनको अथवा उक्त-अनुक्त विषयसे मिले हुए कथनको चूलिका कहते हैं। (वृ० द्र० सं० टीका पृ० ६८)
२५	३३	जातिनामकर्म	अव्यभिचारी सादृश्यभावरूपसे जीव इकट्ठे किये जावें वह जाति नामकर्म है।
७८१	८४४	जातिपदभङ्ग	जहांपर एक जातिका ग्रहण किया जावे वह जाति पद है जैसे क्षायोपशमिकज्ञानके चार भेद होनेपर भी एक ज्ञानजातिका ही ग्रहण होता है।
५२१	५१९-२०	जीवपद	जीवोंके ४१ भेदोंको 'जीवपद' कहते हैं।
५	६	द्रव्यकर्म	पुद्गलपिंडको द्रव्यकर्म कहते हैं।
५०,१०१	९०,१२३ टीका	ध्रुवबन्ध	जिस बन्धका अभाव नहीं होगा वह ध्रुवबंध है।
४९	६१	धर्मकथा (वस्तु)	जिसशास्त्रमें एक अङ्गके अधिकारका वर्णन विस्तार या संक्षेपरूपसे हो।
३३४	३४३ टीका	नवकबन्ध	जो तत्कालीन नवीनबन्ध हुआ है उसका नाम नवकबन्ध है।
७	१२ टीका	नामकर्म	जो नारकी आदि जीवकी गति आदि भेदोंको और औदारिकशरीर आदि पुद्गल के भेदों को अनेकप्रकार करता है वह नामकर्म है।
१३	२२	निद्रानिद्रा	अनेकप्रकारसे सावधान किया हुआ भी आंखें नहीं खोल सकता।
१४	२४	निद्रा	निद्रा कर्मोदयसे गमन करता हुआ खड़ा हो जाता है, बैठ जाता है, गिर जाता है इत्यादि क्रियाएं होती हैं।
५६	१००	निवृत्तिगुणस्थान	एक ही समयमें स्थित नानाजीवोंके भिन्न-भिन्न परिणाम हों वह निवृत्ति (अनिवृत्ति) गुण-स्थान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४२२-२३	३९९ टीका	निरन्तरबन्धी प्रकृति	जिसका वन्धकाल जघन्यभी अन्तर्मुहूर्त मात्र है वह निरन्तरबन्धप्रकृति है। (धवल पु० ८ पृ० १००) जघन्यसे भी अन्तर्मुहूर्ततक बंधती रहे अर्थात् अन्तर्मुहूर्तके मध्यमें बन्ध होकर जिसप्रकृतिमें अन्तर नहीं पड़ता, वह निरन्तरबन्धप्रकृति है। (कर्मप्रकृति पृ० १४-१५)
१४१	१७७	परिवर्तमान मध्यम परिणाम	जो परिणाम एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको प्राप्त होकर पुनः पूर्वावस्थाको प्राप्त हो सकें वे परिवर्तमानपरिणाम हैं।
७५१	८१५	पारिणामिकभाव	कर्मके उपशम-क्षय-क्षयोपशम और उदयकी अपेक्षा बिना जीवका जो भाव वह पारिणामिकभाव है।
२	२	प्रकृति	शील या स्वभाव।
१४	२४	प्रचलाप्रचला	जिसके उदयसे मुखसे लार बहती है और हाथ आदि अङ्ग चलते हैं, किन्तु सावधान नहीं रहता वह प्रचला-प्रचला निद्रा है।
१४	२५	प्रचला	जिसके उदयमें यह जीव आंखोंको कुछ-कुछ उघाड़कर सोता है और सोता हुआ भी थोड़ा-थोड़ा जानता है, बार-बार मन्दशयन करता है वह प्रचलानिद्रा है।
७०९	७८६	प्रत्यय	प्रत्यय शब्दके अनेक अर्थ हैं—ज्ञान, शपथ, हेतु। यहांपर हेतु अर्थ विवक्षित है।
४०	६१	प्रायोपगमनमरण	संन्यासमरणके समय अपनेशरीरकी सेवा दूसरोंसे न करावे और स्वयं भी न करें।
४३५	४१२ टीका	फालि	एकसमयमें संक्रमित होनेवाले प्रदेशपुंजको फालि कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०	६०	भक्तप्रत्याख्यान	भोजनत्यागकी प्रतिज्ञा करके जो सन्यासमरण होता है उसके कालका प्रमाण जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट १२ वर्ष है।
५	६	भावकर्म	द्रव्यकर्मकी फलदेनेकी शक्ति भावकर्म है।
४७६,५५८	४६९-५६३	भुजाकारबन्ध	अल्पप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला पश्चात् अधिक प्रकृतियोंका बंध करने लगे वह भुजाकार बंध है।
२३	३३ टीका	मिथ्यात्वप्रकृति	जिसके उदयसे जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्गसे पराङ्मुख, तत्त्वार्थश्रद्धानमें निरुत्सुक, आत्मिक हिताहितके विचारसे रहित होता है, वह मिथ्यात्वप्रकृति है।
४२४	४०१ टीका	व्युच्छित्ति	आगेके गुणस्थानोंमें उदय, सत्त्व अथवा बन्धका अभाव हो जाना व्युच्छित्ति है।
४३३	४०९ टीका	विध्यातसंक्रमण-भागहार	वेदकसम्यक्त्वकालके भीतर दर्शनमोहनीयकी क्षपणसम्बन्धी अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयतक सर्वत्र ही मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका विध्यातसंक्रमण होता है। इसका भागहार भी अंगुलके असंख्यातवें भाग है, किन्तु उद्वेलनभागहारसे असंख्यातगुणाहीन है (ज० ध० पु० ९ पृ० १७१)।
३२४	३३६ टीका	विसंयोजना	अनन्तानुबन्धीकी चारोंकषायोंकी युगपत् विसंयोजना करता है अर्थात् अप्रत्याख्यानादि १२ कषाय और ९ नोकषायमें से ५ कषायरूप परिणमा देना।
१३४	१६३ टीका	विशुद्धपरिणाम	मंदकषायरूप विशुद्धपरिणाम।
९	१४	वेदनीयकर्म	सुख दुःखका अनुभव करावे वह वेदनीयकर्म है। जो वेदनअनुभवन किया जावे वह वेदनीयकर्म है (ध० पु० ६ पृ० १०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३	२२	स्त्यानगृद्धि	उठाया जानेपर भी सोता रहता है उस नींदमें ही अनेक कार्य करता है तथा कुछ बोलता भी है किन्तु सावधानी नहीं रहती वह स्त्यानगृद्धि निद्रा है।
४६	८८	स्तव	जिस शास्त्रमें सकलअङ्गका वर्णन विस्तार या संक्षेपसे हो।
४६	८८	स्तुति	जिसशास्त्रमें एकअङ्गका वर्णन विस्तार या संक्षेप से हो।
४६६	४५१ टीका	स्थान स्थान	जिसमें कर्मप्रकृतियां रहती है अर्थात् प्रकृतियोंके समुदायको स्थान कहते हैं वे प्रकृति स्थान, बन्धस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थानके भेदसे तीनप्रकार के होते हैं (ज० ध० पु० २ पृ० १६६)।
३४७	३५१ टीका	स्वस्थानसत्त्व	विवक्षितपर्यायमें उत्पन्न होनेके बाद उद्वेलन होकर अथवा उद्वेलन हुए बिना नवीनबन्ध होकर जो सत्त्व होता है वह स्वस्थान सत्त्व है।
१३४	१६३ टीका	संक्लेशपरिणाम	तीव्रकषायरूप संक्लेशपरिणाम हैं।
२३	२३ टीका	सम्यक्त्वप्रकृति	जो आत्माके श्रद्धानको नहीं रोकती, किन्तु सम्यग्दर्शनकी निर्मलता व स्थिरताका घात करती है (ज० ध० पु० ५ पृ० १३०)।
२३	२३ टीका	सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति	जिस द्रव्यकर्ममें मिथ्यात्वकी तीव्र अनुभागशक्ति कुछ क्षीण हो जावे और कुछ मंद रह जावे वह सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति है।
४३२-४३३ टिप्पण	४०६ टिप्पण ४१० टीका	संक्रमण	जैसा आगममें बतलाया है तदनुसार एकप्रकृतिके स्थितिगत परमाणुओंका अन्य सजातीय प्रकृतिरूप परिणमना संक्रमण है (ज०ध०पु०७पृ०२३८) बन्ध होनेपर संक्रमण सम्भव है, बन्धके अभावमें वह संभव नहीं। (ध० पु० १६ पृ० ३४०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५१	१९१	समयप्रबद्ध-कार्मणवर्गणा कार्मणशरीर	समयप्रबद्ध अथवा कार्मण वर्गणा अथवा कार्मण-शरीर पांचप्रकार रस, पांचप्रकार वर्ण, दो प्रकार गन्ध तथा स्पर्शके आठ भेदोंमें से चार (स्निग्ध-रूक्ष, शीत-उष्ण, कर्कश-मृदु, गुरु-लघु इन चार युगलोंमें से एक-एक इसप्रकार चार) इन गुणोंसे परिणत होता है तथा सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्योंसे अनन्तगुणे पुद्गल परमाणुओंका समूहरूप है ।
७८१	८४४	सर्वपदभङ्ग	जहां पृथक् पृथक् सम्पूर्णभावोंका ग्रहण किया जावे वे सर्वपद भंग है ।
४३४	४०९ टीका	सर्वसंक्रमभागहार	सर्वप्रदेशोंका जो युगपत् संक्रम होता है वह सर्व-संक्रम है । इसका भागहार एक अङ्क है ।
५०,१०१	९०,१२३ टीका	सादिबन्ध	जो बंध छूटकर पुनः बंधे वह सादिबंध है ।
४२२-२३	३९९ टीका	सांतरबन्धप्रकृति	एकसमयमें बंधकर द्वितीय समयमें बन्धविश्रान्ति देखी जाती है वह सान्तरप्रकृति है । (ध० पु० ८ पृ० १००) जिसप्रकृतिका बन्ध जघन्यसे एकसमय और उत्कृष्टसमयको आदिकरके अन्तर्मुहूर्तसे पूर्वतक बंधनेवाली प्रकृति सान्तरबंधी है अथवा अन्तर्मुहूर्तके मध्यमें बन्धविच्छेद होकर पुनः अन्तरसहित बंधनेवाली प्रकृति सान्तरबन्ध प्रकृति है । (क० प्र० पृ० १४-१५)
४२०	३९७	सिद्धान्तचक्रवर्ती	बुद्धिरूपी चक्रसे जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड व महाबन्धके भेदसे षट्खण्डागमरूप शास्त्रमें भले प्रकार अवगाहन करनेवाला ।
७०	११२	शतारचतुष्क (सतारचतुष्क)	तिर्यंचगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु, व उद्योत ये चारप्रकृतियां सतारचतुष्क या शतार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६४	४४५ टीका	क्षयदेश	चतुष्क कहलातीहै।जो प्रकृति अन्यप्रकृतिरूप उदय होकर नाशको प्राप्त होती हैं उन परमुखोदयी प्रकृतियोंकेतो अन्तकाण्डककी अन्तिमफालि क्षयदेश है तथाजो स्वमुख उदयरूपसे उदय होकर निकलती हैं उनका एकआवलि प्रमाणकाल शेष रहनेपर क्षयदेश है।
७५०	८१४	क्षायिक	प्रतिपक्षकर्मके सर्वथा क्षयसे क्षायिकभाव होता है।
७५०	८१४	क्षायोपशमिकभाव	प्रतिपक्षीकर्मोंके देशघाति स्पर्धकोंका उदय होने पर भी जीवका गुणप्रगट हो वह मिश्र (क्षायोपशमिक) भाव है।

5213

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5213

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi